

| | | | | | |
|-------------------------|----|-------------------------|-----|-------------------------|-----|
| क्रेदादियों के स्थान | ११ | दूरीं विशेष | १ | वायु जमें स्नायु का स् | १४५ |
| उन स्थानों में गत | १२ | कफ स्वरूप | २५ | शाखा में प्राप्त स्नायु | १४७ |
| कफ के कर्म | १३ | ग्रहणी लक्षणा | २६ | कोष्ठ गत | १४८ |
| धातु पाक की निरुक्ति | १४ | इस आहार पाक में वि | २७ | ग्रीवा के ऊपर प्राप्त | १४९ |
| धातु वों के कर्म | १५ | स्थूल सूक्ष्म रस भेद और | २८ | धमनि | १५० |
| रस शब्द की निरुक्ति | १६ | ओज रूप का लक्षणा | १०० | उनमें ऊपर की | १५१ |
| रस का स्वरूप | १७ | शुक्र का स्वरूप | १११ | कंडरा | १५२ |
| रस के स्थान | १८ | जीव की सर्वत्र स्थिति | ११२ | उनमें हस्त याद गत | १५३ |
| उत्के कर्म | १९ | गर्भ को उपव करने वा | ११३ | कंडराओं की विशेष उ | १५४ |
| रक्त का स्वरूप | २० | ले शुक्र का लक्षण | ११४ | रन्ध्र | १५५ |
| उत्का स्थान | २१ | शुक्र का स्थान | ११५ | सौत | १५६ |
| मांस का स्वरूप | २२ | उसके निकलने का मा | ११६ | जाल | १५७ |
| उसके पेशी | २३ | घात्र के निकलने का क | ११७ | कूर्च | १५८ |
| मांस पेशी यों की संस्था | २४ | आर्तव का स्वरूप | ११८ | रन्ध्र | १५९ |
| उनमें शाखा गत | २५ | गर्भ ग्रहण योग्य आ | ११९ | सीवन | १६० |
| कोष्ठ गत | २६ | तव का लक्षणा | १२० | संचात | १६१ |
| गले के ऊपर की | २७ | धातु वों के अलग गु | १२१ | सीमन | १६२ |
| मांस पेशी यों के कर्म | २८ | धातु वों के मल | १२२ | त्वचा | १६३ |
| मेद स्वरूप | २९ | उप धातु | १२३ | अवभासिनी | १६४ |
| उत्का स्थान | ३० | आशय | १२४ | लोम और लोम कूप | १६५ |
| हड्डी का स्वरूप | ३१ | कला का स्वरूप | १२५ | गर्भ का मासिक क्रम | १६६ |
| अस्थि यों की संस्था | ३२ | वोसात | १२६ | दो हृद का विशेष फल | १६७ |
| शाखा गत अस्थि | ३३ | मर्म | १२७ | गर्भ का प्रथम अंग | १६८ |
| पसली भादि में प्राप्त | ३४ | शृंगा वक | १२८ | गर्भ का जीवनों पायान्त | १६९ |
| गले के ऊपर की अस्थि | ३५ | छाती के मर्म | १२९ | गर्भ वृद्धि का कारण औ | १७० |
| अस्थि यों का प्रयोजन | ३६ | सन्धि दो प्रकार की | १३० | रजयाय ॥ | १७१ |
| मज्जा का स्वरूप | ३७ | चेष्टा वाली और स्थिर | १३१ | दृष्टि और रोम कूपों की | १७२ |
| मज्जा का स्थान | ३८ | कोष्ठ में प्राप्त | १३२ | अवृद्धि ॥ | १७३ |
| शुक्र की उत्पत्ति | ३९ | ग्रीवा के ऊपर प्राप्त | १३३ | नख के शों की सदा दृ | १७४ |
| जाग्रा शय स्वरूप | ४० | शिर | १३४ | अचेतन अंग | १७५ |

| | | | | | |
|--|-----|----------------------|----|-----------------------|-----|
| गर्भ का वात मल मूत्र न होने में कारण ॥ | १६६ | अभिमन्त्रण | २० | उषदनेके गु | २०६ |
| गर्भ चती कृत्य | १६७ | माताके दूध न होनेमें | २१ | स्नानके गुण | २०७ |
| प्रसव भास | १६८ | और धायके न मिलने | २२ | बदन का पखाना | २०८ |
| सूतिका घरकी आरु | १६९ | में प्रकार ॥ | २३ | बस्त्र धारण | २०९ |
| अन करीब बालक हो | १७० | बालकका अन्नप्राण | २४ | चन्दन लगानेके गुण | २१० |
| ने वाली का लक्षण ॥ | १७१ | न समय ॥ | २५ | पुष्पादि धारण | २११ |
| उस्का उपचार | १७२ | उसकी परि चर्च्यीदि | २६ | आभूषणका धारण | २१२ |
| दाईका ल० | १७३ | बालकको स्वभावसेहि | २७ | रत्नादि धारण | २१३ |
| दाईका कृत्य | १७४ | उसके कंवला दिकास | २८ | खड़ाऊंका पहरना | २१४ |
| पीडा रहितके प्रवाह | १७५ | बालक भादिकी अ० | २९ | भोजन दिके गु० | २१५ |
| णसे वैगुण्य | १७६ | प्रकृति लक्षण | ३० | रसादि योंके पाकका | २१६ |
| बालककी जन्मोन्नति | १७७ | अनन्तर देश | ३१ | ज्ञान ॥ | २१७ |
| जन्मके नियम | १७८ | आनूप देश ल० | ३२ | भोजन पात्रके गु० | २१८ |
| उसके नियम समयकी | १७९ | जाङ्गल लक्ष० | ३३ | भोजनके प्रथम लक्षण | २१९ |
| अबाधि ॥ | १८० | साधारण देश ल० | ३४ | अन्नका भक्षणके | २२० |
| दुग्धका लक्षण | १८१ | उनमें वागभटकामत | ३५ | दृष्टि दोष दूर होनेके | २२१ |
| उसकी प्रवृत्ति | १८२ | दिनादि चर्च्य | ३६ | ब्रह्माभादिका स्मरण | २२२ |
| उसके अल्प होने काहेतु | १८३ | उसमें स्वस्वका लक्षण | ३७ | भोजनादि क्रम | २२३ |
| उसके बढ़ने का कारण | १८४ | दिन चर्च्यी | ३८ | मधुर अन्न का गुण | २२४ |
| फालम धानका लक्षण | १८५ | हातुनकी विधि | ३९ | सुरुत्रिविध निवारण | २२५ |
| दुग्धके विगाडनेका | १८६ | सील गरम जलकी कु | ४० | भोजनका भोजन परि | २२६ |
| विगाडे हुवे दुग्धका ल० | १८७ | और शीतल जलकी कु | ४१ | शुक्र अन्नादियोंका वि | २२७ |
| उसकी शोधनविधि | १८८ | सुस्वका धाना | ४२ | दियमा रानका लक्षण | २२८ |
| शुद्ध दुग्धका लक्षण | १८९ | कटु तैलादि नास | ४३ | अकालमें भोजन किये | २२९ |
| धायका लक्षण | १९० | अंजन | ४४ | का दोष मुक्त भावसे | २३० |
| नियत धायका लक्षण | १९१ | बालोंका साफ करना | ४५ | उत्पन्न हुये ॥ | २३१ |
| बालकके दुग्ध पानकी | १९२ | शीशका देसना | ४६ | कफका इलाज | २३२ |
| विधि ॥ | १९३ | कसरत | ४७ | तामूल गुण | २३३ |
| अन्वया विगाड | १९४ | अभ्यङ्ग | ४८ | भोजनके अनन्तरकी | २३४ |
| | १९५ | सुगन्ध तैल | ४९ | क्रिया ॥ | २३५ |

| | | | | | |
|------------------------|-----|------------------------|-----|-------------------------|-----|
| वायुके गुण | २३३ | व्यासीकृतपुंसवनांतर | २५२ | वेदभेदमें आयुभेद | २५१ |
| दिनके शयन का गुण | २३५ | कतु चर्या | २५६ | आगतुक हेतु | २५२ |
| औरभी अन्नके संस्थाप | २३७ | सुश्रु तोक वयलक्षण | २५४ | आयुका विचार | २५३ |
| नका राग ॥ | * | अंशूदक का लक्षणा | २६१ | दीर्घ आयुका लक्षणा | २५३ |
| अन्नका उदरमें स्थिति | २३८ | रोगका लक्षणा | २६३ | अल्प आयुका लक्षण | २५४ |
| हेतु ॥ | * | कर्माज रोग | २६४ | चिकित्सा विधान फ० | २५६ |
| और भी वर्जनीय | २३९ | दोषज रोग | २६५ | परिचारक का लक्षण | २५७ |
| अजीर्णके कारण | २४० | कर्म दोषज | २६६ | द्रव्य | २५८ |
| अध्यशन का लक्षणा | * | साध्य असाध्य याव्य | २६६ | औषध ग्रहण परिभा | २५९ |
| उसका इलाज | * | उपद्रव का लक्षणा | २६७ | द्रव्योंकी परीक्षा | २६० |
| सायं कालके भोजनसे | * | अरिष्ट का लक्षणा | २६८ | स्वभावसे हित | २६१ |
| अजीर्ण होनेमें भोजन | * | चिकित्सा का लक्षणा | २६९ | स्वभावसे अहित | २६२ |
| का उपाय ॥ | २४१ | चिकित्सा की विधि | २६९ | संयोग विरुद्ध | २६३ |
| दितके में घुन का निषेध | २४२ | रोगको न जान कर | * | औषध ग्रहण संकेत | २६४ |
| चक्र मण के गुण | २४३ | इलाज करनेमें दोष | २७० | प्रतिविधि | २६५ |
| पगड़ी धारणा के गुण | २४४ | रोगको जानकर औष | * | द्रव्य गत पच पदार्थों | २६६ |
| पाद धारणा धारणा गुण | २४५ | धन जाननेमें दोष | २७१ | के कर्म | २६७ |
| कूब धारणा गुण | २४६ | रोग और औषध के | * | मधुर रसका गु० | २६८ |
| बंड धारणा गुण | २४७ | ज्ञान में गुण | २७२ | अति युक्त मधुर रसका गु० | २६९ |
| पालकी की सवारीके गु० | २४८ | चिकित्सा का फल | २७३ | अम्ल का गुण | २७० |
| गांवकी सवारीके गु० | २४९ | चिकित्साके अंग | २७४ | अति युक्त अम्ल का गुण | २७१ |
| हाथीकी सवारीके गु० | २५० | रोगका लक्षण | २७५ | लवण का गुण | २७२ |
| घोड़ेकी सवारीके गु० | २५१ | चिकित्साके योग्य | २७६ | अति युक्त लवण का गु० | २७३ |
| धूपके गुण | २५२ | चिकित्साके अपोष्य | २७७ | कटु गु० | २७४ |
| वारिणके गुण | २५३ | दूतका लक्षण | २७८ | अति युक्त कटु रसका गु० | २७५ |
| कुदगके गुण | २५४ | व्रमकी यात्रामें शुक्ल | २७९ | तिक्तरसका गु० | २७६ |
| अग्निके गुण | २५५ | विचार ॥ | २८० | अति तिक्तरसका गु० | २७७ |
| धुमका गुण | २५६ | भ्रष्टका लक्षण | २८१ | कषाय गु० | २७८ |
| अक्षर | २५७ | निषिद्ध वैद्य | २८२ | अति युक्त कषाय का गु० | २७९ |
| सर्व चर्या | २५८ | विषका कर्म | २८३ | गुण | २८० |

| | | | | | |
|-------------------------|-----|-----------------------|-----|---------------------|-----|
| लघु आदिगुरा वा लोंकेगु० | २५३ | सौफ सीया केना०गु० | ३५३ | दोनो रासना केनामगु० | २५३ |
| आम पाक | ३५४ | मेयो वनमंघी नामगु० | ३५३ | तेजवतीकेनामगु० | २५३ |
| वीर्य | ३५२ | चार दाना नामगु० | ३५३ | मालकंगुनीकेनागु० | ३५३ |
| विपाक | २५३ | हिङ्गु केनामगु० | २५३ | कुठकेनामगु० | २५३ |
| विपाकोंकेगुरा | ३५३ | बच्च नामगु० | २५३ | पोहकर मूलकेनागु० | २५३ |
| प्रभाव | २५३ | गुरासानी बच्च नामगु० | २५३ | नेक के ना०गु० | ३५३ |
| हडके नाम लक्षणगु० | ३५५ | कुलिजन नामगु० | ३५५ | काकडा सीड्रीकेनागु० | २५३ |
| बहिङ्गकेनामगु० | ३५३ | चौब चीनी गु० | २५३ | कायफलकेना०गु० | २५३ |
| जावलेकेनामगु० | २५३ | दोना ही बेर केनामगु० | ३५५ | भारंगी केनामगु० | ३५५ |
| विफलाकेनामल०गु० | ३५३ | वाध विडङ्ग केनामगु० | ३५६ | पाषारा भेदकेना०गु० | २५३ |
| सोदकेनामगु० | २५३ | बुधरू फलकेनामगु० | २५३ | धवकेना०गु० | २५३ |
| अन्नककेनामगु० | ३५३ | बंशलोचनकेनामगु० | २५३ | यजीरकेनामगु० | ३६० |
| यीपलकेना०गु० | ३५५ | समुद्र फेन | ३५३ | कुसुंभकेनामगु० | २५३ |
| मिरचकेना०गु० | ३५५ | अष्टवर्गकालक्षरागु० | २५३ | लाहीकेनामगु० | २५३ |
| त्रिकुट ना०गु० | ३५६ | जीवक रूपभक को | २५३ | हलदीकेना०गु० | ३६३ |
| पीपला मूल ना०गु० | २५३ | उत्पत्ति नाम ल०गु० | २५३ | कपूर हलदी ना०गु० | २५३ |
| नव रूपणकाल०गु० | २५३ | भेदा महा भेदाकीउ | ३५६ | बन हलदी ना०गु० | ३६३ |
| चवकेगुरा | ३५३ | त्यत्रिल० ना०गु० | २५३ | दार हलदीनामगु० | २५३ |
| गज पीपलकेनामगु० | २५३ | काकोली धीर काकी | ३५५ | रस वत ना०गु० | २५३ |
| चित्रककेना०गु० | २५३ | ली की उत्पत्ति ल०गु० | २५३ | वावची ना०गु० | ३६३ |
| पंचकोलकाल०गु० | ३५३ | अहि वृद्धि कीउत्पत्ति | ३५५ | चकोड ना०गु० | २५३ |
| पद्म पत्रका ल०गु० | २५३ | लक्षण नाम गुरा | २५३ | अनीस ना०गु० | ३५५ |
| अजवाइनकेनामगु० | २५३ | इनकी प्रति निधि | ३५३ | लीध ना०गु० | २५३ |
| अजमोदकेना०गु० | ३५५ | मुलहरीकेनामगु० | ३५३ | लहसन ना०गु० | ३६५ |
| गुरासानी अनवाइनके | २५३ | कम्बोलाकेना०गु० | २५३ | विआज नाम गु० | ३६६ |
| गुरा ॥ | २५३ | अमल तास केनागु० | २५३ | मिर्सावा ना०गु० | ३६३ |
| त्याह अंस अक्रुद्जीरके | २५३ | कुटकी केनामगु० | ३५३ | भाङ्ग नामगु० | ३६६ |
| नाम गुरा ॥ | २५३ | दिराप्रदे केनामगु० | २५३ | पोस्त ना०गु० | २५३ |
| धनियौकेनामगुरा | ३५५ | इन्द्र जवकेनामगुरा | ३५५ | अनीस नामगु० | ३६६ |
| | ३५५ | नयम फल केनामगु० | ३५५ | पोस्तदाना ना०गु० | २५३ |

| | | | | | |
|---------------------------|-----|----------------------------|-----|----------------------|-----|
| मेन्धव नाम गु० | २२ | सलई कीराल ना० गु० | २२ | नालीम पत्र ना० गु० | ३४४ |
| सांभर ना० गु० | २२ | शिलास्त ना० गु० | २२ | सीतल चीनी ना० गु० | २२ |
| पाङ्गना० गु० | ३९० | जायफल ना० गु० | ३८३ | गन्धकोकिला ना० गु० | ३४५ |
| विडलवरा ना० गु० | २२ | जावड़ी ना० गु० | २२ | पीली खस ना० गु० | ३४५ |
| सौचल नाम गुणा | ३९१ | लवङ्ग ना० गु० | २२ | एलवालुक ना० गु० | २२ |
| चनास्वार ना० गु० | २२ | इलायची पूरवी ना० गु० | ३८४ | जलमोघा ना० गु० | ३४६ |
| जवास्वार ना० गु० | २२ | इलायची गुजराती ना० गु० | २२ | पिडित कणाक ना० गु० | २२ |
| सज्जी सारा ना० गु० | २२ | तज ना० गु० | ३८५ | चकवत के ना० गु० | ३४७ |
| सुहागना० गु० | ३९२ | दारचीनी ना० गु० | २२ | पवाड नाम गु० | २२ |
| क्षारद्वय क्षार त्रय क्षा | २२ | तेज पात ना० गु० | २२ | धूल कमल के ना० गु० | ३४८ |
| रायक लक्षणा | २ | नाग केसर ना० गु० | ३८६ | इतिकपूरादि वर्गः | २२ |
| चूक नाम गुणा | ३९३ | त्रिजांत और चतुरजा | २२ | अथ गुड च्यादि वर्गः | २२ |
| कपूर आदि वर्ग | २२ | त का लक्षणा गु० ॥ | २ | गिलोय जपत्ति ना० गु० | २२ |
| कपूर के ना० गु० | २२ | केसर ना० गु० | २२ | पाव ना० गु० | ४०० |
| चीनीया कपूर ना० गु० | ३९४ | गोलो चन नाम गु० | ३८७ | वेलके ना० गु० | २२ |
| करूरी ना० गु० | २२ | नख नखी गन्ध द्रव्य ना० गु० | २२ | कुहो ना० गु० | २२ |
| सुसक दाना ना० गु० | ३९५ | सुगन्धवाला नाम गु० | ३८८ | पाटला काष्ट पाटला | ४०१ |
| गौरा साख भेद ना० गु० | २२ | वीरणा ना० गु० | २२ | नाम गुणा | २२ |
| चन्दन ना० गु० | २२ | खस नाम गुणा | ३८९ | अरती नाम गु० | ४०२ |
| पीत चन्दन ना० गु० | ३९६ | जटा मांसी ना० गु० | २२ | सोना पाठाना० गु० | २२ |
| रक्त चन्दन ना० गु० | २२ | वाल रुड ना० गु० | २२ | रहत पंच मूल काल गु० | ४०३ |
| पतंगना० गु० | २२ | मोथानागर मोथाना | ३९० | सरिवन ना० गु० | ४०४ |
| अगर मा० गु० | ३९१ | कचूर ना० गु० | २२ | पिठवन ना० गु० | २२ |
| देव द्वार ना० गु० | २२ | मरोड फली ना० गु० | ३९१ | वन भाट ना० गु० | २२ |
| धूप ना० गु० | ३९२ | गन्ध यला प्ती ना० गु० | २२ | दोनों कटे ली ना० गु० | ४०५ |
| नगर ना० गु० | २२ | प्रिय गुना० गु० | २२ | सफेद कटे ली ना० गु० | २२ |
| पदम काष्ट ना० गु० | ३९३ | रिनु का ना० गु० | ३९२ | गौरवरू नाम गुणा | ४०६ |
| गुगल ना० गु० | २२ | भटोर के ना० गु० | २२ | लघु पंच मूल काल गु० | ४०७ |
| धूप नाम गुणा | ३९४ | घनेर ना० गु० | ३९३ | दश मूल काल गु० | २२ |
| रत्न ना० गु० | ३९५ | उमी का भेद भटे उर ना० गु० | २२ | वीवन्ती ना० गु० | २२ |

| | | | | | |
|--------------------|-----|--------------------|-----|--------------------|-----|
| वनमूङ्गना०गु० | ५०० | दंकारीकेना०गु० | ८८ | दीनोंदन्तीना०गु० | ४३५ |
| वनउड्डना०गु० | ८८ | वैतना०गु० | ८८ | जमालगोटाना०गु० | ८८ |
| जीवनीययाकाकल | ४०० | जलवैतना०गु० | ८८ | इन्द्रायनना०गु० | ४३६ |
| क्षणागुण॥ | ८८ | समुन्द्रफलना०गु० | ८८ | नीलना०गु० | ८८ |
| सफेदऔरलालअंडी | ४ | अंबोटना०गु० | ४२४ | सरफोकाना०गु० | ४३७ |
| नामगुरा॥ | ४०४ | चरोवरिआरना०गु० | ८८ | जवांसाऔरधमासे | ८८ |
| सफेदलालआंकका | ४ | लक्ष्मणना०गु० | ४२५ | केना०गु० | ४ |
| नाम०गुरा॥ | ४१० | सौनावैलना०गु० | ४२६ | मुंडीनामगु० | ४३० |
| सेहुंडना०गु० | ४११ | कपासना०गु० | ८८ | देवोंकंगेकेना०गु० | ४३४ |
| मीकाकाईना०गु० | ४१२ | वांसना०गु० | ८८ | नालमखाना०गु० | ८८ |
| करिहारीनामगु० | ४१३ | तरकटना०गु० | ४२७ | हारसिंगारना०गु० | ४४० |
| सफेदलालकनेर | ८८ | सरयतना०गु० | ८८ | घीउकुआरना०गु० | ८८ |
| धतूरेकेना०गु० | ४१४ | मूडना०गु० | ८८ | दीनोयुननवाना०गु० | ४४१ |
| वांसकेनामगुरा | ८८ | काषना०गु० | ४२८ | गन्धप्रसारणीना०गु० | ४४२ |
| पिन्नपापडा०ना०गुरा | ४१५ | गन्धपटेरना०गु० | ८८ | दीनोंसारिवाना०गु० | ८८ |
| नीमनामगु० | ८८ | मैथीमृणामा०गु० | ८८ | भाङ्गरना०गु० | ४४३ |
| वकावूनना०गु० | ४१६ | कुशना०गु० | ४२९ | हुलीकेना०गु० | ४४४ |
| जलनीमना०गु० | ८८ | कचूराना०गु० | ८८ | जायमानाना०गु० | ८८ |
| दीनोकवनारना०गु० | ८८ | मूहुरा०गु० | ८८ | मरोहफलीना०गु० | ८८ |
| दीनोसहिंजना०गु० | ४१७ | दूवकेना०गु० | ४३० | किंवाचना०गु० | ४४५ |
| सफेदऔरनीलेफूल | ४१८ | सफेददूवकेना०गु० | ८८ | कीव्वाहोदीना०गु० | ८८ |
| कीविद्याकानाना०गु० | ४ | गांडरना०गु० | ४३१ | काकजंधाना०गु० | ८८ |
| मैउडीना०गु० | १७ | विदारीकन्दना०गु० | ८८ | नागधुषीकेना०गु० | ४४६ |
| कोरेआना०गुरा | ८८ | दारहीकन्दना०गु० | ८८ | मेढासीहीना०गु० | ८८ |
| दीनोंकरंजना०गुरा | ४२० | मूसलीना०गु० | ४३२ | हंसपदीना०गु० | ८८ |
| हारकरंजना०गु० | ४२३ | दीनोंसतावरकेना०गु० | ८८ | सोमवल्लीना०गु० | ४४७ |
| सफेदलालगुंजाना०गु० | ८८ | असगन्धना०गु० | ४३३ | अमरवेलना०गु० | ८८ |
| किनांबना०गु० | ४२४ | पाढाना०गु० | ८८ | शातालगरुडीना०गु० | ८८ |
| रोहिणीना०गु० | ८८ | सफेदनिसोयना०गु० | ४३४ | वन्दालना०गु० | ८८ |
| नीलकेना०गु० | ४२३ | कालीनिसोवना०गु० | ८८ | वटपत्तीना०गु० | ४२८ |

| | | | | | |
|-----------------------|-----|------------------------|-----|-----------------------|-----|
| वट पत्री ना०गु० | ०० | सेवार ना०गु० | ४६१ | इति पुण्या दि वर्गः | ०० |
| मछे छी ना०गु० | ०० | सेवती | ०० | अथ वट आदि वर्गः | ४७१ |
| भरतही ना०गु० | ४५४ | नेवारि ना०गु० | ४६२ | वटके ना०गु० | ०० |
| घांख पुष्पी ना०गु० | ०० | वर्सीती बेलके ना०गु० | ०० | पीपल के ना०गु० | ०० |
| अर्क पुष्पी न्ना०गु० | ४५० | दोनों चमेली ना०गु० | ४६२ | गारस पीपल ना०गु० | ४७२ |
| लजालूके ना०गु० | ०० | दोनों जुही ना०गु० | ४६३ | बेलिया पीपल | ०० |
| दूसरे लजालूके ना०गु० | ०० | चम्या ना०गु० | ०० | गूलर ना०गु० | ०० |
| दूधीके ना०गु० | ०० | मौल सरी ना०गु० | ०० | कठिया गूलर ना०गु० | ४७३ |
| भूमि आंवेले के ना०गु० | ४५१ | बड़ी मौल सरी ना०गु० | ४६४ | पाकर ना०गु० | ०० |
| ब्रह्मी के ना०गु० | ०० | कदंब ना०गु० | ०० | सिरिस ना०गु० | ०० |
| रुमाके ना०गु० | ४५२ | कूजा ना०गु० | ०० | क्षीरवृक्ष पंच बल्क- | ५ |
| हुर नाम गुण | ४५२ | मालती ना०गु० | ४६५ | लकाल क्षणा गु० | ४७४ |
| दोनों खेखसे ना०गु० | ४५३ | माधवी ना०गु० | ०० | साल ना०गु० | ०० |
| सेनैआ ना०गु० | ०० | दोनों केवड़े के ना०गु० | ०० | साल मेद ना०गु० | ४७५ |
| जल पीपल ना०गु० | ४५४ | किं किरात ना०गु० | ४६६ | सलई ना०गु० | ०० |
| गोभी ना०गु० | ४५५ | करीण कार ना०गु० | ०० | शीसम ना०गु० | ०० |
| ताग दोन ना०गु० | ०० | अशोक पुष्प ना०गु० | ०० | अर्जुन ना०गु० | ४७६ |
| वर वेल ना०गु० | ४५६ | वारण पुष्प ना०गु० | ४६७ | विजय सार ना०गु० | ०० |
| नकाकिकनी ना०गु० | ०० | चारो कट सरैयाके ना०गु० | ०० | खैर नाम गुण | ४७७ |
| ककरोन्दा ना०गु० | ०० | कुन्द ना०गु० | ०० | सफेद खैर ना०गु० | ०० |
| सुदर्शन ना०गु० | ४५७ | सुन्द कुन्द ना०गु० | ४६८ | दुर्गन्धि खदिर ना०गु० | ०० |
| मुसाकानी ना०गु० | ०० | तिलक पुष्प ना०गु० | ०० | रोहितक के ना०गु० | ४७८ |
| मोर पारवा ना०गु० | ०० | दुप हरिया ना०गु० | ०० | कीकर ना०गु० | ०० |
| इति गुड च्या वि वर्गः | ०० | जवा पुष्प ना०गु० | ०० | रीठा ना०गु० | ०० |
| अथ पुष्प वर्गः | ०० | सेन्दुरि आ ना०गु० | ४६९ | पित्तो जिभाना०गु० | ०० |
| कमल के नाम गु० | ०० | अगस्ति पुष्प ना०गु० | ०० | हिं गो ठ ना०गु० | ४७९ |
| पद्मती ना०गु० | ४५८ | दोनों तुलसी ना०गु० | ०० | जिंगिनी ना०गु० | ०० |
| नवीन पत्र आदि ना०गु० | ४५९ | मरुआनाम गुण | ४७० | तुन के ना०गु० | ०० |
| स्थान कमल ना०गु० | ४६० | द्वना ना०गु० | ०० | भोज पत्र ना०गु० | ४८० |
| कुमुद ना०गु० | ०० | वाकी ना०गु० | ०० | पलाण ना०गु० | ०० |

| | | | | | |
|--------------------|-----|-----------------------|-----|------------------------|-----|
| सेमल ना.गु. | ४८१ | स्ववृक्षा ना.गु. | ४८१ | निर्मलीना.गु. | ४८१ |
| मैव रस ना.गु. | ४८२ | खीना ना.गु. | ४८२ | दाख ना.गु. | ४८२ |
| कटिया सेमल ना.गु. | ४८२ | सुपारी ना.गु. | ४८२ | खजूर ना.गु. | ४८२ |
| धवनाम गु. | ४८३ | ताड़नाम गुणा | ४८३ | खोदारा ना.गु. | ४८३ |
| धामित ना.गु. | ४८३ | ताड़ीनाम गुणा | ४८३ | पिडर खजूरी ना.गु. | ४८३ |
| करीर ना.गु. | ४८३ | बेल फल ना.गु. | ४८३ | बादाम ना.गु. | ४८३ |
| साखुना.गु. | ४८३ | कच्चे बेल के ना.गु. | ४८३ | सेव ना.गु. | ४८३ |
| वर ना ना.गु. | ४८३ | कैथ ना.गु. | ४८३ | अमृत फल ना.गु. | ४८३ |
| कठमी ना.गु. | ४८३ | नारङ्गी ना.गु. | ४८३ | पीलू नाम गु. | ४८३ |
| घटा पाटलाना.गु. | ४८४ | तेन्दु ना.गु. | ४८४ | अखरोट ना.गु. | ४८४ |
| जलसिरीस ना.गु. | ४८४ | कुचला ना.गु. | ४८४ | विजौरा ना.गु. | ४८४ |
| शमी ना.गु. | ४८४ | बड़ जामन ना.गु. | ४८४ | मधु के कड़ी ना.गु. | ४८४ |
| द्विग वन ना.गु. | ४८४ | कैठे और नदी के जा | ४८४ | दोना जवीरी ना.गु. | ४८४ |
| निनिस ना.गु. | ४८४ | मत्त नाम गुणा ॥ | ४८४ | नीचू ना.गु. | ४८४ |
| गुई सहा ना.गु. | ४८४ | दर नाम गुणा | ४८४ | मिठा नीचू ना.गु. | ४८४ |
| द्विग वटादि वर्गः | ४८४ | और वैर के लक्षण गु. | ४८४ | कम खरव ना.गु. | ४८४ |
| आम आदि फल वर्गः | ४८४ | पानी आंवला ना.गु. | ४८४ | इमली ना.गु. | ४८४ |
| आम के ना.गु. | ४८४ | हर फारे बड़ी ना.गु. | ४८४ | अमल बेत ना.गु. | ४८४ |
| अम वट का लक्षण गु. | ४८४ | दोना करो न्दा ना.गु. | ४८४ | विषामिल ना.गु. | ४८४ |
| आम की गुठली के गु. | ४८४ | चिमें जी नाम गुणा | ४८४ | चतुर म्ल पंचा म्ल | ४८४ |
| नवीन पत्र के गु | ४८४ | सिखरी ना.गु.गुणा | ४८४ | का ल.गु. | ४८४ |
| अम्बाडा ना.गु. | ४८४ | कंदाई ना.गु.गुणा | ४८४ | परिभाषा | ४८४ |
| रत्नान्न ना.गु. | ४८४ | कमल मञ्जी ना.गु. | ४८४ | द्विग फल वर्गः | ४८४ |
| कोयल ना.गु. | ४८४ | सिधाडा ना.गु. | ४८४ | धानु आदिका वर्गः | ४८४ |
| कट हल ना.गु. | ४८४ | भेंद ना.गु. | ४८४ | धानु वीके ल.गु. | ४८४ |
| बड़ हल ना.गु. | ४८४ | दोना महुवों के ना.गु. | ४८४ | सोने की वस्त्रि ना.गु. | ४८४ |
| केला ना.गु. | ४८४ | फालमा नाम गुणा | ४८४ | चादी की उ. ना.ल.गु. | ४८४ |
| धुंकर ना.गु. | ४८४ | शहूत ना.गु. | ४८४ | नामकी उ. ना.ल.गु. | ४८४ |
| नारियल ना.गु. | ४८४ | अनार ना.गु. | ४८४ | राङ्ग ना.ल.गु. | ४८४ |
| तर बूज ना.गु. | ४८४ | बहु वार ना.गु. | ४८४ | यसद ना.ल.गु. | ४८४ |

| | | | | | |
|-----------------------|-----|-----------------------|-----|----------------------|-----|
| सीसेकीउत्पत्तिनाम | ५ | खपरि आ ना०गु० | ५५ | उपवियों का निरूपण | ५५७ |
| गुरा लक्षणा ॥ | ५२१ | कसीसना०गु० | ५५६ | इति धान्यादिवर्गः | ५५८ |
| लोहकीउ०ना०ल०गु० | ५२३ | सौरठी ना०गु० | ५५६ | अथ धान्य वर्गः | ५५९ |
| सारलोहकाल०गु० | ५२४ | कांदो ना०गु० | ५५७ | धान्योंकेभेद | ५६० |
| काना लोह काल०गु० | ५२५ | पहाड़ी माटी उत्पत्ति- | ५५८ | शालि धान्यकाल०गु० | ५६१ |
| मंहरकेल०गु० | ५२६ | लक्षणा नामगुरा | ५५९ | धानोंके नाम | ५६२ |
| अथउप धानु | ५२७ | रत्न की निरुक्ति | ५६० | उनके गु० | ५६३ |
| सोना मास्वी ना०गु० | ५२७ | रत्नों का निरूपण | ५६१ | लाल धान के गु० | ५६४ |
| रूपा मास्वी ना०गु० | ५२८ | हीरे के ना० ल०गु० | ५६२ | ब्रीही धान्य काल०गु० | ५६५ |
| लीला धो धा ना०गु० | ५२९ | हीरे के भस्म का गु० | ५६३ | साठी के ल०गु० | ५६६ |
| खपरि आ ग० | ५३० | पत्थे के ना० | ५६४ | साठी के ना० | ५६७ |
| कासा ना०गु० | ५३१ | मारिका के ना० | ५६५ | उनके गु० | ५६८ |
| दोना पीतल के ना०गु० | ५३२ | युस्वराज के ना० | ५६६ | शूक धान्य | ५६९ |
| सिन्दूर ना०गु० | ५३३ | नीलम के ना० | ५६७ | उनके ना०गु० | ५७० |
| शिला जीत ना०गु० | ५३४ | गोमेद ना० | ५६८ | गेहूँके ना०गु० ल० | ५७१ |
| पारेकी उत्पत्ति लक्षण | ५३५ | वेदुर्घ्य ना० | ५६९ | अथ शिम्बी धान्य | ५७२ |
| नाम गुरा ॥ | ५३६ | मोती ना०गु० | ५७० | औरउस्के पर्याय | ५७३ |
| उप रत्नोंके ल० | ५३७ | मूङ्गे के नाम | ५७१ | उनके गु० | ५७४ |
| शिङ्ग-रिफ ना० ल०गु० | ५३८ | रत्नों के गुरा | ५७२ | मूङ्गे के गु० | ५७५ |
| गंधक की उत्पत्ति नाम | ५३९ | कौनसा रत्न किस ग्र | ५७३ | उड्डके गु० | ५७६ |
| लक्षण गुरा ॥ | ५४० | हको हित होता है ॥ | ५७४ | लोविया ना०गु० | ५७७ |
| अथककीउ०ना०ल०गु० | ५४१ | उप रत्नों का निरूपण | ५७५ | पावयना०गु० | ५७८ |
| हरनालके ना० ल०गु० | ५४२ | वियके ना० ल०गु० | ५७६ | मोठ ना०गु० | ५७९ |
| मैसिल ना०गु० | ५४३ | बचनाक काल०गु० | ५७७ | मसूर ना०गु० | ५८० |
| सुरमेके ना०गु० | ५४४ | हारिद्रकालक्ष० | ५७८ | चने के ना०गु० | ५८१ |
| सोहागाना०गु० | ५४५ | सौराष्ट्रकाल० | ५७९ | मटर ना०गु० | ५८२ |
| रहना०गु० | ५४६ | सीगियाकाल० | ५८० | खे सारी ना०गु० | ५८३ |
| लोहसुम्बकना०गु० | ५४७ | कालकूटकाल० | ५८१ | कुलथी ना०गु० | ५८४ |
| खडिया ना०गु० | ५४८ | हालाहलकाल० | ५८२ | तिल ना०गु० | ५८५ |
| बालूना०गु० | ५४९ | ब्रजपुत्रकाल० | ५८३ | अलसी ना०गु० | ५८६ |

| | | | | |
|------------------------|--------------------|-----|--------------------|-----|
| तोरी ना० गु० | चेवुना ना० गु० | ५८२ | साहिं जनना० गु० | ५८२ |
| दोनों सरसों के ना० गु० | हुर हुर ना० गु० | ५८३ | बेंगल छोटा बड़ा | ५८३ |
| दोनों रई के ना० गु० | शिरि आरि ना० गु० | ५८४ | सफेद नाम गुरा | ५८४ |
| अथ झुड़ धान्य | मुई पत्र ना० गु० | ५८५ | चिंहा ना० गु० | ५८५ |
| कंगुनी ना० गु० | अज वाइम साग ना० | ५८६ | खेख सा ना० गु० | ५८६ |
| चीना ना० गु० | गुगा ॥ | ५८७ | करे रुआ ना० गु० | ५८७ |
| सावा ना० गु० | चक बड़ ना० गु० | ५८८ | कदली फल नाम गु | ५८८ |
| को दो ना० गु० | सिंहड ना० गु० | ५८९ | नाली का साग नाम | ५८९ |
| सरवीज ना० गु० | पित पाप डा ना० गु० | ५९० | गुगा ॥ | ५९० |
| वास बीज ना० गु० | गिलोय पत्र ना० गु० | ५९१ | अथ कन्ह शाक | ५९१ |
| कुसुंभ बीज ना० गु० | कसौं न्दी ना० गु० | ५९२ | सुराण के ना० गु० | ५९२ |
| देव धान ना० गु० | चने का साग ना० गु० | ५९३ | आलू ना० गु० | ५९३ |
| तिनी ना० गु० | केराव ना० गु० | ५९४ | कठिआ आलू के ना | ५९४ |
| पुने राना० गु० | सरसों साग गु० | ५९५ | म गुगा ॥ | ५९५ |
| इनके नये पुराने का गु० | अथ पुष्य प्राक | ५९६ | पिडा लू ना० गु० | ५९६ |
| बोथ ॥ इति धान्य वर्गः | अगस्ती फूल के गु० | ५९७ | अरुई ना० गु० | ५९७ |
| अथ शाक वर्गः | केले के फूल का गु० | ५९८ | दोनों मुली नाम गु० | ५९८ |
| शाक निरूपण | साहिंजन के फूल का | ५९९ | गाजर ना० गु० | ५९९ |
| शाको के गुगा | गुगा ॥ | ६०० | कदली ना० गु० | ६०० |
| दोनों बथुवा के ना० गु० | सेमल के फूल का गु० | ६०१ | मान के चु ना० गु० | ६०१ |
| पाई ना० गु० | अथ फल शाक | ६०२ | मुथनी ना० गु० | ६०२ |
| दोनों मरसे के ना० गु० | दोनों पेटे के नाम | ६०३ | हसि कर्ण ना० गु० | ६०३ |
| चव रई ना० गु० | गुगा ॥ | ६०४ | केऊ ना० गु० | ६०४ |
| जल चव रई ना० गु० | लोकी ना० गु० | ६०५ | कसेरू ना० गु० | ६०५ |
| पलकी ना० गु० | कडवी लोकी ना० गु० | ६०६ | परम आविक न्दी के | ६०६ |
| नरिचाना गु० | घीया तो रई ना० गु० | ६०७ | नाम गुगा ॥ | ६०७ |
| पटुआ ना० गु० | तोरी ना० गु० | ६०८ | खेदज शाक ना० गु० | ६०८ |
| कलम्बी साग ना० गु० | पटोल ना० गु० | ६०९ | इति शाक | ६०९ |
| नोमिया ना० गु० | कुन्दरू ना० गु० | ६१० | वर्गः | ६१० |
| दोनों चक के ना० गु० | सेम सेमा ना० गु० | ६११ | | ६११ |

सूचीपत्र

भाव प्रकाश के पूर्वखंडका ।

द्वितीय भागः

अथ मांस वर्गः

| | | | | | |
|------------------------|----|------------------------|----|---------------------|----|
| प्रकरा | एष | उन विक्रि में वंटेर आ | १२ | सीङ्गी गु० | १० |
| उसमें मांसके नाम | १ | प्रतु दोमें हरीत आदि | १३ | हीलसा गु० | ११ |
| जाङ्गल के लक्ष और | २ | पक्षि अंडके गु० | १४ | सोरी गु० | १२ |
| गुण ॥ | ३ | श्राव्योंमें छागका गु० | १५ | गर्गरा गु० | १३ |
| ग्राम्य आठ जाङ्गल | ४ | भेदेके गुण ० | १६ | कवई गु० | १४ |
| जाति ॥ | ५ | दुम्बाके गुण | १७ | वाम्बी गु० | १५ |
| मानूप का ल० गु० | ६ | वर्द गाय | १८ | दंडेरी गु० | १६ |
| जाङ्गला की गरा ना | ७ | घेड़के ना० गु० | १९ | भरंगी गु० | १७ |
| विशिश गुण ॥ | ८ | कूले चरों में भैंस का | २० | पपता गु० | १८ |
| विले शयों की गरा ना | ९ | नाम गुण | २१ | गरई गु० | १९ |
| गुण ॥ | १० | मंडक ना० गु० | २२ | मङ्गरी गु० | २० |
| गुहा शयोंकी गरा ना | ११ | पादियोंमें ककुवा | २३ | देङ्ग रा गु० | २१ |
| गुण ॥ | १२ | तन काल हतके मांस | २४ | सफ़री पाठी गु० | २२ |
| परी सुगोंकी ग० गु० | १३ | का नाम गुण ॥ | २५ | छोटी मछ लियोंके गु | २३ |
| विक्रि में की ग० गु० | १४ | स्वयं सृतके मांसका | २६ | बहुत छोटी मछ लियों | २४ |
| प्रतुदोंकी गरा ना गु० | १५ | गु० दोष ॥ | २७ | के गुण ॥ | २५ |
| प्रसहा की ग० गु० | १६ | रुहवालके मांस का | २८ | मछलियों के अंडके | २६ |
| कूले चरोंकी गरा गु० | १७ | दोष गुण ॥ | २९ | गुण ॥ | २७ |
| सु वोंकी ग० गु० | १८ | दियादि से सृतके मां | ३० | सूकी मछ लियों के गु | २८ |
| कोषास्थोंकी ग० गु० | १९ | सका दोष ॥ | ३१ | दग्ध मांसके गु० | २९ |
| पादियोंकी ग० गु० | २० | मछलियोंमें रोहूके गु | ३२ | कूप आदि के मछ लि | ३० |
| मछलियोंके ना० गु० | २१ | सिलंधा गु० | ३३ | यों का गुण ॥ | ३१ |
| जाङ्गला दियोंके ना गु० | २२ | भाकुर गु० | ३४ | अतु विशेषमें मांस्य | ३२ |
| पक्षियोंके नाम गुण | २३ | मोचिका गु० | ३५ | विषय गु० | ३३ |

| | | | | | |
|----------------------|----|----------------------|----|----------------------|----|
| अननर कृतान्न वर्गः | २२ | सूडू वटी गु० | २२ | नीम्बू का पत्ता गु० | ५३ |
| उसमें अन्नका साधन | २२ | क्षारिक वच्छ गु० | ३७ | धनिया का पत्ता गु० | २२ |
| प्रकार ॥ | २२ | कडी ना गु० | २२ | काजी का गु० | २२ |
| और सिद्ध हुवा का गु० | २२ | अद्रक वटिका | ३८ | जारी गु० | २२ |
| परिभाषा | २२ | पकाडियां गु० | ३५ | तक गु० | ५४ |
| भात के नाम और साध | २३ | गम मगना गु० | ५० | दुग्ध गु० | २२ |
| न गुण ॥ | २३ | संहुड गु० | ४१ | सजू के गु० | ५५ |
| दाल के नाम गुण | २३ | अखनी गु० | ४२ | जव के सजू का गु० | २२ |
| सिचडी नाम गु० | २३ | शोरू वा गु० | ४३ | चने के सजू का गु० | २२ |
| खीर के ना गु० | २५ | तले हुवे मांस का गु० | ४२ | चावल के सजू का गु० | ५६ |
| सेवई ना गु० | २५ | सीरव गु० | ४३ | बहुरी गु० | ५६ |
| मगडा ना गु० | २५ | मांस शृगाव गु० | ४३ | खीलों का गु० | २२ |
| लोई ना गु० | ३० | मांस रस गु० | ४३ | चिडवा गु० | ५७ |
| दुधोरी ना गु० | ३१ | शाक पाक विधि | ४४ | होला गु० | २२ |
| लपसी ना गु० | ३१ | माठ के गु० | ४४ | ऊंठी गु० | २२ |
| रोटी नाम गु० | ३२ | सपाव पराक गु० | ४५ | घुबनी गु० | २२ |
| अंगा कडी गु० | ३२ | कर्पूर नालि गु० | ४५ | तिल कुट गु० | ५८ |
| जव रोटी | ३२ | फेनी गु० | ४६ | खल ना गु० | २२ |
| उडद की रोटी गु० | ३२ | सोहाली गु० | ४७ | चावल गु० | २२ |
| चने की रो गु० | ३३ | सेवका लाडू गु० | ४७ | इति कृतान्न वर्गः | २२ |
| पिट्टी गुण | ३३ | मोती लाडू गु० | ४७ | अथ वारि वर्गः | ५४ |
| विटई गु० | ३३ | फार्फरी गु० | ४८ | पानी के नाम और गु० | २२ |
| पापड़ गु० | ३३ | सेवके लडू गु० | ४८ | उनके भेद | २२ |
| पूरी गु० | ३४ | दूध कूपिका गु० | ४८ | उनमें धारणा का ल | २२ |
| बडा ना गु० | ३४ | जलेबी गु० | ४९ | क्षरातीर गुण ॥ | ५ |
| काजी बडा ना गु० | ३५ | सिरवन गु० | ५० | अननर धारा जलके | ६० |
| ऊनी बडा गु० | ३६ | सरबत गु० | ५० | भेद ॥ | ५ |
| सूडू की बडियां | ३६ | पश्राके गु० | ५१ | उनमें गंगा और समुद्र | ५ |
| कडू व की बडियां | ३६ | दमली का गु० | ५२ | के जल का गु० ना | ५ |
| कोह डोरी गु० | ३६ | | ५२ | वे ऋतु के जल का गु० | ६१ |

| | | | | | |
|------------------------|----|------------------------|----|----------------------|-----|
| ओलों के जल का ल० गु० | ६२ | करने का उपाय ॥ | ७५ | सवरे के दूध का गु० | ७७ |
| पालाका ल० गु० | ६३ | पीये हुवे जल की पाक | ७६ | दुग्ध सेवन समय वि | ७८ |
| वरक के पानी का ल० गु० | ६३ | विधि ॥ इति वारि वर्ग | ७६ | शेष और गु० | ७९ |
| भूमि के जल का भेद | ६४ | अथ दुग्ध वर्गः | ७६ | दिलोये हुवे दूध गु० | ८० |
| और उनके ल० गु० | ६४ | दूध के ना० गु० | ७७ | गायके दू० का० गु० | ८१ |
| नदी आदि के जल का | ६५ | गायके दूध का गु० | ७७ | निन्दित दुग्ध गु० | ८२ |
| लक्षण गुण ॥ | ६५ | वर्ग विशेष में गुण वि | ७७ | इति दुग्ध गु० | ८२ |
| औदभिद का ल० गु० | ६६ | शेष ॥ | ७८ | अनन्तर दही का गु० | ८६ |
| भरने के जल का ल० गु० | ६६ | बे बछुडे वाली माय | ७८ | दधि भेद | ८७ |
| सारस जल का ल० गु० | ६७ | के दूध का गुण ॥ | ७९ | मन्द आदि दधि के | ८८ |
| नालाव के ज० ल० गु० | ६७ | वाखडी गाय के दूध | ८० | ल० गु० ॥ | ८९ |
| वावडी के ज० ल० गु० | ६८ | का गुण ॥ | ८० | गायके दही का गुण | ९० |
| कुवे के पानी का ल० गु० | ६८ | देश विदेश में गुण वि | ८० | शेष विशेष और रोग | ९१ |
| चीञ्ज का ल० गु० | ६९ | शेष ॥ | ८१ | विशेष में तक्र विशेष | ९२ |
| गढे के पानी का ल० गु० | ६९ | भोजन विशेष में गुण | ८१ | भैसके दही का गु० | ९३ |
| चिकिर जल ल० गु० | ७० | विशेष ॥ | ८२ | बकरी के दही का गु० | ९४ |
| केदार के ज० ल० गु० | ७० | भैसके दूध का गु० | ८२ | पकारे हुवे दूध के द | ९५ |
| वरया ज० के ल० गु० | ७१ | बकरी के दूध का गु० | ८३ | ही का गुण ॥ | ९६ |
| अनन्तर हे मन्नादिका | ७१ | मृग आदिके दूध गु० | ८३ | वे मलाई के दूध के | ९७ |
| ल विरोध में विहित | ७१ | भेडी दूध गु० | ८३ | दही का गुण | ९८ |
| जल विशेष ॥ | ७१ | घोडी के दू० का गु० | ८३ | निचोडी दही का गु० | ९९ |
| जल ग्रहण का ल० | ७२ | ऊंटनी के दू० का गु० | ८४ | शर्करा आदि मिले हुवे | १०० |
| जल की पान विधि | ७२ | हथनी के दूध का गु० | ८४ | दही का गुण ॥ | १०१ |
| शीतल जल पान का | ७२ | खी दुग्ध गु० | ८४ | रात में दधि भोजन नि | १०२ |
| विषय ॥ | ७२ | धारोया दुग्ध का गु० | ८४ | बेध ॥ | १०३ |
| जल पान की आवश्यक | ७२ | पीयूष किलाट क्षीर | ८५ | अनन्तर ऋतु विशेष में | १०४ |
| कता ॥ | ७२ | प्राक् तक्र पिंड मौर त | ८५ | विधि निबेध ॥ | १०५ |
| प्रसात्त जल | ७३ | इन का ल० गु० | ८६ | सरमस्तु का ल० गु० | १०६ |
| निन्दित जल | ७३ | मलाई के गु० | ८६ | इति दधि वर्गः | १०७ |
| दुग्ध जल का निर्देश | ७३ | मीठे दूध का गु० | ८६ | अथ तक्र वर्गः | १०८ |

| | | | |
|------------------------|----------------------------|---------------------------|-----|
| तक्र सेवन के निमित्त | इति मूत्र वर्गः | का उपाय ॥ | |
| तक्र विषया | अथ तैल वर्गः | इति सन्धान वर्गः | |
| गो आदिके तक्र कायु | तैल का स्वरूप निरूपण | अथ मधु वर्गः | |
| इति तक्र वर्गः | ४५ तिल तैल गु० | मधुके ना० गु० | |
| अथ माखन वर्गः | सरसों राई तैल गु० | १०४ मधुके भेद | ११६ |
| माखन के ना० गु० | तोरी तैल गु० | १०५ उनके ल० गु० | |
| भैंसेके माखन का गु० | ४६ भलसी तैल गु० | माक्षिक का गु० | |
| दूधके माखन का गु० | ४६ कुसुंभ तैल गु० | १०६ श्वामर काल० गु० | |
| नाजे माखन का गु० | पोस्त के तैल का गु० | क्षौद्र काल० गु० | ११७ |
| वासी माखन का गु० | अंडी तैल गु० | पौतिक काल० गु० | |
| इति माखन वर्गः | राल तैल गु० | १०७ खूब काल० गु० | ११८ |
| अथ घृत वर्गः | ४७ सर्व तैल गु० | आर्य काल गु० | |
| उसमें घृत के ना० गु० | इति तैल वर्गः | १०८ औद्दाल काल० गु० | ११९ |
| गायके घृत का गु० | अथ सन्धान वर्गः | दाल काल० गु० | |
| भैंसेके घृत का गु० | ४८ उनमें कांजी काल० गु० | नव पुराण मधु गुण | १२० |
| बकरीके घृत का गु० | जुबा दक काल० गु० | शतिल मधु का गुण | |
| ऊंटनीके घृत का गु० | सोवीर काल० गु० | १०९ धिक्क और उष्ण कानि | |
| भेड़के घृत का गु० | आरनाल काल० गु० | षेध ॥ | |
| खी घृत गुण | ४९ घान्याम्ल काल० गु० | ११० नोम गु० | १२१ |
| घोड़ीके घृत का गु० | पिंडा की काल० गु० | इति मधु वर्गः | |
| दूधके घृत का गु० | शुक्र काल० गु० | अथ ईरत का वर्गः | |
| हथनीके घृत० गु० | सन्धान काल० गु० | ईरतके ना० गु० | |
| पुराने घृत का गु० | ५० मद्य का ना० ल० गु० | १११ ईरतके भेद | १२२ |
| नवीन घृत का गु० | ३०० अरिष्ट का ना० ल० गु० | ११२ श्वेत पौंडा आदिके गु० | |
| जिसमें घृत न देना चाहि | सुरा पान काल० गु० | ईरतके रसके पदार्थ | १२५ |
| ये उसका विषय ॥ | ५१ बारुणी काल० गु० | का गुण ॥ | |
| इति घृत वर्गः | दोनों सीधू काल० गु० | ११३ राव काल क्षण गु० | |
| अथ मूत्र वर्गः | १०१ आसव काल० गु० | ११४ खांड काल० गु० | १२६ |
| गो मूत्र गुण | नव पुराण मधु गुण | ११५ गुड़ काल० गु० | |
| सातुव भेद गु० | १०२ मर्चा के गन्ध दूर होने | ११६ पुराने गुड़ काल० गु० | |

| | | | | | |
|------------------------------|-----|------------------------------|-----|----------------------|-----|
| नये गुड़ काल० गु० | १२७ | वह का विधि | १५२ | अयोग्य ताम्र | ११ |
| चीनी काल० गु० | १२८ | घृत तैल की विधि | १५३ | शोधन विधि | १२ |
| गुड़ शक्कर का गु० | १२९ | व्यवहार मात्रा | १५४ | ताम्र की मारणा विधि | १३१ |
| मधुखंड का गु० | १३० | पुनर्विषेय | १५५ | ताम्र के भस्म का गु० | १३२ |
| इति वस्त्र का गु० | १३१ | सन्धान विधि | १५६ | रंग का स्वरूप निरू | १३३ |
| अथ अने कार्य नाम- वर्गः ॥ | १३२ | आसव अरिष्ट का त- | १५७ | परा ॥ | १३४ |
| उनमें दो अर्थ वाले नाम | १३३ | सामान्य से अरिष्ट विधि | १५८ | अशुद्ध उस्का दोष | १३५ |
| तीन अर्थ वाले नाम | १३४ | अथ धातु बोके शोधन | १५९ | राइ की मारणा विधि | १३६ |
| बहुत अर्थ वाले नाम | १३५ | मारणा विधि ॥ | १६० | राइ के भस्म का गुणा | १३७ |
| अथ मान परिभाषा | १३६ | उसमें मारणा योग्य सुवर्ण | १६१ | सीसे का शोधन | १३८ |
| मागध मान | १३७ | अशुद्ध सुवर्ण का दोष | १६२ | | १३९ |
| कालिंग मान | १३८ | सुवर्ण की मारणा विधि | १६३ | | १४० |
| द्विती मान परिभाषा | १३९ | इसमें दूसरा प्रकार | १६४ | अशुद्ध लोह का दोष | १४१ |
| ओषधियों का विधान | १४० | सुवर्ण भस्म का गु० | १६५ | लोह की मारणा विधि | १४२ |
| स्वरस विधि | १४१ | तन्त्र भेद में पुट प्रकार | १६६ | लोह भस्म का गुणा | १४३ |
| मंडूल जल विधि | १४२ | महापुट | १६७ | उप धातु बोके मारणा | १४४ |
| हिम विधि | १४३ | तन्त्र भेद में यन्त्र प्रकार | १६८ | प्रकार ॥ | १४५ |
| मन्य विधि | १४४ | मानक यन्त्र | १६९ | अशुद्ध सोना मारवी का | १४६ |
| फाट विधि | १४५ | दोना यन्त्र | १७० | दोष ॥ | १४७ |
| कल्क विधि | १४६ | स्वेदन यन्त्र | १७१ | मारणा विधि | १४८ |
| चूर्ण विधि | १४७ | विद्या धर यन्त्र | १७२ | रूपा मारवी का शोधन | १४९ |
| भादना विधि | १४८ | सूधर यन्त्र | १७३ | मारणा विधि | १५० |
| पुट पाक विधि | १४९ | डमरू यन्त्र | १७४ | उनके विषेय गु० | १५१ |
| उष्णो द्रव विधि | १५० | मारणा योग्य रूय | १७५ | लीले थोथे का शोधन | १५२ |
| क्षीर पाक विधि | १५१ | उसमें अयोग्य | १७६ | शुद्ध का गुणा | १५३ |
| क्वाथ विधि | १५२ | शोधन विधि | १७७ | मारणा विधि | १५४ |
| काहे की मान मात्रा | १५३ | अशुद्ध चान्दी का दोष | १७८ | सिन्दूर का शोधन | १५५ |
| नव्रान्न रोज | १५४ | उसमें दूसरा प्रकार | १७९ | अथ गु० | १५६ |
| अवलेह विधि | १५५ | चान्दी के भस्म का गु० | १८० | शिला जिन शोधन | १५७ |
| | | मारणा योग्य ताम्र | १८१ | शोधन योग्य | १५८ |

| | | | | | |
|------------------------|-----|--------------------|-----|---------------------|-----|
| दूसरा प्रकार | १२५ | अधक भस्म के गु० | १०० | विषके गुण | १०० |
| हारीतका काहा हुआ | १२६ | अशुद्ध हरनाल का | २०२ | उप विषके लक्षण | २०४ |
| प्रकार ॥ | ५ | दोष ॥ | ५ | गुण वाले द्रव्योंकी | १०० |
| शुद्ध शिला जीतका गु | १२७ | उसकी मारणा विधि | १०० | अंशुधि | १५० |
| पारेकी शोधन विधि | १२८ | शुद्ध हरनाल भस्मके | २०३ | घृततेल में विशेष | १०० |
| सूचने | १२९ | गुणा ॥ | ५ | स्नेह पान विधि | २३० |
| उद्ध पानन | १३० | अशुद्ध मैंग सिलके | १०० | पंच कर्म | २३१ |
| अधः पानन | १३१ | दोष ॥ | ५ | वमन विधि | १०० |
| सुरभ्य दोष हर शोध- | १३२ | उस्की शोधन विधि | २०४ | विरेचन विधि | २३२ |
| न विधि ॥ | ५ | स्वपरियाकी शोधन | १०० | स्नेह वस्ति विधि | २३० |
| सर्व दोष हर से क्षिप्र | १३३ | विधि ॥ | ५ | अष्टा दश दिवसमें | २३८ |
| शोधन विधि | ५ | उस्का गुण | १०० | आधिक वस्ति ॥ | ५ |
| पारेकी मारणा विधि | १३४ | सब उप रसों की सा- | २०५ | निरुद्ध वस्ति विधि | २४० |
| दूसरा प्रकार | १३५ | धो रणा शोधन विधि | २०५ | उत्तर वस्ति विधि | २४७ |
| रस कपूरकी विधि | १३५ | उस्में विशेष | १०० | फलवर्ति विधि | २४४ |
| सिन्दूर रस | १३६ | शुद्ध उप रसोंके जल | १०० | नास लेनेकी विधि | १०० |
| मृच्छित्त पारेकी विधि | १३७ | ग गुणा ॥ | ५ | विरेचन नास | २५३ |
| उपरसोंकी शोधन वि | १३८ | रत्नों की शोधन मार | २०६ | दुहारा नास | २५५ |
| उस्में हिं गुलकी शोध | १३९ | णा विधि ॥ | ५ | घूब पान नास | २६१ |
| न विधि ॥ | ५ | हीरेके दोष | १०० | गरारा कवल और | २६४ |
| शुद्ध हिं गुलके गु० | १४० | हीरेकी शोधन विधि | १०० | मंजन विधि | ५ |
| हिं गुलसे पारा निका | १४१ | हीरेकी मारणा विधि | १०० | उस्में ठनके सेद | २६५ |
| लनेकी विधि ॥ | ५ | भस्म करनेकी दूसरी | १०० | गरारा | १०० |
| अशुद्ध गन्धक का दोष | १४२ | विधि ॥ | ५ | कवल | २६६ |
| शोधन विधि ॥ | १०० | हीरेके भस्म का गु० | २०७ | मंजन | २६७ |
| शुद्ध गन्धक के गु० | १४३ | वाकी रत्नोंकी शोध | १०० | सेद विधि | १०० |
| अशुद्ध अधक का दो | २०० | न मारणा विधि ॥ | ५ | ताप सेद | २०० |
| उस्की शोधन विधि | १०० | दियोंकी शोधन विधि | १०० | उष्ण सेद | १०० |
| उस्का मारणा | १०० | दच नामक लक्षण | २०८ | उप नाह सेद | १०० |
| ध्यायक की विधि | २०९ | विषकी शोधन विधि | १०० | द्रव्य सेद | १०० |

| | | | | | |
|--------------------------|-----|---------------------------|-----|----------------------|-----|
| पक्षान्तर | २२ | द्वितीयकाल | २२ | कफप्रकोप का कारण | ३२२ |
| मूर्च्छ तैल विधि | २७५ | तृतीयकाल | ३०३ | रोगके हेतु रोग का | ३२४ |
| करा विधि | २७७ | चतुर्थकाल | २२ | वैचित्र्य ॥ | * |
| लेपविधि | २२ | पंचमकाल | २२ | क्षीरादीय धातुमलों | २२ |
| आलेप | २८० | निरन्न औषधकागु | ३०४ | की चिकित्सा | * |
| रक्तखावविधि | २२ | साभ्र औषधकागु | २२ | स्वस्थकाल | ३२५ |
| प्रसादन कर्म्म | २८७ | चरकोक्त औषध - | ३०५ | दीय धातुमलों की वृ | ३२७ |
| कल्पविधि | २८७ | लक्षणा विधि ॥ | * | द्धिका निदान ॥ | * |
| सैकविधि | २२ | चिकित्सा र्थ रोगीकी | ३०६ | बहुत बढे हुवे उनके | २२ |
| आश्रोतन विधि | २८८ | परीक्षा ॥ | * | लक्षणा ॥ | * |
| पिंडी विधि | २८६ | तन्वान रादि मेंनेत्र | ३०७ | अग्नि रुद्ध दीयमलों | २२ |
| विडालकविधि | २२ | परीक्षा ॥ | * | का कर्षण ॥ | * |
| तर्पण विधि | २८६ | जिह्वा परीक्षा | ३०८ | दीय धातुमलके क्ष- | २२ |
| पुटपाक विधि | २८३ | मूत्र परीक्षा | २२ | यका कारण ॥ | ३३३ |
| तिक्तक द्रव्य | २८४ | माडी परीक्षा | २२ | क्षीरा उनके ल० | २२ |
| अंजन विधि | २२ | रोग ज्ञान लक्षणादि | ३३० | ओज क्षय का निदान | ३३३ |
| लेखनी वरी | २८७ | हेतु कालक्षणा ॥ | * | क्षीरा ओज वाले का | २२ |
| चन्द्रो दया वर्ति लेखनी | २२ | उर्से हेतु व्याधियों के | ३१३ | लक्षणा ॥ | * |
| रोपणी वर्ति | २८८ | ज्ञान र्थ संप्राप्ति काल | * | उदर संकोच | २२ |
| स्नेहनी वर्ति | २२ | उर्से औमाधिकभेद | ३१२ | क्षीरा दीय धातुमलों | ३३४ |
| रस क्रिया लेखनी | २२ | संप्राप्ति व्याधिके ज्ञा- | २२ | का वर्धन ॥ | * |
| रोपणी रस क्रिया | २८४ | नार्थ हेतु ॥ | ३१४ | क्षीरा होने में कारण | २२ |
| स्नेहनी रस क्रिया | २२ | लक्षणाका लक्षणा | ३१६ | उभ्रुत भनमेवल ल- | ३३७ |
| लेखनी चूर्ण | २२ | उप शम का लक्षणा | २२ | क्षणा ॥ | * |
| रोपण चूर्ण | ३०० | वात का उप शम | ३१७ | वल क्षय निदान | २२ |
| स्नेहन चूर्ण | २२ | पित्त का उप शम | २२ | बल क्षय का लक्ष० | २२ |
| मन्यञ्जन विधि | ३०३ | कफ का उप शम | २२ | बल रुद्धि निदान | ३३८ |
| दृष्टि प्रसा दनी प्रालास | ३०५ | पित्तके प्रकोप का | ३२५ | बला वल लक्षणा | २२ |
| औषध सेवन काल | २२ | कारणा ॥ | * | इति० | २२ |
| प्रथमकाल | २२ | विदाही लक्षणा | २२ | | |

चूर्चीपत्र

भाव प्रकाशके मध्य खण्ड का

प्रथमो भागः-

| | | | | | |
|----------------------|--------|------------------------|----|--------------------------|----|
| प्रकरणा | पृष्ठा | सुश्रुतादिनन्त्र और | २२ | ऋतु पक्क जलका वि | ३१ |
| प्रथम ज्वर का अधि | १ | नन्त्रान्तरमें नियेध ॥ | ५ | षय भेदमें शीतल पान | ५ |
| कार ॥ | ५ | आमका लक्षणा | २३ | विधि ॥ | ५ |
| ज्वर की उत्पत्ति | ५ | आम सहित वात का- | ५ | और किंशीतल किये | ३२ |
| ज्वर की मूर्ति | २ | लक्षणा ॥ | ५ | हुवे जलका गुणा ॥ | ५ |
| ज्वर की संख्या रूप | ३ | निराम वात का ल० | २४ | उत्समें विशेष यान्तर | ५ |
| संप्राप्ति ॥ | ५ | साम यित्त का ल० | ५ | काल विभाग भेदमें- | ३३ |
| विप्र कृष्ट कारणा- | ५ | निराम यित्त का ल० | २५ | उपयोग दक काल क्ष | ५ |
| कथन पूर्विक संप्रा | ५ | साम कफ का ल० | ५ | णान्तर ॥ | ५ |
| प्ति ॥ ॥ ॥ ॥ | ५ | आमकी विक्रिस्ता | ५ | उत्क्रा गु० | ५ |
| ज्वर का सामान्य वि | ५ | संघन में भी जल या | २६ | जठरगिनसे शीतल- | ३४ |
| शेष पूर्व रूप ॥ | ५ | न विधि ॥ | ५ | आदि जलोंका पाक- | ५ |
| द्वन्द्व ज पूर्व रूप | ८ | अल्प जल पानविधि | २७ | काल की अवधि ॥ | ५ |
| त्रिदोयज पूर्व रूप | ५ | रोग विशेष में शीतल | ५ | रोग विशेष में जल | ३५ |
| ज्वर का सामान्य ल० | ५ | और उष्ण जल की- | ५ | संस्कार ॥ | ५ |
| फलीता नही ने में का- | ६ | विधि नियेध ॥ | ५ | उत्समें नन्त्रान्तरसे वि | ५ |
| रणा ॥ ॥ ॥ ॥ | ५ | उष्ण जलका विधान | २८ | स्तर ॥ | ५ |
| सामान्य से ज्वर की | १० | उष्णो दक का लक्ष० | ५ | पडङ्ग जल विधि | ३६ |
| चिक्रिस्ता ॥ | ५ | ऋतु भेद में जल या | २९ | वातादि ज्वरों की पाक | ४० |
| ज्वर में वर्जनीय | ११ | क भेद ॥ | ५ | विधि ॥ | ५ |
| लंघन का फल | १२ | दोषों की जैसे अधि | ५ | ज्वर में औषध प्रयोग | ४१ |
| अच्छी तरह किये हुवे | १४ | क ता वाहीन ता हीवे | ५ | काय लक्षणा | ४६ |
| लंघन का लक्षणा | ५ | वैसे व्यवस्था कल्प | ५ | तरुण ज्वर में पाक | ५ |
| हीन लंघन का लक्ष० | २० | ना करे ॥ | ५ | का दोष ॥ | ५ |
| बहुत लंघन किये का | ५ | ऋतु भेद में जल यह | ३० | पाचन शक्तियों का ल० | ५० |
| लक्षणा ॥ | ५ | एकेकाले देश भेद ॥ | ५ | सामान्य ज्वर में पाक | ५१ |

| | | | | | |
|---------------------------------------|----|---|-----|--------------------------------|-----|
| नकयाय ॥ | x | रसो दन विधि | ८६ | कसंप्राप्ति ॥ | x |
| सामान्य से संशाम नीय ॥ | ५२ | रसो दन गु० | ६० | पित्त ज्वर का पूर्व रूप | ११८ |
| पाक प्रकार | x | उसकी प्रक्रिया | ११ | उस्का पूर्व रूप | ११९ |
| शोधन साध्य रोग | ५३ | औषध सिद्ध पेयाके गुण ॥ ॥ ॥ ॥ | ६१ | पित्त ज्वर की चिकि० | ११५ |
| सावान्तर | ११ | पंच मुखिक यूष | x | औषध धावली | ११६ |
| निविद्ध शोधन शमन | ५६ | खिलोके सन्का गु० | ६४ | इति पित्त ज्वराधि कार ॥ | १२० |
| सावान्तर योग विस्तर | ११ | ज्वर नाशक फल | ६५ | कफ ज्वराधि कार | १२१ |
| नव ज्वर में रस | ६४ | ज्वर वाले के नियम | ६६ | कफ ज्वर का ल० | १२२ |
| सामान्य ज्वर में रस | ६८ | ज्वर मुक्त काल० | ६७ | उसकी चिकित्सा | १२३ |
| ज्वर वाले को अन्न दे ने का समय ॥ | ७५ | ज्वर मुक्त के नियम | ६८ | इति कफ ज्वराधि कार | १२४ |
| अन्न ग्रहण के अर्थ स्थान ॥ ॥ ॥ ॥ | x | वात ज्वर का अधिकार | १०० | वात पित्त ज्वराधि कार | १२५ |
| भोजन के अर्थ उप वे शन प्रकार ॥ | ७४ | वात ज्वर का सन्नि क | १०१ | उस्का पूर्व रूप | १२६ |
| ज्वर वाले के अर्थ हिन अन्न ॥ ॥ ॥ ॥ | x | दृविप्र कृष्ट कारण पू र्विक संप्राप्ति ॥ | x | वात पित्त ज्वर का ल० | १२७ |
| अन्न साधन प्रक्रिया | ८३ | उसका पूर्व रूप | x | उस्की चिकित्सा | १२८ |
| मंडकाल० विधि गु० | ८४ | बात ज्वर का ल० | १०२ | इति वात पित्त ज्वराधि कार ॥ | १२९ |
| पेया की विधि गु० | ८५ | बात ज्वर की चिकित्सा | १०३ | वात कफ ज्वर का अ धिकार ॥ | x |
| प्रमथ्या कि विधि गु० | ८६ | विशेष कथन पूर्व क औषध ॥ | १०४ | पूर्व रूप | १३० |
| यूष की विधि गु० | ८७ | निद्रानाश का निदान | x | उस्का लक्षण | १३१ |
| जूस का दूसरा प्रकार | ८८ | उस्की चिकित्सा | ११० | वात कफ ज्वर की वि कित्सा ॥ | १३२ |
| सूङ्ग के जूस की वि० | ८९ | वाकी कथना दि पूर्व क चिकित्सा ॥ | १११ | इति वात कफ ज्वरा धि कार ॥ | १३३ |
| मूङ्ग के जूस का गु० | ९० | इति वात ज्वराधि का र ॥ ॥ ॥ ॥ | ११२ | पित्त कफ ज्वर का अ धिकार ॥ | x |
| मसूर के जूस का गु० | ९१ | अथ पित्त ज्वर का अधिकार ॥ | ११३ | पूर्व रूप | १३४ |
| पवायु आदिकी वि० गु० | ९२ | उसमें उस्का विप्रकृत सन्नि कृष्ट कथन पूर्व | ११४ | उस्का ल० | १३५ |
| विले पीकी वि० गु० | ९३ | | x | पित्त कफ ज्वर की चि | १३६ |
| भातकी विधि गु० | ९४ | | x | | |

| | | | | | |
|----------------------|-----|--------------------|-----|-----------------------|-----|
| द्विः ॥ | * | लघनकी अवधि | १६४ | तन्त्रिककी चिकित्सा | १६० |
| इति पि० क० | १३४ | हननप्रशामककार | १६५ | प्रलापकीचिकित्सा | १६१ |
| तीक्ष्णपातज्वराधिकार | १३५ | रा ॥ | * | रक्तघ्नीचिकीचि० | १६२ |
| उस्कापूर्वरूप | १३६ | धातुपाककालः | १६६ | भुग्ननेत्रकीचि० | १६३ |
| उस्केसामान्यल० | १३७ | मलपाककाल० | १६७ | आभिन्यासकीचि० | १६४ |
| सामान्यसन्निपातज्वर | १३८ | वालूकास्वेद | १६८ | जिह्वकीचि० | १६५ |
| केनेरहभेद॥ | * | नासकेभेद | १६९ | अन्तककीचि० | १६६ |
| वाताधिककाल० | १३९ | निष्ठीवन | १७० | रुग्णहृत्कीचि० | १६७ |
| पित्ताधिककाल० | १४० | अवलेहभेद | १७१ | चित्तध्रमकीचि० | १६८ |
| कफाधिककाल० | १४१ | अथ भोजन | १७२ | कंठकुञ्जकीचि० | १६९ |
| वातपित्ताधिककाल० | १४२ | घ्राणभेद | १७३ | इतिसन्निपातज्वर | १७० |
| वातकफाधिककाल० | १४३ | सन्निपातज्वरमें | १७४ | धिकारः ॥ | * |
| पित्तकफाधिककाल० | १४४ | सभेद॥ | * | आगन्तुज्वराधिकार | १७१ |
| वातपित्तकफाधिक | १४५ | शीतज्वरमें | १७५ | उस्का निदान | १७२ |
| कालक्षरा ॥ | * | रसभेद | १७६ | उस्कीसंप्राप्ति | १७३ |
| प्रवृद्धमध्यहीनवाता | १४६ | वाताधिकसन्निपा | १७७ | उनकीचिकित्सा | १७४ |
| दिजनिमसन्निपातज्व | * | तज्वरकीचिकित्सा | * | इतिआगन्तुज्वराधि | १७५ |
| सेकेलक्षरा ॥ | * | पित्ताधिकसन्निपात | १७८ | कारः ॥ | * |
| तेरहसन्निपातविषे | १४७ | ज्वरकीचिकित्सा ॥ | * | विषमज्वराधिकार | १७६ |
| योकेशीताद्ग्नदिने | * | कफाधिकसन्निपा | १७९ | उस्का निदानसंप्राप्ति | १७७ |
| रहनाम ॥ | * | तज्वरकीचिकित्सा | * | विषमज्वरकासामान्य | १७८ |
| तन्वानरमेवात्राधिक | १४८ | वातपित्ताधिकस- | १८० | न्यलक्षणा ॥ | * |
| नेरहसन्निपातकेकुं | * | विपातज्वरकीचि- | * | सन्नतकाल | १७९ |
| भीयाकादिनेरहना- | * | कित्सा ॥ | * | समनलक्षणा | १८० |
| मलक्षरा ॥ | * | प्रवृद्धमध्यहीनवा | १८१ | अन्यदुष्कल० | १८१ |
| उत्तररक्तकेल० | १४९ | तादिसन्निपातज्व | * | निजारीऔरवीषेया | १८२ |
| असाधसन्निपात | १५० | रोंकीचिकित्सा ॥ | * | कालक्षरा ॥ | * |
| ज्वराल० | * | शीताद्ग्नदिनेरहस- | १८३ | द्विदोषाधिकवृत्ती | १८३ |
| सामान्यसन्निपात | १५१ | न्निपातज्वरोंकीचि- | * | यककालक्षरा ॥ | * |
| ज्वरकीचिकित्सा | * | शीताद्ग्नकीचि० | १८४ | कफाधिकऔरवाता | १८४ |

| | | | | | |
|--------------------------|-----|------------------------|-----|----------------------|-----|
| धिक् चतुर्थकके विप | × | शुक्रगत का ल० | ॥ | कष्ट साध्य ज्वर काल० | ॥ |
| र्य्ययकाल० | × | अथ जीर्ण ज्वर का- | ॥ | वसपित्त ज्वरकी चि० | ॥ |
| सन्न तादि चोंके दाह पू | २२६ | अधिकार ॥ | × | असाध्य ज्वर काल० | ॥ |
| र्व और शीत पूर्व होनेमें | × | जीर्ण ज्वर का सामा | ॥ | सामान्य | ॥ |
| कारणा ॥ | × | न्य लक्षणा ॥ | × | मूल शीथ में सुख- | × |
| वियमज्वर विशेष | २२७ | जीर्ण ज्वर का ही वि- | ॥ | साध्य त्वादिक ॥ | × |
| वियमज्वर विशेष प्र- | ॥ | शेष वात बलासक- | × | गंभीर ज्वर काल० | ॥ |
| लेपक काल० | × | कालक्षणा ॥ | × | अरिष्ट | ॥ |
| वियमज्वरों की सामा | २२८ | जीर्ण ज्वर की सामा- | २४४ | दूसरा अरिष्ट | २६३ |
| न्य चिकित्सा ॥ | × | न्य चिकित्सा ॥ | × | द्विज्वराधिकारः ॥ | २६३ |
| सन्न तादि चोंकी विशेष | २३१ | दुर्ज्वल जल से हुवे | २४७ | अथ अती सार अधिका | ॥ |
| य चिकित्सा ॥ | × | ज्वरकी चि० | × | अती सारके निदाने | ॥ |
| अन्न | ॥ | साध्य ज्वरस्य लक्षणा | २५० | उस्का पूर्वरूप | २६५ |
| सन्नतादि योंकी विशेष | २३३ | ज्वरके उपद्रव | ॥ | उस्की संप्राप्ति | २६६ |
| य चिकित्सा ॥ | × | उपद्रवों की चिकित्सा | ॥ | उस्का सामान्य लक्षण | ॥ |
| सन्नतादि विपर्य्यय | २३४ | विशेष ॥ | × | उस्की संख्या | २६७ |
| वियमज्वरों की चि० | × | ज्वरमें प्रवास की चि० | ॥ | सामान्य अती सारकी | ॥ |
| रसादि धातुगत ज्वर | २४० | मूर्च्छा की चि० | २५२ | चिकित्सा ॥ | × |
| कालक्षणा ॥ | × | ज्वरके अरु चिकीचि० | २५३ | क्रम चिकित्सा | ॥ |
| उस्की चिकित्सा | २४१ | ज्वरके दमन की चि० | ॥ | आम पक्क काल० | ॥ |
| रक्तगत ज्वर | ॥ | ज्वरमें तुषाकी चि० | ॥ | योग चतुष्टय | २६८ |
| उस्की चिकित्सा | ॥ | अती सारकी चि० | २५४ | भैयज्या बलि | २६४ |
| मांसगत काल० | ॥ | ज्वरमें मल ग्रहकी चि० | २५५ | वाताती सार काल० | २७५ |
| उस्की चि० | २४२ | ज्वरमें हिचकीकी चि० | ॥ | उसकी चि० | ॥ |
| मेदो गत काल | ॥ | ज्वरमें दासकी चि० | ॥ | पित्तानी सार की ल० | ॥ |
| उस्की चि० | ॥ | ज्वरमें दाहकी चि० | २५६ | उस्की चि० | ॥ |
| अस्थिगत काल० | ॥ | सुख साध्य ज्वर काल० | ॥ | रक्ता ती सार काल० | २७६ |
| उस्की चि० | ॥ | वहिवेग ज्वर काल० | ॥ | उस्की संप्राप्ति | ॥ |
| मज्जागत काल० | २४३ | बर्षादिमें हुवोंकी चि० | २५७ | उस्की चिकित्सा | ॥ |
| उस्की चि० | ॥ | विशेषार्थ माधान्य | × | गुदाके दाह पाक की | २८० |

| | | | | | |
|--|-----|---|-----|----------------------------------|-----|
| गुदाकी पीडुमेंचि० | २०० | ज्वरातीसारकीचि० | २०० | याचिकनाईननिका | ५ |
| कफातीसारकाल० | २०२ | इतिज्वरा | ३०५ | लेहुवैतक्रकेयु० | ५ |
| उस्कीचिकित्सा | २०३ | ग्रहणीरोगाधिकारः | २०० | धामपकतक्रकेयु० | ३१५ |
| सन्धिपातकेअतीसारकाल० | २०३ | उस्कीसंप्राप्ति | २०० | तक्रकानियेध | २०० |
| उस्कीचि० | २०३ | ग्रहणीस्वरूप | २०० | उसकागुणोत्कर्ष | ३२३ |
| आगन्तुकशोकातीसारकाल० | २०६ | ग्रहणीरोगकासंख्या | ३०६ | इति०॥ | २०० |
| उस्कीसंप्राप्ति | २०६ | पूर्वकसामान्यल० | २०० | मध्यखण्डः॥ | |
| आगन्तुकभयातीसारकासं०ल० | २०८ | वातकीग्रहणीकानिदानसंप्राप्तिपूर्वकलक्षण॥ | २०० | द्वितीयोभागः | |
| दोनोंकीचि० | २०९ | पित्तकीकानिदानसंप्राप्तिपूर्वकलक्षण॥ | २०० | अर्शिकाअधिकार | १ |
| आमातीसारकीसंप्राप्तिपूर्वकल० | २१० | कफकीग्रहणीकानिदानपूर्वकसंप्राप्ति | २१० | अर्शिकासन्धिकृष्टनिदान॥ | २ |
| उसकीचिकित्सा | २११ | सन्धिपातकीग्रहणीरोगकीनिदानपूर्वकसंप्राप्ति॥ | २१० | वाताशंकाविप्रकृष्टनिदान॥ | ३ |
| शोचातीसारकीचि० | २१२ | संग्रहणीरोगकाल | २१० | पित्ताशंकाविप्रकृष्टनिदान॥ | ३ |
| धमनातीसारकीचि० | २१३ | घटीयुवनामग्रहणीरोग॥ | ३१३ | कफाशंकाविप्रकृष्टनिदान॥ | ४ |
| अतीसारकाभेदप्रवाहिकाउसकासंप्राप्तिपूर्वकल० | २१४ | सामान्यग्रहणीरोगकीचि० | २१४ | निदान॥ | ५ |
| उसकावातादिभेदरूपलक्षण॥ | २१५ | गोदधियु० | ३१२ | सन्धिपाताशंकाविप्रकृष्टनिदान॥ | ५ |
| उस्कीचि० | २१६ | मैसकीदहीकायु० | ३१३ | अर्शिकापूर्वरूप | ५ |
| असाध्यअतीसारवालेकालक्षणा० | २१७ | वकरीकेदहीकायु० | २०० | अर्शिकीसंप्राप्तिपूर्वकसामान्यल० | २०० |
| सुक्तअतीसारकाल० | २१८ | तक्रभेद | २०० | वाताशंकाकाल० | ६ |
| अतीसारवालेकेवर्जनीय॥ | २१९ | उसकेसामान्यसेयु० | ३१४ | पित्ताशंकाकाल० | ७ |
| इतिअतीसारअधिकारः॥ | ३०१ | चिकनाईनिकान्तेहुवेऔरथोड़ीचिकनाईनिकालेहुवेन- | ३१४ | रक्ताशंकाकाल० | ८ |
| | | | | रक्तकामीवाताधिककालक्षण॥ | १० |
| | | | | कफाधिककाल० | ११ |
| | | | | हृत्तजअर्शकाल० | १२ |

| | | | | | |
|-----------------------|----|---------------------------|----|-------------------------|----|
| सन्नि कृष्टकारण सह | ११ | सन्नि कृष्टकारण सह | ११ | कृष्ट निदान ॥ | ५ |
| न अर्श ल० | ५ | द्विज अजीर्णके भेद | ५ | कफज कृमियोंकी ल- | ११ |
| सुखसाध्य अर्शकाल | १३ | आमाजीर्णकाल | १० | भाग्नि पूर्वक ल० | ५ |
| कृष्टसाध्य अर्शकाल | १४ | विदग्ध अजीर्णकाल | ११ | रक्तकी कृमि | ६४ |
| साध्य अर्शकाल | १४ | विदग्ध अजीर्णकाल | ११ | मलकी कृमि | ११ |
| अभ्यन्तर वलिं | ११ | रस प्रोषा जीर्णकाल | १२ | कृमियोंकी चि० | १० |
| प्रत्येक असाध्य ल० | ११ | दुसके उपद्रव | ११ | पांडू रोगकामला ह- | १२ |
| अर्शका अरिष्ट | १५ | विसूची आदि रोग | ११ | लीमका अधिकारः | ५ |
| इनसे मिलित अर्श | ११ | विसूचीकी निरुक्ति | ११ | पांडू रोगका संख्या पु- | ११ |
| कालक्षणा ॥ | ५ | विसूचीकानिदान | १३ | वैक सन्नि कृष्ट निदान | ५ |
| लिं गार्शकाल | १६ | विसूचीकालक्षणा | ११ | विप्रकृष्ट निदान पूर्वक | १३ |
| सामान्य से अर्शकी चि० | ११ | विसूचीके उपद्रव | ११ | संप्राप्ति ॥ | ५ |
| रक्ता र्शकी चि० | १३ | अलसक ल० | ११ | उसका पूर्व रू- | १४ |
| द्विज अर्शोधिकारः | ३५ | विसूचि अलसक का | १४ | वातके पांडू रोगकाल | ११ |
| जठराग्नि विकार का | ११ | अरिष्ट ॥ | ११ | पित्तके पांडू रोगकाल | ११ |
| अधिकारः ॥ | ५ | दिल्लविकाल | ११ | कफके पां० रो० ल० | १५ |
| सन्नि कृष्टकार पूर्व- | ११ | जीर्ण आहारकाल | १५ | सन्नि पातके पांडू रोग | ११ |
| क उदराग्नि विकार | ५ | उसकी चि० | ११ | का लक्षणा ॥ | ५ |
| मन्दाग्नि काल | ११ | अजीर्ण में रस | १५ | सृष्टिकाके पांडू रोग- | ११ |
| तीक्ष्ण अग्नि काल | ११ | उच्छेप काल | ६० | की संप्राप्ति ॥ | ५ |
| विष माग्नि काल | १६ | विशिष्ट द्रव्या जीर्ण में | ६२ | उसका लक्षणा | १६ |
| समाग्नि काल | ११ | विशिष्ट पाचन ॥ | ५ | उस्का सामान्य ल० | ११ |
| मसक कानिदान सं- | ११ | द्विजठराग्नि विकार | ६६ | असाध्य ल० | ११ |
| भाग्नि पूर्वक ल० | ५ | अथकृमि अधिकारः | ११ | पांडू भेद कामला का | १० |
| मसकके उपद्रव अ- | ११ | उनके भेद और निदान | ६१ | निदान पूर्वक संप्राप्ति | ५ |
| रिष्ट ॥ | ५ | उनके लक्षणा | ११ | कामलाकाल | ११ |
| अजीर्णका विप्र कृष्ट | ११ | भीतरकी कृमि योंके | ११ | उसका भेद | १५ |
| निदान ॥ | ५ | विप्र कृष्ट निदान | ५ | कोष्टाश्रय कामला | ११ |
| अजीर्णका सामान्य | ३५ | उत्पन्न कृमिल० | ६० | कुम्भकामला बालोंका | ११ |
| लक्षणा ॥ | ५ | कफ कृमियोंके विप्र | ११ | अरिष्ट ल० | ५ |

| | | | | | |
|---|----|---|-----|--|-----|
| हेनों कामला वालों- का अरिष्ट ल० | ८० | अम्ल पित्त की अव- स्था विशेष ॥ | १०७ | व्यवाय शोधिका ल० | १२२ |
| हलीमक का ल० | ८१ | अम्ल पित्त दोष सं- सर्गः ॥ | १०८ | जरा शोधिका ल० | १२३ |
| सामान्य से उनकी चि० | ८२ | दोष भेद से ल० भेद | १०९ | मार्ग शोधिका ल० | १२४ |
| इति पांडू रोगाधि० | ८३ | अम्ल पित्त का साध्य त्वादिक ॥ | ११० | व्यायाम शोधिका ल० | १२५ |
| अथ रक्त पित्ताधि० | ८४ | श्लेष्म पित्त का ल० | १११ | निदान विशेष ल० | १२६ |
| उस्की निदान पूर्वक- संप्राप्ति ॥ | ८५ | अम्ल पित्त श्लेष्म पित्त की वि० | ११२ | उरः क्षत का ल० | १२७ |
| रक्त पित्त का सामान्य लक्षणा ॥ | ८६ | इति ॥ | ११३ | उरः क्षत का ल० | १२८ |
| उसके मार्ग पूर्वरूप विशेष ल० | ८७ | अथ राज यक्ष्माधि कारः ॥ | ११४ | उरः क्षत का ल० | १२९ |
| वातिक पैत्रिक भार्गभेद उपद्रव साध्यत्वादि क साध्य असाध्य अरिष्ट रक्त पित्त की चिकि० इति० | ८८ | उस्का सन्नि कृष्ट विप्र कृष्ट निदान ॥ | ११५ | व्यायाम शोध वि० | १३० |
| अथ अम्ल पित्ताधि० | ८९ | यक्ष्मादियों की निरू० | ११६ | अध्य शोध वि० | १३१ |
| अम्ल पित्त का विप्र कृष्ट निदान ॥ | ९० | उस्की संप्राप्ति पूर्व रूप ॥ | ११७ | जरा शोध वि० | १३२ |
| अम्ल पित्त का ल० | ९१ | यक्ष्मा वाले का ल० | ११८ | उर क्षत की चि० | १३३ |
| ऊपरके ना ल० | ९२ | सुश्रुतोक्त ल० | ११९ | राज यक्ष्मा में रस इति० | १३४ |
| नीचेके अम्ल पित्त का लक्षणा | ९३ | उल्बरा नाकरके दोषो के भेद से परस्पर कर का टण लक्षणा | १२० | कासका अधिकार कासका निदान संप्रा प्ति पूर्वक सामान्य ल० | १३५ |
| | ९४ | असाध्य यक्ष्मा उसमें विशेष अरिष्ट | १२१ | संख्या पूर्वरूप | १३६ |
| | ९५ | अवधि चिकित्सा | १२२ | वातिक का ल० | १३७ |
| | ९६ | निदान विशेष कर के विशेष शोध | १२३ | पैत्रिक का ल० | १३८ |
| | ९७ | | १२४ | श्लेष्मिक का ल० | १३९ |
| | ९८ | | १२५ | क्षत कासका निदान- पूर्वक ल० | १४० |
| | ९९ | | १२६ | लक्षणा | १४१ |

| | | | | | |
|---------------------------------------|-----|-----------------------|-----|--------------------------|-----|
| क्षय कांस की निदान पूर्वकसंप्राप्ति ॥ | २ | स्वास के भेद ॥ | २ | अरोचकाधिकारः | २ |
| विचिकित्सायुक्त छरिण का लक्षण ॥ | २* | उसका पूर्वरूप | २ | निदानके सहित अ | २ |
| साध्य असाध्य याध्य कासकी चि० | १४० | उस्की संप्राप्ति | २ | रोचक ॥ | ४ |
| वात कासकी चि० | * | महास्वासकाल० | २ | वातिककाल० | ११० |
| पित्त कासकी चि० | १४१ | ऊर्ध्वस्वासकाल० | १५५ | पैत्रिककाल० | २ |
| कफ कासकी चि० | २ | उस्का अरिष्टल० | १५६ | प्लेनसिककाल० | २ |
| क्षतनकासकी चि० | १४२ | तमकस्वास | १५७ | आगन्तुजकाल० | १११ |
| क्षयकासकी चि० | १४३ | तमककीही पित्रातु | १५८ | त्रिदोषजकाल० | २ |
| कासकी सामान्यचि० | १४४ | दन्धजनितज्वरादि | ४ | वातजादिभेदसे अ | २ |
| इतिकासाधि० | १४५ | योगसे प्रतमकसंज्ञा | ४ | न्यथा विकृति ॥ | ४ |
| अथ हिचकी का अ | १४६ | उसका दूसरा ल० | १६० | वृद्ध भोजोक्त उनके | १०२ |
| धिकार ॥ | २ | क्षुद्रस्वास | २ | अलग २ लक्षण ॥ | ४ |
| उस्का विप्रकृष्ट नि० | १४७ | स्वासांकी साध्यत्वा | १६१ | अरोचककी चि० | २ |
| उस्की संप्राप्ति | २ | दिक उस्की चि० | ४ | इति० | ११५ |
| सामान्य ल० | १४८ | दूतिस्वासाधिकारः | १६५ | चमत्ताधिकार | ११६ |
| पूर्वरूप | २ | अथ स्वरभेदाधिकार | २ | उस्कीसन्नि कृष्ट विप्र | २ |
| अन्नजाकाल० | १४९ | उस्का निदानसंप्राप्ति | २ | कृष्ट निदान पूर्वकसंप्रा | ४ |
| यमलाल० | २ | पूर्वक ल० | ४ | प्ति ॥ पूर्वरूप | ११७ |
| क्षुद्राल० | १५० | वातिकस्वरभेद वा | १६६ | छर्दि का सामान्य ल० | २ |
| गभीराकाल० | २ | नेका लक्षण ॥ | ४ | वातकी छर्दि काल० | २ |
| महतीकाल० | १५१ | पैत्रिककाल० | २ | पित्तकी छर्दि काल० | ११८ |
| असाध्यत्व | २ | कफके स्वरभेद का | २ | कफकीकाल० | २ |
| साध्यत्व | १५२ | लक्षण ॥ | ४ | सन्निपातकी छर्दि का | २ |
| हिचकी की चि० | २ | सन्निपातके स्वरभेद | २ | लक्षण ॥ | ४ |
| इति हिक्काधिकार | १५३ | कालक्षण ॥ | ४ | आगन्तुजकाल० | २ |
| अथ स्वासाधिकारः | १५४ | क्षयके स्वरभेदकाल० | २ | उप दूष | ११८ |
| उस्का निदान | २ | भेदके स्वरभेदकाल० | १६७ | असाध्य और साध्य | २ |
| | १५५ | असाध्यता | २ | कालक्षण ॥ | ४ |
| | २ | स्वरभेदकी चि० | २ | छर्दिकी चि० | २ |
| | १५६ | इति० | १६८ | इति० | १८५ |

| | | | | | |
|--------------------------|-----|-------------------------|-----|------------------------|-----|
| अथ नृणां अधिकारः | ॥ | निद्रा काल० | ॥ | निदान ॥ | x |
| नृणां की निदान पूर्व | ॥ | संन्यास की संग्राप्ति- | ॥ | उत्काल० | ॥ |
| क संग्राप्ति ॥ | x | पूर्वक लक्षणा ॥ | x | चैत्रिक मदान्यका | ॥ |
| संग्रा | १८४ | संन्यास ने मूर्च्छाभि- | १८५ | निदान ॥ | x |
| नृणां का सामान्यल | ॥ | दा मूर्च्छा की चि० | २०० | उत्काल० - | २१७ |
| बान्धी | ॥ | रक्तज मूर्च्छा की चि० | २०२ | श्लेष्मिक मदान्य- | ॥ |
| पित्त की | १८५ | संन्यास की चि० | ॥ | का निदान ॥ | x |
| कफ की नृणां काल० | ॥ | मूर्च्छा में रस | २०३ | उत्काल० | ॥ |
| क्षत की नृणां काल० | १८६ | भ्रम की चि० | ॥ | सान्नि पानिक मदान्य | ॥ |
| क्षय की नृणां काल० | ॥ | तन्द्रा और अति निद्रा | २०४ | य का निदान ॥ | x |
| आम की नृणां काल० | ॥ | की चिकित्सा ॥ | x | लक्षणा | ॥ |
| भुक्तो द्रव नृणां काल० | ॥ | इति० | ॥ | परमद | ॥ |
| उपसर्ग की नृणां काल० | १८७ | मदान्यका आधिका | ॥ | पाना जीर्ण | २१८ |
| उपसर्ग | ॥ | रः ॥ | x | पान विधम | ॥ |
| नृणां की चि० | ॥ | मद का स्वभाव | ॥ | असाध्य मदान्ययो- | २१९ |
| इति नृणां अधिकारः | १८८ | युक्ति पूर्वक सेवन कि | ॥ | का लक्षणा ॥ | x |
| मूर्च्छा अधिकार | ॥ | ये की महिमा ॥ | x | मदान्ययो की चि० | ॥ |
| मूर्च्छा की निदान पूर्व | १८९ | तन्त्रान रोक्त मद्य पान | २०६ | कादो आदिके मद | २२३ |
| र्वक संग्राप्ति ॥ | x | भाला ॥ | x | की चि० | x |
| सामान्य ल० | १८२ | मद्य के गु० | २०८ | इति० | २२४ |
| उत्काल पूर्व रूप | १८३ | सान्नि क मद्य काल० | २११ | दाह का अधिकार - | ॥ |
| वात की मूर्च्छा काल० | ॥ | राज समद्य काल० | ॥ | पित्त दाह का | ॥ |
| पैत्रिक की मूर्च्छा काल० | ॥ | तामस मद्य काल० | २१२ | उत्काली पित्त ज्वरोक्त | ॥ |
| कफ की मूर्च्छा काल० | १८४ | तन्त्रान रोक्त जातिता | ॥ | क्रम चिकित्सा ॥ | x |
| सन्नि पात की मूर्च्छा | ॥ | मस ल० | x | रक्त का दाह | ॥ |
| रक्त की मूर्च्छा काल० | १८५ | मदान्य यो का निदान | २१३ | रक्त पूर्ण की रज | २२५ |
| मद की मूर्च्छा काल० | १८६ | विकार | २१४ | मद्यज दाह | ॥ |
| दिय की मूर्च्छा काल० | ॥ | मदान्य का सामान्य | २१५ | नृणां निरोधज | ॥ |
| तन्द्रा काल० | १८७ | लक्षणा ॥ | x | धातु क्षयज | ॥ |

| | | | | | |
|------------------------|-----|-------------------------|-----|------------------------|-----|
| असाध्य | २२ | देवाविद्युत्काल० | २३६ | द्विति० | २५४ |
| दाहकीचि० | २२ | देवाविद्युत्काल० | २३७ | वातव्याधि अधिकार | २२ |
| द्विति दाह अधिकारः | २२० | गन्धर्वाविद्युत्काल० | २३८ | उस्का विप्रकृत्य निदान | २२ |
| अथ उन्मादाधिकारः | २२० | यक्षाविद्युत्काल० | २३९ | वातव्याधिकी सामा- | २५८ |
| उन्मादकी निरुक्ति | २२० | पित्ताविद्युत्काल० | २४० | न्य चिकित्सा ॥ | २ |
| उसीका अवस्था भेदमें | २२४ | नागाविद्युत्काल० | २४० | विशिष्ट वातव्याधि- | २२ |
| नामान्तर ॥ | २ | राक्षसाविद्युत्काल० | २४१ | योकीचि० | २ |
| उन्मादका विप्रकृत्य- | २२० | ब्रह्मराक्षसाविद्युत्का | २४१ | शिरोग्रहकाल० | २२ |
| लक्षणा ॥ | २ | लक्षणा ॥ | २ | उस्कीचि० | २२ |
| सन्नि कृत्य निदान | २२० | पिशाचाविद्युत्काल० | २४२ | जृम्भाकाल० | २५६ |
| उसकी संप्राप्ति | २२० | हिंसार्थ गृहीतकाल | २४३ | उस्कीचि० | २२ |
| उन्मादका सामान्यल- | २३० | देवादियोंका आवेश- | २४४ | हनुग्रहकानिदान | २६० |
| वातिकोन्मादकी नि- | २३३ | समय ॥ | २ | साहितल० | २ |
| दान पूर्वकसंप्राप्ति ॥ | २ | उन्मादकीचि० | २४५ | उस्कीचि० | २२ |
| उसीकाल० | २२० | देवाद्याविद्युत्कीचि० | २४६ | जिह्वास्तम्भकाल० | २६३ |
| पैत्रिककी निदानपू- | २२० | द्विति० | २४७ | उसकीचि० | २२ |
| र्वकसंप्राप्ति ॥ | २ | अपस्मारका अधिकारः ॥ | २४८ | मूकगद्गदमिन्मिन् | २२ |
| उसकाल० | २३२ | रः ॥ | २ | इनकाल० | २ |
| प्लेथिककी निदान | २२० | अपस्मारकी निदान | २४९ | उनकीचि० | २६४ |
| पूर्वकसंप्राप्ति ॥ | २ | पूर्वकसंप्राप्ति ॥ | २ | प्रलापकाल० | २२ |
| उस्कालक्षणा | २३३ | उस्की संख्या | २५० | उस्कीचि० | २६५ |
| सन्निपातिककानि- | २२० | उस्का सामान्यल० | २५० | रसाज्ञानकाल० | २२ |
| दान पूर्वकल० | २ | पूर्वरूप | २५१ | उसकीचि० | २२ |
| मनोदुःखका विप्रकृत्य | २३४ | वातिककाल० | २५२ | त्वकभ्रूयुक्तकाल० | २६६ |
| न्य निदान ॥ | २ | पैत्रिककाल० | २५३ | उस्कीचि० | २ |
| उस्काल० | २३५ | प्लेथिककाल० | २५४ | अर्द्धिकासंप्राप्तिपू- | २२ |
| विषयकाल० | २२० | सन्निपातिककाल० | २५५ | र्वकलक्षणा | २ |
| अरिष्ट | २२० | अपस्मारका अरिष्टल | २५६ | असाध्यकाल० | २६० |
| देवादि कृत उन्माद | २२० | उसके प्रकीपकाल० | २५७ | उस्कीचि० | २२ |
| का सामान्यल० | २ | अपस्मारकीचि० | २५८ | मन्यास्तम्भकानिदा | २६५ |

| | | | | | |
|----------------------|-----|---------------------|-----|---------------------|-----|
| न पूर्वक काल० | * | क्रोधुक शीर्षकाल० | २०७ | त्वादिक ॥ | * |
| उसकी चि० | २०७ | उस्की चि० | २०७ | असाध्य ल० | २०७ |
| बाहु पोथकाल० | २०७ | खल्ली काल० | २०७ | उस्की चि० | २०७ |
| उसकी चि० | २०७ | उस्की चि० | २०७ | सर्वोद्ग वातकाल० | २०७ |
| अप बाहुक काल० | २०७ | वात कंदक काल० | २०७ | उस्की चि० | २०७ |
| उस्की चि० | २०७ | उस्की चि० | २०७ | स्थान नाम लक्ष्य ल० | २०७ |
| विप्रवाची काल० | २०७ | पाद दाह काल० | २०७ | वाले वात के रोग ॥ | * |
| उस्की चि० | २०७ | उस्की चि० | २०७ | उनकी चि० | २०७ |
| ऊह वात काल० | २०७ | पाद हर्य काल० | २०७ | हंड काटि योकी चि० | २०७ |
| उसकी चि० | २०७ | उस्की चि० | २०७ | रसादि धातु गत वातो | २०७ |
| आ ध्यान काल० | २०७ | आक्षेपक का सामा | २०७ | के लक्षणा ॥ | * |
| उसकी चि० | २०७ | न्य लक्षणा ॥ | २०७ | उनकी चि० | २०७ |
| प्रत्या ध्यान काल० | २०७ | उरके चारों भेद | २०७ | स्थान विप्रिय करके | २०७ |
| उसकी चि० | २०७ | केवल वात के आक्षेप | २०७ | वात रोग विशेष ॥ | * |
| वात शीला काल० | २०७ | क काल० | २०७ | कोष्ठ ल० | २०७ |
| प्रत्य शीला काल० | २०७ | क क्रयुक्त काल० | २०७ | उस्की चि० | २०७ |
| उनकी चि० | २०७ | उस्की चि० | २०७ | आनाशय काल० | २०७ |
| तूनी काल० | २०७ | अन्तरायाम काल० | २०७ | उस्की चि० | २०७ |
| प्रतूनी काल० | २०७ | बाह्या याम काल० | २०७ | पक्षाघात के दान का | २१० |
| उनकी चि० | २०७ | उनकी चि० | २०७ | लक्षणा ॥ | * |
| विक शूल काल० | २०७ | धनुसंभ काल० | २०७ | उस्की चि० | २०७ |
| उसकी चि० | २०७ | कुब्ज काल० | २०७ | गुद गत वात काल० | २०७ |
| वस्ति वात काल० | २०७ | उस्की चि० | २०७ | उस्की चि० | २११ |
| उस्की चि० | २०७ | अपतप्त काल० | २०७ | हृदय वात की चि० | २०७ |
| गृध्र सी काल० | २०७ | उस्की चि० | २०७ | कराग दिग्गत वात का | २०७ |
| गृध्र सी की चि० | २०७ | अपतप्त क काल० | २०७ | लक्षणा ॥ | * |
| खंडन का और यंगु काल० | २०७ | उस्की चि० | २०७ | उस्की चि० | २०७ |
| उस्की चि० | २०७ | पक्षा घात काल० | २०७ | शिरो गत वात काल० | २१२ |
| कान्नाप खंडन काल० | २०७ | उसका साध्या साध्य | २०७ | उसकी चि० | २०७ |
| उस्की चि० | २०७ | पक्षा घात का असाध्य | २०७ | रसायु गत काल० | २०७ |

| | | | | | |
|--------------------------|-----|-------------------------|-----|-------------------------|----|
| उस्की वि० | ३४० | उसीके विप्रशुल० | ३४० | तृतीयो भागः ॥ | १ |
| सन्धिगत काल० | ३३३ | उस्के साध्यत्वादिक | ३४१ | अथ शूलाधिकारः | २ |
| उस्की चि० | ३३४ | आमवातकी चि० | ३४८ | शूलकासनि कृष्ट- | ३ |
| उक्त रोगोंकी कष्टसाध्य | ३३५ | इति० | ३५० | निदान ॥ | ४ |
| ता ॥ ॥ ॥ ॥ | ३३६ | पित्तव्याधि अधिकार | ३५१ | वातिक का विप्र कृष्ट | ५ |
| वातके उपद्रव | ३३७ | उनके विप्र कृष्ट निदान | ३५२ | निदान संप्राप्ति पूर्वक | ६ |
| याप्य | ३३८ | पित्तके रोग | ३५३ | शूलका देश | ७ |
| पांच प्रकारके मज्जत | ३३९ | इस्की चिकित्सा अप | ३५४ | पसलीके शूलकाल | ८ |
| वातोंके कार्श्यल० | ३४० | ने प्रकरणा में जानले | ३५५ | वस्ति शूलकाल० | ९ |
| वातव्याधियोंके सामा- | ३४१ | वे ॥ ॥ ॥ ॥ | ३५६ | पैत्रिक | १० |
| न्य औषध ॥ | ३४२ | कफव्याधियोंके साधा | ३५७ | प्लेजिक | ११ |
| वात रोगमें रस | ३४३ | न्यसे विप्रकृष्ट निदान | ३५८ | द्वन्द्वज | १२ |
| इति० | ३४४ | इनकी चि० अपने प्र- | ३५९ | विदोषज | १३ |
| उरुस्तम्भाधिकारः | ३४५ | करणा में जाननी चा- | ३६० | आमज | १४ |
| उसका विप्र कृष्ट हस्ति | ३४६ | हिये ॥ | ३६१ | शूलके दोषविशेषसे | १५ |
| कृष्ट निदान संप्राप्ति - | ३४७ | इति० | ३६२ | देश विशेष ॥ | १६ |
| पूर्वक लक्षणा ॥ | ३४८ | वात रक्तका अधिकार | ३६३ | तन्वातरी क आम शूल | १७ |
| पूर्व रूप | ३४९ | उस्का विप्र कृष्ट निदान | ३६४ | शूलके उपद्रव | १८ |
| लक्षणा | ३५० | संप्राप्ति ॥ | ३६५ | असाध्यत्वादिक | १९ |
| उरुस्तम्भका अरिष्ट | ३५१ | पूर्व रूप | ३६६ | अरिष्ट | २० |
| उस्की चि० | ३५२ | वात रक्त का ल० | ३६७ | परिराम शूल | २१ |
| इति० | ३५३ | अधिकरक्त वात रक्त | ३६८ | अन्न द्रव शूल विशेष | २२ |
| अन्नवाताधिकारः | ३५४ | अधिक पित्त वात रक्त | ३६९ | शूलकी चि० | २३ |
| आमवातकी निदान पूर्व | ३५५ | अधिक कफ हि शेष- | ३७० | परिराम शूल की | २४ |
| वर्क संप्राप्ति ॥ | ३५६ | विशेषका वात रक्त ॥ | ३७१ | चिकित्सा | २५ |
| आमकाल० | ३५७ | पादानि रिक्तस्थान | ३७२ | अन्न द्रव की चि० | २६ |
| आमवातका सामान्य | ३५८ | वात रक्तके उपद्रव | ३७३ | इति० | २७ |
| लक्षणा ॥ | ३५९ | असाध्यत्वादिक | ३७४ | उदा वर्तका अधिकार | २८ |
| तन्वान्तर में उसीकाल | ३६० | वात रक्त की चि० | ३७५ | उस्का विप्र कृष्ट निदान | २९ |
| वाताधिक में इसीकी ल | ३६१ | इति० | ३७६ | उस्का विप्र कृष्ट निदान | ३० |

| | | | | | |
|-------------------------|----|--------------------------|----|------------------------|----|
| वैशिके अभि धान से- | ११ | इति | ३३ | वातिक काल० | ५३ |
| हुवे उदावर्तकी अल- | १२ | अथ गुल्माधिकारः | ११ | असाध्य ल० | ११ |
| ग अलग विषेय ल० | १३ | उस्का सन्नि कृष्ट विप्र- | ११ | शरीरा वयव विषेय | ११ |
| अपान वायु कैरे कने- | १४ | कृष्ट कारणा पूर्वकसा | १३ | पिलाही यकृत काल | १३ |
| से हुवे का लक्षणा ॥ | १५ | मान्य लक्षणा ॥ | १३ | रूप ॥ ॥ ॥ ॥ | १३ |
| मल निरोधज काल० | २२ | कोष्ठ में भी स्थान नि- | ३४ | यकृत रोग | ११ |
| मूत्र निग्रहज काल० | १६ | यन ॥ ॥ ॥ ॥ | १३ | प्लीहाधिकार में चि० | ५२ |
| जुंनानिरोधज काल० | २३ | गुल्म का सामान्य ल० | ११ | यकृत रोग की चि० | ५३ |
| अशु निरोधज काल० | १७ | उस्का पूर्व रूप | ३५ | इति० | ५४ |
| शिकानिरोधज काल- | १८ | वातिक का निदान | ११ | हृद्दोगाधिकारः | ११ |
| लक्षणा ॥ | १६ | उस्का ल० | ३६ | उस्का विप्र कृष्ट नि० | ११ |
| वान्ति निरोधज | २४ | पैत्रिक का नि० | ३७ | संप्राप्ति पूर्वक ल० | ११ |
| शुक्र निरोधज काल० | १९ | उस्का ल० | ११ | वातिक काल० | ११ |
| क्षुधानिरोधज काल० | २० | भ्लैथिक और सान्नि | ३८ | पैत्रिक काल० | ५५ |
| नृषानिरोधज काल० | २१ | पातिक का हेतु ॥ | १३ | वात भ्लैथिक काल० | ११ |
| ब्रह्म निरोधज काल० | २५ | उस्का ल० | ११ | सान्नि पातिक काल० | ५६ |
| निद्रा विघातन काल० | २० | विदोयन | ३९ | कुमिज काल० | ११ |
| रूक्षादि कुपित दातज | २१ | आर्तव रूप रक्तज | ११ | उस्की विप्र कृष्ट निद | ११ |
| का लक्षणा ॥ | १७ | साध्य काल० | ४२ | न पूर्वक संप्राप्ति ॥ | १३ |
| उस्का निदान संप्राप्ति- | २२ | असाध्य काल० | ११ | उस्का ल० | ५७ |
| पूर्वक लक्षणा ॥ | १८ | उसकी चि० | ४४ | हृद्दोग के उप ह्व | ११ |
| संप्राप्ति ॥ | २३ | रक्त के गुल्म की चि० | ४८ | उस्की चि० | ११ |
| असाध्य काल० | २६ | इति० | ४५ | इति० | ५६ |
| आनाह काल० | २४ | प्लीहाधिकारः | ११ | मूत्र कृच्छ्राधिकार | ११ |
| आमका आवाह | २७ | उसको शरीरा वयव- | ११ | उस्का विप्र कृष्ट नि० | ११ |
| मल संचय ज | २८ | विषेय स्वरूप ११ | १३ | उस्का संप्राप्ति पू० ल | ११ |
| उदावर्तकी चि० | २९ | उस्का निदान संप्राप्ति | ११ | पैत्रिक काल० | ६० |
| रूक्षादि कुपित दातके | ३० | पूर्वक ल० ॥ | १३ | भ्लैथिक काल० | ११ |
| उदावर्तकी चि० | ३१ | रक्तज ल० | ५० | सान्नि पातिक काल० | ११ |
| आनाह की चि० | ३२ | पैत्रिक काल० | ११ | पुरीयज काल० | ६९ |

| | | | | | |
|--------------------------|-----|---------------------|-----|--------------------------|-----|
| अश्रमरीज काल० | ८९ | इति० | ८९ | उस्का निदान | ८९ |
| अश्रमरी शर्कराका सामान्य | ९० | अथ अश्रमरीका अ- | ९० | लाक्षणा | ९० |
| शर्कराके उपद्रव | ९१ | धिकार ॥ | ९१ | उसकी वि० | ९३५ |
| वातकृच्छ्रकी वि० | ९३ | उनकी संप्राप्ति | ९३ | कार्यका अधिकार | ९४४ |
| पित्तकृच्छ्रकी वि० | ९४ | इनका पूर्वत्व० | ९४ | उस्का निदान | ९४ |
| कफकृच्छ्रकी वि० | ९५ | सामान्यत्व० | ९५ | उस्का ल० | ९५ |
| सन्निपातके कृच्छ्रकी | ९६ | वाताधिक | ९६ | अति कृशके रोग | ९४५ |
| चिकित्सा ॥ | ९७ | उसकी वि० | ९७ | कारण | ९७ |
| अभिघातकृच्छ्रका वि० | ९८ | पैत्रिक वि० | ९८ | कार्यकी वि० | ९८ |
| शुक्रविवन्धके कृच्छ्र | ९९ | प्लेथिक वि० | ९९ | इति | ९४६ |
| की चिकित्सा ॥ | १०० | शुक्राश्रमरी वि० | १०० | उदरका निदान | १५० |
| पुरीषजकृच्छ्रकी वि० | १०१ | उस्की संप्राप्ति | १०१ | उसके हेतु | १०१ |
| इति० | १०२ | उसकाल० | १०२ | उस्की संप्राप्ति | १०२ |
| मूत्राघातका अधिकार | १०३ | शर्कराभेद | १०३ | सामान्यत्व० | १०३ |
| उनके भेद | १०४ | उसके उपद्रव | १०४ | वातादरकाल० | १५९ |
| अष्टीला | १०५ | अश्रमरीभेदके अरिष्ट | १०५ | पैत्रिक | १५२ |
| वातवस्ति ॥ | १०६ | अश्रमरी वि० | १०६ | प्लेथिकभेद | १०६ |
| मूत्रा नीत | १०७ | इति० | १०७ | सन्निपातोदरकाल० | १५३ |
| मूत्र जठर | १०८ | प्रमेहका अधिकारः | १०८ | प्लीहोदरल० | १५४ |
| मूत्रोत्सङ्ग | १०९ | उसका निदान | १०९ | वह्न्युदल० | १५५ |
| मूत्रक्षय | ११० | पूर्वरूप | ११० | ज्ञातोदरल० | १५६ |
| मूत्रग्रन्थि | १११ | उनका सामान्यत्व० | १११ | दकोदरल० | १५७ |
| मूत्रशुक्र | ११२ | मूत्रवर्णादिभेदसै | ११२ | साध्यअसाध्यभेद | १५८ |
| उष्णवात | ११३ | प्रमेहभेद ॥ | ११३ | ज्ञातोदकोदरल० | १५९ |
| मूत्रसाद | ११४ | असाध्य | ११४ | उदरकी वि० | १६० |
| विडुविघात | ११५ | दशपिण्डिका | ११५ | इति० | १६६ |
| वस्ति कुंडली | ११६ | उनकाल० | ११६ | अथ शोषाधिकारः | ११६ |
| उस्का असाध्यत्व० | ११७ | अथवि० | ११७ | उसका विप्रकृष्टनिदान | ११७ |
| कुंडलीभूतकाल० | ११८ | इति० | ११८ | उसका संप्राप्ति पूर्वकसा | १६७ |
| मूत्राघातकी वि० | ११९ | भेदका अधिकार | ११९ | मान्यलाक्षणा | ११९ |

| | | | | | |
|---------------------|-----|--------------------------|-----|------------------------|-----|
| वातिक शोथकालः | १६८ | अथ गजगंडगंडमा- | १६८ | गल गंड की चि० | १६८ |
| पैत्रिक | १६९ | लाका सामान्यल० | १६९ | गंड मालाकी चि | १६९ |
| श्लेष्मिक | १७० | उस्कीसंप्राप्ति | १७० | ग्रन्थि और अर्बुद फी | १७० |
| इन्द्रज भेद | १७१ | वातिक | १७१ | चिकित्सा ॥ | १७१ |
| सर्पि पात्रिकल० | १७२ | श्लेष्मिक | १७२ | इति० | १७२ |
| अभिघातज | १७३ | मेदोज | १७३ | अथ श्लेष्मी पदाधिकारः | १७३ |
| वियज | १७४ | असाध्य | १७४ | उस्का विप्रकृष्टकारण | १७४ |
| उपद्रव | १७५ | गंडमालाकाल० | १७५ | उस्का सामान्यल० | १७५ |
| असाध्य | १७६ | अपेदीकाल० | १७६ | उनका क्रमसे ल० | १७६ |
| कटुसाध्य | १७७ | उस्का असाध्यत्वादि | १७७ | असाध्यभेद | १७७ |
| नद्यानरैक्तविशेषभेद | १७८ | क भेद ॥ | १७८ | श्लेष्मी पद की चि० | १७८ |
| शोथचि० | १७९ | ग्रन्थिकाल० | १७९ | इति० | १७९ |
| सामान्यचि० | १८० | वातिककाल० | १८० | अथ विद्रधि का अ- | १८० |
| इति० | १८१ | पैत्रिकभेद | १८१ | धिकारः ॥ | १८१ |
| अथ वृद्धि अधिकारः | १८२ | श्लेष्मिक | १८२ | उस्का संप्राप्ति पूर्व | १८२ |
| उस्का निदान | १८३ | मेदोजका भेद | १८३ | क सामान्य ल० | १८३ |
| और संख्या | १८४ | शिराज भेद | १८४ | विशिष्ट ल० | १८४ |
| वातिक | १८५ | और भी असाध्य | १८५ | वातिक काल० | १८५ |
| पैत्रिक | १८६ | अनन्तर अर्बुद | १८६ | पैत्रिक काल० | १८६ |
| श्लेष्मिक | १८७ | उस्की संप्राप्ति पूर्वक | १८७ | श्लेष्मिक | १८७ |
| रक्तज | १८८ | सामान्य ल० | १८८ | सर्पि पात्रिक | १८८ |
| भेदज | १८९ | निदान पूर्वक विशि- | १८९ | अभिघात विद्रधि | १८९ |
| भूवज | १९० | ष्ट लक्षणा ॥ | १९० | का संप्राप्ति पूर्वक | १९० |
| अथ वृद्धि | १९१ | रक्तार्बुद | १९१ | लक्षणा ॥ | १९१ |
| उस्की अवस्था | १९२ | गोसा बुद्ध की संप्राप्ति | १९२ | रक्तज | १९२ |
| असाध्य | १९३ | निदान | १९३ | भीतर की विद्रधि | १९३ |
| वह | १९४ | असाध्यभेद | १९४ | स्थान विशेष में ल० | १९४ |
| वृद्धि की चि० | १९५ | असाध्य भेदानर | १९५ | विशेष ॥ | १९५ |
| वह फी चि० | १९६ | अर्बुदों को पाका भाव | १९६ | चाव मार्ग | १९६ |
| इति० | १९७ | कारण ॥ | १९७ | साध्यत्वादि | १९७ |

| | | | | | |
|--------------------|-----|----------------------|-----|-----------------------|----|
| वाद्यविद्राधियोंका | २१३ | उपनाह | २२३ | चतुर्थीभागः | |
| साध्यासाध्य | × | पाचन | २२४ | अथनाडीव्रणाका | |
| विद्राधिकीचि० | ११ | पाचनद्रव्य | २२५ | आधिकारः ॥ | |
| इति० | २१४ | भेदन | ११ | नाडीव्रणाकीसंप्राप्ति | १ |
| अथव्रणाधिकारः | ११ | शस्त्रसाध्यभेदन | ११ | पूर्वकनिरुक्तिः ॥ | × |
| व्रणाकीसंख्याविवरण | ११ | शस्त्रनिर्क्षेपायवाद | ११ | विशिष्टनिरुक्ति | ११ |
| पूर्वकसामान्यल० | × | भेदन | २२६ | दूसरीदोषासुबन्ध | २ |
| विशिष्टरूप | ११ | हारण | ११ | संख्या ॥ | × |
| अपक्वव्रणशीयका | ११ | पीडन | ११ | वातकीनाडी | ११ |
| लक्षणा ॥ | × | शोधन | ११ | पित्तकीनाडी | ११ |
| पच्यमानकाल | २१५ | शेपण | २२८ | कफकीनाडी | ११ |
| पक्वकाल० | २१६ | सवर्णजाकरसा | २३० | त्रिदोषजनाडी | ११ |
| पाककालमेंसबदोषों | २३७ | व्रणवालेकाभीजन | ११ | शल्यनिमित्तनाडी | ३ |
| कासम्बन्ध ॥ | × | आगन्तुव्रणाकीचि० | २३३ | कष्टसाध्यऔरअसाध्य | ४ |
| पाकमेंमतान्तरः | ११ | अग्निदाघकीचि० | २३४ | नाडीव्रणाकीचि० | ११ |
| पाकज्ञानार्थल० | २३८ | इति० | ३६ | इति० | १० |
| पाकाज्ञान | ११ | भग्नाधिकार | ११ | भयन्दरकापूर्वरूप | ११ |
| पीपननिकालनेमें | ११ | भग्नकाभेद | ११ | सहितलक्षणा ॥ | × |
| दोष ॥ | × | सन्धिभग्नकासाध | ३३७ | उसकेभेदपांच | ११ |
| शीथकेकच्चेपकेके | ११ | त्यलक्षणा ॥ | × | भोजोक्तउत्कीनिरुक्ति | ११ |
| जाननेऔरनजानने | × | उप्लिष्टकाल० | ३३८ | वातिकशतपीनकम- | ३३ |
| मेंवेद्यकागुणदोष ॥ | × | कांडभग्नकेप्रकार | ३४ | गन्दर ॥ | × |
| व्रणशीथकीचि० | २१४ | कर्कटकादिकांडभग्न | २४१ | पैत्तिकउद्युग्नीवा | ११ |
| क्रमचि० | ११ | लक्षणा ॥ | × | प्लेक्विकपरिस्रावी | ३२ |
| शीथहरलेप | २२० | कष्टसाध्य | ११ | साधिपातिकशब्दका | ११ |
| परिषेचन | २२१ | असाध्य | २४२ | वर्त ॥ | × |
| विमलापन | २२२ | दूसराअसाध्यल० | ११ | शल्यजन्मार्गिभग | ११ |
| शीथकीविमलापन | ११ | अस्थिविशेषभग्नवि० | २४३ | न्दर ॥ | × |
| विधि ॥ | × | भग्नकीचि० | २४४ | कष्टसाध्यअसाध्य | ३३ |
| रक्तसौक्ष्ण | ११ | इति० | २४५ | भेद ॥ | × |

| | | | | | |
|--------------------|----|-------------------------|----|-------------------------|----|
| भगन्दर की चि० | ११ | असाध | ११ | कालक्षरा | ११ |
| इति० | १० | शुक दोष की चि० | ३४ | रसगत कालक्षरा | ११ |
| अथ उपदंशाधिकारः १५ | १५ | कुश्टाधिकारः | ११ | रुधिरगत काभेद | ४७ |
| उस्की निरुक्ति | ११ | उस्की निरुक्ति | ११ | मांसगत काभेद | ११ |
| उस्की चिकित्सा | ११ | महाकुश्ट | ३६ | मेदोगत का | ११ |
| लिङ्गशैका उपक्रम | २६ | धुद्रकश्ट | ३० | अस्थिमज्जागत | ४८ |
| इति० | २७ | उनके सात प्रकार | ३५ | शुकगत | ११ |
| शुक दोष का अधि | २८ | पूर्वरूप | ११ | कुश्टों में उल्दरावाता | ४४ |
| कारः ॥ | ५ | महाकुश्टों के बीच में | ४३ | दिदीयल० | ५ |
| उस्कानिदान | ११ | कपाल काल० | ५ | साध्यत्वादिक | ५० |
| उनके भेद अठारह | २४ | औदुम्बर | ११ | अरिष्ट | ११ |
| क्रमके अनुसार | ११ | भंडल | ११ | शिवत्रभेद | ४३ |
| सर्पिका | ११ | सिध्म | ४२ | शैवभेद से लक्षणा | ११ |
| अष्टौलिका | ११ | काकणा | ११ | मेद ॥ | ५ |
| ग्रन्थित | ११ | पुंडरीक | ४३ | उसके संसर्गज शोरा | ४३ |
| कुम्भिका | ३० | जृष्ट जिह्व | ११ | कुश्टकी चि० | ५६ |
| अलजी | ११ | धुद्रकुश्टों के बीच में | ४४ | सिध्मकी चि० | ६८ |
| मृदित | ११ | रक्तकुश्ट ॥ | ५ | चर्मदलकी चि० | ११ |
| संमूह पिडका | ११ | गज चर्मल० | ११ | पामाकी चि० | ११ |
| अवमन्य | ११ | चर्मदल० | ११ | कच्छुकी चि | ७० |
| पुय करिका | ३३ | विचर्चिका | ११ | दद्रुकी चि० | ७१ |
| स्पर्शहानि | ११ | विपादिका | ४५ | शिवत्रकी चि० | ७२ |
| उन्नम | ११ | पामा | ११ | इति० | ७३ |
| शत योनक | ११ | कच्छू | ११ | अथ शीत पित्ताधि- | ११ |
| त्वक पाक | ३२ | दद्रु | ४६ | कारः ॥ | ५ |
| शोशानार्तुद | ११ | विस्फोट | ११ | उस्की विप्र कृष्ट सत्रि | ११ |
| मांसा बुद्ध | ११ | किटिभ | ११ | कृष्ट निदान पूर्वक | ५ |
| मांस पाक | ११ | अलसक | ११ | संप्राप्ति ॥ | ५ |
| विद्रधि | ११ | शतारू | ११ | पूर्वरूप | ७४ |
| निल कालक | ३३ | सप्त धातु गजकुश्टों | ११ | शीत पित्तकान् ० | ११ |

| | | | | | |
|------------------------|----|-----------------------|----|-----------------------|-----|
| उद्धृत काल० | ८८ | अथ विस्फोटका अ | ८८ | उसकी सन्नि कृष्ट वि | ८८ |
| कोष्ठोत् कोठकाल० | ९५ | धिकारः ॥ | ८८ | प्र कृष्ट निदान पूर्व | ९ |
| इन्की चि० | ८८ | विस्फोटक की निदा | ८८ | क संप्राप्ति० | ५ |
| इति० | ९९ | न पूर्वक संप्राप्ति ॥ | ५ | पूर्वरूप | १०० |
| विसर्पाधिकार | ८८ | पूर्वरूप | ८८ | वातज | १०१ |
| उस्की विप्र कृष्ट निदा | ८८ | वातिक | ८८ | पित्तज | ८८ |
| न संख्या निरुक्ति | ५ | पैत्रिक | ८८ | रक्तज | ८८ |
| वैसात प्रकार | ९० | श्लेष्मिक | ८८ | कफज | ८८ |
| दीप दुथ्यों के भेद से- | ८८ | कफ पैत्रिक | ४० | सन्नि पातिक | १०२ |
| विसर्प सात | ५ | वात पैत्रिक | ८८ | रसादि सप्त धातुगत | ८८ |
| वातिक काल० | ९५ | वात श्लेष्मिक | ८८ | रसकी | ८८ |
| पैत्रिक | ८८ | सान्नि पातिक | ८८ | रक्तकी | ८८ |
| श्लेष्मिक | ८८ | रक्तज | ८८ | मांसकी | १०३ |
| सान्नि पातिक | ८८ | विस्फोटक | ४१ | मेदकी | ८८ |
| वात पैत्रिक | ८८ | उपद्रव | ८८ | अस्थि मज्जागत | ८८ |
| वात श्लेष्मिक ग्रन्थि | ८० | उपद्रवों के लक्षण | ४२ | शुकगत | १०४ |
| विसर्प ॥ | ५ | नर ॥ | ५ | जर्मज | १०५ |
| पित्त श्लेष्मिक कर्द | ८१ | साध्यत्वादिक | ८८ | रोमानिका | ८८ |
| मवीसर्प ॥ | ५ | विस्फोटक की चि० | ८८ | असाध्य | ८८ |
| सान्नि पातिक | ८२ | इति० | ४४ | कृष्ट साध्य | ८८ |
| क्षतज | ८३ | अथ फिरंगका अ- | ८८ | और असाध्य | १०६ |
| उपद्रव | ८८ | धिकार ॥ | ५ | अरिष्ट | १०७ |
| साध्यत्वादिक | ८८ | उस्की निरुक्ति | ८८ | मसूरिकाकाररम शो | ८८ |
| विसर्प चि० | ८८ | विप्रकृष्ट निदान | ८८ | य विशेष ॥ | ५ |
| इति० | ८६ | लक्षणा | ४५ | मसूरिका की चि० | १०८ |
| अथ स्नायु आधिका | ८८ | उपद्रव | ८८ | इति० | १०९ |
| रः ॥ ॥ ॥ ॥ | ५ | साध्यत्वादिक | ८८ | उसका भेद शीतला | ८८ |
| उसका विप्रकृष्ट सा- | ८८ | फिरंगकी चि० | ४६ | का अधिकार | ५ |
| मान्य लक्षणा ॥ | ८८ | इति० | ४४ | उस्की निरुक्ति | ८८ |
| स्नायु रोगकी चि० | ८९ | अथ मसूरिका निदा | ८८ | शीतलाके भेद | ११६ |

| | | | | | |
|-----------------------|-----|---------------------|-----|--------------------|-----|
| इतका साध्यत्वादिक | ११८ | उस्की चि० | ११३ | कदर काल० | १४३ |
| क्षुद्र रोगाधिकार | ११८ | विदारिकाल० | ११३ | उस्की चि० | १४४ |
| उस्का निदान पूर्वक | ११८ | उस्की चि० | ११३ | निल काल ल० | १४५ |
| लक्षणा ॥ | ११८ | विष्य ल० | ११३ | मशक ल० | १४६ |
| पलितकी चि० | ११८ | कुनख काल० | ११३ | जतु मरिा ल० | १४७ |
| इन्द्र लुप्त का निदान | ११८ | उनकी चि० | ११३ | जतु मरिा भेद | १४८ |
| पूर्वक लक्षणा ॥ | ११८ | परिवर्तिकाल० | ११३ | इनकी चि० | १४९ |
| इन्द्र लुप्तकी चि० | ११८ | उस्की चि० | ११३ | न्यच्छ काल० | १५० |
| दारुण काल० | ११८ | अव पाटिकाल० | ११३ | इस्की चि० | १५१ |
| दारुणाकी चि० | ११८ | उस्की चि० | ११३ | पद्मिनी कंदक काल० | १५२ |
| रूधिका ल० | ११८ | निरुद्ध प्रकाश का | ११३ | उस्की चि० | १५३ |
| उस्की चि० | ११८ | लक्षणा ॥ | ११३ | अज गल्ली का भेद | १५४ |
| इरि वेदिका ल० | ११८ | उस्की चि० | ११३ | उस्की चि० | १५५ |
| उस्की चि० | ११८ | सन्नि रुद्ध गुद काल | ११३ | यव प्रख्याल | १५६ |
| पनसिका ल० | ११८ | क्षणा ॥ | ११३ | अन्ना लजी ल० | १५७ |
| उस्की चि० | ११८ | उस्की चि० | ११३ | उनकी चि० | १५८ |
| पायाण गर्दम का- | ११८ | व्यथ कच्छू काल० | ११३ | निवृत्ता भेद | १५९ |
| लक्षणा ॥ | ११८ | उस्की चि० | ११३ | इन्द्र वद्ध ल० | १६० |
| उसकी चि० | ११८ | अहि पूतना काल० | ११३ | गर्द भिकाल० | १६१ |
| मुख दूधिका ल० | ११८ | उस्की चि० | ११३ | जाल गर्दम ल० | १६२ |
| उसकी चि० | ११८ | गुद भ्रंश काल० | ११३ | इनकी चि० | १६३ |
| मुख लेप | ११८ | उस्की चि० | ११३ | कच्छुपिका ल० | १६४ |
| व्यङ्ग काल० | ११८ | गूकर दंष्ट्र काल० | ११३ | उस्की चि० | १६५ |
| नीलिका ल० | ११८ | उस्की चि० | ११३ | शर्करा बुंद काल० | १६६ |
| उनकी चि० | ११८ | अनुशयी काल० | ११३ | उस्की चि० | १६७ |
| दल्मीक काल० | ११८ | उस्की चि० | ११३ | सहेतु लक्षणा विकार | १६८ |
| उस्की चि० | ११८ | अलस काल० | ११३ | विशेष ॥ | १६९ |
| कक्षा गन्ध काल० | ११८ | उस्की चि० | ११३ | इति० | १७० |
| उनकी चि० | ११८ | दारी ल० | ११३ | पिरो रोगाधिकारः | १७१ |
| अग्नि रोहिणी काल० | ११८ | उस्की चि० | ११३ | उसका निदान और- | १७२ |

| | | | | | |
|-------------------------|-----|------------------------|-----|------------------------|-----|
| संख्या ॥ | × | उसमें चार पटल | १११ | अथ कृष्ण मंडल - | ११ |
| उसके एका दश- | ११२ | प्रथम पटल गत - | ११२ | रोग ॥ | × |
| प्रकार ॥ | ११३ | द्वेष स्तभाव ॥ | × | उनके नाम और- | ११३ |
| वातिक काल० | ११३ | द्वितीय पटल गत | ११० | संख्या ॥ | × |
| पैतिक काल० | ११४ | तृतीय पटल गत | १११ | सत्रणा शुक्र लिङ्ग- | ११४ |
| प्लैथिक काल० | ११५ | चतुर्थ पटल गत दो | ११२ | कालक्षरा ॥ | × |
| साक्षि पातिक काल० | ११६ | य ॥ ॥ ॥ | × | द्वि० | ११५ |
| रक्तज काल० | ११६ | दृष्टि रोगों के नाम और | ११३ | सन्धि के रोग ॥ | ११६ |
| क्षयज काल० | ११७ | र संख्या ॥ | × | कः सन्धि | ११७ |
| क्रिमिज काल० | ११८ | कः लिङ्ग नाश | ११४ | उनमें होने वाले रोग | ११८ |
| सूर्यावर्त काल० | ११९ | लिङ्ग नाश काल० | ११४ | और उनके नाम त- | ११९ |
| अनन्त वात काल० | १२० | वात काल० | ११५ | था संख्या ॥ | × |
| शंखक काल० | १२० | कफका | ११६ | पूया लस काल० | १२० |
| अर्द्धव मेदक काल० | १२१ | सखि पातका | ११७ | उपनाह ल० | १२१ |
| शिरारोगोंकी द्वि० | १२२ | रक्तका | ११८ | स्त्रावोंकी संप्राप्ति | १२२ |
| शिरो वस्त्रि विधि | १२३ | परिन्लायिक काल० | ११९ | पैतिक स्त्राव | १२३ |
| इति० | १२४ | हेतु विशेष में मंडल | १२० | श्लैथिक स्त्राव | १२४ |
| अथ नेत्र रोगाधिकार | १२५ | विशेष ॥ | × | साक्षि पातिक स्त्राव | १२५ |
| रः ॥ ॥ ॥ ॥ | × | पित्त विदग्ध दृष्टि | १२१ | पर्वणी काल० | १२६ |
| उस्का प्रमारा | १२६ | का लक्षणा ॥ | × | अलजील० | १२७ |
| उस्के अंग | १२७ | प्लैथ विदग्ध दृष्टि | १२२ | द्वि० | १२८ |
| नेत्र के अट हज़र | १२८ | लक्षणा ॥ | × | अनन्तर शुक्ल भाग | १२९ |
| रोग ॥ | × | धूम दर्शन ल० | १२३ | के रोग ॥ | × |
| तन्वान्न रीक्त विशेष | १२९ | ह्रस्व जान्य ल० | १२४ | उनके नाम और सं- | १३० |
| उनका सामान्य से- | १३० | नकुलान्ध्य ल० | १२५ | ख्या ॥ | × |
| विप्र कृष्ट सन्धि कृष्ट | × | गंभी रक ल० | १२६ | प्रस्तायाम काल० | १३१ |
| निदान ॥ | × | निमित्त काल० | १२७ | शुक्लार्म काल० | १३२ |
| संप्राप्ति | १३१ | अनिमित्त लिङ्ग ना | १२८ | रक्तार्म काल० | १३३ |
| दृष्टि रोग | १३२ | शका लक्षणा ॥ | × | अधि मासार्म काल० | १३४ |
| दृष्टि ल० | १३३ | इति० | १२९ | स्त्राय वर्म काल० | १३५ |

| | | | | | |
|-----------------------|-----|-------------------|-----|------------------|-----|
| शुक्तिजकाल० | ॥ | शीशिनाश्ल० | ॥ | शुक्लाक्षिपाक | २०२ |
| अर्जुनकाल० | ॥ | लगराल० | ॥ | अन्वतोवात | ॥ |
| पिष्टककाल० | ॥ | विषवर्त्मल० | ॥ | अन्लाधुयित | २०३ |
| शिताजालकाल० | ॥ | कुंचनल० | ॥ | शिरोत्पात | ॥ |
| शिरापिडिकाकाल० | १०७ | इति० | १०३ | शिरोद्वर्ष | ॥ |
| वलासप्रस्थितकालक्षणा॥ | ॥ | अथपक्ष्मरोग | ॥ | नेत्रकीसामताल० | २०४ |
| इति० | ॥ | पक्ष्ममनेहोनेवाके | ॥ | निरामताल० | ॥ |
| अथवर्त्मजरोग | १०० | रोगोंकेनाम॥ | ॥ | इति० | ॥ |
| उनकीनिरुक्ति | ॥ | पक्ष्मकीपल० | ॥ | नेत्ररोगोंकीचि० | २०५ |
| उनमेंहोनेवालेरोगों | ॥ | नवानरोगपक्ष्म | १०४ | इसकीसाध्यासाध्य | २०६ |
| केनामऔरसंख्या | ॥ | कोप॥ | ॥ | अत्रराशुक्त | २०७ |
| उत्संगपीडिकाल० | ॥ | पक्ष्मशातल० | ॥ | साधतमकाभीअव | ॥ |
| कुम्भिकाकाल० | १०६ | आश्रोतनविधि | १०५ | स्थाभेदसेकष्टसा | ॥ |
| पोथिकाकाल० | ॥ | पिंडीविधि | १०६ | ध्या॥ ॥ ॥ ॥ | ॥ |
| वर्त्मशर्कराल० | ॥ | जन्तुग्रन्थि | १०७ | इसकीसाध्याता | ॥ |
| अर्षीवर्त्मकाल० | ॥ | इति० | ॥ | औरभीअसाध्यल० | २०८ |
| शुष्काशीकाल० | १०९ | समस्तनेत्रकेरोग | ॥ | अक्षिपाकान्यय- | ॥ |
| अंजननामिकाकालक्षणा॥ | ॥ | उनकेवामऔरसं- | ॥ | लक्षणा॥ | ॥ |
| वहलवर्त्मभेद | ॥ | ख्या॥ ॥ ॥ | ॥ | अंजकाजातकाल० | २०९ |
| वर्त्मवन्धकभेद | ॥ | उनमेंआभियन्द्वा | १०८ | विडालकविधि | ॥ |
| कुष्ठवर्त्मभेद | ॥ | र॥ ॥ ॥ | ॥ | तर्पणाविधि | ॥ |
| वर्त्मकार्दमभेद | ॥ | वातिक | ॥ | पुटपाकविधि | २१३ |
| प्रपाचवर्त्मभेद | ॥ | पेन्निक | १०९ | अंजनविधि | ॥ |
| प्रक्षिप्रवर्त्म | १०९ | प्लेजिक | ॥ | दिकिस्ता | २१४ |
| अद्विन्दवर्त्म | ॥ | रक्तज | ॥ | इति० | २१६ |
| वातहतवर्त्म | ॥ | आधिमन्थनामअ- | २०० | करारोगाधिकार | ॥ |
| वर्त्नीर्षुद | ॥ | भियन्द् ॥ ॥ | ॥ | करारोगोंकेनाम- | ॥ |
| निमेष | ११२ | उनकेल० | ॥ | औरसंख्या | ॥ |
| | | हनाधिमन्थ | २०१ | करार्शुलकीसंज्ञा | ॥ |
| | | वातपर्याय | ॥ | पिपूर्वकल० | ॥ |

| | | | | | |
|----------------------|-----|-------------------------|-----|---------------------|-----|
| असाध्यता | २२३ | नासारोगाधिकारः | २३४ | सकालक्षरा ॥ | ५ |
| कर्णनादकालः | २२४ | उनके नाम और संख्या | २३५ | पक्क पीनस काल | २५५ |
| वाधिर्य | २२५ | पीनस कालः | २३६ | मासारोगों की चि० | २५६ |
| असाध्यवाधिर्य | २२६ | अनुरूपसंग्रह | २३७ | इति० | २५७ |
| एडेभेद | २२७ | पूतनस्य | २३८ | अथ मुखरोगाधिकारः | २५८ |
| कर्ण श्राव | २२८ | नासापाक | २३९ | उत्का स्वरूप | २५९ |
| कर्णकंडू | २२९ | पूय रक्त | २४० | मुखरोगों की संख्या | २६० |
| कर्णगूथ | २३० | क्षययुं | २४१ | उनके निदान | २६१ |
| प्रतिनाह | २३१ | आगनुज क्षययु | २४२ | ओष्ठ रोगों की निदान | २६२ |
| कृमिकर्ण | २३२ | संशयु | २४३ | पूर्वक संख्या | २६३ |
| कानमें पतंग भादि- | २३३ | दीप्ति ल० | २४४ | वातिक काल० | २६४ |
| जाने कालक्षरा | २३४ | प्रतिनाह ल० | २४५ | पैत्रिक काल० | २६५ |
| दो प्रकारकी कर्ण वि- | २३५ | स्त्रावल० | २४६ | प्लेथिक काल० | २६६ |
| द्रधि ॥ ॥ ॥ | २३६ | नासा शोष ल० | २४७ | सांनि पातिक काल० | २६७ |
| कर्ण पाक | २३७ | प्रति श्याय ल० | २४८ | रक्तज काल० | २६८ |
| पूति कर्ण | २३८ | उत्कासद्योजन काल | २४९ | मांसज काल० | २६९ |
| कर्णगत शोथ अर्ण- | २३९ | दान पूर्वक संप्राप्ति- | २५० | नेदोज काल० | २७० |
| अर्बुद काल० | २४० | लक्षरा ॥ | २५१ | अभिघातज काल० | २७१ |
| इनमें वातिक | २४१ | चयादि कृमजनित नि- | २५२ | ओष्ठ रोगों की चि० | २७२ |
| पैत्रिक | २४२ | दान पूर्वक संप्राप्ति ॥ | २५३ | प्रति सारसा विधि | २७३ |
| काफज | २४३ | वातिक काल० | २५४ | दन रोग उनके नाम | २७४ |
| कर्ण पाला ल० | २४४ | पैत्रिक काल० | २५५ | और संख्या | २७५ |
| उसमें परियौदक का | २४५ | प्लेथिक काल० | २५६ | शीताद काल० | २७६ |
| निदान सहित ल० | २४६ | सांनिवातिक काल० | २५७ | दन पुष्पुद काल० | २७७ |
| उपान्त ल० | २४७ | दुष्ट प्रति श्याय काल | २५८ | दन वैष्ट ल० | २७८ |
| उत्तन्थ काल० | २४८ | रक्तज काल० | २५९ | सौधिर ल० | २७९ |
| दुःख दर्दन ल० | २४९ | उनमें कृमि | २६० | महा सौधिर | २८० |
| परिलेहिन ल० | २५० | विकारानर | २६१ | परिदर ल० | २८१ |
| कर्णरोग चि० | २५१ | चैतीस संख्या पूरणा | २६२ | उप कुशल० | २८२ |
| इति० | २५२ | चिकित्सा भेदसे पीन | २६३ | वैदर्भ ल० | २८३ |

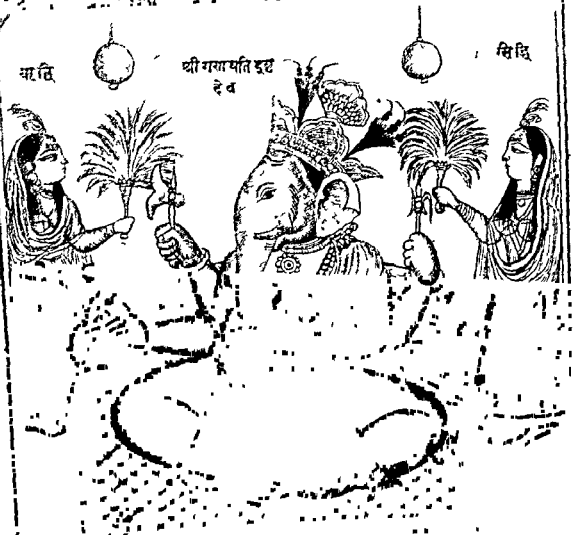
| | | | | |
|---------------------|-----|--------------------|--------------------|-----|
| खलिवर्द्धन ल० | २१५ | कच्छप ल० | विदारी ल० | २० |
| अधि मांसक ल० | २१६ | ताल्व बुद्ध ल० | मुख रोगों की चि० | २० |
| पंच दन्त नाडी | २१७ | मांस संघात ल० | सामान्य कंठ रोगों- | २०५ |
| दन्त विद्वधि | २१८ | ताल पुष्पुद ल० | की चिकित्सा ॥ | २ |
| दन्त वेष्ट रोगों की | २१९ | ताल शीघ्र ल० | समस्त मुख रोग व- | २०६ |
| चिकित्सा ॥ | २२० | उनकी चि० | सका निदान और सं० | २ |
| दन्त रोगान्तर उनके | २२१ | गल रोग | वातिक काल० | २० |
| नाम और संख्या ॥ | २२२ | उनके नाम और संख्या | पेनिक काल० | २० |
| वालन काल० | २२३ | पंचोरोहिणी का सा- | प्रेमिक काल० | २० |
| छमि दन्त ल० | २२४ | मान्य संप्रति ॥ | विलिंग गति विद्वेय | २०७ |
| भंजन क काल० | २२५ | वात जाया काल० | की नाडी ॥ | २ |
| दन्त हृद्य काल० | २२६ | पित्त जा काल० | समस्त मुख रोगों की | २० |
| दन्त प्राकीरा काल० | २२७ | कफ जा काल० | चिकित्सा ॥ | २ |
| कपालि काल० | २२८ | सन्निपात जा काल० | इति० | २०८ |
| श्याव दन्त क काल० | २२९ | रक्त जा काल० | अथ पिबाधि कारः | २० |
| काराल काल० | २३० | रक्त कारण दन्त की- | विष दो प्रकार का | २० |
| उनकी चि० | २३१ | मरक माहोर्ने से अ- | स्थावर विषके दश | २० |
| जिह्वा रोग | २३२ | वधि ॥ ॥ ॥ | आद्यय ॥ | २० |
| उनका निदान संख्या | २३३ | कंठ शाखूक ल० | जंगम विषके सोल | २० |
| वातज काल० | २३४ | अधि जिह्व क ल० | हू भाष्य ॥ | २ |
| पित्तज काल० | २३५ | वलय ल० | सामान्य स्थावर वि | २०९ |
| कफज काल० | २३६ | वलास भेद | षके कार्य ॥ | २ |
| आलस क ल० | २३७ | रक्त वृन्द ल | मूल विषका कार्य | २१० |
| उप जिह्वि काल० | २३८ | वृन्द ल० | पदादयका कार्य | २१ |
| उनकी चि० | २३९ | पात घ्नी ल० | फल विषका कार्य | २१ |
| अथ तालू रोग | २४० | गिलायु ल० | पुष्य विषका कार्य | २१ |
| उनके नाम और संख्या | २४१ | गल विद्वर्धिल० | त्वचा स्तर आदिके | २१ |
| गल श्लेष्मी काल० | २४२ | गन्धौष ल० | कार्य ॥ | २ |
| तुंडिकरी काल० | २४३ | स्वरघ्न ल० | क्षीर विषका कार्य | २१ |
| अभूष ल० | २४४ | मास नान ल० | घात विष कार्य | २१ |
| | | | २४५ | |

| | | | | | |
|-----------------------------------|-----|-----------------------|-----|------------------------|-----|
| कन्द विष कार्य | २६३ | गर कार्य | -- | जंगम विषकी वि० | ३१२ |
| दशगुरा | -- | लूना आदि जन्तु वि० | ३०४ | द्रुति० | ३१३ |
| उन गुराओं से विष- कार्य ॥ | -- | शेयों की उत्पत्ति नि० | × | स्त्रियोंके प्रदरदिरी | -- |
| विषलिप्त प्राख सेहत | २६४ | रुक्ति और संख्या ॥ | × | गीं का अधिकार ॥ | × |
| कालक्षरा ॥ | × | सामान्य उनके दंश- | ३०५ | उसका विप्र कृष्ट नि० | -- |
| उनके ज्ञानार्थ ल० | २६५ | लक्षरा ॥ ॥ ॥ | × | उस्का सामान्य ल० | ३१४ |
| जंगम विषोंके सामा- न्य कार्य ॥ | २६६ | असाध्यों का ल० | -- | प्लौष्टिक प्रदर काल | -- |
| तीक्ष्णतर जंगमोंमें | -- | आखू विषका कार्य | ३०६ | पेन्निक काल० | -- |
| सर्प ॥ ॥ ॥ | × | प्राणहर मूविक विष | -- | वातिक काल० | ३१५ |
| भोगि आदि योंके | २६७ | का कार्य ॥ | × | सन्निपातिक काल० | -- |
| काटे का लक्षरा ॥ | × | गिर गिटके कांटे का | -- | रक्तके बहुत निकलने | -- |
| देश काल विशेषमें | -- | लक्षरा ॥ | × | में उष म्व ॥ | × |
| काटेकी असाध्यता | × | विच्छूके विषकाल | ३०७ | असाध्य प्रदर रोग वा | ३१६ |
| दर वी कर का ल० | -- | असाध्य विच्छूके का | -- | ली कालक्षरा | × |
| दूषी विषके कार्य | ३०० | टेका लक्षरा ॥ | × | चिकित्सा निवृत्त्यर्थ- | -- |
| स्थान विशेषो स्थित- | ३०१ | कराभ दृष्ट काल० | -- | शुद्ध आर्तिव काल० | × |
| दूषी विषमें लक्षरा- | × | उच्चि टिङ्गके काटेका | -- | प्रदरकी वि० | -- |
| विशेष ॥ ॥ ॥ | × | लक्षरा ॥ ॥ | × | द्रुति० | ३१७ |
| दूषी विषका प्रकीर्ण | -- | विष वाले मेहक के- | ३०८ | सौमरोगाधिकारः | -- |
| समय ॥ ॥ ॥ | × | काटे काल० | × | उसकी निदान पूर्वक | -- |
| कुपित उसका पूर्व | -- | जलो का विष कार्य | -- | संभाषि ॥ | × |
| रूप ॥ ॥ ॥ | × | छिप कलीके विषका | -- | उस्का ल० | -- |
| दूषी विष भेद से वि- | ३०२ | रवन खजूरेका विष | -- | उस्की वि० | ३१८ |
| कार मेठ ॥ | × | कार्य ॥ ॥ ॥ | × | रूवाती सार काल अदि | ३१९ |
| दूषी विषकी निरुक्ति | -- | मूषक विष कार्य | -- | योगिन रोगाधि कारः | -- |
| दूषी विषके लाध्यवा | ३०३ | असाध्य मशक ल० | ३०९ | उनका निदान | -- |
| दिक ॥ ॥ ॥ | × | माक्षिका दंशा काल० | -- | योगिन रोगके नाम | -- |
| गर भेद | -- | व्याघ्रादि विषकाल० | -- | उनके ल० | ३२० |
| | | विषोहित काल० | ३१० | विद्वता सूची | ३२१ |
| | | स्थावर विषकी वि० | -- | विदोष जा | ३२५ |

| | | | | | |
|-----------------------|-----|----------------------|-----|-------------------------|-----|
| असाध्यता | २२ | समय पर प्रसव ति | २२ | ज्वरादियों का रोग वि | ३५९ |
| योनि कन्द का नि- | २३ | लंब में चिकित्सा ॥ | २३ | शैथिल्य के निदान वि | ३६० |
| दान ॥ ॥ ॥ | २४ | मूढ गर्भ की निदान | ३५६ | शैथिल्य ॥ ॥ ॥ | ३६० |
| लक्षणा | २५ | संप्राप्ति पूर्वक ल० | २५ | सूतिका रोग की वि० | ३६१ |
| वात जादि भेद से- | २६ | उसकी संख्या निरास | २६ | प्रसूता के निदान सप्त | ३६२ |
| लक्षणा० | २७ | चार प्रकार | २७ | यकी अवधि ॥ | ३६३ |
| योनि रोग की वि० | ३२६ | उसका ल० | ३२६ | जन रोग की संप्राप्ति ॥ | ३६३ |
| जसमें वन्ध्या की वि० | २८ | आठ प्रकार | ३२७ | जनका भति देखा से ल० | ३६४ |
| उसका ल० | २९ | आठ प्रकारान्तर | ३२८ | जान रोग की वि० | ३६५ |
| नदानत्व की वि० | ३० | असाध्य मूढ गर्भि | ३२९ | ज्ञति० | ३६६ |
| वन्ध्या वि० | ३२७ | णी लक्षणा ॥ | ३३० | अथवाल रोगाधि | ३६७ |
| गर्भ ग्रह औषध क | ३३८ | मूढ गर्भ का क्रम से- | ३३१ | कारः ॥ ॥ ॥ | ३६८ |
| थना वसर में गर्भ न | ३३९ | कारणार्थ क्रम ॥ | ३३२ | बाल ग्रहों के नाम | ३६९ |
| रहने का औषध ॥ | ३४० | गर्भ के मरणा में का | ३३३ | उनकी वन्धति | ३७० |
| क्रम से वि० | ३४१ | रणा ॥ | ३३४ | सामान्य ग्रह चुष्टों | ३७१ |
| गर्भ स्त्राव का निदान | ३४६ | असाध्य गर्भिणी ल० | ३३५ | व्यलक्षणा ॥ | ३७२ |
| उनका पूर्व रूप | ३४७ | योनि संवरण ल० | ३३६ | बाल ग्रहों का बाल | ३७३ |
| उनकी अवधि | ३४८ | मूढ गर्भ की वि० | ३३७ | ग्रहणा ॥ ॥ ॥ | ३७४ |
| गर्भ स्त्राव की वि० | ३४९ | हैदन प्रकार | ३३८ | दिशि ग्रह चुष्टों का | ३७५ |
| गर्भ पात के उपद्रव | ३५० | प्रसूता की योनि में | ३३९ | लक्षणा ॥ | ३७६ |
| गर्भ के स्थानान्तर | ३५१ | क्षता हिकी वि० | ३४० | सामान्य ग्रह चुष्टों | ३७७ |
| गमन में उपद्रव | ३५२ | प्रसूता के उदर में अ | ३४१ | की वि० | ३७८ |
| उसकी वि० | ३५३ | परा के उपद्रव | ३४२ | विशिष्ट ग्रह चुष्टों की | ३७९ |
| मासातु मासिक | ३५४ | उसकी वि० | ३४३ | चिकित्सा | ३८० |
| वात शुष्क गर्भ की- | ३५५ | मच्छल काल० | ३४४ | स्कन्द ग्रह चुष्टों की | ३८१ |
| चिकित्सा ॥ | ३५६ | उसकी वि० | ३४५ | चिकित्सा ॥ | ३८२ |
| प्रसव मास | ३५७ | प्रसूता के हित | ३४६ | स्कन्द यस्मार लगे | ३८३ |
| प्रसवनास आति क्र | ३५८ | सूतिका रोग का नि | ३४७ | की चिकित्सा ॥ | ३८४ |
| मक के रहे हुवे न | ३५९ | दान ॥ ॥ ॥ | ३४८ | राकुनी ग्रह चुष्ट की | ३८५ |
| र्भ की चिकित्सा ॥ | ३६० | व्याधि सामान्य स्वरू | ३४९ | चिकित्सा ॥ | ३८६ |

| | | | |
|--------------------------------------|-----|-------------------|-----|
| रेयती ग्रह शुद्ध कीचि | ३७९ | अथोत्तरखंड | ४७३ |
| पूतना ग्रह शुद्ध कीचि | ३७८ | वाजी करणाधिका | ७७ |
| गन्धपूतना ग्रह शुद्ध- चिकित्सा ॥ | ३८० | रः ॥ ॥ ॥ | × |
| तिलकुम्भ | ७७ | उसकाल० | ७७ |
| प्रतिपूतना ग्रह शुद्ध कीचि० ॥ ॥ ॥ | ३८१ | नपुंसककाल० | ७७ |
| मुखभंडिकाग्रह- शु० चि० ॥ ॥ ॥ | ३८२ | संख्या निदान | ७७ |
| जलाभिसन्नणमंत्र | ३८३ | असाध्यक्लेश | ४७४ |
| नेगमोयग्रहशु०चि० | ७७ | नपुंसककीचि | ४७५ |
| वालरोगोंकेनि०ल० | ३८५ | वाजीकरणाविधि | ७७ |
| तालुककल० | ३८६ | स्त्रीभजनविधि | ७७ |
| गहापद्मल० | ७७ | वाजीकरणा | ४७६ |
| कुकुराकल० | ३८७ | इति० | ४७८ |
| हुंडीयुदपाकल० | ७७ | रसायनाधिकारः | ४७९ |
| अहिपूतल० | ७७ | उसकाल० | ७७ |
| अजगल्लील० | ७७ | उसकाफल | ७७ |
| परिगर्भिकल० | ३८८ | उसकेउदाहरण | ७७ |
| दन्तोद्देशक रोग | ७७ | इति० | ४८३ |
| वालरोगोंकीचि० | ३८९ | | |
| वानककीकनीयसी | ७७ | | |
| मावा ॥ ॥ ॥ ॥ | × | | |
| मकारान्तरसे औषधोपायन॥ | ३९१ | | |
| म अवचन वालकोंके | ७७ | | |
| आभ्यन्तर ज्ञानोपाय ॥ ॥ ॥ ॥ | × | | |
| ज्वरकीचि० | ३९२ | | |
| इति० | ४७९ | | |

श्रीः
गणेश जी १





भावप्रकाशस्य पूर्वखण्डे

प्रथमो भागः।

प्रणम्य परमात्मानं भिषजां सुखहेतवे ।
 क्रियते रावकृष्णो न भाषा भावार्थबोधिनी ॥१॥
 गजमुखममरप्रवरं सिद्धिकरं विघ्नहर्तारम् ।
 गुरुमवगमनयनप्रदमिष्टकरीमिष्टदेवतां वन्दे ॥१॥
 आयुर्वेदागमनं क्रमेण येनाभवद्गमौ ।
 प्रथमं लिखामि तमहं नानातन्त्राणि संह्रिय ॥२॥

भाषा- मैं भावमिथ्र सिद्धिके करनेवालि और विघ्नके हरनेवालि गजके समान सुख ऐसे देवताओं मे श्रेष्ठ श्रीमहाराज गणेशजीको नमस्कार करता हूँ और आनरूपी नेत्रको देनेवालि गुरुजीको तथा चांछिन फलको देनेवालि कुलदेवता को नमस्कार करता हूँ ॥१॥

एष्वीपर आयुर्वेद का आगमन अर्थात् वैद्यशास्त्र का आना जिस क्रमसे हुआ उसको पहिले मैं ब्रह्मन से तन्त्रोंको देखकर लिखना हूँ ॥२॥

आयुर्वेदस्य लक्षणमाह

आयुर्हिताहितं व्याधिनिदानं शमनं तथा ॥

विद्यते यत्र विद्वद्भिः स आयुर्वेद उच्यते ॥३॥

भा० आयुर्वेद का लक्षण । आयुके हित और अहितवस्तुका कथन रोग का निदान तथा रोगकी शान्ती जिसमेंही उसको विद्वान् पुरुष आयुर्वेद कहते

आयुर्वेदस्य निरुक्तिमाह

अनेन पुरुषो यस्मादायुर्विन्दति वेत्ति च ।

तस्मान्मुनिवै रेष आयुर्वेद इति स्मृतः ॥४॥

(क) शरीर जीवयोर्योगे जीवनं तेनावच्छिन्नः काल आयुः । आयुर्वेद द्वारा युष्यारयनायुष्यारिणि च द्रव्यगुणकर्मणि ज्ञात्वा तेषां सेवनत्यागाम्यामारोग्येण आयुर्विन्दति । तेनैव हेतुना परस्याप्यायुर्वेत्ति च क्रम माह तत्रादौ ब्रह्मणः प्रादुर्भावः ॥ (क)

आयुर्वेद की निरुक्ति ।

भा० जिस कारण मनुष्य इससे आयु पाता है अथवा जानता है उस कारण वड़े सुमियोंमें इसको आयुर्वेद ऐसा कहा है ॥४॥

(क) शरीर और जीवके संयोगको जीवन कहते हैं उससे धिरेहृदे समय की आयु कहते हैं । आयुर्वेद के द्वारा आयुके हिन और अहिन द्रव्य गुणकर्मोंको जानकर उनके सेवन और त्यागसे अर्थात् हिन द्रव्य हिनगुण हिनकर्म इनका सेवन और अहिनद्रव्य अहिनगुण अहिनकर्म इनका त्याग इन दोनोंसे आरोग्यके साथ आयु पाता है । और इसी हेतुसे दूसरे की भी आयु जानता है (क)

विधाताऽथर्वसर्वस्वमायुर्वेदं प्रकाशयन् ।

स्व नाम्ना संहितां चक्रे लक्षश्लोकमयीं मृजुम् ॥५॥

ततः प्रजापतिं वसं दत्तं सकल कर्मसु ।

विधिर्धोनीरधिं साङ्गमायुर्वेदमुपादिशत् ॥६॥

भा० क्रमको कहते हैं । उसमें प्रथम ब्रह्मसे निकला ॥ ब्रह्मानीने, अथर्वके सारे आयुर्वेदकी प्रगट करके अपने नामसे लाखश्लोक की सरल संहिता बनाई ॥५॥ उसके अनन्तर सब कामोंमें चतुर ऐसे वृक्षप्रजापतिको ब्रह्मानीकी बुद्धिरूपी समुद्र ऐसे साष्टाङ्ग आयुर्वेदको पढ़ाया ॥६॥

अथ आयुर्वेद-लक्षणा चित्र १

श्री ब्रह्मा

रोगादि-प्र.

आयुर्वेद-वक्ता.

रोगादि निवृत्ति



अथ ब्रह्म संहिता प्रादुर्भावः चित्र २



अथ दक्ष मां चित्र ३



[अथ दक्षप्रादुर्भावः ॥] अथ दक्षः क्रियादक्षः स्वर्वे-
द्योवेदमायुषः । विद्यामास विद्वांसो सूर्य्यीशो सुर
सत्तमो ॥७॥

अश्विनी सुत प्रादुर्भावः ।

दक्षादधीत्य दक्षो वितनुतः संहितां स्वीयाम् ।
सकलचिकित्सकलोक प्रतिपत्ति विवृद्ध्ये धन्याम् ॥८॥
स्वयम्भुवः शिरश्छिन्नं भैरवेण रुषाऽथ तत् ।
अश्विभ्यां संहितं तस्मात्तौ यातौ यज्ञभागिनौ ॥९॥

भा० अनन्तर दक्ष प्रजापति से निकला । अनन्तर जो संपूर्ण क्रिया में च-
नुर ऐसे दक्ष प्रजापति ने सूर्य के पुत्र देवताओं में श्रेष्ठ विद्वान् अश्विनी ।
कुमारों को पढाया ॥७॥

अनन्तर अश्विनी पुत्र से प्रगट हुआ । अश्विनी कुमारों ने दक्ष प्रजापति
से पढकर सब वैद्य लोगों की क्रिया चानुर्यकी वृद्धि के अर्थ ब्रह्मन अच्छी अ-
पनी संहिता बनाई ॥ ८ ॥ ब्रह्मा का सिर क्रोधरूपी भैरव ने काटा उसको अ-
श्विनी कुमारों ने जोडा उस कारण वे यज्ञ के भागिज्वे ॥ ९ ॥

देवासुररणे देवा दैत्यैर्ये सक्षनाः कृताः ।

अक्षतास्ते कृताः सद्योदस्त्राभ्यामद्भुतं महत् ॥१०॥

वज्रिणोऽभूत् भुजस्तम्भः सदस्त्राभ्यां चिकित्सितः ।

सीमान्निपतितश्चन्द्र स्त्राभ्यामेव सुखीकृतः ॥११॥

भा० देवता और दैत्यों की लड़ाई में दैत्यों से जो देवता घायल हुवे थे उनको
उसी समय में बड़ी अद्भुतताके साथ अश्विनी कुमारों ने अच्छा कर दिया ॥१०॥

इन्द्र का हानि जकड़ गया था वह अश्विनी कुमारों ने अच्छा किया । चन्द्र
अपने नेत्र विशेष से गिर गया अर्थात् हीननेत्र हुआ था अश्विनी कुमारों हीने

आरम्भ किया ॥ ११ ॥

विशीर्षा दशनाः पूष्णा नेत्रे नष्टे भगस्य च ।
 शशिनी राजयक्ष्माऽभूदश्विभ्यान्ने चिकित्तिताः ॥ १२ ॥
 भार्गवश्चावनः कामी वृद्धः सन् विकृतिं गतः ।
 वीर्यवर्णा स्वरोपेतः कृतोऽश्विभ्यां पुनर्युवा ॥ १३ ॥
 एतेश्चान्यैश्च बहूभिः कर्मभिर्भिवजां चरी ।
 बभूवन्तु भृशं पूज्या विन्द्रादीनां दिवोकसाम् ॥ १४ ॥

भा० सूर्यके दंत गिरगये थे इन्द्रकी आँखें नष्ट होगई थीं, चन्द्रमा को राज यक्ष्मारोग होगया था वे अश्विनीकुमारों से अच्छे कियेगये ॥ १२ ॥

भोगकी इच्छावाला भार्गवच्यवन वृद्ध होनेसे बुरा क्रूरूप होगया था उस को अश्विनीकुमारों ने फिरसे सामर्थ्य और रंगरूप स्वर से युक्त नरुण किया ॥ १३ ॥ ये और बहूतसे कामोंके करनेसे वैद्यों में श्रेष्ठ अश्विनीकुमार इन्द्रादिक देवताओं के अत्यन्त पूज्यहुवे ॥ १४ ॥

अथेन्द्रप्रादुर्भावः ।

संहप्रयदस्त्रयोरिन्द्रः कर्म्मारीयतानि यत्नवान् ।
 आयुर्वेदं निरुद्धेगं तौ ययाचि शचीपतिः ॥ १५ ॥
 नासत्यौ सत्यसन्धेन शक्रेण किल याचितौ ।
 आयुर्वेदं यथाधीतं ददतुः शतमन्यवे ॥ १६ ॥

भा० अनन्तर इन्द्रसे प्रगटहुवा । यत्नवाले इन्द्रने अश्विनीकुमारों के इन कामोंको देखकर बहुत चमत्कारी वैद्यशास्त्रको उनसे माङ्गन (अर्थात् पढ़ने केवाले प्रार्थनाकी) ॥ १५ ॥ सत्यके प्रणवाले इन्द्रसे प्रार्थना कियेगये अश्विनीकुमारोंने जैसे आयुर्वेद पढ़ाया वैसे इन्द्रको दे दिया अर्थात् पढ़ाया ॥ १६ ॥

अथ भस्मिनीकुमारप्रा० चि० ५

ब्रह्माको
रा०

शीशजीडेहे

भस्मिनीकुमारपुरवैद्यदे०



अथ दुष्टप्रादु० चि० ५



नास्तत्याभ्यामधीत्येष आयुर्वेदं पातक्रतुः ।

अध्यापयामस वहूनात्रिय प्रसुरान् मुनीन् ॥१७॥

अथात्रिय प्रादुर्भावः।

एकदा जगदालोक्य गदाकुलमितस्ततः । चिन्तया

मास भगवानात्रियो मुनिपुङ्गवः ॥ १७ ॥ किं करोमि

क्व गच्छामि कथं लोकाः निशमयाः । भवन्ति साम

यान्नेतान्न शक्नोमि निरीक्षितुम् ॥ १८ ॥

दयालु रहमत्यर्थं स्वभावो दुरतिक्रमः ।

एतेषां दुःखतोदुःखं समापि हृदयेऽधिकम् ॥ २० ॥

भा० ————— ब्रह्म ने आयुर्वेद को अश्विनीकुमारों से पहले ही अत्रिया
दि ब्रह्म से मुनियों को पढ़ाया ॥१७॥ अतन्ना अत्रियसे प्रगटहवा । एक
समयमें मुनि श्रेष्ठ भगवान् अत्रियःजी सब जगह पर रोगसे फोड़ित संसार
को देखकर चिन्ता करने लगे ॥ १७ ॥ क्याकरूं कहाँजाऊँ कैसे लोग निरोग
होवेंगे । इन रोगियोंको देखनहीं सक्ता ॥ १८ ॥ मैं ब्रह्म दयाल हूँ स्वभाववर
ल नहीं सक्ता । मेरे मनमें इनके दुःख से अधिक दुःख होता है ॥ २० ॥

आयुर्वेदं पठिष्यामि नैरुज्याय शरीरिणाम् ।

इति निश्चित्य गतवान् आत्रियस्त्रिवशालयम् ॥२१॥

तत्र मन्दिर मन्दिरस्य गत्वा शक्रं ददर्श सः । सिंहास

न समासीनं स्तूयमानं सुरर्षिभिः ॥ २२ ॥

भा०-मनुष्यों के निरोग होनेके बाले वैद्यशास्त्र को पढ़ेगा । ऐसे निश्चय क
रके अत्रियजी स्वर्गमें गये ॥ २१ ॥ वहाँपर इन्द्र के मन्दिर में जाकर अत्रियजी
ने आयुर्वेद के बड़े आचार्यों- देवताओं के सिंहास-तेज से सूर्य के समान

अपनी कान्ती से दिशाओं को प्रकाश करने वाले - देवता और ऋषियों से स्तुति किये हुवे इन्द्र की सिंहासन पर बैठे हुवे देखा ॥ २२ ॥

भासयन्तं दिशो भासा भास्कर प्रतिमन्विषा ।
 आयुर्वेदं महाचार्य्य शिरोधार्य्य दिवोकसाम् ॥ २३ ॥
 शक्रस्तु तं निरीक्ष्येव त्यक्तसिंहासनो यथौ । नद
 त्रे पूजयामास भृशं भूरितपः कृशम् ॥ २४ ॥
 कुशलं परिपप्रच्छ तथा गमनकारणम् । समुनि
 र्वक्तुमारभे निजागमन कारणम् ॥ २५ ॥

भा० इन्द्र उनको देखने ही सिंहासन छोड़कर उनके आगे गया और बड़तनप से दुर्बल हुवे अत्रियजी का बड़ा सन्कार किया ॥ २३ ॥ २४ ॥ कुशल और आगमन का कारण पूछा । उस मुनिने अपने आगमन का कारण कहना प्रारम्भ किया ॥ २५ ॥

देव ! राजन्नराजासि दिवराव यतो भवान् । विधा
 त्वा विहितो यत्नान् त्रिलोकीलोकपालकः ॥ २६ ॥
 व्याधिर्भिव्यथिता लोकाः शोकाकुलितचेतसः ।
 भूतले सन्ति सन्नापं तेषां हन्तुं कृपां कुरु ॥ २७ ॥
 आयुर्वेदोपदेशं मे कुरु कारुण्यतो नृणाम् । तथे
 त्युक्त्वा सहस्वाक्षोऽध्यापयामास तं मुनिम् ॥ २८ ॥

भा० हे देवताओं के राजा नुम स्वर्गहीके राजा नहीं हो । क्यों कि ब्रह्माजी ने यत्न के साथ आपको तीनों लोकों के लोगों का पालन करने वाला बनाया है ॥ २६ ॥ शोक से व्याकुल चिन्तिते और रोग से पीड़ित लोग संसार में हैं उनके सन्नाप को दूर करनेके अर्थ कृपा कीजिये ॥ २७ ॥

मनुष्यों पर दया करके मुझे आयुर्वेद का उपदेश कीजिये । बहुत अच्छा यह कहकर इन्द्र ने उस मुनिको पढ़ाया ॥ २८ ॥

मुनीन्द्रः इन्द्रतः साङ्ग-मायुर्वेद मधीत्य सः । श्र
भिनन्द्य जमाशीर्भिराजगाम पुनर्मर्हीम् ॥ २८ ॥

अथात्रेयो मुनिश्रेष्ठो भगवान् करुणाकरः । स्वना
म्ना संहितां चक्रे वरचक्रानु कम्पया ॥ ३० ॥ ततो
ऽग्निवेशां भेडाच्च आनूकर्णं पराशरम् ॥ क्षीरपारिणं
च हारीत मायुर्वेदं मपाठयत् ॥ ३१ ॥

भा० उस मुनिराजने इन्द्रसे अष्टाङ्ग-सहित आयुर्वेदकी पढ़कर आशीर्वादान् से इन्द्रको प्रसन्न करके फिरसे पृथ्वीपर आये ॥ २८ ॥ दयावान् मुनिवर भगवान् अथात्रेय-नी ने मुनिकों के प्रसन्न करने अपने नामसे संहिता बनाई । ततोऽग्निवेशां भेडाच्च आनूकर्णं पराशरं क्षीरपारिणं च हारीत मायुर्वेदं मपाठयत् ॥ ३१ ॥

तन्त्रस्य कर्ता प्रथमः अग्निवेशोऽभवत्पुरा ॥ ततो
भेडादयश्चक्रुः स्वं स्वं तन्त्रं कृतानि च ॥ ३२ ॥ श्राव
यामासु रत्नैयं मुनिघृन्दे न वन्दितम् ॥ श्रुत्वा च ता
नि तन्त्राणि हृष्टोऽभूवत्रिनन्दनः ॥ ३३ ॥ यथाचत् सू
त्रितन्त्रस्मान् प्रहृष्टो मुनयोऽभवन् ॥

२९० पूर्वकाल में प्रथम तन्त्रके करनेवाले अग्निवेशोऽभवत्पुरा ॥ उसके अनन्तर भेडादिकों ने अपने-२ तन्त्र बनाये ॥ ३२ ॥ मुनिघृन्दोसे नमस्कार किये गये आश्रितजीको सुनाया । ३३ ॥ तन्त्रोंको सुनकर अत्रेयजी प्रसन्न हुये ॥ ३३ ॥ ठीक ठीक बनी इसकारण मुनिलोक प्रसन्न हुये ॥

दिवि देवर्षयो देवाः श्रुत्वा साध्वितितेऽब्रुवन् ॥ ३४ ॥
भरद्वाज प्रादुर्भावः ।

एकदा हिमवत्पार्श्वे वैवादागत्य सङ्गताः ॥ मुनयो
ब्रह्मस्तेषां नामभिः कथयाम्यहम् ॥ ३५ ॥ भारद्वा
जो मुनिवरः प्रथमं समुपागतः ॥ ततोऽङ्गिरस्ततो ग
र्गो मरिचिर्भृगुर्भार्गवौ ॥ ३६ ॥ पुलस्त्योऽगस्ति रसितो
वसिष्ठः सपराशरः ॥ हारीतो गौतमः सांख्यो मैत्रेय
श्चवनीऽपि च ॥ ३७ ॥

भा० स्वर्ग में देव ऋषि और देवता लोगोंने मुनकर वेलोग बहुत अच्छा ऐसा
कहने लगे ॥ ३४ ॥ भरद्वाज से प्रगट हुआ । एक समय में हिमालय के पास
वैवादागसे ब्रह्मसे मुनिलोग आकर मिले ॥ उनके नाम में कहता हूँ ॥ ३५ ॥
पहिले मुनिवर भारद्वाजजी आये ॥ अनन्तर अङ्गिरा और उसके अनन्तर
गर्ग मरिचि भृगु भार्गव ॥ ३६ ॥ और पुलस्त्य अगस्ति असित वसिष्ठ पराश
र सहित ॥ हारीत गौतम सांख्य मैत्रेय और च्यवन भी आये ॥ ३७ ॥

जमदग्निश्च गर्गश्च काश्यपः कश्यपोऽपि च ॥ ना
रदो वामदेवश्च मार्कण्डेयः कपिञ्जलः ॥ ३८ ॥ शा
शिडल्यः सहकौशिडन्यः शाकुनेयश्च शौनकेः ॥
आश्वलायन सांक्रत्यौ विश्वामित्रः परीक्षकः ॥ ३९ ॥
देवलो गालवो धौम्यः काम्य कात्यायनाचुभौ ॥

और जमदग्नि गर्ग काश्यप कश्यप ॥ नारद वामदेव मार्कण्डेय कपिञ्जल
कौण्डिन्य के साथ शान्दिल्य शाकुनेय शौनक ॥ आश्वलायन सांक्रत्य
॥ ३९ ॥ देवल गालव धौम्य काम्य कात्यायन दोनों ॥
कुशिको वादरायणः ॥ ४० ॥

अथ आत्रेय प्रादु चित्र ६

आत्रेयादिमुनि

इन्द्र करपती

देवसभा

आयुर्वेदाभ्यास



अथ भारद्वाज प्रादु चित्र ७

भारद्वाजादिमुनि

इन्द्र करपती

देवसभा

आयुर्वेदाभ्यास



हिरण्याक्षश्च लौगाक्षिः शरलोमा च गोभिलः ॥ वै
खानसा बालखिल्या स्तथैवान्ये महर्षयः ॥ ४१ ॥ ब्र
ह्मज्ञानस्य निधयो यमस्य नियमस्य च ॥ तपतस्ते
जसा दीप्ता ह्यमाना इवागनयः ॥ ४२ ॥ स्वापविष्टा
स्ते तत्र सर्वे चक्रुः कथामिमाम् ॥ धर्मार्थं काम
मोक्षाणां मूलमुक्तं कलेवरम् ॥ ४३ ॥

भा० और काङ्गायन वैजपाय कुशिक वादरायण ॥ ४० ॥ हिरण्याक्ष लौगा
क्षि शरलोमा गोभिल ॥ वैखानस बालखिल्य वैसेही और महर्षि लोग ॥
॥ ४१ ॥ जो ब्रह्मज्ञान के और यम नियम के भी समुद्र ॥ प्रज्वलित अग्नि के
समान तप और नेजसे दीप्त अर्थान् प्रकाशवाले ये सब आये ॥ ४२ ॥ वहाँपर
वेद-ज्ञे वे सब इस कथा को कहने लगे । कि धर्म अर्थ काम मोक्ष इनकी जड़
देह कहीं गई है ॥ ४३ ॥

तपःस्वाध्याय धर्माणां ब्रह्मचर्यं व्रतायुषाम् ॥
हर्त्तारः प्रसृता रोगाः यत्र तत्र च सर्वतः ॥ ४४ ॥ रो
गाः कार्प्यकरा बलक्षयकरा देहस्य चेष्टाहराः दृ
ष्टा इन्द्रियशक्तिसं क्षयकराः सर्वाङ्गपीडाकराः ॥
धर्मार्था विबलकाममुक्तिषु महाविघ्नस्वरूपा बला
त् प्राणानाशु हरन्ति सन्ति यदि ते क्षेमं कुतः प्राणि
नाम् ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

भा० तप वेदपाठ और धर्मों का तथा ब्रह्मचर्य व्रत आयु इनके हरण क
रनेवाले रोग यहाँ वहाँ सब जगह फैले हुए हैं ॥ ४४ ॥ रोग सुबलायन कर
नेवाले, और बलको क्षय करनेवाले, तथा शरीरकी चेष्टा हरनेवाले, और इन्द्रि
यकी शक्ति नष्ट करनेवाले देखे, और संपूर्ण शरीर में पीडा करनेवाले ॥ तथा
धर्म अर्थ और संपूर्ण काम मुक्ति इनमें बड़े विघ्नरूप ये रोग बलान्कार से प्राणियों
को शीघ्र हरते हैं जब ये रोग विद्यमान हैं तब प्राणियोंको सुख कहाँ अर्थान् नहीं

मिल सक्ता ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

तत्तेषां प्रशामायकश्चन विधि श्रिन्त्यो भवद्भिर्बु
धै र्योग्यैरित्यभिधाय संसदि भरद्वाजं मुनिं तेऽब्रु
वन् ॥ त्वं योग्यो भगवन् । सहस्रनयनं याचस्व
लब्धं क्रमा दायुर्वेद मधीत्य यं गदभयात्सुक्ता भ
वासो वयम् ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ इत्थं स मुनिभिर्योग्यैः
प्रार्थितो विनयान्वितैः ॥ भरद्वाजो मुनिश्रेष्ठा ज
गाम त्रिदशालयम् ॥ ४९ ॥

भा० तिस्रें उनके दूर होने के वास्ते आप ऐसे विद्वान् और योग्य पुरुषों से
कोई प्रकार सींचा जाना चाहिये इस तरह सभामें वे ऋषिलोग नाम लेकर
भरद्वाज मुनिसे बोले ॥ ४७ ॥ हे भगवन् तुम योग्य हो । इन्द्रसे प्रार्थना करो कि
प्राप्त किये जावे आयुर्वेद को क्रमके साथ पढ़कर इन रोगोंसे हमलोग छूट जावें
॥ ४८ ॥ इस तरह पर विनयकरके युक्त और योग्य मुनियोंसे प्रार्थना किये
गये वह मुनि श्रेष्ठ भरद्वाज जी महाराज स्वर्ग को गये ॥ ४९ ॥

तथेन्द्र भवनं गत्वा सुरर्षिं गणामध्यगम् ॥ दृष्टवान्
चृत्वहन्तारं दीप्यमानं भिवानलम् ॥ ५० ॥ दृष्ट्वैव स
मुनिं प्राह भगवान् मधवा मुदा ॥ धर्मज्ञ । स्वाग
तन्तेऽथ मुनिं तं समपूजयत् ॥ ५१ ॥ सोऽभिगम्य
जयाशीर्भिरभिनन्दत् सुरेश्वरम् ॥ ऋषीणां वचनं
सम्यक् श्रावयन् मुनिसत्तमः ॥ ५२ ॥

भा० उसी प्रकार इन्द्रके भवनमें जाकर देवता और ऋषियों के बीचमें बैठे
हुए चत्रासुरके मारनेवाले तथा अग्निके समान प्रकाशमान इन्द्रको देखा ॥ ५०
॥ उस भगवान् इन्द्रने मुनिको देखतेही आनन्द पूर्वक कहा ॥ हे धर्मके जानने

चाले ॥ तुम्हारा आना कुशल कीमके साथ हुआ इसप्रकार कुशल रहने के अनन्तर उस मुनीकी पूजाकी ॥ ५१ ॥ उस मुनि श्रेष्ठ भरद्वाजजी ने इन्द्रसे मिलकर और आशीर्वाद से प्रसन्न करके ऋषियोंका कहना अच्छी तरह सुनाया ॥ ५२ ॥

व्याधयो हि समुत्पन्नाः सर्व्वप्राणिभयङ्कराः ॥ ते
षां प्रणामनोपायं यथाबद्धक्तु मर्हसि ॥ ५३ ॥ तमुवा
च मुनिं साङ्गः मायुर्वेदं शतक्रतुः ॥ जीवेद् वर्षस
हस्राणि देही नीरुङ् निशम्य यम् ॥ ५४ ॥ सोऽन
न्तपारन्त्रिस्कन्ध मायुर्वेदं महासुनिः ॥ यथा वद
चिरान् सर्व्वं बुबुधे तन्मना शुचिः ॥ ५५ ॥

भा० संपूर्ण जीवोंकी भय देनेवाले रोग उत्पन्न हवेहैं ॥ उनके शमन होने का उपाय आप ठीक ठीक कह सकतेहो ॥ ५३ ॥ इन्द्रने अंगसहित आयुर्वेद उस ऋषिकी पढाया ॥ जिसकी सुनकर देही निरोग होकर सहस्र वर्ष जीताहै ॥ ५४ ॥ पवित्र और सकाग्रचिन्तनसे उस महासुनि भरद्वाजने तीन कौंडवाले अपार आयुर्वेदको अच्छी तरह पर थोड़े दिनोंमें सब जान लिया ॥ ५५ ॥

तेनायुः सुचिरं लेभे भरद्वाजो निरामयम् ॥ अन्या
नपि मुनींश्चक्रे निरुजः सुचिरायुषः ॥ ५६ ॥ तत्त
न्त्रजनित ज्ञानचक्षुषा ऋषयोऽखिलाः ॥ गुणान्
द्रव्याणि कर्माणि दृष्ट्वा तद्विधिमाश्रिताः ॥ ५७ ॥
आरोग्यं लेभिरे दीर्घमायुश्च सुखसंयुतम् ॥ आयु
र्वेदाक्त विधिनाऽन्येऽपि स्युर्मुनयो यथा ॥ ५८ ॥

चरकप्रादुर्भावः ।

यदा मत्स्यावतारेण हरिणा वेद उद्धृतः ॥ तदा प्रो-
 षश्च तत्रैव वेदं साङ्गमवाप्तवान् ॥ ५८ ॥ अथर्वा-
 न्तर्गतं सम्यक् आयुर्वेदं च लब्धवान् ॥ एकदा
 स महीवृत्तं द्रष्टुञ्चर इवागतः ॥ ६० ॥

भा० उससे भरद्वाजजी ने आरोग्यता के साथ बद्धत दिनतक आयु पाई
 । और मुनियों को भी निरोग और दीर्घायु किया ॥ ५८ ॥ सम्पूर्ण ऋषियों ने
 उस मन्त्र द्वारा उत्पन्न हुई ज्ञानरूपी नेत्रोंसे गुणद्रव्य और कर्मोंकी देखकर
 उसकी विधिको स्वीकार किया ॥ ५९ ॥ आरोग्य और सुखके सहित दी-
 र्घ आयुको पाया ॥ और भी मुनिलोग आयुर्वेदकी कही विधिसे सुखी औ-
 र दीर्घ आयुहुँवे ॥ ५८ ॥ ॥ चरकका प्रादुर्भाव । जब भगवान् ने म-
 त्स्यावतार लेकर वेद निकाला । तब वहीँपर शेषजीने अंग सहित वेद
 को पाया ॥ ५८ ॥ अथर्वण वेदके अन्तर्गत आयुर्वेदको अच्छे प्रकार हाँसि-
 ल किया ॥ एक समयमें वह शेषजी पृथ्वीका समाचार देखनेको जासूस
 के मानिंद आये ॥ ६० ॥

तत्र लोकान् गैर्यस्तान् व्यथया परिपीडितान् ॥
 स्थलेषु बहुषु व्यग्रान् म्रियमाणान्श्च दृष्टवान् ॥
 ॥ ६१ ॥ तान् दृष्ट्वा तिरयायुक्त स्तेषां दुःखेन दुःखितः
 ॥ अनन्तश्चिन्तयामास रोगोपशमकारणम् ॥ ६२ ॥
 सञ्चिन्त्य स स्वयं तत्र मुनेः पुत्रो बभूवह ॥

भा० वहाँपर बद्धतसे स्थानोंमें रोगोंसे ग्रसित और दुःखसे पीडित
 व्याकुल मरेसे लोगोंको देखा ॥ ६१ ॥ उनको देखकर बद्धत दयावाले
 और उनके दुःखसे दुःखित शेषजी रोगके शमन होनेका उपाय तो-
 चने लगे ॥ ६२ ॥ बाद अच्छी तरहपर सोचकर शेषजीने खुद
 वहाँपर वेद और वेदांगके जाननेवाले प्रसिद्ध और विद्युद्ध

भारतव. सु

भारतव. सु

भारतव. सु

भारतव. सु

अंगिरा

यमद



चरक प्रादुर्भूतः चित्रः ६



चरक सूत्री



प्रसिद्धस्य विशुद्धस्य वेदवेदाङ्ग वेदिनः ॥ ६३ ॥ यत्
 श्वर इवायातो न ज्ञातः केन विद्यतः ॥ तस्माच्चरक
 नाम्नाऽसौ विख्यातः क्षितिमण्डले ॥ ६४ ॥ स भा
 ति चरकाचार्य्यो वेदाचार्य्यो यथा दिवि ॥ सहस्र
 वदनस्यांशो येन ध्वंसो रुजां कृतः ॥ ६५ ॥ अत्रिय
 स्य मुनिः शिष्या अग्निवेशादयोऽभवन् ॥

भा० मुनिके पुत्र ज्ञवे ॥ ६३ ॥ क्यों कि जिस कारण जासूस के से श्राये ।
 और किसीसे नहीं जाना उस कारण यह चरक नाम से संसार में प्रसिद्ध हु
 वा ॥ ६४ ॥ जिसने रोगों का नाश किया वह शेषजीका अंश चरकाचार्य्य
 पृथ्वी में शोभते हैं जैसे स्वर्ग में वेदाचार्य्य शोभते हैं ॥ ६५ ॥ अग्निवेशादि
 क ब्रह्मणसे मुनि अत्रियजी के शिष्य ज्ञवे ॥

मुनयो बहवस्ते श्व कृतं तन्त्रं स्वकं स्वकं ॥ ६६ ॥
 तेषां तन्त्राणि संस्कृत्य समाहृत्य विपश्चिता ॥ च
 रकेनात्मनो नाम्ना ग्रन्थोऽयं चरकः कृतः ॥ ६७ ॥

धन्वन्तरि प्रादुर्भावः ।

एकदा देवराजस्य दृष्टिर्निपतिता भुवि ॥ तत्र तेन न
 रा दृष्टा व्याधिभिर्भृशपीडिताः ॥ ६८ ॥ तान् दृष्ट्वा
 हृदयं तस्य दयया परिपीडितम् ॥ दयार्द्रं हृदयः श
 क्रो धन्वन्तरि मुवाच ह ॥ ६९ ॥

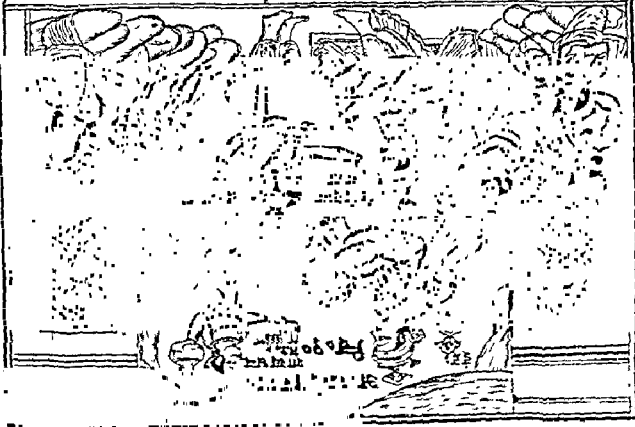
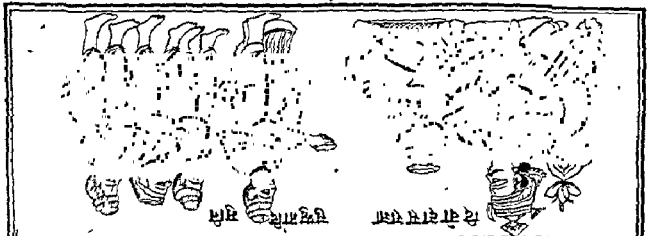
भा० उन्होंने भी अपने अपने ग्रन्थ किये ॥ ६६ ॥ बहुत अच्छी बुद्धि वाले च
 रक ने उनके ग्रन्थों को लाकर और ठीक करके अपने नाम से यह चरक

ग्रन्थ बनाया ॥ ६९ ॥ धन्वन्तरी का प्रादुर्भाव । एक समय में इन्द्र की दृष्टी पृथ्वीपर पड़ी ॥ उसमें उसने रोगसे अत्यन्त पीड़ित मनुष्य देखे ॥ ६७ ॥ उनको देखकर इन्द्र का हृदय व्यासे अत्यन्त क्लेशित हुआ ॥ व्यासे सींचे जू वे चित्तवाले इन्द्र ने धन्वन्तरि से कहा ॥ ६८ ॥

धन्वन्तरि । सुर श्रेष्ठ । भगवान् । किञ्चिदुच्यते ॥
 योग्यो भवसि भूतानामुपकारपरो भव ॥ ७० ॥ उप
 काराय लोकानां केन किन्न कृतं पुरा ॥ त्रैलोक्याधि
 पतिर्विष्णुरभून्मत्स्यादिरूपवान् ॥ ७१ ॥ तस्मात्त्वं
 पृथिवीं याहि काशीमध्ये नृपो भव ॥ प्रतीकाराय ।
 रोगाणां आयुर्वेदं प्रकाशाय ॥ ७२ ॥ इत्युक्त्वा सुर
 शार्दूलः सर्वभूतहितेप्सया ॥ समस्त आयुषो वेदं
 धन्वन्तरि सुपादिशत् ॥ ७३ ॥ अधीत्य चायुषो
 वेदमिन्द्रात् धन्वन्तरिः पुरा ॥ आगत्य पृथिवीं का
 श्याञ्जातो वाङ्मज्जवेश्मनि ॥ ७४ ॥

भा० हे देवताओं में श्रेष्ठ भगवान् धन्वन्तरिकुल कहता हूँ ॥ आप योग्य हो प्रारिण्योके उपकार में तत्पूर हूजिये ॥ ७० ॥ पहिले लोगोंके उपकारके वास्ते किसने क्या नहीं किया ॥ तीन लोकके मालिक भगवान ने मत्स्या दि रूपोंके धारण किया ॥ ७१ ॥ तिससे तुम पृथ्वीपर जाओ और काशीके बीच में राजा बनो ॥ रोगोंके दूर होनेके वास्ते आयुर्वेदको प्रकाश करो ॥ ७२ ॥ इस प्रकार से कहकर इन्द्रने सम्पूर्ण जीवोंके हितकी इच्छासे समस्त आयुर्वेद धन्वन्तरिको पढ़ाया ॥ ७३ ॥ पहिले धन्वन्तरिने आयुर्वेदको इन्द्रसे पढ़कर अनन्तर पृथ्वीपर आकर काशीमें वाङ्मज्जके घरमें जन्म लिया ॥ ७४ ॥

नाम्ना तु सोऽभवत् रव्यातो दिवोदास इति क्षितौ ॥



वालस्य विरक्तोऽभूच्चार सुमहत्तपः ॥ ७५ ॥ यत्ने
न महता ब्रह्मा तं काश्यामकरोद्धृपं ॥ ततो धन्वंत
रिलोकैः काशीराजोऽभिधीयते ॥ ७६ ॥ हिताय देहि
नां स्वीया संहिता विहिताऽमुना ॥ अयं विद्यार्थिना
लोकान् संहितान्ता मपाठयत् ॥ ७७ ॥

सुश्रुत प्रादुर्भावः ।

अथ ज्ञानदृशा विश्वामित्र प्रभृतयोऽविदन् ।

अयं धन्वन्तरिः काश्यां काशिराजोऽयमुच्यते ॥ ७८ ॥

विश्वामित्रो मुनिस्तेषु पुत्रं सुश्रुतं सुकृत्वान् ॥

वत्सः वाराणसीं गच्छ त्वं विश्वे श्वरवल्गुभासू ॥ ७९ ॥

तत्र नाम्ना दिवोदासः काशिराजोऽस्ति वाङ्मजः ॥

स हि धन्वन्तरिः साक्षादायुर्वेदं विदो वरः ॥ ८० ॥

भा० वह एष्वीमें दिवोदास इस नामसे प्रसिद्ध हुआ । बालक पने में ही विरक्त
हुआ और बहुत बड़ा तप किया ॥ ७५ ॥ ब्रह्माजी ने बड़े यत्न से उनको काशी
का राजा बनाया ॥ तब से लोग धन्वन्तरि को काशीराज कहने लगे ॥ ७६ ॥
अनन्तर ब्रह्मने लोगोंके हितार्थ अपनी संहिता बनाई ॥ और विद्यार्थी लो
गोंको वह संहिता पढ़ाई ॥ ७७ ॥ सुश्रुत का प्रादुर्भाव । अनन्तर ज्ञान व
धुसे विश्वामित्रादि मुनियोंने जाना । कि यह धन्वन्तरी है जिसको काशीमें
लोग काशीराज कहते हैं ॥ ७८ ॥ उन मुनियों मेंसे विश्वामित्र मुनिने अपने
पुत्र सुश्रुत से कहा ॥ कि हे पुत्र तुम विश्वेश्वर की प्यारी काशी को जाओ ॥
७९ ॥ वहाँ पर वाङ्मज का पुत्र दिवोदास इसनाम से काशीराज है ॥ वह आ
युर्वेद जाननेवालों में श्रेष्ठ साक्षात् धन्वन्तरी है ॥ ८० ॥

आयुर्वेदं ततोऽधीष्व लोकोपकृतिहेतवे ॥ सर्व

प्राणिद्वयातीर्थसुपकारो महामखः ॥ ८१ ॥ पितुर्व
 चनमार्कण्य सुश्रुतः काशिकां गतः ॥ तेन सार्द्धं
 समध्येतुं मुनिसूनुशतं यथौ ॥ ८२ ॥ अथ धन्व
 न्तरिं सर्वे वानप्रस्थाश्रमे स्थितम् ॥ भगवन्तं सु
 रश्रेष्ठं मुनिभिर्बह्वभिः स्तुतम् ॥ ८३ ॥ काशिराजं
 दिवोदासं तेऽपश्वन्विनयान्विताः ॥ स्वागतञ्च
 इतिस्माह दिवोदासं यशोधनः ॥ ८४ ॥ कुश
 लं परिपप्रच्छ तथा गमनकारणम् ॥

भा० सम्पूर्ण जीवों की दया है वह तीर्थ है और उपकार बड़ा यज्ञ है ति
 स्स लोगों के उपकार के अर्थ आयुर्वेद को पढ़ो ॥ ८१ ॥ पिताका वचन सु
 नकर सुश्रुत काशी को गया ॥ उसके साथ पढ़नेके अर्थ सौ मुनियों के
 पुत्र गये ॥ ८२ ॥ अनन्तर विनय युक्त उन सब मुनियों के पुत्रोंने वान
 प्रस्थाश्रम में स्थित देवताओं में श्रेष्ठ और बह्वनसे मुनियों से स्तुति कि
 ये ज्ञेय दिवोदास नाम काशिराज धन्वन्तरि की देवता ॥ ८३ ॥ यश है धन
 जिनका ऐसे दिवोदासने अच्छा आनाज्ञवा अर्थात् बड़ी कृपाकी ऐसा क
 हा और कुशल तथा आगमन का कारण पूछा ॥

ततस्ते सुश्रुतद्वारा कथयामासुरुत्तरम् ॥ ८५ ॥
 भगवान्मानवान्दृष्ट्वा व्याधिभिः परिपीडितान् ॥
 क्रन्दतो म्रियमाणांश्च जाताऽस्माकं हृदि व्यथा ॥
 ८६ ॥ आमयानां शमोपायं विज्ञातुं वयमागताः ॥

भा० तब उन्होने सुश्रुत के द्वारा अच्छी तरह पर कथन किया ॥ ८५ ॥ ८५
 हे भगवान् रोगोंसे दुखी और रोते-झूँवे मरेसे मनुष्योंकी देखकर हमारे हृद
 यमें पीड़ा उत्पन्न हुई ॥ ८६ ॥ रोगों का उपाय जाननेके वास्ते हमलोग
 आये हैं ॥

आयुर्वेदं भवान् अस्मान्मध्यापयतु यत्नतः ॥ ८३ ॥
 अङ्गीकृत्य वचस्तेषां नृपतिस्तानुपादिशन् ॥ व्या
 ख्यातन्तेन ते यत्नाज्जगृह्णसुनयो मुदा ॥ ८४ ॥ का
 शिराजं जयाशीर्भिरभिनन्द्य मुदान्विताः ॥ सुश्रुता
 द्याः सुसिद्धार्था जग्मुर्गेहं स्वकं स्वकम् ॥ प्रथमं
 सुश्रुतस्तेषु स्वतन्त्रं कृतवान् स्फुटम् ॥ सुश्रुतस्य
 सखायोऽपि पृथक् तन्त्राणि तेनिर ॥ ८५ ॥ सुश्रु
 तेन कृतं तन्त्रं सुश्रुतं बह्वभि र्यतः ॥

भा० आप यत्नके साथ आयुर्वेद हमलोगों को पढ़ाइये ॥ ८३ ॥ उनका
 कहना स्वीकार करके राजनि उनको पढ़ाया ॥ उनसे पढ़ायेज्जवेको उन मुनि
 यों ने यत्नके साथ खुशीसे गृहण किया ॥ ८४ ॥ अच्छी तरह पर सिद्ध ज्जवे
 प्रयोजनवाले आनंदयुक्त सुश्रुतादि मुनियोंने काशिराज को जयाशीर्वादीसे
 प्रसन्न करके अपने अपने घरकी गये ॥ ८५ ॥ उनमें पहिले सुश्रुतने अप
 ने तन्त्रकी स्पष्ट किया ॥ सुश्रुतके मित्रोंने भी अपने तन्त्रोंकी अलग व
 नाया ॥ ८५ ॥ सुश्रुत के खनायेज्जवे तन्त्र की बह्वतोंने अच्छी तरह पर
 त्ना इसवास्ते ॥

तस्मात्तत्सुश्रुतं नाम्ना विख्यातं क्षितिमराडले ॥

॥ ८९ ॥

इत्यायुर्वेद प्रकरणे नृणां प्रादुर्भावः

आयुर्वेदाब्धि मध्यादतिमतिमुनयो योगरत्नानि
 यत्ना लब्ध्वा स्वे स्वे निबन्धे दधुर खिलजन व्या
 धिविध्वंसनाय ॥ तत्तद्गन्थाद् गृहीतैः सुवचनम
 सिभिर्भावमिथैश्चिकित्सा शास्त्रे जाडान्धकारं

प्रशमयितुमिमं संविधत्ते प्रकाशम् ॥ १ ॥ ॥

श्रीपतिपदप्रसादादाशीर्भिर्भूमिदेवानाम् ॥

भावप्रकाशनाम्ना ग्रन्थोऽयं पठ्यतां सर्वैः ॥ २ ॥

एतस्य निबन्धस्य फलं चिकित्सा पुरुषस्य पुरुषस्तु च
तुर्विंशति तत्त्वजीवात्म समवायस्तस्माच्चतुर्विंशति तत्त्वा
नां जीवात्मनश्च स्वरूप निरूपणाय सृष्टिक्रममाह । (ख)

भा० सुश्रुत नाम से घृथ्वी पर प्रसिद्ध ज्ञवा ॥ ६१ ॥ इस तरह पर आयुर्वेद
के प्रकरणों में मनुष्यों का प्रादुर्भाव ज्ञवा है ॥

बहुत बुद्धिवान् मुनियों ने आयुर्वेद रूपी समुद्र के बीच में से योगरूपी रत्नों
को यत्नसे पाकर सब लोगोंके रोग दूर होने के वास्ते अपने २ ग्रन्थों में स्थापन
किया ॥ उन २ ग्रन्थों से लिये ज्ञेय अच्छे २ वचनरूपी मणियों से भाव मिश्रके
चिकित्सा शास्त्र में जो जाड्यरूपी अन्धकार है उसको दूर करने के वास्ते इस प्र
काश को बनाया है अर्थात् भावप्रकाश नाम ग्रन्थ को बनाया है ॥ १ ॥

श्रीभगवान के चरणों के प्रसाद से और ब्राह्मणों की आशीर्वाद से इस ग्रन्थको
भावप्रकाश नाम से स्वपदें ॥ २ ॥

इस ग्रन्थके सन्दर्भका प्रयोजन पुरुषकी चिकित्सा अर्थात् रोगका प्रतीका
रहै । और पुरुष तो चौबीस तत्त्व जीव आत्मा इनका समवाय अर्थात् मेल है
निस्से चौबीस तत्त्वोंका और जीवात्मा के स्वरूप निरूपण के वास्ते सृष्टिका
क्रम कहते हैं ॥ (ख) ॥

आत्माज्योतिश्चिदानन्द रूपो नित्यश्च निस्पृहः ॥

निर्गुणोः प्रकृतेर्योगात्सगुणः कुरुते जगत् ॥ १ ॥

सगुण इच्छादि युक्तः ॥ (ग)

सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणास्ते प्रकृतेः समाः ॥ सा ज

डापि जगत्कर्त्री परमात्म चिद्व्ययात् ॥ २ ॥

सतः साधोभीवः सत्त्वं प्रकाशकं ज्ञानं सुखहेतुः रजोरागा

त्मकं दुःखहेतुः ताम्यति ग्लानिं प्राप्नोति अनेनेति तमः आव
रकं मोहहेतुः । ते गुणाः समाः प्रकृति रित्यर्थः तथा स
ति न्यूनाधिकगुणाः विकृतिः अथ सुश्रुतमुपदिशान् धन्व
न्तरिः (ख) ॥ [प्रकृतेः स्वरूप विशेषणमाह ।]

भा० आत्मा प्रकाश और ज्ञानरूप तथा नित्य निरिच्छ निर्गुण है परंतु प्रकृति
के योगसे सुगुण होकर जगत को करता है ॥ १ ॥ सुगुण अर्थात् बुद्धादिकर
के युक्त (क) ॥ सत्व रज तम इस तरह पर प्रकृति के वे सम गुण हैं । वे प्र
कृति जड़ जड़ भी अविनाशी ज्ञानरूप परमात्मा के चिदाभास से जगत को उत्प
न्न करने वाली है ॥ २ ॥ साधु नाम उत्तम जो भाव अर्थात् धर्म को सत्व कह
ते हैं वह प्रकाश करने वाला ज्ञान सुख का हेतु है ॥ रज इच्छा प्रीतिवाला
दुःख का हेतु है । तम ग्लानि को देनेवाला और बुद्धि को आच्छादन करने
वाला मोह का कारण है । वे गुण समझे प्रकृति कहलाते हैं । और जो न्यूना
धिक हूवे विकृति कहलाते हैं ॥ (क) ॥

अनन्तर सुश्रुत को उपदेश करते हूवे धन्वन्तरि ने ॥ (ख) ॥
प्रकृति के स्वरूप विशेष को कहा है ॥

सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्त्व रजस्तमोलक्षणा मष्टरू
पमखिलस्य जगतः सम्भवहेतुरव्यक्तं नामेति ॥ (ग) ॥

अस्यायमर्थः । (घ) अव्यक्तं न व्यज्यते स्मेति अव्यक्तं
मूलप्रकृत्य परपर्यायं ततः सर्वभूतानां कारणं समवा-
यिकारणं अकारणं न विद्यते कारणं यस्य तत् सत्त्व रज
स्तमोलक्षणां सम सत्त्वरजस्तमः स्वरूपं अष्टरूपं अव्यक्तं
महान् अहङ्कारः पञ्चतन्मारीत्यष्टौ रूपाणि यस्य तत्
यत् इन्द्रियाणां महाभूतानाञ्च कारणतया महदादयोऽ
पि सप्त प्रकृतयः सवमखिलस्य जगतः सम्भवहेतुरव्यक्तं

मित्युपसंहारः ॥ (६)

भा० सम्पूर्णा जीवों का कारण और अकारण अर्थात् आये सबका कारण और अपना कोई कारण नहीं और सत्त्व रज तम स्वरूपवाला अष्टरूप संसृष्टी जगत का उत्पत्ति हेतु अव्यक्त नाम है ॥ (ग) ॥

इसका अर्थ यह है कि (घ) । जो प्रगट नहीं होता वह अव्यक्त है अर्थात् मूल प्रकृति का दूसरा पर्याय है । जिसे सब भूतों का कारण अर्थात् सम वायि कारण नव्याधिकोंके मतमें द्रव्य गुणों का सम्बन्ध समवाय होता है । और यहाँ सांख्यके मत में द्रव्य द्रव्य का सम्बन्ध जिसको संयोग सम्बन्ध कहते हैं वह समवाय है ॥ अकारण नहीं है कारण जिसका वह अकारण सम सत्त्व रज तम स्वरूप और अष्टरूप नाम अव्यक्त महान् अहंकार और पंच तन्मात्रा अर्थात् रूप रस गंध शब्द स्पर्श यह आठ रूप हैं जिसके वह अष्टरूप जैसे इन्द्रियों का अर्थात् चक्षु श्रोत्र जिह्वा नासिका और त्वचा इनका तथा महा भूतोंका अर्थात् पृथ्वी जल तेज वायु आकाश इनके कारण रूपसे महदादिकभी सात प्रकृति होते हैं ॥

इस प्रकार संपूर्ण जगत् के उत्पत्ति का हेतु अव्यक्त है ॥ (६)

[प्रकृति पुरुषयोः साधर्म्यमाह ।]

उभावप्यनादी उभावप्यनन्तो उभावप्यलिङ्गा
बुभावपि नित्या बुभावप्यपरा बुभावपि सर्वगतौ
इति उभावपि नित्यौ लयं क्वचिदपि न यातः उभा
वप्यपरौ न विद्यते परोऽपरो याभ्यान्तावपरौ (च)

अथातो नयो वैधर्म्यमाह ।

एकातु प्रकृतिरचेतना त्रिगुणा बीजधर्मिणी प्रस
वधर्मिराय मध्यस्थधर्मिणी चेति अचेतना जडा त्रिगु
णा तुल्यगुण त्रयात्मिका बीजधर्मिणी सर्वेषां महदादी
नां विकाराणां बीजत्वेनावस्थित प्रसवधर्मिणी पुरुषे

साक्रान्ताक्षोभंप्राप्य सम्यगतिक्रम्य महदहङ्कारा
दि क्रमेण जगतः प्रसवित्नी अमध्यस्थधर्म्मिणी सुख
दुःख भोग भोगिनी ॥ (छ) ॥

न तु सुखदुःख भोगादुदासीना पुरुषस्तु चेतनावान्
निर्गुणाऽप्रसवधर्म्मा बीजधर्म्मा मध्यस्थधर्म्मा चेति (ज)

भा० प्रकृति और पुरुषका साधर्म्य अर्थात् समान धर्मता कहते हैं।
दीनों अनादि दीनों अनंत दीनों अलक्षणा दीनों नाश रहित दीनों अप
र अर्थात् जिनके परे कोई नहीं और दीनों सबमें व्याप्त इस प्रकार सा
धर्म्य है। दीनों नित्य अर्थात् कभीभी नाशकी नहीं प्राप्त होते दीनों अ
पर, अपरि नहीं है परे जिन्हेंसे ॥ (च) ॥

साधर्म्य कथन करनेके अनन्तर विरुद्ध धर्म के देरवने से उनका वै
धर्म्य कहते हैं। प्रकृति तो एक और जड़ तीन गुणवाली बीज ध
र्मवाली अर्थात् सब महदादि कों की बीजरूप होकर रहने वा
ली तथा प्रसवधर्मवाली अर्थात् महत्तत्त्व अहंकारादि
क्रमसे जगतको उत्पन्न करनेवाली अमध्यस्थ धर्मवाली अर्थात् सुख
दुःखके भोगको भोगनेवाली इस प्रकार प्रकृति पुरुषोंका वैधर्म्य है।
अचेतना नाम जड़ अर्थात् ज्ञानसे रहित त्रिगुणा तीनगुणवाली बीजधर्मि
णी अर्थात् सब महदादि विकारोंके बीजरूप होके रहनेवाली प्रसवधर्मि
णी अर्थात् पुरुषसे आक्रान्त हुई क्षोभकी पाकर महत्तत्त्व अहंकारादि
क्रमसे जगतको उत्पन्न करनेवाली अमध्यस्थ धर्म्मिणी सुखदुःखके
भोगको भोगनेवाली ॥ (छ) ॥

नकि सुखदुःखके भोगसे तटस्थ होनेवाली। पुरुष तो चेतनावाला और
र निर्गुण तथा अप्रसवधर्म्मवाला अबीजधर्म्मवाला और मध्यस्थ ध
र्म्मवाला इस प्रकार वैधर्म्य है ॥ (ज)

निर्गुणाः अविद्यमान् सत्त्वादिगुणाः । (क) ॥

अबीजधर्म्मा महाप्रलये महदादीनां विकाराणां प्रकृता

विव तस्मिन्नवस्थानात् मध्यस्थधर्मा सुखदुःखे
च्छाद्वेषादिभ्यः उदासीनः ॥ (ज) ॥

[प्रकृतेर्नामानि आह ।]

प्रधानं प्रकृतिः शक्तिर्नित्या चाविकृतिस्तथा ॥
एतानि तस्या नामानि पुरुषं या समास्थिता ॥ ३ ॥

गुराणाह ।

सत्त्वं रजस्तमस्त्रीणि विज्ञेयाः प्रकृतेर्गुराः ॥ तैश्च
युक्तस्य चित्तस्य कथयाम्यखिलान् गुराणान् ॥ ४ ॥

अथ सत्त्वादि युक्तस्य मनसो गुराणाह ।

आस्तिक्यं प्रविमज्य भोजन मनुत्तापश्च तथ्यं वचो ।
मेधाबुद्धि धृतिद्वामाश्च करुणा ज्ञानञ्च निर्दम्भता ॥
कर्मानिन्दितमस्पृहञ्च विनयो धर्मः सदैवादरा ।
देते सत्त्वगुराण्वितस्य मनसो गीता गुराणा ज्ञानिभिः ॥ ५ ॥

भा० निर्गुराः सत्त्व रज तम इन तीन गुराणां से रहित ॥ (ज) ॥ अवीज
धर्मा महा प्रलय में महदादि विकारिकों प्रकृतिके मानिंद उसमें नरहनेसे
मध्यस्थ धर्मा सुखदुःख इच्छा द्वेषादिकों से उदासीन अर्थात् बे प्रयोजन
॥ (ज) ॥ ॥ प्रकृतिके नाम कहते हैं ॥ प्रधान प्रकृति शक्ति नित्या
अविकृति ये उसके नाम हैं जो पुरुषका आश्रय करके रहती है ॥ ३ ॥

॥ प्रकृतिके गुरा कहते हैं ॥ सत्त्व रज तम ये तीन प्रकृतिके गुरा जनि गये हैं
। उनसे युक्त चित्तके सब गुरा कहता हूँ ॥ ४ ॥

सत्त्वादि युक्त मनके गुरा कहते हैं ।

आस्तिकता अच्छी तरह विभाग करके अर्थात् वैश्वदेव वलि अतिथि दानको
द करके भोजन और क्रोधसे रहित होना सचवाक्य तथा मेधा बुद्धि धृति
क्षमा करुणा ज्ञान और दम्भसे रहित होना तथा निन्दासे रहित कर्म और नि

स्पृह विनय तथा सर्वदा आदरसे धर्माचरणा करना ये सत्वगुण से युक्त ज्ञेव मनके गुण ज्ञानियों से कहे गये हैं ॥ ५ ॥

अस्ति धर्ममोक्ष परलोकादिकमिति बुद्ध्या चरतीत्यास्तिकः
स्तस्य भाव आस्तिक्यं अनुत्तापः अक्रोधः धृतिः भूतप्रेतस्म
रक्रोध लोभाद्यावेशराहित्यं ज्ञानमात्मज्ञानम् । निर्दम्भ
ता कपटाभावः कर्म अनिन्दितं अस्पृहं निष्कामं च । (क)

भा० धर्म मोक्ष परलोकादिक है इस बुद्धिसे जो आचरण करता है वह आस्तिक उसका जो धर्म वह आस्तिक्य अनुत्ताप सन्ताप रहित अर्थात् क्रोधका अभाव धृतिः भूत प्रेत काम क्रोध लोभादियों के आवेश से रहित होना ज्ञान आत्माका ज्ञान निर्दम्भता कपटका नहीना निन्दासे रहित काम अस्पृहं इच्छासे रहित होना ॥ (क) ॥

रजोगुणयुक्तमनसोलक्षणं ।

क्रोधस्ताडन शीलता च बहलं दुःखं सुखेच्छाधिका
दम्भः कामुकताऽप्यलोक वचनं चाधीरताहङ्कृतिः ।

ऐश्वर्यादभिमानितातिशयितानन्दाऽधिकश्चाटनं

प्रख्याता हि रजोगुणेन सहितस्यैते गुणाश्चेतसः ॥ ६ ॥

(ख) अलीकवचनं मिथ्या कथनं अटनं पृथ्वी परिभ्रमणम् (ख)

भा० रजोगुण से युक्त ज्ञेव मन का लक्षण ॥ क्रोध मार पीट करने का स्वभाव बहल दुःख सुखकी अधिक इच्छा दम्भ स्त्री भोग करने की इच्छा रूढ़ बोलना धीरज न धरना (अहंकार) ऐश्वर्य से बहल अभिमान होना और बहल आनंद होना तथा घूमना रजोगुणवाले मन के यह लक्षण कहे गये हैं ॥ ६ ॥ अलीकवचनं मिथ्याभाषणकरता अटनं पृथ्वीपर घूमना ।

॥ (ख) ॥

अथ तमोयुक्त मनसो लक्ष-

नास्ति क्वं सुविषण्णताति शयितालस्यं च दुष्टा मतिः
 प्रीतिर्निन्दितकर्म शर्मणि सदा निर्द्वलुताऽहर्निशम् ।
 अज्ञानं किल सर्वतोऽपि सततं क्रोधान्धता मूढता
 प्रख्याता हि तमोगुणेन सहितस्यैते गुणाश्चेतसः ॥ ७ ॥
 तत्र प्रभूत सत्त्वस्तु सात्विकः पुरुषः स्मृतः । राज
 सस्तामसश्चैव त्रिविधस्तेन मानवः ॥ ८ ॥ ततो
 ऽभवन्महत्त्वं बुद्धितत्त्वापराभिधम् ॥

भा० अन्तर तमसे युक्त ज्वे मनका लक्षण ॥ नास्तिकता अत्यन्त
 विषण्णता बद्धत आलस्य और दुष्टमति बुरे कामोंमें प्रीति और आराम में प्री
 ति सर्वदा रात्रि दिवस निद्रालुता और चारों तरफसे निरंतर आज्ञान तथा
 क्रोधके मोरे अन्धा होना और मूर्खता तमोगुणसे युक्त ज्वे मनके यह
 गुणा कहे गये हैं ॥ ७ ॥ उसमें बद्धत सत्ववाला सात्विक पुरुष कहला
 ता है उसी तरह से रजोगुण अधिकवाला राजस तमोगुण अधिक वा
 ला तामस इस प्रकार तीन तरहके मनुष्य कहे गये हैं ॥ ८ ॥
 उसके अनंतर दूसरे बुद्धि तत्त्व नामवाला ॥ तीनों गुणोंसे युक्त सत्त्वाधि
 क स्फटिक समान महत्त्वं उत्पन्न जवा ॥ ९ ॥

त्रिगुणं सत्त्वबहुलं निर्मलं स्फटिकोपमम् ॥ ९ ॥

चिच्छाया प्राप्तचैतन्यं तदिच्छामयमीरितम् ॥

ततः प्रकृतेस्त्रिगुणं त्रयोगुणा यत् तत् तच्च सत्त्व बहुलं
 अत्राय मभिप्रायः । (क) ॥ यथा निश्चले हृदादौ ब
 हुद्रव्यपातात्तदीयं जलं वर्द्धते तथा चिद्रूपपुरुषेणाक्रम
 णं तुल्यगुणात्रयात्सिकायाः प्रकृतेर्ज्ञानहेतुः प्रकाशः स
 त्वगुणोद्बुद्धः प्रवृद्धः सत्त्वतः प्रकृतेः सत्त्वबहुलं बुद्धितत्त्व

मभवत् ॥ (ख) ॥ महत्स्त्रिगुणाज्जातिं महद्गुण
स्त्रिगुणान्वितः ॥ सात्त्विको राजसश्चापि तामसश्चे
ति सत्विधा ॥ १० ॥

भा० चित्त छाया से प्राप्तहुवा चैतन्य उसकी इच्छावाला कहा गया ॥ उम्
के अनंतर प्रकृति के त्रिगुण तीनही गुण जिसमें वह त्रिगुण इसे यहाँपर य
ह अभिप्राय है कि । (क) । वह सत्त्वाधिक है । जैसे निम्नलजलाश
य के बीचने बज्रतसी वस्तु गेरने से उसका पानी बढ़ता है उसी प्रकार
विद्रूप पुरुष से धिरीद्वै बराबर गुणावाली प्रकृति के ज्ञानका कारण प्र
काशरूप सत्वगुण बढ़ा । प्रकृति के सत्वगुण से बहुत बढ़ाहुवा सत्त्वाधिक
बुद्धि तत्व हुवा ॥ (ख) ॥

महत्तत्त्व के त्रिगुण से त्रिगुणयुक्त अहंकार उत्पन्न हुवा । वह अहंकार
सात्त्विक राजस तामस इस तरह से तीन प्रकार का हुवा ॥ १० ॥

महतः बुद्धितत्त्वात् त्रिगुणात् त्रयोगुणाः यत्र
ततः ननु महत्तत्त्वं त्रिगुणमुक्तमेव किमर्थं मह
त्स्त्रिगुणादिति विशेषणं सत्यम् । (क) ॥

त्रिगुणादिति पुन विशेषणादुक्तं सत्वबहुलमिति
विशेषणमतत्र नानुवर्तते तेनाहङ्गारोत्पादकं म
हत्तत्त्वं त्रिगुणमपि रजोबहुलं बोद्धव्यम् (ख)

भा० त्रिगुणवाली महत् बुद्धितत्त्व से तीन गुणा हैं जिसमें वह त्रिगुणी
। यहाँ पर शंका करने है कि महत्तत्त्व तीनगुणावाला कहा ही गया था तत्र
महनः त्रिगुणात्, यह विशेषण फिरसे किसवाले दिया । सच है (क)
त्रिगुणात् यह फिरसे विशेषण देने से सत्त्वाधिक मान्य होता है परन्तु
यहाँपर विशेषण पीछे नहीं जाता तिससे अहंकार का उत्पन्न करनेवाला म
हत्तत्त्व तीनगुणावाला भी रजोगुण अधिक जानना चाहिये ॥ (ख) ॥

अहङ्गारस्य रजो गुणान्वितस्य मनोधर्मत्वात् (ग)

अहंकारोऽभिमानव्यापार लक्षणमाह ।
 अहङ्कर स्त्रिविधस्तानाह सात्त्विक इत्यादि ।
 तस्य त्रिविधस्य काव्यमाह ।
 जातानि सात्त्विका तस्मादिन्द्रियाणि स राजसात् ।
 तानि श्रोत्रं त्वचो नेत्रं रसना नासिका तथा ॥ ११ ॥
 वाग्धंस चरणापस्थं गुदान्ये कादशी मनः ॥ पञ्च
 बुद्धीन्द्रियाण्याहुः प्राक्तनानीतराणि च ॥ १२ ॥
 कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव कथयन्ति विपश्चितः ॥

भा० रजोगुण के युक्त अहङ्कर का मनोघर्म होनेसे । (ग) ॥ अहंकार
 अभिमान व्यापार त्राला उसका लक्षण कहें हैं ॥ अहंकार तीन प्रकार का
 है उनके कहते हैं । सात्त्विक राजस तामस । उन तीन अहङ्करों के काम
 कहते हैं । उस राजस के सहित सात्त्विक अहङ्कर से इन्द्रियां उत्पन्न हुईं
 । वह कान त्वचा और ज्ञीभ नाक ॥ ११ ॥ वाराण्य हाथ पैर शिश्न गुदा
 ये दस और ग्यारहवां मन । परिडत लोग पहिली पांच को बुद्धिन्द्रिय क
 हते हैं ॥ और दूसरी पांच को कर्मेन्द्रिय कहते हैं ॥ १२ ॥

बुद्धीन्द्रियाणि बुद्धेराश्रयत्वात् कर्मेन्द्रियाणि क
 कर्माश्रयत्वात् सात्त्विकाहङ्कराज्जातत्वादिन्द्रि
 याणि प्रकाश लक्षणाणि सत्त्वस्य प्रकाशकत्वा
 त् ॥ (क) ॥

मनो बुद्धीन्द्रियं विज्ञैः कर्मेन्द्रिय मपि स्मृतम् ॥
 मनोऽधीष्टितमेवेद मिन्द्रियं यत् प्रवर्तते ॥ १४ ॥

भा० बुद्धीन्द्रिय अर्थात् ज्ञानिन्द्रिय बुद्धीके आश्रय होनेसे और कर्मेन्द्रिय
 कर्मों के आश्रय होनेसे सात्त्विक अहंकार के उत्पन्न होने से इन्द्रियप्रकार

सूत्राणां बालीहैं क्यों कि सत्त्वगुण का प्रकाश धर्म होने से ॥ (क) ॥
बुद्धिवात् लोग मन और बुद्धीन्द्रिय को कर्मेन्द्रिय भी कहते हैं ॥ यह इन्द्रिया मनके मिलनेहीसे अपने अपने कर्मेंमें प्रवृत्त होती हैं ॥

[तत्र इन्द्रियाणां विषयानाह]

शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्धोऽह्यनुक्रमात् ॥

बुद्धीन्द्रियाणां विषयाः समारब्धाता महर्षिभिः ॥ १५ ॥

वाच्यं ग्राह्यञ्च गन्तव्य मानन्दं त्याज्यमेव च ॥

कर्मेन्द्रियाणां विषया ज्ञातव्याः विषयो हृदः ॥ १६ ॥

तामसादप्यहङ्कारस्तन्मात्राणि सराजसात् । (हृदःमन

सः ॥ (ख) ॥ यच्चाल्पसत्त्वसम्बद्धात् तल्लिङ्गानि

भवन्ति हि ॥ शब्द तन्मात्रकं स्पर्शतन्मात्रं रूपमा

त्रकम् ॥ १७ ॥

भा० अब उल्लेख इन्द्रियों के विषय कहते हैं ॥ शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध यह अनुक्रमसे अर्थात् एकके पीछे एक इस क्रमसे बुद्धीन्द्रियों के विषय अर्थात् आकाश का शब्द वायु का स्पर्श अग्निका रूप जलका रस पृथ्वीका गन्ध । इस क्रमसे महर्षियोंने कहे हैं ॥

बोलना लेना चलना आनन्द और छोड़ना यह कर्मेन्द्रिय के अर्थात् वाणी का बोलना हात का लेना पैर का चलना शिश्न का आनन्द और गुदा का मलत्याग इस क्रमसे ये कर्मेन्द्रियों के विषय जानने चाहिये और मनके विषय भी जानने चाहिये ॥

गजस के साथ तामस अहंकारसे भी और धोड़ेसे सत्त्व संबंधसे उसी लक्षण वाली पांच तन्मात्रा उत्पन्न हुई ॥

वह शब्द तन्मात्रा के स्पर्श तन्मात्रक रूप तन्मात्रक रस तन्मात्रक गन्ध तन्मात्रक ये उत्पन्न हुई ॥ १७ ॥

रस तन्मात्रकं गन्ध तन्मात्रमिति तानि तु ॥

तस्मिन्निङ्गानि मोहादिलिङ्गानि तान्यद्भुतस्वभावानि बाह्ये
 न्द्रिय ग्राह्याणि सा सा मात्रा यस्मिन् तन्मात्रकम् (क)
 तन्मात्रेभ्यो वियद्वायुवन्हि वारि वसुन्धरा ॥ ए
 तानि पञ्च जायन्ते महाभूतानि तत् क्रमात् ॥ १७ ॥
 एकोत्तर परिवृद्धा वियदादयो जायन्त इत्यर्थः। (ख)
 तद्यथा । शब्दतन्मात्राच्छब्द गुरां वियज्जायते ; श
 ब्द तन्मात्र सहितात् स्पर्शतन्मात्राच्छब्द स्पर्शगुरां
 वायुर्जायते । (घ) ॥

भा० तस्मिन्निङ्गानि अर्थात् मोहादि लक्षणावाली वोह अद्भुत स्वभाववाली
 और बाह्येन्द्रियों से अर्थात् कान नाक इत्यादिकों से गृहण करने योग्य श
 ब्दादिक तन्मात्राही है वोह योगियों से ही गृहण की जाती है वोह वो मात्रा
 है जिसमें वह तन्मात्रक है । (क) ॥ तन्मात्राओं से आकाश वायु अग्नि
 जल पृथ्वी ये पञ्च महाभूत क्रमसे अर्थात् शब्द से आकाश, स्पर्श से वायु,
 रूप से अग्नि, रस से जल, गन्ध से पृथ्वी, इस तरह उत्पन्न हवे ॥ १७ ॥
 एक एक के उत्तर उत्तर बढ़नेसे आकाशादिक उत्पन्न हवे । (ख) ॥
 (ग) वह जैसे । शब्द तन्मात्रा से शब्दगुरावाला आकाश उत्पन्न होता ।
 और शब्द तन्मात्रा के सहित स्पर्श तन्मात्रासे शब्द स्पर्श गुरावाला वायु
 उत्पन्न हवा ॥ (घ) ॥

शब्दतन्मात्र स्पर्शतन्मात्र सहितात् रूप तन्
 मात्राच्छब्द स्पर्श रूप गुरां वन्हिर्जायते । (ङ) ॥

शब्द तन्मात्र स्पर्शतन्मात्ररूप तन्मात्रसहिताद्रस
 तन्मात्राच्छब्द स्पर्शरूप रसगुरां वारि जायते । (च)
 शब्द तन्मात्र स्पर्श तन्मात्र रूपतन्मात्र रसतन्मात्र

भा० शब्दतन्मात्र स्पर्शतन्मात्र के सहित रूपतन्मात्र से शब्दस्पर्शरूप
गुरावाली आग उद्यन्नद्बद्धं ॥ (६) ॥ शब्दतन्मात्र स्पर्शतन्मात्र रूपतन्मा
त्र सहित रसतन्मात्र से शब्दस्पर्शरूप रस गुरावाला जल उद्यन्नद्बद्धं (च)

सहिताङ्गं तन्मात्राच्छब्दस्पर्शरूपरसगन्धगुरावसु
न्दरा जायते । (छ) ॥

[अथमहाभूतानां गुरानाह]

शब्दः श्रोत्रेन्द्रियं वापि छिद्राणि च विविक्तता ।

वियतः कथिता एते गुरागुरा विचारिभिः ॥ १६ ॥

विविक्तताः शरीरणां भावानां शिरास्तायुस्थियेशी

प्रभृतीनां जातिव्यक्तिभ्यां मिथः पृथक्त्वम् ॥ (क)

भा० शब्दतन्मात्र स्पर्शतन्मात्र रूपतन्मात्र रसतन्मात्र सहित गन्धतन्मात्र
से शब्दस्पर्शरूपरसगन्धवाली दृष्टी उद्यन्नद्बद्धं ॥ (छ) ॥

अनन्तर भूतों के गुरा कहते हैं] शब्द श्रोत्रेन्द्रिय छिद्र अर्थात् छेक और
विविक्तता अर्थात् असंयुक्तता ये आकाश के गुरा के विचार करने वालों ने
कहे हैं ॥ १६ ॥ विविक्तता अर्थात् शरीरों के भाव (शिरा) छोटी नसें,
(तायु) मोटी नसें, हड्डी मांस की चैली इत्यादिकों की जाति और व्यक्ति
यों से देतों का अलगपन । (क) ॥

गुरा

स्पर्शस्त्वगिन्द्रियञ्चापि लघुता स्पन्दनन्ततोः ॥

वेष्टाः सर्वशरीरस्य वायोरेते गुराः स्मृताः ॥ २० ॥

रूपं नेत्रेन्द्रियं पाकः सन्तापस्तीक्ष्णता तथा ।

वरीणीं भ्राजिष्युताऽमर्षः शौच्यं वन्हे गुरा अमी ॥ २१ ॥

रूपं लावण्यम् (ख) । पाकः उदराग्निनाहारपाकः

सन्तापः ओषायम् । (ग) ॥ तीक्ष्णता आशुकारिता वरीणी
गौरादिः । (घ) ॥ भ्राजिष्णुता दीप्तिः अमर्षः क्रोधः (ङ) ।
रसो रसेन्द्रियं शैत्यं स्नेहश्च गुरुता तथा ॥ सर्व्वं द्रव
समूहश्च शुक्रं वारि गुराः स्मृताः ॥ २३ ॥

भा० सूर्य और त्वेन्द्रिय भी तथा हलकापन शरीर का हिलना और सब
शरीर की चेष्टा ये वायु के गुण कहे गये ॥ २० ॥ रस और चक्षु रन्द्रिय पा
क संताप तीक्ष्णता वरी कान्ति क्रोध श्रुता ये अग्निके गुण कहे गये हैं ॥
२१ ॥ रूप सुन्दरता (ख) ॥ पाक जठराग्नि से आहार का परिपाक सं
ताप (ग) ॥ गरमी तीक्ष्णता तेजी वरी गौरांग इत्यादि (घ) ॥
भ्राजिष्णुता दीप्ति अमर्षः गुस्सा । (ङ) ॥ रस और रसेन्द्रिय ठंडाप
न नैलादिकों का त्रिकनापन भारीपन सब बहजानेवाली वस्तु का समूह
और घात ये सब पानी के गुण हैं ॥ २२ ॥

गन्धो घ्राणेन्द्रियं चापि काठिन्यं गौरवं तथा ॥ वसु
न्धरा गुराण्यते गदिता गुण वेदिभिः ॥ २३ ॥ शब्दः
स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्धश्च तत् क्रमात् ॥ तन्मा
त्राणां विशेषाः स्युः स्थूलभावमुपागताः ॥ २४ ॥

भा० गन्ध और नासिकेन्द्रिय भी तथा कठिनता भारीपन ये गुण पृथ्वी के
गुण के जानने वालों ने कहे हैं ॥ २३ ॥ शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध ये क्रम
से स्थूल भावको प्राप्त हवे तन्मात्रों के विशेषण हैं ॥ २४ ॥

तत् क्रमात् शब्द तन्मात्रादि क्रमात् विशेषाः अनुभव
योग्यैः सुख दुःख मोह रूपैर्धर्मैर्विशेष्यन्त इति विशेषाः
अत्र कर्मणि घञ प्रत्ययः तन्मात्राणि त्वविशेषाणि
य स्तान्यनुभवयोग्यैः सुखादिभिर्विशेष्यं न शक्यन्ते
सूक्ष्मत्वात् ॥ (च) ॥

प्रकृतेः कारणायोगान्मता प्रकृतिरेव सा ॥ मह

त्तत्त्वादयः सप्त शक्तेर्विकृतयः स्मृताः ॥ २५ ॥

प्रकृतिरेव कारणमेव नतु कस्यचित् कार्यमितर्थः कार्थारिण इन्द्रियाणां सर्वभूतानां कारणात्वात्महर्षिभिर्महत्त्वादयः सप्त महानहङ्कारः पञ्चतन्मात्राणीति ॥ (क) ॥ शक्तेः प्रकृतेर्विकृतयः कार्थारिणः । (ख)

भा० नतुक्रमात् अर्थात् शब्द तन्मात्रादि क्रमसे विशेषाः अनुभव योग्य सुख दुःख रूप धर्मोसे प्रभेद कियेगये वह विशेष कहलानेहैं । यहाँपर कर्ममें घञ प्रत्ययहैं । तन्मात्रा तो अविशेषहैं क्यों कि उनको अनुभव योग्य सुखादिकोंसे अलग नहीं करसके क्योंकि सूक्ष्म होनेसे । (च) ॥

प्रकृति का कारण योग होनेसे वही प्रकृति कारण कही गई है और महत्त्वादिक सात प्रकृति के विकार कहे गये हैं ॥ २५ ॥ प्रकृति ही कारणही अर्थात् किसीका कार्य नहीं और कार्य सब भूतों के अर्थात् प्राणिमात्रों के और इन्द्रियों के कारण होनेसे महर्षियों ने महान् अहंकार और पञ्च तन्मात्रा इस प्रकार । (क) ॥ महत्त्वादि सात शक्ति के अर्थात् प्रकृति के विकार कार्य कहेहैं ॥ (ख) ॥

इन्द्रियाणां च भूतानां कारणात्वात्महर्षिभिः ॥

महत्त्वादयः सप्त प्रोक्ता प्रकृतयोऽपि च ॥ २६ ॥

तथा सति प्रकृतिर्महानहङ्कारः पञ्च तन्मात्राणीत्येष्टौ प्रकृतयः ॥ (ग) ॥

भा० महर्षियों ने इन्द्रिय और भूतों के कारण होनेसे महत्त्वादि सातोंको प्रकृति कहाहै ॥ २६ ॥ इसकासे प्रकृति महान् अहंकार और पञ्च तन्मात्रा इस प्रकार आठ प्रकृतियाँहैं ॥ (ग) ॥

दशेन्द्रियाणि चित्तञ्च महाभूतानि षड्च च ॥ एता
नि सृष्टिं जानद्भिर्विकाराः षोडश स्मृताः ॥ २७ ॥

[विकाराः कार्याणि ।]

एवं चतुर्विंशतिभिस्तत्वे सिद्धे वपुर्गृहे ॥ जीवा
त्सानियतेर्निधोवसति स्वान्तदूतवान् ॥ २८ ॥

अत्र शब्दादीनां वियदादि महाभूतगुणानां धर्मिभ्यो
ऽभिन्नतया पृथक्त्वं निरस्यन्नुक्तानाम् तत्त्वानामुप
संहारमाह । (क) ॥

भा० दशेन्द्रियां पांच महाभूत और चित्त इनको सृष्टि के जानने
वालों ने सोलह विकार ऐसा कहा है ॥ २७ ॥ सोलह विकार औ
र आठ कार्य इस प्रकार चौबीसों से सिद्ध हुए तत्व ऐसे शरीर रूपी घर
में जीवात्मा शुभाशुभ कर्मों के स्वार्थीन मनदूत के साथ रहता है ॥ २८ ॥
यहाँपर आकाशादि महाभूतों के गुण शब्दादिकों का धर्म से अर्थात् आ
काशादिकों से भिन्नता करके अलग-निकाल कर कहे हुए तत्वों का उपसं
हार कहते हैं ॥ (क) ॥

चतुर्विंशतिभिरिति तानि च प्रकृतयोऽष्टौ विका
राः षोडशेति । महत्त्वतनि प्रकृत्यादीनां भावाः
नियतेः शुभाशुभ कर्मणां । (ख) ॥ निघ्नः
आयत्तः स्वान्तदूतवान् मनोदूतयुक्तः सदेही क
थ्यते पापपुण्य दुःखसुखादिभिः व्याप्ता बद्धश्च
मनसा कृत्रिमैः कर्मबन्धनैः स जीवात्मा तस्य देहिनः
शरीरजीवात्मनोः संयोगकारकेण मनसा संयोगे ये
ये गुणा उत्पद्यन्ते । (ग) ॥

भा० बौह प्रकृतियां आठ और सोलह विकार इस प्रकार चौबीस तत्त्व हैं ॥
आत्मा और प्रकृत्यादिषों के धर्म शुभाशुभ कर्मों के स्वाधीन मनो दूत के
युक्त वह देही कहाना है । पाप पुण्य सुख दुःखादिकों से घिरा हुआ मन और
कर्म बन्धनों से बन्धा वह जीवात्मा कहाना है उस देही के अर्थात् शरीर जीवा
त्मा का संयोग कराने वाले मन के संयोग में जो जो गुण उत्पन्न होते हैं ॥ (ग)
उनको कहते हैं । इच्छा द्वेष दुःख सुख विषय का ज्ञान मन का प्रयत्न और
र संकल्प विचारणा स्मृति बुद्धि कला विद्या का ज्ञानना ॥ (घ) ॥

[तानाह] इच्छा द्वेष दुःख सुखानि विषय ज्ञानं प्रयत्नो
मनः सङ्कल्पश्च विचारणा स्मृति रथो बुद्धिः कला विज्ञ
ता । (घ) ॥ प्राणस्योपरि यापनं गुदवसाद्वायो
रधः प्रेरणाम् ॥ नेत्रान्मेषनिमेष कृत्यकरणोत्सा
हाश्च जीवि गुणाः ॥ २६ ॥

इच्छा सुखहेतु अभिलाषः द्वेषो दुःखहेतुर्मनः प्रवृत्तिः
। (क) ॥ सुखं प्रीतिः दुःखमप्रीतिः विषय ज्ञानं शब्दा
दिज्ञानम् प्रयत्नः कार्य्य तात्पर्य्य मनः संशयात्मकं त
स्य कर्म संकल्पः । ख) ॥ विचारणा ऊहापोहाभ्यां
वस्तुविमर्शः । (ग) ॥

भा० प्राण का ऊपर की तरफ निकालना और गुदा के मार्ग के वायु का नीचे
निकालना नेत्र का निमेष और अनुमेष अर्थात् आँख का खुलना भिड़ना
और काम करने का उत्साह ये जीव के गुण हैं ॥ २६ ॥

इच्छा सुख के अर्थ अभिलाषा द्वेष दुःख के हेतु मन की प्रवृत्ति । (क) ॥
सुख प्रीति अर्थात् आनंद दुःख प्रीति का नहोना विषय ज्ञान शब्द स्पर्श
रूप रस गन्ध इनका ज्ञान प्रयत्न कार्य्य में तात्पर्य्य मनः संशयात्मक अर्था
त् है या नहीं इस प्रकार के संशयवाला उसका कर्म सङ्कल्प । (ग) ॥

विचारणा तर्क वितर्क द्वारा वस्तुका निश्चय करना ॥ (ग) ॥

स्मृतिः पूर्वानुभूतस्यार्थस्य स्मरणम् ॥ (घ) ॥ बुद्धिः

निश्चयात्मिका कलाविज्ञता शिल्प शास्त्रादिवोधः प्राण

स्य हृदय स्थितस्य वायुः उपरियापनम् । (ङ) ॥ मुखा

दिप्रति नयनम् गुदवसा द्वायोरधः प्रेरण मपानस्याधः प्रे

रणं नेत्रोन्मेष निमेषौ नेत्रयोरुन्मीलननिमीलने हृत्य

करणोत्साहः कार्यारम्भे सामर्थ्ये नोत्साहः । (च) ॥

जीवे मनो युक्तस्य जीवात्मनोऽपी इच्छादयो गुणाः ॥ (छ) ॥

इति श्री मिश्र लटकन तनय श्रीमन्मिश्र

भावविरचिते भावप्रकाशे सृष्टि प्रकरणे प्रथमं

समाप्तम् ॥ १ ॥

भा० स्मृतिः पहिल अनुभवकिये हुवे वस्तुका स्मरण । (घ) ॥ बुद्धिनि

श्चयात्मिका अर्थात् निश्चयरूप कला विज्ञता शिल्प शास्त्र का जानना प्रा

णका हृदय में रहनेवाली वायु का ऊपरकी तरफ निकालना ॥ (ङ) ॥

अर्थात् मुख नासिकादि में लेजाना । गुदा के मार्ग से वायु का नीचे निका

लना अर्थात् अपानवायु का नीचे निकालना ॥ नेत्रका निमेष और

उनिमेष अर्थात् आँवका खोलना ढकना काम के करने में उत्साह काम

के प्रारम्भ में सामर्थ्यद्वारा उत्साह । (च) ॥

इति श्री मिश्र लटकनके पुत्र श्री भावमिश्र का निर्मित भाव प्रकाश

ग्रन्थ में पहिली सृष्टि प्रकरण समाप्त हुआ ॥ १ ॥

चिकित्सायां शरीरी ह्यधिकतः स शरीरी यथोत्पद्यते न
द्वोधयितुं गर्भोत्पत्ति क्रममाह ॥ (क) ॥

गर्भोत्पत्ति भूमिस्तु रजस्वलास्त्री । (ख) ॥

[ततो रजस्वला स्वरूपमाह]

द्वादशाद्वत्सरादूर्ध्वं मापञ्चाशत्समाः स्त्रियः ॥

मासि मासि भगद्वारा प्रकृत्यैवार्त्तवं सवेत् ॥ १ ॥

आर्त्तवस्त्रावदिवसादतुः षोडशरात्रयः ॥ गर्भग्रह

रा योग्यस्तु स एव समयः स्मृतः ॥ २ ॥

भा० चिकित्सा में अर्थात् रोगके प्रतीकार में देही श्रुत्य किया गया है इस वास्ते वह देही जिस प्रकार उत्पन्न होता है उसको जानने के वास्ते गर्भकी उत्पत्तिका क्रम कहते हैं ॥ (क) ॥ गर्भके उत्पत्तिकी भूमि रजस्वला स्त्री हैं ॥ (ख) ॥ तिसरे रजस्वला का लक्षण कहते हैं ॥ चारह बरसके ऊपरसे पचास बरसनक औरते महीने २ स्वभाव से ही योनि द्वारा आर्त्तवको निकालती हैं अर्थात् कपड़े से बैठती हैं ॥ १ ॥ कपड़े से बैठे हुवे दिनसे सोलह दिन ऋतु कहलाता है और वही समय गर्भ धारण करने योग्य कहा गया है ॥ २ ॥

सर्वासामेव चतुःवर्ण स्त्रीणां सर्ववादि सम्मतः (क) ।

पूर्वोक्तः समयः, ग्रन्थान्तरतु विशेषः ॥ (ख) ॥

तद्यथा । (ग) ॥ स्नान दिवसा दूर्ध्वं द्वादशरात्रावधि

ब्राह्मण्याः दशरात्रावधि क्षत्रियायाः । (घ) ।

अष्टरात्रावधि वैश्यायाः षड्त्रात्रावधि शूद्रायाः गर्भधा

ररौ शक्तिः ॥ (ङ) ॥

भा० चारों वर्णों की सब स्त्रियों का यही ऋतुकाल सब वादियों के समत है ॥ (क) ॥ पूर्वोक्त समय और ग्रन्थों से कुछ विशेषक हा है ॥ (ख) ॥ वह जैसे ॥ (ग) ॥ स्नानके दिनके ऊपर चारह दिन तक ब्राह्मणी द्वादस दिन तक क्षत्रिया की ॥ (घ) ॥ आठ दिन तक

[अथ रजस्वलाया नियमानाह]

आर्त्तवस्त्रावदिवसादहिंसा ब्रह्मचारिणी ॥ शयीत
 दर्भशय्यायां पश्येदपि पतिन्न च ॥ ३ ॥ करे
 शरावे परी वा हविष्यं त्यहमाहरेत् ॥ अश्रुपातं न
 स्वच्छेद मभ्यङ्गमनुलेपनम् ॥ ४ ॥ नेत्रयो रञ्जनं
 स्नानं दिवास्वापं प्रधावनम् ॥ अत्युच्चशब्द श्रव
 णं हसनं बहु भाषणम् ॥ ५ ॥ आयासं भूमि स्व
 ननं प्रवातञ्च विवर्जयेत् ॥

भा० वैश्या का और छः दिनतक शूद्राका गर्भधारण करने में सामर्थ्य
 होता है ॥ (६) ॥ अनन्तर रजस्वलाके नियम कहते हैं ॥ * ॥
 आर्त्तवस्त्राव अर्थात् कपड़े से होय उस दिनसे हिंसा नकरे और ब्रह्मचर्य
 रस्केवे तथा कुसाके वस्त्रे पर सेवे और पतिको भी नदेखे ॥ ३ ॥ हान पर
 या सकोरे में या पत्तेपर हविष्यान्नको भोजनकरे ॥ और आँसूका गिरा
 ना नारवूनकाटना तेल लगाना चन्दनारि सुगन्ध द्रव्य लगाना ॥ ४ ॥
 आँखों में सुरमालगाना न्हाना दिनमें सीना बद्धतदौड़ना ऊंचे शब्दकी सु
 नना हंसना बद्धत वोलना ॥ ५ ॥ श्रमकरना ज़मीनखोदना और बद्धत
 हवाका सेवन इनकी रजस्वला छोड़देवे ॥

[एतस्या नियमकरणेदोषानाह]

अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा लोभाद्वा दैवतश्च वा ॥
 सा चेत् कुर्व्यान्निषिद्धानि गर्भो दोषांस्तदाप्नुयात् ॥ ६ ॥
 एतस्या रोदनाद्गर्भो भवेद्विकृतलोचनः ॥ नखच्छे
 देन कुनरवी कुण्ठी त्वभ्यङ्गतो भवेत् ॥ ७ ॥ अनुले
 पात्तथा स्नानात् दुःखशीलोऽञ्जनादृक् ॥

भा० इनके नकरने में दोष कहते हैं ॥ वे समझी से या पागलपन से या लोभ से या दैव योग से बोह रजस्वला निषेध किये इन्हे को करेती गर्भ दोष को प्राप्त होगा ॥ ६ ॥ इसके रोने से विकार युक्त नेत्रवाला गर्भ होगा नाखून के काटने से कुनखी और अभ्यंग से कुष्ठी होगा ॥ ७ ॥ अनुलेप और स्नान से सदा दुखी तथा आँख में आँजने से और दिनमें सोने से सदा सोने वाला होगा ॥

स्वापशीलो दिवास्वापाञ्चञ्चलः स्यात् प्रधावनात् ॥ ८ ॥

अत्युच्चशब्दश्रवणाद्बधिरः खलु जायते ॥ तालु

दन्तीष्ठजिह्वासु श्याबोहसनतो भवेत् ॥ ९ ॥ प्र

लापी भूरिकथनादुन्मत्तस्तु परिश्रमात् ॥ स्वल्पते

भूमिखननादुन्मत्तो वातसेवनात् ॥ १० ॥

भा० दौड़ने से चंचल होगा ॥ ८ ॥ बड़न ऊँचे शब्दके सुनने से बहिरा होगा तालुदांत आठ जीभ में स्याही हसने में होगी ॥ ९ ॥ बड़न बोलने से वं कवादी और बड़न श्रमसे उन्मत्त उत्पन्न होता है ॥ भूमि के खोदने से गिरता है और वायुके सेवनसे उन्मत्त होता है ॥ १० ॥

[अथ रजस्वला कृत्यम्]

पूर्वं पश्येदनुस्नातायादृशं नरमङ्गना ॥ तादृशं

जनयेत् पुत्रं ततः पश्येत्पतिं प्रियम् ॥ ११ ॥

प्रियमिति भर्तृव्यनासन्ने पुत्रादिकमपि पश्येत् चतुर्थ

दिवसेऽपि रजोनिवृत्तौ स्त्रीपतिना सङ्गच्छेत् नतु रजोऽनु

वृत्तौ ॥ (क) ॥ यत आह ।

भा० अनन्तर रजस्वलाका कृत्य अर्थात् जो करना चाहिये ॥ चौथे दिन नहाइइई औरत जिस प्रकार के पुरुष को देखेगी उस प्रकार के पुत्रको उत्पन्न करेगी इसवास्ते पति को देखे अथवा पति यास नहोती पुत्रादिकों को देखे ॥ ११ ॥

चौथे दिन में भी रज निवृत्त हो गया हो तो अर्थात् स्त्रियों का मासिक धर्म बन्द हो गया हो तो स्त्री पतिके साथ संभोग करें । और रजके निकलनेमें न करें ॥ (क) ॥ जिस्से कि कहते हैं ॥

प्रवहत्सलिले क्षिप्तं द्रव्यं गच्छत्यधो यथा ॥ तथा
बहति रक्तैतु क्षिप्तं वीर्यमधो ब्रजेत् ॥ १२ ॥

[अथ भर्तृकृत्यम्]

तत्र गर्भाधाने निषिद्धं विहितं च कालं तयोः । (क)

फलञ्चाह । आयुः क्षयभयाद्गर्भा प्रथमे दिवसे
स्त्रियम् ॥ द्वितीयेऽपि दिने रत्यै न्यजेदनुमतीं त

था ॥ १३ ॥ तत्र यश्चाहितो गर्भा जायमानो न जीव

ति ॥ आहितो यस्तृतीयेऽन्हि स्वल्पायुर्विकलाङ्ग-

कः ॥ १४ ॥ अतश्चतुर्थी बध्नी स्यादष्टमी दशमी तथा

। द्वादशी वापि या रात्रिस्तस्यान्तां विधिना भजेत् ॥ १५ ॥

भा० वेग से बहते हुवे पानी में डाली हुई वस्तु जैसे नीचे जाती है वैसे बहते

हुवे रक्त में डाला हुआ वीर्य नीचे जावेगा ॥ १२ ॥ ॥ अनन्तर पतिका

कृत्य ॥ उस गर्भाधान में जो निषिद्ध काल और विहित काल है । (क)

उन दोनों का फल कहते हैं ॥ आयुके क्षय होनेके भयसे पति पहिले

दिन स्त्रीके पास नजावे । वैसेही दूसरे भी दिन रतिके अर्थ रजस्वलाके

छोड़ देवे अर्थात् रजस्वलाके साथ दूसरे दिनभी भोग नकरें ॥ १३ ॥

उसमें अर्थात् पहिले दूसरे दिन में जो वाराव हुआ गर्भ नहीं जीता । और

जो तीसरे दिन किया हुआ वह छोड़ी आयुवाला शिथिल अंग उत्पन्न हो

नाहै ॥ १४ ॥ इस्से चौथेदिन छठेदिन आठवेदिन दशवेदिन औरतके

साथ भोग करें ॥ और वारवेदिन भी विधिके साथ भोग करें ॥ १५ ॥

विधिना गर्भाधानेन विधिना । (क) ॥

अत्रोत्तरोत्तरं विद्यादायुरारोग्यमेव च ॥

[तत्रान्तरे ।] प्रजासौभाग्यमैश्वर्य्यबलञ्चाभिग
मात्फलम् ॥ १६ ॥ मनो भवांगारमुखेऽवल्लानां
तिस्रौ भवन्ति प्रमदाजनानाम् ॥ समीरणाच्चन्द्र
मुखी च गौरी विशेषमासासुपवर्णायामि ॥ १७ ॥
प्रधानभूतामदनातपत्वे समीरणा नाम विशेषना
डी ॥ तस्यासुखेयत्पतितं तु वीर्य्यनिष्फलं स्या
दिति चन्द्रमौलिः ॥ १८ ॥

भा० विधिसे अर्थात् गर्भाधानोक्त विधिसे (क) इसमें उत्तरोत्तर अ
र्थात् दोषेसे छूठे-छूठे से आठवें इसक्रमसे आयु और आरोग्य की
अधिकता होती है ॥ और तन्त्रमे । स्त्रीसंभोगसे प्रजासौभाग्य ऐश्व
र्य और बल प्राप्त होता है ॥ स्त्रियोंके कामदेवके मंदिरके मुखपर तीन
नाड़ियाँ होती हैं पहिलीसमीरण दूसरीचन्द्रमुखी तीसरीगौरी इनका
विशेष लक्षण और वर्णन करता है ॥ १७ ॥ मदनके छत्रपर समीरणा
नाम विशेष नाही है उसके मुखपर गिराहुवा वीर्य्य निष्फल होता है ।
ऐसा चन्द्रमौलि कहने हैं ॥ १८ ॥ और जो दूसरी चान्द्रमसी नाड़ी है वोह
कामदेवके घरमें प्रधान है और वोह स्त्रीकन्याकोही उत्पन्न करती है
तथा छोडे मैथुनके उत्सवमें साध्य होती है अर्थात् गर्भकी धारण करती
है । ॥ १६ ॥ ॥ १६ ॥ ॥ १६ ॥ ॥ १६ ॥ ॥

याचापरा चान्द्रमसी च नाडी कन्दर्पगेहे भवति
प्रधाना ॥ साखुन्दरी योषितमेव सूते साध्याभवे
दल्परतोत्सवेषु ॥ १६ ॥ गौरीति नाडी यदुप
स्थ गर्भे प्रधानभूता भवति स्वभावात् ॥ पुत्रम्

प्रसूते बह्वधाङ्गना सा वाष्टोप भोग्यां सुरतोपविष्टा
॥ २० ॥ [युग्मायुग्मरात्रीणां फलमाह]

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु । तत्र
दस्यत्योः सम्भोगे यादृक् पुमान्युक्तस्तादृमुच्यते (क)

स्नानश्चन्दनलिप्ताङ्गः सुगन्ध सुमनोऽर्चितः ॥

भुक्तवृष्यः सुवसनः सुवेशः समलङ्कृतः ॥ २१ ॥

ताम्बूलचदनस्तस्याः मनुरक्तोऽधिक स्मरः ॥

पुत्रार्थी पुरुषो नारी मुपेयाच्छयने शुभे ॥ २२ ॥

२०० तीसरी गौरी नाडी स्वभावसे पुरुष गर्भमें प्रधान भूत होती है। वोह स्त्री कष्टसे उपभोग योग्य मैथुनपर आरूढ़ हुई पुत्रही को उत्पन्न करती है ॥ २० ॥ ॥ युग्म और अयुग्म रात्रिका फल कहते हैं ॥

युग्म रात्रिमें अर्थात् चार छः आठ दश बारह इन दिनों में पुत्र उत्पन्न होते हैं। और अयुग्ममें अर्थात् पांच सात नौ ग्यारह इन दिनोंमें कन्या उत्पन्न होती है ॥ उन स्त्री पुरुषके सम्भोग में जैसा पुरुष होना चाहिये सो कहना है। (क) ॥ स्नान किया हुआ शरीरमें चन्दन लगाया हुआ अच्छे सुगंधित पुष्पोंसे पूजन किया हुआ अच्छे दुग्धादि पदार्थोंकी भोजन किया हुआ अच्छा कपड़ा पहिने हुआ अच्छे लिबास से रहनेवाला और अच्छे आभूषणोंको पहिने हुवे ॥ २१ ॥ पान खाये हुआ उसमें अधिक प्रीतिकर गा हुआ अधिक कामदेववाला पुत्रार्थी पुरुष अच्छे शयन पर स्त्रीके पास जावे ॥ २२ ॥

[नत्राऽयोग्यां स्त्रियमाह]

अत्याशितोऽधृतिः क्षुद्धान् सव्यथाङ्गः पिपासि

नः ॥ बालो वृद्धोऽन्यवेगार्तस्यजेद्भ्रागी च मैथुनम्

॥ २३ ॥ तत्र स्त्री यादृशी योग्या तादृशमुच्यते। (क)।

पुरुषस्य गुणैर्युक्ता विद्विता न्यून भोजना ॥ नारी

ऋतुमती पुंसां सङ्गच्छेत्तु सुतार्थिनी ॥ २४ ॥

[तत्राऽयोग्यां स्त्रियमाह]

रजस्वला व्याधिमती विशेषाद्यीनि रोगिणी ॥

वयोऽधिका च निष्कामा मलिना गर्भिणी तथा ॥

॥ २५ ॥ एतासां सङ्गमात्पुंसां वैशुण्या नि सवन्ति
हि ॥

तत्र रजस्वला दिनत्रयं यावदृती निषिद्धा ॥ (क) ॥

यत उक्तम् । प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्म घा

तिनी ॥ तृतीये रजकी पुंसां यथा वज्या तथाङ्गना ॥ २६ ॥

भा० उसमें अयोग्य पुरुष कहते हैं ॥ बहुत भोजन किया हुआ धी
रज न रखनेवाला भूखा शरीर में पीड़ा वाला प्यासा बालक बूढ़ा और
बैंगी से अर्थात् मूल मूत्र दि वेगो से पीड़ित और रोगी इतने मनुष्य -
मैथुन को छोड़ दें ॥ २४ ॥ उससे जैसी स्त्री होनी चाहिये सो कहते हैं ॥

पुरुष के गुरों से युक्त और विहित तथा अल्प भोजन करने वाली ।
और पुत्रकी चाहनेवाली ऋतुमती नारी पुरुष के साथ भोग करे
॥ २४ ॥ उसमें जैसी स्त्री त्यागनी चाहिये सो कहते हैं ॥ रजस्वला

याने कपड़ों से वेढी हुई रोगवाली विशेष करके भगके रोगवाली
बड़ी उमरवाली और कामदेव से रहित मैली गर्भिणी ॥ २५ ॥

इनके संग से पुरुष को विकार उत्पन्न होते हैं । उसमें रजस्वला तीन दिन
जय तक कि ऋतुकाल में निषिद्ध है ॥ (क) ॥ जैसे कहा है ॥

पहिले दिन चाण्डाली दूसरे दिन ब्रह्म घातिनी तीसरे दिन रजकी अर्थात्
धोविन जैसे पुरुषोको ये नखुनी चाहिये वैसेही औरत भी नखुनी चाहिये ॥

॥ २६ ॥

व्याधिमती च वज्या तत्र स्त्रीणां व्याधयः प्रद्रादय उ

क्ता निषिद्धा तत्रापि विशेषाद्यीनि रोगिणी ॥ (ख) ॥

[गर्भावतरणक्रममाह ।]

कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणितशुक्रजः ॥

गर्भः संजायते नार्याः सजातो बाल उच्यते ॥ २७ ॥

गर्भः शुद्धः अशुद्धस्तु गर्भोऽशुद्धः शुक्रः शोणितयो
रपि दम्पत्योर्भवति यत आह । (ग) ॥

दम्पत्योः कुष्ठबाहुल्याद्दुष्टशोणितशुक्रयोः ॥

यदपत्यन्तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितमिति । २८ ॥

कुष्ठं संजातं यस्य तत् कुष्ठितम्, अत्र तारकादित्वादि
तत् प्रत्ययः । (घ) ॥

भा० रोगवाली छोड़ देने योग्य है उसमें औरतों के रोग प्रदरादि कहे उन से युक्त निषिद्ध है उसमें भी विशेष करके योनिरोग वाली निषिद्ध है ॥

(ख) ॥ गर्भके उत्पन्न होनेका क्रम कहते हैं ॥ कामसे दोनों के संयोग में स्त्रीके शुद्धरक्त और शुक्रसे उत्पन्न हुआ गर्भ होता है वह हुआ बालक होता है ॥ २७ ॥ गर्भशुद्ध होता है और अशुद्ध तो स्त्री पुरुषोंके अशुद्धरक्त शुक्रसे होता है । जैसे कि कहते हैं (ग)

कुष्ठरोगकी अधिक्यतासे बिगड़े हवे रक्त शुक्रवाले उन स्त्रीपुरुषों से जो सन्तान उत्पन्न हुई उसको भी कोढ़ी जानना चाहिये ॥ २८ ॥

कुष्ठउत्पन्न हुआ है जिसको वह कुष्ठित है । यहाँपर तारकादित्वसे इतत् प्रत्यय हुआ है ॥ (घ) ॥

यत्तु वातादिदुष्टरैतसः प्रजोत्पादने न समर्थाः (इ)

इति सुश्रुतः ॥ तत्र शुद्धप्रजोत्पादनेन समर्था

इति बोद्धव्यम् । (च) ॥ रोगादिना शुद्धास्तु

प्रजां वातादिदुष्टशुक्राः अपि जनयन्ति जन्मांघ

बधिरपङ्कगदि सम्भवात् ॥ (छ) ॥

ऋतौ स्त्री पुंसयो र्योगे मकरध्वज वेगतः ॥ पुंसः
सर्व शरीरस्यः रेतो द्रावयतेऽथ तत् । वायुर्मेह
नमार्गिणा पानयत्यङ्गनाभगे ॥ नत् संश्रुत्य व्या
त्तसुखं याति गर्भाश्रयं प्रति ॥ तत्र शुक्रवदायति
नार्त्तवेन युतं भवेत् ॥ ३० ॥

भा० जो कि वातादि दौषों से दुष्ट ऊँचा शुक्र सन्तान उत्पन्न करने में न
ही समर्थ होता ऐसा सुश्रुत ने कहा है (छ) ॥ वहाँ पर शुद्ध संतान उ
त्पन्न करने में नहीं समर्थ होता ऐसा जानना चाहिये ॥ (च) ॥

रोगादि कों से शुद्ध और वातादि दौषों से दुष्ट शुक्रवाली भी संतान को
उत्पन्न करती हैं क्यों कि जनम के अन्धे वहीरे लूल इत्यादि उत्पन्न होने
से ॥ (छ) ॥

ऋतुकाल में स्त्री पुरुष के मिलने में कामदेवके वेग से लिंग और यो
निके संघर्षों से उष्ण वायु द्वारा ताड़ित ॥ २८ ॥ पुरुषके सब शरीर
में रहनेवाला शुक्र पिघलता है अनंतर वायु उसको लिंगके मार्ग से
औरत को भगमें डालता है ॥ उसको आश्रय करके खुले मुखवाले
गर्भाशय यानि वच्चे दानी में जाता है । वहाँ पर शुक्र के मार्गद्वारे आये हुए
आर्त्तवसे यानि हैजसे मिल जाता है ॥ ३० ॥

[गर्भाशयस्य स्वरूपमाह]

शङ्खनाभ्याकृति र्योगि स्त्र्यावर्त्ता सा च कीर्त्तिता ॥

तस्यास्तृतीयै त्वावर्त्ते गर्भ शय्या प्रतिष्ठिता ॥ ३१ ॥

यथा रोहित मत्स्यस्य सुखं भवति रूपतः ॥ तत्

संस्थानां तथा रूपां गर्भ शय्यां विदुर्बुधाः ॥ ३२ ॥

भा० गर्भाशय का लक्षण कहते हैं ॥ शंख के नाम की आकार
तीन आकर्त्तवाली योनि कही गई है उसके नीचे आवर्त्त में गर्भ

शय्या स्थापन की गई है ॥ ३२ ॥ जैसे आकारसे रोहू मछली का मुख होता है वैसेही आकाररूप गर्भशय्याका पंडित लोग जानते हैं ॥ ३२ ॥

अयमर्थः । गर्भशय्या मुखं रोहित मत्स्येव भवति यथा च रोहित मत्स्यस्य स्थितिर्जले भवति तथा पिताशय पक्वाशयमध्ये गर्भशय्यायाः स्थितिर्भवति रूपमपि तस्येव भवति यथा रोहितस्य मुखं स्वल्पमाशयस्तु महानित्यर्थः ॥ (क) ॥

शुक्रार्तवसमाश्लेषो यदैव खलु जायते । जीवस्तदैव विशति युक्तः शुक्रार्तवान्तरः ॥ ३३ ॥

भा० यह अर्थ है, गर्भशय्या का मुख रोहू मछली ही के मानिंद होता है । और जैसे रोहू मछली का रहना पानीमें होता है वैसे पिताशय और पक्वाशय के बीच में गर्भशय्या की स्थिति है और रूपभी उसीके मानिंद है जैसे रोहू का मुख थोड़ी जगह और यों बड़त बड़ा है ॥ (क) ॥ वहीं शुक्र और आर्तव का संयोग होता है उसी समय में शुक्र और आर्तव के बीच रहनेवाला जीव उनसे मिलाजुवा प्रवेश करता है ॥ ३३ ॥

सूर्याशोः सूर्यमगितो ह्युभयस्माद्युताद्यथा । वह्निः सज्जायते जीवस्तथा शुक्रार्तवाद्युतात् ॥ ३४ ॥ अस्मानादिरनन्तश्चाऽव्यक्तो वक्तुं न शक्यते ॥ चिदानन्दैक रूपोऽयं मनसापि न गम्यते ॥ ३५ ॥ एवं भूतोऽपि जगतो भाविनी बलवत्तयां । अविद्या स्वीकृते कर्मवशो गर्भे विशत्यसौ ॥ ३६ ॥

भा० सूर्यके किरण और सूर्य कान्तमणि इन दोनोंके मिलने से जैसे आग उत्पन्न होती है वैसे शुक्र और आर्तवके मिलनेसे जीव उत्पन्न होता है ॥ ३४ ॥ अनादि अनंत और अव्यक्त जिसको कह नहीं सकते । तथा चिदानन्द ही है एक रूप जिसका ऐसा यह आत्मा मनसेभी नहीं जाना जाता ॥ ३५ ॥ इस प्रकार का ह्रवाभी जगत्की भावीकी बलवत्ता से अविद्याके द्वारा स्वीकार किया गया और कर्मके बशहवा यह आत्मा गर्भ में प्रवेश करता है ॥ ३६ ॥

[गर्भे चतुर्विंशति तत्त्वमयम्]

स एव वेत्ता रसनो द्रष्टा घ्राता स्पृशत्यसौ ॥ श्रो
ता वक्ता च कर्ता च गन्ता रन्तोत्सृजत्यपि ॥ ३७ ॥
दिने व्यतीते नियतं सङ्कुचत्यम्बुजं यथा ॥ ऋतौ
व्यतीते नाढ्यास्तु योनिः संप्रियते तथा ॥ ३८ ॥

भा० गर्भ में चौबीस तत्त्वमय । वही जाननेवाला और स्वाद कालेनेवाला देखनेवाला संघनेवाला यह स्पर्श करता है । तथा सुननेवाला चालनेवाला करनेवाला चलनेवाला रन्तको छोड़ता है ॥ ३७ ॥ दिनके व्यतीत होनेमें जैसे नियमके साथ कमल संकोच को प्राप्त होता है अर्थात् सिकुड़ जाता है वैसेही स्त्री की योनि ऋतुकाल के व्यतीत होनेमें सिकुड़ जाती है ॥ ३८ ॥

ऋतौ रजोदर्शनान् । षोडशनिशात्मके काले तौ
धर्मतरपुरःसरो । योनिरत्र धराद्वारम् । (क) ॥
वीजेऽन्तर्वायुना भिन्ने द्वौ जीवौ कुक्षिभागतौ ॥
यमावित्यभिधीयते धर्मतरपुरःसरो ॥ (३९) ॥

भा० ऋतु में अर्थात् खसखला ह्रवे दिनसे सोलह दिनतक । के समय में । वे दोनों धर्म और अधर्म अणुवे हैं जिनके । यहाँ पर योनि पृथ्वी का द्वार है । (क) ॥

प्राण वायु से दो बीजों के अलग होने पर दो जीव क्रम में जाते हैं जिस हेतु जोड़ा ऐसे कहे जाते हैं धर्म और अधर्म अगुवे हैं जिनके ॥ ३६ ॥

धर्मस्तदितरो ऽधर्मस्तौ पुरःसौ ययोः तेन यमौ
धर्माधर्माभ्यां भवन इत्यर्थः । (ख) ॥

आधिक्ये रेतसः पुत्रः कन्या स्यादार्त्तवे ऽधिके ।

न पुंसकं तयोः साम्ये यथेच्छा परमेश्वरी ॥ ४० ॥

नन्वेवं सति कथं पुत्रोत्पत्तिः स दैवार्त्तवस्यैव बाहु

ल्यात् ॥ (ग) ॥ यत् उक्तम् ॥ आर्त्तवंचतुरंज

लि प्रमारां शुक्रं प्रसृति मात्रमिति ॥ (घ) ॥

भा० धर्म उल्लेख दूसरा अधर्म वेदों में अगुवे हैं जिनके तिस हेतु जोड़ा धर्माधर्म से होता है ॥ (ख) ॥ शुक्र की अधिकता से पुत्र उत्पन्न होता है और आर्त्तव अर्थात् स्त्रीरज के अधिक होने से कन्या होती है । तथा उन दोनों के बराबर होने से नपुंसक होता है जैसे इच्छा परमेश्वर की होवे ॥ ४० ॥

यहां पर शंका करते हैं कि ऐसा होतौ सर्वदा आर्त्तव ही की अधिकता होती है निस्से कैसे पुत्र की उत्पत्ति होती है ॥ (ग) ॥

जैसे कि कहा है । आर्त्तव का प्रमारा चार अञ्जुली है और शुक्र का एक पसर भर अर्थात् चुल्लू भर है ॥ (घ) ॥

[वाग्भटे ऽप्युक्तमात्रेयादिभिः]

मज्जा मेदोवसा मूत्र पित्र श्लेष्म शकृत् प्रसृक् ।

रसो जलं च देहे ऽस्मिन्त्वेकैकाञ्जलि वर्द्धितम् ॥

४१ ॥ पृथक् च प्रसृतं प्रोक्तमोजोमस्ति श्वरेतसाम् ।

द्वावञ्जली तु दुग्धस्य चत्वारो रजसस्तते ॥ ४२ ॥

भा० वाग्भटमें भी श्राव्यादि मुनियों ने कहा है । मज्जा अर्थात् हड्डीके भी
 नर का गूदा भेद वसा अर्थात् चरबी मूत्र पित्त कफ मल रुधिर रस
 और जल ये क्रम से एक २ अञ्जुलि अधिक हैं ॥ ४१ ॥ और अलग
 कहा गया है एक एक पसा भर श्राज और माँथे में का भेजा तथा शु
 क्र । और दो अञ्जुली दूध और चार अञ्जुली रज ॥ ४२ ॥

समधानोरिदं मानं विद्यात् वृद्धिदयावतः । इति ॥
 (क) । नैवं, यतो गर्भाशयस्थमेव शुक्रमार्तव च ग
 र्भात्पत्तिहेतुः शुक्रं कदाचिदत्यन्तहर्षवशाद्बु ग्धादि
 शुक्रलत्व द्रव्यसेवनात् शुक्र बाहुल्यात् गर्भाशये बहु
 स्रवति कदाचिद् वै मनस्यादिना शुक्राल्पत्वात्त्वल्पमि
 ति स्वमार्तवमपीति न दोषः ॥ (ख) ॥

भा० यह समधानु का मान है । इससे न्यूनाधिक होने से क्षय वृद्धि जा
 नना चाहिये ॥ (क) ॥ इस तरह पर नहीं जैसे गर्भाशय में रहने
 वाला ही शुक्र और आर्तव गर्भकी उत्पत्ति का कारण है तो शुक्र कदाचि
 त् बहुत खुशीके वश से अथवा दुग्धादि शुक्रको बढ़ानेवाली वस्तुओंके
 से या शुक्रके बाहुल्यता से गर्भाशय में शुक्र बहुत गिरता है । अथवा
 कदाचिद् वैमनस्य से अथवा शुक्रकी अल्पता से छोड़ा गिरता है इसी
 तरह आर्तव भी इससे दोष नहीं ॥ (ख) ॥

[सुश्रुतः पुनराह ॥]

वै लक्षरायाच्छ्रुरीराणामस्थायित्वा तथैव च ॥ दो

ष घातु मलानां तु परिमार्णं न विद्यते ॥ ४३ ॥

वै लक्षरायात् दीर्घह्रस्व कृशादि भेदेन सादृश्याभावान्
 अस्थायित्वात् वयोऽहर्निशर्तु भुक्तेष्वेक मात्वानवस्था

नान् एवं तामाभिसङ्गस्य पुनमासाद् भजेदसौ मासाद्दृढं
मिति शेषः श्रुत्वा कर्मनेन गर्भद्वारविघटनान् गर्भच्यु-
ति प्रसङ्गः स्यात् केचित्तु, पुनः पुष्यदर्शनेन गर्भालाम-
निश्र्वये मासाद्दृढं गच्छेत् लब्ध गर्भं नैव गच्छेदिति
वदन्ति ॥ (क) ॥

तत्र परिहार्यं परिहार्यं सद्यो गृहीतगर्भाया लक्ष-
णमाह ॥ (ख) ॥

भा. ० और सुश्रुत ने कहा है ॥ शरीरों की विलक्षणता से तथा क्षण
भंगुरपने से दोष धातु मूल इनका परिमाण नहीं जाना जाता ॥ ४३ ॥
वैलक्षण्यसे अर्थात् लंबा छोटा दुबला मोटा इन में दो करके समान
न होने से और स्थायिन होने से अर्थात् अवस्था रात दिन चरतु और भी
जन इनमें एक तरह न रहने से । इस प्रकार उसके साथ संभोग करके
फिर से महीने भरमें संभोग करें परंतु महीने से ऊपर अर्थात् रजस्वला
होने के उपरान्त संभोग करें क्यों कि इससे पहिले गमन करनेमें गर्भद्वार
के विघटनसे गर्भपात होता है । कोई कहते हैं कि फिरसे रजस्वला होने
में गर्भके न रहनेके निश्र्वय होने पर महीने के ऊपर गमन करें और
गर्भवृद्धि नो न गमन करें । ऐसा कोई कहते हैं ॥ (क) ॥

उसमें दूर करने के योग्य को दूर करने के वास्ते तत्काल गृहण की हुई
गर्भको लक्षण कहते हैं ॥ (ख) ॥

शुक्रशोणित तयो र्योनि रस्वावोर्ध्वं श्रमोद्भवः ॥

सक्वाथि सादः पिपासा च ग्लानिः स्फूर्ति भगे भवेत् ।

॥ ४४ ॥ [अथ तस्या एवोत्तरकालीनं लक्षणमाह]

स्तनयोर्मुख काष्ठ्यं स्याद्रोमराज्यु ज्जम स्तथा ॥

अक्षि पद्माणि चाप्यस्याः संमोत्यन्ते विशेषतः ॥

॥ ४५ ॥ हृदयेत् पथ्यमुक् चापि गन्धादुद्विजते शुभात्

प्रसेकः सदनं चैव गर्भिरया लिङ्गं मुच्यते ॥ ४६ ॥

[तत्र पुत्रगर्भवत्या लक्षणं]

पुत्रगर्भयुतायास्तु नार्या मासि द्वितीयके ॥ गर्भो

गर्भाशये लक्ष्यः पिराडाकारोऽपरं शृणु ॥ ४७ ॥

पिराडो वर्तुलाकृतिः मासि द्वितीयके इत्यस्य गर्भः पि

राडाकारो लक्ष्यः इत्यनेनैवान्वयो न त्वग्निमस्तोके

ऽपि ॥ (क) ॥

दक्षिणादि महत्त्वं स्यात् प्राक्क्षीरं दक्षिणो स्तने ॥

दक्षिणोरुः सुसुष्टः स्यात् प्रसन्न मुख वर्णता ॥ ४८ ॥

पुत्रामधेय इव्येषु स्वप्नेष्वपि मनोरथः ॥ आद्यादि

फलमाप्नोति स्वप्नेषु कमलादि च ॥ ४९ ॥

भा० शुक्र और रुधिर का योनि से निकालना काममें अभिहोना जांघ में पीड़ा प्यास ग्लानि और योनिमें फड़कना ये लक्षण होते हैं ॥ ४६ ॥

अनन्तर स्त्रीका पश्चान् कालका लक्षणा कहते हैं । छातियों के सुखका का कापन, नाभिके ऊपर से स्तन तक रोमोंकी कतार खड़ी होना, और इसकी विशेष करके आंगोंकी पल्लके गिरती हैं ॥ ४५ ॥ हिनकारी भोजन को भीगेरे और अच्छे गन्ध से लेशा होवे, प्रसेक और पीड़ा ये गर्भिणीके लक्षणा कहते हैं ॥ ४६ ॥ [उत्तम पुत्रगर्भवाली का लक्षणा कहते हैं]

पुत्रगर्भवाली स्त्रीका दूसरे महीने में गर्भ गर्भाशय में पिंडके आकार अर्थात् न गोल जानना चाहिये और दूसरा सुनो ॥ ४७ ॥

पिंड अर्थात् गोल आकार महीने दूसरे का इसतरह पर इसका गर्भ पिंडाकार लक्ष्य है इस प्रकार इसीके साथ अन्वय है न नि आग्नि मस्तोक में भी ॥ (क) ॥ दाहिनी ओर खड़ी होवे और पहिले दाहिनी चूचीमें दू-

ध होवे तथा दाहिनी नाथ भारी होवे और सुखपर अब्धी रंगन होवे ॥ ४८ ॥

स्वप्न में भी पुरुषनाम वाली वस्तु में दृच्छा । स्वप्न में आम आदि फलों की और कमलादि कों की पाती है । ४९ ॥

कन्या गर्भवती गर्भे पेशी मासि द्वितीयके ॥ पुत्री
गर्भस्य लिङ्गानि विपरीतानि चेत्तते ॥ ५० ॥

[पेशी दीर्घा कृतिः।]

नपुंसकं यदा गर्भे भवेद्गर्भोऽर्बुदा कृतिः ॥ उन्नत
भवतः पार्श्वे पुरस्तादुदरं महत् ॥ ५१ ॥

अर्बुदं वर्तुलं फलार्द्धं तुल्यं नपुंसक विशेषमाह ॥ (क)

आसेकश्च सुगन्धी च कुम्भीकश्चेर्ष्यकस्तथा ॥

अमी सशुक्रा बोद्धव्या अशुक्रः पुराड संज्ञकः ॥ ५२ ॥

भा० कन्या गर्भ वाली के दूसरे महीने के गर्भ में मांस की थैली होती है ॥
कन्या गर्भ के चिन्ह उसे विपरीत देखे जाते हैं ॥ ५० ॥

[पेशी अर्थात् दीर्घाकार] जब गर्भ में नपुंसक होवे तब गर्भ अर्बुदाकार अर्थात् गोल फलके अर्धभाग समान आकार होता है दोनों पासे ऊंचे होते हैं और पेट आगेकी तरफ बड़ा होता है ॥ ५१ ॥

अर्बुद अर्थात् गोल फल के आधे भागके समान आकार ॥ (क) ॥
नपुंसक विशेष को कहते हैं । आसेक सुगन्धी कुम्भीक ईर्ष्यक ये सशुक्र नपुंसक जानने चाहिये अशुक्र नपुंसक पंड संज्ञक है ॥ ५२ ॥

[एतेषां लक्षणमाह]

पितृस्तु स्वल्पवीर्यत्वादासेक्यः पुरुषो भवेत् ॥

स शुक्रं प्रास्य लभते ध्वजाक्षतिमसंशयं ॥ ५३ ॥

भा० इनके लक्षण कहते हैं । पिता के थोड़े वीर्य होनेसे आसेक्य पुरुष होता है वह वीर्य को प्राशनकरके स्त्री संभोग करनेकी सामर्थ्य को प्राप्त होवे है

पित्रो मीतापित्रोः स्वल्पवीर्यत्वात् स्वल्पशुक्रार्तवत्वात्
 आसेक्यनामा मुखयोनीति नामान्तरः स शुक्रं प्राशयेति
 सपुरुषोऽन्य पुरुषेण स्वमुखे मैथुनं कारयित्वा तस्य शु
 क्रं प्रास्यमेहनोत्थानं लभते इत्यर्थः ॥ (क) ॥

यः पूति योनौ जायेत सहि सौगन्धिको भवेत् ॥ स
 योनि शोफसौगन्धमाघ्राय लभते बलम् ॥ ५४ ॥

भा० पित्त के अर्थात् मावाप के शुक्र शोशित होनेसे आसेक्यनाम अर्थात्
 न मुखयोनि इस नामान्तर वाला वह शुक्र प्राशन करके अर्थात् वह पुरु
 प दूसरे पुरुष से अपने मुखमें मैथुन कराकर उसका शुक्र प्राशन करके
 लिंगका उठना प्राप्त करता है अर्थात् इन्द्रिय उठती है ॥ (क) ॥

जो दुर्गन्धयुक्त योनिमें उत्पन्न होवे वह सौगन्धिक है। वह योनि लिंग
 की गन्धको मूँघ कर मैथुन करने की सामर्थ्यको प्राप्त होता है ॥ ५४ ॥

सौगन्धिकः सौगन्धिक नामां नासायोनीति नामान्तरं
 बलं मैथुने शक्तिं स्वे गुदेऽब्रह्मचर्याद्यः स्त्रीषु पुं वत्

प्रवर्तते (ख) ॥ सकुम्भीक इति ज्ञेयो गुद योनि
 स्तु स स्मृतः ॥ ५५ ॥

अब्रह्मचर्यात् ब्रह्मचर्यममैथुनं अब्रह्मचर्यं मैथुनं
 यत्स्यात् ॥ (ग) ॥

भा० सौगन्धिकः सौगन्धिकनाम अर्थात् नाक योनि इसदूसरे नाम
 वाला ॥ (ख) ॥ बल अर्थात् मैथुनमें सामर्थ्य। अपनी गुदा में दूसरे
 पुरुष से मैथुन करने से जो पुरुष स्त्री में पुरुष के मानिंद मैथुन करता है
 वह कुम्भीक ऐसा जानना चाहिये और वह गुद योनि ऐसा कहा गया
 है ॥ ५५ ॥ अब्रह्मचर्य अर्थात् मैथुन ॥ (ग) ॥

हृष्टा व्यवयमन्ये पां व्यवय यः प्रवर्तते ॥ इर्थकः

स तु विज्ञेयो दृष्टि योनिस्तु स स्मृतः ॥ ५५ ॥
 यो भार्याया मृतौ मीहादङ्गनेव प्रवर्तते ॥ न
 त्र स्त्री चेष्टिताकारो जायते षण्डसंज्ञकः ॥
 ॥ ५६ ॥ स्त्रीचेष्टिताकारः स्त्र्याकार प्रम
 श्रु रहितः । स्त्री चेष्टितः समेहनोऽपि पुरुष
 शक्ति रहितः ॥ (क) ॥

भा० दूसरे का मैथुन देखकर जो मैथुन में प्रवृत्त होता है उसको ईर्ष्य-
 क ऐसा जानना चाहिये और वह दृष्टि योनि ऐसा कहा गया है ॥ ५५ ॥
 ऋतुकाल में जो मोहके बस होकर स्त्रीके साथ औरत के मानिंद मैथु
 न अर्थात् आप नीचे और स्त्रीको ऊपर इस प्रकार करता है उसे स्त्री
 चेष्टा और स्त्रीके आकारवाला षण्ड संज्ञक उत्पन्न होता है ॥ ५६ ॥
 स्त्री चेष्टिताकार स्त्री आकार अर्थात् दाढ़ी वगैरह से रहित और
 स्त्री चेष्टित अर्थात् लिङ्ग सहित ज्वाभी पुरुष शक्ति रहित होता है ।

॥ (क) ॥

किन्तु स्त्रीवदधो भूतः स्वे गुदे पुरषान्तरेण मैथुनं
 (ख) ॥ ऋतौ ऋतौ पुरुषवत् प्रवर्तते ताङ्गना यदि
 ॥ तत्र कन्या यदि भवेत्सा भवेन्नर चेष्टिता ५७ ॥
 पुरुषवत् स्त्रिय मारुह्य सानस्या यो नो स्वयोनि घ
 र्षणं करोति ॥ (ग) ॥

भा० लेकिन स्त्रीके मानिंद नीचे होके अपनी गुदा में दूसरे पुरुषसे
 मैथुन करता है ॥ (ख) ॥ ऋतुकाल में यदि स्त्री पुरुषके मानिं
 द अर्थात् आप ऊपर और पुरुष नीचे इस प्रकार मैथुन करेती उसमें
 यदि कन्या होती नरके चेष्टा और आकारवाली उत्पन्न होती है ॥ ५७ ॥
 पुरुषके मानिंद औरतको बढ़ाकर वो उसकी योनिमें अपनी योनि का

पर्यण करती है ॥ (ग) ॥

• [अपरा अपि गर्भं प्रहृणीराह]

यदा नाख्यावुपेयातां दृषस्यन्त्यो कथञ्चन ॥

मुञ्चन्त्यो शुक्र मन्योन्यमनस्थि स्तत्र जायते ॥

॥ ५८ ॥ अनस्थिः अत्रेषदर्थे नञ् तेनाल्पको

मलास्थिरित्यर्थः ॥ (क) ॥

ऋतुस्नाता तु या नारी स्वप्ने मैथुन भाचरेत् ॥

अर्त्तवं वायुरादाय कुक्षौ गर्भं करोति हि ॥ ५९ ॥

भा० दूसरी भी गर्भकी प्रकृति कहते हैं ॥ जब दो औरतें मदान्ध हुईं आपस्मि नीचे ऊपर होके एकके साथ मैथुन करती है तब एक में एक शुक्र छोडती है उसी जो सन्तान उत्पन्न होती है वह अस्थि रहित हो तीहें ॥ ५८ ॥ (अनस्थि यहाँपर छोडे अर्थमे नञ् है तिल्ले अल्प और कौमल अस्थि समकनी चाहिये) ॥ ऋतु में जो न्हाई हुई औरत स्वप्नमें मैथुन को करे तब वायु अर्त्त वको लेकर कुक्ष में गर्भको करता है ॥ ५९ ॥

मासि मासि प्रवर्द्धेत स गर्भो गर्भलक्षणाः ॥ क

ललं जायते तस्य वर्जितं पैतृकैर्गुरौः ॥ ६० ॥

गर्भलक्षणाः प्रकृतगर्भलक्षणाः । पैतृकैर्गुरौः केश

श्मश्रु लोमनखदन्त शिरास्त्रायु धमतीरेतः प्रभृतिभिः

॥ (क) ॥ सर्पवृश्चिक कुष्माण्डा कृतयो विद्व

ताश्च ये । गर्भास्ते योपिनस्ताश्च जेवाः पापकृतो

भृशम् ॥ ६१ ॥ गर्भो वान प्रकोपेण दोहृदे चाप
मानिते ॥ भवेत् कुब्जः कुणिः पङ्गुर्मूकोमिन्
मिन एवच ॥ ६२ ॥

भा० गर्भके चिन्हवाला वह गर्भ महीने महीनेमें बढ़ता है ॥ उसका पि
तु सम्बन्धी केशादि गुणों से रहित कल्ल अर्थात् मांस पिंडसा बन्ना हो
ना है ॥ ६० ॥ (गर्भलक्षण अर्थात् प्रहत गर्भचिन्ह पैत्रि
क गुण अर्थात् केश डाढ़ी रोम नख दांत सिरा स्नायु धमनी षड्रु प्र
भृतियों से रहित) ॥ (क) ॥

सांप बिच्छू कूर्पांड के आकार और जो विकारकी प्राप्त हुआ गर्भ है वे
औरतों के बहुत पाप करनेसे होते हैं ऐसा जानना चाहिये ॥ ६१ ॥
गर्भवायुके प्रकोपसे और दोहृद के अपमान से अर्थात् गर्भवती
स्त्री की जिस वस्तु में इच्छा होती है उस २ वस्तुकी नदेने से कुबड़ा कु
नि पंगुली गुंगा मिनमिना उत्पन्न होता है ॥ ६२ ॥

[पुत्राणां माहाराचारचेष्टाभेदस्य]

हेतुमाह

आहाराचारचेष्टाभिर्योदृशिभिः समन्वितौ ॥

स्त्रीपुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोऽपि नादृशः ॥ ६३ ॥

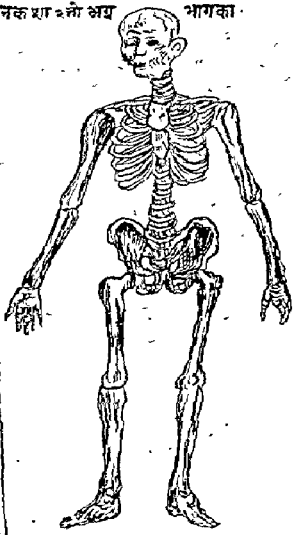
(समुपेयातां संयोगं गच्छेताम् ।)

[अथ गर्भलक्षणमाह]

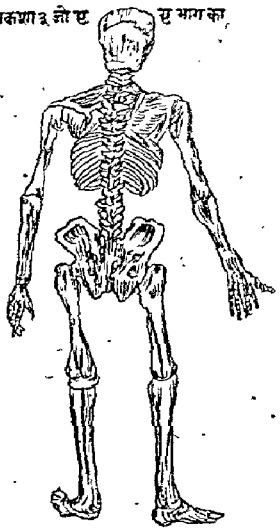
भा० पुत्रों के आहार और आचारोंकी चेष्टाके भेदके हेतुको कहते
हैं ॥ जिस प्रकारके आहार और चेष्टासे युक्त स्त्रीपुरुष संग करें उन
का पुत्रभी वैसा उत्पन्न होवे ॥ ६३ ॥ (समुपेयातां संयोग करें)

[अनन्तर गर्भका लक्षण कहते हैं]

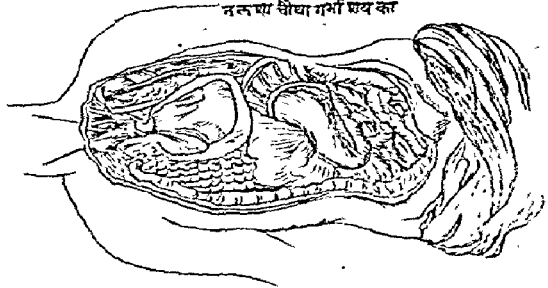
नक्षत्रा २ तो अग्र भागका

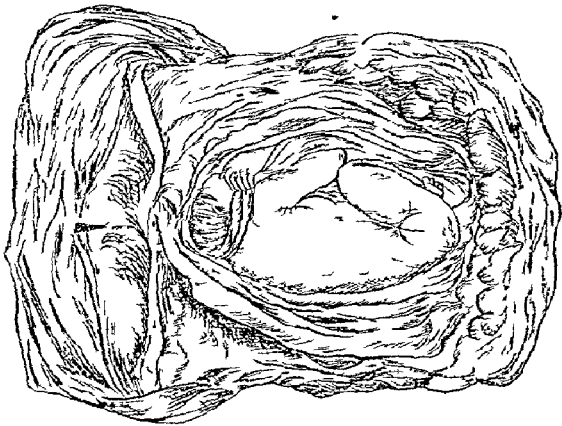


नक्षत्रा ३ जो ए पृ भागका

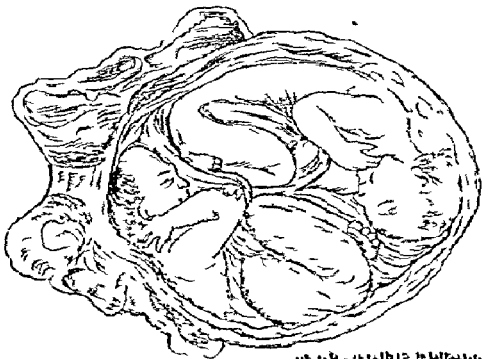


नक्षत्रा चौथा गर्भ शयनका





एक बच्चे का गर्भस्थान में स्थिति का चित्रण



एक बच्चे का गर्भस्थान में स्थिति का चित्रण

गर्भाशयगतं शुक्रं मार्तवं जीवसंज्ञकः ॥ प्र-
कृतिः सविकारा च तत्सर्व्वं गर्भसंज्ञकम् ॥
॥ ६४ ॥ कालेन वर्द्धितो गर्भो यद्यङ्गेपाङ्गसंयु-
तः ॥ भवेत्तदा स मुनिभिः शरीरीति निगद्यते ॥ ६५

[अङ्गेपाङ्गसंयुक्तः व्यक्ताङ्गेपाङ्गः]

तस्य त्वङ्गन्युपाङ्गानि ज्ञात्वा सुश्रुतशास्त्रतः ॥
मस्तकादभिधीयन्ते शिष्याः शृणुन यत्नतः ॥ ६६ ॥
आद्यमङ्गशिरः प्रोक्तं तदुपाङ्गानि कुन्तलाः ॥ त-
स्यान्तर्मस्तु लुङ्गं च ललाटं श्रूयुगन्तथा ॥ ६७ ॥

भा०- गर्भाशय में प्राप्त शुक्र और आर्तव उसकी जीवसंज्ञा है । और सो-
लहविकार के साथ प्रकृति उन सबकी गर्भसंज्ञा है ॥ ६४ ॥ जब
कालपाके बढ़ाहुवा अंग और अण्डाण से युक्त जब गर्भ होना है तब मुनि
लोग शरीरी ऐसा कहते हैं ॥ ६५ ॥ अङ्गेपाङ्ग से युक्त अर्थात् प्रगट
अङ्गेपाङ्ग वाला ॥ सुश्रुत ग्रन्थ से उसके अंग और अण्डाणों को जान
कर मस्तक से कहते हैं हे शिष्यों यत्न पूर्वक सुनो ॥ ६६ ॥
पहिला अंग शिरः कहा है और उसके अण्डाण के हैं ॥ उसके भीतर
मस्तुलुंग अर्थात् भेजा है तथा ललाट और दो भवे ॥ ६७ ॥

नेत्रद्वयं तयोरन्तर्वर्तते द्वे कनीनिके ॥ दृष्टिद्वयं
हृत्प्रगोलौ श्वेतभागौ च वर्त्मनी ॥ पद्ममाण्डया
ङ्गे शङ्खौ च करौ तच्छस्कुलीद्वयम् ॥ पालिद्व-
यं कपोली च नासिका च प्रकीर्तिता ॥ ६८ ॥

भा०- दो भ्रूवें और उनके बीच में दो पुनलियां हैं ॥ दो दृष्टि दो हृत्प्रगोलौ
अर्थात् आँसू के भीतर कालीगोल दो और संकेत कौड़ी दो पलकें दो और

और पलकों के रोवें ॥ ६८ ॥ आँख की नोकें माथे पर की दो हड्डियाँ कान
और उसके दो छिद्र तथा कानकी दोनों नोकें और दोगाल तथा नाक
ये कही गई ॥ ६९ ॥

श्रोत्राधरो च सूक्ष्मो मुखं तालु हनु द्वयम् ॥ द
न्ताश्च दन्तवेष्टश्च रसना चिबुकङ्गलः ॥ ७० ॥

द्वितीयं मङ्गं ग्रीवा तु यथा मूर्द्धा विधार्यते ॥ तृतीयं
बाहु युगलं तदुपाङ्गान्यथ ब्रुवे ॥ ७१ ॥ तत्रोपरि
मनो स्कन्धौ प्रगण्डौ भवतस्त्वधः ॥ कफो नियुतं
तदधः प्रकोष्ठ युगलन्तथा ॥ ७२ ॥

भा० होंठ और नीचे का होंठ तथा दोनों हीठों के प्रान्त भाग यानि खख-
वाड़ा मुखनाल और दोनों जबड़े ॥ दान्त मसूड़े जीभ ठुडी और गला ॥
॥ ७० ॥ दूसरा अंग गर्दन जिसके द्वार शिर धारण किया जाता है ॥ तीस-
रा अंग दोनों बाजू उसके उपांग कहते हैं ॥ ७१ ॥ उसके ऊपर दो कन्धे
और नीचे दो प्रगंड अर्थात् कौहनी से लेकर बगल तक बाजू उसके नीचे
कफसे युत दो प्रकोष्ठ अर्थात् कौहनी से हाथ के पाँचे तक ॥ ७२ ॥
हाथ के दो पाँचे दोनलवे दोहाथ उनको रस श्रङ्गुलियाँ ॥

मरिावन्धौ तले हस्तौ नयोश्चाङ्गुलनयो दशा ॥

नखाश्च दश ते स्थाप्या दश च्छेद्याः प्रकीर्तिताः ॥

॥ ७३ ॥ चतुर्थं मङ्गं वक्षस्तु तदुपाङ्गान्यथ ब्रुवे ॥

स्तनौ पुंसस्तथा नार्या विशेष उभयोरयम् ॥ ७४ ॥

यौवनागमने नार्याः पीवरो भवतः स्तनौ ॥ गर्भ

वत्याः प्रसूताया स्तावेद क्षीरप्रतिता ॥ ७५ ॥

भा० नख दश वेरखने योग्य और दस कान्हे योग्य कहे गये हैं ॥ ७३ ॥

न कशा पहिला ऽ शरीर का भाग का



हृदयं पुराडरीकेण सदृशं स्यादधो मुखम् ॥ जा
ग्रतस्तद्विकसति स्वपतस्तु निमीलति ॥ ७६ ॥

आशयस्तत्तु जीवस्य चेतनास्थानमुत्तमम् ।

अतस्तस्मिंस्तमोव्याप्ते प्राणिनः प्रस्वपन्निहि ॥ ७७ ॥

चेतनास्थानमुत्तममिति अयमभिप्रायः ॥ क) ॥

चेतनाना अधिष्ठानं मनोदेहश्च सेन्द्रियः ॥ केश-

लामनस्वायं च मलं द्रव्यगुरोर्विना ॥ ७८ ॥

भा० चौथा अंग छाती उसके उपाङ्ग कहते हैं । दो स्तन पुरुष के तथा
श्रोत्र के परन्तु दोनों में यह विशेष है कि ॥ ७४ ॥ यौवन अवस्थाके
आगमन में औरतों के स्तन उठे ऊँचे होते हैं ॥ पेटवाली तथा जापेवाली औ
पुन केवही स्तन वर्धसे भरजाते हैं ॥ ७५ ॥ हृदय कमल के सदृश अधोमुख
हैं । जागने में वह खिलता रहता है और सोनेमें वह सिकुड़ जाता है ॥ ७६ ॥
वह आशय जीवका चेतना स्थान है । इस हेतु तमोव्याप्त उस में
प्राणि सोने हैं ॥ ७७ ॥ चेतना स्थानं उत्तमं इतका यह अभिप्राय है कि
॥ (क) ॥ प्राणियों का अधिष्ठान अर्थात् जगह मन और इन्द्रियों के
सहित देह ॥ ७८ ॥

इत्युक्तवता चरकेण सकलं शरीरं चेतनास्थानमुक्तं ।

तदपेक्षया हृदयं विशेषतश्चेतनास्थानमिति ॥ (ख)

कक्षयोर्वक्षसः सन्धी जत्वुराणो समुदाहृते ॥ कक्षे उभे

समाख्याते नयोः स्यातां च वङ्क्षणी ॥ ७६ ॥

भा० तथा केषामेव और नखाय और द्रव्य गुरों के विना मल यह हैं
इस प्रकार कहने वाले चरक ने संपूर्ण शरीर चेतना स्थान कहा है । उन
की अपेक्षासे हृदय विशेषकरके चेतना स्थान है ॥ (ख) ॥

कौरव और छाती के जोड़ को जत्रुगी कहते हैं ॥ दो कौरवें कही गईं । और उनके दो बड़-सराण अर्थात् कटि प्रदेश का ऊर्ध्वभाग ॥७८॥ तथा पांचवाँ अंग उदर और छाठा अंग दोनों पसलियाँ ।

उदरं पञ्चमञ्चाङ्गं षष्ठं पार्श्व द्वयं मतम् ॥

सष्टष्टवंशं षष्ठं तु समस्तं सप्तमं स्मृतम् ॥ ८० ॥

उपाङ्गानि च कथ्यन्ते तानि जानीहि यत्नतः ॥

शोणितान्जायते स्नीहा वामतो हृदयादधः ॥ ८१ ॥

रक्तवाहि शिराणां समूलं ख्यातो महर्षिभिः ॥

हृदयाद्वामतोऽधश्च फुफ्फुसी रक्तफेनजः ॥ ८२ ॥

अधो दक्षिणतश्चापि हृदयान् यकृतः स्थितिः ॥

तत्रु रज्जक पित्तस्य स्थानं शोणितजं मतम् ॥ ८३ ॥

भा० पीठ के बाँसके सहित छाठा अंग समझना चाहिये और बाकी सब मानवाँ अंग कहा गया है ॥ ८० ॥ उपांगों को कहते हैं उनको यत्न पूर्वक समझे ॥ रुधिर से स्नीहा उत्पन्न हुई है बायें तरफ हृदय के नीचे उसको रक्तवाही नसों का मूल महर्षियों ने कहा है ॥ हृदय से बाई तरफ नीचे रक्त की जागसे उत्पन्न हुआ फुफ्फुस है ॥ ८२ ॥ हृदय के नीचे दाहिनी तरफ यकृत है । वह रक्त से उत्पन्न है और रज्जक पित्त का स्थान है ॥ ८३ ॥

अधस्तु दक्षिणे भागे हृदयान् क्लोम तिष्ठति ॥

जलवाहि शिरामूलं तृष्णाच्छादनं क्लोममतम् ॥ ८४ ॥

क्लोमनिलकम् एतत्तु वातरक्तजम् ॥ (क) ॥

भा० हृदय से नीचे दाहिनी तरफ यकृत के पास क्लोम है वह जलवाही नसों का मूल है अर्थात् जड़ है और तृष्णा का आच्छादन करने वाला है

॥ ८५ ॥ क्लोमतिलक यह घात और रक्तसे उत्पन्न है ॥ (क)

[अथ वृद्ध वाग्भटः ।]

रक्ताद् निलसंयुक्तात्कालीयकसमुद्भव इति ॥

मेदः शोणितयोः साराद्दृक्कयोर्युगलं भवेत् ॥ ८५ ॥

तौ तु पुष्टिकरौ प्रोक्तौ जठरस्थस्य मेदसः ॥ उक्ताः

सार्द्धस्त्रयो व्यामाः पुंसां मन्त्राणि सूरिभिः ॥ ८६ ॥

अर्द्धव्यासेन हीनानि योषितोऽन्त्राणि निर्दिशन्त ।

उन्दुकश्च कटी चापि त्रिकं वस्तिश्च कङ्कुराणां ॥ ८७ ॥

भा० वृद्ध वाग्भट में कहा है ॥ कि रक्त से मिले हुवे वायु से कालीयक की उत्पत्ति । मेद और रक्त के सारसे दो दृक्कल जूवे हैं वे दोनों जठर में रहनेवाले मेदको पुष्ट करते हैं ऐसा परिडनों ने कहा है ॥ परिडनों ने साढे तीन व्याम पुरुषों की आँतड़ीयां कही हैं (व्याम दोनों हाथों के फैलाव की) कहते हैं ॥ ८६ ॥ आधे पैमाने से हीन अर्थात् घेनेदो व्याम औरतों की आँतड़ियां कही गई हैं ॥ उन्दुक कटी त्रिक वस्ति अर्थात् पेड़ वड्ड-हरा ॥ ८७ ॥

कराडराणां प्ररोहः स्थान् स्थानं तद् वीर्य्यं मूत्रयोः

स सव गर्भस्याधानं कुर्व्याद्गर्भाशये स्त्रियाः ॥ ८८ ॥

शङ्खनाभ्या कृतिर्य्यानि स्त्रियावर्त्तः सा च कीर्तिता ।

तस्यास्तृतीये त्वावर्त्ते गर्भशय्या प्रतिष्ठिता ॥ ८९ ॥

भा० ये कंडरा अर्थात् वड़ी ग्ग इनके अङ्गुर हैं और शुक्र तथा मूत्रकी वह जगह है ॥ औरतों के गर्भाशय में वही गर्भका आधान करता है ॥ ८८ ॥ शंख नामकी आकार तीन आवर्त्तवाली यानि कही गई है । उसकी तीसरे आवर्त्त में गर्भशय्या स्थापन की गई है ॥ ८९ ॥

वृषणी भवतः सारात्कफासृग्भ्यां च मेदसाम् ॥
 वीर्यवाहि शिराधारी तौ मत्तौ पौरुषा वहौ ॥ ६० ॥
 गुदस्य मानं सर्वस्य सार्द्धं स्याच्चतुरङ्गुलम् ॥ तत्र
 स्युर्व्वलयस्तिष्ठः शङ्खावर्तनिभास्तु ताः ॥ ६१ ॥
 प्रवाहिणी भवेत्पूर्वा सार्द्धाङ्गुलमिता मता ॥ उ-
 त्सर्जनी तु तदधः सा सार्द्धाङ्गुल सम्मिता ॥ ६२ ॥

भा० मेद के सार और कफ रक्त से वृषण अर्थात् अंडकोश इवै हैं । वीर्य की धारणा करने वाली रणों के आधार और पौरुष की धारणा करने वाले कहे गये हैं ॥ ६० ॥ सबके गुदाका मान साढ़े चार अंगुल है ॥ उसमें तीन बलि अर्थात् लपेट शंख के आवर्तके समान हैं ॥ ६१ ॥ पहिली बलि प्रवाहिणी नाम है वो डेढ़ अंगुल की कही गई है ॥ उसके नीचे उत्सर्जनी नाम दूसरी बलि है वो भी डेढ़ अंगुल की है ॥ ६२ ॥

तस्याधः सञ्चरणी स्यादेकाङ्गुल समा मता ॥ अ-
 र्द्धाङ्गुल प्रमारां तु बुधैर्गुदं मुखं मतम् ॥ ६३ ॥ मलां
 त्सर्गस्य मार्गोऽयं पायुर्देहे विनिर्मितः ॥ पुंसः
 प्रोथो स्मृतौ यौ तु तौ नितम्बौ च योषितः ॥ ६४ ॥
 तयोष्क कुन्दरे स्यातां सक्थिनी त्वङ्ग मष्टमम् ॥
 तदुपाङ्गनि चतुर्भौ जानुनी पिरिडका ह्ययम् ॥ ६५ ॥

भा० उसके नीचे संचरणी नाम तीसरी बलि है वो एक अंगुल के समान है । गुदा का मुख आधा अंगुल प्रमारा पंडितों ने कहा है ॥ ६३ ॥ मल के निकालने का मार्ग शरीर में यह गुदा बनाई गई है ॥ जो पुरुष के प्रोथ कहे गये हैं वो औरतों के नितंब अर्थात् चूतड़ कहे गये हैं ॥ ६४ ॥ उनके दो कुं दर हैं और जांघ आठवां अङ्ग है । उसके उपांग कहेते हैं घुटने दो पिंडलियां

जङ्घे द्वे घुग्घिके पार्श्वीतले च प्रपदे तथा ॥ पादा
वृङ्गुल्यस्तत्र दश तासां नखादश ॥ ६६ ॥
अथेदं शरीर मपरिणापि येन येन समवाधिकारो नीत्य
द्यते तानि सर्वाख्याह ॥ (क)

अथ दोषाः प्रवक्ष्यन्ते धातवस्तदनन्तरम् ॥ आ
हारादेर्गतिस्तस्य परिणामश्च वक्ष्यते ॥ ६७ ॥
आर्त्तव चाथ धातूनां मलास्तदुप धानवः ॥ आश
याश्च कलाश्चापि मर्माण्यथ च सन्धयः ॥ ६८ ॥

भा० दो जाँघ दो बखेने दो सङ्घियां दो नलेवे दो प्रपद अर्थात् पाँव के सिरे
दो । पाँव की अँगुलियाँ दस और उनके नाखून दस ॥ ६६ ॥ अनन्तर यह
शरीर और जिन २ के मिलनेसे उत्पन्न होता है उन सबको कहते हैं (क)
॥ अनन्तर दोषों को कहते हैं उसके अनन्तर धातु कहते हैं । आहारादि
कों की गति और उसका परिणाम कहते हैं ॥ ६७ ॥ आर्त्तव अर्थात्
स्त्रीकारज और धातुओं के मल तथा उनकी उपधानु । आशय कला
मर्म और सन्धियाँ अर्थात् जोड़ ॥ ६८ ॥

शिराश्च स्नायवश्चापि धमन्यः कराडरास्तथा ॥
रन्ध्राणि भूरि स्त्रोतांसि जालैः कूर्चीश्च रज्जवः ॥
॥ ६९ ॥ सेवन्यश्चाथ सङ्गताः सीमन्ताश्च तथा
त्वचः ॥ लोमानि लोमकूपाश्च देह एतन्मयो म
तः ॥ १०० ॥

भा० छोटी नसें बड़ी नसें धमनी घोड़ नसें छिन्न और बहुत से स्त्रोत जा
ल कूर्व रज्जू ॥ ६९ ॥ सेवनी संघात सीमन्त तथा त्वचा लोम और
लोम कूप इनही से देह बनाया गया है ॥ १०० ॥

[तत्र दोषस्वरूपमाह वाग्भटः]

वायुः पित्तं कफश्चैति त्रयो दोषाः समासतः ॥

विकृताऽविकृतादेहं घ्नन्ति ते वर्द्धयन्ति च ॥ १ ॥

ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्येर्द्धसंश्रयाः ॥

वयोऽहोरात्रि मुक्तानामन्तमध्यादिगाक्रमान् ॥ २ ॥

[दोषशब्दस्य निरुक्तिमाह]

धातवश्च मलाश्चापि दुष्यन्त्ये भिर्यतस्ततः ॥

वातपित्तकफा एते त्रयो दोषा इति स्मृताः ॥ ३ ॥

भा० उनमें दोषों का स्वरूप वाग्भट कहते हैं । वायु पित्त कफ ये तीन दोष संक्षेप से कहे गये हैं ॥ वे अर्थात् वायु पित्त कफ बिगड़े हूँ शरीर को नाश करते हैं और अविकृत अर्थात् विकार से रहित इस देह को पुष्ट करते हैं ॥ १ ॥ वे सम्पूर्ण शरीर में फैले हूँ भी हृदय नाभिके नीचे वायु और हृदय नाभिके बीच में पित्त तथा हृदय नाभिके ऊपर कफ इस क्रमसे रहते हैं ॥ २ ॥ अवस्था दिन रात और भोजन इनके अन्त मध्य और आदि इस क्रमसे वायु पित्त कफ रहते हैं अर्थात् वृद्धावस्था में वायु तरुण अवस्था में पित्त और बाल अवस्था में कफ इसी प्रकार सायंकाल में वायु मध्याह्न में पित्त और प्रातः काल में कफ, और रातके अन्त में वायु मध्य में पित्त आदि में कफ तथा भोजन करने पर परिपाक अवस्थाके अन्त में वायु और मध्य में पित्त और आदि में कफ इस क्रमसे रहते हैं ॥ २ ॥

दोष शब्द की निरुक्ति कहते हैं ॥ जिस हेतु धातु और मल जिसके द्वारा दोष की प्राप्ति होती है अर्थात् बिगड़ने हैं जिस हेतु ये वात पित्त कफ तीन दोष कहे गये ॥ ३ ॥

(दोषा इत्यत्र दुष्ये वैकृत्ये इति दुषधातोः । दुष्यन्त्ये भिरिति वाक्ये । अकर्त्तरि च कारके संज्ञाया मित्य

नेन सूत्रेण करणेऽर्थे घञ् प्रत्ययः ।)
ते धातवोऽपि विद्वाद्भिर्गदिता देहधारणात् ।

यत आह सुश्रुतः ।

विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा ॥

धारयन्ति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथेति ॥ ४ ॥

अत्र यथासङ्घेनान्वयो बोद्धव्यः । विसर्गादानं वात
स्यैव । विक्षेपः शीतोष्णादीनां विविधप्रकारेण प्रे
रणात् । मलाश्च ते रसादीनां मलिनीकरणान्मताः ॥

भा० दोषा यहाँ पर दुष् वैकृत्यमें हैं इससे दुष् धातु से दुष्यन्त्येभिरिति
इस वाक्य में । अकर्त्तरि ज्वकारके संज्ञायां वृस सूत्र से करण अर्थमें घञ्
प्रत्यय होता है) ॥ उनको विद्वाभिने धातु भी कहा है देह के धारण
करने से । जिसके सुश्रुत ने कहा है ॥ चांद देने से सूरज लेने से
और हवा पड़चाने जैसे जगतको धारण करने हैं वैसे वायु पित्त कफ
शरीर को धारण करते हैं ॥ ४ ॥

(यहाँ पर यथा संख्या से अन्वय जानना चाहिये । देना लेना वायु
का ही । विक्षेप शीत और उष्णादिकों का जाना प्रकार से प्रेरणा करना ।
वे रसादिकों के मलिन करने से मूल कहेगये ॥)

तत्र वायोः स्वरूपमाह ।

दोषधातुमलादीनां नेता शीघ्रः समीरणः ॥

रजोगुणामयः सूक्ष्मो रूक्षः शीतो लघुश्चलः ॥ ५ ॥

(नेता स्थानान्तरं प्रापयिता- शीघ्रः आशुकारी)

अन्यच्च, उत्साहोच्छ्वासिनः श्वासवेष्टावेगप्रवर्तनैः ॥

सम्यक् गत्या च धातूना मिन्द्रियारणञ्च पाटवैः ॥ ६ ॥

भा० उनमें वायु का स्वरूप कहते हैं) दोष धातु मूल इनका ज्ञान वा

ला और जल्दी करनेवाला वायु है । तथा रजोगुण स्वरूप सूक्ष्म रूक्ष शीतल लघु चञ्चल यह वायु का स्वरूप है ॥५॥ नेता अर्थात् दूसरी जगह लेजानेवाला शीघ्र अर्थात् जल्दी करनेवाला) और भी । उन्साह उच्छ्वास अर्थात् सांसलेना निश्वास चेष्टा और वेगोंका प्रवर्तन अर्थात् छींक जंभाई पाद इत्यादि चतुर्दश वेगों की प्रपत्ति होने और सप्तधातुओं की अच्छी गतिसे तथा इन्द्रियों की पटुता अर्थात् अपने २ विषयों को ग्रहण करने की शक्ति से ॥ ६ ॥

अनुगृह्णात्य विकृतो हृदयेन्द्रियचिन्तकः ॥

रजोगुणामयः सूक्ष्मः शीतो रूक्षो लघुश्चलः ॥७॥

स्वरो मृदुर्योगवाही संयोगादुभयार्थकत्वं ॥ दाहकत्वं तेजसा युक्ती शीतरूक्षोमसंश्रयात् ॥ ८ ॥

विभागकरणाद्वायुः प्रधानं दीपसंग्रहे ॥ पक्वाशयकटीसकथिस्त्रितोस्थिस्पर्शानेन्द्रियम् ॥ ९ ॥

स्थानं वातस्य तत्रापि पक्वाधानं विशेषतः ॥ १० ॥

कोवायुः पित्तवन्नामस्थानं कर्मभेदैः पञ्चविधः ॥

भा० हृदय इन्द्रिय चिन्तको धारणा करण करनेवाला विकार रहित वायु देहको धारण करता है ॥ रजोगुण स्वरूप सूक्ष्म शीत रूक्ष लघु और चञ्चल ॥७॥ तथा स्वर अर्थात् नीखा कोमल और योगवाही अर्थात् जिसके साथ मिले उसीके गुण को बढ़ावे तथा संयोग से दोनों अर्थ को करनेवाला ॥ अर्थात् तेजसे मिलाज्जा दाह को करता है और सेमके मिलनेसे शीतको करता है ॥ ८ ॥ विभाग करनेसे दीपोंके संग्रह में वायु प्रधान है ॥ पक्वाशय अर्थात् अन्नके परिपाक का स्थान कमर जांघ सौत हड्डी और स्पर्शानेन्द्रिय अर्थात् जो इन्द्रिय त्वचामें रहती है और जिससे स्पर्श स्नान होता है ॥ ९ ॥ ये वातके स्थान हैं उनमें भी विशेष करके पक्वाशय वातका स्थान है ॥ एक वायु पित्त

केमानिन्द नामस्थान और क्रिया इन्मेंदोसे पांच प्रकार का है ॥ १० ॥

[तेषां वायूनां नामान्याह]

उदान स्तदनु प्राणः समानोऽपान एव च ॥ व्या
नश्चेतानि नामानि वायोः स्थान प्रभेदतः ॥ ११ ॥

[अथोदानादीनां स्थानान्याह]

कण्ठे हृदि तथा धस्तात्कोष्ठवन्हे म्मलाशये ॥
सकलेऽपि शरीरेऽसौ क्रमेण पवनो वसेत् ॥ १२ ॥

भा० उन वायुओं के नाम कहते हैं ॥ उदान उसके पीछे प्राण समान अपान व्यान स्थान भेदसे वायुके ये नाम कहे गये हैं ॥ ११ ॥ अनंतर उदानादिकों के स्थान कहते हैं । उदान कंठ में रहता है और हृदय में प्राण तथा जठररसिके नीचे समान और मलाशय में अर्थात् गुदाने अथवा तथा सम्पूर्ण शरीर में व्यान इस क्रमसे बरहता है ॥ १२ ॥

[अथ तेषां कर्माण्यह]

उदानो नाम यसूर्द्धं मुपैति पवनोत्तमः ॥ तेन
भाषितगीतादि प्रवृत्तिः कुपितस्तु सः ॥ १३ ॥
ऊर्द्धजत्वु गतान्त्रोगान्विदधाति विशेषतः ॥ यो
वायुः प्राणानामसौ मुखं गच्छति देह धृक् ॥ १४ ॥
सोऽन्नं प्रवेशयत्यन्तः प्राणांश्चाप्यवलम्बते ॥

भा० अब उनके कर्म कहते हैं । उदान नाम पवनोत्तम जो ऊपर जाता है । उसे बोलना गाना इत्यादिमें प्रवृत्ति होती है और वो कोपको प्राप्त करता है ॥ १३ ॥ ऊर्द्धजत्वु अर्थात् छाति और बगल की जोड़ के ऊपर के रोगों को विशेष करके करता है ॥ जो वायु प्राणानाम देह को चरणा करने वाला

यह मुख में जाता है ॥ १४ ॥ वह अन्नको भीतर लेजाता है और प्राणोंकी आश्रय करके रहता है ॥

प्रायशः कुरुते दुष्टो हिक्काशवासादिकान् गदान् ॥ १५ ॥

आमपक्वाशयचरः समानो वह्निसंगतः ॥ द्योऽन्नं

पचति तज्जान्श्च विशेषान्विविनक्तिहि ॥ १६ ॥

(तज्जानीत्यादि । अन्नगतान् रसमलमूत्रादीन् पृथक् करोतीत्यर्थः ।)

स दुष्टो वह्निमान्याति सारगुल्मान् करोति हि ॥

पक्वाशयालयोऽपानः काले कर्षति चाप्ययम् ॥ १७ ॥

भा० और वह विगड़ा जूवा प्रायः हिचकी खाँसी इत्यादिक रोगों को करता है ॥ १५ ॥ जटराग्निसे मिला जूवा आमाशय और पक्वाशय में आनेजानेवाला समानवायु है वह अन्नको परिपाक करता है और उस अन्नसे उत्पन्नहुवे विशेषोंको अलग २ करता है ॥ १६ ॥

तज्जान् अर्थात् अन्नमें मिलेहुवे रसमलमूत्र आदिकोंकी अलग करता है) वह दुष्टहुवा अग्निमान्धा अतिसार गुल्म इन रोगोंको करता है ॥

पक्वाशय है स्थान जिसका ऐसा यह अपानवायु मलमूत्रशुक्र गर्भ और आर्तव इनको आकर्षण करता जूवाभी समयपर नीचे करता है अर्थात् निकालता है ॥ १७ ॥

समीरणः शकृन्मूत्रशुक्रगर्भार्तवान्यधः ॥ क्रु

ञ्चस्तु कुरुते रोगान् घोरान् वस्ति गुदाश्रयान् ॥ १८ ॥

शुक्रदोषप्रमेहांश्च व्यानापानप्रकोपजान् ॥

कृत्स्नदेहचरो व्यानो रससंवाहनो घृतः ॥ १९ ॥

स्वेदाऽसृक् श्रावकश्चापि पञ्चधा चेष्टयत्यपि ॥

गत्यु पक्षे परोक्तत्वेन निमेषोन्मेषणादिका ॥ २० ॥
 प्रायः सर्वाः क्रियास्तस्मिन् प्रतिबद्धाः शरीरिणाम् ॥
 प्रस्यन्दनञ्चोद्बहनं पूरणञ्च विरेचनम् ॥ २१ ॥
 धारणाश्चेति पञ्चैताश्चैषा प्रोक्ता नभस्वतः ॥
 क्रुद्धः स कुरुते रोगान् प्रायशः सर्वदेहगान् ॥ २२ ॥
 युगपत् कुपिता एते देहं भिन्दुरसंशयम् ॥
 देहं भिन्नं कुर्युर्म्मारयेयुरित्यर्थः ॥ (क)

भा० और वह कुपित हुआ भयंकर प्रेड़ और गुदा के रोगों को करता है ॥
 ॥ २० ॥ तथा शुकदोष और प्रमेह रोग को भी करता है । और व्यान अपा
 नके प्रकोपसे उत्पन्न होनेवाले रोगों को भी करता है । रक्त धातुको सब ज
 गह पहुँचाने में तय्यार ॥ २१ ॥ और संपूर्ण शरीरमें घूमनेवाला तथा
 खिद अर्थात् पसीना और रुधिर को बहानेवाला भी व्यान वायु चलना
 ऊपर होना नीचे होना और आँख का बन्द करना तथा खोलना इत्यादि
 क पांच प्रकारकी चेष्टा करता है ॥ २० ॥

प्राणियों कि सब क्रिया प्रायः उसीमें बन्धरही हैं अर्थात् वायु के ही स्वाधी
 न हैं । बहुत चलना ऊपर लेजाना मरजाना मलादिकों का निकालना ॥ २१ ॥
 और धारण करना ये पांच चेष्टा वायुकी कही गई हैं । इसवास्ते वह वा
 यु कुपित हुआ सब शरीर में फैले हुए रोगों को करता है ॥ २२ ॥
 और जब ये तीनों वात पित्त कफ एक कालमें कोप को प्राप्त हवे निःसन्देह
 देहको नाश करते हैं ॥

देह को भिन्न करते हैं अर्थात् मार डालते हैं ॥ (क)

[अथ पित्तस्य स्वरूपमाह]

पित्तमुष्णं द्रवं पीतं नीलं सत्वगुणोत्तरम् ॥ सरं
 कटु लघु स्निग्धं तीक्ष्णमम्लन्तु पाकतः ॥ २३ ॥

पीतन्निरामम् । (क) ॥ नीलंसामम् । एकं पित्तं वा-
तवन्नामस्थानकर्म्मभेदैः पञ्चविधम् । (ख) ॥

[तेषां पित्तानां नामान्याह]

पाचकं रज्जकञ्चापि साधकालोचके तथा ॥ भ्रा-
जकञ्चेति पित्तस्य नामानि स्थानभेदतः ॥ २४ ॥

[अथ पाचकादीनां स्थानान्याह]

अग्न्याशये यक्षत् शीन्हे हृदये लोचनद्वये ॥ त्व-
चि सर्वे शरीरेषु पित्तं निवसति क्रमात् ॥ २५ ॥

भा० अनन्तर पित्तका स्वरूप कहते हैं ॥ पित्त उष्ण और द्रव अर्थात्
पिघलने वाला तथा पीला और नीला और सत्व गुण प्रधान ऐसा है ॥
और सर अर्थात् रेचक कड़वा हल्का स्निग्ध अर्थात् चिकना तीखा
तथा पाकमें अम्ल होता है ॥ २३ ॥ आम से रहित पित्त पीला होता है
(क) ॥ और आम के सहित पित्त नीला होता है ॥ (ख) ॥

एक पित्त वायुके मानिंद नाम स्थान कर्म्म इन भेदों से पांच प्रकार का है
॥ उन पित्तों के नाम कहते हैं ॥ पाचक रजक साधक आलोचक औ-
र भ्राजक इस प्रकार स्थानके भेद से नाम कहे गये हैं ॥ २४ ॥

अनन्तर पाचकादिकों के स्थान कहते हैं ॥ अग्न्याशय में पाचक पित्त
और यक्षत् पिल्ली में रजक पित्त तथा हृदय में साधक पित्त और दोनों
नेत्रों में आलोचक पित्त त्वचामे भ्राजक पित्त इस क्रमसे सब शरीरमें पि-
त रहता है ॥ २५ ॥

[अथ तेषां कर्मारयाह]

पाचकं पचते भुक्तं शेषाग्नि बलवर्द्धनम् ॥ रस-

मूत्र पुरीषाणि विवेचयति नित्यशः ॥ २६ ॥

पाचकं पित्तं मामपक्वाण्यमध्यस्थं षड्विधमाहारं भो-

ज्यं भक्ष्यं चर्व्यं लेह्यं चूर्ष्यं पेयं पचति दोषरसमूत्रप्र-
 तीषाणां पृथक्करोति च । (ख) ॥ तदग्न्याशयस्थ
 मेव स्वशक्त्या रसरञ्जनहृदयस्थ कफ तमोप नोदनरू-
 पग्रहणप्रभा प्रकाशनाभ्यङ्ग-लेपादि पाचनाद्यग्निक
 र्मणां विशेषाणां पित्तस्थाना नामनुग्रहं करोति । (ग)
 शेषाण्यपि पित्तस्थानानि यकृतस्त्रीहादीनि भागेन
 गत्वा तत्र तत्र रसरञ्जनादिकर्मभिरुप करोतीत्यर्थः
 ॥ (घ) ॥ कथम्भूतं पाचकं पित्रशेषाग्निबल
 वर्द्धनम् । शेषा अग्नयः पृथिव्यादिमहामृतगणाः (ङ)

भा० अनन्तर उनके कर्म कहते हैं । पाचक पित्त भोजन किये जूवे अन्न
 का परिपाक करता है । और शेष अर्थात् बाकी अग्नियों के बलको बढ़ा
 नेवाला है । तथा प्रतिदिन रस मूत्र मल इनको अलग करता है ॥ २६ ॥

पाचक पित्त आमाशय और पक्काशय के बीच में रहनेवाला छः प्रकार
 के आहारको अर्थात् भोजन करने योग्यको भक्षण करने योग्यको चर्बण
 करने योग्यको चाटने योग्यको चूसने योग्यको और पीने योग्यको पकाता है
 और दोष रस मूत्र मल को अलग करता है ॥ (क) ॥

वह अग्न्याशय में रहनेवाला पित्त अपनी पाचन शक्ति से रसका रंगना ।
 और हृदय में रहनेवाले कफ तथा तमको दूर करना और रूसका गृहण करना
 कान्तिका प्रकाशकरना तथा अभ्यङ्ग-लेपादिकोंका पाचनादि अग्निकर्म
 विशेष पित्तमें रहनेवालोंका उपकार करता है ॥ (ख) ॥

बाकीयोंको भी अर्थात् यकृत पिल्लिहि इत्यादिक पित्तके स्थानोंमें जाकर उ
 न २ स्थानोंमें रस रञ्जनादि कर्मोंके द्वारा अनुग्रह करना है ॥ (ग) ॥

कैसा है पाचक पित्त शेष अग्नियोंको । शेष ऐसे जो अग्नि अर्थात् पृथि
 व्यादि महामृत समुदाय ॥ (घ) ॥ जैसे कि चरक ने कहा है ॥ (ङ)

[यत उक्तं चरकेण ।]

भौमाप्याग्ने यवायव्याः फञ्चोष्माणः सुलाक्षरा इति ।
ऊष्माणः अग्नयः ॥ (क) ॥

[यत उक्तं वाग्भटे ।]

दोषधातुमलादीनामूष्मेत्यात्रेयशासदमिति । (ख)

दोषधातुमलादीनामूष्मैवाग्निरित्यर्थः । (ग) ॥

स्तादि धातुगता सप्त तेषां बलवर्द्धनम् । (घ) ॥

भा० भूमिसम्बन्धि जलसम्बन्धि आग्निसम्बन्धि वायुसम्बन्धि और आ
काशसम्बन्धि इस प्रकार पाँच उष्मा अर्थात् अग्नि हैं ॥ (क) ॥

और जैसे वाग्भट में कहा है । दोष धातु मल इत्यादिकों की उष्मा होती है
इस प्रकार अत्रेयजी का उपदेश है ॥ (ख) ॥

अर्थात् दोष धातु मल इत्यादिकों की उष्मा ही अग्नि है ॥ (ग) ॥

स्तादि धातु में प्राप्त सात उष्मा उनके बल को बढ़ाने वाला है ॥ (घ) ॥

यथा गृहे स्थापितानि रत्नानि खद्योतवद् दूरभास्वरा
णि तान्यपि दीपज्योतिषा दूरप्रकाशकानि भवन्ति ।
तथा अग्न्याशयस्थ पाचकाग्निनेजसा सर्वे अग्नयो
बलवन्तो भवन्ति । (ङ) ॥

[तथा च वाग्भटः ।]

अन्नस्य पक्ता सर्वेषां पक्त्राणां अधिको मतः ॥ त.

न्मूलास्ते हि तद्वृद्धिं क्षयवृद्धिं क्षयात्मका इति ॥ २७ ॥

भा० जैसे घरमें रखे हुए रत्न पट्टीजने के मानिंद दूरसे चमकदार मालूम
होते हैं । परंतु बोभी दीपक के प्रकाश से दूर तक प्रकाश करने वाली हो
ते हैं । उसी प्रकार अग्न्याशय में रहने वाले पाचक अग्निके नेजसे सब
अग्नि बलवान् होती हैं ॥ (ङ) ॥ उसी प्रकार वाग्भट ने कहा है ॥

अन्न का पाक करनेवाला सब पकानेवालों में आर्षान् सब अग्नियों में मुख्य समझा गया है । वही है अर्थात् पक्काशय में रहनेवाला पाचक अग्निही है जब जिनका ऐसेवे अग्नि उसके दृष्टि क्षयसे अर्थात् पाचक अग्निके दृष्टि और क्षयसे दृष्टि क्षय वाले होते हैं ॥ २७ ॥

ननु पित्तादन्योऽग्निराहोस्वित्पित्तमेवाग्निरिति सन्देहः । (क) ॥ उच्यते । पित्तस्याष्णादियुगाद्वाराहारपाचनरञ्जनदर्शनादि कर्मणाश्च न खलु पित्तव्यतिरेकेणान्योऽग्निः । तस्मादाग्निरूपस्यैव पित्तस्य स्थानभेदात्पाचकरञ्जकसाधकालोचकभ्राजकसंज्ञाः ॥ (ख) ॥

भा० यहाँपर शंका करते हैं कि पित्तसे अलग अग्नि है या पित्तही अग्नि है इस प्रकार सन्देह है ॥ (क) ॥ इसवास्ति कहता है । कि पित्त के उष्णादि युगद्वारा आहारका पाचन और रञ्जन दर्शन इत्यादि कर्मोंसे पित्तके सिवाय दूसरा अग्नि नहीं है ऐसा निश्चय है ॥ तिस हेतु अग्निरूपही पित्तकी स्थानके भेदसे पाचक रञ्जक साधक आलोचक और भ्राजक ये संज्ञा हैं ॥ (ख) ॥

[तथाच वाग्भटः ।]

पाचकं तिलमानं स्यात् कठिन्यान्नास्य दोषता ।
अनुगृह्णात्यविकृतं पित्तं याकोष्मदर्शनेः ॥ २७ ॥
क्षुत्तृट् रुचिप्रभामेधाधीशौर्यतनुमार्दवैः ॥
पित्तं पञ्चात्मकं तच्च पक्वामाशयमध्यगम् ॥ २८ ॥

[और वाग्भट में कहा है]

पाचक पित्त तिल प्रमाण है परंतु कठिनता से इसको दोषत्व नहीं है ।

किंतु पाक उष्मा और दर्शन इनसे विकार रहित पित्त का उपकार करता है ॥ २८ ॥ क्षुधा तृषा रुचि कान्ति मेधा बुद्धि श्रुता और शरीर का कीमलपन इनसे पक्वाशय और आमाशय के बीच रहनेवाला वह पित्त पंचात्मक अर्थात् पंच महाभूत स्वरूप कहा गया है ॥ २९ ॥

पञ्च भूतात्मकत्वेऽपि यत्तैजसगुणोदयम् ॥

त्यक्तद्रवत्वं पाकादिकर्मसंज्ञानलशब्दितम् ॥ ३० ॥

पचत्यन्नं विभजते सारकिंचै पृथक् तथा ॥ त

वस्थमेव पित्तानां शेषाणा मप्यनुग्रहम् ॥ ३१ ॥

करोति बलदानेव पाचकं नाम तस्मृतम् ॥

भा० जिस कारण पंच भूतात्मक धर्म होनेपर भी तैजस गुण अधिक वाला है । उस कारण द्रवत्व अर्थात् पिघलाव से रहित ऊँचा पाकादि कर्म से अग्नि कहा गया ॥ ३० ॥ अन्न को पकाता है और उसका सार तथा कीट को अलग करता है । और वहीपर रहनेपर रहनेवाले शेष पित्तोंपर बलदाने के द्वारा अनुग्रह करता है ॥ ३१ ॥ इसे पाचक नामसे कहा गया ॥

(क) ननु यदि पित्तान्योरभेदस्तदा कथं घृतं पित्तस्य शमकमग्निदीपकमिति । तथा मत्स्याः पित्तं कुर्वन्ति न च तेऽग्निदीप्तिकारा इति । तथा पित्ताधिक्यात्तीक्ष्णोऽग्निरित्यपि कथं स्यात् । तथा समदोषः समाग्निश्चेत्यपि चक्षुं न युज्यते । तथा द्रवं स्निग्धमधोगञ्जं पित्तं वह्निर्लाऽन्यथेति ॥ (ख) ॥

भा० (क) ननुशंका करतेहैं कि यदि पित्त और अग्नि एक ही है तब कैसे घृत पित्त का तो शमन करनेवाला और अग्निका दीपन करनेवाला है ।

और वैसेही मछलियाँ पित्तकी करती हैं और आग्निको बढ़ानेवाली नहीं हैं । तथा पित्तकी आधिक्यतामें तीक्ष्ण अग्नि भी कैसे होता है । वैसेही समदोष वाला सम अग्निभी कहना ठीक नहीं है । तथा द्रव स्निग्ध नीचेजानेवाला पित्त है और इसे विपरीत अग्नि है ॥ (ख) ॥

अत्रोच्यते । पित्तमग्नेः सन्तताधिष्ठानम् ॥ (ग) ॥

[तथाचोक्तं तन्त्वान्तरे]

अग्निभिन्नगुरोर्युक्तः पित्तं भिन्नगुरौस्तथा ॥

द्रवं स्निग्धमधोगच्च पित्तं वह्निरतोऽन्यथा ॥ ३२ ॥

तस्मात्तेजोमयं पित्तं पित्तोष्मायः स शक्तिमान् ॥

स सञ्चरति कुक्षिस्थः सर्वतो धमनीमुखैः ॥ ३३ ॥

स कायाग्निः स कायोष्मा स पक्ता स च जीवनम् ।

अनन्यगतिरित्येवं देहे कायाग्निरुच्यते ॥ ३४ ॥

भा० यहाँपर कहते हैं । पित्त अग्निके निरन्तर रहने की जगह हैं । उस तरह पर कहा है तन्त्वान्तर में । अग्नि और गुरोंसे युक्त और पित्त और गुरों से युक्त हैं । जैसे द्रव स्निग्ध और नीचे जानेवाला पित्त और इसे विपरीत अग्नि ॥ ३२ ॥ उस कारण पित्त तेज स्वरूप हैं ॥ और जो पित्तकी ऊष्मा है वह शक्तिमान् हैं । वह कोरबमें रहनेवाला धमनी नाड़ियों के मुखसे सब स्थानों में संचार करता है ॥ ३३ ॥ वह शरीर की अग्नि है । वह शरीर की ऊष्मा है वह पाक करनेवाला है और वह जीवन है । तथा एक गति इस प्रकार देहमें कायाग्नि कही गई है ॥ ३४ ॥

(अन्यच्च) वामपार्श्वीश्रितं नाभेः किञ्चित् सोम

स्य मण्डलम् ॥ तन्मध्ये मण्डलं सौर्यं तन्मध्ये

ऽग्निर्यवस्थितः ॥ ३५ ॥ जरायुमान्वप्रच्छन्नः का

चकोशस्थ दीपवत् ॥ ३५ ॥

[तथा च मधुकौषे]

(क) द्रवतेजःसमुदायात्मकस्यापि पित्तस्य तेजोभा
गोऽग्निरिति । तेन पित्तमप्यग्नि वन्मन्यते । अतिता
पिताद्योगोऽलकवत् । परमार्थतस्तु अग्निः पिताद्विन्न
स्येति सिद्धान्तः ॥

भा० औरगी । नाभिके घाम पार्ष्वके आश्रित छोटा सा सोम का मंडल है
। उसके बीचमें सूर्यका मंडल है और उसके बीचमें अग्नि रहता है ॥ ३५
जरायु मात्र में ढका हुआ है कांचके कोशके भीतर रहनेवाले दीपक के मानि
द ॥ ॥ उत्तररह पर कहा है मधुकौशमें ॥

(क) द्रव और तेज इनके समुदाय स्वरूपवाले पित्तका तेजोऽग्नि हैं ।
निस्से पित्तभी अग्निके मानिंद माना जाता है । बड़न तथाये हुवे लोहके
गोलेके मानिंद । परमार्थ से तो अग्नि पित्तसे अलग ही है । यह सिद्धान्त
है ॥ (क) ॥

[अतस्वाह रसप्रदीपे]

जाठरो भगवानग्नि रीश्वरोऽन्नस्य पाचकः ॥ सौ

दभा द्रसानाऽऽददानो विवक्तुं नैव शक्यते ॥ ३६।

नाभि मध्ये शरीरस्य विशेषात्सोममण्डलम् ॥

सोममण्डल मध्यस्थं विद्यात्सूर्यस्य मंडलम् ३७

प्रदीपवत्तत्र नृणां स्थितो मध्ये हुताशनः ॥ सूर्यो

दिवि यथा तिष्ठं स्तेजोयुक्तैर्गमस्तिभिः ॥ ३८ ॥

भा० इसवास्ते रसप्रदीप में कहा है ॥ जठर में रहनेवाला भगवान् अग्नि
जन्नका पाक करनेवाला ईश्वर सूक्ष्म भावसे रसोंको लेनेवाला है परन्तु
विशेषकरके कह नहीं सकते ॥ ३६ ॥ शरीर की नाभिके बीचमें विशेषकर

के चन्द्रमंडल हैं । और चन्द्रमंडल के बीचमें रहनेवाला सूर्यमंडल जानना चाहिये ॥ ३७ ॥ दीविके मानिंद मनुष्योंके बीचमें अग्नि रहता है । जैसे सूर्य आकाशमें रहकर तेजसे युक्त ऐसी किरणोंसे सब जंगल और नदियोंको सुखाता है ॥

विशोऽगति सर्वाणि पल्वलानि सरांसि च ॥ तद्
च्छरीरिणां भुक्तं ज्वलनो नाभि माश्रितः ॥ ३८ ॥ ३९ ॥
मयूरेवः पचते क्षिप्रन्नानाव्यञ्जन संस्कृतम् ॥
स्थूलकायेषु सत्त्वेषु यवमात्रः प्रमाणातः ॥ ४० ॥

भा० वैसेही नाभिके आश्रित अग्नि अनेक प्रकारके व्यंजनोंसे संस्कारकिये ज्वे मनुष्योंके भोजन किये ज्वेको किरणोंसे पकाता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ बड़े शरीर वाले जीवोंमें जल बराबर रहता है । और छोटे शरीर वाले जीवोंमें तिल प्रमाणा रहता है ॥ ४० ॥

ह्रस्वकायेषु सत्त्वेषु तिलमात्रः प्रमाणातः ॥ ४० ॥
कामिकीट पतङ्गेषु बालमात्रोऽचतिष्ठत इति ॥

[सुनः प्रकृत मनुसरति]

रञ्जकं नाम यत्पित्तं तद्रसं शोणितं नयेत् ॥ यत्तु
साधकसंज्ञं तत्कुर्व्याद् बुद्धिं धृतिं स्मृतिम् ॥ ४१ ॥
धृतिं मेधां यदालोचकसंज्ञं तद्रूपग्रहणकारणम् ॥

भा० तथा कामिकीट पतंगे इनमें बाल बराबर रहता है ॥

॥ फिरसे उसको कहते हैं ॥

जो रंजक नाम पित्त है वह रसका रुधिर बनाता है । और जो साधक नाम पित्त है वह बुद्धि धृति स्मृति को करता है ॥ ४१ ॥ धृति अर्थात् मेधा । तथा जो आलोचक नाम पित्त है वह रूपके ग्रहण करनेका कारण है ॥

भ्राजकं कान्तिकारी स्यात्क्षेपाभ्यङ्गदि पाचकम् ॥ ४२

[अथ श्लेष्मस्वरूपमाह]

श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छिलः शीतलस्तथा ॥

तमोगुराणां अधिकः स्वादुर्विदग्धो लवणो भवेत् ॥ ४३ ॥

(क) एकः श्लेष्मा वातपित्ताविव नामस्थानकर्मभेदैः पञ्चविधः । (क) ॥

[अथ श्लेष्मणां नामान्याह]

कफस्यै तानि नामानि क्लेदनश्चाव लम्बनः ॥ र

सनः स्नेहनश्चापि श्लेष्मणाः स्थानभेदतः ॥ ४४ ॥

भा० और भ्राजक कान्तिका करनेवाला है तथा लेप और अभ्यंग आदियों का पाचक है ॥ ४२ ॥ अनंतर श्लेष्मा का स्वरूप कहते हैं ॥ (श्लेष्मा) कफ श्वेत है भारी है और स्निग्ध तथा फिस्लहटवाला है और शीतल तथा तमोगुरा अधिक है मधुर और विदग्ध हुआ लवणो हो जा है ॥ ४३ ॥ (क) एक कफ वात पित्तोंके मानिंद नाम स्थान और कर्म इन भेदोंसे पांच प्रकारका है ॥

[अनन्तर कफ के नाम कहते हैं]

स्थानोंके भेदसे कफ के ये नाम हैं ॥ क्लेदन अवलम्बन रसन स्नेहन और श्लेष्मणा ॥ ४४ ॥

[अथ क्लेदनादीनां स्थानान्याह]

आमाशयेऽथ हृदये करिं शिरसि सन्धिषु ॥ स्था

नेष्विषु मनुष्याणां श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात् ॥ ४५ ॥

भा० अनन्तर क्लेदादिकोंके स्थान कहते हैं ॥ आमाशय में क्लेदन हृदय में अवलम्बन कंठ में रसन शिर में स्नेहन और सन्धियों में श्लेष्मणा इस क्रम

से मनुष्यों के इन स्थानों में श्लेष्मा रहना है ॥ ४५ ॥

(क) दोषाणां सकलशरीर व्यापिनामपि पञ्च पञ्च
स्थानानीति बाहुल्याभिप्रायेणोक्तानि ॥ (क) ॥

[तथाच वाग्भटः]

इति प्रायेण दोषाणां स्थानान्येकी कृतात्मनाम् ।
व्यापिनामपि जानीयान्कर्माणि च पृथक् पृथक् ॥
इति ॥ ४६ ॥ चरकश्च । ते व्यापिनोऽपि हृत्नाभ्यो
र्धेमध्योर्द्ध संश्रया इति ॥

भा० (क) सम्पूर्ण शरीर में फैले हुए भी दोषों के पाँच १ स्थान आधिक्य
भिप्रायसे कहे गये हैं । उसी तरह पर कहा है वाग्भटने । इस प्रकार
प्रायः करके सब शरीर में फैले हुए और मिले दोषों के स्थान और अलग
अलग कर्म इनको जाने ॥ ४६ ॥ इस प्रकार चरक ने भी कहा है ॥
वे सम्पूर्ण शरीर में फैले हुए भी हृदय नाभिके नीचे और बीच में तथा
ऊपर रहते हैं ॥

[अथ तत्तत्स्थान गतस्य श्लेष्मणाः कर्माण्यह]

क्लेदनः क्लेदयत्यन्नमात्मशक्त्या अपरायपि ॥ ४७ ॥

अनुगृह्णाति च श्लेष्मस्थान्युदक कर्माणा ॥ ४७ ॥

(क) अयमर्थः क्लेदनोऽन्नं क्लेदयति तेन संहतमन्नं मे
दं प्राप्नोति । अपरायपि श्लेष्मस्थानानि हृदयादीनि
॥ मार्गिणा गत्वा तत्र तत्र हृदयावलम्बन संधारण र
स ग्रहण समस्तेन्द्रिय तर्पण सन्धिसंश्लेषणाद्युदक

कर्मभिरनुग्रहानि उपकरोति ॥ (ख) ॥ तथाच
रसयुक्तात्मवीर्येण हृदयस्थावलम्बनम् ॥ त्रिक
सन्धारणं चापि विदधात्यवलम्बनः ॥ ४८ ॥

भा० अनन्तर उन २ स्थानों में प्राप्त कफ के कर्मों को कहते हैं । क्लेदन
कफ अन्नको आर्द्र करता है और अपनी शक्ति से दूसरे श्लेष्म स्थानोंके
भी उदक कर्मके द्वारा अनुग्रह करता है ॥ ४७ ॥ यह अर्थ है कि क्लेद
न अन्नको गीला करता है उसे दृढ़ जवाभी अन्न अलग होजाता है ॥
और भी श्लेष्म स्थान अर्थात् हृदयादिक ॥ मार्ग से वहाँ वहाँ पर जाकर
हृदय का अवलंबन संधारण रसग्रहण सम्पूर्णा इन्द्रियोंका तर्पण अर्थात्
नृप्त करना और संधियों का अच्छे प्रकार मेलन इत्यादिक उदक क
र्मसे अनुग्रह करता है ॥ (ख) ॥

औरभी । हृदय में रहनेवाला अवलंबन कफ रस से युक्त अपने सामर्थ्य
से अवलंबन और त्रिक अर्थात् पीठकी हड्डी का नीचला हिस्सा उसका
संधारण अर्थात् पकड़ना भी करता है ॥ ४८ ॥

(क) (त्रिकं शिरोवाङ्मह्यसन्धिः)

उभावपि ततः सौम्यौ तिष्ठतश्चान्तिके यतः ॥

रसान्वितौ हि जानीते रसनारसनौ समौ ॥ ४९ ॥

(रसना रसनेन्द्रियं रसनः कराठस्थकफः ।)

स्नेहनः स्नेहदानेन समस्तेन्द्रियतर्पणः ॥ श्ले

ष्मणः सर्वसन्धीनां संप्लेषं विदधात्यसौ ॥ ५० ॥

भा० (क) त्रिक अर्थात् शिर और दोनो भुजाओंकी सन्धि जिसे कि शी
म्यदोनों समीपमें रहते हैं तिस हेतु समान रसना अर्थात् त्रिक और रसन
अर्थात् कराठ में रहनेवाला कफ ये दोनों रस से युक्त जाते जाते हैं ॥ ४९ ॥
(रसना अर्थात् रसनेन्द्रिय रसनः अर्थात् कराठ में रहनेवाला कफ ।)
स्नेहनकफ स्नेह दानसे अर्थात् नरावट देने से संपूर्णा इन्द्रियोंका नृप्त

करता है ॥ श्लेष्मरा कफ सब संधियों को जोड़ता है ॥ ५० ॥

[अथ धातुशब्दस्य निरुक्तिमाह]

रग्ने सप्त स्वयं स्थित्वा देहन्दधतियत् नृणाम् ॥

रसासृङ्मांस मेदोस्थिमज्जा शुक्राणि धातवः ॥ ५१ ॥

धातव इति धा धातोस्तु प्रत्ययः । (क) ॥

[अथ धानूनां कर्मण्येवाह]

प्रीणनं जीवनं लेपः स्नेहो धारणा पूरणं । गर्भो

नृपादश्च कर्माणि धानूनां कथितानि हि ॥ ५२ ॥

भा० [अनन्तर धातुशब्दकी निरुक्ति कहते हैं]

रस रुधिर मांस मेद अस्थि मज्जा और शुक्र ये सात भाग्य रहकर मनुष्यों की देहको धारण करते हैं ॥ ५१ ॥ धातव इसमें धा धातु से तु प्रत्यय होता है ॥ अनन्तर धातुओं के कर्म कहते हैं ॥ प्रीणन अर्थात् तृप्त करना जीवन अर्थात् प्राणका धारण करना लेप आर्द्र करना धारण करना भरना और गर्भका उत्पन्न करना ये कर्म क्रमके साथ अर्थात् रसका प्रीणन रुधिर का जीवन मांसका लेप मेदका स्नेह अस्थिका धारण मज्जा का पूरण और शुक्रका गर्भ उत्पन्न करना इस प्रकार कहे गये हैं ॥ ५२ ॥

[तत्र रसशब्दस्य निरुक्तिः]

यद्यथा रस धातुर्यस्तनोऽभवदप्यां रसः ॥ स इव

सकलं देहं रसतीति रसः स्तूलः ॥ ५३ ॥

भा० उत्तमें रस शब्दकी निरुक्ति कहते हैं। किडै रसि जी रस धातु जिस प्रकार जल का रस ऊँचा तिस हेतु इवके स हेतु र पुरी शरीर को आर्द्र करना है इस वासे रस कहा गया ॥ ५३ ॥

[अथ रसस्य स्वरूपमाह]

सम्यक् पक्वस्य भुक्तस्य सारो निगदितोरसः ॥

संतु द्रवः सितः शीतः स्वादुः स्निग्धश्चलो भवेत् ॥ ५४

(क) सारो यथा गुड़ मधूक पूष्य बुब्बूलत्वग्दरी मूला
दि भवः सारो मदिरा ॥ (क) ॥

[अथ रसस्य स्थानमाह ।]

सर्व्वदेह चरस्यापि रसस्य हृदयं स्थलम् ॥ स

मान मरुता पूर्वं यदयं हृदये द्युतः ॥ ५५ ॥

भा० अनन्तर रसका स्वरूप कहते हैं । अच्छे प्रकार परिपाक हुवे भी
जन कियेका जो सार वह रस कहा गया है । और वह रस द्रव अर्थात्
वह जाने वाला है तथा श्वेत और शीत मधुर स्निग्ध और अस्थिर हो
ता है ॥ ५४ ॥ (क) सार जैसे गुड़ महुवे के फूल बुब्बूल जिसकी की
कर कहते हैं उसकी छाल और वैरीकी जड़ इत्यादिकों से उत्पन्न हुआ
सार अर्थात् मदिरा ॥ (क) ॥

[अनन्तर रसका स्थान कहते हैं ।]

सम्पूर्ण शरीर में धूमनेवाले भी रसका स्थान हृदय है । क्योंकि पहिले य
ह समान वायु के द्वारा हृदय में स्थापन किया गया ॥ ५५ ॥

[अथ रसस्य कर्म्मरायाह]

आरुह्य धमनीर्गत्वा धातून् सर्वानयं रसः ॥ सु

ष्णाति तदनु स्वीयैर्व्याप्नोति च तनुं गुरौः ॥ ५६ ॥

(क) गुरौः शीत स्निग्ध पोषकत्व गुरौः । (क)

भा० अनन्तर रसका कर्म्म कहते हैं ॥ यह रस चढ़कर धमनियों में जा
के सब धातुओं को पुष्ट करता है उसके पश्चात् अपने गुरों से शरीर में फै
लता है ॥ ५६ ॥ (क) गुरों से अर्थात् शीत स्निग्ध और पोषकत्व गुरों से ।

मन्दवान्हि विदग्धस्तु कड़वांस्त्रो भवेद्रसः ॥ सकु
र्व्याद्दुलान् रोगान् विषहृत्यं करोत्यपि ॥ ५७ ॥

[अथ रक्तस्य स्वरूप माह]

यदा रसो यद्गच्छति तत्र रज्जकपित्ततः ॥ रसं पा
कं च संप्राप्य स भवेद्रक्त संज्ञकः ॥ ५८ ॥ रक्तं
सर्वशरीरस्थं जीवस्याधारमुत्तमम् ॥ स्निग्धं गुरु
चलं स्वादु विदग्धं पित्तवद्भवेत् ॥ ५९ ॥

(जीवस्याधार मुत्तम मिति)

भा० मन्दाग्नि से विदग्ध रस होता है अथवा कटु या अम्ल रस होना है । वह रस चरुतसे रोगों को तथा विषके हृत्य को करता है ॥ ५७ ॥

[अनन्तर रक्तका स्वरूप कहते हैं]

जब रस यकृत में अर्थात् कलेजे में जाता है तब वहाँपर रज्जक पित्तसे रंग
और पाक को पाकर वह रस रक्त संज्ञक होता है ॥ ५८ ॥ रक्त सम्पूर्ण
शरीर में रहने वाला और जीवका आधार तथा श्रेष्ठ ॥ और स्निग्ध भा
री अस्थिर और मधुर तथा विदग्ध दुवा पित्तके सदृश होता है ॥ ५९ ॥

[जीवका आधार और उत्तम]

यत आह । जीवो वसति सर्वस्मिन्देहे तत्र विशेष
तः ॥ वीर्यं रक्ते मले यस्मिन् क्षीरो याति क्षयं क्षणा
दिति ॥ ६० ॥ (क) वीर्यं रक्ते मले च शरीरारंभके
वाग् भवेत्तपरिभागा मिते श्रुते जीवो वसति ननु दुष्ट
प्रवृत्ते रक्त लावणोपदेशस्य वैपर्य्य प्रसङ्गान् पित्त व
द्भवेत् । अन्तं भवेदित्यर्घः ॥ (क) ॥

भा० जैसे कि कहते हैं । जीव संपूर्ण शरीर में रहता है । और शुक्र में

रक्तमें मल में रहता है परंतु जिसके क्षीण होनेसे क्षरण में क्षेयको प्राप्त होता है अर्थात् नाशको प्राप्त होता है उसमें विशेष करके रहता है ॥ ६० ॥
 (क) वाग्मटके कहेहुवे प्रमाराण के बराबर शुक्र रक्त और मल ये शरीर के अरंभक हैं। अर्थात् इन्हीसे शरीर जुवा है। इस शुद्ध में जीव रहता है नकि दुष्ट में। क्यों कि बहने में रक्त निकालनेके उपदेशको व्यर्थता होगी इसवासे पित्रवत् होता है अर्थात् खटा होता है ॥ (क) ॥

[अथ रक्तस्य स्थानमाह]

यद्वात् स्त्रीहाच रक्तस्य मुख्यस्थानन्तयोःस्थितम्।
 अन्यत्र संस्थितवतां रक्तानां पोषकं भवेत् ॥ ६१ ॥

[अथ मांसस्य स्वरूपमाह]

शोणितं स्वाग्निना पक्वं वायुना च घनी कृतम् ॥
 तदेव मांसं जानीयात्तस्य भेदानपि ब्रुवे ॥ ६२ ॥

भा० अनन्तर रक्तका स्थान कहते हैं ॥ यद्वात् और पिलही रक्त का मुख्य स्थान है ॥ उनमें रहता हुवा और स्थानों में रहनेवाले रक्तों का पोषण करने वाला होता है ॥ ६१ ॥

[अनन्तर मांस का स्वरूप कहते हैं]

निज अग्निसे परिपाक किया गया और वायु से गाढ़ा किया गया जो उसी को मांस कहते हैं और उसके भेदोंको भी कहता हूँ ॥ ६२ ॥

(क) शोणितमिति शोणितस्थानगतत्वाद्द्रस एव
 शोणित संज्ञां लभते । एवमग्रे रसस्यैव मांसादिव्य
 पदेशः ॥ [अथ मांसस्य पेशीमाह]

यथार्थं मूष्मणा युक्तो वायुः स्रोतांसि दारयेत् ।

भा० (क) शोणितमिति । रुधिरके स्थानमें जानेसे रसही रुधिर संज्ञाको प्राप्त होता है । ऐसेही आगे रसके ही मांसादिक नाम होने हैं ॥ (क) ॥

[अनन्तर मांसकी पेशी अर्थात् मांसके पिंड कहते हैं]

रीक २ गरमी से युक्त वायु स्त्रियों को फाड़ता है और पञ्चानु मांस में घुसकर पेशियों को अन्नग करता है ॥ ६३ ॥ अनुप्रविश्य पिशितं पेशी

विभजते तथा ॥ ६३ ॥ (यथार्थं यथा प्रयोजनम्)

[मांसपेशीनां संख्यामाह ।]

मांसपेश्यः सभारव्याना नृणां पञ्च शतानि हि ।

तासां शतानि चत्वारि शारवासु कथिनान्यथा ॥ ६४ ॥

कोष्ठे षडुत्तरा षष्टिः कथिता मुनिपुङ्गवैः ॥ ग्रीवा

या ऊर्ध्वगास्तास्तु चतुस्त्रिंशत् प्रकीर्तिताः ॥ ६५ ॥

भा० यथार्थं अर्थात् जेतना चाहिये ॥ मांस के पेशियों की संख्या कहते हैं ॥ मनुष्यों की मांस पेशी पान्सी कहो गई हैं ॥ उनके चारसी अर्थात् चारसी मांसपेशी चार शारवाजों में अर्थात् दोहाथ और दो पाँव इनमें कही गई हैं ॥ ६४ ॥ और कोष्ठ में छःठ दंडे मुनियों ने कही हैं ॥ तथा गले के ऊपर जानेवाली चौह चौतीस कही गई हैं ॥ ६५ ॥

(क) ताः शारवागताः । [प्राह ।]

(ख) एकैकस्यान्तु पादाङ्गुल्या तिस्रस्त्रिंशत्ताः पञ्च

दश १५ पादाग्रे दश १० पादोपरि कूर्चसन्निविष्टा दश १०

गुल्फतलयोर्दश १० गुल्फजानुनोरन्तरे विंशतिः २० जा

नुनि पञ्च ५ ऊरो विंशतिः २० वक्षसोर्दश १० एवमेक ।

स्मिन् सकथिनि शतं भवन्ति । एतेनेतर सकथिवाह-

च व्याख्यातो ॥ (ख) ॥

भा० (क) चार अर्थात् शारवामें प्राप्त । कहते हैं ॥ (क)

(ख) एक पाँव की अंगुलियों में तीन मांस पेशी हैं एमें पाँचों अंगुलियों में नर पन्द्रह १५ हैं । पाँव के सिरेमें दश १० और पाँव के ऊपर कूर्च अर्थात्

अंगुष्ठ और ऊंगलि के मध्यका ऊपरका भाग उससे मिले हुए दस १० गि
होंके तलुवोंमें दस १० गिहें और घुटनोंके बीचमें बीस २० घुटनेमें पांच जांव
में बीस २० बंत्तगा में अर्थात् कमरके नीचेके भागमें दस १० इस प्रकार एक
सकथि में सौ भांसकी पैरी हैं ॥ इसी प्रकार दूसरी सकथि और दोनों मु
जा व्याख्या किये गये ॥ (ख) ॥

[अथ कौष्ठगताः प्राहः ।]

(क) गुदे तिस्रः ३ शोफस्थैका १ सेवन्यामेका १ वृषणा
योर्द्धे २ स्फिजोः पञ्च ५ पञ्च ५ वस्ति मूर्द्धनि द्वे २ उदरे
पञ्च ५ नाभ्यामेका १ पृष्ठोर्द्धे सन्निविष्टा उभयतः पञ्च
५ पञ्च दीर्घा ५ पार्श्वयोः षट् ६ वक्षसि दश १० अक्षकां
सौ प्रतिसमन्तात् सप्त ७ । अक्षको अशु आ इति लोके
अंसौ स्कन्धौ १ हृदि द्वे २ यकृति २ स्तीन्धि द्वे २ (नासा
यां द्वे २ नेत्रयोर्द्धे २ गण्डयोश्चतस्रः ४) तुण्डके द्वे २ ।

भा० अनन्तर कौष्ठमें प्राप्त जड़ोंको कहते हैं । (क) गुदामें तीन ३
लिंगमें एक सेवनी अर्थात् लिंगके नीचे जो सीवन हैं उसमें एक १
अण्डकोशोंमें २ चूतड़ोंमें पांच पांच ५।५। पैडके सिरपर दो २ उदरमें
पांच ५ नाभिमें एक १ पीठके ऊपर मिले हुए दोनोंतरफ पांच पांच ५।५
दीर्घ । पसलियोंमें छ ६ वक्षस्थल अर्थात् छातीपर दस १० अक्षक अ
र्थात् असुवा और अंस अर्थात् कन्धा इनके आस पास सप्त ७ । अक्ष
क अर्थात् अशुआ ऐसा लोकमें कहते हैं और अंस अर्थात् कंधे ।
हृदय अर्थात् दिलपर दो २ यकृत् में दो २ पिलहीमें दो २ मूँडि में दो २
अनन्तर गलेके ऊपर गड़ जड़ोंको कहते हैं ।

[अथ ग्रीवायुर्द्ध गाः प्राहः ।]

(ख) ग्रीवायुर्द्धतस्रः ४ हन्वीरष्टौ ८ कराठमरुणौ सदा

घण्टिकायामिति यावत् । गले सर्का १ नालूनि द्वे २ जि
ह्वायामेका १ ओष्ठयोर्द्वे २ नासायां द्वे ३ नेत्रयोर्द्वे २ ग
ण्डयोश्चतस्रः ४ करायोर्द्वे ३ ललाटे चतस्रः ४ । शि
रस्येका १ एवं मांसपेश्यः पञ्च शतानि भवन्ति ।

भा० गलेमें चार ४ दोनोंजवाड़ोंमें आठ ८ करठमणि अर्थात् घंटिका
में जिसकी घांठी भी कहते हैं उसमें एक । नालूमें दो २ जीभमें एक १
होंठोंमें दो २ नाकपर दो २ आंखमें २ गालोंपर चार ४ कानोंमें २ मांस
पर चार ४ सिरमें एक १ इस प्रकार मांसकी पेशी अर्थात् पिंड ५०० हैं।

स्त्रीरामायि भवन्त्येताः किन्तु विंशतिरुत्तराः ॥

गर्भाशये गर्भमार्गे योनि च स्तनयो रपि ॥ ६६ ॥

(क) एताः पञ्च शतानि मांसपेश्यः । अधिका विंश
तिर्यथा । गर्भाशये तिस्रः ३ गर्भच्छिद्र संस्थिता शु
क्रार्तव प्रवेशिन्यस्तिस्रः ३ । योनावभ्यन्तरतो मुखा
श्रिते प्रसृते द्वे २ योनावेव वहिर्विगते स्त्रोतः पार्श्वे द्व
यस्थिते वर्तुले योनिकारिणिकेति यावत् । द्वे २ स्तनयोः
पञ्च ५ पञ्च ५ यौवने तासां वृद्धिर्भवति ॥ (क) ।

भा० औरतों की मांसकी पेशियां होती हैं । किन्तु बीस २० और होती
हैं । गर्भमें और गर्भके मार्ग में योनि अर्थात् गर्भमें और स्तनोंमें भी ॥
॥ ६६ ॥ (क) ये पान्सी मांसकी थैली है और बीस २० अधिक है ।
गर्भाशयें ३ गर्भके छिद्र में रहनेवाली और शुक्र आर्तवको प्रवेश कराने
वाली तीन ३ योनिके भीतरकी तरफ मूमेन्तगी फेली हुई दो २ योनिके
ही बाहर निकलनेमें स्त्रोतके दोनों वगलमें रहनेवाली गोल जिमकी यो
निकारिणा अर्थात् योनिके कान कहते हैं सो दो २ और स्तनोंमें पांच ५

पांच ५ तारुण्य अवस्था में उनहीकी वृद्धि होती है ॥ (क) ॥

पुंसां पेश्यः पुरस्ताद्याः प्रोक्ता मेहनमुष्कजाः ॥

स्त्रीणां भावृत्य तिष्ठन्ति फलमन्तर्गता हिताः ॥ ६७ ॥

(क) अस्यायमर्थः । पुंसां मेहनं मुष्कयोश्च यास्ति
स्त्री मांसपेश्यः ॥ पूर्वमुक्तास्ताः स्त्रीणां मेहनमुष्का
भावान् फलं गर्भशमार्थं आवृत्य तिष्ठन्ति । (क) ॥

भा० पूर्वमें पुरुषोंके लिङ्ग और अंडकोश सम्बन्धी जो मांस पेशी क
हीगई वोह भीतर रहनेवाली स्त्रियोंके गर्भलाभके अर्थ आवरणा कर
के रहती है ॥ ६७ ॥

(क) इसका यह अर्थ है कि पुरुषोंके लिंग और अंडकोशोंमें जो तीन
मांसपेशी पूर्वमें कहीगई थीं वो मांसपेशी स्त्रियोंके लिंग और अंडको
शोंके नहोनेसे गर्भलाभके अर्थ आवरणा करके रहती है ॥ (क) ॥

[गयदासस्त्वाह ।]

(ख) स्त्रीणां मांसपेश्यस्त्रिभिर्हीनानि पञ्चशतानि ।

[तथा च भोजः]

पञ्चपेशी शतान्येव स्त्रीवर्जं विद्धि भूमिय ! अ

तश्च तिस्रो हीयन्ते स्त्रीणां शेषसि मुष्कयोः ॥ ६८ ॥

[अथ मांसपेशीनां कर्मारयाह]

भा० गयदास कहने हैं कि । स्त्रियोंकी मांसपेशी तीन कम पानसौ ४६७
होती है ॥ (ख) ॥ वैसेही भोजने कहा है ।] हे राजा स्त्रियोंको
छोड़कर अर्थात् पुरुषोंहीकी मांसपेशी पानसौ ही जानो । इसवास्ति स्त्रि
योंकी तीन कम है लिंगमें और अंडकोशोंमें अर्थात् इनके नहोनेसे । ६८ ।

[अनन्तर मांसपेशीके कर्म कहते हैं]

शिरास्त्रायुस्थि पर्वारिण सन्धयश्च शरीरिणाम् ॥
पेशीभिः संवृतान्येवं बलवन्ति भवन्ति हि ॥६६

[अथ मेदसः स्वरूपमाह]

यन्मान्सं स्वाग्निना पक्वं तन्मेद इति कथ्यते ॥
तदतीव गुरु स्निग्धं बलकार्यति वृंहणाम् ॥७०॥

[अथ मेदसः स्थानमाह]

मेदोहि सर्व्व भूताना मुदरेष्वस्थि संस्थितम् ॥
अत एवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत् ॥७१

भा० मनुष्योंके शिरा छोटहनसें स्नायु बड़ीनसें पर्व पोर सन्धि जोड़ ये सब मांस पेशीयों से लपेटीझड़ ही बलवानहैं ॥ ६६ ॥

[अनन्तर मेदका स्वरूप कहतेहैं]

जो मांस निज अग्निसे पकाहुवा है उसको मेद कहतेहैं । वह बहन भारी है और सचिकरण तथा बल करनेवाला और बहन बढ़ने वाला है ॥ ७० ॥

[अनन्तर मेदका स्थान कहतेहैं]

मेद सब जीवों के उदर में अस्थिसे मिलाहुवा रहता है ॥ इसीवास्ते प्रायः मेदवालों के उदर में ही वृद्धि होती है ॥ ७१ ॥

[अथास्थ्रः स्वरूपमाह]

मेदो यन् स्वाग्निना पक्वं वायुना चानि शोषितम् ॥
तदस्थि संज्ञां लभते ससारः सर्व विग्रहे ॥७२॥

[अस्थि का स्वरूप कहतेहैं]

जो मेद निज अग्निसे पकाहुवा और वायुसे बहन शोषण कियाहुवा होता है वह अस्थि संज्ञाको प्राप्त होता है । और वह सम्पूर्ण शरीर में सार है ॥ ७२ ॥

अभ्यन्तर गतिः सारै र्व्यथा तिष्ठन्ति स्मूहाः ॥ अ
स्थि सारै स्तथा देहा ध्रियन्ते देहिनो क्वचस् ॥ ७३ ॥
तस्माच्चिर विनष्टेषु त्वङ्गंसेषु शरीरिणाम् ॥ अ
स्थीनि न विनश्यन्ति सारा रत्नानि सर्वथा ॥ ७४ ॥

भा० भीतर रहनेवाले सार अर्थात् जिसको साल कहते हैं । उसे जैसे वृ
क्ष ठहरे रहते हैं । वैसेही अस्थि सार से देही देहों को धारण करते हैं ॥ ७३ ॥
जिस कारण देहियों की त्वचा और मांस बुढ़त काल में नाश होने परभी अ
स्थियां नाशको नहीं प्राप्त होतीं वृस्से यह सर्वथा सार हैं ॥ ७४ ॥

[अथास्थ्यां संख्यामाह ।]

शल्य तन्त्रेऽस्थि खराडानां शतन्त्रय मुदाहृतम् ।
तान्ये वात्र निराद्यन्ते तेषां स्थानानि यानि च ॥ ७५ ॥
स विंशतिशतं त्वस्थां शाखासु कथितं बुधैः ॥
पार्श्वयोः श्रोणि फलके वदः पृष्ठोदरेषु च ॥ ७६ ॥

भा० [अनन्तर अस्थियोंकी संख्या कहते हैं]
शल्य तन्त्र में अस्थियोंके खंड तीनसौ ३०० कहे गये हैं । उनही को यहाँ
पर कहते हैं । और जो उनके स्थान हैं उनको भी कहते हैं ॥ ७५ ॥
एक से बीस अस्थियां शाखाओं में पंडितों ने कही हैं ॥ पसलियोंमें कटि
प्रदेशमें और वक्षस्थलमें तथा पृष्ठ और उदरमें भी ॥ ७६ ॥

जानीयाद्भिर्बर्गे तेषु शतं सप्तदशोत्तरम् ॥ ग्रीवा
यामूर्द्धगां विद्या हस्थां षष्टि त्विसंयुतम् ॥ ७७ ॥

भा० इन स्थानों में वैद्य एकसौ सतरह ११७ जाने । ग्रीवा में ऊपरकी त
रफ जानेवाली अस्थियां तिरस्त ६३ जाने ॥ ७७ ॥

[तानि शारवागता न्याह]

(क) एकै कस्यां पादाङ्गुल्यां त्रीणि त्रीणि तानि पंच द-
श ५ पादतले पञ्चास्थि शलाकासदाधार भूतमेक
मस्थि १ । एवं षट् ई कूर्चं द्वे २ गुल्फे द्वे स्थाष्णी वे
कम् १ जङ्घयोर्द्वे २ जानुन्येकम् १ ऊरावेकं एवं त्रिं
शदेकस्मिन् सक्थिनि भवन्ति ।

एतेनेतर सक्थिवाह च व्याख्यातौ ॥ (क)

[बह शारवाश्रोमे भासो को कहने हैं]

(क) एक एक पैरकी अंगुलियों में तीन तीन ३।३। अस्थियाँ हैं ॥ इस तरह
पर पन्धरह होती हैं । पैरके तलुवे में पांच ५ अस्थियों की शलाका अर्थात्
सलाइयाँ हैं । उनकी आधार भूत एक अस्थि है ।
इस प्रकार छः ई अस्थियाँ हैं । पूर्वोक्त कूर्चस्थानमें २ टखनों में २ एड़ी
में एक १ गँग में दो २ घुटने में एक १ और जांघ में एक १ इस प्रकार स-
क सक्थिमें तीस अस्थियाँ हैं । इसी तरह पर दूसरी सक्थि और दोनों
भुजा व्याख्या किये गये ॥ (क) ॥

[अथ पार्श्वदि गता न्याह ।]

(ख) पार्श्वयोः षट् त्रिंशत् ३६ ॥ शिश्ने भगे च एक
म् १ ॥ निरुन्वयो रेकैकम् २ ॥ त्रिकैकम् १ ॥

वक्षस्यष्टौ ८ ॥ पृष्ठे त्रिंशत् ॥ ३० ॥ अक्षक संज्ञे द्वे २ ॥

॥ अथ ग्रीवोर्द्ध गता न्याह ॥

भा० अनन्तर पसलियों में प्राप्त अस्थियों को कहने हैं ॥ (ख) दोनों पस-
लियों में छतीस ३६ लिंगमें एक १ और भगमें एक १ चूतड़ों में एक एक
१ १ । पूर्वोक्त त्रिकस्थानमें एक १ वक्षस्थानमें भाट ८ पीठ में तीस ३०
अक्षक संज्ञ आपुवामें दो २ ।

[अनन्तर घ्रीवाके ऊपर प्राप्त अस्थियोंको कहते हैं]

(ग) घ्रीवायां नव ६ कराठनाड्यां चत्वारि ४ हन्वो रे
कैकम् २ दन्ताः द्वाविंशत् ३२ ॥ नासायां त्रीणि ३
तालुन्येकं १ गण्डयोरेकैकं २ कर्णयोरेकैकम् २ ॥
स्युवोरेकैकम् २ शिरसिषट् ६ एतान्यस्थानि पञ्च
विधानि भवन्ति ॥ तानि यथा ।

भा० (ग) गलेमें ९ नौ ॥ कंठ , नाड़ीमें चार ४ । जवाड़ोंमें एक एक १।१ । दाँत बत्तीस ३२ नाकमें तीन ३ तालुमें एक १ गालों पर एक एक १।१ । कानोंमें एक एक १।१ । भ्रुवोंमें एक एक १।१ । सिरमें छ ६ ये अस्थियां पांच प्रकारकी होती हैं ॥ वीह जैसे ॥

तरुणगनि कपालानि रुचकानि भवन्ति हि ॥

वलयानीति तानि स्युर्नलकानि च कानिचित् ॥७८

अदिकेश श्रुति घ्राण घ्रीवासु तरुणगनि च ॥

शिरःशङ्ख कपोलेषु ताल्वं सं प्रोथ जानुनि ॥७९

कपालानि भवन्त्येषु दन्तेषु रुचिकानि च ॥

पारयोः पार्व युगे पृष्ठे वले जठर पादयोः ॥८०॥

भा० तरुण कपाल रुचक और वलय तथा कोई नलक ऐसे पांच प्रकारकी होती हैं ॥ ७८ ॥ आँव कान नाक और गला इनमें तरुण होती हैं ॥ शिर शंख अर्थात् माथेपरकी अस्थि और गाल वनमें तथा तालु कंधे और कमर इत्यादिक इनमें कपाल अस्थि होती हैं ॥ ७९ ॥ और दाँतोंमें रुचक अस्थि होती हैं । हाथों में और दोनों पसलियों में तथा पीठ में वक्षस्थल में उदर में पावों में ॥ ८० ॥

(जानुनि तम्बांस गण्डतालु शङ्ख शिरः सु कपालानि ॥

(दशान्तुरुचकाः शिरःशङ्ख कपालेषु ताल्वंश प्रोथका
दिषु ॥)

एतानि वलंयानि स्युर्नलकानि ब्रुवेऽधुना ॥ हस्त

पादाङ्गुलितले कूर्चे च मरिग बन्धके ॥ ८१ ॥

बाहजङ्घाद्वये चापि जानीयान्नालकानि तु ॥

[अथास्थां प्रयोजन माह]

मांसान्यन्त्वानि वृद्धानि शिराभिः स्नायुभिस्तथा ॥

अस्थीन्यालम्बनं कृत्वा न शीर्यन्तिपतन्ति च ॥ ८२ ॥

भा० ये अस्थियां वलय हैं और अव नलकों को कहते हैं ॥

हाथ पैरों की अंगुलियों में और इन्हीं के नलुवे में तथा पूर्वोक्त कूर्चमें और
पांचेमें ॥ ८१ ॥ दोनों बाह जंघा में भी नलक ज्ञाने ॥

[अस्थियों का प्रयोजन कहते हैं]

शिरा और स्नायु से बन्धी हुई मांस और आँतें अस्थियों को अवलंबन कर
के नदीया होती है न गिरती हैं ॥ ८२ ॥

[अथ मज्जा स्वरूप माह]

अस्थिवत् स्वाग्निना पक्वं तस्य सारो भवेद्भूतः ॥

यः स्वेदवत् पृथग् भूतः समज्जे त्यभिधीयते ॥ ८३ ॥

[अथ मज्जा स्थान माह]

स्थूलास्थियु विशेषेणा मज्जात्वभ्यन्तरे स्थितः ॥

भा० अनन्तर मज्जा का स्वरूप कहते हैं ॥ जो अस्थि निज अग्नि से पकी
हुई है उसका सार अर्थात् सत गाढ़ा होता है । उसमें से जो पसीने की भा
निंद अलग हुआ वह मज्जा ऐसा कहलाता है ॥ ८३ ॥

अनन्तर मज्जा का स्थान कहते हैं ॥ स्थूलास्थि में भीतर विशेषकरके मज्जा

[अनन्तर ग्रीवाके ऊपर प्राप्त अस्थियोंको कहते हैं]

(ग) ग्रीवायां नव षट् कराठनाड्यां चत्वारि ४ हन्वो रे
कैकम् २ दन्ताः द्वाविंशत् ३२ ॥ नासायां त्रीणि ३
तालुन्येकं १ गराड्योरेकैकं २ करणयोरेकैकम् २ ॥
स्रुवोरेकैकम् २ शिरसिषट् षट् एतान्यस्थानि पञ्च
विधानि भवन्ति ॥ तानि यथा ।

भा० (ग) गलेमें ९ नौ ॥ कंठ , नाडीमें चार ४ । जवाडोंमें एकएक १।१। दांत बत्तीस ३२ नाकमें तीन ३ तालुमें एक १ गालों पर एक एक १।१। कानोंमें एक एक १।१। भ्रुवोंमें एक एक १।१। सिरमें छ ६ ये अस्थियां पांच प्रकार की होती हैं ॥ वीह जैसे ॥

नरुरागानि कपालानि रुचकानि भवन्ति हि ॥

वलयाणीति तानि स्युर्नलकानि च कानिचिन् ॥७८

अक्षिकेशश्रुति घ्राण ग्रीवासु नरुरागानि च ॥

शिरःशङ्ख कपोलिषु ताल्वं संप्राथजानुनि ॥७९

कपालानि भवन्त्येषु दन्तेषु रुचिकानि च ॥

पारंग्याः पार्श्व युगे पृष्ठे वक्षे जठर पादयोः ॥८०॥

भा० नरुरा कपाल रुचक और वलय तथा कोई नलक ऐसे पांच प्रकार की होती हैं ॥ ७८ ॥ आँव कान नाक और गला इनमें नरुरा होती हैं ॥ शिर शंख अर्थात् मांथे परकी अस्थि और गाल इनमें तथा तालु कंधे और काम इत्यादिक इनमें कपाल अस्थि होती हैं ॥ ७९ ॥ और दांतों में रुचक अस्थि होती हैं । हाथों में और दोनों पसलियों में तथा पीठ में वक्षस्थल में उदर में पावों में ॥ ८० ॥

(जानुनि तम्बांस गराड तालु शङ्ख शिरः सु कपालानि ॥

(दशनस्तुरुचकाः शिरःशङ्ख कपालेषु ताल्वंश प्रोथका
दिषु ॥)

एतानि वलंयानि स्युर्नलकानि द्रुवेषुधुना ॥ हस्त
पादाङ्गुलिनले कूर्चे च मणि बन्धके ॥ ८१ ॥

बाहुजङ्घाद्वये चापि जानीयान्नालकानि तु ॥

[अथास्थ्यां प्रयोजन माह]

मांसान्यन्त्वानि बद्धानि शिराभिः स्नायुभिस्तथा ॥

अस्थीन्यालस्वनं कृत्वा न प्रीर्य्यन्तिपतन्ति च ॥ ८२ ॥

भा० ये अस्थियां बलय हैं और अव नलकों को कहते हैं ॥
हाथ पैरों की अंगुलियों में और इन्हीके नलके में तथा पूर्वोक्त कूर्चे में और
पोंचे में ॥ ८१ ॥ दोनों बाहु जंघा में भी नलक ज्ञाने ॥

[अस्थियोंका प्रयोजन कहते हैं]

शिरा और स्नायु से बन्धीहुई मांस और आँतें अस्थियों को अवलंबन कर
के नखीरा होती हैं न गिरती हैं ॥ ८२ ॥

[अथ मज्जास्वरूप माह]

अस्थिवत् स्वाग्निना पक्वं तस्य सारो भवेद्भूतः ॥

यः स्वेदवत् पृथग् भूतः समज्जेत्यभिधीयते ॥ ८३ ॥

[अथ मज्जास्थान माह]

स्थूलास्थिषु विशेषेण मज्जात्वभ्यन्तरे स्थितः ॥

भा० अनन्तर मज्जाका स्वरूप कहते हैं ॥ जो अस्थि निज अग्निसे पकी
हुई है उसका सार अर्थात् सत गाढ़ा होता है । उसमें से जो पसीने की मा
निव अलगहुँदा वह मज्जा ऐसा कहलाता है ॥ ८३ ॥

अनन्तर मज्जाका स्थान कहते हैं ॥ स्थूलास्थि में भीतर विशेषकरके मज्जा

ग्रहणी है ॥

[अनन्तर शुक्र की उत्पत्ति कहते हैं]

अथ शुक्रस्योत्पत्तिमाह ।

रसादृक्तं नतो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते ॥ मेदसो
ऽस्थिततो मज्जा मज्जः शुक्रस्य सम्भवः ॥ ८४ ॥

(शुक्रस्येति वचनेन शुक्र सम्भव मुक्तम् ।)

(क) ननु मासेन रसः शुक्रो भवति स्त्रीणां चार्त्तवं भव
तीति । सुश्रुतस्यैव वचनेन रसादेव शुक्रस्योत्पत्ति रुच्य
ते । (ख) तदे तत्कथं सङ्गच्छते इदमेव सन्देहं दूरी
कर्तुं माहारादेर्गतिं परिणामं चाह ॥

भा० रससे रक्त होना है उससे मांस मांससे मेद । मेदसे मज्जा तथा म
ज्जासे शुक्र की उत्पत्ति होती है ॥ ८४ ॥

(शुक्र का इस वचनसे शुक्र का सम्भव कहा गया)

(क) ननु कोई कहते हैं कि महीने में रससे शुक्र होना है ॥ और स्त्रियों का
आर्त्तव महीने में होता है ॥ इस प्रकार सुश्रुतके कहने से रससे ही शुक्र की
उत्पत्ति कही है ॥ (क)

(ख) निस्से यह क्योंकर ठीक हो सक्ता है ॥ इसी सन्देह को दूर करने अर्था
आहारादिकों की गति और परिणाम को कहते हैं ॥

यान्यामाशय माहारः पूर्वं प्राणानिले रितः ॥ ।

माधुर्यं फेन भावं च षड्भेदोऽपि लभेत सः ॥ ८५ ॥

(क) आहार इत्यत्र आह्रियते इत्याहारः ॥ अकर्त्तरि
च कारके) संज्ञाया मिति सूत्रेण कर्मणि घञ् ।)

स च षट् विधः ।

तथा च ।

प्रथम प्राण वायुके द्वारा भेजा हुआ आहार आमाशय में जाता है । वह आहार छः रसोंसे युक्त भी कागसा मधुरता को प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥
(क) (अहार यहाँपर आहरण किया जाता है इस प्रकार आहार है । अकर्त्तरि च कारके संज्ञायां इस सूत्रसे कर्ममें घञ् होता है ।) वह आहार छः प्रकारका है । उस प्रकार कहा है ।

आहार्यं षट्विधं भोज्यं भक्ष्यं चर्च्यन्तथैव च ॥
लेह्यं चोष्यं तथा पेयं नदुदाहरणानि तु ॥ ८६ ॥
भोज्य मोदन सूपादि भक्ष्यं मोदक मण्डकम् ॥
चर्च्यं चिपिटु धान्यादि रसालादितु लेह्यते ॥ ८७ ॥
चोष्यमात्र फलेत्वादि पीयते पानकं पयः ॥

भा० आहार करनेके योग्य छः प्रकारके हैं भोज्य, भक्ष्य चर्च्य लेह्य चोष्य पेय । उसका उदाहरण कहने हैं ॥ ८६ ॥ चावल दाल इत्यादि भोज्य हैं ॥ और मोदकादिक भक्ष्य हैं तथा चर्च्य निडवा और लावा इत्यादिक तथा रसालादिक चर्चे जाते हैं ॥ ८७ ॥ और मात्रफल गन्ना इत्यादिक चोष्य हैं अर्थात् सूसने योग्य हैं । और पानीका पीना तथा दूध पीया जाता है ॥

[आमाशयमाह चरकः ।]

नाभिस्तनान्तरे जन्तो रद्ग रमाशयं बुधा इति ।

[सत्र विशेषमाह ।]

नाभेर्वितस्ति मात्रं च करठदेशान् षडङ्गुलम् ॥

भा० आमाशयको चरक कहने हैं । पंडित नाभि और स्तनके बीचमें आमाशयको कहने हैं ॥ इसमें विशेष कहने हैं * नाभिसे विलम्बर करठ देशसे छः अंगुल ॥

उरसं स्तद् विजानीयात् शेषे तु हृदयं मतम् ॥७८॥

उरोरक्ताशयस्तस्मा दधः श्लेष्माशयः स्मृतः ॥

आमाशयस्तु तदधस्तदधो दहनाशयः इति ॥७९॥

(क) (प्राणानिलेरितइति । हृदयाधिष्ठानेन प्राणाना
म्ना वायुना मुखं गतेनान्तः प्रवेशितः ।)

[तथा च सुश्रुतः ।]

भा० उसको उर जानना चाहिये और बाकी को हृदय कहते हैं ॥७८॥
उर को रक्ताशय कहते हैं । और उसके नीचे श्लेष्माशय कहा है । उसके नी
चे आमाशय और आमाशय के नीचे पक्वाशय इस प्रकार कहा है ॥७९॥
(प्राणवायु से प्रेरित अर्थात् हृदय में रहनेवाले प्राण नाम मुखमें प्राप्त वा
युसे भीतर किया गया । उरसरूप पर सुश्रुतने कहा है ॥

यो वायुः प्राणानामासौ मुखं गच्छति देहधृक् ॥

सोऽन्नं प्रवेशयत्यन्नः प्राणांश्चाप्यवलम्बते ॥८०॥

(क) क्लेदननामा कफः क्लेदयति क्लेदनात्संहतं भिना-

ति च । [उक्तं च सुश्रुते ।]

क्लेदनः क्लेदयत्यन्नं संहतं च भिनत्त्यन्न इति ।

(क) स आहारः षड्रसोऽप्यामाशये माधुर्यं लभते

आमाशयस्थस्य मधुरस्य कफस्य योगात् ॥ (क)

भा० शरीर को धारण करनेवाला जो प्राणनाम वायु मुखमें जाता है । वह
अन्न को भीतर कराता है और प्राणोंको अवलंबन भी करता है ॥ ८० ॥

(क) क्लेदन नाम कफ आर्द्र करता है और कठिन हृदय को ढीला करता है ।

[सुश्रुतमें कहा है]

क्षेदन अन्नको आर्द्र करना है और कठिन इत्रे को ढीला भी करता है । (क)
 (क) वह आहार पदार्थ वाला भी आमाशय में मधुरता को प्राप्त होता है
 क्यों कि आमाशय में रहनेवाले मधुर कफके योगसे । (क) ॥

[उक्तञ्च श्लेष्म स्वरूपम्]

श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छिलः शीतल
 स्तथा ॥ तमो गुणाधिकः स्वादुर्विदग्धो लवणो भ
 वेदिति ॥ ६१ ॥

(क) फेरा भावञ्च लभते जठरानलं तेजसा ।

भा० कफ का स्वरूप कहा है । कफ सुफेद है भागी है तर है पिच्छिल
 अर्थात् फिस्लापनवाला है तथा ठंडा है और तमोगुण अधिकवाला है
 तथा मधुर है और विदग्ध इत्रे लवण होता है ॥ ६१ ॥ तथा,
 (क) जठराग्नि के तेजसे फेरा भाव को प्राप्त होता है । अर्थात् जगसा
 हो जाता है ॥ (क) ॥

[यत आह वाग्भटः ।]

सन्धुक्षितः समानेन पचत्यामाशय स्थितम् ॥
 औदर्याग्निर्यथा वाह्यः स्थालीस्थं तोयमराडुल
 मिति ॥ ६२ ॥ (क) अथ संग्वाहारः प्राण
 वायुना प्रेरितस्ततः किञ्चिन् १ स्वलिः पाचका
 र्व्यपित्तोष्मराणा यत्पक्वोऽन्नरसो भवति ।

भा० जैसा कि वाग्भटने कहा है । जैसे प्रज्वलित वाह्याग्नि अर्थात्
 लौकिकाग्नि बड़ेवे में के जलसे संयुक्त चावलों को पकाना है ।
 वैसे समान वायु से तेज किया इत्रे जठराग्नि आमाशय में स्थित अन्न
 को पकाना है ॥ ६२ ॥ (क) अनन्तर वही आहार प्राणवायुसे

प्रेरित्वा षोडाश गिरनाद्वापाचकारव्य पित्तकी उष्मांसे जो पकता है वह खटारस होता है ॥ (क) ॥

उक्तं च । (ख) अथ पाचक पित्तेन विदग्धं चाम्लतां ब्रजेत् । (ग) पाचक पित्तेन पाचक पित्तस्योष्मणा । ततः स एवाहारो नाभि मण्डलाधिष्ठानेन समान नाम्ना वायुना प्रेरितो ग्रहणी मभिनीयते ॥

भा० कहा है । (ख) अनन्तर पाचक पित्तसे विदग्ध हुआ अम्ल ताके प्रसृत होता है ॥ (ग) पाचक पित्तसे अर्थात् पाचक पित्तकी उष्मांसे । वहाँ वही आहार नाभि मण्डल में रहनेवाले समान नाम वायुसे प्रेरित हुआ ग्रहणी में यज्ञचाया जाता है ॥ (ग) ॥

[ग्रहणी लक्षणामोह ।]

षष्ठी पित्त धरा नाम या कला परि कीर्तिता ॥ आमपक्वाशयां तस्यां ग्रहणी साऽभिधीयते ॥ ६३ ॥

(क) पित्त धरा पाचकारव्यं पित्तं यदग्न्याधिष्ठानं तद्वारयति तत्र ग्रहाया मामाशय पक्वाशय मध्यवर्ति पाचकारव्य पित्ताधिष्ठानेनाग्निनाहारः पच्यते संकटूष्म भवति ॥

[ग्रहणी का लक्षण कहते हैं]

भा० जो छठी पित्त धरा नाम कला कही गई थी । वो उस आमाशय पक्वाशय में ग्रहणी ऐसी कही गई है ॥ ६३ ॥ (क) पित्त धरा जो अग्नि के अधिष्ठान पाचक नाम पित्तको धारण करती है ॥ उस ग्रहणी में पक्वाशय के बीच रहनेवाला पाचकारव्य पित्त के अधिष्ठान अग्नि के द्वारा जो आहार पकता है वह कटूष्म होता है ॥

तथा च । ग्रहायां पच्यते कोष्ठे वह्निना जायते

कटुरिति । अयमर्थः । (ग) आहारो ग्रहणाय
 कोष्ठवन्हिना ग्रहणीस्थितपाचकपित्तैर्वाग्निना
 पच्यते पच्यमानः स ग्रहणीस्थितस्य कटुरसस्य यो
 गान् कटुभवति ॥ (घ) एतदाहारपाके विशेष
 आह । शरीरं पाञ्चभौतिकम् । तत्र पञ्चसु भूतेषु
 पञ्चाग्नयस्त्रिष्टानि ।

भा० (ख) वैसेही । ग्रहणी में कोष्ठाग्निसे जो पकता है वह कटु हो
 ना है । (ग) यह अर्थ है कि आहार ग्रहणी में कोष्ठाग्निसे अ-
 र्थात् ग्रहणी में रहनेवाले पाचकपित्तरूपी वन्हीसे पकता है । वह
 पकाहुवा ग्रहणी में रहनेवाले कटुरसके योगसे कटुहोता है ॥

(घ) इस आहारके पाक विशेष कहने हैं । शरीर पंच भूतसे बना
 हुआ है । उन पांचों भूतों में पांच अग्निरहती हैं ।

उक्तं चरकेन भौमाप्याग्नेय वायव्या पञ्चोष्माणः

सनामसाः । पञ्चाहारगुणान् खान् स्वान् पार्थिवा
 दीन् पचन्त्यनु । (क) अत्रोष्मपदेनाग्निरुच्यते ।

आहागोऽपि पाञ्चभौतिकः तत्र पाचकपित्तस्यै
 नाग्निनेत्ते जितेन शरीरवर्तिना भूभागाग्निनाहार
 वर्ति भूभागः पच्यते । पक्वो भूभागः स्वकीयान् गु-
 णानभिबर्द्धयति । एवं

भा० चरकेनेकहा है । भूमिसंचन्धिजलसंचन्धिअग्निसंचन्धि वायु-
 संचन्धि और आकाशसंचन्धि येह पांच उष्मां हैं ॥ पार्थिवादिक
 भूतोंमें २ पांच आहारगुणोंको पकाने हैं ॥ २४ ॥ (क) यहाँ पर उष्मा
 शब्दसे अग्नि कही है । पकाहुवा पृथ्वीका अंश अपनेगुणोंको बढ़ाता है
 इस प्रकार जलादिकके भागभी पकाने हैं ।

जलादिभागा अपि पच्यन्ते ।

[तथाचसुश्रुते]

पञ्च भूतात्मके देहे आहारः पाञ्चभौतिकः ॥

विपक्वः पञ्चधा सम्यग् गुराणान् खानभिवर्द्धये
दिति ॥ ६५ ॥

(क) गुरा शब्देनात्र गुरीनः पृथिव्यादय उच्यन्ते ।

तेन गुराणान् शरीरवर्तिनः पार्थिवादीन् भागानभिव
र्द्धयेदित्यर्थः ।

भा० वैसेही सुश्रुतमें कहा है । पंच भूतवाले शरीरमें पंच भूत से बना हुआ
आहार पका हुआ पांच प्रकार अच्छी तरह से अपने अपने गुरों को बड़ा
ना है ॥ ६५ ॥ (क) गुरा शब्द से यहाँ पर गुरावाले पृथिव्यादिक क
हे गये हैं । उसे गुरों को अर्थात् शरीर में रहनेवाले पार्थिवादि भागों
को बढ़ाना है ॥

(ख) सव महोरात्रेण पक्व आहारो मिष्टः पटुश्च मधु

रो भवति । अम्लस्त्वम्लो भवति । (ग) कटु तिक्तः

कषायश्च कटुर्भवति । उक्तञ्च,

मिष्टः पटुश्च मधुरमम्लोऽम्लं पच्यते स्तः ॥ क

टुतिक्त कषायाराणां विपाकी जायते कटुरिति । ६६ ॥

भा० (ख) इस प्रकार दिनरात में पका हुआ मधुर और पटु अर्थात् लव
ण आहार मधुर होता है । तथा अम्ल अर्थात् खटा आहार पककर के
खटा ही होता है ॥ (ग) और कटु अर्थात् चरपरा तथा तीता और
कंस लये पककर कषाय होता है ॥

कहा है । मधुर लवण रसका पकेके मधुर होता है और कटु तिक्त क
पायोंका विपाक प्रायः कटु होता है ॥ ६६ ॥

(क) एवं विपक्वस्याहारस्य सारो निगदिनो रसः शे
षो ग्रहणीस्थो मलद्रवः मलद्रवस्य जल भागः शि
रभिर्नस्ति नीलो मूत्रं भवति । उक्तञ्च ।

आहारस्य रसः सारः सारहीनो मलद्रवः ॥

शिरामिस्तज्जलं नीतं वस्ति मूत्रत्वमाप्नुयान् ॥ ६७ ॥

शेषं किञ्च यत्तस्य तत्पुरीषं निगद्यते ॥ स

मानवायुना नीतन्ततिष्ठति मलाशये ॥ ६८ ॥

भा० इस प्रकार पकेहुवे आहारका सार रस कहा गया है ॥ वाक्यी ग्र
हणी में रहनेवाला मैला अरक उस मैले अरक का जलका
भाग शिराओंके द्वारा वस्ति अर्थात् येडूमें पहुँचा हुआ मूत्र होता है ॥ (क)
कहा है । आहारका सार रस होता है और सारहीन मल द्रव कहलाना
है । शिराओंके द्वारा वह जल वस्ति में पहुँचा मूत्रको प्राप्त होता है ॥
॥ ६७ ॥ और वाक्यी उसका जो किहू वह मल कहलाना है ॥ समान
वायुके द्वारा पहुँचाया गया वह मलाशय में रहता है ॥ ६८ ॥

(ख) तत्र मलाशये अपानवायुना प्रेरितं मूत्रं मेढू

भगमार्गेण । पुरीषं गुदमार्गेण शरीराद्वहिर्याति ।

उक्तञ्च । मूत्रञ्चोपस्यमार्गेण पुरीषं गुदमार्गनः ॥

अपानवायुना क्षिप्तं वहिर्याति शरीरतः ॥ ६९ ॥

भा० उस मलाशय में अपानवायु से प्रेरणा किया हुआ मूत्र लिंग
और भगके मार्ग से तथा गुदमार्ग से मल शरीरके बाहर निकलना है
॥ कहा है ॥ लिंगमार्गसे मूत्र और गुदमार्गसे मल अपानवायु से
फेंका हुआ शरीरसे बाहर निकलना है ॥ ६९ ॥

(क) उपस्थः शिश्रो भगञ्च । रसस्तु समान वायुना
प्रेरितो धमनीमार्गेण शरीररम्भकस्य रसस्य स्थानं
हृदयं गत्वा तेन सह मिश्रितो भवति । उक्तञ्च ।

रसस्तु हृदयं यानि समान मरुतेरितः ॥ स तु व्या
नेन विक्षिप्तः सर्वान् धानून् विवर्द्धयेत् ॥ ६६ ॥

केदारिषु यथा कुल्याः पुष्पान्ति विविधौषधीः ॥

नथा कलेवरे धानून् सर्वान् वर्द्धयते रसः ॥ १०० ॥

भा० (क) उपस्थ । लिंग और भग । रस समान वायु से प्रेरण किया हुआ
धमनी मार्ग से शरीर का आरंभ करनेवाले रसके स्थान हृदय में जाकर उ
सके साथ मिश्रित होता है ॥ समान वायु से प्रेरित हुआ रस हृदय में जाना
है । वह रस व्यानवायु से फैका गया सब धातुओं को बढ़ाना है ॥
६६ ॥ जैसे खेतों में नाना प्रकार की औषधियों को नहीं पुष्ट कर
नी है । वैसेही शरीर में सब धातुओं को रस बढ़ाना है ॥ १०० ॥

(रसस्तु तत्र तत्र त्रिधा विभज्यते ।)

उक्तञ्च चरके । स्थूलः सूक्ष्मस्तन्मलश्च तत्र तत्र
त्रिधा रसः ॥ स्वंस्थूलोऽंशः परं सूक्ष्मस्तन्मलो
यानि तन्मलम् ॥ ११ ॥

(क) अयमर्थः । स्थूलोऽंशः स्वं यानि यथास्थितस्ति
ष्ठानि सूक्ष्मरुवंशः परं द्वितीयं धानुं यानि
तन्मलः रसादिमलः तन्मलं
शरीररम्भकं तत्र जानुमलं यातीत्यर्थः ।

भा० रसतो उन उन स्थानोंमें तीन प्रकारसे विभाग किया जाता है ॥
चरकमें कहा है । स्थूल सूक्ष्म और उनका मल इस प्रकार उन उन स्था-
नोंमें रस तीन प्रकार होना है । आप स्थूल अंश रहता है और सूक्ष्म
अंश दूसरी धातुमें जाता है तथा उन उन धातुओंके मल शरीरके आ-
रम्भक कफ पित्त प्रस्वेदादि होजाने हैं ॥ २०१ ॥

(क) यह अर्थ है । स्थूल अंश आप होजाना है अर्थात् यथा रि न
रहता है । और सूक्ष्म अंश दूसरी धातुमें जाता है । तथा उनका म-
ल अर्थात् रसादियों का मल उनका मल अर्थात् शरीरके आरम्भक
उन २ धातुओंका मल होजाना है ॥

यथा लौकिकाग्निनेक्षुरसः पच्यते तथा शरीरार-
म्भकस्य रसस्याग्निनाहाररसः पच्यते पच्यमानः
स पञ्चाहीरात्रान् सार्द्धं दण्डमेकञ्च यावत् प्राक्त न
रसधानावेव तिष्ठति । [उक्तं च सुश्रुते ।

(ख) स खलु रसः त्रीणि त्रीणि कलासहस्राणि पञ्च
दशकला एकैकस्मिन्धाना बुपनिष्ठते । अत्र कलानां
विंशतिः मुहूर्तः स च दण्डहयान्मकः ।

तथा च मोजः । धातौ रसादौ भज्जान्ते प्रत्येकं क्रमतो
रसः ॥ अहोरात्रान् स्वयं पञ्च सार्द्धं दण्डं च तिष्ठति ॥

॥ २०२ ॥ (क) प्रत्येकमेकै कस्मिन्नित्यर्थः । ततो यथा
पच्यमानादिक्षुरसान्मलो निर्गच्छति । तथा

भा० जैसे लौकिकाग्नि से गन्नेका रस पकाया जाता है वैसे शरीरके
आरम्भक रसकी अग्निसे आहारका रस पकाया जाता है ।
पकाहुवा वह रस पांच दिन और डेढ़ घड़ी तक
पहली धातुमें ही रहता है ।

पच्यमानादाहार रसान्मलो निर्गच्छति सः कफः ।

भा० सुश्रुतमें कहा है । (ख) वह रस तीन तीन कला सहस्र और पंद्रह कला एक एक धातु में रहता है । यहाँ पर बीस कला का सुहृत् ही ता है । वह दो घड़ी का होता है । उस तरह पर भोजन कहा है । रस आप क्रमके साथ मज्जा तक हर एक रसादि धातु में पांच दिन डेढ़ घड़ी रहता है ॥ १०२ ॥

(क) प्रत्येक अर्थात् एक एक में । जैसे उस पके ङ्गवे गन्ने के रससे मेल निकलता है । वैसेही पके ङ्गवे आहारके रससे मेल निकलता है । वह कफ है । [उक्तं च सुश्रुते ।]

कफ पित्त मला स्वेषु प्रखेदो नखरोम च ॥ नेत्र

विट् चक्षुषः स्निहो धातूनां क्रमशो मलाः ॥ ३॥

(क) स्वेषु मलः कर्णादि श्रोतोमलः स च कफः प्राणानिल प्रेरितो धमनीमार्गेण शरीरारम्भकं लोदनाख्यं कफ गत्वा पुष्पाति ततः सारभूतस्याहार रसस्य द्वौ भागौ भवतः स्थूलः सूक्ष्मश्च तत्र सूक्ष्मो भागः शरीरारम्भकं रसं पोषयति सकल शरीराधिष्ठानेन व्यानवायुना प्रेरितो धमनीभिः सञ्चरन् पोषणं स्निह नजठरानलोष्म कृतसन्नाय निवारणादिभिर्गुणैः सकलशरीरं पुष्पाति ततः स्थूलो भागः प्राणवायुना प्रेरितो धमनीमार्गेण शरीरारम्भकस्य रक्तस्य स्थानं गत्वा यद्गतं स्निह रूपं गत्वा तेन सह मिलितो भवति ।

भा० कहा है सुश्रुतमें । कफ पित्त और कर्णादि श्रोतों मेंके मल तथा पसीना नख रोम और नेत्रका मल तथा नेत्रका स्निह ये क्रमसे

धातुओं के मल हैं ॥ १०३ ॥ (क) स्त्रेषु मलाः अर्थात् करणीदि स्त्री
 तों के मल । वह पूर्वाक्त रस धातु का मल कफ प्राण वायु से प्रेरित
 हुवा धमनी नाड़ी के मार्ग से जाकर शरीर का आरम्भक लैड नारव्य
 कफ को पुष्ट करना है । उसके अनन्तर उस सारभूत आहार के दो भा
 ग होते हैं । स्थूल और सूक्ष्म । उस्मे सूक्ष्म भाग शरीर के आरम्भक
 रस को पुष्ट करना है । और सम्पूर्ण शरीर में रहने वाले ब्यान वायु के
 द्वारा प्रेरित तथा धमनियों के द्वारा संचार करता हुवा पोषण स्नेहन और
 जठराग्नि की उष्मा से किये गये सन्नाप के निवारणदि गुणों से संपूर्ण
 शरीर पुष्ट होता है । और उसका स्थूल भाग प्राण वायु से प्रेरित हुवा
 धमनी मार्ग से शरीर का आरम्भक रक्त स्थान में जाकर अर्थात् यह
 न स्त्री रूप में जाकर उसके साथ मिल जाता है ॥ (क) .

(ख) ततः प्राक्तनस्य रक्तस्याग्निना पुनः पच्यमा
 नः पञ्चाहोरात्रात्सार्द्धं दण्डञ्च यावत् प्राक्तनरक्तं
 धातावेव निष्ठति । (ग) ततो यथाग्निना पुनः पुनः
 पच्यमानादिस्तु विकारं वारं वारं मलं निर्गच्छति ।
 (घ) तथा पुनः पुनः पच्यमानादाहार रसात् प्र
 तिवारं मलं निर्गच्छति । (ङ) तत्र रक्ताग्निना
 पच्यमानान्मलं पित्तं निर्गच्छति ।

भा० उसके अनन्तर पहिली रक्ताग्नि के द्वारा फिर से पका हुवा पं
 चदिन और डेढ़ घड़ी तक पहिली रक्त धातु में ही रहना है (ख) ॥
 (ग) जैसे उस बार बार पकाने से गन्ने का विकार बार बार मेल नि
 कलता है ॥ (घ) वैसे फिर फिर से पके हुवे आहार रस से
 प्रतिवार मल निकलता है ॥
 (ङ) उस में रक्ताग्नि के द्वारा पके हुवे रस से मल पित्त निकल
 ता है ॥ (ङ) ॥

(च) तच्च पित्त समान वायुना प्रेरितं धमनी मार्गेषां शरीरारम्भकं पाचकारव्यं गत्वा पुष्णान्ति ।

(छ) ततः सारभूतस्याहार रसस्य द्वौ भागौ भवतः

स्थूलः सूक्ष्मश्च तत्र सूक्ष्मो भागो रज्ज्वाग्निना पित्तं न क्ष र्त्नीकृतः । (ज) शरीरारम्भकं रक्तं व्यान

वायुना प्रेरितो धमनीभिः सञ्चरन् सकलं शरीरं गतानि रुधिराणि पुष्णान्ति । (क) ततः स्थूलो

भागः व्यानवायुना प्रेरितो धमनीभिः पिराभिश्च शरीरारम्भकानि मांसानि यान्ति ।

(न) ततो मांसाग्निना पुनः पच्यमानः पञ्चा होरात्रात् सार्द्धं दण्डश्च यावन्मांसिष्वेव तिष्ठति ।

ततः पच्यमानान् तस्मान्मलं निर्गच्छति

भा० (च) वह पित्त समान वायु से प्रेरित हुआ धमनी मार्गके द्वारा जाकर शरीर का आरंभक पाचक नाम पित्तको पुष्ट करता है ।

(छ) अनन्तर उस सारभूत आहार रसके दो भाग होने हैं । स्थूल और सूक्ष्म । उसमें वह सूक्ष्मा भाग रज्ज्वाग्नि पित्त से लाल कि या गया । (ज) शरीर का आरंभक रक्त व्यानवायु के द्वारा प्रेरित और धमनीयोंके द्वारा सञ्चार करना हुआ सम्पूर्णा शरीर में प्राप्त हुवे रुधिरको पुष्ट करना है ।

(क) तदनन्तर उसका स्थूल भाग व्यानवायु से प्रेरित हुआ धमनी नाडियों के द्वारा शरीरके आरम्भक मांसमें जाता है ।

(न) उसके अनन्तर मांसकी आग्नि से पुनः पका हुआ पांच दिन और डेढ़ घड़ी तक मांस में ही रहता है ॥

(ठ) तद्व्यान वायुना क्षिप्रं कर्णावागत्य कर्णाविडुभ
वति । (ड) ततः सारभूतस्य रसस्य द्वौ भागौ
भवतः । (ढ) स्थूलः सूक्ष्मश्च ततः सूक्ष्मो भागो
मांसानि पुष्णाति । (ण) ततः स्थूलोभागो व्यान
वायुना प्रेरितो धमनीभिः शरीरारम्भकस्य मेदसः
स्थानमुदरं याति । (त) ततो मेदसोऽग्निना
पुनः पच्यमानः पञ्चाहोरात्रात् सार्द्धं दण्डं च याव
न्मेदस्येव तिष्ठति ।

भा० अनन्तर पकेहुवे उससे मल निकलता है ॥ (८) ॥

(ठ) वह मल व्यानवायु के द्वारा शीघ्र कानोंमें जाकर कानों का मैल
होजाता है ॥ (ड) और उस सारभूत रसके दो भाग होजाते हैं ।

(ढ) स्थूल और सूक्ष्म । उसका सूक्ष्म भाग मांस को पुष्ट करता है ।

(ण) और स्थूल भाग व्यानवायु से प्रेरित जत्रा धमनीयोंके द्वारा
शरीरका आरम्भक मेदका स्थान उदर में जाता है ॥

(त) उसके अनन्तर मेदकी अग्निसे फिर पकाहुवा पांचदिन औ
र डेढ़घड़ी तक मेदमेंही रहता है ॥

(थ) ततः पच्यमानात् तस्मान्मलो निर्गच्छति प्र
स्वेदरूपः । (द) स च शीतः स्नानस्येव तिष्ठति
शरीरोष्मणा तप्तश्चेत्तदा व्यानवायुना प्रेरितः शिरा
मार्गैः लोम कूपेभ्यो वर्हिर्याति ॥ (ध) जिह्वादन्त
कस्माभेदादि मलञ्च मेदो मलमित्येके ।

भा० अनन्तर उस पकेहुवेसे प्रस्वेद अर्थात् पसीनारूप मल निकल
ता है । (थ) ॥ (द) वह प्रस्वेद ठंढा हुवा स्नानों ही में रहता
है । जब शरीरकी उष्मासे गरम होता है तब व्यानवायुसे प्रेरित

हुवा नसोंके मार्गके द्वारा रस कूपसे बाहर निकलता है ॥

(घ) जीभ दाँत काँच लिंग इत्यादिकोंका मल मेदका मल है ऐसा कोई कहते हैं ॥

(न) ततः सार भूत रसस्य द्वौ भागौ भवतः स्थूलः
सूक्ष्मश्च तत्र सूक्ष्मो भागः मेदः पुष्पाति उदरे
निष्ठन् व्यानवायुना प्रेरितो धमनीभिः शिराभिश्च
शरीरारम्भकारण्य स्थीनि याति ।

(प) ततोऽस्थ्यग्निना पुनः पच्यमानं पच्चाहोरा
त्रात्सार्द्धं दण्डञ्च यावदस्थिष्वेव तिष्ठति ॥

(भा०) (न) उस सारभूत रसके दो भाग होते हैं । स्थूल और सूक्ष्म ।
उसमें सूक्ष्मभाग मेदको पुष्ट करता है । और स्थूल भाग उदरमें रह
ताहुवा व्यानवायुके द्वारा प्रेरित हुवा धमनी नाडियोंसे शरीरके आर
म्भक अस्थियोंमें जाता है । (प) उसके अनन्तर अस्थिकी अग्नि
के द्वारा फिरसे पकाहुवा पाँचदिन और डेढ़ दंड तक अस्थिमें ही रह
ताहै । (फ) अनन्तर पकेहवे उससे मल निकलता है ॥

(फ) ततः पच्यमानान् तस्मात् मलो निर्गच्छति ।

(ब) स च व्यानवायुना प्रेरितः शिराभिः मार्गिणा
गत्याङ्गुलियु नखः स्तनो लोमानि भवन्ति ।

(भ) ततः सारभूतस्य रसस्य द्वौ भागौ भवतः स्थू
लः सूक्ष्मश्च तत्र सूक्ष्मभागो अस्थीनि पुष्पाति ततः
स्थूल भागो व्यानवायुना प्रेरितः स्त्रोतो मार्गे मज्जा
स्थानानिः स्थूलास्थ्यभ्यन्तराणि याति ॥

भा० (व) वह मल व्यानवायु से प्रेरित हुवा नसोंके मार्गसे आकर अंगुलियों में नख स्तन और रोम होजाते है । (भ) और उस सारभूत रसके दो भाग होते हैं । स्थूल और सूक्ष्म । उसमें सूक्ष्म भाग अस्थियोंको पुष्ट करता है । और उसका स्थूल भाग व्यानवायु से प्रेरित हुवा स्नातमार्गसे मज्जास्थान स्थूल अस्थिके भीतर जाता है ॥

(म) अनंतर मज्जाकी अग्निसे फिर पकाहुवा पाँचदिन और डेढ़ दंड तक मज्जामें ही रहता है अनंतर पकेहुवे उससे मल निकलता है ।

(य) वह व्यान वायु से प्रेरित हुवा नसोंके मार्गसे आँखों में आकर नेत्रका मल और नेत्रका स्नेह हो जाता है ॥

(र) तदनन्तर उस सारभूत रसके दो भाग होते हैं ॥

(म) ततो मज्जाग्निना पुनः पच्यमानः पञ्चाहोरत्रात् सार्धं दण्डश्च यावन्मज्जन्येव तिष्ठति ततः पच्यमानात्तस्मान्मलं निर्गच्छति । (य) तच्च व्यानवायुना प्रेरितं शिरामार्गं नयनयोरगत्य नेत्रविट्चक्षुःस्नेहश्च भवति । (र) ततः सारभूतस्य रसस्य द्वौ भागौ भवतः ॥ (ल)

स्थूलः सूक्ष्मश्च तत्र सूक्ष्मभागो मज्जानं पुष्पाति ततः स्थूलो भागो व्यानवायुना प्रेरितः धमनीभिः शिराभिश्च शुक्रस्य स्थानं सकलं शरीरं गत्वा शरीरारम्भकेण शुक्रेण सह मिश्रितो भवति ।

भा० (ल०) स्थूल और सूक्ष्म । उसमें सूक्ष्म भाग मज्जाका पुष्टकरता है । और स्थूल भाग व्यानवायु से प्रेरित हुवा धमनीनाडियों के द्वारा शुक्र का स्थान सम्पूर्णा शरीर में जाकर शरीरके आरम्भक शुक्र के साथ मिलजाता है ॥

(व) ततः शुक्राग्निना युनः पच्यते पच्यमानि तस्मि
न्मलं नास्ति । (श) सहि सहस्रधा ध्मात सुव
र्णवत् । उक्तञ्च । (ष) ।

स्वाग्निभिः पच्यमानेषु मलः षट्सु रसादिषु ।
षट्सु धातुषु जायन्ते मलानि मुनयो जगुः ॥ १०४
यथा सहस्रधा ध्माते न मलं किल काञ्चने ॥
तथा रसे मुहुः पक्वे न मलं उक्रताङ्गने ॥ १०५ ॥

भा० तदनन्तर शुक्र की आग्निसे फिर पकते हैं ॥ उस पके ङ्गवे में मल
नहीं होता ॥ (व) ॥ (श) वह हजार प्रकार आँच दिये ङ्गवे
सेने के मानिंद होता है ॥ (ष) कहा है ।
अपनी आग्निसे पके ङ्गवे छूः रसादिकों में मल होता है इस वास्ते छ
धातुवों में मल उत्पन्न होता है ऐसा मुनिलोग कहते हैं ॥ १०४ ॥
(जैसे हजार आँच दिये गये सेने में निश्चय करके मैल नहीं रहता ।
वैसेही वार वार पक के उक्रत्वकी प्राप्त ङ्गवे रस में मल नहीं होता ।
॥ १०५ ॥

ततः सारभूतस्य रसस्य द्वौ भागौ भवतः स्थूलः सू-
क्ष्मश्च । (क) ॥ तत्र सूक्ष्मः स्नेहभागः ओज-
स्तस्य लक्षणा माह ।

ओजः सर्वशरीरस्थं स्निग्धं शीतं स्थिरं सितम् ।
सौमान्सकं शरीरस्य वलयुष्टिकरं मतम् ॥ १०६ ॥

भा० उसके अनंतर सारभूत रसके दो भाग होते हैं । स्थूल और
सूक्ष्म । (क) ॥ उममें सूक्ष्म स्नेह भाग ओज होता है उस
का लक्षणा कहते हैं ॥

ओज सब शरीर में रहनेवाला स्निग्ध अर्थात् सचिक्रण और शीत स्थिर और स्वेत तथा सोमात्मक अर्थात् सोमस्वरूप और शरीर के बल तथा पुष्टि को करनेवाला कहा गया है ॥ १०६ ॥

(बलं चैष्टापाटवम् ।) [तथाच]

चैष्टासु पाटवं यत्तु बलं नदभिधीयते ॥

यत्तु सुश्रुते रसादीनां शुक्रान्तानां धानूनां यत्परं तेज
स्तत्तु खलु तदो जस्तदेव बलमिति तेजस्तेजद्रवः । (ख)

अत्रायमभिप्रायः, यस्माद्रसादेजो भवति स रसः
सर्वधातुस्थानगतत्वान्तत्तद्धानुवन्मन्यत इति सर्व धा
नूनां स्नेहमोजः । (ग)

भा० बल अर्थात् चैष्टा सामर्थ्य । वैसे कहा है । जो चैष्टा में पट्टा है
उसको बल ऐसा कहते हैं ॥ जोकि सुश्रुत में कहा है । शुक्र पर्यन्त
रसादि धातुओं का जो शुद्ध तेज है वह ओज और वही बल है । तेज अ
र्थात् तेज का घानी । (ख) ॥ यहाँ पर यह अभिप्राय है कि जिस
रससे ओज होता है वह रस सब धातुओं में प्राप्त होने से उन २ धातुओं
के मानिंद समझा गया है (ग) ॥

क्षीरे घृतमिव तदेव बलमिति । (घ) ॥ तत्कार्य

कारणयो रभेदीय चाम्नात् । (ङ) ॥ अभेद कथनञ्च

चिकित् सैक्यार्थम् । [अन्यञ्च]

गुरु शीतं मृदु स्निग्धं सान्द्रं स्वादु स्थिरं तथा ॥

भा० जैसे दूध में घृत, वही बल है (घ) ॥ उन के कार्य और कार
णों के भेद न होनेसे (ङ) ॥ यहाँ पर अभेद कथन चिकित्सा की र
कार्यता है ॥ [औरभी]

भारी शीत मृदु सिग्ध सान्द्र ऊर्ध्वगत गाढा मधुर स्थिर स्वच्छ पिच्छिल
जघात् किसलहटपन और सूक्ष्म ऐसे दशागुण वाला ओज कहा गया
है ॥ १०७ ॥

प्रसन्नं पिच्छिलं सूक्ष्ममोजो दशागुणां स्मृतम् ॥ १०७ ॥

[चरके तु]

अष्टविन्दु प्रमाणां नदीषद्रक्तं सपीतकम् ॥ अ
ग्निसोमान्मकत्वेन द्विरूपं वर्णितन्तु तत् ॥ १०८ ॥

[वाग्भटश्च]

ओजश्च तेजो धानूनां शुक्रान्तानां परं स्मृतम् ॥
हृदयस्यमपि व्यापि देह स्थितिनिबन्धनम् ॥ १०८ ॥
यस्य प्रवृद्धौ देहस्य तुष्टि पुष्टि बलोदयाः ॥ य
न्नाशि नियतो नाशो यस्मिं स्तिष्ठति जीवनम् ॥ ११० ॥

भा० चरक में तौ । वह आठ बून्द प्रमाणा और थोड़ा रक्त पीलाई के स
हित है । क्यों कि अग्नि और सौम स्वरूप होनेसे वह ओज दुर्गा वर्णित
किया गया है ॥ १०८ ॥ वाग्भट ने भी कहा है ॥

शुक्र पर्यन्त रसादि धानुवोंका जो उत्कृष्ट तेज है उसको ओज कहा है
। हृदय में रहना हुआ भी व्याप्त होकर देहकी स्थिति का कारण है ॥
॥ १०८ ॥ जिसके बढ़ने में देहकी तुष्टि और पुष्टि तथा बल इनका उ
दय होता है ॥ तथा जिसके नाशमें अवश्य नाश होजाता है और जि
सको रहने में जीवन होता है ॥ ११० ॥

निष्यद्यन्ते यतो भावौ विविधा देहसंश्रयाः ॥

उत्साह प्रतिभा धैर्य लावण्य सुकुमारताः ॥ १११ ॥

क) तनःस्थूलो भागो रसो मासेन पुंसां शुक्रं स्त्रीणां

त्वार्त्तव शुक्रञ्च भवति । उक्तञ्च सुश्रुते ।

(खं) एवं मासेन रसः शुक्रो भवति ।

भा० जिसे कि देह में रहनेवाले नाना प्रकारके भाव अर्थात् धर्म वि
शेष ये उत्साह कान्ति धैर्य्य सुंदरता और सकुमारता इत्यादिक प्राप्त
होते हैं ॥ १११ ॥ (क) और उसका स्थूलभाग रस महीने भ

रमें पुरुषके शुक्र और औरतोंके आर्त्तव अर्थात् मासिक धर्म और
शुक्र भी होता है ॥ (ख) जैसे कि श्रुतमें कहा है ।)

इस तरह पर रस महीने में शुक्र होता है ॥

(ग) स्त्रीणाञ्चेति चकारात् स्त्रीणामपि शुक्रं भव

ति । अतएवाक्तं सुश्रुते ।

योषितोऽपि स्त्रवत्येव शुक्रं पुंसः समागमे ॥

तत्र गर्भस्य किञ्चित्तु करोतीति न चिन्त्यते ॥ ११२ ॥

(क) गर्भस्य शुद्धस्य विद्वत्तस्य तु गर्भस्य कारणां तद्
पि भवति ॥ [यत् उक्तम्]

यदा नाय्या बुपेयतां दृषस्यन्त्यौ कथञ्चन ॥ सु

चन्त्यौ शुक्रमन्योऽन्यमनस्थि स्तत्र जायत इति ११३

(ख) एतेन स्त्रीणां सप्तमो धानुरार्त्तवं शुक्र मष्टमिति
बोधितम् ॥ आश्रयाधिक्यवत् ।

भा० (ग) और स्त्रियों का भी इस चकारसे स्त्रियोंके भी शुक्र होता
है ॥ इसीवास्ति सुश्रुतमें कहा है ॥ पुरुषके साथ संभोग करने में
औरतें भी शुक्रको छोड़ती हैं ॥ और उसमें धोड़े से गर्भकी करती हैं
इसवास्ति विचार नहीं किया गया है ॥ ११२ ॥

(क) शुक्र गर्भका और विद्वत् गर्भकानो कारणा वह भी होता है अर्थात्
शुक्र भी होता है ॥ [जैसा कि कहा है]

जब औरतें मदान्ध हूँ किसी न किसी यत्न से आपसमें मैथुन करती हैं

तव आपसमें शुक्र छोड़ती हैं उसमें अस्थि रहित सन्नान उत्पन्न होती है ।
 ॥ ११३ ॥ (क) इससे औरतोंकी सानवीं धातु आर्तव है आठवीं धातु शुक्र कही गई है ॥ आशय की अधिकता के मानिंद अर्थात् औरतों के जैसे एक गर्भाशय अधिक है वैसीही शुक्रभी आठवीं धातु अधिक है ॥

स्त्रीणां गर्भोपयोगि स्यादार्तवं सर्वं सम्मतम् ॥

तासामपि चलं वर्गं शुक्रं पुष्टिं करोति हि ॥ ११४ ॥

(क) एवं रस एवं केदारकुल्यान्यायेन सर्वान् धातून् पूरयन् मासेन नवदशोत्तरेण शुक्रमार्तवं भवतीति सिद्धान्तः ॥ (ख) एवं सति रसाद्रक्तमिति सङ्गतमेव ॥

भा० स्त्रियों के गर्भका उपयोगि आर्तव है यह सबका सम्मत है । उनका शुक्र चल वर्ग और पुष्टि को करता है ॥ ११४ ॥

(क) इस प्रकार रसही रदन और कुल्या अर्थात् पानी जिनकी छोटी नहर उसके न्यायसे सब धातुओंको भरता हुआ एक महीना और नौदंड में शुक्र और आर्तव होता है यह सिद्धान्त है ॥

(ख) इस प्रकार होने में जो रससे रक्त ऐसा कहा गया ठीक है ॥

(ग) ततो मांसन्ततो रक्तोत्पत्ते रनन्तरं मांसं जायते

रसादेवेत्यर्थः ॥ (घ) मांसान्मेदः प्रजायत इति ।

मांसादनन्तरं मेदः प्रजायते रसादेवेत्यर्थः ॥

(ङ-) मेदसोऽस्थि जायते रसादेवेत्यर्थः ॥

भा० (ग) ततो मांसं । अर्थात् रक्तोत्पत्तिके अनन्तर मांस होता है ॥ अर्थात् रसही से होता है । (घ) मांसान्मेदः प्रजायत इति । अर्थात् रसही से मांसके अनन्तर मेद उत्पन्न होता है ॥

(ङ-) और मेदके अनन्तर रसही से अस्थि होती है ॥

(ड.) मैदसोऽस्थि जायते रसादेवेत्यर्थः । (च) एवं ततो मज्जा अग्रे शुद्ध शुक्रं सम्भवतीत्यर्थः ।

(छ) रसः शरीरे त्रिधा सञ्चरति । तथा चोक्तम्
रसः शरीरे शब्दाच्चिर्जलसन्तानवत् त्रिधा ॥
सञ्चरत्यनुरूपोऽयं नित्यमेव हि देहिनाम् ॥

भा० (च) इसी प्रकार उसके अनन्तर मज्जा और आगे शुद्ध शुक्र उत्पन्न होता है । (छ) शरीर में रस तीन प्रकार से संचार करता है । वैसे कहा है । प्राणियों के शरीर में रस शब्द सन्तान और अग्नि शिखा सन्तान तथा जल सन्तान के मानिन्द तीन प्रकार वैसे देहा नित्यही पुरुषों के संचार करता है ।

अस्यायमभिप्रायः । (क) पुरुषास्तीक्ष्णाग्नयो मध्यमाग्नयो मन्दाग्नयश्च भवन्ति । (ख) तत्र तीक्ष्णाग्नीनां सरसः शब्दसन्तानवत् शीघ्रं सञ्चरति । (ग) मध्यमाग्नीनामच्चिः सन्तानवन्मध्यवेगेन चरति मन्दाग्नीनां जलसन्तानवन्मन्दं चरति ।

भा० इसका यह अभिप्राय है कि । (क) पुरुष तीक्ष्णाग्नि मध्यमाग्नि मन्दाग्नि होते हैं । (ख) उसमें तीक्ष्ण अग्नि वाले पुरुषों का वह रस शब्द सन्तान के मानिन्द शीघ्र संचार करता है । (ग) और मध्यमाग्नि वाले पुरुषों का अग्नि ज्वालाकी सन्तान के मानिन्द मध्यवेगसे धूमता है । तथा मन्दाग्निों का जलसन्तान के मानिन्द धीरे चलता है ।

(घ) तेनभासेन रसान् शुक्रं भवतीति । (ड.) यदुक्तंम् । तन्मध्यवेगेन चरति । (च) मन्दाग्नीनां जलसन्तानवन्मन्दं चरति तेनभासेन रसः शुक्रं

भवतीति यदुक्तं तन्मध्यमाग्नी नधिहृत्योक्तम् ॥
 (छ) दीप्ताग्नीनान्तु रसः किञ्चिद्भ्यूनेन मासेन शुक्रं
 भवति । (ज) मन्दाग्नेः किञ्चिद्दधिकेन मासेन
 त्रि सिद्धान्तः ॥ (ङ) तर्हि वाजी करणा नामौष
 धीनां किं प्रयोजन मित्याह ॥

भा० निस्स महीनेमें रससे शुक्र होता है ॥ (ङ) जो कहा कि वह
 मध्यवेगसे चलता है ॥ (च) मन्दाग्नियों का जल सन्तानके मानि
 द मन्द चलता है ॥ उससे महीनेमें रस शुक्र होता है ॥ जो कहा वह
 मध्यमाग्नियों को अधिकार करके कहा है ॥

(छ) तीक्ष्णाग्नियों का रस कुछ कम महीने में शुक्र होता है ॥
 (ज) और मन्दाग्नियों का कुछ ऊपर महीनेमें शुक्र होता है यह सिद्धान्त
 है । (ङ) तो वाजीकरण औषधियों का क्या प्रयोजन है ।
 इससे कहने हैं ॥ (ज) ॥

वाजी करिरायः औषध्यः स्वप्रभाव गुरोश्च्छ्रयात् ॥

(ट) विरेचयन्ति ताः शुक्रं विरेकिद्रव्यवन्तृणाम् । वा
 जीकरिरायः याभिः औषधीभिः पुरुषः शुक्राधिक्या
 न् स्त्रीषु वाजीवत् सामर्थ्यं प्राप्नोति ताः वाजीकरिरायः
 स्वप्रभाव गुरोश्च्छ्रयात् ॥

(ड) तत्र काश्चिदौषध्यः स्वप्रभावाधिक्यात् ।

भा० वाजीकरण औषधियां अपने प्रभाव और गुणकी अधिकता से
 वो औषधियां विरेचन औषधियोंके मानिन्द पुरुषके शुक्रको निकाल
 ले हैं । (ट) वाजीकरिरायः । जिन औषधियों से पुरुष शुक्र की अं-
 धिक्यतासे औरतों में घोड़ेके मानिन्द सामर्थ्य को प्राप्त होता

- है । (ठ) वीवाजीकराय अपने प्रभाव और गुणकी अधिकतासे ।
 (ड) अर्थात् उनमें कोई औपधियां अपने प्रभावकी अधिकतासे ।
 (ढ) काश्चित् स्वगुणाधिक्यात् । काश्चित् स्वप्रभाव
 गुणाधिक्यात् । (ण) तत्रसङ्कल्पपादलेपविशिष्ट
 कान्तास्पर्शादयः स्वप्रभावाधिक्यात् शुक्रं विरेचयन्ति ।
 (त) घृतक्षीरादयः स्वगुणाधिक्यात् ।
 (थ) स्निग्धत्वादाधिक्यात् माषादयः स्वप्रभाव
 स्निग्धत्वादि गुणाधिक्यात् ॥

भा० (ड) और कोई अपने गुणकी अधिकतासे तथा कोई दोनोंकी
 अधिकतासे (ण) शुक्रको निकालती हैं । सजाजू का पैर में लेप
 किया हुआ कान्ताका आलिंगनादिक अपने प्रभावकी अधिकतासे
 शुक्रको विरेचन करता है ॥ (त) घृत दुग्धादिक अपने गुणकी अ-
 धिकतासे । (थ) और चिकनेपनकी अधिकतासे माषादिक अ-
 र्थात् उड़द वगैरह अपने प्रभाव और स्निग्धत्वादि गुणोंकी अधिकता
 से ॥

- (द) वाजीकरिराय इति बहुवचनमाद्यर्थानुवर्तनम् ।
 (ध) वल्यं वृंहणं जीवनीयं गणादयः तद्वद्द्विष्याः ।
 (न) विरेचयन्ति स्वप्रभावगुणाधिक्यात् ।
 (य) शीघ्रमेवं रसाद्युत्पादनपूर्वकं शुक्रं जनयित्वा
 प्रवर्तयन्ति ॥ [यत आह]

भा० वाजीकरिराय है ऐसे बहुवचन पाहिले अर्थको लौटानेके हेतु
 कहा है । (ध) वलदेने योग्य और वृंहण अर्थात् शुक्रादिक को
 प्रवर्तित करनेवाले जीवनीय गणादिक उनके मानिन्द जानने चाहिये ॥
 (न) विरेचन करती हैं अपने प्रभाव और गुणकी अधिकतासे ॥

(प) शीघ्रही रसादियों के उत्पादन पूर्वक अर्थात् रसादियों को उत्पन्न कर पञ्चान् शुक्र को उत्पन्न करके बढ़ाती हैं ॥ [जैसा कि कहा है]

दुग्धं माषाश्च मज्जातः फलमज्जा मलानि च ॥

जनकानि निगद्यन्ते रेचनानि चरेतसः ॥ ११५ ॥

[ननु बालानां कथं शुक्रं न दृश्यत इत्याह]

बालानां शुक्रमस्त्येव किलु सौक्ष्म्यान्न दृश्यते ॥

युष्पाराणां सुकुले गन्धो यथा सन्नधि नाप्यते ॥ ११६ ॥

तेषां तदेव तारुरोय पुष्टत्वाद्यक्तिमेति हि ॥

कुसुमानां प्रफुल्लानां गन्धः प्रादुर्भवेद्यथा ॥ ११७ ॥

भा० दूध उड़द भिलावके फलकी मज्जा और मांसे ये शुक्र के उत्पन्न करनेवाले और रेचन करनेवाले कहे गये हैं ॥ ११५ ॥

प्रश्न) । बालकों के शुक्र क्यों नहीं दिखता । साकहते हैं ।

बालकों के शुक्र रहना है लेकिन सूक्ष्म होने से नहीं दिखता । जैसे फूलों की कलियों में गंध रहता हुआ भी नहीं मालूम होता ॥ ११६ ॥

उन बालकों का वही शुक्र युवावस्था में पुष्ट होने से प्रगट होता है । जैसे त्विले ह्वे फूलों में से गन्ध निकलता है ॥ ११७ ॥

रोमराज्यादयः पुंसां नारीणामपि यौवने ॥

जायतेऽत्र च यो मेदो ज्ञेयो व्याख्यानतः स च ॥

(क) व्याख्यानं यथा पुंसां रोमराजोश्मश्रुप्रभृतयः ।

नारीणान्तु रोमराजीस्त्रनस्त्रन्यात्तत्र प्रभृतयः ।

भा० वैसे रोमावल्यादिक पुरुषों के तथा औरतों के भी यौवन अवस्था में निकलते हैं । यहां पर जो मेद है वह व्याख्यान से जानना चाहिये ।

११८ ॥ (क) व्याख्यान जैसे पुरुषों के रोमावली श्मश्रु अर्थात् दाढ़ी

इत्यादिक होते हैं वैसेही औरतों के रोमपंक्ति स्नान दूध आदि दूत्यादिक होने हैं ॥ (ख) प्रश्न । वृद्ध का अन्न रस धानु वृद्धि क्यों नहीं करता सो कहते हैं ॥

(ख) ननु, अन्नरसो वृद्धस्य धानुवृद्धिं कथं न करोतीत्याह ।

वार्द्धके वर्द्धमानेन वायुना रसशोषणात् ॥ न तथा धानुवृद्धिः स्यात्तत स्तत्रानिलं जयेत् ॥ ११६ ॥

[अथ शुक्रस्य स्वरूपमाह ।]

शुक्रं सौम्यं सिनं स्निग्धं बलपुष्टिकरं स्मृतम् ॥
गर्भबीजं वपुः सारो जीवस्याश्रय उत्तमः ॥ १२० ॥

भा० वृद्धावस्था में बड़े हृदे वायुके द्वारा रस शोषण होने से उस प्रकार धानु वृद्धि नहीं होती तिस कारण उसमें वायु की जीने अर्थात् चानशामन औषधियों का सेवन करें ॥ ११६ ॥

[अमन्तर शुक्र का स्वरूप कहते हैं]

शुक्र सौम्य इति स्निग्ध और बलपुष्टि को करनेवाला कहा गया है । तथा गर्भका बीज शरीर का सार और श्रेष्ठ जीवका आश्रय अर्थात् स्थान कहा गया है ॥ १२० ॥

[जीवस्याश्रय उत्तम इति आह ।]

जीवो वसति सर्वस्मिन्देहे नत्न विशेषतः ॥ वीर्ये रक्ते मले यस्मिन् क्षीरो याति क्षयं क्षणात् ॥ १२१ ॥

[अथ गर्भसञ्जनन शुक्रस्य लक्षणमाह ।

भा० जीवका आश्रय उत्तम इसको कहते हैं । सब शरीर में जीव रहता है परन्तु विशेष करके शुक्रमें रक्तमें मलमें रहता है । क्यों कि जिनके क्षीण होनेमें क्षणमें क्षयको प्राप्त होता है ॥ १२१ ॥

[अनन्तर गर्भको उभन्न करनेवाले शुक्रका लक्षण कहते हैं]

स्फटिकां भद्रवं स्निग्धं मधुरं मधु गन्धि च ॥ शुक्र-
मिच्छन्ति कोचित्तु तैल दौद्रुनिभञ्च तत् ॥ १२२ ॥

[अथ शुक्रस्य स्थानमाह]

यथा पयसि सर्पिस्तु गूढं श्रेष्ठं रसो यथा ॥ एवं
हि सकले काये शुक्रं तिष्ठति देहिनाम् ॥ १२३ ॥

भा० स्फटिक के तुल्य आभावाला और द्रव अर्थात् बहनेवाला तथा स्निग्ध मधुर और मधु ऐसी गन्धवाला होता है । और कोई कहते हैं कि तैल तथा शहनसा शुक्र होता है ॥ १२२ ॥

अनन्तर शुक्रका स्थान कहते हैं । जैसे दुग्धमें घृत और गव्हेके रसमें गुड़ रहता है ऐसीही मनुष्योंके सम्पूर्ण शरीर में शुक्र रहता है ॥ १२३ ॥

(क) अत्र सर्पिर्दृष्टान्तो बह शुक्रे ऽल्प मथनेन सर्पिः
शुक्रयोर्लाभान् । इक्षुरस दृष्टान्तस्तु स्वल्प शुक्रे
पुंसि अतिपीडने नेक्षुरसस्य शुक्रयोर्लाभान् ॥

[अथ शुक्रस्य क्षरणा मार्गमाह ।]

द्वद्भुले दक्षिणे पार्श्वे वस्ति द्वारस्य चाप्यधः ॥
मूत्र स्त्रोत्र पथे शुक्रं पुरुषस्य प्रवर्तते ॥ १२४ ॥

भा० (क) यहाँ पर बहून शुक्रवाले पुरुष में थोड़े मथनेके द्वारा घृत और शुक्रका लाभ होनेसे घृतका दृष्टान्त दिया है ॥

और थोड़े शुक्रवाले पुरुष में बहून मथनेके द्वारा इक्षुरस और शुक्रका लाभ होनेसे इक्षुरसका दृष्टान्त दिया गया है ॥

[अनन्तर शुक्रके निकलनेके मार्ग कहते हैं]

वस्ति द्वारके नीचे दहनी तरफ़ दो अंगल मूत्र स्रोतके मार्गसे पुरुष का शुक्र निकलता है ॥

[वृद्ध वाग्भटोऽप्याह ।]

(क) सप्तमी शुक्रधरा द्यङ्गुले दक्षिणे पार्श्वे वस्ति द्वारस्य चाप्यधो मूत्रमार्गमाश्रिता सकलं शरीर व्यापिनी शुक्रं प्रवर्तयतीति ॥ सप्तमी कला ।

[अथ शुक्रधारण कारणमाह ।]

द्वान्त्रदेह स्थितं शुक्रं प्रसन्न मनसस्तथा ॥

स्त्रीषु व्यायच्छतश्चापि हर्षान्न सम्प्रवर्तते ॥१२५॥

(स्त्रीषु व्यायच्छतः स्त्रीषु रतरूपं व्यायामं कुर्वतः ।

भा० वृद्ध वाग्भट ने भी कहा है ॥ (क) सातवीं शुक्रको धारण करनेवाली दो अंगल दाहिनी तरफ़ वस्ति द्वारके नीचे मूत्र मार्गको आश्रयण करनेवाली सम्पूर्ण शरीर में फैली हुई शुक्रको निकालती है । वो सातवीं कला है ॥

अनन्तर शुक्रके गिरनेका कारण कहते हैं ॥ सम्पूर्ण शरीर में रहनेवाला शुक्र प्रसन्नचित्त तथा स्त्री में मैथुनरूप कसरत करनेवालेके भी हर्षसे वह शुक्र निकलता है ॥ १२५ ॥

[स्त्री में व्यायच्छतः अर्थात् सुरतरूप व्यायाम करनेवालेके]

[अन्यच्च ।]

शुक्रं कामेन कामिन्या दर्शनात्स्पर्शनादपि ॥

शब्द संश्रवणात् ध्यानान् संयोगाच्च प्रवर्तते १२६

[अथार्तवस्य स्वरूपमाह]

स्त्रीणां रस एव मासेनार्तवं भवतीत्यक्ता पुनराह शुक्र-

त एव ।)

रसादेव रजःस्त्रीणां मांसि मांसि व्यहं स्ववेत् ॥

तद्वर्षात् द्वादशादूर्द्धं याति पञ्चाशतःक्षयम् । १२७

मांसिनोपचितं काले धमनीभ्यस्तदार्त्तवम् ॥

ईषद्विवर्णां कृष्णाञ्च वायुर्योनिमुखं नयेत् । १२८

[गर्भग्रहणयोग्यस्यार्त्तवस्य लक्षणा माह]

शशास्त्रकप्रतिमं यच्च यद्दालाक्षारसोपमम् ॥

तदार्त्तवं प्रशंसन्ति यद्वासो न विरञ्जयेत् ॥ १२९ ॥

भा० औरमी । कामिनी की कामनासे अर्थात् संभोगकी इच्छासे अथवा उसके दर्शनसे या स्पर्शसे या उसका शब्द श्रवण करनेसे या चिन्तनसे या लिपटानेसे शुक्र निकलता है ॥ १२६ ॥

[अनंतर आर्त्तवका स्वरूप कहते हैं ।]

स्त्रियोंका रसही महीनेमें आर्त्तव होता है ऐसा कहकर फिरसे कहते हैं शुक्रसेही । रससेही औरतोंका रज महीने महीनेमें तीन दिन स्वाव होता है । वह आर्त्तव बारह वर्षके ऊपरसे निकलता है और पचास वरसमें क्षय होजाता है ॥ १२७ ॥ महीने भरमें संचयज्वे आर्त्तवको समयपर वायु धमनियोंके द्वार थोड़ा बदरंग और काला योनि द्वारसे निकालता है ॥ १२८ ॥

[गर्भरहनेके योग्य आर्त्तवका लक्षणा कहते हैं]

शश अर्थात् श्वरगोशके रक्त समान जो आर्त्तव अथवा लारवके रस सदृश जो है उसको अच्छा कहते हैं और बज्जाकपड़ेको नहीं रंगता अर्थात् जो धोनेसे जाता है ॥ १२९ ॥

(क) आर्त्तवस्य वर्णाद्व्याभिधानम् । वानादिप्रकृतिभेदेन वर्णा भेदात् । यद्वासो न विरञ्जयेत् । यद्वासो लग्नं प्रक्षालितं तद्वासस्त्यजति ननु विकृत रक्तं कुर्यात् ।

(क) आर्तव के दो रंग कहे हैं । बानादि प्रकृति के भेद से वर्ण भेद कहे हैं । और जो कपड़े को नहीं रंगता अर्थात् जो कपड़े से लगा हुआ धौने से उस कपड़े से दूध जाना है । उसको खराब लाल नहीं करता ।

ऋतुस्त्रीणां रजोदर्शानात् षोडशनिशाः तत्रैव भवमार्तवं गृहीत गर्भानाम् स्त्रीणां मार्तव वहानां स्रोतसां गर्भ-
रणावरोधा दार्तवं न स्रवति । (ख) किन्तु तदेवाधः प्र-
तिहत मूर्धभागत मुपचीयमानमपरा भवति । अपरा-
तु श्रीवर इति लोके । शेषं चोद्धतरमागतं पयोधरो या
ति तस्माद्गर्भस्थः पीवर पयोधरा भवन्ति ।

भा० औरतों का ऋतुकाल रजोदर्शन दिनसे सोलह दिन रहता है । उसमें
जवा आर्तव गर्भको धारण की हुई स्त्रियोंके आर्तववाही स्रोतोंका
गर्भ द्वारा अवरोध होनेसे अर्थात् रोक होनेसे आर्तव नहीं निकलता ।
(ख) किन्तु वही नीचेसे टकर खाया हुआ कपूर आके संचय हुआ अप-
रा अर्थात् गर्भनाड़ी होता है ॥ और दूसरी लोगों में श्रीवर ऐसा कहते हैं
चाकी उससे कपूर आया हुआ स्तनोंमें जाता है । तिससे गर्भिणी के भरे
हुए स्तन होते हैं ॥

[अथ धातुष्वतिरिक्तान् गुराण नाह]

अतिरिक्ता गुराणरक्ते वन्दे मांसे तु पार्थिवाः ॥ मेद-
स्य पां रसे चास्त्रिष्टयि निल तेजसाम् ॥ १३० ॥
मज्जि शुक्रे च सोमस्य मूत्रे च शिखिनो गुराः ॥
भुवस्तयार्त्तवे त्वग्ने रसे क्षीरे तथा म्भसः ॥ १३१ ॥

भा० अलन्तर धातुओं में अलग गुराओंकी कहते हैं । रक्तमें अग्निके अल-
न गुरा हैं ॥ और मांस में पार्थिव गुरा । वैसेही मेदमें जलके गुरा और

स्तनयोर्मध्यमधिष्ठायो रस्यामाशय द्वारं सत्वराजः
स्तमसा मधिष्ठानं हृदयं नाम शिरा मर्म चतुर-
ङ्गुलं सद्यो मारकं ॥

वस्तिर्नाभिः पृष्ठकंठी गुद वंदरण शोफ साम् ॥ म-
ध्ये वस्ति तनुत्वक च एक द्वारो ह्यधो मुखः ॥ १५४ ॥

(क) स्नायु मर्मदञ्चतुरङ्गुलं सद्यो मारकम् नाभिः प-
सिद्धा पक्वामाशयोर्मध्ये शिरा प्रभवा नाभिर्नाम शि-
रा मर्मदञ्चतुरङ्गुलं सद्यो मारकम् ॥

भा० हृदयप्रसिद्ध है स्तनों के बीच छाती में आमाशय का द्वार सत्व राज-
तम इनकी जगह हृदय नाम शिरा मर्म चार अङ्गुल प्रमाण सद्यो मार-
क है ॥ वस्ति अर्थात् पेड़ नाम पीठ कटि गुदा और पृष्ठीक वंदरण त-
था लिंग इनके बीचमें वारीक चामका नीचे मुख वाला एक द्वार वस्ति
नाम स्नायु मर्म यह चार अङ्गुल का तत्काल मारक है ॥ १५४ ॥
नाभि प्रसिद्ध है । पक्वामाशय और आमाशय के बीच में शिरा ओंकी निकल-
ने की जगह नाभि नाम शिरा मर्म यह चार अङ्गुल का तत्काल मार-
क है ॥

वक्षो मर्माणि सीमन्ता सल्ला क्षिपेन्द्र वस्तयः ॥

वृहत्यौ पार्श्वयोः सन्धी कठीक तरुणे चये ॥ १५५ ॥

नितम्बाविति चैतानि कालान्तर हरणि तु ॥

[वक्षो मर्माणि ।]

(उरसः स्तनमूलस्य नरो हि स्तन रोहिते ।)

(क) स्तनयो रधरस्ताद्यङ्गुलं सुभयतः स्तनमूले नाम
शिरा मर्मरणी द्व्यङ्गुले कफ पूर्ण कौष्ठ तथा कास प्रवा

साभ्यां च कालान्तरमारके ॥ स्ननयोरुपरि उभयतः
द्वङ्गुलं यावत् । स्ननरोहिते नाम द्वे मांसमर्मणी
रक्तपूरितं कोष्ठतया कालान्तरमारको ।

भा० वक्षस्थल के आठ मर्म और पांच सीमन्त तथा चार नल
और क्षिप्रचार इन्द्रवस्ति चार दृहती दो पार्ष्वसन्धी दो कटीक तरुण
दो ॥ १५५ ॥ नितम्ब दो ये नेतीस कालान्तरमारक हैं ॥
वक्षस्थल के मर्म कहते हैं ।] स्ननों के नीचे दो अंगुल दो नों
तरफ स्ननमूल नाम शिरामर्म दो अंगुल के हैं । वो कफ से भरेको
छ होनेसे कास और श्वासके द्वारा कालान्तरमें मारक हैं अर्थात्
इस मर्मों के कटनेसे कास श्वास होके पञ्चात् मरता है ॥
(ख) स्ननके ऊपर दोनों तरफ स्ननरोहित नाम दो मांसमर्म हैं ।
वे मर्म रक्तसे पूरित कोष्ठ होनेसे कालान्तरमें मारक है ॥

अपलायी अंस कूटयो र्धस्तान् पार्ष्वयो रुपरि द्वौ शिरा
मर्मणी । अर्द्धङ्गुले रक्तेन पूयताङ्गुले न कालान्तरमा-
रको । अपस्तम्बो उरसः उभयोः नाड्योः वातवहे शि-
रामर्मणी । अर्द्धङ्गुले वातपूरणी कोष्ठतया कासश्वा-
साभ्यां च कालान्तरमारके सीमन्ताः शिरसि यञ्च स-
न्धयः सन्धिममीणि चतुरङ्गुलानि । उन्मादभयचि-
नविनाशैः कालान्तरमारकाः ॥

भा० कंठके जोड़के नीचे और पसलियों के ऊपर दो आधे अंगुलके
शिरामर्म हैं । वे मर्म रक्तसे पीप हो जानेपर कालान्तरमें मारक हैं
। नीकी दोनों वातवहा नाडी अपस्तम्ब नाम शिरामर्म आधे अं-
गुलका है । वो मर्म वायु से पूर्ण कोष्ठ होनेसे कास श्वासके द्वारा का-
लान्तरमें मारक है । शिरमें पांच जोड़ सीमन्त नाम सन्धि मर्म चार -

अंगुल प्रमाण हैं । उन्माद भय चित्त विनाशके द्वारा कालान्तर में मारक हैं ॥

(ग) तल्लानि । मध्याङ्गुलि मनुक्रम्य हस्तस्य मध्यतल
मेव मपरस्य हस्तस्य । पादयोश्चत्वारि तल्लानि मांस म
र्माणि द्यङ्गुलानि रुजाभिः कालान्तर मारकाणि ।
क्षिप्राणि श्रङ्गुष्ठाङ्गुल्योर्मध्यं क्षिप्रम् । तच्च हस्त द्व
योर्द्वे तथा पादयोः एवं चत्वारि स्नायु मर्माण्यर्द्धाङ्गुला
न्याक्षेपकेण कालान्तर मारकाणि ॥

भा० (ग) मध्यमांगुलि को अनुक्रम करके हात का मध्यतल है इसी तरह दूसरे हाथका । और पावोंके दो इस प्रकार चार तल हैं । मांस मर्मदो अङ्गुल के पीड़ाके द्वारा कालान्तर में नाश करने वाले हैं ॥

क्षिप्र अंगुष्ठ और अङ्गुलि के बीचकी क्षिप्र कहते हैं । वे दोनों हातके दो तथा दोनों पावोंके दो इस प्रकार चार स्नायु मर्म अर्द्धाङ्गुल प्रमाण होते हैं और आक्षेपक के द्वारा कालान्तर में मारक हैं ॥

(घ) इन्द्रवस्तयः प्रकीष्टयोर्मध्ये द्वौ जङ्घयोर्मध्ये द्वौ ।
एवं चत्वारि मांस मर्माणि द्यङ्गुलानि शीणित क्षयेण
कालान्तर मारकाः । दहत्यौ । स्तनमूलादुमथनः सष्टष्ट
वंशं यावत् । शिरामर्माणी । अर्द्धाङ्गुले शीणिताति प्र
दृते रुपद्रवैः कारन्तर मारके ॥

भा० (घ) इन्द्रवस्ति । प्रकीष्ट अर्थात् कीहनी से लेकर हाथके यह चेतक उनके बीचमें दो और जांघोंके बीचमें दो इस प्रकार चार मांस मर्म दो अंगुल के हैं । जो रक्त के क्षय से कालान्तर में मारक होते हैं ।

दहतौ । स्तनमूल से दोनों तरफ पीठके बांस तक आधे अंगुल के दो शिर

मर्म होते हैं । वोरक्तके अधिक निकालने से कालान्तर में मारक होते हैं ॥

पार्श्वसन्धीजघनपार्श्वयोः सन्धीशिरामर्मणी अर्द्धाङ्गुली
शोणित पूर्णकोष्ठतया कालान्तर मारकौ ॥

(इ०) कटीकतरुणो विकसन्निधाने उभयतः श्रोणीका
राडे सन्धीकृत्यास्थिस्थिते अस्थिमर्मणी अर्द्धाङ्गुले शो-
णित क्षयात्पाराडु विवर्ण रूपङ्गुत्वा कालान्तर मा-
रके ॥

भा० पार्श्वसन्धी । कमर पसलियों का जोड़ पार्श्वसन्धी नाम दो शिर म
र्म अर्द्धाङ्गुल के होते हैं । और वोरक्त पूर्णकोष्ठ होनेसे कालान्तरमें मार
क हैं ॥ (इ०) कटीकतरुण । विक अर्थात् कमर के जोड़के पास में दी-
नों तरफ कमर के नलमें सीधपर रहनेवाली अस्थि मर्म आधे अंगुलके
हैं । वोरक्तस्य से पाराडु विवर्ण रूपको करके कालान्तर में मारक होने

नितम्बौ प्रसिद्धौ द्वौ उभयतः श्रोणीकाराडयो रूपर्या
शयाच्छादनौ पाष्वांतर प्रतिबद्धौ नितम्बौ नाम अस्थि
मर्मणी अर्द्धाङ्गुलावधः काय शोषेण दीर्घल्ये न च
कालान्तर मारकौ ॥

भा० कमर की नलके ऊपर आशयके आच्छादन पसलियों के बीच
में बन्धे हवे नितम्ब नाम अस्थिमर्म आधे अंगुलके हैं । वी नीचेके धड़
सक्त जानेसे दुर्बलताके द्वारा कालान्तर में मारक होते हैं ॥

लोहितान्नाणि जानूर्वा कूर्वा विटप कूर्परा ॥ कु
कुन्दरे कक्षधरे विधुर सप्रकाटिके ॥ १४६ ॥
अंसांस फलकायाङ्गी नीलेमन्ये फरेण तथा ॥

वैकल्य करणान्याङ्गरवन्तो द्वौ तथैवच ॥ १५७ ॥

(क) ऊर्वोस्तु द्वे मधो वक्षरा सन्धे लोहिताक्षन्तश्च
द्वेवाहे द्वे ऊर्वोरेवन्तानि चत्वारि शिरा मर्माण्य
र्द्धाङ्गलानि वैकल्य करणि ॥

भा० लोहिताक्ष अणि जानु ऊर्वी कूर्व विट्प कूर्पर कुकुन्दर कक्षध
र विधुर कृकाटिक ॥ १५६ ॥ अंस अंस फलक अपाङ्ग नील
मन्यफण तथा ॥ दो आवर्त इस प्रकार ये वैकल्य करकहे गये हैं
। लोहिताक्ष । (क) जांघ के ऊपर और वक्षरा सन्धि

के नीचे दोलोहिताक्ष मर्म है । दो बाहु में और दो जांघ में दोह च
र शिरा मर्म अर्द्धाङ्गल के विकल करनेवाये हैं ॥

(ख) तत्र शोणानक्षयेन पक्षघातः सकथिसादौ वा ।

आणान्यः । जानुनः ऊर्द्धे उभयोः पार्श्वयोस्त्यदु
ला एकस्मिन् जानुनि द्वे अपरस्मिन्दे एवञ्चतस्रः
स्नायु मर्माण्यर्द्धाङ्गलानि वैकल्य करणि तत्र शो-
याभि वृद्धिः सकथिस्तम्भश्च ॥

भा० उसमें रक्तक्षय से पक्षघात अर्थात् लकवा या सकथिसाद
अर्थात् जांघ पीड़ा होती है ॥ आणान्यः । जानु के ऊपर दोनों
गलों में तीन अंगुल एक जानूमें २ दो दूसरे जानूमें दो २ इस प्र
कार चार स्नायु मर्म अर्द्धाङ्गल के वैकल्य कर हैं ॥ उनमें सूजन ब
ढ़ती है और पांव अकड़ जाते हैं

(ग) जानु जङ्घयोः सन्धौ सन्धि मर्माणि द्यङ्गुले वै
कल्य करे तत्र रक्छता ऊर्वो द्वे ऊर्वो मध्ये द्वे प्र-
गण्डयोः मध्ये द्वे एवं चतस्रः शिरा मर्माणो एका-

हुल्याः वैकल्यकर्यस्तत्र शोणितक्षयात्सकृधि शोषः ।
 कूर्चाः पादयोः रज्जुष्ठाहुल्यो मध्ये तयो रूर्द्ध मधश्च
 एवं चत्वारि स्नायु मर्माणि वैकल्य करणिं तत्र पा-
 दयो भ्रमरा वेपने भवतः ।

भा० (ग) घुटने और जांघ के जोड़ में जानुनाम सन्धि मर्म दो अङ्गुल के वैकल्य कर होते हैं । उनमें ललापन होता है । जांघों के बीच में दो और प्रगराड अर्थात् कोहनी के ऊपर काख तक इनमें दो ऐसे ऊँची नाम चार शिरामर्म एक अंगुल के विकल करनेवाले हैं । उसमें रक्त के क्षय से रोग सुरूव जाती है । कूर्च पैरों के अंगुष्ठ और अंगुलियों के बीच में उन के नीचे ऊपर इस प्रकार चार स्नायु मर्म वैकल्य कर हैं । उसमें पैरों का फिरना और कापना होता है ॥

(घ) विटपे द्वे वंशरा वृषगायो मध्ये स्नायु मर्माणि ए
 काहुल्यवैकल्य करे च तत्राल्प शुक्रताच कूपरौ ।
 कफो रिजोद्वौ सन्धि मर्मणी ह्यहुलौ वैकल्य करौ तत्र
 बाह मध्ये सङ्कोचः । कुकुन्दरे पार्श्वे जघन वहिर्भागे
 एष्ट वंशम्योभयतो नाति निम्ने कुकुन्दरे नाम मर्मणी
 । तत्र स्पर्शाज्ञान मधः काये । चेटोप घातश्च । मर्म
 णी अर्द्धाहुले वैकल्य करे ।

भा० विटप दो वंशरा और अंडकोशों के बीच में स्नायु मर्म एक अंगुल के वैकल्य कर हैं । उसमें अल्प शुक्रता होती है ॥
 काहनी में दो सन्धि मर्म दो अंगुल के वैकल्य कर हैं । उसमें बाह के वाच में मकोच होता है । पसली और कमर के वहिर्भाग में पीठ के वासक दोना तन्क न बढ़न नीचे की तरफ जुकेड़े कुकुन्दर नाम सन्धि मर्म अर्द्धाहुल के वैकल्य कर हैं ॥

(ड) तत्रस्पर्शाज्ञानमधः कायस्य चेष्टापघातश्च । कक्ष धरे । वक्षः कक्षयोर्मध्ये द्वे स्नायु मर्मरणी एकाङ्गुले वैकल्य करे तत्रपक्षाघातः । विधुरे कर्णापृष्ठतोऽधः संश्रिते किञ्चिन्निम्नाकारे द्वे स्नायु मर्मरणी अर्द्धाङ्गुले वैकल्य करे तत्र वाधिर्यम् ॥

(च) कृकाटिके शिरो ग्रीवयोरुभयतः । सन्धि द्वे । सन्धि मर्मरणी अर्द्धाङ्गुले वैकल्य करे शिरष्कम्पः । अंसौ स्कन्धौ बाहू मूर्ध्नी ग्रीवामध्ये अंस पीठ स्कन्धनि बन्धनावंसौ नाम । स्नायु मर्मरणी अर्द्धाङ्गुले वैकल्य करे तत्र बाहू स्तम्भः ॥

भा० (ड) उसमें छेदना दि क्रिया होनेसे नीचेके शरीर में स्पर्शाज्ञान जाता रहता है । और चेष्टा बन्द हो जाती है ॥ कक्षधर । छाती और कांसके बीच में दो स्नायु मर्म रकांगुलके वैकल्य कर हैं । उसमें पक्षाघात होता है । विधुर । कानके पीठसे नीचे लगे हुए कुछ दूबे से दो स्नायु मर्म आधे अंगुल के वैकल्य कर हैं । उसमें बहिरापन होता है ॥

(च) कृकाटिके । शिर और गलेके दोनों तरफ़ दो जोड़ सन्धि मर्मनाम अर्द्धांगुलके विकल करनेवाले हैं । उसमें शिर कम्प होता है । बाहू शिर गला इनके बीच में कंधोंका आधार और कन्धोंसे बन्धे हुए दो स्नायु मर्म आधे अंगुलके वैकल्य कर हैं । उसमें बाहू अर्थात् भुजा अकड़ जाती है ॥

(छ) अंसफलके पृष्ठोपरि पृष्ठवंशमुभयत स्त्रिक सम्बद्धे ग्रीवायां अंसद्वयस्य च संयोगो यत्र तत्रिकं ।

भा० (छ) अंसफलके । पीठके ऊपर पीठके बाँसके दोनों तरफ़ त्रिक से लगे हुए गलेमें दोनों कन्धोंका जोड़ जिसमें है उसको त्रिक कहते हैं ।

अस्थिमर्मणा अर्द्धाङ्गुले वैकल्यकरे तत्रवाह्याः शून्य
 ताशोषश्च । (ज) अपाङ्गुनेनेत्रयोरन्तो शिरा मर्मणा
 अर्द्धाङ्गुलौ वैकल्यकरौ तत्रान्ध्यं दृष्ट्युपघातो वा ।
 नीले मन्ये च कण्ठनाडी सुभयतश्चतस्रो धमन्यः
 द्वे नीले द्वे मन्ये । तत्र एकामन्या एकानीला । एकस्मि-
 न् यार्धे मन्यानीलाः अपरस्मिन् यार्धे द्वे द्वे शिरा म-
 र्मणा अर्द्धाङ्गुले वैकल्यकरे तत्र मूकता विकृतिस्वरताऽ
 रसग्राहिता च । फणो घ्राणमार्ग सुभयतः मांसमर्म-
 णी अर्द्धाङ्गुले वैकल्यकरे तत्र गन्धाज्ञानम् ॥

भा० अंसफलक नाम दो अस्थिमर्म आधे अंगुलके वैकल्यकर हैं ।
 उसमें बुजा सूती पड़ती हैं और सूकभी जाती हैं ॥
 (ज) अपाङ्गु । नेत्रोंके अन्तमे दो शिरा मर्म आधे अंगुलके वैकल्यकर
 हैं ॥ उसमें अन्धापन या दृष्टिमें चोट हो जाती है । नील और मन्य ये ह
 कंठ नाडी दोनों तरफ चार धमनी दो नील दो मन्य हैं ॥ उसमें एक मन्य
 और एक नील एक तरफ तथा एक मन्य और एक नील दूसरी तरफ
 इस प्रकार दो दो शिरा मर्म दो अंगुलके वैकल्य कर हैं ॥ उसमें गूंगावन
 और बुरास्वर तथा रसका ग्रहण न करना ये होता है । घ्राण मार्ग पर दो
 नों तरफ दो मांसके मर्म आधे अंगुलके वैकल्य कर हैं । उसमें गंधका
 ज्ञान जाता रहता है ॥

(क) आवर्तौ भ्रूवो रूपरि निम्नयोः सन्धि मर्मणा अ-
 र्द्धाङ्गुले वैकल्यकरे तत्रान्ध्यं दृष्ट्युपघातः ॥ गुल्फौ
 द्वौ मणिबन्धौ द्वौ तथा कूर्च शिरांसि च ॥ रुजा
 कर शिजानीयात् दृष्ट्वा चैतानि बुद्धिमान् ॥ १५८ ॥

भा० (क) भावर्त । अंगुलके ऊपर देवङ्गुवे दो सन्धि मर्म आधे अंगुलके विकल्प करहैं । उसमें अंधापन और दृष्टिमें चीट होती हैं । गुल्फ दो मणिबन्ध दो तथा कूर्च सिर । इनको रुजाकर अर्थात् पीड़ा करने वाली बुद्धिवान् देखकर जानलियें ॥ १५८ ॥

(क) गुल्फो धुगिटके सन्धि मर्मणी द्वन्द्वुलो रुजाकरौ तत्र रुजा पादस्तम्भः स्वञ्जना च द्वौ मणिबन्धौ हस्त प्र-
कौष्ठ सन्धी सन्धि मर्मणी द्वन्द्वुलो रुजाकरौ । तत्र हस्तयोः क्रियाराहत्यं कूर्च शिरंसि । पाद सन्धेरधः उभयतः एकस्मिन् पादे द्वे च द्वितीये । एवञ्चत्वारि स्नायु मर्मणीयेकाङ्गुलानि रुजाकराणि तत्र रुजा शोफश्च ॥

भा० गुल्फ धुगिटके सन्धि अर्थात् टरवनेका जोड़ सन्धि मर्मनाम दो अंगुलके रुजाकर हैं । उनमें पीड़ा और पैरका जकड़ना तथा लूलापन होना है ॥ दो मणिबन्ध अर्थात् हाथके पींचेका जोड़ मणिबन्ध नाम सन्धि मर्म दो अंगुलके पीड़ा करने वाले हैं । उसमें हाथकी चेष्टा बन्द होजाती है ॥ कूर्च शिर । पैरके जोड़के नीचे दोनों तरफ एक पैरमें दो और दूसरे में दो इस प्रकार चार स्नायु मर्म एक अंगुलके पीड़ा करहैं । उमें मीड़ा आर मूजन होती है ॥

उत्क्षेपो स्थायनी चैव विशल्यग्रं विकम्मतम् ॥

(ख) उत्क्षेपो शङ्खु यांरुपरि केशायावत् । स्नायु म-
र्मणी अर्द्धाङ्गुल तथा विद्व्याः म शल्या जीवेन्याका
न्यतनि शल्यावा उह नशल्यस्तु म्रियेन ।

भा० उत्क्षेप दो और एक स्थायनी ये तान विशल्यग्र हैं ॥

अतएव विशल्य मुहूर्ते शल्यं हन्तीति विशल्यघ्नं मर्म-
स्थापनी । एका भ्रुवो मध्ये शिरा मर्ममदमर्द्वाद्बुलसं
विशल्यघ्नम् ॥

भा० (क) शंख के ऊपर के शतक उतक्षीप नाम दो स्नायु मर्मों दो अंगु-
ल के हैं । उनके कटने में विशल्यजीता है अर्थात् जब तक कांटा फंसा
रहना है तब तक जीता है ॥ अपवा पाकसे काटा गिर पड़ता है ।
और कोंठके उबेडने मरजाता है । इसीवासे विशल्यघ्न अर्थात् निका-
ला हुआ शल्य मारता है इसे विशल्यघ्न कहते हैं । मर्मस्थापनी ।
एक भ्रुवोंके बीचमें यह शिरामर्म अर्द्वाद्बुलका विशल्यघ्न है ॥

सप्तरात्रान्तरे हन्युः सद्यः प्राणाहराणि हि ।

कालान्तरं प्राणाहरं प्रक्षेपासे च मारकम् ॥ १५६ ॥

सद्यः प्राणाहरञ्चान्ते विद्धं कालेन मारयेत् ॥

कालान्तरे प्राणाहरं सन्ने विद्धन्तु दुःखदम् ॥ १६० ॥

(अन्ते मर्मसमीपे)

॥ मर्मीण्यधिष्ठाय हि ये विकारा मूर्च्छन्ति कार्ये
विविधा नराणाम् ॥ प्रायेण ते कृच्छ्रतमा भवन्ति
वेद्येन यत्नेरपि साध्यमानाः ॥ १६१ ॥

भा० सद्यः प्राणाहर मर्मसातदिनके बीचमें नाश करते हैं । और
कालान्तरं में प्राणाहरने वाले मर्म महीने में या पंद्रह दिनमें मार
क हैं ॥ १५६ ॥ सद्यः प्राणाहर मर्म पास बिन्यने से कालान्तर
र मारते हैं ॥ कालान्तर प्राणाहर मर्म निकट विद्ये उबे
दुःख देते हैं ॥ १६० ॥ अन्त अर्थात् मर्मके समीप । मनुष्यों
के शरीर में मर्मोंके ऊपर जो नाना प्रकारके विकार होते हैं ।

वाह विकार प्रायः वैद्योंके द्वारा यत्नसे भी प्रतीकार किये गये अत्यन्त कष्टसाध्य होते हैं ॥ १६१ ॥

(अथ सन्धयः) । ते [द्विविधाश्चेष्टावन्तःस्थिराश्च] ।

शाखास्तु हन्व्योः कट्पाञ्च चेष्टावन्तो भवन्ति हि ।

शोधास्तु सन्धयः सर्वे स्थिरास्तज्जै रुदाहताः ॥ १६२ ॥

कथिता देहिनां देहे सन्धयो द्वे शते दश ॥ शाखास्तु

नेऽष्टषष्टिश्च कोष्ठे त्वेको न षष्टिकाः ॥ १६३ ॥

ग्रीवायां ऊर्ध्वदेशे नु त्र्यशीतिस्ते प्रकीर्त्तिताः ॥ प्रथ

मं परिगणयन्ते तेषु शाखागतां बृह ॥ १६४ ॥

भा० अनन्तर सन्धि कहते हैं । वे सन्धि दो प्रकार की होती हैं । चेष्टा-वाली और स्थिर । हाथ पावों में और जवाड़ों में तथा कमर में चेष्टा वाली सन्धियाँ हैं । और बाकी सब स्थिर । उनके जानने वालों ने कहा है । ॥ १६२ ॥ प्राणियों के देहमें दो से दस २९० सन्धियाँ अर्थात् जोड़ूँ कहे गये हैं । वे जोड़ूँ हान पावा में अड़सठ ६८) और कोष्ठ में उनसठ । १६३ ॥ और गलेके ऊपरके भागमें वे जोड़ूँ अस्सी ८०) कहे गये हैं । उनमें पहिले यहाँपर हाथ पावों में के जोड़ूँ गिनाने हैं ॥ १६४ ॥

(क) एकैकस्यां पादाङ्गुल्यां त्वयस्त्वयो द्वावङ्गुष्ठे ते चतुर्दश । गुणफ जानुवन्तरीष्वेकैकमेवं सप्तदश एकस्मिन् सकथिनि भवन्ति ॥

(ख) गतनेतर सकथि वाह च व्याख्याता । एवमष्टषष्टि शाखास्तु । [अथ कोष्ठगतानाह ।]

(ग) त्रयः कटीकपालेषु चतुर्विंशतिः षष्ठवंशे नावन्त एव पाश्वयो रष्टावुरसि एवमेकोनषष्टिः कोष्ठे ॥

भा० (क) एक एक पैर की उंगलियों में तीननीन ३३। और दो दो अंगुठों में इस प्रकार दो जोड़ चौदह १४) होने हैं । टखना और धुटना तथा पूर्वोक्तवक्षस्य इनमें एकेक इस प्रकार सत्रह १७) एक पांवमें होते हैं ॥
 (ख) इसी हिसाब से दूसरे पांवमें और दोनों हाथों में कही गई है । इस प्रकार हाथ पांवमें अठसठ जोड़ होते हैं । अनन्तर कौष्ठके जोड़ोंको कहते हैं ॥ (ग) नीन कम्मरमें ३। पीठके बांसमें चौबीस २४ । उतनीही पसलियों में आठछातीमें इस प्रकार उनसठ कौष्ठमें ॥

[अथ ग्रीवावर्द्धगतानाह ।

(घ) अधो ग्रीवायां त्रयः कण्ठ नाडीषु हृदयत्कोमफुफु
 सनिबद्धास्त्वष्टादश । द्वाविंशदन्तमूलेषु एकः कण्ठम-
 र्णो नासायाञ्च एकैकः द्वौ द्वौ वर्न्मभण्डलगराडकरा
 शङ्खेषु द्वौ ह्युसन्धौ हावुपरिष्टान् भ्रुवोः शङ्खयोश्चो
 परिष्टान् यज्ञशीर्षकपालेष्वेको मूर्द्धीति कण्ठमर्णो
 धारिणकेति प्रसिद्धे एते सन्धयो ऽष्टविधा भवन्ति ॥

भा० [अनन्तर गलेके ऊपरके जोड़ोंको कहते हैं ।

आठ गलेमें ८) तीन कंठमें ३) हृदय कोमसेबन्धी ऊर्ध्व नाडियों में अठारह १८ । बर्तीस दाँतोंकी जड़ में ३२ । कंठमर्णमें एक १ । नाकमें एक १ । आँखोंकी गोलाईमें दो २ । गालोंमें दो २ । कानोंमें दो २ । शंखमें दो २ । जबाहोंमें दो २ । भ्रुवोंके ऊपर दो २ । शरवके ऊपर दो २ । खोपड़ीमें प्राञ्च । शिरमें एक । १ । कंठमर्ण अर्थात् धंठिका जिसका घाँट भी कहते हैं । ये जोड़ आठ प्रकारके होते हैं ॥ [तेयथा ।]

कोरो दुखल सामुद्राः प्रतरस्तुन्नसेविनी । काकतुंडं मंडलं च शं-
 खावर्ती ऽष्टसन्धयः ॥ १६५ ॥ (क) कोरोगर्तः । नलिकेत्यन्ये
 उदुखलः प्रसिद्धः समुद्रः संपुटः समुद्र एव सामुद्रः अत्र स्वा-
 र्थे अण् । प्रतान्यनेनेति प्रतरौ बेलकः नूनस्थेव नूनीरस्य सेवि

त्नी स्तूनीस्तूनसेविनी । काकवुंडं काकमुखं । मण्डलं प्रसिद्धं
 प्रांस्वखावर्तः प्राङ्गवर्तः । एते यथानाम प्रकृतयः सन्ध-
 यो भवन्तोत्यर्थः । (स्व) एषामङ्गुलि मणिवन्ध गुल्फ
 जानुकुर्षुषुः कोरः सन्धयः । कक्षा वंक्षणा दन्तेषु दूख-
 लाः अंसपीठगुद् भगनितम्बिषु सामुद्राः ॥ श्रीवा दृष्ट
 वंशयोस्तु प्रतरः शिरः कटीकपालेषु तु न सेविन्यः ।
 हृन्ध्या रुभयतः काकसुराडाख्याः कराठ हृदयक्लोम
 नाडीषु मण्डलारख्याः । शिर श्रावः शृङ्गाटकेषु प्रांस्वावर्ताः

भा० [ये जैसे] कोर उद्वल सासुत्र प्रतर तुन्न सेविनी काकवुंड मंडल
 और प्रांस्वावर्त ये आठ सन्धियों के भेद हैं ॥ १६५ ॥
 (क) कोर अर्थात् स्तराखवार और लोम जलिका भी कहते हैं ॥ उद्वल
 अर्थात् ऊर्ध्वल के मानिद सामुद्र अर्थात् ठकना संपुट सामुद्र ही सामुद्र
 इस अर्थमें अणु प्रत्यय होता है । चलनी है इससे वह प्रतर अर्थात्
 बेल । तुन्न में रहनेवाला ही तुनी इसकी सेविनी अर्थात् सूई तुनी तुन्न से
 विनी । काकवुण्ड अर्थात् कौबेका मुख । मण्डल प्रसिद्ध अर्थात्
 गोल । प्रांस्वका आवर्त अर्थात् प्रवर । ये जैसे नाम वैसे रूप जोड़ें ॥
 (ख) इनमें से उङ्गुलि पाँचा टरने घुटना कहनी इनमें कोर सन्धि
 है । काख वंक्षणा और दन्ते में उद्वल जोड़ है । अंस पीठ गुद् भग
 नितम्ब इनमें सामुद्र सन्धि है । कराठ और पीठ के बांस में प्रतर संधि
 है । शिर कटी कपाल में तुन्न सेवनी । जबड़े के दोनों तरफ काक मु-
 ख । कराठ हृदय क्लोम नाडी में मण्डल । श्राव शृङ्गाटक में प्रांस्वावर्त ।

अस्या तु सन्धयो ह्येते केवलाः समुदाहताः ॥ ५ ॥

श्रीस्त्रायु शिरारणान्तु सन्धिसंख्या न विद्यते ॥ १६६ ॥

[अथ शिरामाह ।]

सन्धिबन्धन कारिराया दीषधार्तवहाः शिराः ॥ १६७ ॥

नाभ्यां सर्वाणि बद्धा स्ताः प्रतन्वन्ति समन्ततः ॥ १६७

शरीरं सकलञ्चै तच्छिराभिः पोष्यते सदा ॥ प्रणा-

लीभि रिवारामाः कुल्याभिः क्षेत्रधान्यवत् ॥ १६८ ॥

(क) अत्र प्रणालीभिः कुल्याभिरिति दृष्टान्तद्वयं स्थूल सूक्ष्म शिराभेदान् ॥

भा० केवल अस्थियों के जोड़ इतने कहे गये हैं । पेशी स्रायु और शिरा इनकी सन्धि संख्या नहीं है ॥ १६६ ॥ अनन्तर शिरा कहते हैं ॥ जोड़के बन्धन को करनेवाली और रोषधानु को धारण करनेवाली रगे होती हैं ॥ वो सब नाभिसे बन्धी हुई आस पास फैली हैं ॥ १६७ ॥

यह शरीर सर्वदा शिराओंसे पोषया किया जाता है । जैसे नालीसे बाग और छोटी नहर से खेतका धान नैद्यार किया जाता है ॥ १६८ ॥ (क) यहां पर नाली और छोटीनहर यह दो दृष्टान्त छोटी बड़ी तनों के भेदसे कही गई हैं ॥

प्रसारणाकुञ्चनादि क्रियाभिः सततं तनौ ॥ शि-

रा एवोप कुर्वन्ति ताः स्युः सप्तशतानि तु ॥ १६९ ॥

यथा द्रुमदले साक्षान् दृश्यन्ते प्रतताः शिराः ॥

तथैव देहिनो देहे वर्तन्ते सकले शिराः ॥ १७० ॥

नाभिस्थाः प्राणिनां प्राणाः प्राणात्ताभिरुपाश्रिता ।

शिराभिरावृता नामिष्वक्र नाभिरिवारकैः ॥ १७१ ॥

भा० फैलना सिकुड़ना इत्यादिक क्रियाओंसे निरंतर शरीर में शिराही उपकार करती है । वीह सात से है ॥ १६९ ॥ जैसे वृक्ष के फले में फोटी हुई साफ रंग दिखती हैं । वैसेही मनुष्यके सब शरीर में शिरा रहती हैं ॥ १७० ॥ प्राणियों के प्राण नाभिस्थ हैं और नाभि प्राणों के पास स्थित हैं ॥ तथा शिराओंसे शिरा हुई नाभि हैं जैसे आरक अर्थात् बीवाह से

चक्रं नाभिके मानिन्द ॥ १७१ ॥

(क) तद्यथा तासां खलु मूल शिरा चत्वारिंशत् ॥ तासां
दश वातवहाः दश पित्तवहाः दश श्लेष्मवहाः दश रक्त
वहाः तासां खलु वातवहाना वातस्थानगतानां सप-
ञ्च सप्तति शतानि भवन्ति ॥ तावन्त्य एव पित्तवहाः
पित्तस्थानगताः । श्लेष्मवहाः ताः श्लेष्मस्थानगताः
रक्तवहा यकृत स्नीहगताः एवं शिराः सप्तशतानि भवन्ति ॥

भा० वैसे । उनमें प्रधान शिरा चवालीस हैं । उनमें दश वातवहा,
दश पित्तवहा, दश कफवहा, दश रक्तवहा, इस प्रकार चालीस हैं ।
वातस्थान में प्राप्त उन वातवहों के एकसे पचहत्तर १७५ हैं । जिन ही
पित्तस्थान में प्राप्त पित्तवहा और श्लेष्मस्थान में प्राप्त श्लेष्मवहा भी
एकसे पचहत्तर १७५ ॥ तथा यकृत स्नीहमें प्राप्त रक्तवहा एकसे
पचहत्तर १७५ इस प्रकार सानसे शिराएँ ॥

नत्र वातवहाः एकस्मिन् सकथिनि पञ्चविंशति
एतेनेतर सकथि वाहूच व्याख्यातो । विशेषतः को
ष्ठे चतुस्त्रिंशत् तासां श्राण्या गुदमेढ्रा श्रिता अष्टौ ।
द्वे द्वे पार्श्वयोः । षट् षष्टे ई तावन्त्य एवोदरे ई दश
वक्षसि १० एक चत्वारिंशद् जत्रुणाः ऊर्ध्वे तासां चतु-
र्दश १४ । ग्रीवायां ४ चतस्रः कर्णयोः ६ नव जिह्वायां
ई षट् नासिकायां ८ अष्टौ नेत्रयोः ॥

भा० उसमें वातवहा एक सकथिमें २५ पचीस इसी हिसाब से दूसरी

सकथि और दोनोंवात व्याख्या किये गये अर्थात् दो सकथि और दो वात मि-
 लके से १०० । ३ । विशेषकरके कौष्ठमें चौतीस ३५ उनमें श्रोणी पुद्-
 ङिंग इनके आश्रित आठ । ८ । दो २ पसलियों में छ पर्याठमें उतनेही उद-
 रमें दशावहास्थल में इस प्रकार ३४ एक नालीस जत्रुके ऊपर उनमें
 ग्रीवाभि, चौदह कानोंमें ४ नी जिह्वामें छ नाकमें आठ आंखोंमें ऐसे ४३
 (ख) एवं वातवहानां सपञ्च सप्तनिशानं भवन्ति । एवं
 विभागः पित्तवहानामपि विशेषस्तु पित्तवहा नैत्रयो-
 र्दश १० करणीयोर्द्वे २ एव रक्तवहा श्लेष्मवहास्तु (धी
 डश १६ ग्रीवायां करणीयोर्द्वे २) एवं शिराणां सप्तशता
 नि व्याख्यानानि ॥ २ ॥

क्रियाणां सप्तनिघान्तममोहं बुद्धिकर्मणाम् ॥ क

रोत्यन्यान् गुराणांश्चापि स्वाः शिराः पथनश्चरन् १७२
 भा० (ख) इस प्रकार वातवहा एकसी पित्तवहा है । इस प्रकार पित्तव-
 हांका भी विभाग है । परन्तु विशेषकरके पित्तवहा आंखमें दश कानों
 में दो । इस प्रकार रक्तवहा और श्लेष्मवहा है ॥ इस प्रकार सात सौ
 शिरा व्याख्या की गई हैं । अपनी शिरा में विचरता हुआ वायु क्रियाओं
 अप्रतिघात अर्थात् नष्ट नहीने देना और ज्ञानेन्द्रियों का अमोह अर्थात्
 मोह न हीने देना इनको करता है ॥ १७२ ॥

(क) क्रियाणां प्रसारणाकुञ्चनादीनाम् । अमोहं
 बुद्धिकर्मणाम् । बुद्धीन्द्रियाणां मनसो बुद्धेश्च स्वे
 स्वे विषये ज्ञानं करोतीत्यर्थः । अन्यान् गुराण् रसा-
 दिव्यायनद्वारा शरीरपोषणादीन् ।

भा० (क) क्रियाणां अर्थात् फैलाना सुकड़ना इत्यादिकों का । अमोहं
 बुद्धिकर्मणां अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों का और मनका तथा बुद्धिका अपने
 अपने विषयों में ज्ञान - करना है । और गुराण् अर्थात् एसादि धातुओं का

फैलाने के द्वारा शरीर पोषणदि को करता है ॥

यदा तु कुपितो वायुः स्वाः शिराः प्रतिपद्यते ॥ तदा

स्य विविधा रोगा जायन्ते वातसम्भवाः ॥ १७३ ॥

भ्राजिद्भृता मन्त्ररुचि मग्निदीप्ति मरोगताम् ॥ क

रोत्यन्यान् गुणांश्चापि पित्तमात्मा शिराश्चरन् १७४

(क) अरोगतां पैतिक रोगानुत्पत्तिं करोति । अन्यान् गु-
णान् मेधा बुद्धि दर्शन शक्त्यादीन् ॥

भा० जब कुपित हुवा वायु अपनी शिरामें प्राप्त होता है तब इसके वात के नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं ॥ १७३ ॥ अपनी शिरामें विचरता हुवा पित्त कान्ति और अन्नकी रुचि तथा दीप्तिमग्नि और रोगका नहीना इनको करता है । तथा और गुणोंको करता है ॥ १७४ ॥

(क) अरोगताम् अर्थात् पैतिक रोगों को न उत्पन्न करना । और गुणों को अर्थात् मेधा बुद्धि और दर्शन शक्ति इत्यादिकों को उत्पन्न करता है ॥

यदा तु कुपितं पित्तं सेवते स्ववहाः शिराः ॥ तदा

स्य विविधा रोगा जायन्ते पित्तसम्भवाः ॥ १७५ ॥

स्निहमद्गेषु सन्धीनां स्थैर्ये बलमरोगताम् ॥ क

रोत्यन्यान् गुणांश्चापि बलासः स्वाः शिराश्चरन् १७६

(क) अरोगतां श्लैष्मिकरोगानुत्पत्तिं अन्यान् गुणान् बल-
पुष्ट्यादीन् ॥

भा० जब कुपित हुवा पित्त स्ववहा शिरामें विचरता हुवा तब इसके वात के नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं ॥ १७५ ॥ स्निहमद्गेषु सन्धीनां स्थैर्ये बलमरोगताम् अर्थात् अरोगता इनको कफ अपनी शिरामें विचरता हुवा

करता है ॥ १७६ ॥ (क) अंगुली अर्थात् कफके रोगको न उत्पन्न करना ।
अन्यगुण अर्थात् बलपुष्टि आदिको करता है ॥

यदा तु कुपितः स्लेष्मा स्वाः शिराः प्रतिपद्यते ॥

तदास्य विविधा रोगा जायन्ते स्लेष्मसम्भवाः ॥ १७७ ॥

धानूनां पूरणं वरुणं स्पृशजान मसंशयम् ॥ स्वशि-
रासु चरदन्तं कुर्याच्चान्यान् गुराणपि ॥ १७८ ॥

(जन्यान् गुराणान् बलपुष्ट्यादीन्)

यदा तु कुपितं रक्तं सेवते स्ववहाः शिराः ॥ तदास्य
विविधारोगा जायन्ते रक्तसम्भवाः ॥ १७९ ॥

तत्रारुणा वानवहाः पूर्यन्ते वायुना शिराः ॥

पित्तदुर्णाश्च नीलाश्च शीता गौर्यः स्थिराः कफान् ८०

असृग्धरास्तु ता रक्ताः स्यु घ्नानान्युष्णा शीतलाः ॥

भा० जब कुपितहवा कफ अपने शिराओं में प्राप्त होता है तब इसके कफ
के नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं ॥ १७७ ॥ (क) अपनी शिराओंमें

विचरताहवा रक्त धानुषो का भरना रंग और म्यर्शका ज्ञान इनको अव-
श्य करता है तथा और गुराणको भी करता है ॥ १७८ ॥

(क) अन्य गुण अर्थात् बल पुष्टि आदिको भी करता है ॥ जब कुपित ह-
आरक्त जयनी शिराओंमें प्राप्त होता है तब रक्तसंभव विविधरोग उत्पन्न हो
ते हैं ॥ १७९ ॥ उसमें अरुणवर्णकी वानवहाः शिरा वायु म भरजाती है । औ
र पित्तसे गरम तथा नीले रंगकी होती है । और कफसे स्थिर भारी ठंडी होती है
॥ १८० ॥ तथा रक्तवहावों शिरानवज्जत गरम न ठंडी लालरंगकी होती है ।

[जय स्नायुः । तव स्नायोः स्वरूपमाह ।]

भेदसः स्नेहमादाय शिरा स्नायुत्वमाशु यात् ॥

शिराणां हि मृदुः पाकः स्नायुनान्तु ततः स्वर ॥ १८१ ॥

स्नायवो बन्धनानि स्युर्देहमांसास्थिमेदसाम् ॥
 सन्धाना मपि यत्तास्तु शिराभ्यः सुदृढाः स्मृताः ॥ १८२ ॥
 नोर्यथा फलकास्तीर्णा बन्धनैर्बहुभिर्युता ॥ नि
 युक्ताः गाधसलिले भवेद्भारसहा भृशाम् ॥ १८३ ॥
 एवमेव शरीरेऽस्मिन्यावन्नः सन्धयः स्मृताः ॥
 स्नायुभिर्बहुभिर्बद्धा स्तेन भारसहा नराः ॥ १८४ ॥

भा० अनन्तर स्नायुवों का स्वरूप कहते हैं ॥ शिरामेदके विकना पनको लेकर स्नायु होजाती हैं । शिराओं का सृदुपाक होना है और स्नायु वोंका उसे खर पाक होना है ॥ १८१ ॥ शरीर के मांस अस्थि और मेद इनके बन्धन स्नायु हैं । और सन्धियोंके भी बन्धन हैं । तथा वो स्नायु शिराओंसे दृढ किये गये हैं ॥ १८२ ॥ जैसे काष्ठकी पट्टियोंसे व्याप्त और बद्धन से बन्धनोसे युक्त नाव अथाह पानीमें छोड़ी बद्धन वोंके सहने वाली होती है ॥ १८३ ॥ इसी प्रकार इस शरीरमें जिनने स्नायु से बंधे हवे जीव कहें गये हैं । उसीसे भारको सहने वाले मनुष्य होते हैं ॥ १८४ ॥

(फलकै काष्ठपट्टैः आस्तीर्णा व्याप्ताः ।)

शतानि नव जायन्ते शरीरे स्नायवो नृणाम् ॥
 नासां विवरणं ब्रूमः शिष्याः । शृणुत यत्नतः ॥
 शारवासु षट्शतानि स्युः कोष्ठे त्रिंशत् शतद्वयम् ॥
 श्रीवांया मूर्द्धदेशे तु स्नायूनां सप्तानिः स्मृताः ॥ १८६ ॥

भा० (क) फलक अर्थात् लकड़ियोंकी पट्टियोंसे व्याप्त । मनुष्योंके शरीरमें नौसे स्नायु हैं ॥ उनका व्याख्यान कहते हैं । हे शिष्यों यत्न से सुनो ॥ १८५ ॥ शारवाओंमें अर्थात् दोहाथ और दो पावोंमें छसै ६०० (स्नायु हैं) ॥ और कोष्ठमें दोसै तीस २३० (तथा श्रीवा के ऊपर सत्तर कहें गये हैं) ॥ १८६ ॥

[तत्र शास्त्रागताः प्राह]

(क) एकैकस्यां पादाङ्गुल्यां षट् षट् तारिंशत् । तावन्त्यखतलकूर्चगुलफेषु । तायन्त्यखजङ्गयो दश जानुनि । चत्वारिंशदूरो । दशवङ्गणे । एवं सार्द्धं शतमेकस्मिन् सकथिनि भवन्ति । एतेनेतरसकथि वाहू च व्याख्यातौ ।

भा० उस्में शास्त्रामें प्राप्त स्नायुवों को कहते हैं । (क) पांच की एक २ अंगुलियों में छ २ हैं । इसतरह वो पांचों अंगुलियों में मिलके तीस हैं । और उतनीही नलुव और कूर्च तथा टकनोंमें । उतनीही अर्थात् ३० दांगमें दस घुस्नेमें चवालीस जंघामें दस वंहरणमें इस प्रकार १५० (एक सकथिमें है । इसी हिसाबसे दूसरी सकथि और दो बाहू इनमें कहे गये हैं ॥

[अथ कोष्टगताः प्राह ।]

(ख) षष्टिः कस्यां तावन्त्यख पाश्वर्योः । अशीतिः षष्ठे त्रिंशदुरसि । [अथ श्रीवोर्द्धगताः प्राह]

(ग) षट् त्रिंशद् श्रीवायाम् । चतुरिंशत्तमूर्द्धि एवं स्नायूनां नवशानानि भवन्ति । [अथ धमन्यः]

धमन्यो नाभितो जाता अत्रुविंशति संख्यया ॥

दशोर्द्धगा दशाऽधोगा शेषास्तिर्य्यगताः स्मृताः ॥ १८७ ॥

भा० अनन्तर कोष्ठमें प्राप्तों को कहते हैं ॥ (क) साठ कमर में उतनी ही पत्तलियों में ६०) तीस ३० खानी में । इस प्रकार दोसे तीस २३०) हैं । अनन्तर श्रीवाके ऊपर प्राप्त ऊवों को कहते हैं ॥ (क) छतीस श्रीवामें ३६ (चौतीस ३५ मस्तक में । इस प्रकार तीसे स्नायु हैं ॥

पुरीषशुक्रार्तवादीनधोवहन्ति । तास्तु पित्ताशयङ्गना स्त्रि
धा जायन्ते तास्त्रिशन् ।

भा० (स्व) तथा दोसेबोलतहि दोसे सीताहै दोसे जागताहै दो आँसू को धारण करनेवाली और हाँ और नों के बूधको धारण करती हैं स्तनसे मिली हुई । और वोही पुरुष के शुक्रको स्तनों के द्वारा धारण करती हैं । ये तीस हैं । इनके द्वारा उदर पसलियाँ पीठ उरू कंधा ग्रीवा शिर और बाहू ये धारण किये गये हैं । और हिलायेयी जाती हैं ॥ और अयोगत । दात मूत्र न ल शुक्र आतेव इनको नीचेकी तरफ धारण करनी है ॥ वो धमनीपित्ताशयमें प्राप्तहुई तीन प्रकार होती हैं । वोतीस हैं ।

तास्ताम्मध्ये द्वे द्वे वानपित्त कफ शोशित रसान् वहतः ।
तादश द्वे अन्ववद्दे अन्नाश्रिते द्वे कोयवहे द्वे वस्तिगते
मूत्रवहे द्वे शुक्रस्य प्रादुर्भावाय द्वे तद्विसर्गाय ते एव
नारीणामार्तव प्रादुर्भावाय तेऽपि सृजन्तश्च । द्वे स्थूला-
न्व प्रतिवद्दे पुरीषं विसृजन्तः ।

भा० उन तीसोंके बीचमें दो दो वान पित्त कफ रुधिर और रस इनको धारण करती हैं । वो दस हैं । अन्नद्वियों को धारण करनेवाली २ और आँसू से मिली हुई पानी को धारण करनेवाली दो २ । वस्ती में प्राप्त मूत्रको धारण करनेवाली दो २ । शुक्रके उत्पन्न होनेके वाली २ । और उमके त्यागके वाली दो २ । वोही और नोंका आर्तव प्रादुर्भाव होनेके वाली और उत्पन्न होनेके वाली भी । तथा दो मोटी आँसूसे बंधी हुई मलको काँड़ती हैं । अष्टावन्त्यास्तिर्यग्गताः स्वदमपर्यन्ति । एतास्त्रिंशत् एताभि रधोनाभेः पक्षाशय कटी मूत्र पुरीष वस्ति गुदमेतद् सकयीनि धार्यन्ते चाल्यन्ते च । तिर्यग्गतानान्तु चतसृणामेकैकं शतधा सहस्र

धा चोत्तरोत्तरं विभज्यन्ते । (ग) तास्त्वसङ्घीयास्ता
भिरिदं शरीरङ्गवाक्षितम् निबद्धमातनम् गवाक्षवत्
निबद्धमायतङ्गवाक्षो वातायनं यथा गवाक्षे बहूनिछि
द्राणि भवन्ति तथा अस्मिन्देहे जालवत् शिराः व्या
प्यतिष्ठन्तीति भावः निबद्धमायतङ्गवाक्षितम् ।

भा० तिरछी गई हुई आठ पसीना देती हैं । ये नीत हैं । इन्होंने नाम
के नीचे पक्काप्राय कमर मूत्र मल बलि गुद लिंग और संकाय धारण की
गई हैं । और चलाई भी जाती हैं । और तिरछी-गई हुई चारोंमेंसे एक २
सौ नरह पर तथा हजार नरह पर उत्तरोत्तर अर्थात् एकके अनन्तर एक
इस क्रमसे विभाग की गई हैं ॥ (ग) वो असंख्य हैं । उनसे शरीर
ऊरोखे के मानिन्द व्याप्त हुआ बनाया गया है । गवाक्ष के मानिन्द विस्तृत
रचा गया । गवाक्ष अर्थात् हवा आनेकी जगह । जैसे ऊरोखे में बज्जत से
छेक हीते हैं उसी प्रकार इस शरीर में जालके मानिन्द शिरा व्याप्त होकर
रहती है बना हुआ फैला ऊरोखे के मानिन्द ॥

गवाक्षाकारान्त्रनिकरयुक्तं कृतमित्यर्थः । तासां सु
खानि रोम लग्नानि यैर्मुग्धैः स्वेदः स्वानि रसज्वाभिस
त्तर्पयन्त्यन्तर्वहिश्च । तैरेवाम्यङ्गपरिषेकावगाहना
लेपनवीर्याणि त्वचि पक्षान्यन्तः प्रवेशयन्ति ।
तैरेव स्पर्शा शुभं अशुभं वा गृह्णन्ति यथा स्वभावतः
स्वानि मृणालेषु विसृज्य च ॥

भा० अर्थात् ऊरोखे के आकार आनेके समुदायो से युक्त किया हुआ
। उनके मुख रोमोंसे लगे हुवे हैं । जिन मुखोंसे पसीना निकलना है ।
और उस भीतर बाहर आस पाम सींचा जाता है । और उन्हींसे अभ्यङ्ग

परिषेक अवगाहन आलेपन इनके पके इवेदीय त्वचामे भीतर पहुँचाने हैं । तथा उन्हीसे अच्छाबुग स्पर्श लिया जाता है । जैसे स्वभाव से कमल की फूलकी डुंडीमें छेक होने हैं

धमनीनान्तघाखानि रसोयै रभितश्चरेत् ॥ १८८ ॥

पञ्चाभि भूतास्त्वय पञ्च कृत्वः पञ्चेन्द्रियम्यञ्च
सु भावयन्ति । पञ्चेन्द्रियम्यञ्चसु भावयित्वा पञ्च
त्वमायान्ति विनाशकाले ॥ १८९ ॥

(ख) धमन्यः कथं भूताः पञ्चाभि भूताः पञ्चभ्यः आ
काशादि महाभूतेभ्यः अभि समन्तान् भूताः उभयान्त्व
कं मनश्च यस्य तं पञ्चेन्द्रियं जीवात्मानम्यञ्चसु इन्द्रि
याधिष्ठानेषु श्रोत्रादिषु पञ्चकृत्वः पञ्चवारान् ॥

भा० जैसे धमनियों के छेक होते हैं । जिनके द्वारस आस पास घूमता
है ॥ १८८ ॥ आकाशादि पंच महाभूत स्वरूप धमनी पंचेन्द्रिय
अर्थात् जीवात्माकी श्रोत्रादिकोंमें पंचवार प्राप्त करती हैं । अर्थात् पर्या
यसे एकबारही प्राप्त करती हैं । पञ्चेन्द्रियोंकी पांचों में योजना करके
विनाशकाल में पंचत्वकी प्राप्त होती है ॥ १८९ ॥

इसका यह अर्थ है कि । धमनी कैसे हैं पांचों से आस पास घिरी हैं । अ-
र्थात् आकाशादि महाभूतोंसे आस पास घिरी हुई । उभयान्त्वक मनभी
जिसके उस पंचेन्द्रिय अर्थात् जीवात्माकी पांचों में अर्थात् इन्द्रियों के
अधिष्ठान श्रोत्रादिकों में पंचवार अर्थात् पर्याय से एक बार ही प्राप्त कर
ती हैं ॥

पर्यायेण त्वेकदैव भावयन्ति प्राययन्ति पञ्चेद्रि
यं पञ्चानामिन्द्रियाणां समाहारः पञ्चेन्द्रियं श्रोत्रा
दि तदुपलक्षितं कर्मेन्द्रियं मनश्च । पञ्चान् एषि

व्यादिषु । बुद्धीन्द्रिय विषयेषु तदुपलक्षितेषु हस्ता
दिषु कर्मेन्द्रियविषयेषु । मन्त्र्ये मनोविषये च भाव
यित्वा प्राप्य संयोज्येति यावत् । विनाशकाले पञ्चत्वं
आकाशादि भावं । आयान्ति प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ॥

भा० पंचेन्द्रियं । पांचों इन्द्रियों का समाहार पंचेन्द्रिय श्रीत्रादि उस
करके उपलक्षित कर्मेन्द्रिय और मनभी ॥ पांचोंमें अर्थात् पृथि
व्यादिकों में । ज्ञानेन्द्रिय विषय और उसकरके उपलक्षित हस्तादि
कर्मेन्द्रिय विषयों में और अनन योग्य मनो विषयमेंभी प्राप्त क
रके विनाशकालमें पञ्चत्वं अर्थात् आकाशादि भावको प्राप्त हो
ना है ॥

[अथ करण्डर]

महत्यः स्नायवः प्रोक्ताः करण्डरास्ता स्तुषीडश ॥

प्रसारणाकुञ्चनयो दृष्टं तासां प्रयोजनम् ॥ १६० ॥

चतस्रो हस्तयोस्तासां तावन्त्यः पादयोः स्मृताः ॥

शीवाया मपितावन्त्यस्तावन्त्यः पृष्ठसङ्गताः ॥ १६१ ॥

(क) तत्र पादहस्तगतानां करण्डराणां नखाः प्ररोहाः

शीवानि बन्धनानामधो भागगतानां प्ररोहो मेढूः पृ

ष्ठ निबन्धानां प्ररोहो नितम्ब सूक्ष्मरुदजोऽक्षस्तनयि

गदाः ॥

भा० अनन्तर करण्डर । बड़ी स्नायुओं को करण्डरा कहते हैं । दो
सोलह हैं । पसारने और सिकोड़ने में उनका प्रयोजन देखा गया है
॥ १६० ॥ शी कंडरा हातों में चार और उतनीही पैरोंमें कही गई है ॥
गर्दन में भी चार और पीठमें लगी हुई भी चार हैं ॥ १६१ ॥

(क) उनमें से हात पैरोंमें प्राप्त हुई कंडराओंके अंकुर नख हैं ।
गर्दनसे बन्धी हुई अधोभागमें प्राप्त हुई कंडराओंके अंकुर शिप्रु हैं ।

और पीठ से लगी जुद्ध के अंकुर चूतड़ मूर्ध उरुवद स्तन पिंड हैं ।

[अथ रंघ्राणि ।]

नेत्र श्रवण नासानां द्वे द्वे रन्ध्रे प्रकीर्तिते ॥ मुख
मेहन पायूना मेकैकं रन्ध्रमुच्यते ॥ १६२ ॥

दशमं मस्तके प्रोक्तं रन्ध्राणीति वृत्तं विदुः ॥ त्वी
णामन्यानि च त्रीणि स्तनयो गर्भवल्मनि ॥ १६३ ॥

भा० अनन्तर छिद्रोंको कहते हैं । आँव कान नाक इनमें दो २ छिद्र
क हे गये हैं । मुख शिग्रु गुदा इनमें एक २ छिद्र कहा है ॥ १६२ ॥
दसवां मस्तक में कहा गया है । इस प्रकार भ्रुवुओंके छिद्र जाने गये हैं
स्त्रियोंके और तीन हैं । स्तनों में दो गर्भाशय में एक ॥ १६३ ॥

[अथ स्त्रीतांसि ।]

मनः प्राणान्न पानीय द्रोष धानूप धातवः ॥ धा
नूनाञ्च मला मूत्रं मल मित्यादयः स्तनौ ॥ १६४ ॥

सञ्चरन्त हि ये श्रीर्गै स्तानि स्त्रीतांसि सञ्जगुः ॥
चंहनितानि संख्याय प्रावयन्ते नैव आधितुम् १६५

भा० अनन्तर स्त्रीतोंको कहते हैं ॥ मन प्राण अन्न जल द्रोष धातु
और उपधातु । और धातुओंके मल मूत्र मल इत्यादिक तथा स्तन
हैं ॥ १६४ ॥ जिस मांससे ये संचार करते हैं उसको स्तन कहते हैं । ये
बढ़ते हैं उनकी संख्या नहीं कह सके ॥ १६५ ॥

[अथ जालानि ।]

(क) निरन्तर रन्ध्रानि करकलिनानि समाहिताने च
जालानी वजालानि ।

जालानि तु शिरास्नायुषांसास्था मुह्वन्ति हि ॥

नानि चत्वारि चत्वारि सर्वान्येव च षोडश ॥ १६६ ॥
 (ख) नानि मणिवन्धगुद संसृतानि परस्पर निबद्धानि
 परस्पर संम्लिष्टानि परस्पर गवाक्षितानि चेति त्रैगवा
 क्षितसिद्धं शरीरम् । अयमर्थः । एकास्मिन्मणिवन्धे
 । एकज्जाले शिरसाः । अपरं स्नायोः स्तृतीयं मांसस्य
 चतुर्थमस्थः एवं चत्वारि जालानि ।

भा० (क) अनन्तर जालों को कहते हैं । निरन्तर छिन्न समूहों से बधे
 जड़े समाहित जालों के मानिन्द जाल । जाल शिरा स्नायु मांस अस्थि
 योंका उद्भव करती हैं । वो चार एक एक में होते हैं इस तरह पर वो
 सब सोलह है ॥ १६६ ॥ (ख) वो मणिवन्ध गुदमें मिले जड़े प
 रस्पर बन्धे जड़े और एक से एक मिले जड़े परस्पर गवाक्षित हैं । जिनमें
 से यह शरीर गवाक्षित सा है । यह अर्थ है । एक मणिवन्ध में एक
 जाल शिराका । दूसरा स्नायुका । तीसरा मांसका । चौथा अस्थिका ।
 इस प्रकार चार जाल हैं ॥

एतेनेतर मणिवन्धौ गुल्फौ च व्याख्यातौ । गवाक्षि
 नं विरचितं निरन्तर जालाकारं शब्दं निकरं परिकल्पि
 तमित्यर्थः ॥ [अथ कूर्चाः ।]

कूर्चाःस्युर्हस्तयोर्द्वौ तु तावन्तो पादयोरपि । ग्रीवा
 यामेक एकस्तु मेढ्रे सर्वेऽपि षट् स्मृताः ॥ १६७ ॥
 कूर्चा अपि शिरास्नायुर्मांसास्थि प्रभवाः स्मृताः ॥

भा० इसी तरह पर दूसरे मणिवन्धमें और गुल्फ में व्याख्यान किये ग
 थे । जरावे सा बनाया गया निरन्तर जालके आकार छिद्रोंका समुदाय
 से परिकल्पित है ॥ [अनन्तर कूर्चों को कहते हैं] कूर्च हानों में वो
 उतनेही पैरों में भी गले में एक शिरामें एक इस प्रकार सब छः कहे १६७

कूर्चं भी शिरा स्नायु मांस अस्थि प्रभव कहे गये हैं ॥

[अथ रज्जवः।] षष्ठवंशस्थो भयतः महन्त्यो मांस रज्जवः ॥

चतस्रो मांस पेशीनां बन्धनन्तन् प्रयोजनम् ॥ १६८ ॥

अथ सेवन्यः।] सेवन्यः सप्त तासान्तु भवेयुः पंच मस्तके।

एका श्लोक सिजिह्वाया मेका विद्वन्तता क्वचित् ॥ १६९ ॥

अथ सङ्घातः।] (क) चतुर्दशास्थां सङ्घाताः तेषामन्वयो गुल्फ-

फ जानु वंदरीषु। रग्नेनेतर संकथि बाहू च व्याख्यातौ।

त्रिकं शिरसो रेकैकम्। अत्रतु त्रिकपदेन बाहू ग्रीवास्थि

सङ्घात उच्यते।

भा० अनन्तर रज्जु कहते हैं] पीठके वांस के दोनों तरफ बड़े मांसकी रज्जु हैं। चार मांस पेशीयोंके बन्धन उनका प्रयोजन है ॥ १६८ ॥

अनन्तर सेवनी कहते हैं] सेवनी सातवी पांच मस्तक में हैं। एक शिग्रु में जीममें एक इनके बंधसेकभी मृत्युही जाता है ॥ १६९ ॥ अनन्तर संघात कहते हैं ॥ चौदह अस्थियोंके संघात हैं। (क) दो तीन गुल्फ जानू वंसा

ता इनमें हैं। इसीतरह पर दूसरी संकथि और बाहू-व्याख्या की गई। त्रिक और शिरमें एक एक हैं। यहाँपर त्रिकपदसे बाहू ग्रीवा अस्थि इनका संघात कहा है

अथ सीमन्ताः।] चतुर्दशैव सीमन्ताः कथिता मुनिपुङ्गवैः

सङ्घाताः क्षोभिता येस्तु सीमन्तान्ते प्रकीर्तिताः ॥ २०० ॥

(यै अस्थिभिः।] [अथ त्वचः।] क्षीरस्य पच्यमानस्य

यथा सन्तानिका भवेत् ॥ पच्यमानस्य शुक्रस्य रज

सश्च तथा त्वचः ॥ २०१ ॥ पूर्वोवभासिनी तासां मि

धमस्थानं च सा स्मृता ॥ [अथावमास्सनी।]

भा० अनन्तर सीमंत कहते हैं। मुनीश्वरों ने चौदह सीमन्त कहे हैं। जिनसे घातं क्षोभित होते हैं उनको सीमंत कहा है। जिन अस्थियों से अनन्तर त्वचा कटते हैं ॥ परिपाक ज्वे सुगंधकी मलाई जैसे होती है वैसेही परिपाक ज्वे सुक्र की तथा रजकी त्वचा होती है ॥ १०१ ॥ पहिली अव भासनी नाम त्वचा है। वो सिधनाम कुष्ठका स्थान कही गई है ॥ अनन्तर अव भासनीको कहते हैं

(क) भ्राजकेन पित्तेना वभासनात् । परिणाहेन विस्तारितस्य त्रीहर्विं प्रतिभागे ऽष्टादश भागः प्रमाणात्तस्याः ॥
त्रीहिरव यवः ॥ स्तसिध्म पद्मकण्टक योरधिष्ठाना ।
द्वितीया लोहिता ज्ञेया निलकालक जन्मभूः ॥

(ख) सा यव षोडश भाग प्रमाणा निलकालकन्यक्ष व्यङ्गनामधिष्ठानम् ।

भा० भ्राजक पित्तके क्षय प्रकाश होनेसे। परिणाह से विस्तार किये हुवे त्रीहिका बीसवां भाग वा अठारहवां भाग उसका प्रमाण है। त्रीहि यहां पर जब कहा गया है। वो सिध्म कंटकोंकी जगह है ॥ (ख) इसरी लोहित जाननी चाहिये। जो निलकालक की जगह है। वो जबके सोनेके हिस्सेका प्रमाण है। और निलकालक तथा न्यक्ष व्यङ्गोंका अधिष्ठान है ॥

(ग) तृतीया तु भवे च्छूता स्थान च्छर्मदलात्तस्य सा ॥
सा यवद्वादश भाग प्रमाणा च्छर्मदलाजगल्लिका मशकानामधिष्ठानम् ।

तां च चतुर्थी विज्ञेया किलासश्चित्र भूमिका ॥

(यदाष्ट भाग प्रमाणा)

पञ्चमी वेदिनी नामा पञ्चभागा प्रमाणाका ॥

विसर्पकुष्ठाधिष्ठाना श्रेया षष्ठी तु लोहिता ॥ २०१ ॥

विख्याता रोहिणी षष्ठी ग्रन्थिगराडापची स्थितिः ।

ब्रीहिमात्र प्रमाणा सा ग्रन्थिगराडापची स्थितिः ॥ २०२ ॥

(क) ब्रीहि प्रमाणा ग्रन्थिपची गलगण्डमाला बुद्ध स्त्री
पदानामधिष्ठानम् ।

भा० (ग) नीसरो श्वेता है वो चर्मदल की जगह है । वो जबके आरह वे भागके प्रमाणा है । चर्मदल भद्रगल्लिका मशफ इनकी जगह है ॥ (घ) चौथी तामाहें वो किलास और चित्रनाम कुण्डोकी जगह है । वो जबके आठवे भाग प्रमाणा है ॥ पांचवी वेदनी नाम जबके पांचवे भाग प्रमाणा है । छठी विसर्पकुष्ठाकी जगह लोहित नामवासी है ॥ २०२ ॥ अतिद्वै छठी रोहिणी ग्रन्थिगंडापचीकी जगह है । वो ब्रीहिमात्र प्रमाणा ग्रन्थिगराडापचीकी जगह है ॥ २०३ ॥ ब्रीहि प्रमाणावाली ग्रन्थि अपची गलगण्डमाला अ बुद्ध स्त्रीपद इनकी जगह है ॥

स्थूलात्वकं सप्तमी ख्याता विद्मध्यादेः स्थितिः अत्र सा ।

सा ब्रीहि द्वयप्रमाणा । तत्सर्वोक्तं प्राज्ञधरिणा स्थूला
ब्रीहि द्विमात्रयेति सप्तमि त्वचः सवृद्धिता विंशतितमभा-
गो नष्ट इत्यप्रमाणा । पश्यदप्रमाणात् अङ्गुष्ठोदरतु-
ल्यम् । यत् उक्तम् । उदरेष्वङ्गुष्ठप्रमाणां गाढ मय विधि-
दिति । एतन् प्रमाणां मांसलेषु स्थूलेषु बोद्धव्यम् । न तु
तलादस्त्वमाङ्गुल्यादिषु ॥

भा० स्थूलत्वका सातवीं प्रसिद्ध है वो विद्रीध आदिकी जगह है । वो वो ब्रीहिके प्रमाणा होती है । उसीसे प्राज्ञधरने कहा है ॥ स्थूलब्रीहिकी वो माडा से । सात भी त्वका रुड़ीगई । विंशतितमभाग अर्थात् बीसवें भाग से बहान दाते । नकि छ जबके प्रमाणा । छ जबके प्रमाणा मो

अंगुठेके उदरके तुल्य होता है । जिसेकि कहा है । उदरमें अगुष्ठ प्रमाणा
वद्धत न बंधकरे ॥ यह प्रमाणा भांसल स्थूल जगह में जानना चाहिये ।
नकि मत्तक मृधम अंगुलियों में ॥

[अथ लोमानिलोमकूप्याश्च]

अस्थो मलानि लोमानि असंख्यानि भवन्ति हि ॥

सन्निधावन्ति लोमाणि तावन्तो लोमकूपकाः ॥ २०४ ॥

अङ्गप्रत्यङ्गनिर्दृत्तिः स्वभावादेव जायते ॥ सच्चिं

वेशश्च गात्राणां मात्वास्ते कारणान्तरम् ॥ २०५ ॥

(क) निर्दृत्तिः सिद्धिः स्वभावात् ईश्वरात् । सच्चिवेशो

रचनाविशेषः ॥

भा० अनन्तर लोम और लोमकूपोंको कहते हैं ॥ हड्डियोंके मल लो
म असंख्य हैं । जितमें लोम हैं उनमेंही लोमकूप हैं ॥ २०४ ॥ अंग और
प्रत्यङ्गकी निर्दृत्ति स्वभावसे ही होती है । और गात्रोंका सच्चिवेश अ-
र्थात् कारीगरी भी इसहीमें है कोई दूसरा कारण नहीं है ॥ २०५ ॥

(क) निर्दृत्तिः अर्थात् सिद्धिः स्वभावने अर्थात् ईश्वर से सच्चिवे-
श रचना विशेष ॥

अङ्गप्रत्यङ्गनिर्दृत्तौ ये भवन्त्यगुराणाः गुराणाः ॥

मेते गर्भस्य विज्ञेया धर्म्मा धर्म्मनिमित्तजाः ॥ २०६ ॥

दन्तानां पतनं जन्म पुनः पाते त्वसम्भवः ॥ तले

ष्वनुद्भवो लोम्नामेतत् सर्व्व स्वभावतः ॥ २०७ ॥

गर्भे सासि सासि यद्भवति । तदाह ॥

भा० अंग प्रत्यंगकी निर्दृत्तिमें जो गुरा दोष होते हैं वो वो गर्भके जान
ने चाहिये धर्म और अधर्मके निमित्त से होते हैं ॥ २०६ ॥ दांतोंका गिर
ना और उत्पन्न होना तथा फिरसे गिरने में न होना । और तलुवोंमें लोम

नहाना यह सब स्वभावमैही है ॥ २०७ ॥ गर्भका महीने २ में जो होता है उसको कहते हैं ॥

गर्भाशये निपतितं यादृक् शुक्रं तथार्जवम् ॥ तादृ
गेव द्रवीभूतं प्रथमे मासि तिष्ठति ॥ २०८ ॥ मरुत्पि
नकफैर्भूतस्थः पच्यमाना द्वितीयके ॥ कलल-
स्थ महाभूतं समुदापि धनी भवेत् ॥ २०९ ॥

(क) अत्र मरुत्कफयोरपि पाकहनुत्वे नयोरत्युष्मणो
ऽनाधिकरत्वात् ॥ [यत उक्तं चरके।]

भा० गर्भाशयमें जैसा शुक्र तथा रज गिरना है वैसाही गीलासा पहि-
ले महीने में रहता है ॥ २०८ ॥ दूसरे महीने में उस स्थानमें रहनेवाले
प्रातः पित्तकफ में पकाया गया कललमें रहनेवाला महाभूतों का समु-
दाय गाढ़ा होता है ॥ २०९ ॥ (क) यहा पर वायु कफको भी पाक
हेतुत्वमें उनका उष्माकार नहीने से । जैसे किकहा है चरक में ।

भौमाध्याग्नेय वायव्याः पञ्चोष्मणाः सनाभसाः।
तृतीये मासि शिरसो हस्तयोः पादयोस्तथा ॥ २१० ॥
पिण्डिकाः पञ्च मिथन्ति सूक्ष्माश्चा वयदास्तनाः ॥
सर्वीरवङ्गान्युपाङ्गानि चतुर्थेः स्युः स्फुटानि हि ॥ २११ ॥
हृदयव्यक्तभावेन व्यज्यते चेतनापि च ॥ तस्मा
च्चतुर्थे गर्भस्तु नानावस्तूनि दान्द्व्यति ॥ २१२ ॥

भा० भूमिसम्बन्धि जलसम्बन्धि अग्निसम्बन्धि वायुसम्बन्धि आका-
शसम्बन्धि ये पांच उष्मा हैं ॥ तीसरे महीनेमें शिरका दोनों हाथोंकी
और पैरोंकी दूसररहपर पांच पिण्डिका हानी है और सूक्ष्म अणुयव हो
ते हैं ॥ २१० ॥ सम्पूर्ण अंग और उपांग चौथे महीनेमें प्रगट होते हैं ।

हृदय के प्रगट होने से चेतन भी स्पष्टमानुस होता है ॥ २११ ॥ इसीवास्ति चौथे महीने में गर्भ माना वस्तुओं की इच्छा धारता है । तिसी ही हृदयवाली औरत होती है । उसवास्ति दौहृदिनी कही है ॥ २१२ ॥

ततो हि हृदया यत् स्यान्नारी दौहृदिनी मता ॥ दौहृ
दा वसिष्ठ्या कुञ्जकुनिषण्डञ्च वामनम् ॥ २१२ ॥
विकृताक्षमनसं वा पुत्रं नारी प्रसूयते ॥ यतः स्त्री
दौहृदं प्राप्य वीर्य्यवन्नं विरायुषम् ॥ पुत्रं प्रसूयते
तस्मात् नस्ते वाञ्छित मर्षयेत् ॥ २१४ ॥ इन्द्रिया
पीस्तुती प्राच्या न्योक्तु विज्जति गर्भिणी ॥ गर्भवा-
धा भयात्तासां भिषगा हृदयदापयेत् ॥ २१४ ॥

भा० दौहृदके अवमान से कुवडा लूसा नंपुंसक वावना थुरी औरववाला या वे औरववाला इस विरिभके पुत्रको औरत जन्माती है ॥ २१३ ॥ और जैसे स्त्री दौहृदकी पांकर पराकमी दीर्घायु ऐसे पुत्रको उत्पन्न करती है ॥ इस वास्ते उसको वांछित देखें ॥ २१४ ॥ गर्भिणी जो जो खाने पीने और पहिरने की वस्तु इच्छा करे उनको गर्भवाधा के भयसे वैद्य लाके दिवावे ॥ २१४ ॥

[योक्ता सुप्रभोक्तु निव्यर्थः ।]

रा प्रासदौहृदा पुत्रं जनयेत् सुरागन्वितम् ॥ अल
ब्ध दौहृदा गर्भे लभेत्तारमनि वा मयम् ॥ २१५ ॥

येषु येष्विन्द्रियार्थेषु दौहृदे सावमानिता ॥ प्रसू-
यति सुतं लार्त्तिस्तम्भिस्तस्मिंस्तदिन्द्रिये ॥ २१६ ॥

भा० भोक्तु अर्थात् उपभोगके अर्थ ॥ वो पाई इई दौहृदवाली सुरागुक्त पुत्र उत्पन्न करती है । और नेलायजई दौहृदवाली अपनेमें कुछ मयको प्रा
प्त करती है या गर्भमें कुछ मयको प्राप्त करती है ॥ २१५ ॥ वो दौहृदने जो

इन्द्रियके अर्थोंको अचमानकी गई अर्थात् खानिकी देखनेकी इत्यादिक वस्तुओंकी चाहने पर नहीं गई वो उस उस इन्द्रियमें पीड़ा करके युक्त पुत्रको जन्माती है ॥ २१६ ॥

[सार्त्तिसव्यथामदौहृदस्थविशेष फलमाह ।]

राजसन्दर्शने यस्यादौहृदं जायते स्त्रियः ॥ अ-

र्थवन्तं महाभागं कुमारं सा प्रसूयते ॥ २१७ ॥

दुकूलपट्टकौशेय भूषणादिषु दौहृदात् ॥ अ-

लङ्कारैषिणं पुत्रं ललितं सा प्रसूयते ॥ २१८ ॥

आश्रमे संयतान्मानं धर्मशीलं प्रसूयते ॥ देव-

ता प्रतिमायन्तु प्रसूते पार्षदोपमम् ॥ २१९ ॥

भा० दौहृदका विशेष फल कहते हैं ॥ जिन औरतोंको राजाके देखने का दौहृद होता है । वह बड़ी प्रारब्ध वाला इत्यवान् पुत्रको उत्पन्न करती हैं ॥ २१७ ॥ दुकूल पट्ट कौशेय अर्थात् रेशमी कपड़ा और अलंकार इत्यादिकोंके दौहृदसे अलंकारको चाहनेवाला सुंदर पुत्रकोवो उत्पन्न करती हैं ॥ २१८ ॥ आश्रममें एकाग्र चित्तवाला धर्मशील जनती है । देवताके प्रतिमासा और प्रमथके सेवा पुत्र उत्पन्न करती हैं ॥ २१९ ॥

(क) आश्रमे तपस्विनामाश्रमेदौहृदात् पार्षदोपमं प्रमथोपमम् ॥

दर्शने व्यालजातीनां हिंसाशीलं प्रसूयते ॥ रक्ता-

क्षं लोमशं शूरं महिषामिषदौहृदात् ॥ २२० ॥

वाराहमांसे स्वसालुं शूरं संजनयेत् सुतम् ॥ मृ-

गमांसे तु तच्छीलं विक्रान्तं वनचारिणम् ॥ २२१ ॥

भा० (क) आश्रममें अर्थात् तपस्वियोंके आश्रममें । व्यालजातियों-

के दर्शन में अर्थात् सर्पव्याघ्रादिकों के देखने में हिंसा स्वभाववाला उत्पन्न होता है ॥ भैंसके मांसके दोहद से लाल आंखवाला और बहुत रोवनेवाला मूत्र ऐसे पुत्रको उत्पन्न करती है ॥ २२० ॥ सूँवर के मांसके दोहद से बहुत नींदवाला पुत्रको उत्पन्न करती है । मृगमांस में उसीका सा स्वभाववाला विक्रान्तवनमें घूमनेवाला पुत्र उत्पन्न करती है ॥ २२१ ॥

अत्रोऽनुक्तेषु यानारी दोहदं विदधाति हि ॥ शरी
राचारशीलैः सा समानं जनयिष्यति ॥ २२२ ॥

पञ्चमे मानसं षष्ठे बुद्धिश्चाति प्रबुद्धते ॥ सर्वा

गण्डान्युपाङ्गानि भृशं व्यक्तानि मममे ॥ २२३ ॥

ओजोऽष्टमे सञ्चरति माता पुत्रो मुहुः क्रमात् ॥ ते

न तो म्लानमुदितौ स्यातां जातौ न जीवति ॥ २२४ ॥

भा० इससे जो कहा नहीं गया उसमें जो औरत दोहद की धारणा करती है वो शरीरके आचार और शीलसे समानकी करेगी ॥ २२२ ॥ पाँचवें महीने में मन छूटे महीने में बुद्धि मालूम होती है ॥ सातवें महीने में सब अंग और उपांग अच्छीतरह से प्रगट होते हैं ॥ २२३ ॥ आठवें महीने में जोजमाता और लड़के में बार २ संचार करता है ॥ उससे वो म्लान मुदित होते हैं । उसमें लड़ा बालक नहीं जीता ॥ २२४ ॥

अजीवत्यष्टमे जानस्तत्रो जो नस्थिरं यतः ॥ तथा

नैर्ऋत्याय भागत्वादापये तद्वलिं ततः ॥ २२५ ॥

(नैर्ऋत्याय भागश्च बालेषु रुद्रेण दत्तः ॥)

[यत उक्तं कुमारतन्त्रे ।]

अष्टमे मासि नैर्ऋत्याय मासोदन् बलिं दापयेदिति ।

नवमे दशमे मासि नारी बालं प्रसूयते ॥ एकाद-

शो द्वादशे च ततोऽव्यन्नं विकारतः ॥ २२६ ॥

भा० आठवें महीने में हुवा नहीं जीता क्यों कि उसमें ओज स्थिर नहीं रहता । उसी सनैऋत्य के भाग होने से उसका बलि दिवावं ॥ २२५ ॥ नैऋत्य के अर्थ भाग वा नक को रुझने दिया । जैसा कि कुपारतन्त्र में कहा है ॥

आठवें महीने में नैऋत्य के अर्थ मांसोदन बलि दिवावं ॥ नवें दसवें महीने में औरत पुत्रको उत्पन्न करती हैं ॥ ग्यारहवें महीने या बारहवें महीने पुत्र जनती है । इसके ऊपर विकार से हुवा जानना चाहिये ॥ २२६ ॥

गर्भे यदङ्गं प्रथमं भवति ।- । तदाह ।

पिरा भवति चाङ्गस्य पूर्वमित्याह शोनकः ॥ शिर

स्य वोप जायन्ते प्रधानान्द्रियाणि यत् ॥ २२७ ॥

हृदयं जायते पूर्वं कृतवीर्योऽवदन्मुनिः ॥ बुद्धिश्च

मनसश्चापि यतस्तत् स्थानमीरितम् ॥ २२८ ॥

पाराशर्य्य इति प्राह पूर्वं नाभिसमुद्भवः ॥ प्राणी

यत्र स्थितो देहं वर्द्धयत्यूष्म संयुतः ॥ २२९ ॥

पाणिपादं भवेत् पूर्वं मार्कण्डेय मुनेर्मतम् ॥ देहि

नः सकलाः श्रेष्ठाः पाणिपादाश्रया यतः ॥ २३० ॥

भा० गर्भमें जो अंग पहिले होता है उसको कहते हैं ॥ अंगके पहिले शिर होता है ऐसा शोनक कहते हैं ॥ क्यों कि शिरमें ही होनी हैं मुख्य इन्द्रियें ॥ २२७ ॥ पहिले हृदय होता है । ऐसा कृतवीर्य्य मुनि कहते हैं । क्यों कि बुद्धि और मनका भी वोही स्थान कहा गया है ॥ २२८ ॥ पाराशर्य्य ऐसा कहते हैं कि पहिले नाभि ही होती है । जिसमें प्राण उष्मा हुवा देहको बढ़ाता है ॥ २२९ ॥ ज्ञात पांव पहिले होते हैं ऐसा मार्कण्डेय मुनिका मत है । क्यों कि देह की संपूर्ण चेष्टा हाथ पावोंके आश्रय होती है ॥ २३० ॥

प्रथमं जायते कोष्ठं ततः सर्वाङ्गसम्भवः ॥ एतच्च

कथयामास गौतमो मुनिपुङ्गवः ॥ २३१ ॥ सर्वा-

त्वङ्गन्युपाङ्गानि युगपत् सम्भवन्ति हि ॥ सूक्ष्म
 त्वान्नोपलभ्यन्ते मतं धन्वन्तरे रिदम् ॥ २३२ ॥
 आमस्यानुफले भवन्ति युगपत् मांसास्थिमज्जादयो ।
 लक्ष्यन्ते न पृथक् पृथक् तनुतया पुष्टास्तएव स्फुटाः ॥
 एवं गर्भसमुद्भवे त्ववयवाः सर्वे भवन्त्ये कदा । लक्ष्याः
 सूक्ष्मनयान्ते प्रकटता मायान्ति वृद्धिङ्गताः ॥ २३३ ॥

भा० पहिले कोष्ठ होता है क्यों कि उससे संपूर्ण अंगकी उत्पत्ति ही होती है इस प्र-
 कार मुनिश्रेष्ठ गौतमजी महाराज ने कहा है ॥ २३१ ॥ सब अंग और उपां-
 ग एक साथ ही उत्पन्न होते हैं । सूक्ष्म होनेसे नहीं मालूम होता यह धन्वन्त-
 रिका मत है ॥ २३२ ॥ आमके छोटे फलमें एक साथ ही मांस अस्थिमज्जा
 दिक् होते हैं । परन्तु अलग अलग नहीं मालूम होते बहून सूक्ष्म होनेसे । और
 बोली पुष्ट होवे स्फुट मालूम होने है ॥ २३३ ॥

(क) मज्जादयः इत्यादि शब्देन त्वक्षेपार मज्जत्वगङ्गु-
 र वृत्तानि गृह्यन्ते ॥ (ख) अथ शरीरे पितृज मातृ-
 ज रज्जात्मजा भागा उच्यन्ते । तत्र-

केशाश्च श्लेशु च लोमानि नखा दन्ताः शिरास्तथा ॥
 धमन्यः स्नायवः शुक्रमेतानि पितृजानि हि ॥ २३५ ॥
 मांसासृक् मज्जमेदांसि यकृन् स्निहान्त्र नाभयः ॥
 हृदयञ्च गुदञ्चापि भवन्त्येतानि मातृजः ॥ २३६ ॥

भा० ऐसे ही गर्भके उत्पन्न होने में सब भव यव एक साथ ही होते हैं । वे
 सूक्ष्म होनेसे प्रकट नाकी नहीं प्राप्त होने और जब पुष्ट होते हैं तब देखने
 योग्य होते हैं ॥ २३४ ॥ (क) मज्जादय इत्यादि शब्दसे त्वचा केशर मज्जा
 अङ्गुणदिक लिये गये हैं । (ख) अनन्तर शरीर में पितृज मातृज रसज आ-

त्मज भागोंको कहते हैं ॥ उसमें केश श्मश्रु लोम नख दांत और शिरा तथा ध-
मनि स्त्रायु शुक्र ये पित्तज हैं ॥ २३५ ॥ मांस रुधिर मज्जा मेद यकृत स्नि-
ह आंत नाभि हृदय गुदा ये माता सेवनी हैं ॥ २३६ ॥

शरीरोपचयो वर्णो बलं देह स्थिति स्तथा ॥ रसादि

तानि जायन्ते भिषजो मुनयो जगुः ॥ २३७ ॥ ज्ञानं

विज्ञानमायुश्च सुखदुःखादिकं तथा ॥ इन्द्रिया

णि च सर्वाणि भवन्त्ये तानि चात्मनः ॥ २३८ ॥

(क) दुःखादिकमित्यादि शब्देन नानायोनिजन्मादिकं
मुच्यते । आत्मनः आत्मसन्निकर्षात् नत्वात्मनो जा
यन्ते आत्मनो निर्विकारात् प्रकृतिभावानु पेतः ॥

भा० शरीर की दृष्टि वर्ण बल और देहकी स्थिति ये रसही से उत्पन्न होती हैं
ऐसा वैद्य मुनि कहते हैं ॥ २३७ ॥ ज्ञान विज्ञान आयु और सुख दुःख
तथा सम्पूर्ण इन्द्रियां ये अपनी हैं ॥ २३८ ॥ (क) सुख दुःखादि दु-
स शब्द से नाना योनि के जन्मादिक कहे हैं ॥ आत्मनः अर्थात् आत्मा
के सम्बन्ध से न कि आत्मा से उत्पन्न होता है । आत्माका निर्विकार होने
से प्रकृति भाव से मिला हुआ है ॥

(गर्भस्य किं किं विशिष्टोपकारकं तत्त दाह ।)

अग्नीत्तोमौ मही वायुर्नभः सत्वं रजस्तमः ॥ पञ्चै

न्द्रियाणि भूतात्मा गर्भं सञ्जीवयन्ति हि ॥ २३९ ॥

(क) अग्निरत्र पाचका लोचक रज्जक आजक साधका
नाम् तथा पाञ्चभौतिकानां तथा सप्तधातु गतानामग्नी
नाम् । शक्तिरूपतया वास्थिती वाचाधिदेवत्वं प्राप्ति यो-

गर्भके बरा २ अधिक उपकार कहें उसको कहते हैं ॥ अग्नि चन्द्र एखी वा
यु आकाश और सन्व रज तम तथा पांच इन्द्रियों और भूतात्मा गर्भकी जिवानि
हैं ॥ २३६ ॥ (क) अग्नि यहाँपर पाचक आलाचक रजक भ्राजक साध
क इनकी तथा पंच महाभूत सम्बन्धियोंकी और सप्रधान् अग्नियों की
शक्तिरूप करके ठहरा हुआ वाचाके अधिदेवत्व को प्राप्तहुवा जानना चाहि
ये

इव्यः ॥ (ख) स पाचकादिकर्मणा जीवयति सोमश्च
पञ्चात्मक प्लक्ष्म रस शुक्रादीनां सोमात्मकानां भावा-
नां रसेन्द्रियस्य च शक्तिरूपतया वस्थितो मनसश्चाधि-
दैवत्वं प्राप्तो वा इव्यः । (ग) स च सौम्य धातो रोजः प्र-
भृतेः पोषणेन यवनपाचकसंशुष्क भागस्याद्वेता विधा-
नेन जीवयतीति शेषः ।

भा० (ख) वा पाचकादि कर्मों से जिवानाहै । सोमभी पंचात्मक प्लक्ष्म
रस शुक्रादि सोमात्मक भावोंका रसेन्द्रियका भी शक्तिरूप कर
के ठहराहुवा मनके अधिदेवत्वको प्राप्तहुवा जानना चाहिये ॥

(ग) वा सौम्य धातु औज प्रभृतिका पोषणके द्वारा अर्थात् वायु अग्नि
से सृष्टके जवे भागकी आर्द्रताके विधानसे पोषणकरनाहै ।

मही च जलेन क्लिन्नस्यापि कठिन विधानेन वपुर्दोष
धानुमलाङ्गणपाङ्गुदीनां सञ्चारणेनोच्छ्वास निःश्वा
साभ्यां मनोरूपतया परिणतं जीवात्मनः शरीरान्तरे
जीवनग्रहण मोक्षणे हेतुरिति तदपि जीवयति पञ्चे
न्द्रियाणि श्रोत्रत्वङ् नेत्रजिह्वा घ्राणानि प्राण्यदिग्रह-
णकर्मणा ॥

भा० पृथ्वी भी जलसे किन्न हवका भी कठिन विधानसे शरीर के शेषधातु मल और अंगोपाङ्गुदिकों का संचारण से तथा उच्छ्वास निःश्वासां के द्वारा मनोरूप करके परिणामकी प्राप्त जीवात्मा के शरीर के बीच में जीवन प्रणाली मोक्षणाका हेतु है । वे भी जीवता है पंचेन्द्रियों की श्रोत्र त्वचा । नेत्र जिह्वा घ्राणोंको शब्दादियों के ग्रहणाकर्मसे ॥

(घ) भूतात्मा कर्मपुरुषः स चाशेषस्यैव राशेश्चैतन्य हेतुर्जीवयतीति । [अपरं गर्भस्य जीवनीपायमाह]

गर्भस्य नाभिनाड्या तु नाडी रसवहा स्त्रियाः ॥

संलग्ना तेन गर्भस्य वृद्धिर्भवति नित्यशः ॥ २४० ॥

निःश्वासोच्छ्वाससंक्षोभस्वप्नांशान् सांसिधिगच्छति ।

मातुर्निश्वासितोच्छ्वाससङ्गोभस्वप्नसम्भवात् २४१

(क) सङ्गोभः सञ्चलनं माना निश्वासादिकायाश्चेष्टाः करोति तास्ता गर्भोऽपि करोतीत्यर्थः ॥

भा० (घ) भूतात्मा कर्मपुरुषो सम्पूर्णाशिका चैतन्यकारणा जीवन करता है । गर्भके नाभिकी नाडिसे औरतोंकी रसवहा नाडी मिली है उससे प्रतिदिन गर्भकी वृद्धि होती है ॥ २४० ॥ माताके निश्वासश्वाससे और उच्छ्वास संचलन तथा स्वप्न इनके संभवसे निःश्वास उच्छ्वास संक्षोभस्वप्नांश इनको वह प्राप्त होता है ॥ २४१ ॥

(क) अर्थात् माताके सांस लेनेसे गर्भसांस लेता है उसके सोनेसे वो सोता है उसके चलने फिरनेसे वह चलना फिरता है ॥ संक्षोभ अर्थात् हिलना ॥

[अथ गर्भवृद्धेहेतुमुपायमाह ।]

गर्भस्य नाभिमध्ये तु ज्योतिःस्थानं ध्रुवं स्मृतम् ॥

तत्रा धमति वातश्च देहस्तेनास्य वर्द्धते ॥ २४२ ॥

उष्णता सहितश्चापि वायव्यस्य मारुतः ॥ कर्ष्वन्ति-

र्यगधस्ताच्च स्रोतान्ति तु यथा तथा ॥ २४३ ॥

(क) यथादास्यति विस्तारयति । तथा तथा देही वर्द्धयति इति पूर्वगान्वयः । दृष्टिरोम कूपानामवृद्धिमाह । दृष्टिश्च रोमकूपाय न वर्द्धन्ते कदाचन ॥ ध्रुवारीयतानि मर्त्यानामिति धन्वन्तरे मृतम् ॥ २४४ ॥

भा० अनन्तर गर्भवृद्धि के कारण उपाय की कहते हैं ॥ गर्भकीनाभि के बीचमें ज्योतिस्थान कहा गया है । जब वायु उसको धींकता है तब इसका देह बढ़ता है ॥ २४३ ॥ उष्ण करके सहित भी वायु ऊंचा नीचा तिरछा जैसे तैसे इसको दारण करता है ॥ २४३ ॥

(क) जैसे जैसे दारण करना है अर्थात् विस्तार करता है वैसे व देह बढ़ती है । इस प्रकार पूर्वके साथ अन्वय है ॥ दृष्टिरोमकूपों की वृद्धि कहते हैं । दृष्टि और रोमकूप ये कभी भी नहीं बढ़ते । क्योंकि मनुष्यों के ये सदासे ही ऐसा धन्वन्तरि कामत है ॥ २४४ ॥

[नखकेशानां सदावृद्धिमाह]

शरीरे क्षीयमारोऽपि वर्द्धते ह्याविमौ सदा ॥ स्वभावप्रकृतिं कृत्वा नखकेशाविति स्थितिः ॥ २४५ ॥

(प्रकृतिंकृत्वा कारणं कृत्वा स्थिति मर्यादा) ॥

[अचेतनान्यङ्गान्याह]

चेतनानामधिष्ठानं मनोदेहश्च सेन्द्रियः ॥ केशलोमनखाग्रान्तर्मलद्रव्यगुरोर्विना ॥ २४६ ॥

भा० नखकेशोंकी सदावृद्धि कहते हैं । शरीर के क्षीय होनेपर भी ये दो सदा वर्द्धते हैं । स्वभाव प्रकृतिको करके अर्थात् कारण करके नखकेश इस प्रकार वर्द्धते हैं ॥ २४५ ॥ अचेतन अंगोंकी कहते हैं ॥ चेतनोंका अधिष्ठान मन और इन्द्रियों के साथ देह मलद्रव्यगुणोंके बिना केश लोम नख

के अग्रपर्यन्त है ॥ २४६ ॥ गर्भको वानमल मूत्र के नकरने में कारण कहते हैं ॥

[गर्भस्य वानविणामूत्रोत्सर्गीकरणो कारणमाह]

वाताल्पत्वादयोगाच्च वायोः पक्वाण्यस्य च ॥ वा
तमूत्रपुरीषाणि गर्भस्थो न विमुञ्चति ॥ २४७ ॥

(अयोगात् । दूषद्योगात् ।) गर्भरोदने कारणमाह ।

जरायुणां मुखेच्छन्नेकगठे च कफवेष्टिते ॥ वायां
मार्गनिरोधाच्च न गर्भस्थः प्ररोदति ॥ २४८ ॥

भा० पक्वाण्य के वात के अल्प होने में तथा वायु के थोड़े होने से वात मूत्र मलकी गर्भमें रहनेवाला नहीं छोड़ना ॥ २४७ ॥ अयोगसे अर्थात् थोड़े योगसे ॥ गर्भके नरुनेका कारण कहते हैं । गर्भाण्य से मुख छका रहने और कफसे कगठ वेष्टित होने में वायुका मार्ग रुकने से गर्भ में रहने वाला नहीं रोता ॥ २४८ ॥

[अथ गर्भवती कृत्या कृत्यानि ।]

गुर्विणी प्रथमा दहः प्रहृष्टा भूषिता शुचिः ॥ भवे
च्छुक्ताम्बरधरा युरुविप्रार्च्चने रता ॥ २४९ ॥ भोज्य
न्तुमधुरप्रायं स्निग्धं हृद्यन्स्वल्पं ॥ संस्कृतं तीपती
यन्तु नित्यमेवोपयोजयेत् ॥ २५० ॥ गुर्विणी नतु कु
र्वीति व्यायामं मयतर्पणम् ॥ च्यवायञ्च न सेवेत न
कुर्यादिति तर्पणम् ॥ २५१ ॥

भा० अनन्तर गर्भवतीके कृत्य और अकृत्योंकी कहते हैं ॥ गर्भणी पहिले दिनसे हर्षयुक्त भूषणोंसे युक्त पवित्ररहें और श्वेतवस्त्र की धारण करने

वाली तथा गुरु ब्राह्मणोंकी पूजामें तत्पर होवे ॥ २४६ ॥ और भोजन मधुर प्राय स्निग्ध स्वादिष्ठ हलका संस्कार किया हुआ और दोपनीय ऐसे भोजन को निन्द्य उपयोग करें अर्थात् भोजन न करें ॥ २५० ॥ गर्भिणी व्यायाम अर्थात् कसरत और उपनर्षण इनको न करे तथा व्यनाय अर्थात् मैथुन इमको भी न करे और वज्रत तृप्ति भी न करे ॥ २५१ ॥

रत्नौजागरां शोकं ध्यानस्यारोहरां तथा ॥ रक्तमोक्षं वेगगेधं न कुर्यादुत्कटासनम् ॥ २५२ ॥ दोषाभिधातैर्गर्भिताया यो यो भागः प्रपीड्यते ॥ स स भागः प्राणोस्तस्य गर्भस्थस्य प्रपीड्यते ॥ २५३ ॥ मलिनां विह्वताकारां हीनाङ्गीन् स्पृशेत् स्त्रियम् ॥ न निघ्नेदपि दुर्गन्धं न पश्येन्नयना अप्रियम् ॥ २५४ ॥ वचांमि नापि शृणुयात्करोयौ रप्रियाणि च ॥ नान्तर्युषितं शुष्कं भुञ्जीत कथितं न च ॥ २५५ ॥

भा० रत्न में जागरा शोक और सवारी का चढ़ना तथा कस्तूरी के चोदने के कारणों का ऐकना और उकड़ बैठना इनको भी गर्भिणी न करे ॥ २५२ ॥ दोष और अभिधात से जो २ भाग गर्भिणी का पीड़ित होता है वो २ भाग उस गर्भ में रहने वाले बालक का भी पीड़ित होता है ॥ २५३ ॥ मलीन विह्वत आकार वाली हीन अंग वाली ऐसी स्त्री को स्पर्श न करे । दुर्गन्ध को न सूँघे और नेत्रके अप्रिय को न देखे ॥ २५४ ॥ कानों की अप्रिय धाराओंको भी न सुने । आसी सूखा जोष दिया हुआ ऐसे भोजनको भोजन न करे ॥ २५५ ॥

चैत्यपमशानं वृक्षोश्च भावांश्चाप्ययशस्करान् ॥
वह्निर्निष्कामगां क्रोधं भून्यागारञ्च वर्जयेत् २५६
नैत्रैः नून्यात्तत्कुर्याद् येन गर्भो विनश्यति ॥ नै

लाभ्यद्भोगेद्वर्तनञ्च नात्यर्थं कारयेदपि ॥ २५७ ॥
 नामृदास्तरणं कुर्यान्नात्युच्चं शयनासनम् ॥ एतां
 स्तु नियमान् सर्वान् यत्नान् कुर्वीत गुर्विणी ॥ २५८ ॥

भा० चैत्य श्मशान वृक्ष और अपशको करने वाले पदार्थ । तथा वा
 स्तर का जाना क्रोध और सूनेमकान , इनको त्यागदेवे ॥ २५६ ॥ उच्च
 स्तर से नबोले और उसको नकरे जिस्स गर्भ नष्ट होवे । तेलका लगाना उ
 वटना इनको बहुत नकरे ॥ २५७ ॥ चुभने योग्य विस्तरानकरे । तथा
 बहुत ऊंचेपर शयन आसन नकरे । इन सब नियमों को गभीरी यत्न से
 करे ॥ २५८ ॥

[अथ प्रसवमासानाह ।]

नवमे दशमे मासि नारी गर्भं प्रसूयते ॥ एकाद
 शो द्वादशे वा ततोऽन्यत्र विकारतः ॥ २५९ ॥

[अथ मृतिका गृहकृतिः ।]

अष्टहस्तायतञ्चारु चतुर्हस्त विणालकम् ॥ आ
 चीद्वारमुदगुद्वारं विदध्यान् मृतिका गृहम् २६०

भा० अनन्तर बालक होनेके महीनोंको कहते हैं ॥ स्त्री नवम दशम मा
 स में बालकको जनती है ॥ अथवा ग्यारह बारह मासमें पु किं उन्प
 न्नकरती है । उसके ऊपर विकार से होता है ॥ २५९ ॥ अनन्तर मृति
 का गृहकी आकृतिकहते हैं ॥ अष्ट हाथ बड़ा चार हाथ लंबा सुन्दर
 परब ऊपर दरवाजा ऐसा मृतिका घर बनावे ॥ २६० ॥

[असन्न प्रसवायाः लक्षणमाह ।]

यानि हि शिथिले कुक्षौ मुक्ते हृदयबन्धने ॥ मरु
 ले जयने नारी विज्ञेया प्रसवोन्मुक्ता ॥ २६१ ॥ आ
 सन्न प्रसवायास्तु कटीष्ठस्तु सम्प्रथम ॥ भवेत्

सुहः प्रवृत्तिश्च मूत्रस्य च मलस्य च ॥ २६२ ॥

[अथासन्नप्रसवाया उपचारः।]

तैलेनाभ्यक्तगात्राणां संस्नाता मुष्णा वारिणा ॥ च

वागूम्याययेत् कौषां मात्रया घृत संयुताम् ॥ २६३ ॥

कृत्वापधानि मृदुभिर्विस्तीर्णैश्च शयने शनैः ॥ आमु-

ग्नसकथि चानाना नारी तिष्ठे द्वयथान्विता ॥ २६४ ॥

भा० आसन्न बालक होने वाली का लक्षण कहते हैं ॥ कृष्णके होते होने में और हृदयबन्धन के छूटने में तथा कटिदेश में शूल होनेमें निकट प्रसव होने वाली स्त्री जाननी चाहिये ॥ २६१ ॥ आसन्न प्रसवके कटिपीठ इसमें पीड़ा और बार बार मल मूत्र की प्रवृत्ति ये होती हैं ॥ २६२ ॥

अनन्तर आसन्न प्रसवाका उपचार कहते हैं ॥ उपरि कोनेल लगाकर गरमयानी से स्नान की हुई घृत से मिले हुवे कुछ गरम यवागू को मात्रा से पिला जावे ॥ २६३ ॥ जो योंको न सिक्कुड़के उत्तान पीड़ाकरके युक्त स्त्री नह ॥

(आमुग्नसकथि आसङ्गेचितोऽस्ति।) अथ जनयित्री।]

चतस्रोऽशङ्कनीयाश्च स्वावने कुशलाहिताः ॥ २६५ ॥

परिचरे युक्ताः सम्यक् छिन्न नखाः स्त्रियः ॥ २६५ ॥

[अथ जनयित्री कृत्यम्।]

अपत्यमार्गं तैलेन समभ्यज्य समन्ततः ॥ सका तु

नासु सुभगे प्रवाहस्वेति नां वदेत् ॥ २६६ ॥

भा० अनन्त दाईको कहते हैं ॥ चार अशंकनीय और हित स्वावने में कुशल दूढी और नखसे रहित दो दाइयां सेवाकरें ॥ २६५ ॥

[अनन्तर दाइयों का कृत्य कहते हैं।]

गर्भमार्गके आसयासनेल चुपड़के। एक उनमेंही सुभगे प्रवाहरा कर एसा
उसको कहै ॥ २६६ ॥

अव्यथामा प्रवाहिष्ठाः प्रवाहेधा व्यथा यदि ॥ प्रवा
हेयाः शनै पूर्वं प्रगाढञ्च ततः परम् ॥ २६७ ॥ ततो
गाढतरं गर्भे योनिद्वार मुपागति ॥ २६८ ॥ अपरास
हितो गर्भो यावत् पतति भूतले ॥ २६९ ॥

[व्यथारहितायाः प्रवाहराण्यद्वै गुण्यमाह ।]

मूकं वा बाधिरं कुब्जं श्वासकासक्षयाच्चितम् ॥

रूते स्वस्ततनुं बालककाले तु प्रवाहराणम् ॥ २६९ ॥

इति श्रीमिश्रलटकन तनय श्रीमन्मिश्र भाव वि
रचिते भावप्रकाशे गर्भप्रकरणं द्वितीयम् ॥ २ ॥

भा० प्रवाहरा अर्थात् पीछेसे दबाना । व्यथा नहोती प्रवाहरा न करे । और यदि व्यथा होती प्रवाहरा करे । पहिले धीरे २ प्रवाहरा करे उसके अनन्तर जोरसे करे ॥ २६७ ॥ और जब गर्भ योनि द्वारमें आ जावे तो उससे भी अधिक प्रवाहरा करे । जब तक नालके साथ गर्भ भूमिपर गिरे तब तक प्रवाहरा खूब जोरसे करे ॥ २६८ ॥ व्यथा रहित के प्रवाहरा से जो नुकसान होता है उसको कहते हैं । शूङ्गा या यक्षिरा कुबड़ा अथवा श्वासकास क्षयसे युक्त । अकालके प्रवाहरासे एत प्रकारका और ध्वस्त शरीर बालकको उत्पन्न करती है ॥ २६९ ॥

इति श्रीमिश्रलटकन के पुत्र श्रीभावमिश्र का विरचित भावप्रकाश में दूसरा बालक का प्रकरण समाप्त ॥ २ ॥ ❀

[अथ बालस्य जन्मांतर विधिः]

अथ बाले समुत्पन्ने विदधीत विधिं ततः ॥ यथेव

कुलवृद्धा स्त्रीव्यवहार परम्परा ॥ १ ॥

[अथ प्रमृताया नियमानाह ।]

प्रमृता हितमाहारं विहारञ्च समाचरेत् ॥ व्यायामं

मैथुनं क्रोधं शीतमेवां विवर्जयेत् ॥ २ ॥ मिथ्याचा

रान् स्तूतिकाया थो व्याधिरुपजायते ॥ स कृच्छ्रसा

ध्योऽसाध्यो वा भवेत्तत्पथ्यमाचरेत् ॥ ३ ॥

भा० अनन्तर बालक के जन्म होने के अनन्तर की विधी कहते हैं ॥ अनन्तर बालक होवे पर कुलकी वृद्ध स्त्री के

अनुसार विधिकरे ॥ १ ॥ [अनन्तर जन्मा के नियम कहते हैं]

जन्मा हित आहार और विहार को करे । श्रम मैथुन क्रोध मेवन छोड़ देवे ॥ २ ॥ विरुद्ध आचार से जन्मा को जो व्याधि होती है ॥

वो कष्ट माध्य या असाध्य होती है । इस वास्ति पथ्य करे ॥ ३ ॥

[प्रमृताया नियमसमयाऽवधिमाह ।]

सर्वतः परिशुद्धा स्यात् स्निग्धं पथ्याऽल्पभोजना ॥

स्विदाभ्यङ्ग परानित्यं भवेन्मासं मनन्दिता ॥ ४ ॥

(क) सर्वतः परिशुद्धा तु अवसृष्ट दुष्टरुधिरां अतन्द्रिता

सावधाना ॥

प्रमृता सार्द्धमासान्ते दृष्टे वा पुनरार्त्तवे ॥ सूति

काना महीना स्यादिति धन्वन्तरेर्मतम् ॥ ५ ॥

भा० अनन्तर जन्मा के नियम समय की अवधि कहते हैं ॥ एक मास पर्यंत जन्मा का दुष्ट रुधिर निकले और माथ घटके हिनु भोजन करे ॥

तेलकालगाना पसीना सिबाना रोज करे और सावधान रहे ॥ ४ ॥ -मर्दनः परिशुद्धा अर्थात् निःस्वन दुष्ट रुधिर अतन्द्रित अर्थात् सावधान ।

यदि जन्मा डेढ़ महीने के बाद रजस्वला हो तो जन्मा पने से हीन होती है वह धन्वन्तरेका मत है ॥ ५ ॥

उपद्रवां विशुद्धाञ्च विज्ञाय वरवर्शिनीम् ॥ ऊ-
र्द्धं चतुर्थी मासेभ्यो नियमं परिहारयेत् ॥ ६ ॥

[अथ स्तन्यस्वरूपमाह।]

रसप्रसादो मधुरः पक्वाहार निमित्तजः ॥ कृतस्नाद्दे
हान् स्तनो प्राप्तः स्तन्यमित्यभिधीयते ॥ ७ ॥

(रसप्रसाद रसस्य सारः।) [स्तन्यस्य प्रवृत्तिमाह।]

स्तन्यं त्रिरात्रान् स्त्रीणां वा चतूरात्रादनन्तरम् ॥ प्र
वर्तयन्ति विवृता धमन्या हृदयेः स्थिताः ॥ ८ ॥

भा० सुहागवाली को उपद्रव से हीन और विशुद्ध देखके। चार महीनेके वा
द नियम खुड़ा देवे ॥ ६ ॥ [अनन्तर दूधका स्वरूप कहते हैं]

रसका सार मधुर पक्का आहार से उत्पन्न होता। सम्पूर्ण शरीर से स्तनमें पहुंच
ना दूध कहाना है ॥ ७ ॥ (रसप्रसाद अर्थात् रसका सार ॥) दूधके निक
लनेकी कहते हैं। स्त्रियों का तुर्गंध तीन या चार दिनके बाद हृदयमें रहने वा
ली फैली हुई धमनियां निकालती हैं ॥ ८ ॥

[अथ स्तन्यप्रवृत्तिमाह।]

पयःपुत्रस्य संस्पृशीद्दृशीनात् स्पृशीनादपि ॥ ग्रह-
णादस्य रोजस्य शुक्रवत्सं प्रवर्तते ॥ ९ ॥ त्वेहो
निरन्तरस्तस्य प्रवाहे हेतुरुच्यते ॥

[अथ स्तन्यस्याल्पतेहेतुमाह।]

अवात्सल्याद्भयाच्छोकात् क्रीधादत्यय तर्पणात् ॥
स्त्रीणां स्तन्यं भवेत्स्वल्पं गर्भान्तर विधारणात् ॥ १० ॥

[अथ स्तन्यस्य वृद्धिहेतुमाह।]

भा० अनन्तर स्तन्यकी प्रवृत्तिकी कहते हैं ॥ दूध पुत्रकी छाती से लगाने से
देखने से । या छातीके पकड़ने से अथवा चूचियोंको छूनेसे श्रुतिके मानिंदनि
कलती है ॥ ९८ ॥ प्रेम उसके निरन्तर निकलनेमें कारण कहा है ॥
अनन्तर दूधके उत्पन्न होनेमें कारण कहते हैं ॥ प्रेमके नहोनेसे भयसे
शोकसे क्रोधसे और तृप्तिके नहोनेसे ॥ स्त्रियोंका दूध अल्प होता है । अ-
थवा दूसरे गर्भको धारण करनेसे अल्प होता है ॥ ९० ॥

शालिषष्ठीक गोधूमान् मांस क्षुद्र यवानपि ॥ का
लशाक मलावृञ्च नारिकरं कसेरु काम ॥ ११ ॥

शृङ्गाटकं वरींचापि विदारी कन्द मेव च ॥ लसुनं
दुग्ध वृद्धौ स्त्री सेवेन सुमना भवेत् ॥ १२ ॥ कमल
मस्य तरण्डुलानां कल्कं या क्षीरि पेधितम् पिवन्ति ॥

सा भवति भृशं तरुणी क्षीरभरे गौव तुङ्ग कुचयुगला ॥
॥ १३ ॥ [कलमो धान्यविशेषस्तस्य लक्षणमाह ।]

भा० अनन्तर दूधके बढ़नेका कारण कहते हैं । काल शाक इसको प्राच्य
शाक भी कहते हैं ॥ और गोंडदेश में नरिका प्रसिद्ध है । और कदू नारिकेल
कसेरु ॥ ११ ॥ सिधाड़े शनावरी विदारीकन्द लहसुन । इनको स्त्री दुग्ध
वृद्धिके अर्थ सेवनकरे उससे भरइवे स्तनवाली होती है ॥ १२ ॥ कलम
एक किसिमका कश्मीर में बड़ा धान होता है उसके चावलोंको दूधसे
पीसइवे कलमको जो पीती है । वानरुणी अत्यन्तदूधके भारसेही उन्नत
दोनों कुचवाली होती है ॥ १३ ॥ कलमधान्य विशेष है उसका लक्षण
कहते हैं ॥

कलमः कलिविख्यातो जायते स च हृद्दने ॥

काश्मीरदेश एवाक्तो महानण्डुल संज्ञकः ॥ १४ ॥

विदारिकन्दस्य रसं पिवेत् स्तन्यस्य वितृद्ध्यै ॥ त-

चूर्णं तस्य वृद्ध्यर्थं पिवेद्वा क्षीरसंयुतम् ॥ १५ ॥

कलमकलि नामसे प्रसिद्ध बोंबडे वनमें होता है । काश्मीर देशमें महा तं
हुल नामसे कहते हैं ॥ १४ ॥ दुग्धकी दृष्टिके अर्थ विदारीकंद का रस
पीवे ॥ अथवा उसका चूर्ण दुग्धदृष्टिके अर्थ दूधके साथ पीवे ॥ १५ ॥

[अथ स्तन्यस्य दुष्टहेतुमाह ।]

धात्र्या गुरुभिराहारैर्विहारैर्दोषलेस्तथा ॥ देहे

दोषाः प्रकुप्यन्ति ततःस्तन्यं प्रदुष्यति ॥ १६ ॥

मिथ्याहारविहारिण्या दुष्टा घातादयः स्त्रियाः ॥

दूषयन्ति पयस्तेन शरीरे व्याधयः शिशोः ॥ १७ ॥

भा० अनन्तर दूधके दुष्ट होनेका कारण कहते हैं ॥ गरिष्ठ और दोषल
आहार विहारोंसे धायके शरीरमें दोष प्रकोपको प्राप्त होते हैं । उस्से दु
ग्ध बिगड़ता है ॥ १६ ॥ विरुद्ध आहार और विहार वाली स्त्रीके दुष्ट वा
ताविक दूधको बिगाड़ते हैं । उस्से बालकके शरीरमें रोग होते हैं ॥ १७ ॥

[अथ दुष्टस्तन्यस्य लक्षणमाह ।]

कषायं सलिलं स्रावि स्तन्यं मारुतदूषितम् ॥ पिता

दस्त्वञ्च कटुकं रज्याऽम्भसितु पीतिका ॥ १८ ॥

कफदुष्टन्तु यतोये निमज्जति च पिच्छिलम् ॥ द्व

न्द्वजन्तु द्विलिङ्गं स्यात् त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् ॥ १९ ॥

भा० अनन्तर दुष्टदुग्धका लक्षण कहते हैं ॥ कसेला पानीमें तैरने वाला
सेसा दुग्धवायुसे दूषित होता है । पित्तसे खट्टा कड़वा जलमें डालनेसे पीली
लकीर होती है ॥ १८ ॥ और जो दुग्ध कफसे दुष्ट होता है वह पानीमें डूब जा
ता है तथा पिच्छिल होता है । और दोलक्षण वाला द्वन्द्वज तथा तीन ल
क्षणवाला सान्निपातिक होता है ॥ १९ ॥

[अनन्तर बिगड़े दुग्धकी शोधन विधि कहते हैं]

अथ दुष्टस्तन्यस्य शोधनविधिमाह ।

धात्री क्षीर विशुद्धार्थं मुद्गयूष रसाशिनी ॥ भार्गीदा
रुबचा पिष्ट्वा पिवेत्साति विषास्तथा ॥ २० ॥ पाठा
मूर्वाब्द भूनिम्बैर्दारु शुण्ठी कलिङ्गकैः ॥ सारि
वा मत्स्य पित्तास्थैः क्वाथः स्तन्य विशोधनः ॥ २१

(मत्स्य पित्ता कुटकी)

पटोल निम्बासन दारु पाठा मूर्वा गुडूची कटुरोहि-
राच ॥ सनागरञ्च कथितञ्च तोये धात्री पिवेत्
स्तन्य विशुद्धि हेतोः ॥ २२ ॥

भा० धाय दूध अच्छा होने के वास्ते मूँग का पानी और रसा भोजन करने
वाली होवे । भार्गी दार हर्दी बच अतीस इनको पीसके पीवे ॥ २० ॥
पाठा मुरी नागर मोथा चिरायता दारहर्दी सोंठ करंजुवा । सारिवा कुटकी इन
को क्वाथ दूध शोधक है ॥ २१ ॥ (मत्स्य पित्ता कुटकी । पटोल पत्र नि-
म्ब आसन दारहर्दी पाठा मुरी गिलोय कुटकी और सोंठ जल में औठा-
के धाय पीवे दुग्ध शुद्धिके अर्थ ॥ २२ ॥

[अथ शुद्धस्य लक्षणा माह ।]

नीरे स्तन्यं यदेकी स्याद्विवर्णं मतन्तुमन् ॥ पाण्डु
रं तनुशीतञ्च तद्दुग्धं शुद्धमादिशेत् ॥ २३ ॥

[धात्री लक्षणा माह ।]

पीताय यदि घालस्य विदध्या दुपसांतरम् ॥ सुवि
चार्य्यं गुणान्देधान् कुर्याद्दात्रीं तदेहशीम् ॥ २४

भा० अतन्तर शुद्धका लक्षणा कहने हैं ॥ जब पानीमें दूध मिलनावे और
दधिसा वर्ण और तारसे रहित ॥ शुभ्र सूक्ष्म तथा शीत ऐसे दूधको शुद्ध
कहते हैं ॥ २३ ॥ [धात्री अर्थात् धायकालक्षणा कहते हैं]

जब बालक को दूध पीने के वास्ते धाय रक्खे । तो गुरादीषों को अच्छे प्रकार विचार करके तब इस प्रकारकी धाय रक्खे ॥ २४ ॥

सवरांगी मध्यवयसां सच्छीलां मुदितां सदा ॥ शुद्ध

दुग्धांम्बहु क्षीरां सवत्सामति वत्सलाम् ॥ २५ ॥

स्वाधीनामल्पसन्तुष्टां कुलीनां सज्जनात्मजाम् ॥

कैतवेनापरित्यक्तां निजपुत्र दृशं शिशौ ॥ २६ ॥

भा० अपनीजातकी बीचवयवाली अच्छे स्वभाववाली सर्वदा हर्षयुक्त रहनेवाली शुद्धदुग्धवाली बहूतदुग्धवाली बचोंवाली बहूत प्रीतिवाली ॥ २५ ॥ स्वाधीन और थोड़ेमें सन्तोष होनेवाली कुलीन तथा अच्छे घरकी बेटी और धूर्ततासे रहित बालक में निजपुत्र के समान दृष्टि रखनेवाली ऐसी धाय को करे ॥ २६ ॥

[अथ निषिद्धां धात्रीमाह ।]

शोकाकुलाक्षुधार्ता च श्रान्ता व्याधिमती सदा ॥

अत्यञ्चानितरां नीचास्थूलानीव भृष्टाङ्गुशा ॥ २७ ॥

गर्भिणीजरिणी चापि लम्बोक्षत पयोधरा ॥ अजी-

र्णा भोजिनी चापि तथा पथ्य विवर्जिता ॥ २८ ॥

आसक्ता क्षुद्रकार्येतु दुःखार्ता चञ्चलापि च ॥

एतासां स्तन्यपानेन शिशुर्भवति सामयः ॥ २९ ॥

भा० अनन्तर निषिद्ध धात्रीको कहते हैं । शोक से व्याकुल क्षुधासे पीड़ित थकी हुई और सदाकी रोगवाली । बहूत ऊंची और बहूत नीची या बहूत मोटी अथवा बहूत दुर्बल ॥ २७ ॥ गर्भिणीजरवाली बहूत लंबे और बहूत बड़े चूचेवाली अजीर्ण में भोजन करनेवाली तथा पथ्यसे रहित ॥ २८ ॥ क्षुद्र कार्यमें आशक्त और दुःख से पीड़ित और चञ्चल । इनके दुग्धपान से बालक व्याधियुक्त होना है ॥ २९ ॥

[अथ बालस्य स्तन्यपान विधिः ।]

तत्र माता प्रशस्ताङ्गे चारुवस्त्रा पुरो मुखी ॥ उयवि-
श्यासने संम्यग्दक्षिणां स्तनमम्बुना ॥ ३० ॥ प्रह्ला
त्येषत्यरिस्राव्य मन्त्राभ्यामभिमन्त्रितम् ॥ उद-
ङ्मुखं शिशुं क्रोडे शनैः सन्धार्य पाययेत् ॥ ३१ ॥
(मातेत्युपलक्षणम् धात्रीच इषत्यरिस्राव्य।)

[अन्यथा वैयुण्यमाह।] सुश्रुतः।

अस्त्रावितं स्तनं बालः पिवन् स्तन्येन भूयसा ॥ पू-
र्योश्चात वमीकांस प्रवासै भवति पीडितः ॥ ३२ ॥

भा० मनन्तर बालक के दूधपान की विधि कहते हैं ॥ उसमें अच्छे अ-
गवाली और अच्छे कपड़ोंको पहरी हुई माना आगे की तरफ मुख की हुई
आसनपर बैठकर अच्छी तरह पर दाईं चूची को पानी से धोकर ॥ ३० ॥
और थोड़ासा दूध निचोड़के मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर उत्तरमुख बालक
को गोबरमें लेके धीरे २ पिलवावे ॥ ३१ ॥ माना का यह उपलक्षण है धायमी
थोड़ा निचोड़के) इसके बिरुद्ध करनेसे जो विगाड़ होता है उसको सुश्रुत
कहते हैं । वे निचोड़ी हुई चूची को बालक पीकर बहुत दूधसे नाड़ियों
के सोत भरना वमन कांस श्वास इनके द्वारा पीडित होता है ॥ ३२ ॥

[अभिमन्त्रणमाह।]

क्षीरनीर निधिस्तैव स्तनचो क्षीर पूरकः ॥ सदैव शु-
भगो बालो भवत्येष महाबलः ॥ ३३ ॥ ययोऽमृ-
तसमम्पीत्वा कुमारस्ते शुभानने ॥ दीर्घमायुर
वाप्नोति देवाः प्राप्यामृतं यथा ॥ ३४ ॥

भा० अभिमन्त्रण को कहते हैं ॥ यह मंत्र था पर लिखे ।

(क) मन्त्रोच पित्रान्येन द्वास्त्रेण पठनीयो)

यावत्तन्त्रं पाठस्तावन्मात्रा धात्र्या दक्षिणा हस्तेन स्पर्शः कार्यः ।

[अथ जनन्याः क्षीराभावे धात्र्याश्चालाभे प्रकारमाह ।]

क्षीरसात्मा तथा क्षीरमाजङ्गव्यमथापिवा ॥ दद्यादास्तन्यपर्याप्ते बालेभ्यो वीक्ष्य मात्रया ॥ ३५ ॥

(ख) क्षीरसात्म्यतयेति यतः शिशोः क्षीरमेवासात्मा म्भवति नत्वन्नादिकम् । स्तन्यपर्याप्ते रिति यावत् स्त्रियाः स्तन्यस्य सन्ततो भावेन प्राप्तिर्भवति । अथ यावत् स्तन्यपानस्य योग्यता तावदित्यर्थः ॥

भा. (क) यिन्मञ्जोरब्राह्मणों के द्वारा इन मन्त्रों को पढ़ावे । जब तक मन्त्रपाठ होवे तब तक मां या धाय हस्तिने हाथ से स्पर्श करे । अनन्तर मां के दूध न होने में या धायके नमिस्नेहमें प्रकारकी कहते हैं ॥ क्षीरकी सात्म्यता से दूध बकरे का गायका देवे । दूध पीनेकी योग्यता तक देखकर मात्रासे बालक के अर्थदेवे ॥ ३५ ॥

(ख) क्षीरसात्म्यता इति । क्यों कि बालक की दूधही सात्म्य होता है । न कि अन्नादिक । स्तन्यपर्याप्तेः इति । अर्थात् जब तक स्त्रियोंके दूध की निस्तर भावसे प्राप्ति होती है । अथवा । जब तक दुग्धपानकी योग्यता है तब तक इत्यर्थः ॥ [अथ बालस्थान्नप्राशनसमयः ।]

यद्योक्तविधिना बालं मासि षष्टेऽष्टमेऽपि च ॥ अन्नं सम्प्राणयेत्किञ्चित्ततस्तद्द्वयं क्रमात् ॥ ३६

[अथ बालस्य परिचर्याविधिः ।]

बालमङ्गुः सुखन्दद्यान्नचैव नन्तर्जयेत् क्वचित् ॥ सहसा बोधयेन्नैव नायोग्यमुपवेशयेत् ॥ ३७ ॥

भा० अनन्तर बालक का अन्नप्राशन समय कहते हैं ॥ बालक को खूटे या आठवें महीने में यथोक्त विधिसे । अन्नप्राशन करावे उसके अनन्तर घोड़ा २ क्लमके साथ बड़ाके अन्नप्राशन करावे ॥ ३६ ॥ अनन्तर बालक को परिचर्या विधि कहते हैं ॥ बालक को गोदमें सुलावे और इसको कभी फिकके नहीं । तथा सहसान जगावे और अयोग्यस्थानमें न रखे ॥ ३७ ॥

[अयोग्य उपवेशना समयः]

माकृष्य स्थापयेत् क्रीडे न क्षिप्रं शयने क्षिपेत् ॥

गोदस्यै च तच्चित्कार्ये विधिमावश्यकं विना । ३८

(क) आद्यप्रथम विधिः भोजनदान तैलाभ्यङ्गोद्घर्तनादिभिः ॥

तच्चित्तमनुवर्तनं न संदेवानु मोक्षयेत् ॥ निम्नोच्च

स्थान तद्व्यपि रक्षेद्दालं प्रयत्नतः ॥ ३९ ॥

भा० अयोग्य अर्थात् उपवेशन के असमर्थ । और बालक को खूचके गोद में न लेवे तथा पीछे विस्तार पर न डाल देवे । आवश्यक विधिके विना किसी कार्यमें होवावे ॥ ३८ ॥

(क) आद्यप्रथम विधि अर्थात् औषधकासेना तैलका अभ्यङ्ग उबटना इत्यादिकों से विना ॥ उसके मनके अनुकूल चले और सदा उसकी व्यापक करे । और नीची ऊंची जगह से बालक को यत्रके साथ रखाकरे ॥ ३९ ॥

[बालस्य स्वभावाद्दितान्याह ।]

अभ्रङ्गोद्घर्तनं स्नानं नेत्रयोरञ्जनन्तथा ॥ वस-

त्तं मृदुयत् तच्च तथा मृद्वनुलेपनम् ॥ ४० ॥ ज-

न्म प्रभृति गृह्यानि बालस्यै तानि सर्वथा ॥

[बालस्य कवलादेः समयमाह ।]

कवलाः पञ्चमाहर्षादष्टमान्तस्य कर्मच ॥

विकः षोडशां द्वर्षाद्विंशतेऽथैव मैथुनम् ॥ ४१ ॥

[बालादिरवमाह सुश्रुतः।]

वयस्तु त्रिविधमाल्यं मध्यमं वाद्वैकन्तथा ॥ अन

षोडश वर्षस्तु नरो बालो निगद्यते ॥ ४२ ॥ त्रिविधः

सोऽपि दुग्धाशी दुग्धान्नाशी तथा न्नभुक् ॥ दुग्धाशी

वर्ष पर्यन्तं दुग्धान्नाशी शरद्वयम् ॥ ४३ ॥

भा० बालक को स्वभाव से जो हित है उसको कहते हैं ॥ तेलका लगाना उबटना स्नान औरों में अञ्जन । और जो मृदु वमन है तथा मृदु अनुलेपन ॥ ४० ॥ बालक को ये सब जन्मसे लेकर पथ्य है ॥ बालक के कवलादिकों का समय कहते हैं ॥ बालक को पाँचवें वर्ष से ग्रास देवे और आठवें वर्षमें उसका कर्म । और सोलहें वरस से विरचन । तथा बीस वरस से मैथुन ॥ ४१ ॥ बालक आदिकी अवधिकहते हैं सुश्रुत । वय तीन प्रकारके हैं बालक नरुग और बृद्ध । सोलह वरस से कम मनुष्य बालक कहलाता है ॥ ४२ ॥ दो बालक भी तीन प्रकारके हैं । एक तो खाली दूध पीने वाले । दूसरे दूध और अन्नको खाने वाले । तीसरे अन्न खाने वाले । एक वर्षको दुग्धभोजी और दो वरस का दुग्धान्न भोजी ॥ ४३ ॥

तदुत्तरं स्वादन्नाशी एव बालस्त्रिधा मतः ॥ म

द्ये षोडश सप्तत्यो मध्यमः कायतो बुधैः ॥ ४४

चतुर्धा मध्यमम्प्राह युवा द्वात्रिंशतो मतः ॥ च

त्वारिंशत्समा याव तिष्ठे द्वीर्यादि पूरितः ॥ ४५ ॥

ततः क्रमेशात्तीर्णः स्या द्यावद्भवति सप्ततिः ॥

भा० उसके अनन्तर अन्नभोजी ऐसे बालक तीन प्रकारके कहें हैं ॥ सोलह और सत्तर के बीचमें मध्य वय परिहृतों ने कहो है ॥ ४४ ॥ चार प्रकारका मध्यम कहा है युवावतीस वरस तक । और जवतका चार

स वरसहोते हैं तब तक वीर्य से लेके रसादि संपूरित रहते हैं ॥ अनन्तर क्रमके साथ क्षीण होते हैं सत्तर वरस तक ॥ ४५ ॥ (क) वीर्य इत्यादि प्रायसे रसादि सर्वधातु इन्द्रिय बल उत्साह कहे हैं ।

(क) वीर्यादित्यादि प्रायसे न रसादि सर्व धात्विन्द्रिय बलोत्साहा उच्यन्ते । क्षीणः सर्वध्वात्विन्द्रिय बलोत्साहे हीनः ॥

ततस्तु सप्ततेरूर्ध्वं क्षीण धातु रसादिकः ॥ क्षीय

मारोन्द्रिय बलः क्षीणरेता दिने दिने ॥ ४६ ॥

बलोपलित खालित्य युक्तः कर्मसु चाक्षमः ॥ का

सश्वासादिभिः क्लिष्टो वृद्धो भवति मानवः ॥ ४७

भा० क्षीण अर्थात् सब धातु इन्द्रिय बल उत्साह से हीन । अनन्तर सत्तर वरस के पुर क्षीण धातु रसादिक । और इन्द्रिय बलहीन तथा दिन २ क्षीण शुक होता है ॥ ४६ ॥ कुर्यात् सक्रिय बाल सिरके बाल उद्विग्नाना इनसे युक्त और काम करने में असमर्थ । तथा कास श्वास से पीड़ित वृद्ध मनुष्य होता है ॥ ४७ ॥

बाल्ये विवर्द्धते प्लेष्मा पित्तं स्यान्मध्यमे

ऽधिकम् ॥ वार्द्धके वर्द्धते वायुर्विचार्यैतनुपक्रमे-

त् ॥ ४८ ॥ (क) उपक्रमेत् चिकित्सेत् तन्त्वान्तरेत् ॥

बाल्यं वृद्धिं प्लेष्मविर्मेधा त्वग्दृष्टिः शुक्र विक्रमो ॥

बुद्धिः कर्मेन्द्रियञ्चेतो जीवितन्दप्राप्तो हसेत् ॥ ४९

भा० बाल अवस्था में कफ की वृद्धि होती है । तरुण में पित्त अधिक होता है तथा वृद्ध अवस्था में वायु बढ़ता है । इसको विचार करके चिकित्सा करे । ॥ ४८ ॥ (क) उपक्रम करे अर्थात् चिकित्सा करे ॥ बालक पित्त धातुओं की वृद्धि प्लेष्म विर्मेधा त्वग्दृष्टि शुक्र पराक्रम । बुद्धि और कर्मेन्द्रिय जोर ।

संज्ञा ये सर्व क्रमके साथ दस दस बारस उत्तरोत्तर में दीर्घता को प्राप्त होते हैं ४६

[अथ प्रकृतिलक्षणानि]

सप्त प्रकृतया नृणां वातान्पित्तात्कफान्तथा ॥ सं

सर्गात्सन्निपाताच्च भवन्ति भिषजाम्मते ॥ ५० ॥

शुक्रशोणित संयोगो यो दोषस्तूत्कये भवेत् ॥

प्रकृति जीयते तेन तस्या लक्षण मुच्यते ॥ ५१ ॥

भा० अन्तर प्रकृतिके लक्षण कहते हैं ॥ वैद्योंके मतमें मनुष्योंकी मात प्रकृति होती है । वात पित्त कफ से तीन संसर्ग से तीन और सन्निपात से एक । इस प्रकार सात ॥ ५० ॥ शुक्र, रजके संयोगमें जो दोष अधिक होता है । उसे प्रकृति होती है । उसका लक्षण कहता हूँ ॥ ५१ ॥

[वाग्भटे त्वात्रियादयः ।]

शुक्रा सृग्गर्भिणी भोज्य चेष्टा गर्भाशयान्तरे ॥ यः

स्याद्दोषोऽधिकस्तेन प्रकृतिः सर्व्वथोदिता ॥ ५२ ॥

(क) सोऽपि दोषः स्वभावावस्थितो ननु दुष्टः दुष्टेन तु शुक्र

शोणितयोर्दुष्टा शुद्ध गर्भासम्भवान् ।

भा० वाग्भटेमें आत्रियादिकों ने कहा है ॥ शुक्र और आर्तवमें तथा गर्भिणी के आहार विहारमें और गर्भाशयके बीचमें जो दोष अधिक रहता है उस करके प्रकृति होती है ॥ ५२ ॥ (क) वह भी दोष स्वभाव से ही रहता है । न कि विगड़ा हुआ । क्योंकि दुष्ट करके शुक्र शोणितमें दुष्ट और अशुद्ध गर्भके असम्भव होने से ॥

जागरूकोऽल्पकेषाश्च स्फुटिताङ्घ्रिः करः कृशः ॥ श्री

घृगा बहुवाग्रूतः स्वप्नं वियतिगच्छति ॥ ५३ ॥ एवं

विधः स विज्ञेयो वात प्रकृति को नरः ॥ पित्त प्रकृति

क्रो लोकोः यादृशोऽयं निगद्यते ॥ ५४ ॥ अकाल पलि
 नागोरः क्रोधी स्वदीन बुद्धिमान् ॥ बहु भुक्ताम्रने
 त्रश्च स्वप्ने ज्योतींषि पश्यति ॥ ५५ ॥ एवं विधो भ
 वेद् यंस्तु पितृप्रकृतिको नरः ॥ श्यामकेशः क्ष
 मी स्थूलो बहु वीर्यो महाबलः ॥ ५६ ॥ स्वप्ने ज
 लाशया लोकी श्लेष्म प्रकृतिको नरः ॥ दृश्यते
 प्रकृतौ यत्र रूपं दोष द्वयस्य तु ॥ ५७ ॥ द्विसंसर्गे
 ण जानीयान्सर्वं लिङ्गैः स्त्रिदोषजम् ॥

भा० जागरण स्वभाव अर्थात् कम सोनेवाला । थोड़े केशवाला और जि
 सके हाथ पाव अलगू २से निकले हों तथा कृष्ण बड़न चलनेवाला बड़न
 बोलनेवाला रूखे बदनवाला जो आकाशके स्वप्नदेखे ॥ ५३ ॥ इस प्रकार
 के मनुष्यको यान् प्रकृतिजानना चाहिये ॥ पितृ प्रकृतिवाला पुरुष जिस
 प्रकारका होता है उसको कहता हूँ ॥ ५४ ॥ युवा अवस्था में केश पक्क जावें
 गौर वर्ण क्रोधी पक्षीना बहन अवि बुद्धिवान् ॥ बहन भोजन करलेवाला ।
 रक्तनेत्र स्वप्ने नेत्र देखे ॥ ५५ ॥ इस प्रकारका जो हो वाह पितृ प्रकृति म
 नुष्य है ॥ काले केश क्षमावाला मोटा बड़न वीर्यवाला बड़ा पराकमी ॥
 ५६ ॥ स्वप्ने जलाशयो को देखनेवाला कफ प्रकृति मनुष्य है ॥ जिस प्रकृ
 ति में दोहो दोषों का लक्षण देखे ॥ ५७ ॥ उसको दुन्दुज प्रकृतिजाने । और
 सब लक्षणों से सन्निधान की प्रकृतिजाने ॥ [वाग्भटेतु ।]

प्रायस्त एव पवना घ्युषिता मनुष्याः दोषात्मकाः
 स्फुटितधूसर केशगात्राः ॥ शीतद्विषश्चलघृतिः
 स्मृतिबुद्धि चेषाः । सौहार्दं दृष्टि गतयोऽतिबह प्र
 लापाः ॥ ५८ ॥ अल्पपितृ कफ जीविन निद्रा ।

सत्रशक्तबहुजर्जरवाचः ॥ नास्तिकाबहुभुजः स
 विलासा गीतहास्यमृगयाकेलिसुलोलाः ॥ ५६ ॥
 मधुररस कटूया सात्म्यकांक्षा कृशदीर्घा कृतयः
 मशब्दज्जाना नदृढानजितेन्द्रिया नवीर्याः न च
 कान्तादयिता बहु प्रजात्वा ॥ ६० ॥ अंगानि चैवाङ्ग
 रधूसराणि वृत्तान्यचारुणि मृतोपमानि । उन्मीलि
 तानीव भवन्ति सुप्ते शैलद्रुमान्ने गगनं प्रयाति ॥ ६१ ॥
 अधन्या मत्सराध्माना स्तेनाः प्रोद्ध पिण्डिकाः ॥
 स्वप्ने शृगालोष्ट्र गृध्रास्तु काको लूकाश्च वातिकाः
 ॥ ६२ ॥

भा० बागमट में कहा है । प्रायः बोही आयु करके स्थित मनुष्य दोषवाले
 स्फुटितगात्र और घूसरकेश तथा शीनसे द्वेष करने वाले । चञ्चल धृति स्मृ
 ति और बुद्धि की चेष्टा वाले । आँखों में शीलवाले बड़नबोलने वाले ॥ ५६ ॥
 अल्प पित्तकफ आयु और निद्रा करके युक्त अथवा बड़न जिडु श करने वा
 ला ॥ नास्तिक बड़न भोजन करनेवाला विलास करके युक्त गाना हंसनादि
 कार का खेलना इनमें नत्पर ॥ ५६ ॥ मधुर अम्ल कटु उष्ण इनकी सात्म्य
 इच्छा ॥ दुबला और लंबी आकृतिवाला ॥ शब्द के सहित समरुनेवाला ।
 दृढ न होना नजितेन्द्रिय न आर्य न स्त्रीवाला । और न बड़न सन्नतिवाली
 स्त्रीवाला ॥ ६० ॥ इसका शरीर खर धूसर लंबा रुखा मृतोपय । सोनेमें आं
 ख खुली ही होती है । पहाड़ दल्ल के ऊपर तथा आकाश में जाता है ॥ ६१ ॥
 नेकी जिसमें नहो दूसरे की दौलत पर हसद करके पेट फूला हुआ चौर । नि
 कली हुई भिंडली वासा स्वप्ने में सियाग कंठ गिरु घोड़ा बोवा उल्लू ।
 इनकी जो देखना है वो बात प्रकृति मनुष्य है ॥ ६२ ॥

पित्तवह्निवह्निज्जैवतस्मात्प्रिनोद्विक्तन्तीन्नृ
 षणावुभुस्तुः ॥ गोरोपणाङ्गस्तासहन्ताङ्घ्रियुग्मः

शूरोमानी पिङ्गकेशोऽन्यरोमा ॥ ६३ ॥ द्रियत मा
 ल्यविलेपन मण्डनः सुरचितः शुचिराश्रितवत्स
 लः । विभवसाहस बुद्धिवलान्वितो भवति भी
 ष्मगतिः द्विषतामपि ॥ ६४ ॥ मेधावी प्रशियिलि
 तसन्धिवन्धमांसो । नारोणा मनभिमतोऽल्पशु
 क्रकामः ॥ आवासश्चलिततरङ्गनोरकेषु । भुक्ते
 ऽन्नं मधुरकषायतिक्तशीतम् ॥ ६५ ॥

भा० पित्त और अग्नि तथा अग्निसे होनेवाले ये और इनसे पित्त बढ़ेइवो
 बड़त तथावाला भूवा ॥ गौरा और उष्णा शरीरवाला लालीको लिये हा
 थ और पाँव शूर अभिमानी भूरेकेश थोड़े रोवेवाला ॥ ६३ ॥ प्रियमाल्य
 विलेपन इनसे भूषित सुन्दर पवित्र पुत्रसे युक्त रोष्वर्य्य साहस बुद्धि बल
 करके युक्त और शत्रुओं को भयानक गति होता है ॥ ६४ ॥ क्रान्तिवाला
 ढीले नोड़ों के बन्ध और मांस स्त्रियों के प्रिय नहीं होता थोड़ा शुक्र और
 थोड़ी मैथुन शक्तिवाला । उठे तरंगवाला जलाशयमें रहना भोजनमें मधु
 र कषाय तिक्त और शीत अन्न ॥ ६५ ॥

धर्मद्वेषी स्वेदनः पूतिगन्धि भूर्युच्चारक्रोधपा
 नाशनर्ष्यः । सुप्तः पश्येत् करिणिकारान् यलाशान्
 दिग्वाहोल्काविद्युदकी नलांश्च ॥ ६६ ॥ तनूनि
 पिङ्गानि चलानि चेषां तन्वल्पयत्मारिणहिमप्रिया
 णि । क्रोधेन मर्षेन र्वेश्च भासा रागं ब्रजन्त्याशु वि
 लोचनानि ॥ ६७ ॥

भा० धर्मका शत्रु बड़त परमोनि आँव और जिम्मेमें बुरी वांस आँव हकला
 के वाले क्रोधी भोजनकी ईर्ष्या करनेवाला । और सुपनेमें कनेर पलास
 इनके रत्नोंको देखे और दिग्दाह उल्का बिजली सूर्य्य अग्नि ये देखे ६६

इनके शरीर भूरे चंचल छोटी थोड़ी पलकें और शीत प्रिय । तथा क्रोध मूत्र
और सूर्यके प्रकाशसे शरीर रक्तवर्ण होते हैं मंसे मेत्रवाले ॥ ६१ ॥

- मध्यायुषो मध्यवलाः परिडताः क्लेशभीरवः ॥

व्याघ्रायुः कपिमाज्जार वृकालूताश्च पैतिका ॥ ६२ ॥

श्लेष्मामोमः श्लेष्म लस्तेन मौम्या गूढ स्निग्ध म्लि

ष्टसम्यस्थिमांसः । क्षुत्तृदुःख क्लेशधर्मे रतशो

बुद्ध्यायुक्तः सात्विकः सन्यसन्धः ॥ ६६ ॥ प्रियङ्गु

दूर्वाशरकाण्ड दर्भगोरोचना पद्मसुवशी वरीः ॥

प्रलम्बवाहः पृथुपीन वक्षाः महाललाटा धननी

ल केशः ॥ ७० ॥

भा० मध्य आयु मध्यबल पंडित क्लेशसे डर । व्याघ्र चूहा बन्दर विल्ली
भेड़िया मकड़ी इनके जो देखे सो पैतिका है ॥ ६२ ॥ कफ जल है उस कफ
के श्लेष्मल अथवा कफ प्रधान सौम्य गूढ स्निग्ध मिली हृद् जाड़ोंकी स
डुई और मांस ॥ क्षुधा तथा दुःख क्लेश इनके धर्मे से जो नहीं संनस हो
ता बुद्धि वा सात्विक सत्त्वा ॥ ६६ ॥ प्रियङ्गु दूर्वा सरकंडा दर्भ गोरोचन क
मल सोना इनका सावर्ण । लंबे हाथ चौड़ी और मांसल छाती बड़ा स्तिर
धरे हवे और काले केश ॥ ७० ॥

मृदङ्गः समसु विभक्तः चारुदेहो वह्नीजा रतिर

स युक्त सपुत्र मृत्युः ॥ धर्मात्मा बदति न निष्ठुरं

च जानु प्रच्छन्नं वहति दृढं चिरञ्च वैरम् ॥ ७१

समद्विदेन्द्र तुल्यपीनो जलवाम्भोधि मृदङ्ग श

ङ्ग घोषः ॥ स्मृतिमानभियोगवान्विनीतो न च वा

न्यः प्याति शीतनां न लोलः ॥ ७२ ॥

भा० मृदु और सम तथा अच्छे प्रकार विभक्त सुंदर शरीरवाला ॥ और बहुत भोजनवाला रतिरसकरके युक्त पुत्र तथा भृत्योंकरके सहित ॥ धर्मोत्सा और कदाचित् भी जो कठोर नहीं बोलना । तथा क्षिप्रवा और हृदयहन कालनक्षत्रको धारण करता है ॥ ७० ॥ मदके सहित गजके समान तुल्य स्थूल मेघ समुद्र एवं धारवृक्षके समान आवाज ॥ स्मृतिवाला अभियोगवाला विनीत और वाल्य अवस में भी बहुत नरोत्तेवाला नखचल ॥ ७१ ॥ तिक्त कषाय कड़ुक उष्ण और थोड़ा भोजन करने पर बलवान् ॥ भीतर रक्तता अच्छे प्रकार क्षिग्ध विशालदीर्घ सुव्यक्त शुक्ल और काले पलक वाले ऐसे चक्षु होने है ॥

तिक्त कषायं कड़ुकोषणरूक्ष मल्पञ्च भुक्ते बलवांस-
थापि ॥ रक्तान्त सुक्षिग्ध विशालदीर्घ सुव्यक्त शुक्ला-
सित पद्मलालः ॥ ७२ ॥ अल्पाहार क्रोधयानाशने
हृः प्रज्ञाविनो दीर्घसूत्री वदान्यः ॥ हृद्गम्भीरः स्थूल-
वक्त्राः क्षमावाचिद्रालुम्प्रा सुब्ध रुजः कृतज्ञः ॥

॥ ७४ ॥

भा० थोड़ा भोजन करनेवाला क्रोधवान् और अपानमें इच्छावाला बुद्धि-
वान् द्रव्यवान् दीर्घसूत्री और उत्तार ॥ गम्भीर हृदयवाला स्थूलवक्त्र क्षमा-
वाला निद्रालु अलुब्ध अर्थात् लोभी नहोना और कृतज्ञ ॥ ७४ ॥

वृजुविपश्चिन् सुभगः सलज्जो भक्तो गुरूणां स्थिर-
सौहृदश्च ॥ स्वमे सयद्भान् सविहङ्गः मालान्तोयाश-
यान् परयन्ति तोयदांश्च ॥ ७५ ॥ त्रिष्णु रुद्रेंद्रचरुणा
तार्क्ष्यं हंस गजाधिपेः ॥ श्लेष्म प्रकृतयस्तुल्यास्त-
या सिंहाश्च गोवृषैः ॥ ७६ ॥

भा० सीधा पंडित अच्छे भाग्यवाला सलज्ज गुरुओंका भक्त और स्थिर मि-
त्रतावाला स्वप्नमें कमलके सहित शलाशय पक्षियों की पक्ति तथा भय

इतरेषु ॥१५॥ विष्णु रुद्र वरुणा इन्द्र गरुड हंस और गजेन्द्र इनके समान
स्वल्पप्रकृतिवाले होते हैं ॥ तथा सिंह और सांड इनके भी समान होते हैं ॥
॥ १६ ॥

(क) ननु प्रकृतिहेतूनां मध्ये योऽधिकः स स्वव्याधीन्
कथं न करोतीत्या शङ्कामाह ॥ विषजातो यथाकी
येन विषेन प्रवाध्यन्ते ॥ तद्वन् प्रकृतयो मर्त्यं शकु-
वन्ति नवाधितुम् ॥१७॥ (क) एतौ द्वौ न जावपी
षदर्थे तेन विशेषेण विषजदाहादिना ॥ इषन् प्र
वाध्यन्ते ननु भृशं तथाच प्रकृतयः ॥ प्रकृतिहेतु
वो दोषाः वाधितुं न शक्नुवन्ति ॥

भा० ननु शंका करते हैं कि प्रकृति कारणों के बीचमें जो अधिक होता है वो
ह अपनी व्याधियों को कैसे नहीं करता । इस आशंका में कहते हैं ॥ जैसे वि
षसे उत्पन्न हुआ विषसे वाधानहीं पाना ॥१७॥ (क) ये दो नजप में भी
इषदर्थ होते हैं उस विषजदाहादि विशेषण करके । इषन् वाधा करता है
नकि बहुत उसी प्रकार प्रकृतिर्या भी ॥ प्रकृति के कारण जो दोष वाधा नहीं
कर सके हैं ॥ कारचरणस्फुटितन्त्वं खेद निद्राधिक्यादिना

इषद्वाधितुं शक्नुवन्त्येव । ननु ज्वरादिभिः ॥ प्रकोपो
वानभावो वात्तमोवा नोपजायते ॥ प्रकृतीनां स्वभा
वेन जायन्ते तु गतासुषः ॥१८॥

इति श्री मिश्र लटकन ननय श्रीमन्मिश्र भाव विरचिते भाव
प्रकाशे बालप्रकरणे तृतीयम् ॥ ३ ॥ ❀ ॥

भा० हात पांव स्फुटि तन्त्वं खेद निद्राकी अधिक्यता आदिकरके छोड़ी
वाधा कर सक्ता है ॥ नकि ज्वरादिक । प्रकोप अथवा अन्यभाव या क्ष-
म नहीं होता ॥ प्रकृतियों के स्वभावसे गतासु होता है ॥ १८ ॥

इतिथी मिश्रलटकन के पुत्र श्रीमन् मिश्रभाव के विरचित भावप्रकाश में बाल
प्रकरण तृतीय समाप्त हुआ ॥ ३ ॥ ❀ ॥

[अथ देशाः ।]

भूमिदेशस्त्रिधानूपो जाङ्गलो मिश्रलक्षणाः ॥

[त्रिधानूपलक्षणम् ।] नदीपल्लवशैलाढ्यः फुल्लोत्पल

कुलैर्युतः ॥ ७६ ॥ हंससारसकारण्ड चक्रवाकादिसेवि

तः ॥ शशावाराहमहिषरुरोहिकुलाकुलः ॥ ७७ ॥

प्रभूतद्रुमपुष्याढ्यो नीलशस्य फलान्वितः ॥ अनेक

शालिकेदारकदलीद्विविभूषितः ॥ ७९ ॥ आनूपदेशो

ज्ञातव्यो वातश्लेष्माभयार्तिमान् ॥

भा० अनन्तर देश कहते हैं ॥ भूमि तथा देश तीन प्रकारके होते हैं । आनूप जंगल और मिश्रलक्षण ॥ ॥ उसमें अनूपकालक्षण । नदी क्षुद्र जलाशय पर्वत इन करके युक्त प्रफुल्लित बहानसे कमलोंसे युक्त ॥ ७६ ॥ हंस सारसजल कुङ्कुम चक्रवा इत्यादि करके सेविन ॥ खर गोश शूकर महिषकाला हिरण और वृक्ष ॥ इनके कुलोंसे व्याप्त ॥ ७७ ॥ बहानसे वृक्ष पुष्यासे भरे हवे नील धान्य फलोंकरके युक्त । बहानसे धानोंसे युक्त खेन और केले ऊव इनसे शोभित ॥ ॥ ७९ ॥ इसको अनूपदेश जानना चाहिये । वात कफके रोग पीड़ा वाला है ॥

[अथ जाङ्गल लक्षणम् ।]

आकाश शुभ्र उच्चश्च स्वल्पानीयपादपः ॥ शमीक

रीर विल्वार्कपीलुकर्कन्धुसङ्कुलः ॥ ७२ ॥ हरिणौ

गार्क्षं पृषत गोकरीखरमङ्कुलः ॥ सुस्वादु फलवा

नूदेशो वातलो जाङ्गलः स्मृतः ॥ ७३ ॥

भा० अनन्तर जंगल का लक्षण कहते हैं ॥ आकाश शुभ्र और ऊँचा भी थोड़ा जल और थोड़े वृक्ष ॥ शमी करीर बेल आंक पीलू वर इनकरके संकुल ॥ ७२ ॥ हरिण काला हरिन इत्यादि मृग और खर इनसे व्याप्त । अच्छे

मधुरफलवाले देश और बानलको जंगल कहा है ॥ ८३ ॥

[तन्वान्तरत् ।] बहूदकानगोऽनूपः कफमारुत रोगवान् ॥

जाङ्गलोऽल्याङ्गशार्वो च पित्ता सृङ्गारुतोत्तरः ॥ ८४ ॥

[साधारणालक्षणम् ।]

संमृष्टलक्षणो यस्तु देशः साधारणो मतः ॥ समासा

धारणो यस्माच्छीन वर्षाषणमारुताः ॥ ८५ ॥ समता

तेन दोषारणं तस्मान् साधारणो वरः ॥ [सुश्रुतान् ।]

उचिते वर्तमानस्य नास्ति दुर्दृष्टं भयम् ॥ आहार

स्वम च्छादौ तद्देशस्य कृते सति ॥ ८६ ॥

भा० मंत्रान्तरमें कहते हैं ॥ बहूत जल और पर्वतका अल्पदेश है और कफवा-
पुके रोगवाला । और जंगल अल्प अंग तथा शार्ववाला और पित्त रक्त मारुतो
नर होते हैं ॥ ८४ ॥ साधारणका लक्षण कहते हैं ॥ मिले हुए लक्षणों संयुक्त
जो देश है वो साधारण कहा है ॥ जिस कारण साधारणमें तीन वर्षा उष्ण चा
यु सम होते हैं ॥ ८५ ॥ उस कारणसे उस करके दोषोंका साधारण श्रेष्ठ क
हा गया ॥ सुश्रुतान् अर्थात् सुश्रुतसे । उचित में करनेवालेको दुष्ट देश
का भय नहीं होता ॥ उसी देशका भोजन सोना चेष्टा करनेसे दुर्दृष्ट भ
य नहीं होता ॥ ८६ ॥

[दृढवाग्भटः] यस्य देशस्य यो जन्तुस्तज्जन्तस्यौषधं

हितम् ॥ देशादन्यत्र वसतस्तत्तुल्यगुणमौषधम् ॥ ८७

स्वे देशे निचिता दोषा अन्यस्मिन् कोपमागताः ॥

बलवन्तस्तथा नस्य जलजा स्थानजा तथा ॥ ८८ ॥

भा० दृढवाग्भटने कहा है ॥ जिस देशका जो प्राणी है उसको उस देशमें
उत्पन्न हुई ही औषधि हित है ॥ देशसे अलग रहने जानेको उर्मीके तुल्य
गुण औषधि हित है ॥ ८७ ॥ अपने देशमें संबद्ध वे दोष दूसरे में कोपको

प्राप्तहुँचे । उस प्रकार बलवान नहीं होते । जैसे जलज और स्थलज में होते हैं ॥ ८८ ॥ [अथ दिनादि चर्या ।]

मानवो येन विधिना स्वस्थस्तिष्ठति सर्वदा ॥ तमेव का
ख्ये द्वेषो यतः स्वास्थ्यं सदैप्सितम् ॥ ८९ ॥ दिनचर्या
निष्ठा चर्या ऋतुचर्या यथोदिताम् ॥ आचरन् पुरु
षः स्वस्थः सदा तिष्ठति नान्यथाः ॥ ९० ॥

भा० अनन्तर दिनचर्या कहते हैं ॥ मनुष्य जिस विधिकरके सर्वदा स्वस्थ
रहता है । उसीको वैद्य करावे क्योंकि स्वास्थ्य सर्वही इच्छित है ॥ ८९ ॥
दिनचर्या रात्रिचर्या और ऋतुचर्या जैसे कही है । उसको आचरन करने
वाला पुरुष सदाही स्वस्थ रहता है ॥ अन्यथा स्वस्थ नहीं रहता ॥ ९० ॥

[तत्र स्वस्थस्य लक्षणमाह ।]

सुश्रुतः । समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियः ॥

प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥ ९१ ॥

(क) क्रियात्र कर्म तेन समक्रियः । शरीरानुरूपकर्म । त

त्र दिनचर्यामाह ॥ त्रास्तिमुहूर्ते बुद्धेयत स्वस्थो रक्षा-
र्थमायुषः ॥ तत्र दुःखार्तप्रान्यर्थं स्मरेहि मधुसूदनम् ॥
॥ ९२ ॥ दृष्ट्या न्यादशीसिद्धार्थं विल्वगोरेचना स्रजाम् ।

भा० उसमें स्वस्थका लक्षण कहते हैं ॥ समदोष सम अग्नि समधातु सममल
और सम क्रिया । प्राण इन्द्रिय मन इनकी प्रसन्नता वालेको स्वस्थ ऐसा कह
ते हैं ॥ ९१ ॥ (क) क्रिया यहाँपर कर्म लेना चाहिये उसकरके सम क्रियः ।
अर्थात् शरीरके अनुरूप कर्म करनेवाला । उसमें दिनचर्याको कहते हैं ॥
स्वस्थपुरुष आयुकी रक्षाके अर्थ ब्राह्मणमुहूर्त में जागि । उसमें दुःख शान्तिके
अर्थ मधुसूदनको स्मरण करे ॥ ९२ ॥ दही घृत दर्पण सरसों बेल गीरेचन
मातृ इनका देखना स्पर्श करना

दर्शनं स्पर्शनं कार्यं प्रबुद्धे न शुभावहम् ॥ ८३ ॥ स्व
माननं घृते पश्यन् यदीच्छेत् चिरजीवितम् ॥ आयु
ष्य मुषसि प्रोक्तं मलादीनां विसर्जनम् ॥ ८४ ॥ तदव
कूजनाध्मानोदर गौरव वारणाम् ॥ आदिशब्देन
वातमूत्रादीनां ग्रहणम् ॥ ८५ ॥ आदिशब्दोपरि
कर्तिका च सङ्गः पुरीषस्य तथोद्धवात् ॥ पुरीषमा
स्यादथवा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नस्य ॥ ८६ ॥

भा० जगोद्धवे पुरुषने करना चाहिये यह शुभावह है ॥ ८३ ॥ अपना मुख
घृतमें देवे चिरजीवित की इच्छा करे ॥ प्रातःकाल में यह आयुष्य कहा है ।
और मलादिका त्यागभी आयुष्य है ॥ ८४ ॥ बोह यहाँ पर पेटमें गुड़ गुड़ा शब्द ।
आध्मान उदर और भारीपन इनका दूर करने वाला है । आदि शब्दमें वात मू-
त्रादियोंका ग्रहण है ॥ ८५ ॥ आदिशब्द गुदामें कदावसी पीडा मलन होना
और ऊर्ध्ववात अथवा मलके वेगसे अभिहत मनुष्यके मुखमें मलनिकलना है
॥ ८६ ॥

(क) परिकर्तिका । गुदे परिकर्त नवत्पीडा । पुरीषस्य सङ्गे
निरोधः । ऊर्ध्ववातः उद्गाढवाहल्यम् ॥ ॥ वातमूत्रपुरी
षारणं सङ्गेऽध्मानं क्लमो रुजा । जठरे वातजाश्चान्ये
रोगाः स्यु वात निग्रहान् ॥ ८७ ॥ वस्तिमेहनयोः शूलं
मूत्रकृच्छं शिरीरुजा ॥ विनामो चङ्गराणाहः स्या
स्त्रिङ्गं मूत्र निग्रहे ॥ ८८ ॥

भा० (क) परिकर्तिका गुदामें कैंचीसे काटने कीसी पीडा । मलका
संग अर्थात् अवरोधपना । ऊर्ध्ववात अर्थात् उकारोंका अङ्गत होना । वातम-
त्रमूत्रोंका अवरोध आध्मान क्लम पीडा । और पेटमें वातज और रोगवातके

अवरोधमेहोतेहैं ॥ ८७ ॥ येडू लिंगमें शूल मूत्र रुक्कू शिरमें पीड़ा । पागीरका
कुकाव वंशरा में आकर्षणके मानिन्द पीड़ा ये लक्षणा मूत्र निग्रहमेंहोतेहैं ॥

(क) विनामः शरीरस्य नम्रता वङ्कुराणाहः । वङ्कुरास्या
कर्षणावत्पीडा ॥ न वेगितोऽन्यकार्यः स्यान्न वेगानी

रयेद्बलात् ॥ काम शोक भयक्रोधान् मनावेगान्विधा
रयन्त ॥ ८८ ॥ गुदादि मलमार्गीणां शौचं कान्ति बल-

प्रदम् ॥ पवित्र करमारव्यातं मलक्ष्मी कलि यापहन् ॥

॥ १०० ॥ प्राक्षालनं मतं पारयोः पादयोः शुद्धिकारणा
म् ॥ मलश्रम हरं वृष्यं चक्षुष्यं राजसापहम् ॥ १०१ ॥

भा० (क) विनाम अर्थात् शरीरकी नम्रता वंशराणाह अर्थात् वंशराणों की
आकर्षणके मानिन्द पीड़ा । वेगमें युक्तहुवा और कार्यनकरे वेगोंको बल से
नरोके ॥ काम शोक भयक्रोधोंको और मनोवेगोंको नधारणकरें ॥ ८८ ॥
गुद आदि मलके मार्गीकी शुद्धता कान्ति बलको देनेवाली है । और पवित्रको
करनेवाली कहागया है । अलक्ष्मी कलि पापका नाशकहै ॥ १०० ॥ हाथ
पावोंका धोना शुद्धिका कारण कहाहै ॥ मल श्रमकी दूर करतिवाला वृष्य व
क्षुष्य अर्थात् चक्षुका हित राजसका नाशक ॥ १०१ ॥

[दन्तकाष्ठविधिः]

भक्षयेद्दन्तपवनं द्वादशाङ्गुलमायनम् ॥ कनिष्ठिका

श्रवन् स्थूलमृज्वग्रन्थि तथाऽन्नरास ॥ १०२ ॥ एकैकं

घर्षयेद्दन्तं मृदुना कूर्चकणात् ॥ दन्तशोधनं चूर्णेन

दन्तमांसान्यवाधयन् ॥ १०३ ॥ क्षौद्रविकटुकाक्तेन

नैलसिन्धुभवेन वा ॥ चूर्णेन तेजोवत्याश्च दन्ता-

न्नित्यं विप्रोधयेत् ॥ १०४ ॥

दन्तव्रत की विधि बारह अंगुलका दन्तव्रत भक्षणकरे । कनिष्ठिका के अग्रभाग समान स्थूल सीधा और बड़े गाँठ का तथा ब्रह्मा से गहिरा ॥ १० ॥
 दन्तशोधन चूर्ण से दन्त मांसों का बाधा नरेता हुआ ॥ मृदु कूर्चक से एक २
 दाँतों को घिसे ॥ १० ॥ अहत विकुटके साथ अथवा तेल से धव से ।
 नेत्रोवनी के चूर्ण से दाँतों को नित्य विशोधन करे ॥ १० ॥

(क) नेत्रोवनी तेजवल्कल इति लोके प्रसिद्धा ॥

मधुको मधुरे श्रेष्ठः करञ्जः कटुके तथा ॥ निम्ब

म्यात्तिकके श्रेष्ठः कषायखदिरस्तथा ॥ १०५ ॥

समयन्तु समालोक्य दोषञ्च प्रकृतिं तथा ॥ यथा

चित्ते रसेवीर्यं युक्तं द्रव्यं प्रयोजयेत् ॥ १०६ ॥ ते

नास्य मुखवैरस्य दन्ता जिह्वास्यजा गदाः ॥ रुचि

वैशद्यं लघुना न भवन्ति भवन्ति च ॥ १०७ ॥ अ-

र्कं वीर्यं वटे दीप्तिः करञ्जे विजयो भवेत् ॥

भा० (क) नेत्रोवनी अर्थात् तेजकी छाल लोकमें प्रसिद्ध है ॥

मधुर में मधुक श्रेष्ठ है । और कटुक में करंज श्रेष्ठ है ॥ तिक्तक में निम्ब

श्रेष्ठ है । तथा कषाय में खैर श्रेष्ठ है ॥ १०५ ॥ समय और दोष प्रकृति

को देखकर । यथाचित रस वीर्य से युक्त द्रव्यको योजना करे ॥ १०६ ॥

उसकरके मुखकी बिरसना दन्त जिह्वा इनमें रोग नहीं होने और स्वच्छता

हलकायन ये होते हैं ॥ १०७ ॥ आंक में वीर्य वटमें दीप्ति और करंज में

विजय होता है ॥

स्रक्षे चैवार्थं सम्यत्ति वदर्या मधुराशनम् ॥ १०८ ॥

खदिरं मुखसौगन्ध्यं विल्वेतु विषुलं धनम् ॥ उद-

म्बरे तु वाकसिद्धिं राम्रे न्वारोग्यमेव च ॥ १०९ ॥

करत्वंतु धनिर्मधा चम्पके दृढवाक श्रुतिः ॥ शिरी

धे कीर्ति सौभाग्य मायुरा रोग्य मेव च ॥ ११० ॥ अपा
 मार्गे धृतिर्मधा प्रजाशक्ति स्तथापनि ॥ दाडिम्या
 सुन्दराकारः ककुभे कुटजे तथा ॥ १११ ॥ ज्ञाती
 तगर मन्दारै दुःस्वप्नञ्च विनश्यति ॥ गुञ्जिका
 तालहिन्तालं केतकश्च वृहद्दरः ॥ ११२ ॥

भा० पाकर में अर्थ सम्यक्ति बेरमें मधुर भाजन ॥ ११० ॥ खदिर में मुस
 कौ सुगन्धिता बेलमें विपुल धन गूलरमें सिद्धि आममें आरोग्य ॥ ११० ॥
 कदम्ब में धृति मेधा चम्पक में दृढ़ बाराणी और श्रुति । शिरीष में कीर्ति सौ
 भाग्य तथा आयु आरोग्य भी ॥ ११० ॥ चिचिर में धृतिमेधा प्रजाशक्ति उ-
 सीप्रकार शनमें भी शक्ति ॥ दाडिम में सुन्दर आकार अर्जुन और कुटज
 में भी उसी प्रकार ॥ १११ ॥ चमेली तगर और पारिजात इनसे कुछ स्वप्न का
 नाश होता है ॥ चिरभिटी ताल हिताल अर्थात् छोटा तालके किसिम का वृ-
 क्षके बड़ा सुपारी ॥ ११२ ॥

स्वर्जूरं नारिकेरञ्च सपैते तृणा राजकाः ॥ तृणराज
 समुत्पन्नं यः कुर्याद् दन्तधावनम् ॥ ११३ ॥ नर-
 श्वागडाल योनिः स्याद्यावद्गङ्गान्न पश्यति ॥ न स्वा-
 देद्द गलताल्वोष्ठ जिह्वा दन्तगदेषु नत् ॥ ११४ ॥
 मुखस्य पाके शोथे च श्वासकास वमीषु च ॥ दु-
 बेलो जीर्ण भुक्तश्च हिक्का मूर्च्छा मदान्वितः ॥ ११५ ॥

भा० स्वर्जूर नारिकेल ये सात तृणराज हैं ॥ इन तृणराजोंका दानवन जी
 मनुष्य करे ॥ ११३ ॥ वह मनुष्य बांडाल योनि होता है ॥ जवनक गंगा
 जीका दर्शन नकरे ॥ गला तालु होठ जीभ और दांत इनके रोगों में दामवन
 नकरे ॥ ११४ ॥ मुखके पाक में शोथ में श्वास कास वमन में दुर्बल अतीर्ण

वाला हिचकी मूला और मदकरके युक्त ॥ ११५ ॥

पिरोरुजात्तस्तृपितः श्रान्तः पानक्तमान्वितः ॥ अ
र्हितः कर्णाश्रुली च नेत्ररोगी नवज्वरी ॥ ११६ ॥ वर्ज्य
येदन्तकाष्ठन्तु हृदामय युतोऽपि च ॥

अजीर्ण भुक्तः न जीर्ण भुक्तं यस्य सः ।

जिह्वा निर्लेखनं हैमं रजतं ताम्रजं तथा ॥ पाटितं मृ
दु तन् काष्ठं मृदु पत्रमयं तथा ॥ ११७ ॥

भा० शिरकी पीड़ासे पीड़ित व्यासा यका मद्यपान की ग्लानिसे युक्त । अ-
र्हित रोगी कर्णाश्रुलवाला नेत्ररोगी नवज्वरवाला ॥ ११६ ॥ दन्तवन नकरे
और हृदयरोगवाला भीनकर ॥ ॥ अजीर्ण भुक्तः अर्थात् जीर्णनहींहोवा
भोजन जिसका वोह ॥ जीभ साफ करनेकी वा सोनेकी या चाँदीकी अथवा
नाम्बेकी ॥ अथवा मृदुकाष्ठ का चीराहवा अथवा मृदु पत्रा ॥ ११७ ॥

(तन् काष्ठं दन्तशोधनयोग्यं काष्ठम्)

दशाङ्गुलं मृदु स्निग्धं तेन जिह्वां लिखेत् सुखम् ॥ त-
ज्जिह्वा मलवेरस्य दुर्गन्धजडता हरम् ॥ ११८ ॥ गंडू-
षमपि कुञ्चीत शीतेन पयसा मुहुः ॥ कफ तृष्णा म
लहरं मुखान्तः शुद्धिकारकम् ॥ ११९ ॥ सुरबोधो
दक गराडूषः कफ रुचि मलापहः ॥ दन्तजाड्य हर
श्रापि मुखलाघव कारकः ॥ १२० ॥

भा० तन् काष्ठ अर्थात् दानवन करनेयोग्यकाष्ठ । द्रुण बंगलका मृदु स्निग्ध
उत्से मुख पूर्वक जीभको साफ करे ॥ वोह जीभका मल विरसता दुर्गन्ध जडता
इनको नाशक है ॥ ११८ ॥ शीत जलसे बारंबार कुञ्चता भीकरे । कफ तृष्णा
मलकानाशक और मुखके भीनर शुद्धिकरनेवाला है ॥ ११९ ॥ मीनं गरम

जलका कुक्का कफ अरुचि मलका नाशक है ॥ दानों के ठरेपन का नाशक
और मुखका हलकापन करने वाला है ॥ १२० ॥

विषमूर्च्छा मदतीनां शोषिणां रक्तपित्ताम् ॥ कुपि-
नात्ति मलक्षीणां सूक्ष्माणां स न शस्यते ॥ १२१ ॥

मुखोष्णोदक गण्डूषः ।

मुखप्रक्षालनं शीत पयसा रक्तपित्तजित् ॥ मुखस्य
पीडिका शोष नीलिकाव्यङ्गनाशनम् ॥ १२२ ॥ कुय्या

द्वापि कटूषोण पयसास्य विशेषनम् ॥ कफवातहरं
स्निग्धं मुखशोषविनाशनम् ॥ १२३ ॥

भा० विषमूर्च्छा मदकरके पीड़ित शोषवाले रक्तपित्तीवाले ॥ कुपितनेवमल
और क्षीण सूखे इनको बौह प्रशस्त नहीं है ॥ १२१ ॥ यह मुखोष्णोदक गण्डू-
ष है । मुखका धोना शीतजल से रक्तपित्तको जीतता है । मुखकी पीडिका शोष
नीलिका और व्यङ्ग इनको दूर करने वाला है ॥ १२२ ॥ कटु ऊष्ण जलसे मुखका
शोधनकरे । कफ वातका नाशक स्निग्ध मुख शोषका विनाशक है ॥ १२३ ॥

कटुतैलादि नस्यार्थं नित्याभ्यासेन योजयेत् ॥ प्रातः

श्लेष्मणि मध्याह्ने पित्ते सायं समीरणे ॥ १२४ ॥

सुगन्धवदनास्निग्ध निःस्वना विमलेन्द्रियाः ॥ नि

र्वेली पलितव्यङ्ग भवेयुर्नस्य शीलिनः ॥ १२५ ॥

सौवीरमञ्जनं नित्यं हितमक्षणे स्ततो भजेत् ॥

(लोचने भवतस्तेन मनोज्ञे सूक्ष्मदर्शने ॥ १२६ ॥)

भा० कटुतैलादि नस्यके अर्थ नित्य अभ्यास से योजना करें । प्रातः का
ल कफ मध्याह्न पित्त सायंकालवान इनमें नस्य योजना करें ॥ १२४ ॥

सुगन्धमुख स्निग्ध निःस्वन स्वच्छ इन्द्रिय ॥ सुरियां बालपकना व्यङ्ग इनसे

इतसे रहित नाम लेनवाले होते हैं ॥ १२५ ॥ श्वेतसुरमें का अञ्जन मदानेत्रों का हित है तिससे सेवन करे ॥ उससे नेत्र सुन्दर और सूक्ष्म दर्शन होते हैं ॥ १२६ ॥

(क) सौवीरं श्वेतसुरमा इति लोकप्रसिद्धम् ॥

स्त्रीतोऽञ्जनं मतं श्रेष्ठं विशुद्धं सिन्धुसम्भवम् ॥ दृष्टेः

काण्डमलहरं दाहक्लेदरुजापहम् ॥ १२७ ॥ अक्षणी-

रूपावहञ्चैव सहते मारुता तपो ॥ नेत्ररोगानजायन्ते

तस्मादञ्जनमाचरेत् ॥ १२८ ॥

(ख) श्रौतोऽञ्जनं कृष्णसुरमा इति लोके ॥ विशुद्धं शो-

धनं विनापि सिन्धुसम्भवम् । सिन्धुनामपर्वतः तत्र स-

म्भवम् ॥ रात्रौ जागरितः श्रान्तः कूर्हितो भुक्तवांस्तथा ॥

भा० (क) सौवीर अर्थात् श्वेतसुरमा सेने लोकमें प्रसिद्ध है । काला सुरमा श्रेष्ठ है । और विने सुधा पहाड़ी सुरमा प्रशस्त है ॥ दृष्टिकी रवाज और मलकानाशक तथा दाह क्लेद पीडाकी दूर करने वाला है ॥ १२७ ॥ नेत्रोंका रूपावह और मारुत तथा आतपको सहते हैं ॥ नेत्ररोगानहीं होते इसवासे अंजनका सेवन करे ॥ १२८ ॥

(ख) स्त्रीतोऽंजन अर्थात् कालासुरमा ऐसा लोकमें कहते हैं ॥

विशुद्ध अर्थात् शोधनके बिनाही सिंधुसम्भव अर्थात् सिंधुनामपर्वत उसमें हुआ । रातका जागाथका वमनकिया हुआ भोजनकिया हुआ ॥

ज्वरातुरः शिरःस्नातो नक्ष्त्रोत्तञ्जनमाचरेत् ॥ १२९ ॥

पञ्चरात्राक्षरप्रमथुकेशरोगाणि कर्तयेत् ॥ केश-

प्रमथुनखादीना कर्तनं सम्प्रसाधनम् ॥ १३० ॥

पौष्टिकं धनमायुष्यं शौचकान्तिकरं परम् ॥ १३१ ॥

भा० ज्वरमें पीड़ित और शिरसे स्नान किया हुआ आंखोंसुरमान डाले ॥ १२९ ॥ पांचदिन नख दाढ़ी केशरोग इनको कतरवावे ॥ केश दाढ़ी नख आदियोंका कतरना प्रोभाकों देनेवाला है ॥ १३० ॥ पौष्टिक और धन आयुके दिन तथा

शीघ्र कान्ति को अत्यन्त करने वाला है ॥ संप्रसाधन अर्थात् शोभा को कर
ने वाला ॥ (ग) सम्प्रसाधनम् शोभाजनकम् ॥

उत्पाटयेत्त लोमानि नासायाः न कदाचन ॥ तदु-
त्पाटनतो दृष्टे दौर्बल्यं त्वरया भवेत् ॥ १३१ ॥ के-
शपाशे प्रकुर्वीत प्रसाधन्यातु साधनम् ॥ केश
प्रसाधनं केश्यं रजोजन्तु मलापहम् ॥ १३२ ॥

भा० नाक के बाल कभी न उखड़ जावे । उसके उखड़ने से दृष्टि की दुर्बलता
शीघ्र होती है ॥ १३१ ॥ सिरके बालों में कंघीसे संझाई करे ॥ केशकी सफा
ई केश को हिन तथा मिट्टी धूल जूवा मेल इनकी नाशक है ॥ १३२ ॥

आदर्श लोकेन प्रोक्तं माङ्गल्यं कान्तिकारकम् ॥
पौष्टिकं बल्यमायुष्यं पापालक्ष्मी विनाशनम् ॥ १३३ ॥
लाघवं कर्मसामर्थ्यं विभक्तं घनगात्रता ॥ दोष क्ष-
योऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते ॥ १३४ ॥ व्या-
याम इह गात्रस्य व्याधिर्नास्ति कदाचन ॥ विरुद्ध
वा विदग्धं वा भुक्तं शीघ्रं विपच्यते ॥ १३५ ॥

भा० शीघ्र का देखना शुभ और कान्तिकारक है । पौष्टिक बल के हिन
आयु के हिन तथा पाप और अलक्ष्मी इनको दूर करने वाला है ॥ १३३ ॥
हलकापन कर्म करने में सामर्थ्य विभक्त और घन शरीर का होना ॥ दोष
क्षय तथा अग्नि की वृद्धि ये सब कसरत करने से होता है ॥ १३४ ॥
व्यायाम से इह शरीर द्वेष को व्याधि कभी नहीं होती ॥ विरुद्ध या विदग्ध
भोजन किया जवा सब शीघ्र पच जाता है ॥ १३५ ॥

भवन्ति शीघ्रं नैतस्य देहे शिथिलतादयः ॥ नचै-
नं सहसाक्रम्य जरा समधि रोहति ॥ १३६ ॥ नचा-
स्ति सदृशान्तेन किञ्चित् स्थौल्यापकर्षकम् ॥

स सदा गुणमाधत्ते बलिनां स्निग्धभोजिनाम् ॥ १३७ ॥

वसन्ते शीतसमये सुतरां सहितो मतः ॥ अन्यदापि
च कर्तव्यो बलाद्देन तथा बलम् ॥ १३८ ॥ हृदयस्थो

यदा वायुर्वक्तुं शीघ्रं प्रपद्यते ॥ मुखञ्च शोषं लभते

तद् बलाद्देस्य लक्षणम् ॥ १३९ ॥ किं वा ललाटे ना-

सायां गात्र सन्धिषु कक्षयोः ॥ यदा सञ्जायते खेदो

बलाद्देन्तु तदादिशेत् ॥ १४० ॥ भुक्तवान् कृतस-

म्भोगः कासो श्वासो कृशः क्षयी ॥

भा० इसके शरीर में त्रिपिण्डता आदिक शीघ्र नहीं होते ॥ वृद्धा इव स्था
सहसा इसको घेर को नहीं चढ़ती ॥ १३६ ॥ उसके समान कुष्ठभी स्थ
लता को घेरने वाला नहीं है ॥ वह सदा स्निग्ध भोजन करने वाले बलवानों
को गुण देता है ॥ १३७ ॥ वसन्त और शीत समय में वोह बहुत हित है ॥ शी
र समय में भी आधी कसरत करनी चाहिये ॥ १३८ ॥ जब हृदय में रहने वा
जावायु शीघ्र मुख में प्रपन्न होना है और मुख सूखने लगता है वोह आधी कस
रत का लक्षण है ॥ १३९ ॥ ललाटे, नासायाम्, सन्धिषु, कक्षयोः के जोड़ बगल इन्
में पसीना होता है उसको आधी कसरत कहते हैं ॥ १४० ॥ भोजन किया हुआ

वा स्त्री से भोग किया हुआ । खांसी वाला दमे वाला दुर्बल क्षय वाला ॥ १

रक्तपित्री क्षतवाला शोषरोग वाला उसको कभी न करे ॥ १४१ ॥

आतन्यायामतः कासाञ्चरः कृद्ध्यमः क्रमः ॥ तृ-

प्यान्तयः प्रतमका रक्तपित्तञ्च जायते ॥ १४२ ॥ अ-

भ्यङ्गं कारयेन्नित्यं सर्वेष्वङ्गेषु पुष्टिदम् ॥

भा० रक्तपित्री क्षतवाला शोषरोग वाला उसको कभी न करे ॥ १४१ ॥ व
रुत कसरत करने से खांसी च्वर वमन अम क्रम तथा क्षय प्रतमका श्वा
रा और रक्तपित्त ये होने हैं ॥ १४२ ॥ सब शरीर में नित्य अभ्यङ्ग करवावे पुष्टि

को देने वाला है ॥ शिरः कान पांशु इतने उसको विशेष करके करे ॥ १४३ ॥

शिरःश्रवणपदेषु न विशेषेण शीलयेत् ॥ ४३ ॥ सा
र्यं गन्धतैलञ्च यत्तेलं पुष्यवासितम् ॥ अन्यद्रव्य
युतं तैलं न दुष्यति कदाचन ॥ १४४ ॥ गन्धतैलम् ॥

(क) गन्धद्रव्याणाम् गुर्वादीनामग्नियोगेन निष्काशितः
रत्नहः ॥ ॥ अभ्यङ्गवानकफहृच्छम शान्ति बलं सुख-
म् ॥ निद्रावर्णमृदुत्वायुष्कुरुते देहपुष्टिकत् ॥ १४५ ॥

भा० सरसोंका तैल गन्धतैल या चमेली आरका तैल अथवा ओंग द्रव्यों से युक्त
तैल कभी दिगाड़ नहीं करता ॥ १४४ ॥ ॥ गन्धतैल ॥ (क) मुर्वा आदि गन्ध
द्रव्योंका अग्नि संयोग से निकाला हुआ तैल । अभ्यंगवानकफ का दूर करने
वाला अमकी शान्ति करने वाला बल सुखको देने वाला निद्रावर्ण मृदुत्व
आयुष्कुरुते करता है और शरीरको पुष्ट करने वाला है ॥ १४५ ॥

अभ्यङ्गः शीलितो मूर्द्धि सकलन्द्रियतर्पकः ॥ दृष्टि पु-
ष्टिकरो हन्ति शिरो भूमिगतान् गदान् ॥ १४६ ॥ केशा
नां बहतां दाह्य गृह्णाती दीर्घतां तथा ॥ कृष्णानां कुरु-
ते कृष्णान् च्छिच्छम पूर्यतामपि ॥ १४७ ॥ नकर्णरोगा
न्नमलं न च मन्या हनुग्रहः ॥ नेत्रैः श्रुतिर्न बाधिर्यं
स्थान्नित्ये कर्णप्रशान्त ॥ १४८ ॥

भा० शिरमें अभ्यङ्ग किया हुआ मूर्ध्ना इन्द्रियोंका तृप्ति करने वाला है । और
दृष्टि तथा पुष्टिको करने वाला है । ४ और शिरमें अन्धत्न बाधिर्य की नाश कर
है ॥ १४६ ॥ केशोंकी अधिकता हृत्ता मृदुता तथा दीर्घता । १ कृष्णानां कुरु-
ते कृष्णान् च्छिच्छम पूर्यतामपि ॥ १४७ ॥ नकर्णरोगा
न्नमलं न च मन्या हनुग्रहः ॥ नेत्रैः श्रुतिर्न बाधिर्यं
स्थान्नित्ये कर्णप्रशान्त ॥ १४८ ॥ निद्रावर्णमे मृदुत्व

सि करारोग मेल मन्यास्तंभ हनुग्रह । ऊंचेसेसुनना औरबहिरापन येनहींहोते ४१

रसाद्यैः पूरणं करोी भोजनान् प्राक् प्रशस्यते ॥ तैला-

द्यैः पूरणं करोी भास्करेऽस्तमुपागत ॥ १४६ ॥ पादाभ्य

ङ्गश्च तन्स्थैर्यं निद्रादृष्टि प्रसादकम् ॥ पाद सुप्तिं

श्रमस्तम्भसङ्गेच स्फुटनप्रणत् ॥ १५० ॥ व्यायामञ्च

रात्रपुषं पद्मो संमर्दितं तथा ॥ व्याधयेनोपसर्पन्ति

वेनतेय मिवोरगाः ॥ १५१ ॥

भा० रसादिकोंका कानमेंडालना भोजनके पहिले प्रशस्तहै । तैलादिकोंका कानमें डालना सायंकालमें प्रशस्त है ॥ १४६ ॥ पैरमें नेलका मलना पैरोंको म ज़बून और दृष्टि का प्रसाद करनेवालाहै ॥ पैरका सो जाना श्रम स्तंभ संकोच और फूटना इनको नाश वारनाहै ॥ १५० ॥ कसरत से कुंठे हूबे और पावोंमें मर्दित ऐसे शरीरके पास व्याधियां नहीं जातीं जैसे सर्प गरुड़के पास नहीं फटकते ॥ १५१ ॥

लोमकूपं शिराजालं धमनीभिः कलेवरे ॥ तर्पयं ह्वल

पाद्यं स्नेहयुक्तोऽवगाहने ॥ १५२ ॥ अद्भिः संसिक्तमू

लानां तरुणास्यत्प्रवादयः ॥ वर्द्धन्ते हि तथा नृणां स्ने

हसंसिक्त धानवः ॥ १५३ ॥ नवज्वरी अर्जासीच नाम्य

क्तव्यः कथञ्चनः ॥ तथा विरिक्तो चान्तश्च निरूद्धो य-

श्च मानवः ॥ १५४ ॥ (क) निरूद्धः दत्तो निरूद्ध वस्ति

श्च यस्मैसः ॥ (क) ॥

भा० सोह युक्त शरीरके स्नानकारनेमें धमनियोंके द्वारा रोमरूप और शिरा जान तृप्तिको प्राप्त होनेहैं शीरवलको धमना वारनेहैं ॥ १५२ ॥ जैसे वृक्षांकी नजोंकी पानीके सींचनेसे पल्लवाधिकवढतेहैं ॥ वैमंती मनुष्योंको स्नेहसे स-

सिक्त होने से धातु बढ़ते हैं ॥ ५३ ॥ नये ज्वर वाला और अजीरणा वाला ये कभी
अभ्यङ्ग भी न करें ॥ उसी प्रकार विरेच लिया हुआ वमन लिया हुआ और नीलि
रूढ़ मनुष्य ये भी न करें ॥ १५४ ॥ (क) निरूढ़ः । अर्थात् दीर्घ निरूढ़ व
स्ति जिसको वोह ।

पूर्वयोः कृच्छ्रता व्याधे रसाध्यत्व मथापिवा ॥

शो धाराणां नत्विह प्रोक्ता वन्ति सादादयो गदाः ॥ १५५ ॥

(क) पूर्वयोः तरुणज्वरिणोऽजीर्णिनोश्च ॥

उद्धर्तनङ्कफ हरं मेदोघ्नं शुक्रदम्परम् ॥ बल्यं शो-

णित कृच्छ्रापि त्वक प्रसाद मृदुत्व कृत् ॥ १५६ ॥

मुखलेपात् दृढं चक्षुः पीनो गण्डस्तथाननम् ॥

कान्तमव्यङ्गं पिडकं भवेत्कमलसन्निभम् ॥ १५७ ॥

भा० तरुण ज्वरो और अजीर्णी इनके व्याधिकी कष्ट साध्यता अथवा असाध्य
ता होती है ॥ और शेष अग्निमान्यादिक रोग यहाँपर नहीं कहे हैं ॥ १५५ ॥

(क) पूर्वयोः अर्थात् तरुण ज्वर और अजीर्णी वालों के ॥

उवर्तना कफ मेदका नाशक शुक्रकी बढ़ाने वाला ॥ और बलको करने वाला
रक्तको उत्पन्न करने वाला तथा त्वचाकी स्वच्छता और श्रुतको करने वाला है
॥ १५६ ॥ मुख लेपसे दृढ नेत्र और मांसल गाल तथा मुख कान्ति युक्त पीटिका
और व्यङ्गसे रहित होना है तथा कमलके समान होना है ॥ १५७ ॥

दीपनं वृष्यमायुष्यं स्नानमोजो बलप्रदम् ॥ कण्ड-

मलश्रमः खेदतन्द्रा तृडदाह पाकचुत् ॥ १५८ ॥

वाद्यैश्च सेकैः शीतान्द्यैः रुष्मान्तर्याति पीडितः ॥ न

रस्य स्नानमात्रस्य दीप्यते तेन पावकः ॥ १५९ ॥ शी-

तेन ययसा स्नानं रक्तपित्तप्रशान्ति कृत् ॥ नदेवोष्यो-

न तोयेन वल्यं वातकफापहम् ॥ १६० ॥ शिरःस्नानमचक्षुष्यमत्युष्णानाम्बुना सदा ॥ वातश्लेष्मकं पीतुं हितन्तश्च प्रकीर्तितम् ॥ १६१ ॥ अशीतेनास्मसास्नानं पथः पानत्रवास्त्रियः ॥ एतद्वा मानवाः। पथ्यं स्निग्धमल्पज्वभोजनम् ॥ १६२ ॥

भा० स्नानदीपनदृश्य आयुकेहित भोज और बलका देनेवाला है। और स्नानजल पथम पसीना तन्ना तथा दाह याक इनका नाशक है ॥ १५८ ॥ अथवा वायु शीतादिकों के सकसे पीडित ह्रवेकी उष्मा भीतर होती है स्नान मात्र किये ह्रवे मनुष्यकी अग्नि उसकरके दीप्त होती है ॥ १५९ ॥ शीत जलसे स्नान रक्तपित्तका नाश करनेवाला है। उष्णजलसे वही स्नान बल और वामकफका नाशक है ॥ १६० ॥ सदा अति उष्णजलसे स्नान न्हाना नेत्रके अहित है। और वही उष्णजल वात कफके प्रकोपमें हित कहा है ॥ १६१ ॥ गरमजलका न्हाना दूधका पीना ज्वान औरत ये मनुष्यके हित है। औरस्निग्ध अल्प भोजन ॥ १६२ ॥ (हरिश्चन्द्रस्यतत।)

यः सदा मलके स्नानं करोति सविनिश्चितम् ॥ वली पलितनिर्मुक्ता जीवेदवर्षशतत्रयः ॥ १६३ ॥ स्नानं ज्वरेऽतिसारे च नेत्रकर्णा निलान्तिषु ॥ आधमानपीनसाजीर्णा भुक्तवल्सु च गहितम् ॥ १६४ ॥ स्नानस्यानन्तरं सम्यग्दस्त्रिणाङ्गस्य मार्जनम् ॥ कान्तिप्रदं शरीरस्य कण्डुत्वगदोषनाशनम् ॥ १६५ ॥

भा० [हरिश्चन्द्रका यह है] जो सदा मलके स्नान करता है वली अधीन कुरियां शिरकेवालको पकना इनत निर्मुक्त ह्रवा मनुष्य सौ बरस जीतो है ॥ १६३ ॥ स्नान ज्वरमें अतिसार में नेत्र कर्ण और अनिल इनकी पीडा में तथा आधमान पीनस अजीर्ण और भोजन किये ह्रवे में निर्विन है ॥ १६४ ॥ स्नानके अनन्तर अच्छीतरह पर बस्त्रसे शरीर को ढँके। शरीर की कान्तीको देनेवाला स्नान त्वचाका दोष नाशक है ॥ १६५ ॥

कौशेयोर्गिक वस्त्रञ्च रक्तवस्त्रन्तथैव च ॥ वात
रूतदम हरन्तत्तु शीतकाले विधारयेत् ॥ १६६ ॥

(कौशयं पद्माम्बरम् टसर वस्त्रञ्च ।

मेध्यं सुशीतम्यत्तघ्नं कषायं वस्त्रमुच्यते ॥ तद्धार
येदुष्णकाले तत्रापि लघु शस्यते ॥ १६७ ॥

कषायद्वौ कमौ इति लोके कषाय रागरक्तं वा ।

भा० रेशमी ऊनी तथा रक्तवस्त्र वातकफ कानाशक होताहै ॥ उसको शीत
कालमें धारणा करे ॥ १६६ ॥ कौशेय पद्माम्बर टसर वस्त्र भी । मेध्यं सुशीत
पित्त नाशक कषायवस्त्र कहहै । उसको गरमी में धारणा करे उसमें भी हल-
का प्रशस्तहै ॥ १६७ ॥ कषायं कुकडै इति लोकमें । या कषायरंगसे रक्त ॥

शुक्लन्तु शुभदं वस्त्रं शीतातप निवारणाम् ॥ नचोष्ण
न्नचवां शीतन्तत्तु वर्षासु धारयेत् ॥ १६८ ॥ यशस्य
ङ्गाम्यमा युष्यं श्रीमदानन्द वह्ननम् ॥ त्वचं वशीक
रं रुच्यं नवनिर्मलमम्बरम् ॥ १६९ ॥

(क) काम्यं कामाद्दीपकम् ।

कदापि न जनैः सद्भिः धार्य्यम्मलिनमम्बरम् ॥ तत्तु
कगडू कृमिकरग्लान्य लक्ष्मीकरम्परम् ॥ १७० ॥

भा० शुक्ल वस्त्र शुभद और शीत आतपका निवारणहै । नचोष्ण न शीत
उसको वर्षामें धारणा करे ॥ १६८ ॥ यशस्य करनेवाला काम्य आयुष्य मम्प
ति आनन्दको वह्ननेवाला । त्वचा हिन वशीकर रुच्यनवीन स्वच्छ वस्त्र ही
ताहै ॥ १६९ ॥ (क) काम्यं अर्थात् कामाद्दीपक ।

कमीभीमज्जनासे धारणा करने योग्यहोताहै मलीनवस्त्र ॥ बोह म
लीन वस्त्र - याज्ञ कृमिकर और ग्लान अशोभा करनेवालाहै ॥ १७० ॥

(अलक्ष्मी अशोभादारिद्र्यञ्च ।

कुङ्कुमञ्चन्दनञ्चापि कृष्णागुरु च मिश्रितम् ॥ १९१ ॥

प्राग्वातकफध्वंसि शीतकाले तदिष्यते ॥ १९१ ॥ च

न्दनं घनसारिणं बलं केन च मिश्रितम् ॥ सुगन्धि

परमं शीतमुष्णकाले प्रशस्यते ॥ १९२ ॥

(घनसारः कपूरः, बालं ह्रीविरम् ।)

चन्दनङ्कुसुमापेतं मृगनाभिसमायुतम् ॥ नचोष्णं

नचवा शीतं वर्षाकाले तदिष्यते ॥ १९३ ॥

भा० अलक्ष्मी अर्थात् अशोभा और दारिद्र्य भी ॥) केसरचन्दन कृष्णागुरु मिलाइवा । उष्ण वातकफका नाशक है । शीतकालमें वो प्रशस्त है ।

॥ १९१ ॥ चन्दन कपूर सुगंधवाला के साथ मिश्रित । सुगन्धिपरम और शीत है वोह उष्णकालमें प्रशस्त है ॥ १९२ ॥ (घनसार कपूर बालं सुगन्धवाला ॥)

चन्दनकेसर करके युक्त और कस्तूरीके सहित । यह न उष्ण न शीत है इसवासे वर्षाकालमें प्रशस्त है ॥ १९३ ॥

(घुसुमाङ्कुङ्कुमम् । मृगनाभिः कस्तूरी ।)

अनुलेप स्तृष्या मूर्च्छां दुर्गन्धस्वेददाहञ्जित् ॥ सौभा

ग्यतेजस्त्वावरां प्रीत्यौजोबलवर्द्धनः ॥ १९४ ॥ स

स्नानानर्हं लोकानामनुलेपोऽपि नो हितः ॥ सुगन्धि

पुष्पपत्राणां धारणाङ्गन्तिकारकम् ॥ १९५ ॥ पाप

रक्षोमहहरं कामदं श्रीविवर्द्धनम् ॥ भूपरौ भूयये

दङ्गं यथा योग्यं विधानतः ॥ १९६ ॥

भा० (घुसुमा अर्थात् केसर) मृगनाभि कस्तूरी) इनका अनुलेप तृष्या मूर्च्छा दुर्गन्ध मरीना दाहका जीवनेवाला है । सौभाग्य तेजस्वत्वाकी कान्ति प्रीति भोज बल इनका बढ़ाने वाला है ॥ १९४ ॥ स्नानके अयोग्य पुरुषोंको चोट

अनुलेप भी हिन नहीं है ॥ सुगन्धि पुष्य यंत्रों का धारण कान्ति कारक है ॥
१७५ ॥ पाप राक्षस ग्रह इनका हरनेवाला कामका उत्पन्न करनेवाला श्री
का बढ़ानेवाला है । यथा योग्य विधिसे शरीरको भूषणों से भूषित करे ॥

शुचि सौभाग्य सन्तोष दायकं काञ्चनं स्मृतम् ॥

ग्रह दृष्टि हरस्पृष्टिकरं दुःस्वप्न नाशनम् ॥ १७७ ॥

पापदौर्भाग्य शमनं रत्नाभरण धारणम् ॥

माणिक्यन्तरणेः सुजात्यममलं मुक्ताफलम् शीत-

गो । मोहेयस्य च विद्रुमो निगदितः सौम्यस्य गा-

रुत्मकान् ॥ देवेज्यस्य च पुष्य रागमसुराचार्यस्य

वज्रं शनेः । नीलत्रिर्मलमन्ययोश्च गदिते गोमेद-

वेडूर्यके ॥ १७८ ॥

भा० स्वर्ण पवित्रता सौभाग्य सन्तोष का देनेवाला कहा है । ग्रहोंकी दृष्टि
को हरनेवाला पुष्टिकारक दुःस्वप्न नाशन है ॥ १७७ ॥ रत्नोंके भूषणोंका
धारण पापदौर्भाग्यताका शमन है ॥ ॥ अच्छी जानका स्वच्छ माणिक
सूर्यका-मौती चन्द्रका-मृगा मंगल का कहा है । बुधका पत्ता । चरुस्यतिका
पुखराज-शुक्रका हीरा-शनिकानीलम-राहुका गोमेद । औरकेतूका वेडूर्य
॥ १७८ ॥

वासः शृङ्गार रत्नानां धारणाम्प्रीति बर्द्धनम् ॥ रक्षो-

घ्न मर्त्यमोजस्यं सौभाग्यकर मुत्तमम् ॥ सततं सि-

द्धमन्त्रस्य महौषध्यास्तथैव च ॥ रोचना सूर्यपादी

नां भाङ्गल्यानाञ्च धारणाम् ॥ १८१ ॥

भा० कपड़ा आभूषण रत्नोंका धारण प्रीतिके बढ़ानेवाला है ॥ रत्नों
का नाशक द्रव्यके देनेवाला औजको बढ़ानेवाला और उत्तम सौभाग्यको
करनेवाला है ॥ १८० ॥ निरंतर सिद्ध मंत्रका तथा महौषधिका । और

गोरोचन सरसों इत्यादिकों का और मंगलको करने वालों का धारण ॥ १८१ ॥

आयुर्लक्ष्मी कारं रक्षोहरं मङ्गलदं शुभम् ॥ हिंसा

भय विध्वंसि वशीकरणा कारणात् ॥ १८२ ॥ ततो

भोजन वेलायां कुर्यान्माङ्गल्य दर्शनम् ॥ तस्य

प्रदर्शनं नित्यं मायु धर्मं विवर्द्धनम् ॥ १८३ ॥

लोकेऽस्मिन्मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणा गोहताशनः ॥

पुष्यस्रक् सर्पिरादित्य आपो राजा तथाष्टमः ॥ १८४ ॥

भा० आयुर्लक्ष्मीको करने वाला रक्षोहरं मंगलको देने वाला । और शुभम् । तथा व्याघ्रादि हिंसकों का भयनाशक और वशीकरण का हेतु है ॥ १८२ ॥ उसके अनन्तर भोजनके समय में मांगल्य दर्शन करे । उसका नित्य दर्शन आयु धर्मका बढाने वाला है ॥ १८३ ॥ लोकमें आठ वस्तु मंगल हैं । ब्राह्मणा अग्नि गाय पुष्यमाला घृत सूर्य्य जल राजा ये आठ हैं ॥ १८४ ॥

पादुका रोहराङ्गुथ्यात् पूर्वं भोजनतः परम् ॥ पाद

रोग हरं वृष्यं चक्षुष्यं ज्वायुषो हितम् ॥ १८५ ॥ शरीरे

जायते नित्यं वाञ्छा नृणाञ्चतुर्विधा ॥ बुभुक्षा च

पिपासा च सुषुप्ताव रतस्थहा ॥ १८६ ॥ भोजनेच्छा

विघातात्स्यादङ्ग मर्दांश्चुचिः श्रमः ॥ तन्द्रालोचन

दौर्बल्यं धातुदाहो बलक्षयः ॥ १८७ ॥

भा० भोजन के प्रथम और पश्चात् खडाऊपर चढ़े । पाद रोग को हरने वाला वृष्य और चक्षुष्य तथा ज्वायुके हित ॥ १८५ ॥ नित्य मनुष्यों के शरीर में चार प्रकार की इच्छा होती है ॥ भोजनकी इच्छा प्यासकी इच्छा सोनेकी इच्छा रतेच्छा ॥ १८६ ॥ भोजनकी इच्छाके विघात से भद्र मर्दांश्चुचिः श्रम

तन्द्रानेत्रकी दुर्बलता धातु राह बलक्षय होता है ॥ १८७ ॥—

विघातेन पिपासाया शोषः कण्ठास्य यो भवेत् ॥ अ
 व्रणस्यावरोधश्च रक्तशोषो हृदिव्यथा ॥ १८८ ॥ निद्रा
 विघाततो जृम्भा शिरोलोचन गौरवम् ॥ अङ्ग मर्हस्त
 या तन्द्रास्या दन्नापाक एव च ॥ १८९ ॥ बुभुक्षितो न
 योऽश्नाति तस्या हरिन्धन क्षयात् ॥ म दो भवति का
 याग्नि र्यथा चाग्नि निर्निन्धनः ॥ १९० ॥ आहारं यच-
 ति शिखी दोषाना हार वर्जितः ॥

भा० प्यासके विघात से शोषकंठ और मुख का होता है ॥ अव्रणके अव-
 रोध रक्तशोष हृदयमें पीड़ा होती है ॥ १८८ ॥ निद्राके विघात से जंभाई औ-
 र शिरनेत्रमें भारीपन ॥ शरीरका झूटना तथा तन्द्रा अन्नका अपरिपाक
 भी होता है ॥ १८९ ॥ जो बुभुक्षित भोजन नहीं करता उसके आहाररूपी दू-
 न्धनके क्षयसे ॥ कायाग्नि मन्द होती है जैसे बेदन्धन अग्नि मन्द होती है ॥
 १९० ॥ अग्नि आहारको पकाता है । और आहार वर्जितहुना दोषोंको
 पकाता है ॥ यचति दोषक्षय च धानून धातुक्षय च प्रा-

णान् ॥ आहारः प्रीणानः सद्यो बल हृद्देह धारणः ॥

स्मृत्यायुः शक्तिवर्णोजः सत्त्व शोभा विवर्द्धनः ॥ १९१ ॥

॥ यथोक्तगुण सम्यक् नरः सेवेन भोजनम् ॥

भा० तथा दोषके क्षय होनेसे धातुओंको पकाता है और धातु क्षय होने
 में प्राणोंको पकाता है ॥ १९१ ॥ आहार तर्पण और तत्काल बलको क-
 रनेवाला शरीरका धारण ॥ मृत्यु आयु शक्ति वर्ण ओज सत्व शोभाका
 बढानेवाला ॥ १९२ ॥ यथोचित गुणसे युक्त भोजनको मनुष्य करें ॥

विचार्य्य दोष कालादीन् कालयो रुभयोरपि ॥ १९३ ॥

(क) उभयोः कालयोः प्रातः सायञ्च । तथाच

सायं प्रातर्मेतुष्याणामशनं श्रुतिबोधितम् ॥ नान्तरा
भोजनं द्युष्यादिनि होत्रसमा विधिः ॥ १८४ ॥ प्रातः ।

(ख) प्रातः । प्रथमयामादुपरि द्वितीययामादर्वाकतथाच ।

याममध्ये न भोक्तव्यं यामयुगं न लङ्घयेत् ॥ याम

मध्ये रसोत्पत्तिर्यामयुगाद् बलक्षयः ॥ १८५ ॥ अन्यच्च

क्षुत्सम्भवति पक्षेषु रसदोषमन्नेषु च ॥ काले वा

यादि वा काले सोऽन्नकाल उदाहृतः ॥ १८६ ॥

भा० प्रातःकाल और सायंकाल में दोपकाल आदिकोंको विचार करके भोजनकरे ॥ १८३ ॥ (क) उभयोः कालयोः अर्थात् सायंकाल और प्रातःकाल जैसे सुबह शाम मनुष्योंका भोजन श्रुति द्वारा कहा हुआ है ॥ और बीच में भोजन नकरे अग्नि होवके समान विधि है ॥ १८४ ॥

(ख) प्रातः अर्थात् प्रथम पहरके ऊपर और दूसरे पहरके पहले उसप्रकार कहा है ॥ प्रथम पहरके बीचमें भोजन नकरना चाहिये । और दूसरे पहरको उत्पन्न नकरे । अर्थात् दोपहरके बाद भोजन नकरे ॥ प्रहरके बीचमें रसोत्पत्ति होती है । और दूसरे पहरके अनन्तर बलका क्षय होता है ॥ १८५ ॥ रसदोष मलके पाक होनेमें क्षुधा होती है ॥ समयपर अथवा समयके चाहर वौही अन्नकाल कहा है ॥ १८६ ॥ [रसादीनां पाकज्ञानमाह]

उद्गार शुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः ॥ लघुता क्षु
त्पिपासा च जीर्णोहारस्य लक्षणम् ॥ १८७ ॥ स्थानमाह]

आहारन्तु नरः कुर्व्यान्निर्हारमपि सर्वदा ॥ उभाभ्यां
लक्ष्युपेतः स्यात्प्रकाशोहीयते श्रियाः ॥ १८८ ॥

निर्हारा मलमूत्रोत्सर्गः । अन्यच्च ।

भा० रसादियोंके पाक का ज्ञान कहते हैं । शुद्ध उकार उत्साह मल मूत्रका यथोचित होना ॥ हलका पन शुधाप्यास यह आहार जीर्ण ज्वेका लक्षण है ॥ १६७ ॥ मनुष्य सकान्तमें भोजन और मल मूत्र का त्याग करे । क्यों कि दोनों से शोभा करके युक्त मनुष्य होता है । और प्रकाश में करने से शोभा से हीन होता है ॥ १६८ ॥
निर्हारः अर्थात् मल मूत्र का त्याग । और भी ।

(क) आहार निर्हार विहार योगाः सदैव सद्भिर्विजने विधेयाः ।

[भोजन पात्रमाह ।]

दोषहृद्दृष्टिदं पथ्य हेमं भोजन भाजनम् ॥ शैष्यं भवति चाक्षुष्यं पित्तहत कफवातकृत ॥ १६९ ॥ कांस्यं बुद्धिप्रदं रुच्यं रक्तपित्त प्रसादनम् ॥ पैतलं वातकृद्द्रुतं मुष्णं कृमिकफ प्रणुत् ॥ २०० ॥ आयसे काच पात्रे च भोजनं सिद्धिकारकम् ॥ शोथ पाण्डु हरं वल्यं कामलापहमुत्तमम् ॥ २०१ ॥ शैलये मृणये पात्रे भोजनं श्रीनिवारणम् ॥ दारुद्रवे विशेषेण रुचिदं श्लेष्मकारितु ॥ २०२ ॥

भा० भोजन और मल मूत्र का त्याग और विहार इनका योग विद्वानोंने सदा ही निर्जनस्थानोंमें विधान किया है ॥ [भोजनके पात्रोंको कहते हैं] दोषों का नाशक दृष्टिका देनेवाला और पथ्य सोनेका पात्र होता है ॥ चांदीका पात्र नेत्रका हिन पित्तनाशक और कफवातको करनेवाला होता है ॥ १६९ ॥ कांसीका बुद्धिको देनेवाला अरुचिरक्त पित्तका प्रसादन होता है । पित्तल वातका करनेवाला रूखा उष्ण और कृमिकफका नाशक होता है ॥ २०० ॥ लोहके और काचके में भोजन सिद्धिकारक है । शोथ पाण्डु को दूर करनेवाला नल्यकामल का नाशक होता है ॥ २०१ ॥ पथ्यरके और महीके पात्रमें भोजन श्रीनिवारण है ॥ लकड़ीके पात्रमें विशेषकरके रुचिको देनेवाला और कफकारी होता है ॥ २०२ ॥

पात्रं पत्रमयं रुच्यं दीपनं विषपाप तुन ॥ जल पात्रं ताम्रस्थं नदभावे मृदोहितम् ॥ २०३ ॥ पवित्रं शीतं

लं पात्रं गठितं स्फटिकेन यत् ॥ काचेन रचितं तद्दत्त
या वैदूर्यसम्भवम् ॥ २०४ ॥ भोजनाग्रे सदा पथ्यं
लवणाद्रक भक्षराम् ॥ अग्निसन्दीपनं रुच्यं जिह्वा
कराठविशोधनम् ॥ २०५ ॥

भा० पत्तेका पात्र रुचिको करनेवाला दीपन विष और पापका नाशक होता है ॥ जलपात्र ताम्बिका हित है और यह नहोता मिट्टीका हित है ॥ २०३ ॥ स्फटिकसे जो गठित पात्र है वह सदा पवित्र है और शीतल है ॥ और जो कांचसे रचित है उसीके समान है तथा वैदूर्यसे इत्रा भी वैसाही है ॥ २०४ ॥ भोजनके पहिले अद्रक और नोनका भक्षण सदा पथ्य है ॥ अग्निका दीपन रुच्य तथा जिह्वा कराठका विशोधन है ॥ २०५ ॥

(क) ननु लवणास्य पित्तजनकत्वाद्द्रकस्य कटुकत्वेन पित्तलत्वाद्बुद्धितस्य वृद्धपित्तस्य कथमप्रथमं लवणाद्रकं युचितम् । उच्यते । लवणं सैन्धवं ज्ञेयं चन्दनं रक्तचन्दनमिति वचनात्त्ववरा मत्र सैन्धवम् तत्र विदोषघ्नं । यत आह । गुणग्रन्थे ।

भा० (क) ननु शंका करने हैं कि लवणको पित्तजनकत्व होनेसे और अद्रकको कटुत्व करके पित्तलं होनेसे वृद्धिको प्राप्तहुये पित्तवाले बुद्धितको कैसे प्रथम लवणा अद्रकका भक्षण उचित है ॥ कहते हैं ॥ लवणसैन्धव और चन्दनरक्तजानना चाहिये इस वचनसे लवण यहां पर सैन्धव है वोह विदोषनाशक है । जैसे कि कहा है । गुणग्रन्थमें ॥

सैन्धवं लवणं स्वातु दीपनम्याचनं लघु ॥ स्निग्धं रुच्यं हिमं वृष्यं सहस्रं नेत्र्यं विदोषहृत् ॥ २०६ ॥

(ख) आद्रकं ननु कटुकमपि न पित्तविरोधि मधुरपाकित्वात् । यत आह । तत्रैव ॥ आद्रिका मेदिनी गुर्वी तीक्ष्णी-

ष्णा दीपनी च सा ॥ कटुका मधुरा पाके सूक्ष्मा वात
कफापहा ॥ २०७ ॥ (क) अथ चान्यदपि लवणा मा-
र्द्रकञ्च नात्र पित्तविरोधि संयोगस्वभावान् । संयोगस-
भावे चैतादृशम् ॥ भोजनस्य पूर्व्वे लक्षणा ईक भक्षणा
बोधकवचनमेव प्रमाणायति ।

भा० सैन्धव लवणा स्वादु दीपन पाचन इत्यादि ॥ स्निग्ध रुचिकारक इति
तुष्य सूक्ष्मनेत्रका हित और त्रिदोषका नापाक है ॥ २०६ ॥

(ख) अद्रक तो कटुक तवा भी पित्तका विरोधी नहीं है मधुर पाक के होने
से । जैसे कि कहा है उसीमें ॥ अद्रक भेदन करने वाला भारी तीक्ष्ण उष्ण
दीपन ॥ कटु और पाकमें मधुर सूक्ष्म वात कफका नाशक होता है ॥

२०७ ॥ (क) अनन्तर और भी लवणा अद्रक यहाँपर पित्तका विरोधी नहीं
है । क्यों कि संयोग स्वभाव होनेसे । संयोग स्वभावतो इस प्रकार कहा है ॥
भोजनका पूर्व्वे लक्षण अद्रक भक्षणा बोधक वचन ही प्रमाण करता है ॥

भोजनादौ दृष्टिदोष विनाशाय ब्रह्मादीन् स्मरेत् । त-
द्यथा अन्नं ब्रह्मा रसो विष्णुर्भोक्ता देवो महेश्वरः ॥

इति सञ्चिन्त्य भुञ्जानं दृष्टिदोषो न बाधते ॥ अञ्जनी ग-

र्भं सम्भूतं कुमारं ब्रह्मचरिणम् ॥ दृष्टिदोष विनाशा-

य हनुमन्तं स्मराम्यहम् ॥ ३ ॥ अञ्जनीयात्तन्मना भूत्वा पूर्व्वे

तु मधुरं रसम् ॥ मध्येऽस्तु लवणो पश्चात् कटुनिक्त क-

षायकान् ॥ फलान्यादौ समञ्जीया हाडिमादीनि बुद्धि-

मान् । विनामोच फलान्दृष्टिर्जनीया च कर्केटौ ॥ २११ ॥

भा० भोजनके आदिमें दृष्टिदोष विनाशके अर्थ ब्रह्मादिकोंको स्मरण करे ।
जैसे कि अन्नब्रह्मा विष्णुरू भोक्ता देव महेश्वर ॥ इस प्रकार स्मरण कर
के भोजन करनेवालेको दृष्टिदोषवाधानही करता ॥ २०८ ॥ अञ्जनीके गर्भ
में उत्पन्न हुआ कुमार ब्रह्मचारी । ऐसे हनुमानको दृष्टिदोषके विनाशके ल

र्धम स्मरण करते हैं ॥ २०४ ॥ तन्मन होके प्रथम मधुर रसको भोजन करे ।
मध्यमें अम्ल लवण और अन्तमें कटुतिक्त कषायोंको भोजन करे ॥ २१० ॥
दाडिम आदि फलोंको आदिमें बुद्धिवान् भक्षण करे ॥ केलेके बिना और
ककड़ीको भी वैसेही छोड़देवे ॥ २११ ॥

मृणाल विषाशालु ककन्देक्षु प्रभृतीनपि ॥ पूर्वमेव
हि भोज्यानि नतु भुक्त्वा कदाचन ॥ २१२ ॥ (क) मृणाल
लं पद्मनालं विषाम्भिषाण्डकम् शालूककन्द प्रसिद्धम् ।
गुरुपिष्टमयं द्रव्यं तण्डुलान् पृथुकानपि ॥ न ज्ञातु
भुक्तवान् खादेन्मात्रां खादेद्बुभुक्षितः ॥ २१३ ॥ घृत-
पूर्वं समश्रीयान् कठिनं प्राक् ततो मृदु ॥ अन्ते पुन
द्रवाशी तु बलात् रोगेण मुञ्चति ॥ २१४ ॥

भा० कमलकी डंडी और कुमुदादिकोंकी जड़का कन्द तथा करव प्रभृतियों
को भी । प्रथमही भोजन करना चाहिये और भोजन करके कभीन भक्षण
करना चाहिये ॥ २१२ ॥ (क) मृणाल अर्थात् पद्मनाल विषमि सण्ड
क शालूककन्द प्रसिद्ध है ॥ भारी पिष्टीकी चीज़ और चावल चिड़वे इन
को भोजन किया जावे कभीन खावे और बुभुक्षित थैहासा खावे ॥ २१३ ॥
प्रथम कठिन घृतके साथ भोजन करे ॥ उसके बाद मृदु ॥ पुनः अन्तमें प
तलीवस्तुका भोजन करने वाला होवे ॥ इस प्रकार करने से बलात्कार
से रोग करके मुक्त होना है ॥ २१४ ॥

मृणाल विषाशालु ककन्देक्षु प्रभृतीनपि ॥ पूर्व
मेव हि भोज्यानि नतु भुक्त्वा कदाचन ॥ २१५ ॥
(क) अयमर्थः । प्राक् घृतपूर्वं कठिनं समश्रीयान् ।
यथा कार्यादि वासिनः । (ख) प्रथमं सव्यञ्जनाद्

त पूर्व्वीरोटिकाम्मुञ्जन्ते । ततो मृदु ससूपादि मोदनम्मु
ञ्जन्ते । अन्ते पुनर्द्रवाशी ॥ भोजनान्ते दधि तक्र दुग्धादि
भुञ्जन्ते । यद्यत् स्वादुतरन्तद्धि दद्यादुत्तरोत्तरम् ॥ भुक्त्वा
यत् प्रार्थ्यते भूयस्तदुक्तं स्वादु भोजनम् ॥ २१६ ॥

भा० (क) यह अर्थ है कि प्रथम घृतके साथ कठिन वस्तु भक्षण करे । जैसे
काशीके रहनेवाले ॥ (ख) प्रथम व्यंजन के सहित घृतके साथ रोटीकी खाते
हैं ॥ उसके अनन्तर दालके साथ चावल भोजन करते हैं । अन्तमें पुनः
द्रवाशी होंगे ॥ अर्थात् भोजनके अन्तमें दही महा दूध इत्यादि भोजन करते हैं ।
जो जो बहुत मीठा हो उसको उत्तरोत्तर भोजन न करें जो फिरसे चाहे सो स्वादु भो-
जन कहा है ॥ २१६ ॥

स्वादुन्नस्य गुणमाह ।

सौमनस्य बलपुष्टि उत्साहं वृद्धि मायुषः । स्वादु स-
ञ्जनयत्यन्न मस्वादुच विपर्य्ययम् ॥ २१७ ॥ अत्युष्णा-
न्नं बलं हन्ति शीत शुष्कञ्च दुर्जरम् ॥ अतिक्लिनं
ग्लानिकरं युक्त्ययुक्तं हि भोजनम् ॥ २१८ ॥ अतिदु-
ताशिताहारे गुणान्दोषान्न विन्दति ॥ भोज्यं शीत
महद्यञ्च स्याद्विलम्बित मश्नुतः ॥ २१९ ॥

भा० स्वादु अन्नके गुण कहते हैं । सौमनस्य बलपुष्टि उत्साह और आयुकी
वृद्धि । इनको स्वादु अन्न उत्पन्न करता है ॥ और अस्वादु इसके विपरीत को
करता है ॥ २१७ ॥ अतिउष्ण अन्न बलको नाश करता है । और शीत शुष्क
दुर्जर चंद्दत गलाइवा ग्लानिको करता है । तथा युक्त करके अयुक्त भोजन भी
ग्लानि करता है ॥ २१८ ॥ आहारके अतिशीघ्र भोजन करने में गुण नहीं होता ।
किन्तु दोष होता है ॥ शीत भोजन अप्रिय होता है । और देरमें भोजन करने से अ-
हृद्य होता है ॥ २१९ ॥ [गुरु त्रिविधन्तन्निवारयन्नाह ।]

मन्दानलो नरोद्रव्यं मात्रागुरु विवर्जयेत् ॥ स्वभावत
श्च गुरुयत् तथा संस्कार तो गुरुः ॥ २२० ॥ मात्रागुरु

स्तु मुद्गादिः माषादिः प्रकृतेर्गुरुः ॥ संस्कार गुरु
पिष्टान्नं प्रोक्त मित्युप लक्षणम् ॥ २२१ ॥ आहा
रं षड् विधञ्चूष्यं पेयं लेह्यं न्तथैवच ॥ भोज्य
म्भक्ष्यन्तथा चर्व्यं गुरु विधान् यथोत्तरम् ॥ २२२ ॥

भा० भारी तीन प्रकारका होता है उसको दूर करके कहते हैं ॥ मन्दाग्नि
वाला मत्तूष्य मात्रा गुरु स्वभाव गुरु और संस्कार गुरु सेसे द्रव्यको तज देवे।
जो स्वभावसे भारी है या संस्कार से भारी है ॥ २२० ॥ मात्रा गुरु मृग इत्यादि
क होते हैं। और उड़द इत्यादिक स्वभावसे गुरु होते हैं ॥ तथाच पिष्टी इत्या-
दिकी संस्कार गुरु कहा है यह उपलक्षण है ॥ २२१ ॥ आहार छः प्रकार
का होता है। चूष्य पेय लेह्य ॥ भोज्य तथा भक्ष्य चर्व्य ये उत्तरोत्तर गुरु
जाने ॥ २२२ ॥

[चूष्यं इक्षु हाडिमादि ।]

(क) पेयम् पानक शर्करोदकादि लेह्यं रसाला क्वथि-
तादि क्वथिता कढ़ी इति लोके । भोज्यं भक्त स्तूपादि ।
भक्ष्यं लडुकं मण्डुकादि चर्व्यञ्चिपिटञ्चणाकादि स्व-
भाव गुरु संस्कार गुरुणोः स्वभाव लघुतात्भक्ष्यस्य भो-
जन परिमाणमाह ॥

भा० चूष्य ऊत्त हाडिमादिक पेय पानक शर्वित इत्यादिक लेह्य रसाला क
ढी इत्यादिक । क्वथिता अर्थात् कढ़ी । भोज्य दाल चावल । भक्ष्य लडु मी
रु इत्यादिक । चर्व्य चिड़वा चना इत्यादिक । स्वभाव गुरु और संस्कार
गुरु का स्वभाव लघुता से भक्ष्यका भोजन परिमाण कहते हैं ॥ (क) ॥

गुरुणा मर्द्धं सौहित्यं लघूनां नृप्तिरिष्यते ।

(ख) अयमर्थः माष पिष्टान्नादिभिर्द्धं सौहित्यं कर्त-
व्यं मुद्गादिभिः स्वभावादेव लघुभिर्मात्रया नृप्तिः कर्तव्ये

त्यर्थः ॥ द्रवो द्रवोत्तरं चर्षपि न मात्रा गुरुरिष्यते ॥

(ग) द्रवः पेयादि द्रवोत्तरः तक्राद्यधिक ओदनादिः मात्रातो ऽधिको ऽपि मात्रा गुरुर्न मन्तव्यः । पेयस्य सर्वतो लघुत्वान् । उक्तञ्च सुश्रुतेन ।

(घ) पेयलेह्यादि भक्ष्याणां गुरुर्विद्यात् यथोत्तरं मिति । पेयम्पेयादि । लेह्यं रसालादि । आदिशब्दान् भोज्य मोदनसूपादि । भक्ष्यम्मोदकादिः

द्रव्याढ्य मपि शुष्कन्तु सम्यगेवोपपद्यते ॥ विशुष्कं मन्त्रं मभ्यस्तं न पाकं साधु गच्छति ॥ २२३ ॥

भा० गुरु पदार्थोंकी आधितृप्ति और लघु पदार्थोंकी पूर्णात्पत्ति इष्ट है ॥ यह अर्थ कहा है कि उडुद पिट्टी वगैरोंकी आधितृप्ति करनी चाहिये ॥ स्वभाव से ही हलके मूंग वगैरों की मात्रा करके शरीरकी तृप्ति करनी चाहिये । द्रव अर्थात् द्रवोत्तर भी मात्रागुरु इष्ट नहीं है ॥ (ग) द्रव अर्थात् पेयादि द्रवोत्तर अर्थात् द्रवादि अधिक ओदनादिक । मात्रासे अधिक को भी मात्रा गुरु न मानना चाहिये । पेयका सर्वतः लघु होने से । कहा है सुश्रुत ने भी । (घ) पेय लेह्यादिक भक्ष्य पदार्थोंको यथोत्तर गुरुजानि ॥ पेय अर्थात् पेयादि लेह्य अर्थात् रसालादिक । आदि शब्दसे भोज्य चावलदाल इत्यादिक । भक्ष्यमोदकादिक । शुष्क भी द्रव्यसे भरा हुआ अच्छीतरह पाकको प्राप्त होना है ॥ और बड़हन सूकाड़वा अन्नसेवन किया अर्द्ध प्रकार पाकको नहीं प्राप्त होता ॥ २२३ ॥

(क) अयमर्थः शुष्कमपि स्वोत्तरोधकमपि द्रव्याढ्यं सम्यक् पाकं याति । केवलस्य शुष्कान्नस्य दोषमाह । विशुष्कं मन्त्रं मित्यादि । [अपक्वन्तन्किम्मवनीत्यपेक्षायामाह पिराडोक्तमसं क्लिन्नं विदाह मुपगच्छति ॥

[पिण्डीकृतम् । अष्टीलावदुद्धृतम् ।]

(ख) असंक्लितं न सम्यगाहं । विदाहमुपगच्छति विदग्धं भवतीत्यर्थः । शुष्कादीनां वैगुण्यमाह ।

शुष्कं विरुद्धं विष्टम्भि वह्निव्यापद कृद्भवेत् ॥

(ग) शुष्कञ्चिपिठकादि । विरुद्धं क्षीरमत्स्यादि । विष्टम्भि चणकमसूरादि वह्निमान्द्यदुर्ग्यान् ॥

न मुक्त्वा न रदम्बित्वा न निशायां न वा वहन् ॥ न

जलान्तरितानद्भिः सक्तू नद्यान्न केवलान् ॥ २२४ ॥

पुनर्दानं पृथकपानं सामिषम्ययसा निशि ॥ दन्त

च्छेदनमुष्णाञ्च सप्त सक्तुषु वर्जयेत् ॥ २२५ ॥

भा० यह अर्थ है । कि शुष्क भी खोत का करनेवाला भी भयसे भरा हुआ अच्छी तरह पर पाकको प्राप्त होता है । केवल शुष्क अन्नका दोष कहने है । विरुद्ध अन्न इत्यादि । अपक्वोह अन्नका होना है इस अपेक्षामें कहने है ॥ पिंडसाहवा नगलाहवा ऐसा अन्न विदाहको प्राप्त होता है । पिंडी कृत अर्थात् अष्टीलाके मानिंद उठा हुआ । असंक्लितं अर्थात् अक्षेपकारजो आर्द्र नहीं । विदाहको प्राप्त होता है । अर्थात् विदग्ध होता है ॥ शुष्कादियोंका वैगुण्य कहने है ॥ शुष्क विरुद्ध विष्टम्भिये यथार्थ अग्निमान्द्यको करनेवाले होने है ॥ (ग) शुष्क अर्थात् चिड़वा इत्यादिक । (विरुद्ध) दूध गळली इत्यादि । (विष्टम्भि) चनामसूर आदिक । अग्निमान्द्य करते हैं ॥ न भोजन करके न दांतोंको छीलके न सायंकालमें न वेगोंका धारण करता हुआ । न बलकरके व्यवहित सक्तू पानीके साथ केवल न भक्षणकरे ॥ २२४ ॥ फिर से देना खाली पीना मांसके साथ पानीसे सायंकालमें दन्तच्छेदन और गरम ये सान सक्तूमें छोड़ देवे ॥ २२५ ॥

सुशुतः । पाकूनाभाशुजीर्णान् मृदुतादवलेहिके ॥

[विषमाशनस्य लक्षणमाह ।]

आलस्य गौरवा दोष षड्भांश्च कुरुतेऽधिकम् ॥ ही-
नमात्रं तनोः कार्श्यं करोति च बलक्षयम् ॥ २२६ ॥

(क) अधिकं अन्नम् । अकाले मुक्तस्य दोषमाह ।

अप्राप्तकाले भुञ्जानो ह्यसमर्थः तनुर्नरः ॥ तां

स्तान् व्याधीन् वामोति मरणञ्चाधि गच्छति ॥ २२७ ॥

भा० सश्रुतने कहा है । शीघ्र जीर्ण होने करके मृदु होने से सत्त्व का प्रबल हो प्रशस्त है ॥ विषमाशन का लक्षण कहते हैं ॥ अधिक मात्रा आलस्य भारीयन गुड गुड़ा शब्दों को भी करती है ॥ और हीन मात्रा शरीर की कृशता और बल क्षय को भी करती है ॥ २२६ ॥ (क) अधिक अन्न । अकाल में भोजन कियेका दोष कहते हैं ॥ अप्राप्तकालमें भोजन करनेवाला असमर्थ शरीर मनुष्य होता है ॥ उन २ व्याधियों को पाता है । और मरण को भी पहुंच जाता है ॥ २२७ ॥

(ख) अप्राप्तकालः कालादति प्राक् भुञ्जानः असमर्थ

शरीरो भवति । तथा सतितांस्तान् व्याधीन् शिरो व्यथा
विस्तृचिकालसक विलम्बिकादीन् प्राप्नोति ।

तेषामाधिक्ये मरणमपि प्राप्नोतीत्यर्थः ॥

कालेऽतीतेऽश्नतो जन्तो वायुनोपहतेऽनले । कृच्छ्रा

द् विपच्यते मुक्तं न स्याद्भोक्तुं पुनः स्पृहा ॥ २२८ ॥

भा० (क) (अप्राप्तकाल) समय से बहुत प्रथम भोजन करनेवाला असमर्थ शरीर होना है । वैसे होनेसे उन २ व्याधियों को अर्थात् शिरपीड़ा विस्तृचिका अलसक विलम्बिकादि व्याधियों को पाता है ॥ उनके बढ़ जाने में मरण को भी प्राप्त होता है ॥ बहुत अवेरमें भोजन करनेवाले मनुष्यको वायु से नष्ट हुई अग्नि में भोजन किया हुआ कष्ट से पाक होता है । और फिर से भोजनकी इच्छा नहीं होती ॥ २२८ ॥

कुक्षेर्भाग द्वयं भोज्यैः स्तृतीये वारि पूरयेत् ॥ वायोः
 सञ्चारणार्थोय चतुर्थं मवशेषयेत् ॥ २२९ ॥ रसे
 न्नान्नस्य रसना प्रथमे नोप तर्पिता ॥ न तथा स्वा-
 दुमाप्नोति ततः शोध्याम्बु नान्तरा ॥ २३० ॥ अत्य
 म्बुपानान्न विपच्यतेऽन्न मनम्बुपानाञ्च स एव दो-
 षः ॥ तस्मान्नरो वह्निविवर्द्धनाय मुहर्मुहुर्वोरि पि-
 वेद्भूरि ॥ २३१ ॥ भुक्तस्यादौ जलम्पीतं कार्श्यं मन्दा
 ग्निदोषकृतं ॥ मध्येऽग्नि दीपनं श्रेष्ठ मन्ते स्थौल्य
 कफप्रदम् ॥ २३२ ॥ (अन्यच्च ।) समस्थू
 लरुशाभुक्त मध्यान्तःप्रथमांम्बुपां । (इति चाग्भटः ।)

भा० कूरु के दो हिस्से भोज्यपदार्थों से भरे । और तीसरे में पानी भरे ।
 तथा चौथा हिस्सा वायुके अग्निजानिके वास्तेवाकी छोड़े ॥ २२९ ॥
 अन्न के रस से जिन्हा पहले तृपकी हुई ॥ वैसी स्वादु नहीं होनी तिस्से ज
 ल करके भीतरसे शोधन करली चाहिये ॥ २३० ॥ बहुत जलके पान से
 अन्न परिपाक नहीं होता । और जलके न पीनेसे भी अन्न परिपाक नहीं हो
 ना ॥ तिस्से मनुष्य अग्निकी वृद्धिके अर्थ बार २ छोड़ा जल पीवे ॥ २३१ ॥
 भोजन के पहिले जल पीने से रुपाता और मन्दाग्नि दोष होता है ॥ और
 मध्य ने जल पीनेसे अग्नि दीपन होता है इसवासे श्रेष्ठ है ॥ तथा अन्न में
 स्थूलता और कफकारी होता है ॥ २३२ ॥ औरभी । भोजनके मध्य ज
 ल पीनेवाला सब अन्नमें पीनेवाला स्थूल प्रथममें पीनेवाला रूपाइसप्रकार

(भुक्तं भोजनं) तृषितस्तु भवेद् गुल्मी लुधितस्तु जलो
 दरी ॥ २३३ ॥ (क) ननु पिष्टा भोजनान्ते दुग्धं पिबन्ति
 तत्कथमुचितं । यतस्त्रिधा विभक्तस्य भोजन काल
 स्य प्रथमो भागो वानस्य द्वितीयः पित्तस्य तृतीयः

कफस्य अतएवाह ॥ अग्नीयात् तन्मना भूत्वा पूर्व
 नुमधुरं रसम् ॥ मध्येऽम्ल लवणौ पश्चात् कटु

तिक्त कषायकान् ॥ ११४ ॥ [अस्यायमाभिप्रायः।]

भा० होते हैं। ऐसा वाग्भटने कहा है ॥ (भुक्तं) भोजन। प्यासा भोजन न करे। और क्षुधितजलन पीवे ॥ तृपितजलके पीनेसे शुल्म रोगवाला होता है। और क्षुधितजलोद्गार रोगवाला होता है ॥ ११३ ॥ (क)। ननु प्रंका करते हैं कि शिष्टलोग भोजन के अन्त में दूध पीते हैं। सो कैसे उचित है। क्योंकि तीन प्रकार विभागे किये जावे भोजनकाल का प्रथम भाग वातका।

और दूसरा पित्तका तीसरा कफका ॥ इसीवास्ते कहते हैं ॥ स्वस्थ चित्त होकर प्रथम मधुर रस भोजन करे। बीचमें खट्ट और नोनका भोजन करे। अन्तमें कटुवा तीताकसैला अन्न भोजन करे ॥ ११४ ॥

(क) इसका यह अभिप्राय है ॥

(क) भोजने पूर्व भुक्तो मधुरो रसो बुभुक्षितस्य वातपित्तयोः शमको भवति भोजनमध्ये भुक्तावस्त्र लवणौ पित्ताण्ये च वन्दि वृद्धिकुरुनः। भोजनान्त समये भुक्ताः कटु तिक्त कषायरसाः कफं शमयन्तीति। अथ भोजनावसान समयस्य कफकालत्वान् तत्र कथं श्लेष्मजनकं दुग्धं पातु मुचितं भवति ॥ यत उक्तम्।

भा० भोजनमें खाया जावा मधुर रस बुभुक्षितके वातपित्त का शमन करता है। भोजनके बीचमें भक्षणा किये जावे। अम्ल लवण पित्ताण्यमें अग्निकी वृद्धिकरते हैं। भोजनके अन्त समयमें भक्षणा किये जावे कटु तिक्त कषाय रस कफको शमन करते हैं ॥ अनन्तर भोजनके अन्तका समय कफका समय होनेसे उसमें कैसे कफको उत्पन्न करनेवाले दुग्धके पीना उचित है ॥
 अैसेके कहा है।

दुग्धं स्वादु रसं स्निग्धं ओजस्य धातुं वर्द्धनम् ॥ वात .

पित्तहरं वृष्यं श्लेष्मलद्रुं रुग्णतलम् ॥ २३५ ॥

इति उच्यते । विदाहीन्यन्नपानानि यानि मुंक्ते हिमान
वः ॥ तद्विदाहप्रशान्त्यर्थं भोजनान्ते पयःपिबेत् ॥

॥ २३६ ॥ [तथाच ब्रह्मपुराणे ।]

कुर्यात् क्षीरान्तमाहारं न दध्यन्त कदाचनेति ॥

लवणान् कटूष्णानि विदाहीन्यति यानि तु ॥

तद्वोषं हर्तुमाहारं मधुरेण समापयन्त ॥ २३७ ॥

भा० दुग्धमधुररस स्निग्ध ओजको करनेवाला धातुकी वृद्धि करनेवा
ला ॥ वातपित्तका नाशक वृष्यकफको करने वाला भारी शीतल ये गुणा
हैं ॥ २३५ ॥ इस प्रकार कहा है ॥ मनुष्य जो विदाही अन्नपानोंको भोजन
करता है ॥ उसके दाहप्रशमनके अर्थ भोजनके अन्तमें दुग्ध पीवे ॥ २३६ ॥
उस प्रकार ब्रह्मपुराणमे कहा है ॥ अन्नमें दुग्ध भोजन करे ॥ और अन्न
में दहीकमी भोजन न करे ॥ लवण अम्ल लवण कटु उष्ण और जीवहृ
त विदाही है ॥ उसका दोष निकालनेके लिये मधुररससे अरक्षित करे ॥
अर्थात् अन्नमें मधुर भोजन करे ॥ २३७ ॥

(क) भोजनावसानसमये दुग्धादि मधुर भोजनेनैव य

द्वितः कफो लवणान् कटुभोजनजनित पित्तस्य चोद्वि

नाशयति पित्तवृद्धिं विनाशनेन कफस्यापि वृद्धिस्तु क्षी-

णा भवति । क्षीणाकफवृद्धिरग्निमान्द्यादीन् व्याधी

नुत्पादयितुं न शक्नोति ॥ १ ॥ खेन नु प्रातोर्नाशनेन

शत्रु हन्त्वृद्धिं दृश्यते ननु क्षीणातां ततः कथं कफः क्षीणा

इति । उच्यते । बलवच्छत्रु विनाशनेन शत्रु हन्तुः दृश्य
ते । तथाच । नाशानान् प्रत्यनीकस्य स्वयं व क्षीयते
यथा ॥ वह्नि सन्तमलाहस्य तमता नाशयेज्जलम् ॥ २३८ ॥

भा० (क) भोजन के अन्त समयमें दुग्धाही भक्षुर भोजन से ही बड़ा इवा कफ
लवण अम्ल कटु भोजन से उत्पन्न इवे पित्तकी वृद्धि को नाश करना है । पित्त वृद्धि
के बिनाश से कफकी सी वृद्धि क्षीण होती है ॥ क्षीण इई कफकी वृद्धि अग्नि
मान्द्रादि व्याधियों को नहीं उत्पन्न कर सकती ॥ - (ख) ननु शंका करते हैं
कि शत्रुके नाशसे शत्रु नाश करनेवाले की वृद्धि देखनी है । न कि क्षीणता न
व कैसे कफ क्षीण होता है ॥ कहते हैं । बलवान् शत्रुके नाशसे शत्रु ना
श करने वाले की क्षीणता देखनी है । उस प्रकार कहा है । शत्रुके नाश से
आपक्षीण होता है ॥ जैसे आगसे सन्तम इवे मोहफो तमता जलनाश करता है

२३८ ॥

(क) ननु भोजनावसान समये भुक्ताः कटु तिक्त

कपायाः रसाः कफ शमयिष्यन्ति वातस्य वृद्धिं विधा

स्यान्ति इति चेत् ॥ तन्न कद्वादीनां क्षीणशक्तिकत्वात् ।

[तथाच] यदेकं नाशयेद्दोषं तन्नान्यं वर्धयेत् कुतः ॥ ना

शने ह्येकदोषस्य यनस्तत् क्षीणशक्तिक मिति ॥ २३६ ॥

(ख) वस्तुनोय एवरसः प्राबुध्यमाण सुक्तस्तम्येव सर्वरसा

वशामवन्ति ॥ [यत आहः सुश्रुतः ॥

भा० (क) ननु शंका करते हैं कि भोजन के अन्तमें के समयमें भक्षणकिये
हवे कटु तिक्त कपाय रस कफ का शमन करेंगे और वातकी वृद्धि को भी क
रेंगे । सो ठीक नहीं ॥ क्यों कि कटु आदियोंकी क्षीण बल होने से । उस त
रह पर कहा है ॥ जो एक दोष को नाश करता है वो दूसरे को कैसे नहीं व
दाता । क्यों कि एक दोषके नाशमें भी क्षीण बल होता है ॥ २३६ ॥

(ख) वस्तुनः जोहां रस अधिक करके भक्षण किया गया है उसीके वश

सर्व रस होते हैं ॥ (ख) ॥ जैसे कि कहा है सुश्रुत ने ॥

जग्धाः सर्वेऽपि गच्छन्ति बलिनो व्रणयतो रसाः ॥

यथा प्रकुपिता दोषाः वशं यान्ति बलीयसः ॥ २४० ॥

(बलिनः रसस्य बलीयसः दोषस्य ।)

एवं भुक्ता समाचासेद्दूक्षग्रहणा पूर्व्वकम् ॥ भोजने

दन्तलग्नानि निर्हृत्याचमने चरेत् ॥ २४१ ॥ दन्तान्तर

गतं चालं शोधनेनाहरेत् ग्रानैः ॥ कुर्यादनिर्हितं त

द्वि मुखस्यानिष्टगन्धताम् ॥ २४२ ॥ दन्तलग्नम

नि हांय्यं लेपं मन्ये तदन्तवत् ॥

भा० भक्षणकिये हुवे सब रस बलिके वश होते हैं ॥ जैसे प्रकोप को प्राप्त हु-
वे दोष बलवान् दोषके आधीन होते हैं ॥ २४० ॥ (बलिनः) रसका । (व

लीयसः) दोषका) ॥ इस प्रकार कहकर रुक्षवस्तुको लेके अंचवे ॥

भोजनमें दांतों से लगे हुवे की निकालकर कुल्लेकरे ॥ २४१ ॥ दांतोंके

भीतर लगे हुवे अन्नको सींकसे धीरे २ निकाले ॥ उसके न निकालने से

मुखमें बुरी गन्ध होती है ॥ २४२ ॥ दांतोंपर जमा हुवा -- लेपन निका-
लना चाहिये क्योंकि उसका नाशक है ॥

न तत्र बह्वशः कुर्यात् यत्नं निर्हरणं प्रति ॥ २४३ ॥

आत्वस्य जल युक्ताभ्यां पारिणम्यां चक्षुषी स्पृशेत् ॥

भुक्त्वा च संस्मरेन्नित्यमगस्त्यादीन् सुखावहान् ॥ २४४ ॥

विष्णुरात्मा तथा चान्नं परिणामश्च वै यथा ॥ सत्ये

न तेन मद्भुक्तं जीर्यत्वन्न मिदन्तथा ॥ २४५ ॥

भा० उसको निकालने के वास्ते बहुत यत्न नकरे ॥ २४३ ॥ आचमनक

रके जलसे युक्त हातों से नेत्रोंको स्पर्शकरे ॥ भोजन करके सुखको देनेवाले अगस्त्य आदियोंको नित्य स्मरण करे ॥ २४४ ॥ जैसे विष्णु आत्मा वैसे ही अन्न परिणामभी ॥ उस सत्य करके यह मेरा भोजन किया हुआ अन्न परिपाकहो ॥ २४५ ॥

अगस्तिरग्निर्बडवानलश्च भुक्तं ममानं
ज्वलयत्व शोषम् ॥ सुखञ्च ये तत्परिणाम सम्भवम् ।
यच्छृन्ते रोगं मम चास्तु देहम् ॥ २४६ ॥ अङ्गारक मग
स्तिञ्च पावकं सूर्यमश्विनौ ॥ पञ्चैतान् संस्मरेन्नि
त्यं भुक्तं तस्याशु जीर्यति ॥ २४७ ॥ इत्युच्चार्य स्वह-
स्ते न परिमार्ज्य तथोदरम् ॥ अनायास प्रदायोनि ।
कुर्यात् कर्म्मारायतन्द्रितः ॥ २४८ ॥

भा० अगस्ति अग्नि और बडवानल भी भोजन किया हुआ मेरा सूर्यपूजा अन्न भस्मकरो ॥ मुझे उसके परिणाम से उत्पन्न हुआ सुखभी देओ और मेरा देह अरोग रहो ॥ २४६ ॥ मंगल अगस्ति अग्नि सूर्य अश्विनीकुमार ॥ इन पाँचोंको जो नित्य स्मरण करे उसका भोजन किया हुआ शीघ्र पचजाता है ॥ २४७ ॥ इस प्रकार उच्चारण करके अपने हान से उदरका परिमार्जन करके परिश्रमको न देनेवाले कर्मोंको सावधान होके करे ॥ २४८ ॥

(क) अतन्द्रितः निरन्तरं जाग्रत तिष्ठेन्न तु स्वप्यात् । भुक्तं मात्रस्य तु स्वप्नाद्दुन्यग्निं कुपितः कफः इति वचनान् ।
जीर्णोऽन्नेर्बद्धते वायुर्विदग्धे पित्तमेधते ॥ भुक्तं मात्रे
कफश्चापि क्रमोऽयं भोजनोपरि ॥ २४९ ॥

भा० (क) अतन्द्रित अर्थात् निरन्तर जाग्रत होके रहै न कि सोवे ॥ भोजन करके सोनेसे कोपको प्राप्त हुआ कफ अग्निको नाश करता है इस वचनसे । अन्नके पचजानेपर वायु बद्धता है और विदग्धमें पित्त तथा भोजन करने मात्रमें कफ ये क्रम भोजन के ऊपर होता है ॥ २४९ ॥

(ख) विदग्धे किञ्चित् पक्के किञ्चिद्रूपके । भुक्तमात्रे स
ज्ज्ञातस्य कफस्य प्रतीकारमाह ।

धूमेनापोह्य हृद्यैर्वा कषाय कटुतिक्तकैः ॥ पूग क
पूर कस्तूरी लवङ्ग-सुमनः फलैः ॥ २५० ॥ फलैः क
टुकषायैर्वा मुखवैशद्यकारिभिः ॥ ताम्बूलयत्र स-
हितैः सुगन्धैर्वा विचक्षराः ॥ २५१ ॥

भा० (ख) विदग्ध अर्थात् कुछ पका और कुछ कच्चा । भुक्त मात्रमें उत्पन्न
ह्वे कफकी विकिन्ता कहते हैं । अगुरु आदिके धूमेसे हृदयके कषाय क
टु तिक्त ॥ सुपाणिकपूर कस्तूरी लवङ्ग-जायफल अथवा कटु कषाय मुख
को सफा करनेवाले फलोंसे सुगन्ध पानके सहित बुद्धिवात् कफको दूर कर
के ॥ २५१ ॥

(क) धूमेन अगुर्वीदि धूमेन । अपोह्य कफं
दूरीकृत्य कषाय कटुतिक्तकैः फलैः कपूर कस्तूरी लवङ्ग
दिभिः । पूगेः क्रमुकैः सुमनः फलैः जातीफलैः सला हरीत
क्यादिफलैः ॥ रती सुप्तोन्मिने स्नाते भुक्ते वान्ते च सङ्ग
रे ॥ सभायां विदुषां राज्ञां कुर्व्यात्ताम्बूल चर्वणम् ॥ ५२
ताम्बूलमुक्तं तीक्ष्णोष्ण रोचनन्तु वरम् सरम् ॥ तिक्तं
क्षारोष्णं कामरक्तपित्त करं लघु ॥ २५३ ॥

भा० (क) धूमेन अर्थात् अगुरु आदिकके धूमसे ॥ अपोह्य अर्थात् कफ
को दूर करके । कषाय कटु तिक्तफल कपूर कस्तूरी लवंग आदियों से ।
पूग अर्थात् सुपाणी सुमनफल अर्थात् जायफल । इलायची हडू आदिक
के फलसे ॥ मेथुनमें सोके उठनेपर स्नान करने पर भोजन करनेपर वमन
करनेपर युद्धमें ॥ पंडित और राजाकी समामें ताम्बूलका चर्वण करे ॥
॥ २५२ ॥ ताम्बूल तीक्ष्णोष्ण रोचन कसैला सर ॥ तीता क्षार कटु और क्षा
भरक्तपित्तको करनेवाला लघु ॥ २५३ ॥

वज्रं श्लेष्मास्यदौर्गन्ध्यं मलवातश्रमा पहम् ॥ सु
 खवैशद्यसौगन्ध्यकान्ति सौष्ठवकारकम् ॥ २५४ ॥
 हनुदन्तमलध्वंसि जिह्वेन्द्रियविशोधनम् ॥ मुख
 प्रसेकशमनं गलाभयविनाशनम् ॥ २५५ ॥ नवं
 तदेव मधुरं कषायानुरसंगुरु ॥ बलासजननं प्रा-
 यः पत्रशाकगुणं स्मृतम् ॥ २५६ ॥ वङ्गदेशोद्भवं
 परं परं कटुरसं सरम् ॥ पाचनं पित्तजनकमुष्णं
 कफहरं स्मृतम् ॥ २५७ ॥ यणं पुराणमकटुखु-
 ल्लकन्तनुपांडुरम् ॥ विशेषाद्गुणबद्धेभ्य अन्य
 हीनगुणं स्मृतम् ॥ २५८ ॥ [ताम्बूलगुणम् ।]

भा० वज्रकफमुखकी दुर्गन्धता और मलवात श्रम इनका नाशक ॥ मुख
 की स्वच्छता और सुगन्धता तथा कान्ति और अन्वेषण इनका कारक ॥
 २५४ ॥ जवाड़ा और दान इनके मलका नाशक तथा जिह्वेन्द्रियका शो-
 धन ॥ मुखके लारका शमनकरनेवाला तथा गलेके रोगका नाशक ।
 कहाहै ॥ २५५ ॥ वही नया पान मधुर और पीछेसे कषायरस भारी ॥ क-
 फका उत्पन्न करनेवाला और प्रायः पत्रशाकके समान गुण कहाहै ॥
 २५६ ॥ वङ्गला पान अत्यन्त कटुरस और सर ॥ पाचन पित्तका उत्प-
 न्न करनेवाला उष्ण कफका नाशक कहाहै ॥ २५७ ॥ पुराणा पान मीठा
 छोटा पतला सफ़ेद ॥ विशेष करके गुणवाला जानना चाहिये । और दू-
 सरा हीन गुण कहाहै ॥ २५८ ॥ [ताम्बूलके गुण कहते हैं ।]

पूगं गुरुहिमं रूक्षं कषायं कफपित्तनुत् ॥ मोह
 नं दीपनं रुच्यं मास्यवैरस्य नाशनम् ॥ २५९ ॥
 पूगं स्याद्दृढमध्यं यत् रिवन्नं वाषि त्रिदोषनुत् ॥
 सरसंगुर्वभिष्यन्दि तद्भृशं बन्दिनाशनम् ॥ २६० ॥

खदिरः कफपित्तघ्नं चूर्णं वात बलासनुत् ॥ संयोग
 तद्विदोषघ्नं सौमनस्यं करोति च ॥ २६१ ॥ मुख वैश
 द्यसौगन्ध्यकान्ति सौष्ठवं कारकम् ॥ प्रभाते पूगं म
 धिकं मध्याह्ने खदिरं तथा ॥ २६२ ॥ निशासु चूर्णम
 धिकं ताम्बूलं भक्षयेत् सदा ॥ आयुश्चे यशो मूले ल
 क्ष्मी मध्ये व्यवस्थिता ॥ २६३ ॥ तस्मादग्रं तथा मूलं
 मध्यं परांस्य वर्जयेत् ॥ परामूले भवेद्वाधिः परां
 ग्रेऽपायसम्भवः ॥ २६४ ॥

भा० सुपारी मारी घीत रूखी कफ पित्तकी नाशक ॥ मोहन दीपन रुचिका
 रक और मुखकी विरसना की नाशक ॥ २६१ ॥ जो सुपारी कैंडी नहीं होती और
 चिकनी होती है वोह विदोष नाशक होती है । जो कुछ हरी होती है वोह भारी
 और अभिप्यन्दी तथा अत्यन्त अग्निनाशक होती है ॥ २६० ॥ कथ्या कफ पि
 त्त का नाशक और चूना वात कफ का नाशक होता है ॥ संयोग से विदोष ना
 शक और अच्छे यन की भी करता है ॥ २६१ ॥ मुखकी शुद्धि सुगन्धना का
 न्ति और सुन्दरताको कलने वाला होता है ॥ प्रातःकाल में सुपारी अधिक औ
 र मध्याह्न में कथ्या अधिक ॥ २६२ ॥ तथा सायंकाल में अधिक चूना इस
 प्रकार ताम्बूल सदा भक्षण करे ॥ इसके अग्रभाग में आयु और जड़मे यश
 और बीचमे लक्ष्मी रहे है ॥ २६३ ॥ इसवास्ते पानका अग्र और मूल, त्याग देवे
 ॥ पानके जड़ में रोग होता है ॥ और पानके अग्रभाग में पापकी उत्पत्ति होती है ।
 ॥ २६४ ॥

चूर्णं परां हरत्यायुः शिरा बुद्धि विनाशिनी ॥ आद्यं
 धियोपमं पीतं द्वितीयं भेदि दुर्जरम् ॥ २६५ ॥ तृतीया
 दनु पातव्यं सुधानुल्यं रसायनम् ॥

भा० चूना और पान आयुको हरता है और शिरा बुद्धि नाशनी है ॥ पहिले
 नेसे दिषके सजान होता है । और दूसरा भेदन करने वाला दुर्जर ॥ २६५ ॥

तीसरे को पिलाके पीछेसे खाना चाहिये वोह अमृतके समान रसायन होता है ॥

ताम्बूलं नातिसेवेत न विरिक्तौ बुभुक्षितः ॥ २६६ ॥

देहदृक् केश दन्ताग्नि श्रोत्र वरी बलक्षयः ॥ शोषः

पित्तानिलास्त्रं स्यादिति ताम्बूलचर्वणात् ॥ २६७ ॥

ताम्बूलं न हितं दन्तदुर्बलेक्षणा रोगिराणाम् ॥ विष

मूर्च्छा मदार्तानां क्षयिणां रक्तपित्तिनाम् ॥ २६८ ॥

मुक्ता शानपद गच्छेच्छने स्तेन तु जायते ॥ अङ्गस

ङ्गान शैथिल्यं ग्रीवा जानु कटी मुखम् ॥ २६९ ॥ मुक्तो

पविशस्तन्द्रा शयानस्य तु पुष्टता ॥ आयुश्चं क्रम

माराणस्य मृत्युर्धावति धावतः ॥ २७० ॥

भा० विरेचन लियाङ्ग और बुभुक्षित ये ताम्बूल को बङ्गनन सेवन करें ॥

॥ २६६ ॥ बङ्गन ताम्बूलके चर्वणसे शरीर दृष्टि केश दन्त अग्नि कर्ण और

वरी तथा बल इनका क्षय ॥ शोष पित्त और वातरक्त होता है ॥ २६७ ॥

ताम्बूल दन्त दुर्बल नेत्र रोगियोंको ॥ और विषमूर्च्छा मद करके पीड़ितकी

तथा क्षय रोगवाला और रक्तपित्ती इनको हित नहीं है ॥ २६८ ॥ भोजन क

रके धीरे २ सौकदम चले बङ्गन चलनेसे शरीरका संघात और गर्दन घुटनाक

मर तथा मुख इनमें शैथिल्य होता है ॥ २६९ ॥ भोजन करके बैठनेवालेको

तन्द्रा और सोनेवालेको पुष्टिता तथा टहलनेवालेको आयु ये प्राप्त होने हैं ।

और दौड़नेवालेके पीछे मृत्यु दौड़ना है ॥ २७० ॥

(चक्रममाराणस्य पदशतं शनैर्गच्छतः ।)

श्वासानष्टौ समुत्तानस्तान द्विः पार्श्वे तु दक्षिणे ॥ नत

स्तद्विगुणान् वामे पश्चात् स्वप्याद् यथा सुखम् ॥

२७१ ॥ वामदिशाया मनलो नामेरुद्धं स्तिजन्तूनाम् ॥

(क) तस्मात्तु वामपार्श्वे शयीत भुक्तं प्रयाकार्यम् ।
 त्रिदोषशमनी खट्वा तूली वानकफापहा ॥ भूशय्या
 चंद्रहरी वृष्या काष्ठपटीतु वातला ॥ २७२ ॥ [अन्यः पुन
 रह] भूशय्या वातलानीव रूक्षा पित्तास्रनाशिनी ॥
 भूशय्या शयनं हृद्यं पुष्टिनिद्रा धृतिप्रदम् ॥ २७३ ॥
 श्रमानिल हरं वृष्यं विपरीतमर्तोऽन्यथा ॥ सम्बाह
 नं मांसं रक्तत्वक्प्रसादकरं परम् ॥ २७४ ॥

भा० चंक्रमं मारास्य अर्थात् सौकरदम् धीरे २ चलनेवालेका) सीधा सो
 कर आठ इवासलेव और दोनों करवट में उन इवासो को लेवे ॥ दहिनी कर
 वट सोलह और बायें करवट बत्तीस इवासलेवे पश्चात् नैसा चाहे येसा सो
 रहे ॥ २७१ ॥ प्राणियों के बायें तरफ नाभिके ऊपर अग्नि है ॥

(कं) निस्से बायें करवट से वो भोजन किया हुआ शीघ्र पाक होनेके अर्थ ।
 तोषाक विछी खाट त्रिदोषको शमन करनेवाली और वात कफ की नाशकफे
 ॥ और जमीनकी शय्या वंहण पुष्ट होती है ॥ तथा नचनेकी शय्या वातकी
 करनेवाली होती है ॥ २७२ ॥ दूसरा फिरसे कहते हैं ॥ पृथ्वीकी शय्या
 वातको करनेवाली और वज्रत रूक्षा तथा रक्त पित्त की नाश करनेवाली है
 ॥ अच्छी शय्यापर सोना हृद्य पुष्टिनिद्रा धैर्य्य इनको देनेवाली है ॥ २७३
 श्रमं वातका हूरं करनेवाला वृष्य होता है और कुशय्या का सोना वृस्स विप
 रीत होता है ॥ २७४ ॥

श्रीनिद्राकरं वृष्यं कफवातश्रमा

पहम् ॥ प्रवात रौद्र्य वैवर्ग्य स्तम्भकहाह पित्तगुत् ॥

॥ २७५ ॥ स्वेद मृच्छी पियासाप्न मप्रवातमनोऽन्य

था । सुखं प्रवातं सेवेन ग्रीष्मे शरदि चान्नरा ॥ २७६ ॥

निवीस मायुषे सेव्यमारोग्याय च सर्वदा ॥ पूर्वोऽ

निला गुरुः सोष्णाः क्षिग्धः पित्तास्रदूषकः ॥ २७७ ॥

भा० संवाहनमांसं रक्तं त्वचां हनको अत्यन्त प्रसन्नता करनेवाला ॥ २७४ ॥
 प्रीति और निद्राका करनेवाला रुष्यकफ वातश्म त्वनका नाशक होता
 है ॥ प्रवात रुक्षता वैवर्ष्यं सन्धुनको करनेवाला और दाह पित्तका ना
 शक होता है ॥ २७५ ॥ पसीना मूर्च्छा तृषा इनका नाशक है और मन्दवात
 इस्से विपरीत होता है ॥ ग्रीष्म और शरदमें अच्छी तरह पर प्रवातका से
 वन करे ॥ २७६ ॥ निर्वात आयुके अर्थ और आरोग्यके अर्थ सर्वदा सेवन
 करना चाहिये ॥ पूर्वका वायु भारीकुछ गरम स्निग्ध पित्त रक्तका विगाड
 नेवाला ॥ २७७ ॥

विदाही वातलः श्रान्ति कफ शोष वतां

हितः ॥ स्वादुः पदुरभिष्यन्दी त्वग्दोषाणो विषकृमीन् ॥

॥ २७८ ॥ सन्निपातं ज्वरं श्वास सामवातज्व कोपयेत् ॥

(क) (स्वादुर्भक्ष्य द्रव्येषु वाङ्मयेन मधुर रसजनकः)

दक्षिणाः पवनः स्वादुः पित्तरक्तहरो लघुः ॥ वीर्येणा

शीतलो बल्यश्चक्षुष्यो नतु वातलः ॥ पश्चिमः प

वन स्तीक्ष्णः शोषणो बलहल्लघुः ॥ मेदः पित्तक-

फध्वंसी प्रभञ्जनविवर्द्धनः ॥ २८० ॥

भा० विदाही वातल होता है थका व कफ वाले को शोष वाले को हित है ॥
 और स्वादु लवण अभिष्यन्दि होता है ॥ त्वचाका दोष बवासीर विषकृमि
 ॥ २७८ ॥ तथा सन्निपात ज्वर श्वास और आमवातको भी करता है ॥

(क) (स्वादु अर्थात् खानेके पदार्थों में अधिक करके मधुर रसको उत्प
 न्न करनेवाला) दक्षिणाका वायु स्वादु पित्तरक्तको दूर करनेवाला हलका
 ॥ वीर्य करके शीतल पुष्ट नेत्रका हित होता है वातल नहीं होता ॥ २७९ ॥
 ॥ पश्चिमका वायु तीक्ष्ण शोषण बलका हनेवाला हलका ॥ मेद पि
 त्तकफका नाशक । और वात बढ़ानेवाला होता है ॥ २८० ॥

उत्तरो मारुतः शीतः स्निग्धो दोष प्रकोपकृन् ॥ ३

दनः प्रकृतिस्थानां बलदो मधुरामृदुः ॥ २८१ ॥

(दोषप्रकोपकत् आनुराणाम् ।)

अग्नियो दाहकद्रुक्षो नैर्ऋतो न विदाहकत् ॥ वायु

व्यस्तु भवेत्किन्तुः ऐशान कटुकः स्मृतः ॥ २८२ ॥

विष्वग्वायुरनायुष्यः प्राणिनां बहुरोगकत् ॥ अत

स्तेनैव सवत सेवितः स्यान्न शर्मणो ॥ २८३ ॥ व्यज

नस्यान्नलो दाह स्वेद मूर्च्छा श्रमापहः ॥ तालहन्त

भवोवान् स्विदोषशामको मतः ॥ २८४ ॥

भा० उत्तर की वायु शीत स्निग्ध और दोषोंको प्रकोप करनेवाला क्लिदन और प्रकृतिस्थांको बल देनेवाला मधुर तथा मृदु होता है ॥ २८१ ॥ (दोषप्रकोप करनेवाला रोगियोंका) अग्निकोणका वायु दाह करनेवाला रुक्ष होता है । और नैऋतवाला विदाह करनेवाला नहीं है । वायुकोणका वायु तीक्ष्ण होता है ॥ और ईशान विषाका कड़ुवा कहा गया है ॥ २८२ ॥ गन्दीवायु आयुके अहित और प्राणियोंके बहुत रोग करनेवाली होती है ॥ इसवास्ते उसको न सेवन करे ॥ यदि सेवन करे तो कल्याणके अर्थ नहीं होता ॥ २८३ ॥

वंशव्यजनजस्तूष्णो रक्तपित्तप्रकोपणः ॥ चामरे च

स्त्रसम्भूतो मायूरो वेत्रजस्तथा ॥ २८५ ॥ सनेदोषजि

तावाताः स्निग्धाः हृद्याः सुपूजिताः ॥ दिवास्वाषं न

कुर्वन्ति यतोऽसौ स्यात् कफावहः ॥ २८६ ॥ ग्रीष्मव

र्ज्येषु कालेषु दिवा स्वप्नो निविध्यये ॥

भा० पंखेकी हवा दाह स्वेद मूर्च्छा और श्रमकी नाशक होती है ॥ ताड़के पंखे की हवा त्रिदोष शमक होता है ॥ २८४ ॥ चांसके पंखेकी वायु उष्ण रक्त पित्तको प्रकोप करनेवाली होती है ॥ चवर की कपड़ेकी मोरछल बदनके पंखेकी ये वायु ॥ २८५ ॥ दोषको जीतनेवाली स्निग्ध हृद्य और श्रेष्ठ है ॥ दिनमें शयन

प्रीष्मसे राहिन कालमें दिनका शयन निषेध किया है ॥

उचितो हि दिवास्वप्नो नित्यं येषां शरीरिणाम् ॥ २८७ ॥

वाताद्यः प्रकुप्यन्ति तेषामस्वपतां दिवा ॥

व्यायाम प्रमदाध्ववाहनरतान् क्लान्तानतीसारिणः

शूलश्वासवतस्तृषा परिगतान् हिक्कामरुत्पीडितान् २८८

क्षीरान् क्षीराकफान् शिशून् मदहतान् वृद्धान् रसा

जीर्णिनो । रात्रौ जगारितान्नरान्निशानान् कामं दिवास्वाप

येन् ॥ २८९ ॥ दिवा वा यदि वा रात्रौ निद्रासात्मी कृता तु

यैः ॥ न तेषां स्वपतां दोषो जाग्रतां चोपजायते ॥ २९० ॥

(स्वपतां दिवा । जाग्रतां रात्रौ ।)

भा० जिन प्राणियों की नित्य दिनमें सोना उचित है ॥ २८७ ॥

उनकी दिनमें न सोनेसे वातादिक प्रकोपको प्राप्त होते हैं ॥ कसरत स्त्री मार्ग-

वाहन इनमें आसक्त श्रमसे पीड़ित अतिसार वाले ॥ शूल श्वासवाले तृषा

रोगवाले हिचकी और वानसे पीड़ित ॥ २८८ ॥ क्षीरा तथा क्षीराकफवाले

क मदकरके पीड़ित वृद्ध और रसाजीर्णवाले तथा रातमें जागि उठे लंघनकरने

वाले इनको दिनमें अवश्य सुलावे ॥ २८९ ॥ जिन्होंने दिनमें या रातमें सोनेकी

आदतकी है ॥ उन सोनेवालोंको दोष नहीं होता ॥ और जागनेवालोंकी इन्ध-

न होता है ॥ २९० ॥ (दिनमें सोनेवालोंको और रातमें जागनेवालोंको)

भोजनानन्तरं निद्रा वातं हरति पित्तहृत् ॥ कफं करो

तिवपुषः शुष्टिसौख्यन्तनीति हि ॥ २९१ ॥ शयनं पि

त्तनाशाय वातनाशाय मर्द्दनम् ॥ वमनं कफनाशाय

ज्वरनाशाय लङ्घनम् ॥ २९२ ॥ आसीनं चूर्णितं यत्तु

नामिष्यन्दि नरूक्षणात् ॥ [अपरानप्युदरेऽन्नस्य संस्था
पनहेतूनाह ।] शब्दान् स्पर्शाश्च रूपाणि रसान् गन्धा-
न् मनः प्रियान् ॥ भुक्तवानपि सेवेन तेनान्नं साधु तिष्ठति
॥ २६३ ॥ (उदरे इति विशेषः ।)

[अन्नस्योदरे स्थिति हेतूनाह ।] शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं
रसो गन्धो जुगुप्सितः ॥ भुक्तमप्रयतञ्चान्नं मतिहा
स्यञ्च वामयेत् ॥ २६४ ॥ (अप्रयतं मयवित्रम् ।)

[अन्यदपि वर्जनीयमाह ।] शयनं चासनञ्चानि न भजे
न्न द्रवाधिकम् ॥ नाग्न्यात्तयो न स्तवनं नयानं नापि
वाहनम् ॥ २६५ ॥ (क) स्तवनं ब्राह्म्यां जल प्रतर
णं यानं मार्गं चलनम् वाहनमश्वादि ।

भा० भोजनके अनंतर निद्रावातकी हरती है । और पित्तकी नाशक है ॥ कफ
की करती है और शरीर को सुष्टि तथा सौख्य को भी करती है ॥ २६१ ॥ पित्तकी
नाश करनेके अर्थ शयन और वातकी नाश करनेके अर्थ मर्दन ॥ कफनाश
के अर्थ वमन और ज्वरनाशके अर्थ लघन हैं ॥ २६२ ॥ बैठना और मर्दन न-
अमिष्यन्दि है नरूक्ष है ॥ औरभी उदरमें अन्नके संस्थापनका हेतु कहने हैं ।
मनके प्रिय शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध इनको । भोजन किया हुआ सेवन करे ।
उत्से अन्न अच्छा रहना है ॥ २६३ ॥ उदरमें यह शेष है ॥ उदरमें अन्नके न ठ
हरनेके हेतु वोंको कहने हैं ।] निन्दित शब्द स्पर्शरूप रस गन्ध ॥ और अप-
वित्र भोजन किया हुआ अन्न तथा वृद्धन हसना भी वमन करता है ॥ २६४ ॥
(अप्रयत । अपवित्र) और भी वर्जनीयों को कहने हैं ।] वृद्धन सोना वृद्ध
न बैठना और बृद्धन पतला इनको न सेवन करे ॥ आग धूपनैरना सयामी औ
र वाहन इनको भी बृद्धन न सेवन करे ॥ २६५ ॥ (क) (स्तवन) हानों से
पानी में नैरना । (यानं) मार्ग में चलना । (वाहन) घोड़ा इत्यादिक ।

व्यायामञ्च व्यावायञ्च धावनं यानमेव च । युद्धं

गीतञ्च पाठञ्च मुहूर्त्तं मुक्त्वास्त्यजेत् ॥ २६६ ॥
 [परिवर्जनार्थं मजीरीस्य हेतूनाह ।] अत्यम्बु पानादि
 षमाशनाच्च सन्धारणात् स्वप्नविपर्ययाच्च ॥ कालेऽपि
 सात्म्यं लघु चापि मुक्त्वा मन्त्रं न पाकं भजते नरस्य ॥ २६७ ॥
 ईर्ष्या भयक्रोधसमन्वितेन लुब्धेन रुग्देन्य निपीडितेन ॥
 विद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्त्रं न सम्यक् परिपाकमेति
 ॥ २६८ ॥ (सन्धारणात् । अधोवातमलमूत्रादीनाम् ।)

[अध्ययान लक्षणा माह ।] अजीर्णी भुज्यते यत्तु तदध्ययानमु-
 च्यते ॥ [तन्निवारनाह ।]

प्राग्युक्ते चानले मन्दे द्विरहो न समाहरेत् ॥

भा० कसरत मैथुन दौड़ना सवारी युद्ध गाना पाठ इनको भोजन किया हुआ
 दो घड़ी न करे ॥ २६६ ॥ त्यागके अर्थ अजीर्णीके हेतुओंको कहते हैं ॥
 बड़न पानी पीनेसे विषम भोजनसे वेगोंके धारण करनेसे सोनेके विपर्यय
 से भी ॥ समयपर सात्म्य हलका भी भोजन किया हुआ अन्न मनुष्यके अच्छी
 तरहपर पाक नहीं होता ॥ २६७ ॥ ईर्ष्या भय क्रोध इन करके युक्त लोभी रोग
 और दीनता करके पीड़ित ॥ तथा जो विद्वेष करके सेवन किया गया अन्न अ-
 च्छे प्रकार पाक को नहीं प्राप्त होता ॥ २६८ ॥ (संधारण) अधोवात मलमू-
 त्रोंका ।) अध्ययान का लक्षणा कहते हैं । अजीर्णीमें जो भोजन किया जाता
 है उसको अध्ययान कहते हैं ॥ [उसके दूर करनेको कहते हैं] प्रातःका
 ल भोजन करनेमें अजीर्णी होवैतो फिरसे दिनमें दूसरी बार भोजन न करे ॥

(क) अरयायमर्थः प्रातर्भुक्तेऽजीर्णी सति । अहन्येव पुन
 र्न भुञ्जीत इत्यर्थः । रात्रौ पुनस्तथापि सति भुञ्जीतैव ।
 [यत आह सुश्रुत एव ।] प्रातराणो त्वजीर्णी तु सायंमा
 शेत्तु द्रव्यतीति ॥ पूर्वमुक्ते विदग्धेऽन्ने भुञ्जानो हन्ति

पावकान् ॥ २९६ ॥ (ख) अस्यत्वयमर्थः । पूर्वं भुक्ते
 रात्रि भुक्ते अन्ने विदग्धे किञ्चित् पक्के किञ्चिदपक्के वा
 तर्भुञ्जानः पावकं हन्तीत्यर्थः । [यत्न आह] सायमाशौ
 त्वजीर्णतु प्रातर्भुक्तं विषोपममिति ।

भा० (क) इसका यह अर्थ है कि प्रातःकाल भोजन करने में अजीर्ण हो
 तो दिनमें ही फिरसे न भोजन करे । रातमें फिरसे वेसे ही होतो भोजन अवश्य
 करे ॥ जैसे कि सुश्रुतने ही कहा है ॥ प्रातःकालके भोजन कियेमें अजीर्ण हो
 तो सायंकालके भोजनमें रोप होता है । पहिले भोजन कियेद्वे विदग्ध अन्नमें
 भोजन करनेवाला अग्निको नष्ट करता है ॥ २९६ ॥ (ख) इसका यह अर्थ
 है कि । पूर्वं भुक्ते) रातके भोजन किये अन्नमें । (विदग्धे) कुछ पके और क-
 छ कच्चेमें । सर्वे भोजन करनेवाला अग्निको नष्ट करता है । जैसे कि कहा है]
 सायंकालके भोजन कियेद्वे अजीर्णमें प्रातःकालका भोजन किये विष के सम-
 मान होता है ॥

[सायमाशाजीर्णो भोजनोपायमाह ।]

भवेद्यदि प्रातरजीर्णो शङ्कन तदाभयां नागरसैन्धवाभ्याम् ।
 विचूर्णितानां शीतजलेन भुक्तो भुञ्जीत चाचं मितमन्नका-
 ले ॥ ३०० ॥ आयुःक्षयभयाद्विद्वान्निसेवेत कामिनीम् ॥

भा० सायंकालके भोजन कियेद्वे अजीर्णमें भोजनका उपाय कहते हैं ॥
 जो प्रातःकालमें अजीर्णको शंका होतो हड़ सोढ सैन्धव लवण इनके चूर्ण को
 शीतलजलसे भक्षण करके भोजनके समयपर घोडासा अन्न भोजन करे ॥
 ॥ ३०० ॥ आयु क्षयके भयसे विद्वान् दिनमें कामिनी को नहीं भोग करते ॥

अवशो यदि सेवेत तदा ग्रीष्मवसन्तयोः ॥ ३०१ ॥

(अवशः अनितेन्द्रियः ॥) आस्यावर्णकफस्थौल्य
 सौकुमार्यैः सुखप्रदाः ॥ अध्वावर्णकफस्थौल्यसौ

कुमार्य विनाशनः ॥ ३०२ ॥ यत्तु चंक्रमणं नाति देह
पीडाकरं भवेत् ॥ तदायुर्वलमेधाग्निप्रदमिन्द्रियबो
धनम् ॥ ३०३ ॥ उष्णीषं कान्तिहृत्केश्यं रजोवातक
फापहम् ॥ लघुतच्छस्यते यस्माद्गुरुपित्तादिरोग
कृत् ॥ ३०४ ॥ उपानद्धारणं नेत्रमायुष्यं पादरोगहृत्
॥ सुखप्रचारभोजस्यं वृष्यञ्च परिकीर्तितम् ॥ ३०५ ॥

भो० यदि अवश अर्थात् जितेन्द्रिय नहो तब भीष्म और वसन्तमें सेवन करें
॥ ३०१ ॥ (अवश) जितेन्द्रिय नहोना । बहुत बैठे रहना कफ स्थूलता सु
कुमारता और सुख इनको देनेवाला है ॥ बहुत मार्गका चलना कफ स्थूलता
और सुकुमारता इनका नाश करनेवाला है ॥ ३०२ ॥ जो भ्रमण शरीरको बड़े
त पीडा करनेवाला चर्हीं होता ॥ वो भ्रमण आयु वल बुद्धि और आग्निको देने
वाला और इन्द्रियका बोधन है ॥ ३०३ ॥ पगड़ी कान्तीको करनेवाली केश
के हित धूलवायु कफकी नाशक है ॥ वोह पगड़ी हलकी अच्छी है क्यों कि
भारी पित्त और नेत्र रोगको करनेवाली है ॥ ३०४ ॥ जूतेका पहिरना नेत्रका
हित आयुको हित और पांवके रोगका नाशक है ॥ अच्छी सवारी भोजको
 देनेवाली वृष्यभी कही गई है ॥ ३०५ ॥

पादाभ्यामनुपानद्धारणं सदा चंक्रमणं नृणाम् ॥ अना
रोग्यमनायुष्यमिन्द्रियघ्नमदृष्टिदम् ॥ ३०६ ॥ छत्र
स्यधारणं वर्षातपवातरजोऽपहम् ॥ हिमघ्नं हिन
मज्जोश्च माङ्गल्यमपि कीर्तितम् ॥ ३०७ ॥ सत्वोत्सा
हवलस्थैर्य धैर्यतेजो विवर्द्धनम् ॥ अवष्टम्भकर
ञ्चापि भयघ्नं दराडधारणम् ॥ ३०८ ॥ ऊर्ध्वच्छाद
नसंयुक्ता शिविका सर्ववल्लभा ॥ तस्यामारोहरणं
नृणाम् त्रिदोषशमकं मतम् ॥ ३०९ ॥

भा० मनुष्यों को सर्वदा विनजूनैरोसे घूमना ॥ आरोग्य को न करने वाला आयु के अहित इन्द्रियका नाशक दृष्टिको न देने वाला है ॥ २०६ ॥ छत्रका धारणा वर्धा शीत धूप धूर गुवार का नाशक है ॥ शीत नाशक नेत्रका हित और मंगलकारक भी कहा है ॥ ३०३ ॥ सन्द उत्साह बल स्थिरता धैर्य और नेत्रका बढ़ाने वाला है ॥ (अवष्टंभ अर्थात् कुञ्जियत को करने वाला और भयकानाशक दंड का धारण है ॥ २०८ ॥ ऊपर कंपड़ से मंदील्लुं पालकी सबके दिल पसन्द होती है । मनुष्यों को उसमें सवार होना विदोष शमक कहा है ॥ २०९ ॥

वातप्लेष्म मदात्ताना महिता भ्रम कृत्तरिः ॥ पित्तानि-
लकरोहस्ती लक्ष्म्यायुः पुष्टिबर्द्धनः ॥ ३१० ॥ घोटका
रोहरां वात पित्तानि भ्रम कृन्मत्तम् ॥ मेदोवर्णा कफ
घ्नञ्च हितं तद्वलिनां परम् ॥ ३११ ॥ आतप स्वेदमूर्च्छी
स पित्तनृणाक्लमश्रमान् ॥ दाहं विवर्णातां कुर्यादे
तान् छाया व्यपोहति ॥ ३१२ ॥ वृष्टिर्वृष्या हिमा बल्या
निद्रालस्य विधायिनी ॥ भयावहा मोहकरी कुहेतिः
कफचानला ॥ ३१३ ॥ (कुहेतिः कुहेरा इति लोके ।)

भा० नाँव वात कफके रोगसे पीड़ितों को अहित और भ्रम करने वाली होती है ॥ स्याथी पित्तवातको करने वाला और लक्ष्मी तथा आयु पुष्टिको बढ़ाने वाला है ॥ ३१० ॥ घोटके की सबारी वात पित्त अग्नि और भ्रम घुलको करने वाली है ॥ मेद वर्णा और कफकी नाशक है ॥ और वोह बलवानों को परम हित है ॥ ३११ ॥ घूप परीना मूर्च्छी रक्त पित्त तथा क्लम श्रम दाह विवर्णाता इनको करता है ॥ और इनको छाया नाश करती है ॥ ३१२ ॥ वृष्टि वृष्य शीत बल्य और निद्रा तथा कालस्य को करने वाली ॥ भयावह मोहको करने वाला कुहेरा होता है ॥ ३१३ ॥ (कुहेतिः) कुहेरा इति लोकमें प्रसिद्ध है ॥

अग्निवात कफस्तम्भ शीतवैपथ्यनाशनः ॥ आमा

भिष्यन्दि शमनो रक्तपित्त प्रकोपसः ॥ ३१४ ॥ सद्यः
 श्लेष्मकरो धूमो नेत्रयो रहितो भृशाम् ॥ शिरो गौरव
 कृचापि वात पित्तञ्च कोपयेत् ॥ ३१५ ॥ [अथाचारः]
 मैत्रो सद्भिः समं कुर्यात् स्नेहं सत्सु तु सर्वथा ॥ संसर्गे सा
 धुभिः कुर्याद सन्सङ्गं परित्यजेत् ॥ ३१६ ॥

(क) सत्सु सर्वथा सज्जनेषु मनोवाक्कर्मभिः— ॥

सेवेन देव भूदेव दृढवैद्य नृपातिथीन् ॥ विमुखाच्चा-
 र्थिनः कुर्यान्नाव मन्येत कानपि ॥ ३१७ ॥ गुरुणां
 सन्निधौ तिष्ठेत् सदैव विनयान्वितः ॥ याद् प्रसारणा
 दीनि तत्र नैव समाचरेत् ॥ ३१८ ॥

भी० गरमवायु कफ अकड़वाव शीतकंप इनका नाशक है ॥ आम अभिष्य
 न्द इनका शमन और रक्तपित्तका प्रकोप करनेवाला ॥ ३१४ ॥ धूवों तत्काल
 कफको करनेवाला और नेत्रोंका अत्यन्त अहित ॥ शिरके भारीपन को
 करनेवाला और वात पित्तको भी विगाड़ता है ॥ ३१५ ॥ अनन्तर आचारको
 कहते हैं ॥ मित्रता सज्जनोंके साथ करे और प्रीति सत्पुरुषोंमें अवश्य करे
 । साधुओंके साथ मेल करे तथा असत्पुरुषोंका संग नकरे ॥ ३१६ ॥

(क) सत्सु अर्थात् सज्जनोंमें मनवाणीकर्मसे ॥

देवग्राह्यण दृढ वैद्य राजा अतिथि इनकी सेवा करे ॥ भिक्षुका दिकोंको वि
 मुखनकरे और अपमान किसीका भी नकरे ॥ ३१७ ॥ सर्ववाही विनय कर
 के युक्त गुरुके पास रहे ॥ पैरोंका फैलाना वहाँपर विलकुल नकरे ॥ ३१८

अपकार परेऽपि स्या दुपकार परः पुमान् ॥ आत्म-
 वत् सकलान् पश्ये द्वैरिणो वृत्तो वसेत् ॥ ३१९ ॥
 नकिञ्चिदात्मनः शत्रुज्ञात्मानं कस्यचिद्रिपुम् ॥
 प्रकाशयेन्नापमानं न च निस्नेहतां प्रभोः ॥ ३२० ॥

नात्मानमुदके पश्येन्न मग्नः प्रविशेज्जलम् ॥ तथा
 नाज्ञानगाम्भीर्यं न हिंस्रप्राणिसेवितम् ॥ ३२१ ॥
 काले हितं मितं सत्यं सम्वादि मधुरं वदेत् ॥ भुञ्जीत
 मधुरप्रायं स्निग्धं काले हितं मितम् ॥ ३२२ ॥ नरात्रौ
 दधि भुञ्जीत न च निर्लवणां तथा ॥ ना मुद्गसूपम्वा
 क्षौद्रं न चाप्यधृतं शर्करम् ॥ ^{३२३}जनस्याज्ञयमालक्ष्य
 यो यथा परितुष्यति ॥

भा० बुराई करनेवाले परभी मनुष्य भलाई करता रहे ॥ अपने सासबको देखे
 । और शत्रु से दूर रहे ॥ ३२१ ॥ अपने शत्रु को जगामी जाहिर न करे और अपनेको
 भी क्रिस्तीका दुशमन जाहिर न करे ॥ तथा अयमान और मालिक की नाराजगी की
 भी जाहिर न करे ॥ ३२० ॥ अपनेको जलमें न देखे और जलमें नंगा होके न धुसे ।
 तथा गम्भीरता पसिद्ध है और हिंसा करनेवाले जीवोंका पालन न करे ॥ ३२१
 परस्पर भाषण करने समयपर हितकम तथा सत्य और मधुर बोलें ॥ समयपर
 अक्सर मधुर स्निग्ध थोड़ा भोजन करे ॥ ३२२ ॥ रतमें दही न भोजन करे और
 लवणके बिना भी न भोजन करे ॥ और मूंगकी दालके बिना और शहतके बिना
 तथा घी चीनीके बिना दही न रखावे ॥ ३२३ ॥ दूसरेकी सेवामें चतुर शुरुम जन
 का आशय देखकर जैसे खुश होवे उसके साथ जैसेही वर्ते ॥ ३२४ ॥

त तथैवा नुवर्तते पराधनपरिहृतः ॥ ३२४ ॥ नैकः

सुखी न सर्वत्र विश्वस्तो न च शङ्कितः ॥ नोद्यमे वि

रमेत् क्वापि हेतुर्विषेत् फलेन तु ॥ ३२५ ॥ (हेतौ फ-

लहेतौ । उद्यमे फले धनादौ ।) वेगान् न धारये

ज्जानु मेनो वेगान्विधारयेत् ॥ न पीडयेदिन्द्रियाणि

न चैतानति लालयेत् ॥ ३२६ ॥

भा० अकेला आपही सुखी नहोवे और सबपर विश्वास नकरे तथा सबपर शंका युक्त भी नहोवे ॥ कहीं भी उद्यम में विराम नकरे ॥ और कारण में ईर्ष्या करे फलमें नकरे ॥ ३२५ ॥ (हेतु) फलहेतु में । उद्यम फलमें अर्थात् घनादिक में ॥ मलमूत्रादिक चौदह वोगों को कभीभी नधारण करे । किंतु मनके वेगोंको धारण करे ॥ इन्द्रियोंको बहुत पीड़ा नदेवे । और उनको बहुत प्यार भी नकरे ॥ ३२६ ॥

वर्षातपादिषु च्छत्वी दगडी रात्रौ भयेषु च ॥ सोपा न
त्कस्तनुं रक्षेत् विचरे युगमात्रदृक् ॥ ३२७ ॥

(क) युगमात्रदृक् अग्रतो हस्त चतुष्टयमितां भूमिं पश्यन् ।
नदीन्तरेन्न बाहुभ्यान्नाग्निस्कन्धमभिब्रजेत् ॥ सन्दिग्ध
नावं वृक्षञ्च नारोहेद् दुष्टयानकम् ॥ ३२८ ॥

(दुष्टयानं दुष्टगजघोटकादि ।)

नासंवृतं मुखं कुर्यात् सभायाञ्च विचक्षणः ॥ कासं
श्वासं तथोद्गारं जृम्भणं क्षवथुं तथा ॥ ३२९ ॥ नासि
कां न विकुष्णीयात्नासीतोत्कटकः क्वचित् ॥ नोर्धजा
नुचिरन्तिष्ठेन्न नरेण लिखेद्भुवम् ॥ ३३० ॥

२१० वरसात और गरमी में छत्रको धारण करे रातमें तथा भयमें डंड धारण करे । जूता पहिनके शरीरकी रक्षा करे ॥ तथा चार हात भूमिको आगे देख कर चले ॥ ३२७ ॥ (क) युगमात्र दृक् । आगे चार हात प्रमारा भूमिको देख कर । दो नदियोंके बीच में बाहुसे नैरे ॥ जहाँ आग लगी हो उसके सामने न जावे ॥ दुष्ट सबरीके मानिंद खतरे वाली नाव तथा वृक्षपर न चढ़े ॥ ३२८ ॥ (ख) दुष्ट न अर्थात् दुष्ट घोड़ा हाथी इत्यादिक । पंडित सभामें मुखोलों न बैठे ॥ खासी सांस डकार जंभाई तथा झींक या थूंकना ये भी सभामें न करे ॥ ३२९ ॥ नाकको न कुरे दे । और कहीं भी उकड़ूँ होके न बैठे । घुटनेको ऊपर करके बहुत देर तक न ठहरे ॥ तथा भूमिको न खसे न कुरे दे ॥ ३३० ॥

सम्भार्जनी रसो नैव देहे दद्यात् कदाचन । न नखेन
 तृणां च्छिन्द्यात्तोच्छिष्टे ब्राह्मणां स्पृशेत् ॥ ३३१ ॥
 नोपरकं नचोद्यन्तं नास्तं वार्तं दिवाकरम् ॥ सर्वथा
 न समीक्ष्येत् न जले प्रतिविम्बितम् ॥ ३३२ ॥ नैक्ष्येत्
 सनतं सूक्ष्मं दीप्ता मेष्ठ्या प्रियाणि चं ॥ पौरन्दरं धनु
 नैव दर्शयेत् कसपि क्वचित् ॥ ३३३ ॥ नैच्छेत् बलव
 ता युद्धं न भारं शिरसा बहेत् ॥ गात्रं तु वादयेत् क्लेशा
 न् हस्तेन धनुयान्न च ॥ ३३४ ॥

भा० भांडू और धूल को कभीभी शरीरमें न लगावे ॥ नख से तृण को न काटे
 और जूटा ब्राह्मणों को न छुवे ॥ ३३१ ॥ ग्रहण लगे हुवे उदय होते हुवे तथा
 अस्त होते हुवे सूर्यको । कभी न देखे और जलमें प्रातयिस्त्र पड़े हुवे की भी
 न देखे ॥ ३३२ ॥ निरन्तर सूक्ष्मको न देखे । दीप्त अमेध्य और अप्रिय दूतको
 भी न देखे । कौहंभी इन्द्रके धनुषको न देखे ॥ ३३३ ॥ अपने से बलवानके सा
 ध युद्ध करे । और शिर पर बोझा न उठावे । शरीर की न बजावे और केशोंकी
 हाथ से न चावे ॥ ३३४ ॥

न गच्छेत् पूज्ययोर्मध्ये दम्पत्यारन्तरणे च ॥ रिपोरज्जं
 न भुञ्जीत गरुणाकात्रमपि क्वचित् ॥ ३३५ ॥ प्रतिभूर्न
 भवेत् क्वापि न च साली वृथा भवेत् । (प्रतिभूः जामिनः)
 स्यागीन्न धारयेज्जातु द्यूतं दूयात्परित्यजेत् ॥ ३३६ ॥
 (स्यागीथानी ।) विश्वासं नाचरेत् स्त्रीणान्ताः स्वतन्वा
 ष्व नाचरेत् ॥ रक्षणीयाः सदा यत्ना द्यौवनेतु विशेषतः ॥
 ॥ ३३७ ॥ न भिन्ने शयने सुप्या घ्रानेक विवरेऽपि च ॥ नै
 को देवालये नैव रात्रौ तरुतलेऽपि च ॥ ३३८ ॥

भा० पूज्यों के बीच में से न जावे। नया खाविन्द और न के बीच में से न जावे। शुक्र का अन्न न भोजन करे नया वैश्या का अन्न भी न भोजन करे ॥ ३३५ ॥

(क) कहीं पर भी जामिन न होवे और भूठी गवाही न देवे ॥ (प्रतिभूः) जामिन। थानी की काभी न धारण करे। और जुदे को दूर से छोड़ देवे ॥)

(स्यागी अर्थात् घाती। स्त्रियों का विश्वास न करे। और उनको स्वतन्त्र भी न करे ॥ यत्न के साथ सर्वदा रक्षणीय है परन्तु यौवन में विशेष करके रक्षणा करनी चाहिये ॥ ३३६ ॥ जुदे विस्तर पर न सेवे। और अनेक छेक वाले विस्तर पर भी न सेवे। अकेला देवालय में न जावे। रात में वृक्ष के नीचे भी अकेला न जावे ॥ ३३७ ॥

एवं दिनानि गमयेत् सदाचारः परः सदा ॥ न

तो रात्रि प्रयुक्तानि कुर्यात् कर्माणि मानवः ॥ ३३८ ॥

इत्याचारं समासेन भाषितं यः समाचरेत् ॥ स विन्द

त्यायु शरोग्यं प्रीतिं धर्मं धनं यशः ॥ ३३९ ॥

[अथ सन्ध्यायां निषिद्धाणि कर्माण्यहः।]

एतानि पञ्च कर्माणि सन्ध्यायां वर्जयेद्बुधः ॥ आ

हारं मैथुनं निद्रां सम्पाठङ्गति मध्वनि ॥ ३४० ॥ भोज-

ना ज्जायति व्याधि मैथुनां द्वर्भ वैकृतिम् ॥ निद्रायाः निः

स्वता पाठादायुर्हानि गन्ते भयम् ॥ ३४१ ॥

भा० इस प्रकार सदाचार पर जवा दिनोंको निरन्तर गुजारे ॥

उसके अनन्तर मनुष्य रात में कहे जुदे कर्मोंको करे ॥ ३३८ ॥ इस प्रकार संक्षेप से कहे जुदे आचारको जो करे ॥ वोह आयु शरोग्य प्रीति धर्म धन और यश इनको पाता है ॥ ३३९ ॥ अनन्तर सायंकाल में जो निषिद्ध कर्म हैं उनको कहते हैं। पण्डित इन पांच कर्मोंको सायंकाल में न करे ॥ भोजन मैथुन निद्रा याद करना और रास्ते का चलना ये पांच कर्म ॥ ३४० ॥ भोजन से व्याधि उत्पन्न होती है ॥ मैथुन विगाड़ ॥ सोने से निरुत्साहता पाठ मे आयुकी हानि ॥ ३४१ ॥

[अथ रात्रिचर्यामाह ।]

ज्योस्त्रा शीता स्मरानन्द प्रदा वृद् पित्तदाहहृत् ॥ ततो
हीनगुराः कुर्याद्वप्यायोऽनिलङ्गफम् ॥ ३४२ ॥
तमोभयावहं मोह दिश्याह जनकम्भवेत् ॥ पित्तह
त्कफहत कामवर्द्धनं क्लमकृच्च तत् ॥ ३४३ ॥ रात्रौ
च भोजनदुग्ध्यात् प्रथम प्रहरान्तरे ॥ किञ्चिद्दूनं स
मश्रीयात् दुर्जरन्तत्र वर्जयेत् ॥ ३४४ ॥ शरीरे जा
यते नित्यं देहिनः सुरतसृहा ॥

भा० चान्दनी शीत और कामके आनन्दको देनेवाली है । तथा लया दाह
पित्तको देनेवाली है ॥ उसे हीनगुरा पाला है वान कफको करता है ॥ ३४२ ॥
अधेरा भयको देनेवाला और मोह तथा दिशाभ्रमको करनेवाला होता है ॥
वोह पित्तकानात्रक कफको दूर करनेवाला और कामका बढ़ानेवाला तथा
विना परिश्रमको थकनको करनेवाला है ॥ ३४३ ॥ रातको पहिले पहरके बीच
में भोजनकरे । कुछ कम भोजनकरें उसमें खराब जलेको छोड़ दें ॥ ३४४ ॥
मनुष्यके शरीरमें नित्य मैथुन की इच्छा होती है ॥

अव्ययायान्मेह मेदो वृद्धिः शिथिलता तनोः ॥ ३४५ ॥
वालेतिगीयतेनारी यावद्ध्याणि षोडशः ॥ तनस्तु तरु
णी ज्ञेया द्वात्रिंशद्वत्सरावधि ॥ ३४६ ॥ तद्द्वै मधि रू
हास्यान् पञ्चाशद्वत्सरावधि ॥ वृद्धा नत्यरतो ज्ञेया
सुरतोन्स विवर्जिता ॥ ३४७ ॥

भा० कसरत नकरनेसे प्रमेह मेदकी वृद्धि शरीरकी शिथिलता होती है ॥ ३४५ ॥
॥ सोलह वरस तक स्त्री बाला इस प्रकार कही जाती है ॥ उसके ऊपर वर्नास
वरस तक तरुणी जाननी चाहिये ॥ ३४६ ॥ उसके ऊपर पचास वरस तक अ
धिरूहा अर्थात् अधेह होती है ॥ उसके बाद सुरतोन्सव से रहित बुद्धा जाने ॥ ३४७ ॥

(अधिरूढ़ा (क) प्रौढ़ा।) निदाघशरदो बाला हिता
 विषयिणां मता ॥ तरुणी शीत समये प्रौढ़ा वर्षाव
 सन्तयोः ॥ ३४७ ॥ नित्यम्बाला सेव्यमाना नित्यं व-
 र्धयते बलम् ॥ तरुणीं ह्रासयेच्छक्तिं प्रौढ़ोद्भावयते
 जराम् ॥ ३४८ ॥ सद्यो मांसं न वञ्चान्नं बाला स्त्री क्षीर
 भोजनम् ॥ घृतमुष्णोदके स्नानं सद्यः प्राणकराणि
 षट् ॥ ३५० ॥

भा० (अधिरूढ़ा) प्रौढ़ा। ग्रीष्म और शरदमें अय्याणों को बाला हित
 कही है ॥ शीत कालमें तरुणी और वर्षा वसन्त में प्रौढ़ा प्रशस्त है ॥ ३४७ ॥
 नित्य सेवन की हुई बाला प्रतिदिन बल को बढ़ाती है। तरुणी शक्तिको
 घटाती है ॥ और प्रौढ़ा वृद्धावस्था को उत्पन्न करती है ॥ ३४८ ॥ तत्कालका मां
 स नवीन अन्न बाला स्त्री दुग्धभोजन घृत उष्णोदकमें स्नान ये छः तत्काल
 बलको करने वाले हैं ॥ ३५० ॥

पृति मांसं स्त्रियो वृद्धा बालार्कस्तरुणो दधि ॥ प्रभाते
 मैथुनं निद्रा सद्यः प्राणहराणि षट् ॥ ३५१ ॥ (क) प्राण
 शब्दोऽत्र बलवाचकः बालार्कः कन्यार्कः ।)

वृद्धोऽपि तरुणीं गत्वा तरुणत्वमवाप्नुयात् ॥ वयोऽधि
 कां स्त्रियङ्गत्वा तरुणाः स्थविरायते ॥ ३५२ ॥ आयुष्म
 न्नो मन्दजरा वयुर्वरिणी बलान्विताः ॥ स्थिरोपचितमां-
 साश्चा भवन्ति स्त्रीषु संयताः ॥ ३५३ ॥

भा० सड़ा मांस वृद्धास्त्री कन्याका सूर्य्य तरुणका जमाया दही प्रातः काल
 में मैथुन और निद्रा ये छः तत्काल बलको हरने वाले हैं ॥ ३५१ ॥

(क) प्राण शब्द यहाँपर बलवाचक है। (बालार्क) कन्या का सूर्य्य ॥

भा० वृद्धी तरुणी के साथ भोग करने से तरुणांता को प्राप्त होता है ॥ और तरुणा पुरुष अपने से बयमें अधिक स्त्री के साथ भोग करने में हृद् होता है ॥ ३५२ ॥ स्त्री से रुके ऊँचे पुरुष आयु वाले अल्पवृद्धता युक्त शरीर की कान्ति और बल करके युक्त । कठिन और बड़े ऊँचे मांसवाले होते हैं ॥ ३५३ ॥

सेवेन कामतः कामं बलाद्वाजीकृतो हिमे ॥ प्रकृत
मन्तु निषेवेन मैथुनं शिशिरागमे ॥ ३५४ ॥ त्वंहा
वसन्त प्रारदोः पद्मात् दृष्टि निदाघयोः ॥ सुश्रुतस्तु
विभिस्त्रिभिरहोभिर्हि समेयात्प्रमदान्नरः ॥ सर्वे
ष्वृतुषु घर्मेषु पद्मात्पद्माद्भजेद्बुधः ॥ ३५५ ॥

(क) (समेयात् सङ्गच्छेत् घर्मे ग्रीष्मे ।)

शीते रात्रौ दिवा ग्रीष्मे वसन्ते तु दिवानिशि ॥ वर्षा
सुवारिदध्वाने शरत्सु स्वरसः स्मरः ॥ ३५६ ॥

भा० शीत में वाजीकरण की औषधि किया ऊँचा इच्छा से बलके साथ नैतु न करे । और शिशिर ऋतु में बद्धत मैथुन करे ॥ ३५४ ॥ वसन्त और प्रारद में तीसरे दिन संभोग करे । तथा वर्षा और ग्रीष्म में पन्द्रहवें दिन मैथुन करे ॥ (सुश्रुत ने कहा है) । सब ऋतुओं में पुरुष तीसरे २ दिन स्त्री के पास जावे ॥ और ग्रीष्म में पन्द्रह २ दिन में चतुर पुरुष स्त्री के पास जावे ॥ ३५५

(क) (समेयात्) सङ्ग करे । (घर्मे । ग्रीष्म में) शीत ऋतु में रात को ग्रीष्म में दिन को और वसन्त में दिन तथा शरत्को ॥ वर्षा ऋतु में मेघके गरजने पर और शरत् में स्वरस में काम होता है ॥ ३५६ ॥

उपेयात् पुरुषो नारीं सन्ध्ययो नैव पर्वसु ॥ गोस
र्गै चार्द्ध रात्रे च तथा मध्य दिनेऽपि च ॥ ३५७ ॥ विहा
रम्भार्थं या कुर्व्याद्देशोऽति शयसंछने ॥ ३५८ ॥

व्याङ्गनागाने सुगन्धे सुखमारुते ॥ देशे गुरु जनाम
 चै विहृतेऽतिवपाकरे ॥ ३५८ ॥ श्रूयमाणे व्यथाहे
 तु वचने नरमेत नाः ॥ स्नातश्चन्दन लिप्ताङ्गः सु
 गन्धः सुमनोऽन्वितः ॥ ३५९ ॥

भा० पुरुष स्त्रीके पास प्रातःकाल और सायंकाल की सन्धित पर्वमें न जा
 वे ॥ रातके पिछले पहरमें आधी रात में तथा दोपहर दिनके मध्यमें ॥ ५९
 ॥ स्त्रीके साथ विहार वज्रत वन्द जगह में करे ॥ मनोहर सुननेके योग्य अ
 ङ्गनाके गानमें सुगन्ध अच्छे वायुमें ॥ गुरुजन के पास खुलेझूवे वज्रत शर
 मका जगह में ॥ ३५८ ॥ व्यथाके करनेवाले वचनोंके सुननेमें पुरुष न
 रमण करे ॥ स्नान किया चन्दन शरीर में लगाये जवा सुगन्ध पुष्पांकरके यु
 क्त ॥ ३५९ ॥ भुक्तवृष्यः सुवसनः सुवेशः समलङ्कृतः ॥

ताम्बूल वदनः पत्न्या मनुरक्तो धिकः स्मरः ॥ ३६० ॥

पुत्रार्थी पुरुषो नारी मुपेयाच्छयने शुभे ॥ अत्याशि

तोऽधितिः क्षुद्धान् सव्यथाङ्गः पिपासितः ॥ ३६१ ॥

बालो वृद्धोऽन्यवेगार्तस्यजे द्रोणी च मैथुनम् ॥

(क) (रोगी मैथुन सम्बर्द्धनीय रोग युक्तः) ॥

भाष्यी रूपगुरोपेतां तुल्यशीलां कुलोद्भवाम् ॥ अ

निकामोऽभिकामान्तु हृष्टो हृष्टा मलङ्कृतम् ॥ ३६२ ॥

भा० गुग्गादि पदार्थोंको भोजन किया जवा अच्छे वस्त्र पहिरे जवा अच्छे
 लिवास वाला आभूषणों से युक्त ॥ पान खाये जवा पत्नी में वज्रत प्रीति वा
 ला अधिक काम युक्त ॥ ३६० ॥ ऐसा पुत्रार्थी पुरुष अच्छे शयन पर स्त्रीके
 साथ सोरहे ॥ वज्रत भोजन किया जवा अधीरज वाला क्षुधित शरीर में
 पीडावाला प्यासा ॥ ३६१ ॥ बालक वृद्ध और मलादि वेगों से पीड़ित और
 रोगी थे मैथुन न करे ॥ (रोगी) मैथुन को बढ़ाने वाले रोग से युक्त ॥
 रूप गुरो से युक्त सुशील अच्छे कुल में उत्पन्न हुई ॥ प्रीतिवाली हर्ष युक्त

ऐसी स्त्रीको वाजीकरण औपधियों से चंद्हित अधिक कामदेववाला हर्ष युक्त पुरुष युक्ति के साथ भोग करे ॥ ३६२ ॥

सेवेन प्रमदा युक्त्या वाजीकरण चंद्हितः ॥ रजस्वला
मकामाञ्च मलिना अप्रियान्तथा ॥ ३६३ ॥ वर्णा वृद्धां
वयोवृद्धां तथा व्याधिप्रपीडिताम् ॥ हीनाङ्गिं गर्भिणीं
द्वेष्यां योगिरोगसमन्विताम् ॥ ३६४ ॥ समीपान्द्रु रूप
त्नीञ्च तथा प्रव्रजितामपि ॥ नाभिगच्छेत्पुमाव्दारीं
भूरिवैगुण्यशङ्कया ॥ ३६५ ॥ रजस्वलाङ्गुतवतो नर
स्यासंयतात्मनः ॥ दृष्ट्यायुस्तेजसां हानिरधर्मश्च त
तो भवेत् ॥ ३६६ ॥ लिङ्गिनीं गुरुपत्नीञ्च सगोत्रा म
थपर्वसु ॥ वृद्धाञ्च सन्ध्योश्चापि गच्छतो जीवन
क्षयः ॥ ३६७ ॥ (क) (लिङ्गिनीं प्रव्रजिताम् ।)

भा० कपड़ों से बैठी हुई जिसका कामदेव नजागा हो मलीन अप्रिय ॥ ३६३ ॥
जान में बड़ी उमर में बड़ी तथा व्याधिसे पीड़ित ॥ हीन अंगवाली गर्भिणी कर्कषा
योगि रोगसे युक्त ॥ ३६४ ॥ सगोत्रा और गुरुकी स्त्री तथा फकीरन के पास भी
वृद्धत विकारकी शंका होतौ पुरुष स्त्रीके पास नजावे ॥ ३६५ ॥ रजस्वलाके पा
स सोनेवाले अग्निनेन्द्रिय पुरुषकी दृष्टि और आयु तथा तेजकी हानि होती है ।
और उससे अधर्म भी होता है ॥ ३६६ ॥ ब्रह्मज्ञय्येकी धारण करनेवाली और
गुरुकी स्त्री तथा अपने गौतकी और वृद्धा इनके साथ भोग करनेसे और पर्वों
में मैथुन करनेमें । अथवा सायं प्रातः संध्यामें मैथुन करनेसे आयुका क्षय ही
ता है ॥ ३६७ ॥ (क) नपस्विनी)

गर्भिरायां गर्भपीडा स्याद्वाधिनायां वलक्षयः ॥ हीनाङ्गिं
मलिनां द्वेष्यां क्षामाम्बन्ध्या मसं वृते ॥ ३६८ ॥ देशोऽभि

गच्छतो रेनः क्षीणं ग्लानं मनो भवेत् ॥

(क) गर्भिणी गर्भवास दिवसात् द्वितीये मासि गर्भस्थिते र
निश्चिते यद्योक्तनक्षत्रादि लाभा भवे वा तृतीये मासि पुं
सवनं कृते नाभिगच्छेत् ॥

आ० गर्भणी के साथ सोनेसे गर्भमें पीड़ा होती है और रोगवाली के पास सोने
से बलका क्षय होता है ॥ हीन अंगवाली मैली दूषकरनेवाली दुर्बल बाँक
इनके पास सोनेवाले का और बे पड़देकी जगह सोनेवालेका शुक्रक्षीण होता
है ॥ ३६८ ॥ तथा मनभी ग्लानि युक्त होता है ॥ (क) गर्भ रहे हवे दिन से दू-
सरे नहीने में गर्भ रहनेका निश्चय नहोनेमें अथवा यद्योक्तनक्षत्रादिकोंके
मिलने में तीसरे महीनेमें पुंसवन करनेपर न सोवे ॥

[यथा पुंसवनानन्तरमाह व्यासः ।]

ननस्त्यजेन्नदीतीरं देव खानोदकं तथा ॥ भर्तुः शय्यां

मृतापत्यां तथैवामिष भोजनम् ॥ ३६९ ॥ [अन्यच्च]

आमिषस्याशनं यत्नात्प्रमदा परिवर्जयेत् ॥ देवारा

म नदीयानं प्रयोगं पुरुषस्य चेति ॥ ३७० ॥ क्षुधितः

क्षुब्ध चिन्तश्च मध्यान्हे तृषितोऽबलः ॥ स्थितस्य हा

निं शुक्रस्य वायोः कोपञ्च विन्दति ॥ ३७१ ॥

आ० जैसे कि पुंसवनके अनन्तर कहा है व्यासने ॥ पुंसवनके अनन्तर नदी
आकिनाए देवता तथा गढ़े का पानी पतिकी शय्या जिसके लजे होके मरने
के बी स्त्री तथा मांस भोजन इनको त्याग देवे ॥ ३६९ ॥ औरभी ।

गोसू का भोजन देवस्थान बाग नौका और मैद्युन इन हों गर्भवती स्त्री न
त्र पूर्वक छोड़ देवे ॥ ३७० ॥ मध्यान्ह में क्षुधित प्यासा स्त्रीभको मांस हवे
कितवाला दुर्बल ये स्थित शुक्रकी हानि और वायुके कोपको माने हैं ॥ ३७१

व्याधितस्य रुजा स्त्रीहा मूर्च्छा मृत्युश्च जायते ॥ प्रत्यूषे

चार्द्धं रात्रे च वातपिते प्रकुप्यतः ॥ ३७२ ॥ तिर्य्यङ् यो
 नावयोनी वा दुष्टयोनी तथैव च ॥ उपदंशा
 स्तथा वायोः कोपः शुक्र सुखदायः ॥ ३७३ ॥ उच्चारिते
 मूत्रिते च रेतसश्च विधारणो ॥ उत्ताने च भवेत् शीघ्रं
 शुक्राणमर्थास्तु सम्भवः ॥ ३७४ ॥ मर्त्वमेत न्यजेत-
 स्माद् यतो लोक ह्याऽहितम् ॥ शुक्रन्तूपास्थितम्भो
 हान्न सन्धाव्यं कदाचन ॥ ३७५ ॥ स्नानं सशर्करं दीरं
 भक्ष्यं धैक्षव संस्कृतम् ॥

भा० आधी रात में और दो घड़ी के तड़के में वात पित्त प्रकोप होने से रोगी को पीड़ा
 पिलही मूर्च्छा और मौन भी होती है ॥ ३७२ ॥ तिर्य्यङ् योनि में या अयोनि में अथ
 वा दुष्ट योनि में मेषुन करने में उपदंश होते हैं ॥ और वायु का कोप तथा शुक्र
 और सुख का क्षय होता है ॥ ३७३ ॥ मल मूत्र किये देने में शुक्र के धारण करने
 में और उत्तान में मेषुन करने से शुक्राश्रय का सम्भव होता है ॥ ३७४ ॥ उस कार
 ण इन सबको त्याग करे क्यों कि बृहलोक और परलोक में भी अहित है ॥ नि
 कलमे को तैयार हवे शुक्र को मोहके वस हांक कभी न रहे ॥ ३७५ ॥ धान
 शर्करा के सहित दूधमिश्रण को पीवा ॥

पांनमांसरसः स्वप्नो सुरतान्नेहिता अमी ॥ ३७६ ॥ मू
 लकास ज्वरश्वास कार्श्यं पाराङ्गामयञ्च ॥ अति
 व्यवायाज्जायन्ते रोगाश्चाक्षेपकादयः ॥ ३७७ ॥ रा
 त्री जागरणं रूह्यं कफदोष विषातिजित् ॥ निद्रा
 तुं सेवितां काले धातु साम्यमनन्दिताम् ॥ ३७८ ॥
 पुष्टि वर्णा वलोत्साह वन्दिदीप्तिं करोति हि ॥

भा० मांस रसका पीना और सोना ये मैथुन के अन्त में हित हैं ॥ ३७६ ॥
 मूल कांस स्वांस ज्वर कृशता पांडुरोग क्षय। और आक्षेपका विक बद्धत
 मैथुन से होते हैं ॥ ३७७ ॥ रातका जागना रुद्धे और कफ श्लेष्म विप पीडा
 का जीननेवाला है ॥ समय पर नींद लेनेसे धातुकी साम्यता और सावधान-
 ता होती है ॥ ३७८ ॥ पुष्टि वर्ग बल उन्साह अग्निदीप्ति को भी करती है ॥

यो लेहि शयन समये मधुमिश्रं वीजपूरदल चूर्णम् ॥

स तुलज्जाकरं वात प्रसरनिरोधात् सुखं स्वपिति ॥

३७६ ॥ सवितुः समुद्यकाले प्रसृतौः सलिलस्य पि

वेदथौ ॥ रोगजरापरि सुक्तो जीवेद्वत् सर शतं साग्रम् ॥

३८० ॥ (क) अस्य जल पानस्योपक्रमकाले रात्रे श्वत्

र्थ प्रहरे प्रवेशः ॥ [तथा च भोजः।]

भा० जो मत्तुष्य शयन के समय में मधुके साथ विजैरे के पत्तेका चूर्ण खा
 वे ॥ वा लज्जाकर वात प्रसर निरोधसे सुख पूर्वक सोना है ॥ ३७६ ॥ सू-
 र्योदय कालमें आठ सुल्लू पानी पीवे ॥ रोग और बुढ़ापेसे मुक्त जवा पूरे
 सौ चरस जीता है ॥ ३८० ॥ इस जल पानके उपक्रमकालमें रातके चौथे प-
 हरका प्रवेश कहा है ॥ उस प्रकार भोजन कहा है ॥

पिवति पर्युषितं जलमन्वहन्ति मिरशीचरमे प्रहरे यदि।

एतज्जलपान काल मर्यादा सूर्योदयाति सन्निहित प्रा

तः कालः । [तथा च तन्त्रान्तरे।] अम्भसः प्र-

सृतौ रष्टोरवावनुदिते पिवेत् ॥ वात पित्तकफान् जि-

त्वा जीवेद्वर्षशतं सुखी इति ॥ ३८१ ॥

(क) सलिलस्यात्र पर्युषितं ग्रहणं भोजवचनानु रोधान् ।

अर्शः शोथग्रहणयो ज्वरजठरजराकुष्ठमेदो विकारः ॥
 सूत्राघातास्त पित्तश्रवणगल शिरःश्रोणि शूलान्ति
 रोगाः ॥ ३८२ ॥

भा० रातके चौथे पहर में प्रतिदिन जो बासी पानी पीताहै ॥ ये जलपान
 काल मर्यादा सूर्योदय वहः सन्निहित प्रातः कालहै ॥ उस प्रकार त-
 न्त्वान्तर में कहा है ॥ आठ अंजुलपानी सूर्योदय के पहिले पीवे । तो
 वात पित्त कफ इनको जीतकर सुख पूर्वक सौ बरस जीता है ॥ ३८२ ॥
 (क) जलका यहांपर चासी का ग्रहण है ॥ भोजनवनके अनुबंध से ॥
 अर्श शोथ ग्रहणी ज्वर जठरकुष्ठ मेदका विकार ॥ सूत्राघात रक्त पित्त
 कार्गल शिर श्रोणि और नेत्र शूल ॥ ३८२ ॥

ये चान्ये चातपित्त क्षतज कफ कृता व्याधयः सन्ति
 जन्तो स्तोस्तान्नाभ्यासयोगाद् पहरति पयः पीतमन्ते
 निशायाः ॥ ३८३ ॥ विगत घननिशीथे प्रातरुत्थाय
 नित्यम् । पिवति खलु नरोथो घ्राण रन्ध्रेण वारि ॥
 स भवति मति यूर्णश्चक्षुषां तार्द्य तुल्यो । बलि प-
 लितविहीनः सर्वरोगैर्विसुक्तः ॥ ३८४ ॥

भा० जो और वात पित्त क्षतज कफ कृत रोग मनुष्यके हैं । उन २ रोगोंको
 अभ्यासके योगसे रातके अन्तमें पियाहुवा दूधनाश करता है ॥ ३८३ ॥ रा-
 तका बहुत अंधेर निवृत्त होनेपर प्रातःकालमें उठकर निन्यजो मनुष्य ना-
 क से पानी पीता है । वाह पूर्ण बुखिवा न् होताहै और गिरुके समान दृष्टिबाला
 होताहै । तथा जुर्गवालोंकी सुफेदी इनसे रहित और सब रोगोंसे विसुक्त
 होताहै ॥ ३८४ ॥

(क) (निशोथोऽत्र निशान्धकारः ।)

पातव्यं नासया नीरं प्रसृतित्वय मात्रया ॥ व्यङ्गं चली
 पलितघ्नं पीनमवैश्वर्यं काश शोधकरम् ॥

रजनीक्षयेऽसु नस्यं रसायनं दृष्टि सञ्जनम् ॥ ३८५ ॥
 स्नेहे पीते क्षणे शुद्धा वाध्माने स्तिमितोदरे ॥ हिक्का
 यां कफवातोत्थे व्याधौ तद्धारि वारयेत् ॥ ३८६ ॥

(क) (तद्धारि नासापेयम् ।) [अथर्तु चर्या ।]

चय कीप शमा यस्मिन् दोषाणां सम्भवन्ति हि ॥ ऋ
 तुषट्कं तदारख्यातं खेराशिषु सङ्गमात् ॥ ३८७ ॥ ग्री
 ष्मो मेष वृषो प्रोक्तः प्राचुरिमथुन कर्कटौ ॥ सिंह क
 न्ये स्मृता वर्षा तुला वृश्चिकयोः शरत् ॥ ३८८ ॥

भा० (क) निश्रीय यहाँपर रानका अन्धेरा समझना चाहिये । तीन चुल्लू पा
 नी नाकसे पीना चाहिये ॥ प्रातःकालमें पानीकी नास मुखपर कांधव्वा कु
 री बालकी सुंफेदी इनका नाशक और पीनस स्वरमंगकास सञ्जन इनका
 दूर करनेवाला । रसायन और दृष्टिउत्पन्न करनेवाला है ॥ ३८५ ॥ स्नेह पान
 कियेमें क्षतरोग में वमन विरचन करनेपर आध्मान में पेटके भारीपनमें ।
 और हिक्कीमें और कफवात से उत्पन्न इवे गंगमें नाकसे पानी न पीवे ॥ ८६
 ॥ अनन्तर ऋतु चर्या कहते हैं ॥ दोषोंका संचय प्रकीप और प्रामन जि
 समें होना है और राशिपर सूर्यके घूमनेसे । वेङ्कः ऋतु कहते हैं ॥ ३८७ ॥
 मेष वृष में ग्रीष्म, मिथुन कर्क में प्राचट् । सिंह कन्या में वर्षा, तुला वृश्चिक
 में शरत् ॥ ३८८ ॥

धनुर्ग्राही च हेमन्तो वसन्तः कुम्भमीनयोः ॥

(क) मेष वृषो रविणा सङ्गान्तौ । एवं मिथुन कर्कटावि
 त्यादि ॥ [अन्ये तु] शिशिरः पुष्यसमयो ग्रीष्मा वर्षा
 शरद्विमाः ॥ माघादि मासयुग्मेः स्यु ऋतवः षट्क
 मादमी ॥ ३८६ ॥ गङ्गनया दक्षिणे देशे वृष्टेर्वहुलभा
 वतः ॥ उभौ मुनिभिराख्यातौ प्राचट् वर्षाभिधाचट् ॥ ३८७ ॥

भा० धन मकर में हेमन्त, और कुम्भ मीन में वसन्त इस प्रकार छ क्रतु कहे हैं
॥ और आचार्य्य कहते हैं । शिशिर वसन्त ग्रीष्म वर्षा शरत् हिम ॥ ये छ क्रतु
तु माघसे लेकर दो २ महीने में क्रमके साथ होते हैं ॥ ३०६ ॥ गंगाके दक्षिण
देशमें वर्षाके बहुत होने से मुनियों ने प्राच्य वर्षा दो ऋतुके नाम कहे हैं । ३०७

उत्तरायणमाद्यै स्तैः परैः स्याद्दक्षिणायनम् ॥ आद्य
मुष्णां बलहरं ततोऽन्यद् बलदं हिमम् ॥ ३०९ ॥ हेमन्तः
शीतलः स्निग्धः स्वादुर्ज्ज्वर वह्निकृत् ॥ शिशिरः शी
तलोऽतीव रूक्षो वाताग्निवर्द्धनः ॥ ३१० ॥

(क) हेमन्तः स्वादुः प्रायेण द्रव्येषु स्वादूस्सजनकः रवम
न्यत्रापि बोद्धव्यम् ॥ ॥ वसन्तो मधुरः स्निग्धः श्लेष्म
वृद्धि करश्च सः ॥ ग्रीष्मो रूक्षोऽतिकटुकः पित्तकृत् क-
फनाशनः ॥ ३१३

भा० पहिले तीन ऋतुओं से उत्तरायण और अन्तकी तीन ऋतुओं से दक्षिणायन
होता है । पहिला उत्तरायण उष्ण और बल को हरनेवाला तथा उस्से दूसरा अ
र्थात् दक्षिणायन शीत और बलको देनेवाला है ॥ ३०९ ॥ हेमन्त शीतल स्नि
ग्ध स्वादु और उदराग्नि को करनेवाला है ॥ शिशिर अधिक शीत रूखा वात
और अग्नि को करनेवाला है ॥ ३१० ॥ (क) हेमन्त स्वादुः अर्थात् प्रायः कर
के पदार्थों में मधुर रसको उत्पन्न करनेवाला । इस प्रकार औरों में भी जानना ।
वसन्त मधुर चिकना और कफको बढ़नेवाला है ॥ ग्रीष्म रूखा बहुत म कटु
पित्तको करनेवाला और कफका नाशक है ॥ ३१३ ॥

वर्षा शीता विदाहिन्या वह्निमान्धानिल प्रदाः ॥ शर
दुष्णा पित्तकर्त्री नृणां मध्य बलावहा ॥ ३१४ ॥ चय
प्रकोपोपशामा वायो ग्रीष्मादिषु विषु ॥ वर्षादिषु च
पित्तस्य श्लेष्मराः शिशिरादिषु ॥ ३१५ ॥

भा० वर्षा शीत विदाह को करने वाली अग्नि मान्य और वात को देने वाली है ॥ शरत् उष्ण पित्त को करने वाली और मनुष्यों के मध्यबलको देने वाली है ॥ ३६४ ॥ वायु का संचय प्रकोप और शमन शीष्म से आदि लेंके इन तीन ऋतुओं में होता है ॥ वर्षा में आदि लेंके तीन ऋतुओं में पित्तका और शिथिर से आदि तीनमें कफ का संचय प्रकोप शमन होता है ॥ ३६५ ॥

वीर्यते लघुरूक्षाभि रौषधीभिः समीरणाः ॥ तद्विधे
स्तद्विधे देहे कालस्योष्णान्न कुप्यति ॥ ३६६ ॥

(क) तुल्येऽपि काले स्निग्धे तद्विधो रूक्षो लघुश्च तद्विधे रू-
क्षे लघौ च ॥ अद्भिरस्त्र विपाकाभिरौषधीभिश्च तादृ-
शम् ॥ पित्तं याति च यं कीपं न तु कालस्य शैत्यतः ॥
॥ ३६७ ॥ (तादृशम् अस्त्रविपाकम् ।)

भा० हलकी रूखी औषधियों से वायु संचय होता है ॥ हलका रूखा वायु
हलकी रूखी देहमें कालको उष्णता से प्रकोपको नहीं प्राप्त होता ॥ ३६६ ॥
अस्त्र विपाक को करने वाली औषधी और यानीसे उस प्रकार ॥ पित्त संच-
यको प्राप्त होता है ॥ तथा कालके शीत होनेसे कीपको नहीं प्राप्त होता ॥ ३६७

वीर्यते स्निग्ध शीताभिरुदकौषधिभिः कफः ॥ तु-
ल्ये च काले देहे च क्लिन्नत्वान्न प्रकुप्यति ॥ ३६८ ॥
(ख) तुल्येऽपि काले स्निग्धे शीतले च । (क्लिन्नत्वान्
देहे शुष्कत्वान् ।) हिमे याति शमं पित्तं वायुं श्लेष्मा
च चायत ॥ स वायुः शिशिरे कीपं यात्येवौषहतः
कफः ॥ ३६८ ॥ हेमन्ते सञ्चितः श्लेष्मा शिशिरे त्व-
ति वीर्यते ॥ शीतस्निग्ध गुरुद्रव्यैः शैत्यक्लिन्नो न कु-

प्यति ॥ ४०० ॥ (क) क्लिन्नः काठनीभूतः।

इति कालस्वभावोऽयं महारादिवशान् पुनः ॥ चया

दीन् यान्ति सद्योऽपि दोषाः काले विशेषतः ॥ ४०२

भा० चिकनी शीत औषधी और जल से कफ सञ्चय होता है ॥ काल के समान होने पर भी देहमें गीलापन होने से कोप नहीं होता ॥ ३९८ ॥ हिममें पित्त शमन होता है । और वायु कफ सञ्चय होते हैं ॥ त्रोनष्टरुवावायु और कफ शिशिरमें कोपका प्राप्त होते ही हैं ॥ ३९९ ॥ हेमन्त में सञ्चय रुवाकफ शिण्ण में वज्रत सञ्चय होता है ॥ शीत क्लिग्ध और भारी पदार्थों से शीतता और गीला रुवा प्रकोप को नहीं प्राप्त होता ॥ ४०० ॥

(क) (क्लिन्न) कठिनीभूत) इस प्रकार यह कालस्वभाव है पुनः आहारादि वश से दोषकाल में विशेषकरके तत्काल चयकोप शमन को प्राप्त होने हैं।

(क) चयकोपसमाः पूज्वीन्हे वसन्तस्य लिङ्गं मध्यान्हे ग्रीष्मस्य अपरान्हे पावृषः प्रादीपे वार्षिकम् ॥ प्रारदम द्वरात्रे प्रत्यूषसि हेमन्तमुपलक्षयेत् ॥ (ख) एवमहाग त्वमपि वर्षामिव शीतोष्णवर्षादोषोपचयप्रकोपोपश माः जानीयादिति सुश्रुतः ॥

चयकोपसमादोषाविहारहारसेवनैः ॥ समानैर्यथान्यकालेऽपि विपरीतैर्विपर्ययम् ॥ ४०२ ॥

भा० (क) पहले पहर में वसन्त का चिन्ह मध्यान्ह में ग्रीष्मका अपरान्ह में प्राष्टृका । और सायंकाल में वर्षाका ॥ आधीरान में शरदका और पिछली रात में वसन्तका ॥ लक्षण जान लेवे ॥ (ख) इस प्रकार रातदिनकी भी वर्षाकी नाई शीत उष्ण वर्षा और दायों सञ्चय प्रकोप शमन जाने । इस प्रकार सुश्रुत ने कहा है ॥ समान आहार विहारके सेवन से दोष अपने काल में सञ्चय प्रकोप शमन होते हैं ॥ और विपरीत आहार विहार से काल में भी विपरीत सञ्चय प्रकोप शमन होते हैं ॥ ४०२ ॥

(क) समानैः तुल्यैः चयादि योग्यैरिति यावत् । विपर्ययं कालेऽपि वैपरीत्यं बोध्यम् । [स्वं चय लक्षणमाह सुश्रुतः स्वस्थानस्थस्य दोषस्य वृद्धिः स्याच्छ्रावकोष्ठता ॥ पीतावभासता वह्निमन्तना चाङ्ग गौरवम् ॥ ४०३ ॥ आलस्यञ्चय हेतौ तु द्वेषश्च चय लक्षणम् ॥ सञ्चयोपहृता दोषा लभन्ते नोत्तरां गतिम् ॥ ४०४ ॥

भा० इस प्रकार चय लक्षण कहा है सुश्रुत ने ॥ अपने स्थान में रहने वाले दोष की वृद्धि में कोठे का कालापना ॥ जर्दी अग्नि मन्तना शरीर का भारीपना होता है ॥ ४०३ ॥ सञ्चय के निदान में आलस्य और चयके लक्षण में द्वेष होता है । संचय में दूर किये हुये दोष उत्तर गति अर्थात् प्रकोप को नहीं प्राप्त होते ॥ ४०४ ॥

ते तूत्तरासु गतिषु भवन्ति बलवन्तराः ॥ वर्षासु प्रबलो वायुस्तस्मान्मिष्टादयस्त्रयः ॥ ४०५ ॥ रसाः सेव्या विशेषेण पवनस्योपशान्तये ॥ (मिष्टादयस्त्रयः मधुराम्लस्वराणाः) भवेद्वर्षासु वपुषः क्लिन्नत्वं यद्विषोपशान्तये ॥ तत्क्लेशशान्तये सेव्या अपि कट्वादयस्त्रयः ॥ ४०६ ॥ (कट्वादयस्त्रयः कटु तिक्त कषायाः ।)

स्वेदनं मर्दनं सेव्यं दध्युषां जाङ्गलामिषम् ॥ गोधूमाः शालयो माषा जलं कोपं जलं च्युतम् ॥ ४०७ ॥

भा० वे प्रकोप में बहुत बलवान् होते हैं । वर्षा में वायु प्रबल होता है । उस कारण मधुर अम्ल स्वरा ये तीन रस ॥ ४०५ ॥ वात की शान्तिके अर्थ विशेष करके सेवन करने चाहिये ॥ वर्षा में जो शरीर का गीलापन अधिक होता है । उस क्लेशकी शान्तिके अर्थ कटुक तिक्त कषाय ये तीन रस सेवन करने चाहिये ॥ ४०६ ॥ पसीना लिवाना मलना दधि उष्ण जांगल मांस ॥ गेहूँ चावल उड़द कुबेका पानी अथवा चुवाया पानी इनका सेवन करे ॥ ४०७ ॥

न भजेत् पूर्वं पवनं वृष्टिं घर्मं हिमं श्रमम् ॥ नदीतीरं दि
 वा स्वमं रूक्षं नित्यञ्च मैथुनम् ॥ ४०० ॥ सर्पिः स्वादु
 कपाय निक्क करसा यच्छीतलं यत्प्रधु ॥ क्षीरं स्वच्छ
 सिनेहवः पदरसः स्वल्पं पलं जाङ्गलम् ॥ ४०१ ॥ गो
 धूमायव मुद्गशालिसहिता नादेयमंशूदकम् ॥ चन्द्र
 श्रन्दनमिन्दु राजिरजनी माल्यं पटोनिर्मलः ॥ ४१० ॥

भा० सामनेकी वायुवृष्टि शीत घूप श्रम । नदीका तीर दिनका सीना
 रूखा पदार्थ नित्य मैथुन इनको न सेवन करे ॥ ४०० ॥ घृत्न मधुर कपाय निक्क
 रस और जो शीत अथवा लघु ॥ दूध सफ़ेद चीनी गन्ना लवण रस घोड़ा जांग
 लमांस ॥ ४०१ ॥ गेहूं जव मूंग चावल नदीका पानी और अंशूदक कपूर
 चन्दन चान्दनीगत माला स्वच्छ वस्त्र ॥ ४१० ॥

विश्रामः सहृदां गणेषु मधुरवाचः सरः क्रीडनम् ॥ पि
 तानाञ्च विरेचनं बलवतो युक्तं शिरा मोक्षणम् ॥ ४११ ॥
 सतान्यत्र घनावसानसमये पथ्यानि मुञ्चेद्वृधि ॥ व्या
 यामाह कटूणां नीदणदिवस स्वमं हिमञ्चातपम् ॥ ४१२ ॥
 [अंशूदक लक्षणमाह ।] दिवसेऽकेकरैर्जुष्टं निशि शी
 तकरांशुभिः ॥ ज्ञेयमंशूदकं नाम स्निग्धं दोषत्रया पहम्
 ॥ ४१३ ॥ (क) अत्र समग्र प्राप्त्यर्थं दिवस दिवापादद्वये नि
 शापादं च । चन्द्रः कपूरः ॥

भा० मित्रों की सभामें मधुरवाणी के साथ विश्राम । नालावमें क्रीड़ा करना ।
 पित्तों के विरेचन बलवानकी फ़स्त खुलाना ॥ ४११ ॥ ये शरद ऋतुमें पथ्य है
 ॥ और दही कसरत खटाई कड़वी उपण नीरवी वस्तु तथा दिनका माना शीत
 और घूप इनको छोड़ देवे ॥ ४१२ ॥ अंशूदक का लक्षण कहा है ॥

दिनमें सूर्य की किरणों से सेवित और रात में चान्द की किरणों से सेवित जो जल उसको अंशूदक जाने । वे स्निग्ध और तीनों द्रव्यों का नाशक है ॥ ४१३ ॥
(क) यहाँपर संपूर्ण दिवस प्राप्त है इसवास्ते दिन दो हिस्से और रात एक हिस्से होनी चाहिये ॥

इक्षवः शाल्यो मुद्गा सरोऽम्भः कथितं पयः ।

शरद्येतानि पथ्यानि प्रदेशे चेन्दु रश्मयः ॥ ४१४ ॥

प्रातर्भोजन मसू मिक्ष लवणानभ्यङ्ग घर्म्मश्रमान् ॥

गोधूमे क्षवशालि मापपिशितं पिष्टं नवान्नं तिलान् ॥

४१५ ॥ कस्तूरी वरकुङ्कुमा गुरु युता मुषणाम्बु शौचं

तथा ॥ स्निग्धं स्त्रीषु सुखं गुरूणा वसनं सेवेत हेमन्त

के ॥ ४१६ ॥ शिशिरे शीतमाधिकं रोद्व्यं वा दानकाल

जम् ॥ विशेषतस्ततस्तव हेमन्तस्य मती विधिः ॥ ४१७

भा० गन्ने चावल मूंग नदीका पानी और दूध । और सायंकाल में चांदनी ये शरदकालमें पथ्य हैं ॥ ४१४ ॥ अम्न मधु लवण इन रसोंका प्रातःकालमें भोजनतेनका लगाना घर्म्म श्रम ॥ गेहूं गन्ना चावल उडद मांस पीठी नया अन्न तिल ॥ ४१५ ॥ कस्तूरी कर्पूर का केसर मलया गिरका काला चन्दन शौचमें गरमपानी । स्निग्ध पदार्थ मैथुन भागे गरम कपड़ा इनको हेमन्त ऋतुमें सेवनकरे ॥ ४१६ ॥ शिशिर में शीत अधिकहोता है आदानकालकी रूक्षता होती है । इसवास्ते उसमें विशेषकरके हेमन्तकी विधि प्रशस्त है ॥ ४१७ ॥

वान्तिं नस्य मथाभयाञ्च मधुना व्यायाममुद्धर्त्तनम् ॥

सं सेवेत मधौ कफघ्नकवलं प्रूल्यं पलज्जाङ्गलम् ॥ ४१८ ॥

गोधूमान् बहू शालिभेद सहितान्मुद्गान् यवान् षष्टिका

न् । लेपश्चन्दन कुङ्कुमा गुरु कृतं रूक्षाङ्कुदूष्यां लघु ॥ ४१९

मिष्टमसू दधिस्निग्धं दिवा स्वप्नञ्च पुज्जंरम् ॥ अवश्या

य मपि प्राज्ञो वसन्ते परिवर्जयेत् ॥ ४२० ॥ स्वादु स्निग्ध
 हिमं लघु द्रवमयन्द्रव्यं रसालां सिताम् ॥ शक्नुर्ही
 रदृशाङ्गुलानि सितया शालिं रसं मांसजम् ॥ ४२१ ॥
 शानांशुं शयनंदिवा मलयजं शीतम्पयः पानकम् ।
 सेवेतोष्णदिनेत्यजेतुंकटुकक्षाराम्लघर्मश्रमान् ॥
 ॥ ४२२ ॥ ऋतुष्वेषु यस्मैस्तु विधिभिर्वर्तते नरः ॥ दो
 षानृतु कृतानैव लभते सकदाचन ॥ ४२३ ॥

इति श्रीलटकनमिश्रतनय श्रीमन्मिश्रभावविरचिते भाव
 प्रकाशे दिनचर्य्ये तु प्रकरणचतुर्थम् ॥ ४ ॥

भा० वमनहलास और मधुकेसाय हड्ड तथा कसरत उबटना इनको वसन्त में
 सेवन करे । और कफनाशक यास तथा जांगल मांस का कवाच इनको भी सेव
 न करे ॥ ४१० ॥ गेहूं चङ्गल किसम के चावल और भूंग जव तथा साठी चावल । च
 न्दन केसर कृष्णागरु और रूक्षा कटु तथा लघु इस प्रकारकी बनाया इवालेप
 इनको भी वसन्त में सेवन करे ॥ ४१६ ॥ मधुर अम्ल दधि स्निग्ध दिनका सोना
 जला भुना इनको सुखिवान् शिणिर और वसन्त में न्यागदेवे ॥ ४२० ॥ मधुर
 स्निग्ध शीत लघु और पतली वस्तु तथा शिकरन चीनी ॥ सत्त दूध दमों अंगली
 चमेली से भूयित चावल शोरुवा ॥ ४२१ ॥ चान्दनी दिनका सोना मलया गिर
 को चन्दन टंडा पानी पपानक अर्थात् पन्ना इनको गरमीकी ऋतुमें सेवन करे ।
 और कटु क्षार अम्ल घूम श्रम इनको न्यागदेवे ॥ ४२२ ॥ जो मनुष्य ऋतु
 वोंमें इस विधिसे चलता है । उसे मनुष्य ऋतु रूत दोष कभी नही होने ॥ ४२३

इति श्री लटकनमिश्रके पुत्र श्री भावमिश्रके रचित भाव
 प्रकाशमें दिनचर्य्या और ऋतु प्रकरण चतुर्थ समाप्त इवा ॥ ४ ॥

[अथ व्याधेर्लक्षणम् । तत्र वाग्भटः ।]

रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता ॥ रोगादुः

खस्य दातारो ज्वर प्रभृतयो हि ते ॥ १ ॥ ते च स्वाभाविकाः केचित्केचिदागन्तवः स्मृताः ॥ मानसाः केचिदाख्याताः कथिताः केऽपि कायिकाः ॥ २ ॥

(तत्र स्वाभाविकाः शरीर ख भावादेव जाताः ॥)

(क) क्षुत्पिपासा सुषुप्त्या च जगमृत्यु प्रभृतयः अथवा स्व स्वभाविका दुत्यन्ते जीजा स्वाभाविकाः सहजा इतियावन् ।

(ख) ते च जन्मान्धत्वादयः आगन्तवोऽभिघातादि जनिताः ।

अथवा जन्मोत्तर भाविनः । कामक्रोध लोभमोह भयाभिमानदैन्य पैशुन्यशोक विषादिष्यीं सूयां मात्सर्य्य प्रभृतयः ।

अथवा उन्मादापस्मार मूर्च्छा भ्रममोह तमः संन्यास प्रभृतयः ।

भा० अनन्तर व्याधिका लक्षण अष्टाङ्ग हृदय में चाग्भट ने कहा है । दोषों की विषमतासे ही और दोषों की समानता आरोग्य है ॥ वे ज्वर आदि रोग दुःख के देने वाले हैं ॥ १ ॥ वे रोग कोई रोग स्वाभाविक और कोई आगन्तुक कहे गये हैं । और कोई मानसिक तथा कोई कायिक इस प्रकार कहे गये हैं । ॥ उन्मेख भाविक शरीर में स्वभावसे ही उत्पन्न हैं) (क) क्षुधा तृषा निद्रा जगमृत्यु आदि । अथवा अपने स्वभावसे ही उत्पन्न हवे ही स्वाभाविक अर्थात् साथ होने वाले । (ख) वे जन्मका अन्धापन इत्यादिक । आगन्तुक चोटसे उत्पन्न हवे । अथवा जन्मके पश्चान होने वाले । कामक्रोध लोभ मोह भय अभिमान दीनता चुगली शोक खेद ईर्ष्या और शत्रुता मत्सरता आदि । अथवा उन्माद अपस्मार अर्थात् मिस्री मूर्च्छा भ्रम मोह अन्धेरी और भवेतता इत्यादिक ।

कायिकाः पाण्डुरोग प्रभृतयः कर्मजाः कथिताः केचिद्दोषजाः सन्ति चापरे ॥ कर्म दोषोद्भवाश्चान्ये व्याधय

स्त्रिविधाः स्मृताः ॥ ३ ॥ (क) तत्र कर्मजाः व्याधयः ।

यत्प्राक्तनन्दुष्कर्म प्रबलङ्केवल भोगनाशयम् । प्रायश्चि
 तनाशयं वा ततो जाताः ननु दुष्ट वातादि दोषेण जनिता स्त
 या ॥ ॥ यथा शास्त्रन्तु निर्णीतो यथा व्याधि चिकित्सितः ।
 नशमं याति यो व्याधिः स ज्ञेयः कर्मजो बुधैः ॥ ४ ॥

भा० कायिक पांडुरोग आदि । कर्मज को कहेंगे हैं । और कोई दोषज है ।
 और कोई कर्म दोषों से उत्पन्न इस प्रकार तीन तरह की व्याधि कही है ॥ ३ ॥
 (क) उनमें कर्मज व्याधि जो पूर्व जन्म के दुष्कर्म से प्रबल इवा और भोग वा
 राही नाश होनेवाला अथवा प्रायश्चिन से नाश होनेवाला उसे उत्पन्न इवा ।
 न कि वातादि दोष से इवा उस प्रकार । शास्त्र के अनुसार निश्चय हुई और
 पथ्य व्याधि चिकित्सा से जो व्याधि शमन को नहीं प्राप्त होती है उसको यंदिन
 कर्मज कहते हैं ॥ ४ ॥

[दोषजाः मिथ्याहार विहार प्रकुपित वात पित्त कफजाः ।]

(क) ननु मिथ्याहार विहारिणा मयि प्राक्तनं सुकृतेनैरु
 ज्यं दृश्यते एव । ततो दोषजेष्वपि प्राक्तनं दुष्कर्मैव कारणम्
 तत्कथं दोषजा इत्युच्यते । दोषजेष्वपि वस्तुतः । आदि
 कारणां दुष्कर्म वर्तते एव किन्तु तत्र मिथ्याहार विहार दू
 षिता दोषा हेतवो दृश्यन्त इति दोषजा इत्युच्यन्त इति समा
 धिः । [कर्मदोषोद्भवाः ।]

भा० [दोषज] मिथ्या आहार और विहार से प्रकोपको प्राप्त जेव वात पित्त
 कफ से उत्पन्न हुई ॥ (क) ननु शंका । मिथ्या आहार विहार वालों को भी
 पूर्व जन्मान्तर के सुकृत कर्म से ही आरोग्यता होनी है । उसे दोषज में भी पूर्व
 जन्मान्तर का दुष्कर्म ही कारण है । तो कैसे दोषज कहते हैं । यथार्थ में तो दो
 षज में भी आदिकारण दुष्टकर्म ही रहना है । लेकिन उसे मिथ्या आहार
 विहार से दूषित दोष कारण देखे जाता है । इसे दोषज कहते हैं ये समाधान है ।

[कर्मदोषोऽस्य उत्पन्नज्ञोऽस्येति कथ्यते ॥]

स्वल्पदोषा गरीयांसस्ते ज्ञेयाः कर्मदोषजाः ॥

(ख) अत्र कारणां दुष्कर्म प्रबलं यतो दोषाल्पत्वेऽपि

व्याधेर्गरीयस्त्वन्तत्कर्म क्षयादेव क्षीरां भवति ।

दोषाः स्वल्पा अपि निदानत्वे नोक्ता दृश्यन्त एवेति

दोषाणां कारणाता मन्यन्त इति । कर्मक्षयात् कर्म

क्षयात् दोषजाः स्व स्व भेषजैः ।

कर्मदोषोऽज्ञोऽयान्ति कर्मदोष क्षयाक्षयम् ॥

भा० ० थोड़े दोष बहुत भारी हो जावे उसको कर्मदोषज जानना ।

(क) यहाँ पर कारण दुष्टकर्म प्रबल है । जैसे कि अल्पव्याधिमें बहुत बड़े ज्वरे दोष कर्मक्षय से ही क्षीराण होते हैं । दोष स्वल्प भी निदान करके कहे ज्वरे देखे जाते ही हैं और दोषोंकी कारणाता मानते हैं । कर्मके क्षय से कर्मकृत दोष अपनी २ औषधि से । कर्मदोषोंसे उत्पन्न ज्वरे कर्मदोषके क्षयसे क्षयको प्राप्त होते हैं ॥

(ग) दोषजाः स्व स्व भेषजैरिति दोषजेष्वदिकारणां ॥ दु-

ष्कर्म तद्दोषजार्थं द्रव्य क्षयादि जनित दुःख भोगेन कटुति-

क्त कषायाद्य हृद्य भक्षणगादि जनित दुःख भोगेन च क्षयं

यान्ति । दोषा बुद्धा हेतवो दोषास्ते स्व स्व भेषजैः क्षयं या-

नीत्यर्थः ॥ साध्या याप्या असाध्याश्च व्याधयस्त्रिवि-

धास्मृताः ॥ सुखसाध्यः कष्टसाध्यो द्विविधः साध्य-

उच्यते ॥ ५ ॥

[याप्य लक्षणा माह ।]

भा० (क) दोषज अपने २ औषध से इति । दोषसे उत्पन्न ज्वरमें अधिक कारण दुष्टकर्म और उसके औषधके अर्थ द्रव्य क्षयादि से ज्वरे दुःख भोग करके ही कटु तिक्त कषादि अप्रिय भक्षणसे उत्पन्न ज्वरे दुःखसे नाशको प्राप्त होते हैं ।

प्रांशु इष्ट कारणा वेदोष । अपने २ औषध से नाशका प्राप्त होने हैं । साध्य या
प्य असाध्य तीन प्रकारकी व्याधिकही गई है ॥ सुखसाध्य तथा कष्टसाध्य
दो प्रकारका साध्य कहते हैं ॥ ५ ॥ याप्य का लक्षण कहा है ।

यापनीयन्तु तं विद्यात् क्रिया धारयते हि यम् ॥ क्रिया
यान्तु निवृत्तायां सद्यो यश्च विनश्यति ॥ ६ ॥ प्राप्ता क्रि
या धारयति सुखिनं याप्य मानुरम् ॥ प्रपतिष्य दिवा
गारं स्तम्भो यत्नेन योजितः ॥ ७ ॥ साध्या याप्यत्वमा
यान्ति याप्यश्चासाध्यतान्तथा ॥ घ्नन्ति प्रारगानसाध्या
स्तु नराणाम क्रियावताम् ॥ ८ ॥

भा० यापनीय उसको जानना चाहिये जिसको क्रियाने पकड़ रखा है । क्रिया
के निवृत्त होनेमें जो तत्काल नाशका प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ प्राप्त क्रिया जिस सुखि
याप्य आनुरको धारण करती है । वो गिरे हूवे मकानमें चाँद लगाये हूवे के मा
निन्द है ॥ ७ ॥ साध्य रोग याप्य होते हैं और याप्य असाध्यता को प्राप्त होने हैं
पथ्यादिक न करनेवाले पुरुषों के प्रारणों को असाध्य रोगनाश करते हैं ॥ ८ ॥

(क) अक्रियाव तां चिकित्सा रहितानाम् । [अथोपद्रवस्य ल
क्षणम् ।] रोगारम्भकं दोषस्य प्रकोपाद्युपजायते ॥ योऽ
न्यो विकारः सचुधै उपद्रव इहोदितः ॥ ९ ॥
[अथारिष्टस्य लक्षणां भाह ।] रोगिरोगो मरणां यस्याद्
वश्यम्भावि लक्ष्यते ॥ तल्लक्षण मरिष्टं स्याद्विष्टञ्चा
पि तदुच्यते ॥ १० ॥ [अथ चिकित्साया लक्षणमाह ।]

भा० (क) चिकित्सासे रहितोंकी । अनन्तर उपद्रवों वा लक्षण करने हैं ।
रोगको आरंभ करनेवाले दोषों के प्रकोप से जो वृथा विकार उत्पन्न होना हैं
उसको पंडित यज्ञोपर उपद्रव कहते हैं ॥ ९ ॥ अनन्तर अरिष्टता लक्षण

कहते हैं ॥ रोगिका अवश्य होनेवाला मरण जिसे जाना जाता है । वोह मकरा-
अरिष्ट होता है और रिष्टर्भाउस्को कहते हैं ॥ अनन्तर चिकित्साका लक्षण
कहते हैं ॥ १० ॥

यां क्रिया व्याधि हरणी सा चिकित्सा निगद्यते ॥ दोष
धातु मलानां या साम्यकृत सैव रोगहन्त ॥ ११ ॥

(क) क्रियात्र कर्म व्याधिर्हन्यतः नयेति व्याधि हरणी
करणाधि करणयोश्चेति सूत्रेण करणार्थे ल्युट् तथा च ।

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः सयाः ॥ सा चि-
कित्सा विकाराणां कर्म तद्विषजांभतम् ॥ १२ ॥ या

द्युदीरणी शमयति नान्यं व्याधिं करोति च ॥ सा क्रि-
या न तु या व्याधिं हरत्यन्य मुदीरयेत् ॥ १३ ॥

(क्रियात्र चिकित्सा ।) तथा चामर सिंहः ।

भा० जो क्रिया व्याधिको दूर करनेवाली होती है उसको चिकित्सा कहते हैं ।
दोष धातु मल इनकी समानता करनेवाली जो है वोही रोग नाशक है ॥ ११ ॥

(क) क्रिया यहाँ पर कर्म व्याधिनाशकी जानी है इससे वो व्याधिहरणी है ।
करणाधिकरणयोश्चेति इस सूत्रसे करण अर्थ में ल्युट् है । उस प्रकार कहा
है ॥ जिस क्रियासे शरीरमें धातु सम होने हैं । वो चिकित्सा है । और विकारों
का वोह कर्म वैद्योंके सम्मान है । प्रकोप हवेको शमन करती है और दूसरी
व्याधिको नहिं करती । वो क्रिया है । तथा जो एक व्याधिको दूर करे और दूस-
रीकी उत्पन्न करे वो क्रियानहीं ॥ १३ ॥ (क) क्रिया यहाँ पर चिकित्सा ।
उस प्रकार अमर सिंहने कहा है ॥

आरम्भी निष्कृतिः शिला पूजनं सम्प्रधारणम् ॥ उपा-
यः कर्म चेष्टा च चिकित्सा च नवक्रिया इति ॥ १४ ॥

[अथ चिकित्साविध्यु पदेशः ।

ज्ञातमात्रः चिकित्स्यः स्यान्नोपेत्योऽल्पतया गदः ॥

वन्दिशत्रु विषेस्तुल्यः स्वल्योऽपि विकरो न्यसौ ॥ १५ ॥

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम् ॥ ततः क

र्मभिषक् पश्चात् ज्ञानपूर्वसमाचरेत् ॥ १६ ॥

भा० आरंभ निश्चति शिक्षा पूजन संप्रधारणा ॥ उपाय कर्म चेष्टा और चि
कित्सा येनव क्रियाके पर्याय है ॥ १४ ॥ अनन्तर चिकित्साकी विधिः का
उपवेष्टे । उत्पन्नभावहीरोग चिकित्सा योग्य है । योद्धाभीरोग उपेक्षा करने
योग्य नहीं होता ॥ आग शत्रु विष इनके समान अल्पभी विकारकी करता है
॥ १५ ॥ प्रथम रोगकी परीक्षा करे उसके अनन्तर औषधि करे । उसके अनन्त
र वैद्य पश्चात् कर्म ज्ञान पूर्वक करे ॥ १६ ॥

(क) [अयमर्थः] भिषक् आदौ रोगं परीक्षेत विचारयेत् ।

ततः पश्चाद्दोगौषधविचारानन्तरं ज्ञानपूर्वसावधानो

न त्ववज्ञाय कर्म चिकित्सा मौषधदानादिरूपां समाच

रं वित्यर्थः । रोगज्ञानेन चिकित्सा करणे दोषमाह ।

भा० (क) यत् अर्थ है ॥ वैद्य प्रथम रोगकी परीक्षा करे । अर्थात् विचार
करे । उसके पश्चात् अर्थात् रोग औषधि विचार के अनन्तर सावधान
होके । न कि वे समके कर्म अर्थात् चिकित्सा अर्थात् औषधिदान रूप
को करे ॥ रोगके विनजाने चिकित्सा करने में दोष कहते हैं ।

यस्तुरोगमविज्ञाय कर्म्मणायारभति भिषक् । अथ्यो

षधविधानज्ञस्तस्य सिद्धिर्यदृच्छया ॥ १७ ॥

(ख) स्वैरितया सिद्धिर्भवति नापि भवतीत्यर्थः । अन्यत्र

भेषजकेवलं कर्त्तुं यो जानाति न चापयम् ॥ वैद्य क

र्मसचेत कुर्व्याद् बधमर्हति राज्ञतः ॥ १८ ॥

(क) [रोगज्ञाने भेषजाज्ञाने दोषमाह ।]

पस्तु केवल रोगज्ञो भेषजेष्व विचक्षणाः ॥ न वैद्यं
प्राप्य रोगी स्याद्यथा नौर्नादिकं विना ॥ १६ ॥

भा० जो वैद्य औषधि का जाननेवाला रोग को बिनाज्ञाने चिकित्सा करता है
उसकी सिद्धी अपनी खुशी की है अर्थात् कभी होती है कभी नहीं भी होती ॥
१७ ॥ औरभी, जो वैद्य केवल औषध खाना जानते हैं और रोग को नहीं जान
ते ॥ वैद्य कर्म करते तो रजा से बध होने योग्य हैं ॥ १८ ॥ रोग का ज्ञान
और औषध का न ज्ञान इसमें दोष को कहते हैं ॥ जो केवल रोग का जानने
वाला है और औषधि में अविचक्षणा ॥ उस वैद्य को पाकर रोगी उस प्रकार
का होता है जैसे मज्जाह के बिना नाव ॥ १९ ॥

(क) नादिकां कर्णधारं विना यथा नौ सङ्गटे पतति तथा
रोगीत्यर्थः । [अन्यच्च]

यस्तु केवल शास्त्रज्ञः क्रियास्वकुशलो भिषकः ॥

समुह्यत्यातुरं प्राप्य यथा भीरुविवाहवम् ॥ २० ॥

[रोगोपधयोर्ज्ञाने युगमाह ।] यस्तु रोगविषयज्ञः स
र्वभेषजकोविदः ॥ दिशकालविभागज्ञस्तस्य सिद्धि

र्न संप्रायः ॥ २१ ॥ आदावन्ते रुजांज्ञाने प्रथतेत वि

दित्सकः ॥ भेषजानां विधानेन ततः कुर्याच्चिकि

त्सितम् ॥ २२ ॥ (क) चिकित्सितं विन्यन्न भावे क्तः ।

भा० (क) जैसे मज्जाह के बिना नाव संकट में पड़ती है वैसे रोगी इत्यर्थः ।
औरभी । जो वैद्य केवल शास्त्र का जाननेवाला है । और क्रिया में अनुशा
स्य है । वोह रोगी को पाकर मोहको प्राप्त होने है । जैसे संप्राग में हरपोक मोह
को प्राप्त होना है ॥ २० ॥ रोग और औषध के ज्ञान में युगको कहते हैं ।
— रोग विषयको जानने वाला है । और संपूर्ण औषधियोंको भी जानता है
दिशालो जानता है उछली सिद्धि अनुपयवादी है ॥ २१ ॥

वैद्य आदि अन्तरेणके ज्ञान होने पर प्रयत्न करे ॥ उसके अनन्तर औषधके विधानसे चिकित्सा करे ॥ २२ ॥

(क) चिकित्सित इस प्रकार यहाँपर भावमें क्त होना है ॥

रा विकारंगामकुशलो न जिह्नीयात् कदाचन ॥ न हि सर्व विकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः ॥ २३ ॥

(क) न जिह्नीयात् न लज्जेत् । ध्रुवा नियता ।

नास्ति रोगो विनादोषैर्यस्यात्तस्माच्चिकित्सकः ॥

अनुक्तामपि दोषाणां लिङ्गैर्व्याधिसुपाचरेत् ॥ २४ ॥

येन कुर्वन्त्यसाध्यानां चिकित्सां ते भिषग्वराः ॥ अतो

वैद्यैः श्रमः कार्य्यः साध्यासाध्य परीक्षणैः ॥ २५ ॥

भा० विकारोंके जाननेमें अकुशल कभीन शरमदि । क्यों कि सम्पूर्ण विकारोंके नामसे नियत स्थिति नहींहोती ॥ २३ ॥ (क) जिसकारण विनादोषोंके रोग नहीं होता । उसकारणवैद्य दोषोंके लक्षणोंसे नकी हुवे रोगका भी इलाज करे ॥ २४ ॥ जो असाध्यरोगोंकी चिकित्सा नहींकरते । वे थोष्ट वैद्य हैं ॥ इसवास्ते साध्य असाध्य कीपरीक्षामें वैद्योंको श्रमकरना चाहिये ॥ २५ ॥

रोगज्ञानोपाया अग्रे वक्ष्यन्ते । शीते पीत प्रतीकारमुषो नूषण निवारणाम् । कृत्वा कुर्व्यात् क्रियां प्राप्तां क्रियाकालं न हापयेत् ॥ २६ ॥ अप्राप्ते वा क्रियावतलि प्राप्ते वा न क्रिया कृता ॥ क्रियाहीनानिरिक्ता च साध्येष्वय न सिद्ध्यति ॥ २७ ॥ (क) [अयमर्थः ।]

काले चिकित्साऽवसरे । अप्राप्तेऽनागते । या क्रिया चिकित्सा । यथा ज्वरे जीर्णनामप्राप्ते नरुण एव कषा यदानक्रिया न सिद्ध्यति ।

काले चिकित्साऽवसरे । अप्राप्तेऽनागते । या क्रिया चिकित्सा । यथा ज्वरे जीर्णनामप्राप्ते नरुण एव कषा यदानक्रिया न सिद्ध्यति ।

काले चिकित्साऽवसरे । अप्राप्तेऽनागते । या क्रिया चिकित्सा । यथा ज्वरे जीर्णनामप्राप्ते नरुण एव कषा यदानक्रिया न सिद्ध्यति ।

भा० रोग ज्ञान के उपाय आगे कहे हैं ॥ शीत में शीतका इलाज । और उष्ण में उष्णका निवारण करके प्राप्त क्रिया की करे और क्रियाकालकी न त्याग करे ॥ २६ ॥ अप्राप्त क्रियाकालमें जो चिकित्साकी जाती है और जो प्राप्तकालमें नहीं की जाती ॥ तथा हीन क्रिया या औरकी और क्रिया भी बहुसाध्यरोगमें भी नहीं सिद्ध होती ॥ २७ ॥ (क) यह अर्थ है कि चिकित्सा का समय नजनेपर । जो चिकित्सा । जैसे जीर्णता को न प्राप्त इवेज्वरमें अर्थात् तरुण ज्वरमें कषायदान क्रिया नहीं सिद्ध होती ॥

(ख) या च क्रिया चिकित्सावसरे प्राप्तेन कृत्वा । अर्थात् पश्चात् कृता । (ग) यथादाहे कथञ्चिच्छान्ते पश्चाच्छीतलानुलेपनादिक्रिया । तथा हीनातिरिक्ता च क्रिया साध्येष्वपि न सिद्ध्यति ॥ अतिरिक्तां हीनां च क्रिया वर्ज्यन्नाह विकारेऽल्पे महत् कर्मक्रिया लघ्वी गरीयसी ॥ छयमेतद् कौशल्यं कौशल्यं युक्त कर्मता ॥ २८ ॥ क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत् ॥ पूर्वस्यां शान्तवेगायां न क्रिया सङ्गोहितः ॥ २९ ॥

(क) भिन्नरूपाभिस्तु क्रियाभिः साङ्कर्यमपि न दोषाय ।

भा० (ख) जो क्रिया चिकित्साका अवसर प्राप्त होनेमें नहीं की गई । अर्थात् पीछे से की गई ॥ (ग) जैसे दाह किसी न किसी तरह शान्त होनेमें पीछे से शीतल अनुलेपनादि क्रिया । उसी प्रकार हीन और अतिरिक्त क्रिया साध्यमें भी नहीं सिद्ध होती ॥ अतिरिक्त और हीन क्रिया को त्यागने इवेकहते हैं ॥ अन्य विकारमें बड़ी क्रिया और बड़े विकारमें हीन क्रिया । ये दोनों ही अकुशला हैं । और उचित कर्म ही कुशलता है ॥ २८ ॥ क्रियाका गुण न प्राप्त होतौ दूसरी क्रिया करे ॥ पहिली क्रिया से शान्त वेग होनेमें क्रिया संकर हित नहीं होती है ॥ २९ ॥ (क) भिन्न रूप क्रियासे जो सांकर्य हित होता है वो दोषके अर्थ नहीं है ॥ जैसे कि कहा है ।

(क) [यत आह] क्रियाभिस्तुल्यरूपाभिर्न क्रियासङ्करोहितः ॥ ताभिस्तु भिन्नरूपाभिः साङ्ख्यैर्नैव दुष्यति ॥ ३० ॥ [अतस्वोक्तम्] लङ्घनं बालुकाखेदो नस्यं निषीवनं तथा ॥ अवलेहोऽञ्जनञ्चापि । प्राक् प्रयोज्यं त्रिदोषजे ॥ ३१ ॥ [ज्वर इति शेषः] । नचैकान्ते न निर्दिष्टे शास्त्रे निविशते बुधः ॥ स्वयमप्यत्र भिषजा तर्कनीयं चिकित्सना ॥ ३२ ॥

[यत आह] उत्पद्यते च सावस्था दोषकाल वलम्प्रति । यस्या कार्यमकार्यं स्यात् कर्मकार्यं विवर्जितम् ॥ ३३ ॥ (क) विवर्जितं कर्म कर्तव्यं भवतीत्यर्थः ।

भा० नुल्यरूप क्रियाओंसे जो संकर होता है वो हित नहीं है । भिन्नरूप उनसे जो संकरना होती है । वो दोष नहीं करती ॥ ३० ॥ इसीवास्ते कहा है ॥ लंघन चालूका खेदनास कुल्ला । तथा अवलेह और अंजन भी इनको त्रिदोषसे उत्पन्न होनेमें पहिले देना चाहिये ॥ ३१ ॥ ज्वर येह शेष ए कान्त करके कहेइवे शास्त्र पर पंडित नहीं रहते ॥ यहाँ पर वैद्य को खुद भी चिकित्सना । विचारली चाहिये ॥ ३२ ॥ जैसे कि कहा है ॥ दोषकालवल में वो अवस्था उत्पन्न होती है । जिस्में करने के योग्य कर्म अकार्य होता है अर्थात् करनेके अयोग्य होता है ॥ और कार्य कर्म छोड़ा जाना है ॥ ३३ ॥ (क) विवर्जित कर्म करने के योग्य होता है ॥ [अथ चिकित्सायां फलमाह ।]

क्वचिदर्थं क्व चिन्मैत्री क्वचिद्धर्मः क्वचिद्यशः ॥

कर्माभ्यासः क्वचिच्चेति चिकित्सानास्ति निःफलम्

॥ ३४ ॥ आयुर्वेदोदिता युक्तिं कुर्वाणा विहिताश्रये ।

पुण्यायुर्वृद्धिसंयुक्ता निरोगाश्च भवन्ति ते ॥ ३५ ॥
 नैव कुर्वीत लोभेन चिकित्सा पुण्यविक्रियम् ॥
 ईश्वराणां वसुमतां लिप्सेतार्थन्तु वृत्तये ॥ ३६ ॥
 चिकित्सितं शरीरं यो न निष्क्रीणाति दुर्मतिः ॥
 स यत्करोति सुकृतं सर्व्वं तद्विपगञ्चते ॥ ३७ ॥
 न देशो मनुजैर्हीनो न मनुष्या निरामयाः ॥ ततः
 सर्व्वत्र वैद्यानां सुसिद्धा एव वृत्तयः ॥ ३८ ॥

(अस्य चिकित्साया अङ्गानि ।)

भा० अनन्तर चिकित्साका फल कहते हैं ॥ कहींपर अर्थ कहीं मैत्री
 अर्थात् मित्रता कहीं धर्म और कहीं यश । तथा कहींपर कर्मका अभ्यास
 इस प्रकार चिकित्सा निष्फल नहीं होती ॥ ३५ ॥ जो आयुर्वेद में कही
 हुई विहित युक्ति को करने वाले हैं ॥ वे पुण्य आयुकी वृद्धिसे युक्त इवे निरोग
 भी होते हैं ॥ ३५ ॥ लोभसे चिकित्सा तथा पुण्यका विक्रिय न करे ॥ वृत्तिके
 अर्थ राजा और धनाढ्योंके द्रव्यको चाहे ॥ ३६ ॥ चिकित्सा किये इवे शरीर
 को जो दुर्मति अथ नहीं करता ॥ वो जो सुकृत करता है उसको वैद्य भक्षण
 करता है ॥ ३७ ॥ मनुष्योंकरके हीन कोई देश नहीं है और रोगसे रहिनको
 ई मनुष्य नहीं है ॥ तिससे सब जगह वैद्योंकी सुसिद्ध ही वृत्तियां हैं ॥ ३८ ॥
 अनन्तर चिकित्साके अंगोंको कहते हैं ॥)-

रोगी दूतो भिषग्दीर्घ मायुर्द्रव्यं सुसेवकः ॥ सदौष
 धं चिकित्सायाम् इत्यङ्गानि बुधाजगुः ॥ ३९ ॥

[तत्र रोगिणो लक्षणं माह ।] रोगो यस्यास्ति रोगी स स
 चिकित्स्यस्तु यादृशः ॥ यादृशश्चाचिकित्स्योऽपि
 वक्ष्यमाणो निषाम्यताम् ॥ ४० ॥ [तत्र चिकित्स्यः ।]

भा० रोगी द्रुत वैद्य दीर्घ आयु द्रव्य अच्छा सेवक ॥ और अच्छी दवा इस प्रकार चिकित्साके ये अंग पांडितों ने कहे हैं ॥ ३६ ॥ उसमें रोगी काल क्षण कहते हैं ॥ रोग जिसको है वो रोगी वोह जिस प्रकार चिकित्सा योग्य होता है और चिकित्साके अयोग्य आगे कहे हुए लोगों को सुनिये ॥ उसमें चिकित्साके योग्यको कहते हैं ॥

निज प्रकृति वर्णाभ्यां युक्तः सत्वेन चक्षुषा ॥ चि

कित्स्यो भिषजां रोगी वैद्य भक्तो जिज्ञेन्द्रियः ॥ ४२ ॥

(क) सत्वं व्यसनाभ्युद्य क्रियादिष्वविह्वलताकरं तेन युक्तः चक्षुषा चक्षुरुपलक्षितेन । ततोऽन्येनापीन्द्रियेण चिकित्स्यः रोगान् मोचयितव्यः ॥ [अन्यत्र]

आयुष्मान् सत्त्ववान् साध्यो द्रव्यवान् मित्रवानपि ।

चिकित्स्यो भिषजा रोगी वैद्य वाक्य रुदास्तिकः ॥ ४२ ॥

आयुर्वेदोऽस्तीति मतिर्यस्य । आस्तिकः । (अथाचिकित्स्यः) चण्डः साहसिको भीरुः कृतघ्नो व्यग्र एव च ।

शोकाकुलो सुमूर्खश्च विहीनः करौश्च यः ॥ ४३ ॥

भा० स्वभाविक प्रकृति और वर्णसे युक्त और चलसुक्त तथा चक्षुसे हीन न हुआ हो ॥ वैद्यका भक्त और जिज्ञेन्द्रिय इस प्रकारका रोगी वैद्योंके चिकित्सायोग्य होता है ॥ ४१ ॥ (क) व्यसन और अभ्युद्यकी क्रिया आदिमें विह्वलताको न करनेवाला उसकरके युक्त । चक्षुके उपलक्षणसे उस्से अन्य इन्द्रियों करके । चिकित्सा योग्य होता है ॥ और भी ।

आयुवाला चलवाला द्रव्यवान् और मित्रोंकरके युक्त ॥ तथा वैद्यके कथनानुसार चलनेवाला आस्तिक इस प्रकारका रोगी वैद्यके द्वारा चिकित्सा करने योग्य है ॥ ४२ ॥ आयुर्वेद है इस प्रकार की बुद्धि है जिसकी वोह आस्तिक ॥ अनन्तर चिकित्साके अयोग्य तो कहते हैं ॥ क्रोधी साहसको करनेवाला भीरु कृतघ्न और व्यग्रचित्त शोकमें पीड़ित मरने

वाला और जो सामग्री सेहीन ॥ ४३ ॥

वैरी वैद्यविदग्धश्च श्रद्धाहीनश्च शङ्कितः ॥ भिषजा

मविधेयाः स्युर्नोपक्रम्याः भिषग्विधाः ॥ ४४ ॥

एतानुपाचरन्वैद्यो बहून् दोषान वासुधात् ॥

(क) चण्डीऽन्यन्त क्रोधशीलः । साहसिकः अविचार्यका

री भीरुर्मयशीलः । कृतघ्नो वैद्यकृतोपकार लोपकः ।

थ्यग्रो व्याकुलः । विहीनः करणेश्च यः जितेन्द्रियशक्ति

रहितः । वैरी न चिकित्स्यः कदाचिद्रोगो द्वेके अपवाद

भयान् । वैद्यविदग्धो वैद्यधूर्तः । तथा च सुश्रुत ॥

भा० वैरी वैद्यकी बुराई करने वाला श्रद्धाहीन तथा शंकायुक्त ॥ वैद्यों के अविधेय अर्थात् चिकित्सा करने के अयोग्य होने हैं और जो वैद्य के किसिम से हैं वोह भी असाध्य है ॥ इनका उपचार करने से वैद्य बहून् दोषों को प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥ (क) अन्यन्त क्रोधस्वभाव । विना सोचे करने वाला । उरपोक । वैद्य के किये इहे उपकार को नमानने वाला । व्याकुल । सामग्री से रहित जितेन्द्रिय शक्तिरहित । वैरी । चिकित्सा करने के अयोग्य । कदाचित् रोगके उद्रेक में अपवादके भयसे । वैद्यधूर्तः । उस प्रकार सुश्रुत ने कहा है ॥

सन सिद्धातिवैद्यस्तु गृहे यस्य न पूज्यते ।

(क) शङ्कितो वैद्य विश्वासरहितः । भिषजामविधेयाः ।

वैद्यवचनाविधायिनः । भिषग्विधाः वैद्यतुल्याः एते

नोपक्रम्याः ॥ न चिकित्स्याः । [अथ दूनस्य लक्षणम्]

यश्चिकित्सकमानेतुं याति दूनः सकल्यते ॥ स च

याह्क समुचित स्नाहगत्र निगंधते ॥ ४५ ॥

भा० जिस रोगी के घरमें वैद्य इज्जत नहीं किया जाता । वोह असाध्य होता है ॥ (क) वैद्य के विश्वास से रहित । वैद्य के कहने को न करने वाले । वैद्य के समान । ये चिकित्सा करने के योग्य नहीं है ॥ अनन्तर दूत का लक्षण कहते हैं ॥ जो वैद्य को लाने के वास्ते जाना है उसको दूत कहते हैं । वोह जिस प्रकार का उचित है उसको यहाँ पर कहते हैं ॥ ४५ ॥

दूताः सुजातयोः व्यङ्गः पटवो निर्मलाम्बराः । सु
खिनोः श्ववृषा रूढाः शुभ्रपुष्य फलैर्युताः ॥ सजा
तयः सुवेष्टाश्च सजीव दिशि सङ्गता ॥ भिषजं
समये प्राप्ता रोगिणः सुखहेतवे ॥ ४७ ॥

स जातयः रोगिसमानजातयः ।

यस्यां प्राणमरुद्धानि सानाडी जीव संज्ञिता ॥

[अथ दूतस्य यात्रायां शकुन विचारः ।]

भा० दूत अच्छी जात का व्यंग से रहित चतुर निर्मल वस्त्र के युक्त ॥ सुखी अश्व वृष पर आरूढ़ तथा शुभ्र पुष्य फल से युक्त ॥ ४६ ॥ अपने जात का अच्छी वेष्टा वाला वह जीव दिशा में संगत समय पर वैद्य के प्राप्त हुआ रोगी के सुख हेतु होना है ॥ ४७ ॥ रोगी के समान जात वाला ॥ जिस नाडी में प्राण वायु चलना है वो जीव संज्ञा वाली नाडी है । अनन्तर दूत की यात्रा में शकुन विचार कहते हैं ॥

वैद्याह्वानाय दूतस्य गच्छतो रोगिणः कृते ॥ न

शुभं सौम्य शकुनं प्रदीप्तन्तु सुखावहम् ॥ ४८ ॥

(क) प्रदीप्तमग्निः दूतो रोगी च रिक्तहस्तो वैद्यं न प

श्येत् । [अथ च] रिक्तहस्तो न पश्येत्तु राजानं भिष

जं गुरुमिति ॥

[अथ वैद्यस्य लक्षणम्]

भा० रोगीके अर्थ वैद्य को बुलानेके वास्ते जानेवाले दूतके सौम्य शकुन शुभनहीं होता और प्रदीप्त शकुन सुखावह होता है ॥ ४८ ॥
 (क) दीप्त अग्नि दूत रिक्त हस्त रोगी वैद्य को न देखे ॥ और खाली हान राजाको वैद्यको और गुरूको भी खाली हाथ न देखे ॥

चिकित्सां कुरुते यस्तु सचिकित्सक उच्यते ॥ स
 च यादृक् समीचीन स्नादशोऽपि निगद्यते ॥ ४९ ॥
 तत्वाधिगत शास्त्रार्थो दृष्टकर्मा स्वयङ्गुती ॥ लघु
 हस्तः शुचिः शूरः सज्जो यस्कर भेषजः ॥ ५० ॥
 प्रत्युत्पन्नमतिर्द्दामान् व्यवसायो प्रियम्बदः ॥ स
 त्यधर्मयरो यश्च वैद्य ईदृक् प्रशस्यते ॥ ५१ ॥

भा० जो चिकित्सा को करता है उसको वैद्य कहते हैं ॥ वह जिस प्रकार अच्छा होता है उस प्रकारके वैद्यको कहते हैं ॥ ४९ ॥ अच्छी प्रकार पढ़ा हुआ है शास्त्रका अर्थ जिसने कामोंको देखा हुआ आपही किया हुआ। हलके हाथ वाला यवित्र शूर अच्छे औषध और शास्त्रादि करके युक्त ॥ ५० ॥ तर्क बुद्धिवाला बुद्धिवान व्यवसायवाला प्रियबोलनेवाला ॥ सत्य धर्ममें तत्पर इस प्रकारका जो वैद्य है वह प्रशस्त है ॥ ५१ ॥

(क) दृष्टकर्म्मो दृष्टा परेण कृता चिकित्सा येन सः स्वयङ्गु-
 ती स्वयं चिकित्साकुशलः। लघुहस्तः सिद्धि मद्बुस्तः।
 [अथ निषिद्धो वैद्यः।] कुचैलः कर्कशस्तब्धो ग्रामीणः
 स्वयमागनः ॥ पञ्च वैद्या न पूज्यन्ते धन्वन्तरि स
 मा यदि ॥ ५२ ॥ कर्कशः अप्रियवादी स्तब्धः सा-
 भिमानः। ग्रामीणः व्यवहार चतुरः।

भा० (क) देखी है दूसरेकी की हुई चिकित्सा जिसने। आप चिकित्सा में

कुशल हाथकी सिद्धिवाला ॥ अतन्तर निषिद्धवैद्य को कहते हैं ॥
 मैले कपड़े पहननेवाला । अप्रिय भाषण करनेवाला । मूर्ख गंवार और
 विन बुलाये आनेवाला । ये पांच प्रकारके वैद्य धन्वन्तरि के समान दूजे भी
 नहीं पूजन किये जाते हैं ॥ ५२ ॥ (क) अप्रियवादी । अभिमानी । व्यव
 हार में मूढ़ ॥

[अथ वैद्यस्य कर्माह ।]

व्याधेस्तत्त्व परिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः । एतद्वै
 द्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥ ५३ ॥

[अस्यायमर्थः] (क) व्याधेः सम्यक् परिचयो व्यथा शान्ति
 करणं वैद्यस्य कर्म न तु वैद्य आयुषः प्रभुरित्यर्थः । अप
 रे त्वेवं व्याचक्षते । व्याधेस्तत्त्वतः परिचयो वेदनायाः शान्ति
 करणञ्च । एतदेव वैद्यस्य वैद्यत्वं किन्तु वैद्य आयुषः
 प्रभुः आगन्तु मृत्युशान्तिहरणान् ।

तथा च सुश्रुते धन्वन्तरिः ॥

भा० अनन्तरवैद्यके कर्म कहते हैं । रोगके तत्त्वका ज्ञान । और वेद
 नाका अवरोध । ये वैद्यका वैद्यपना है वैद्य आयुका स्वामी नहीं है ॥ ५३ ॥
 (क) इसका यह अर्थ है । रोगका ज्ञानना । पीड़ाकी शान्ति । ये वैद्यका कर्म
 है नकि वैद्य आयुका प्रभु है ॥ दूसरे इस प्रकार व्याख्या करते हैं ॥
 व्याधिका तत्त्वसे परिचय और वेदनाकी शान्ति करनी भी । ये ही वैद्यका
 वैद्यत्व नहीं है किन्तु वैद्य आयुका स्वामी है । क्यों कि आगन्तुक शान्ति
 मृत्युके हरण करनेसे । इस प्रकार सुश्रुतमें धन्वन्तरिने कहा है ॥

एकोत्तरं मृत्युशान्ति मथर्वाणः प्रचक्षते । तत्रैकः

कालसंज्ञः स्यात् शेषास्त्वागन्तवः स्मृतः ॥ ५४ ॥

[अयमर्थः] अधर्वाणः अयर्थतत्त्वज्ञत्वेनाथर्वजुल्याः ।

मृत्युमेकोत्तरं शतं प्रवदन्ते । तत्रैको मृत्युः कालसंयुक्तः ।
 । काल आयुषोऽन्ते शरीरिणामवश्यं संहर्ता । सर्वैरु
 पायैर्निवारयितु मशक्यः । स ब्रह्मादीनां युषोऽन्ते सं-
 हरति । यत आह लिङ्गपुराणे । कार्तिकेयं प्रति महा
 देवः । (ख) ममायुर्ग्रसते कालः कुनः पुत्र । रसा
 यनमिति । तेन कालेन संयुक्ता । संहारय निर्युक्तः
 सोऽवश्यं भावी । शेषाः शतं मृत्यवः आगन्तवः ।
 आगन्तुरूपहेतु जन्मानः कार्यकारणयो रभेदोपचारा
 त् । आगन्तवो हेतवो यथा ॥

भा० एकसे एक (१०९) मृत्यु अथर्ववेदके जाननेवालोंने कहे हैं
 । उसमें एक की काल संज्ञा है वाकी आगन्तुक कहे गये हैं ॥ ५४ ॥
 (क) इसका यह अर्थ है । अथर्ववेदके जानने से अथर्व के समा
 न । मृत्यु एकसे एक कहे हैं । उसमें एक मृत्यु काल करके युक्त ।
 है । काल आयुके अन्तमें मनुष्यों का अवश्य संहार करता है । अर्था
 त् सब उपायोंसे दूर करनेकी । अशक्य । वह ब्रह्मादिकोंकी आयुके
 अन्तमें संहार करता है । जैसे कि लिंगपुराण में कार्तिक स्वामी से
 महादेव ने कहा है ॥ (ख) हे पुत्र मेरी आयुकी काल ग्रसना है ।
 तब रसायन कदा ॥ इस कालसे संयुक्त । संहारके अर्थ निर्युक्त
 वह अवश्य होनेवाला है । वाकी १०० मृत्यु आगन्तुक हैं । आगन्तु
 रूपकारण जन्मवाले । कार्य और कारणके अभेदोपचार से । आग
 न्तुक हेतु जैसे ॥

विषभक्षणा मजीरणीऽत्यन्त भोजनञ्च दुर्देशजलपा
 नम् । तथाऽतिबलवैरि व्याघ्र वनमहिष मत्तमातंगा

दि भिर्युद्धम् ॥ दन्द्शूकेन क्रीडनमत्युच्चवृक्षाग्रारो
हरणम् बाहुभ्याम् । महान्तरङ्गिणीतरणामेकाकिनो रा-
त्रौ दुर्गमार्गे गमनम् ॥ ५६ ॥ इत्यादि । आगन्तु हेतजा
मृत्यवो दुर्निमित्ता भाविभावनावलवत्त्वादायुषि सत्यपि
मारयन्ति । यथा मस्त्रिका तैलवर्तिवह्निषु विद्यमानेषु
वायुना दीपं नाशयति । तथा च ।

तथा सत्यपि तैलादौ दीपं निर्वापयेन्मरुत् ॥ एव
मायुष्यहीनेऽपि हिंसन्त्यागन्तु मृत्यवः ॥ ५७ ॥

भा० विभक्षण अजीर्ण बद्धनमोजन दुष्टदेशका जलयान । उसी प्रकार बद्धन
बलवाले वैरी व्याघ्र जंगली मैसा और मल्लहाथी इनके साथ युद्ध ॥ ५५ ॥
दो नोकदार पदार्थों के खेलेना और बद्धन ऊंचे वृक्षकी चोटी पर चढ़ना
और हाथोंसे । बड़ी तरंगवाली नदीमें तैरना । अकेला रातमें अथवा किले
में और मार्ग में जाना ॥ ५६ ॥ इत्यादि । आगन्तु हेतुसे उन्मत्तहृदय दुर्निमित्त
भावी भावनाके चलसे आयुके रहने पर भी मार डालने हैं ॥ जैसे दीचेमें ते
स बत्ती और आग रहने परभी वायुसे दीप नाशहोता है । उस प्रकार कहा है
। उस प्रकार होने पर भी तैल लेकर आदिमें दीचेको वायु बुझावता है ।
इसी प्रकार आयुके हीन नहोने परभी आगन्तुक मृत्युनाशकरते हैं ॥ ५७ ॥

(क) किन्तु आगन्तु निमित्तानि निवारयितुञ्च शक्यन्ते ।

यत आह सुश्रुते धन्वन्नरिः ।

दोषागन्तु निमित्तेभ्यो रसमन्त्र विशारदौ ॥ रत्नेतां
नृपतिं नित्यं यत्नाद्विद्य पुरोहितौ ॥ ५८ ॥

(ख) वैद्यमन्त्रिणौ नृपतिं नित्यं यत्नाद्भक्षेताम् । कुतः
दोषागन्तु निमित्तेभ्यः दोषा निधिद्वाहार विहार भूयिता

दानपित्तकफ रोगोत्पादकाः । आगन्तव- निषिद्धा विहार
 रा अतिबलवैरि विग्रहादयः । ने निमित्तानि येषान्तिभ्यः
 शान्तमृत्युभ्यः । ननु वैद्य पुरोहितौ कथं शान्तं मृत्युं निवारयि-
 त्नुं शक्नोत तत्राह । (ख) यतस्तौ रसमन्त्र विषारदौ प्रथ-
 मं वैद्ये दिनचर्या रात्रिचर्योर्तुचर्योक्ताहार विहारभ्यां
 दानपित्तकफ धातुमलान् समानेव रक्षति ॥

भा० (क) किन्तु आगन्तु निमित्त रोगोंको दूर करसके हैं । जैसा सुश्रुतमें
 धन्वन्तर ने कहाहै । रस और मंत्रमें नियुक्त ऐसे वैद्य और पुरोहित दोष
 और आगन्तु निमित्तों से सदा राजा की रक्षा करें ॥ ५८ ॥ (ख) वैद्य और
 मंत्रशास्त्री राजाको नित्य यत्नसे बचावें । कैसे । दोष अर्थात् निषिद्ध आ-
 हार विहार से दूषित दान पित्त कफ इन रोगोंका उत्पन्न करनेवाला । आ-
 गन्तुक अर्थात् निषिद्ध विहार अतिबलवान्ने शत्रुके साथ लड़ाई । वे हैं
 निमित्त जिनके उन शान्त मृत्यु आदियों से । (ननु) शंका । वैद्य पुरोहित
 क्योंकर शान्तमृत्यु को निवारण कर सकें हैं । उसको कहने हैं । (ख) क्यों
 कि वे दोनों रसमंत्र में चतुर होते हैं । प्रथम वैद्य दिनचर्या रात्रिचर्या औ-
 र ऋतुचर्या इनमें कहेहुये आहार विहारोंसे समान दान पित्त कफ औ-
 र धातु मल इनको ही रक्षा करना है ॥

ततो रसज्ञत्वा द्रुसै मृत्युं जयादिभिर्निषिद्धाहार विहार
 दूषित दोषजनितान् विकारान् मृत्युहेतून् पहरति ।
 मंत्रीच सद् बुद्धि दानिन मृत्युहेतुभ्यो निषिद्ध विहारभ्यो
 नृपतिं निवारयति । तत आगन्तु मृत्यवो निवारयितुं
 शक्या नत्ववप्यम्भा विनः । [अथायुर्विचारः ।]

भिषगादौ परीक्षेत रुग्णस्यायुः प्रयत्नतः ॥ ततः

आयुषि वीस्तीरौ चिकित्सा सफला भवेत् ॥ ५९ ॥

भा० और उसके जाननेके कारण मृत्युको जय करनेवालों रसों से निषिद्ध आहार विहारों से दूषित दोषों से उत्पन्नहुवे मृत्युके कारण विकारों को दूर करनहै । तथा मंत्री भी अच्छी बुद्धि देनेके धारा । मृत्युके हेतु निषिद्ध विहारों से राजाको हरातेहैं । उसकारण आगन्तु मृत्युके को दूर करनेको समर्थ हैं । और न कि अवश्य होनेवालोंको ॥ अनन्तर आयुका विचार कहतेहैं ॥ सैद्य पहले यत्नके साथ रंगीकी आयु परीक्षा करे ॥ क्यों कि आयु बहुत होनेमें चिकित्सा सफल होती है ॥ ५६ ॥

[तत्र दीर्घायुषो लक्षणानि ।]

सौम्या दृष्टि भवेद् यस्य श्रोत्रं वक्त्रन्तथैव च ॥ स्वा
दुङ्गन्धं विज्ञानाति स साध्यो नात्र संशयः ॥ ६० ॥
पाणिपादौ च यस्यौष्णो दाहः स्वल्पतरा भवत ॥ जि
ह्वा तु कोमला यस्य स रोगी न विनश्यति ॥ ६१ ॥
खिद हीनो ज्वरो यस्य श्वासो नामिक या चरेत् ॥ क
ण्ठश्च कफहीनः स्यात् स रोगी जीवति ध्रुवम् ॥ ६२ ॥
यस्य निद्रा सुखेन स्यात् प्रारिरं ध्रुति मद्भवेत् ॥ इ
न्द्रियाणि प्रसन्नानि स रोगी नैव नश्यति ॥ ६३ ॥

भा० उसमें दीर्घायु का लक्षण कहतेहैं ॥ जिसकी दृष्टि और कर्ण तथा मुख सौम्य होतेहैं ॥ और मधुर तथा गन्ध को ज्ञानता है वे रोगी साध्य है इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ६० ॥ जिसके हाथ पैर गरम और दाह थोड़ा होता है । और जिसकी जिह्वा कोमल होती है वह रोगी नहीं मरता ॥ ६१ ॥ जिसको बिना पसीने ज्वर होता है । और नाकसे सांस चलता है । तथा कंठ कफसे हीन है वह रोगी अवश्य ही जीता है ॥ ६२ ॥ जिसको नींद सुखसे आती है और प्रारि रकान्तिवाला है । और जिसकी इन्द्रिये प्रसन्न हैं वह रोगी मरता ही नहीं ॥ ६३ ॥

[अथ स्वल्पायुषो लक्षणानि ।]

शरीर शीलयो यस्य प्रकृतेर्विकृति भवेत् ॥ तद
रिष्टं समासेन व्यासतश्च निबोध मे ॥ ६४ ॥ शृणो
ति विविधान् शब्दान् विपरीतान् शृणोति च । यो
न शृणोति चाकस्मात्तं वदन्ति गतायुषम् ॥ ६५ ॥
'यस्तूष्ण मिव गृह्णाति शीतमुष्णञ्च शीतवत् ॥
उष्णगात्रोऽतिमात्रं यो भृशं शीनेन कम्पते ॥ ६६ ॥
(तमपि गतायुषं वदन्तीत्यन्वयः)

भा० अनन्तर अल्पायुका लक्षण कहने हैं ॥ जिसका शरीर और स्वभाव बदल जाना है संक्षेपसे वही अरिष्ट है विस्तार पूर्वक कहना है ॥ ६४ ॥ जो नाना प्रकार के शब्दों की सुनता है और जो विपरीत सुनता है तथा जो अकस्मात् नहीं सुनता उसको गतायु कहने हैं ॥ ६५ ॥ जो शीत की गरम के सदृश ग्रहण करता है और जो उष्ण को शीत के सदृश ग्रहण करता है और जिसका शरीर बड़न गरम है अथवा बड़न शीत से कांपता है उसको भी गतायु कहने हैं ॥ ६६ ॥

प्रहारं नैव जानाति यो गच्छेदन्यथापि वा ॥ पांशुनै
वाव कीर्णानि यश्च गात्रानि मन्यते ॥ ६७ ॥ वर्णा
न् यथा वा शब्दो वा यस्य गात्रे भवन्ति हि ॥ स्नाता
बुलिप्तं यश्चापि भजन्ते नीलमालिकाः ॥ ६८ ॥ वि
परीतेन गृह्णाति रसान् यश्चोपयोजितान् ॥ यो वा
रसान्त्रसेवेत्तं गतासुम्यचक्षते ॥ ६९ ॥ सुगन्धं
वेत्ति दुर्गन्धन्दुर्गन्धञ्च सुगन्धवत् ॥ गृह्णाति यो
ऽन्यथा गन्धं ज्ञान्ते दीपे निरामयः ॥ ७० ॥

भा० जिसको चोट नहीं मालूम होती या उलटा चलना है । और जिसका शरीर धूल लगी हुआ है उसको गतायु कहते हैं ॥ ६७ ॥ जिसके शरीर में बर्ण और का और हो जाता है । अथवा लकीरें पड़ जाती हैं ॥ और जिस स्नान करके लेष किये हुए पर नीले भ्रमर बैठते हैं ॥ ६८ ॥ और जो उपयोग किये हुए रसों को विपरीत अथवा जो रसों को न सेवन करे उसको गतायु कहते हैं ॥ ६९ ॥ जो निरोगी सुगंध को दुर्गंध माने और दुर्गंध को सुगंध ॥ इस प्रकार जो अन्यथा गन्ध को ग्रहण करता है और दीवके शान्त होने में देखता है ॥ ७० ॥

रात्रौ सूर्यं ज्वलन्तं वा दिवा वा चन्द्रवर्चसम् ॥ श्विया
ज्योतीषि यश्चापि ज्वलितानीव पश्यति ॥ ७१ ॥

(क) दिवा वा चन्द्रवर्चसम् । सूर्यमित्यन्वयः । ज्योतीषि
नक्षत्राणि । विद्युत्वन्तोऽसितल्पे घान् गगने निर्घने घना
न् ॥ विमानयान प्रासादैर्यश्च सङ्कुलमम्बरम् ॥ ७२ ॥
यश्चानिलं मूर्त्तिमन्तमन्तरीक्षीऽवलोकते ॥ धूमनी
हार वासो भिरावृतामिव मैदनीम् ॥ ७३ ॥ प्रदीप्तमि
व यो लोकं यो वास्तु न भिवाम्भसा ॥ भूमिमष्टा प
दाकारां लेखाभिर्यश्च पश्यति ॥ ७४ ॥ यो न पश्य
ति ऋत्वाणि यश्च देवी मरुन्धतीम् ॥ ध्रुवमाका
शगङ्गाञ्च तं वदन्ति गतायुषम् ॥ ७५ ॥

भा० या रात में प्रकाशमान सूर्य अथवा दिन में प्रकाशित चन्द्रको और दिन में आग लगनेके समान नक्षत्रों की देवता है उसको गतायु कहते हैं ॥ ७१ ॥ (क) दिन में चन्द्रमा प्रकाश । रात में सूर्य इस प्रकार अन्वय है । (ज्योतीषि) अर्थात् नक्षत्र । साफ आस्मान में विजलीवालेकाले मेघों की । और विमान असचारी इनसे घिरे हुए आकाशको जो

देखता है ॥७२॥ और जो आकाशमें मूर्तिवाले वायुको देखता है । तथा धूम
 और कुहेरा इन करके वस्त्रसे वेष्टित इर्द के मानिन्द देखता है उसको गतायु
 कहते हैं ॥७३॥ जो लोकांको जलने इर्दके समान देखता है । अथवा पानी
 से डूबनेके समान देखता है । या लकारोंसे अष्टकीरा इर्द के मानिन्द देख
 ता है उसको गतायु कहते हैं ॥७४॥ जो नक्षत्रोंको नहीं देखता और अरु
 न्धनी देवीको भी नहीं देखता । तथा ध्रुव और आकाश गङ्गाको भी नहीं
 देखता उसको गतायु कहते हैं ॥७५॥

आदर्शोऽम्बुनि घर्भे वा छायां यश्च न पश्यति ॥ प
 श्यत्येकाङ्ग हीनां वा विहतां वान्यसन्वजाम् ॥७६॥
 श्वकाक कङ्क गृध्राणां प्रेतानां यत्तरत्तसाम् ॥ आतु
 रो लभते मृत्युं स्वस्था व्याधि मवाप्नुयान् ॥७७॥
 ह्रीं श्रियो न पश्यतो यस्य तेज ओजः स्मृति प्रभा (प्रतिभा)
 । अकस्माच्च भजन्ते यं सगतासु रसं शयम् ॥७८॥
 यस्याधरोष्ठौ पतितौ क्षिप्तश्चोर्द्धं तयोत्तरः ॥ उभौ
 वाजाम्बवाभासौ दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥७९॥
 आरक्तादशना यस्य पथावा वास्युः पतन्ति वा । स्व
 ञ्जन प्रतिभा वापि तं गतायुषमादिषोत् ॥८०॥

भा० जो पीरो। में जलमें धूपमें छायाको नहीं देखता ॥ और जो देख
 ता है तो एक अंगसे हीन विहता और जीवोंकी सी ॥७६॥ कुत्ता की
 व्या गिद्ध और प्रेतोंकी तथा यत्तरत्तस । इनकी छाया जो देखता है वो रो
 गी मृत्युको प्राप्त होता है और स्वस्थ रोगी होजाता है ॥७७॥ अकस्मात्
 जिसकी लज्जा और कान्ति नष्ट होजाती है । तथा तेज ओज स्मृति प्रभा
 ये जिसके अकस्मात् हो आते हैं । उसकी अवश्य गतायु कहना चाहिये
 ॥७८॥ जिसके नीचे ऊपरके होठ लटक पड़ते हैं तथा उर्तंडालने से

ऊपर होजाता है ॥ और दोनों जामन के समान काले पड़ जाते हैं उसका
जीवनादुर्लभ है ॥ ७६ ॥ जिसके दाँत आस पास लाल हों अथवा काले
हों या गिर पड़ें अथवा खंजन के समान कानि हो । उसको गतायु कहते
हैं ॥ ८० ॥

हृष्या तथा बुलिप्ता च जिह्वा शूना च यस्य

वै ॥ कर्कशा वा भवेद्यस्य सोऽचिराद्विजहात्यसून्

॥ ८१ ॥ कुटिला स्फुटिता वापि शुष्का वा यस्य ना

स्तिका ॥ अवस्फूर्जति भग्ना वा स न जीवति मान

वः ॥ ८२ ॥ (स्फूर्जति एवासवेगेनोच्चैः शब्दं करो

नीत्यर्थः ।) सङ्घिप्ते विषमे स्तब्धे रूक्षे सास्त्रे च लो-

चने ॥ स्यातां परिस्वुते यस्य स गतायुर्नरो ध्रुवंश्च ॥ ८३ ॥

भा० काली तथा लिसी इर्द्ध या कांटे से युक्त जिसकी जीभ होती है ॥ अथ
वा कर्कशा होती है बोह शीघ्र प्राणीों को त्याग करता है ॥ ८१ ॥ टेढ़ी फटी
सी या शुष्क या भग्न इर्द्ध जिसकी नाक धोंकनी के मानिन्द धोंकनी है ।
वो मनुष्य नहीं जीता ॥ ८२ ॥ (प्रासके वेग से उच्च शब्द करती है ।)
भीतर को धसी इर्द्ध या छोटी बड़ी अथवा पथरार्द्ध इर्द्ध लरवी रक्त के स
हिम बहनी इर्द्ध इस प्रकार की जिसकी आँखें होती हैं वो मनुष्य निश्चय
गतायु है ॥ ८३ ॥

केशाः सीमन्तिनो यस्य सङ्घिप्ते विनते सुवो ॥ लु

ठन्ति चाक्षिपद्माणि सोऽचिराद्याति मृत्यवे ॥ ८४ ॥

(लुठन्ति पतन्ति ।) नाहरत्यन्नमास्यस्थं नधा

रथति यः पिरः ॥ स काग्र दृष्टि मृदात्मा सद्यः प्रा

णम् विमुञ्चति ॥ ८५ ॥ उत्थाप्य मानो बहुषाः सं

भोहं कोऽपि गच्छति ॥ बलवान् दुर्बलो वापि तं —

भिषगादिशेत् ॥ ८६ ॥ निद्रा निरन्तरं यस्य यो जाग
 र्ति च सर्वदा ॥ मुखेद्वा वक्त्रे कामश्च प्रत्याख्येयः
 स जानता ॥ ८७ ॥ उत्तरोष्ठञ्च यो लिह्यादुत्करंश्च
 करोति यः ॥ प्रेतैर्वा भाषते सायं प्रेत रूपं तमादिशे
 त् ॥ ८८ ॥ (उत्करान् हस्त पादादि विक्षेपान् ।)
 खेभ्यश्च रोमकूपेभ्यो यस्य रक्तं प्रवर्तते ॥ पुरुष
 स्या विषार्तस्य स सद्यो जीवितं त्यजेत् ॥ ८९ ॥ स
 म्यक् चिकित्स्यमानस्य विकारो योऽभिवर्द्धते ॥ प्र
 क्षीणबलमांसस्य लक्षणं तद् गतायुषः ॥ ९० ॥

भा० जिसके सिरके बाल उ डगये हों या छोटी रुकी भवे जिसकी हो
 जावे ॥ और आंख की पलके गिरपड़े वोह घोड़े ही काल में मरजाता है ॥
 ८४ ॥ जिसके मुखमें का अन्न नीचे नहीं उतरता और जिसका सिरनीचे
 गिरा पड़ता है ॥ एकाम्र दृष्टि किया जावा स्वस्थ इस प्रकार कारोगी तत्काल
 लक्षणोंकी त्याग करता है ॥ ८५ ॥ उठने से जो बड़न से मोहको प्राप्त हो
 ता है ॥ बलवान हो सुबल हो उसको वैद्य असाध्य कह देवे ॥ ८६ ॥
 जो निरन्तर सोता है अथवा सर्वदा जागता है ॥ तथा बोलने की इच्छा कर
 ना जावा मोहको प्राप्त होता है ॥ वो बुद्धिवान वैद्यके द्वारा जवाव देने योग्य है
 ॥ ८७ ॥ जो रोगी नीचे ऊपरके होठोंकी चाटे तथा जो हाथ पैरोंकी पीटता है
 ॥ अथवा सायंकालमें प्रेतोंके साथ भाषण करता है उसके प्रेत रूप कह
 ते हैं ॥ ८८ ॥ विषसे पीड़ित न हो ऐसे जिस पुरुषके मूं आंख कान इत्यादि
 छिद्रोंमेंसे अथवा रोम रूप से रक्त निकलता है ॥ वोह तत्काल मरता है
 ॥ ८९ ॥ अच्छी तरह इलाज किये कामी जो रोग बढ़ता है । और कमजोर त
 था दुबलेका जो रोग बढ़ता है वोह गतायु कालक्षण है ॥ ९० ॥

भूता प्रेताः पिशाचाश्च रक्षांसि विविधानि च ॥

मरणाभिसुरवं जन्तु मुपसृत्य च नित्यशः ॥ तानि धे
 यजवीर्यशोणि प्रतीच्छन्ति जिघांसया ॥ ६१ ॥ तस्मा
 त्मोघाः क्रियाः सर्वा भवन्त्येव गतायुषः ॥ ॥

(क) नन्वायुषि सति चिकित्सायाः साफल्यमुक्तम् । आ
 युष्येदस्ति तदा तदेव जीवन हेतुः ॥ किं चिकित्सावि
 धानं तत्रोच्यते ॥ (ख) आयुषिसति चिकित्सायाः फ
 लं वेदानानिग्रहः । (उक्तञ्च)

आयुष्मान् पुरुषो जीवेत् सव्यथा भेषजं विना ॥
 धेयजेन पुनर्जीवं स एवहि निरामयः ॥ ६२ ॥

भा० भूत प्रेत पिशाच और नानाप्रकारके राक्षस । प्रतिदिन मरणके सम्भ
 वहुंवे रोगीके पास जाकर उन औषधियोंके वीर्योंको नष्टकरने हैं ॥ ६१
 उसकारण गतायु की सब क्रिया निष्फल होनी हैं ॥ (क) (ननुशंका)
 आयुके रहनेपर चिकित्साकी सफलता कहीं । आयु होना होती है तब
 वोही जीवनका हेतु है । क्या चिकित्साका विधान उसमें कहा है ॥
 (ख) आयुके होनेपर चिकित्साका फल वेदानाका निग्रह है । कहा है ।
 विना औषध के आयुवाला पुरुष व्यथाके सहित जीना है ॥ और जो औ
 षध करके फिरसे जीवे वोही निरोगी है ॥ ६२ ॥

(क) किञ्च । आयुषि सत्यापि रोगी चिकित्सां विना उत्था
 तुं न शक्नोति । यत आह चरकः ।

सति चायुषि नोपायं विनोत्थातुं क्षयो रूजो ॥ दर्शि
 तश्चात्र दृष्टान्तः पङ्क लग्नो यथा गजः ॥ ६३ ॥

किञ्च । चिकित्सां विनायुष्मानप्यवसीदति ।

भा० (क) आयु के होनेपर भी रोगी चिकित्सा के बिना अच्छा नहीं हो सकता। जैसे कि कहा है चरक ने। रोगी आयु होनेपर भी चिकित्सा के बिना उठ नहीं सकता ॥ इसमें दृष्टान्त दिखाया है। कि जैसे दल २ में फसा गज ॥ ६३ ॥
चिकित्सा के बिना आयु वाला भी पीड़ित होना है ॥

यत आह सय्व ।

सति चायुषि नष्टः स्या दामयैश्चा चिकित्सितः ॥

यथा सत्यपि तैलादौ दीपो निर्व्वीति वात्यया ॥ ६४ ॥

अत एवोक्तम् । साध्या याप्यत्वमायान्ति याप्या

गच्छन्त्यसाध्यताम् ॥ घ्नन्ति प्राणान साध्यास्तु

नराणाम क्रियावतामिति ॥ ६५ ॥ चिकित्सा

तु अनिश्चितायुषोऽपि कर्त्तव्या । यत आह ।

भा० जैसे कि कहा है वोही। आयु के रहनेपर भी चिकित्सा न किया हुआ पुरुष रोगोंसे मरजाता है ॥ जैसे तैल के रहनेपर भी आँधीसे दी वायुल होजाना है ॥ ६४ ॥ इसी वास्ते कहा है ॥ साध्यरोग याप्य होने हैं। और याप्य असाध्य होजाते हैं ॥ वे इलाज वाले मनुष्योंको असाध्य रोग नाश करते हैं ॥ ६५ ॥ इलाज तो अनिश्चित आयु वालेकी भी करनी चाहिये। जैसे कि कहा है।

तावत्प्रतिक्रिया कार्या यावच्छसिति मानवः ॥

कदाचित् दैवयोगेन दृष्टाऽरिष्टोऽपि जीवति ॥ ६६ ॥

(क) इति तु यस्या साध्यत्वं सन्दिग्धं तं प्रत्युक्तम् ॥

येषु त्वसाध्यता प्राखेराणानु भवेन विनिश्चिताः ते पु

नर्त्त चिकित्सा । यत उक्तम् ।

सद्वैद्यास्तेन ये साध्या नारभन्ते चिकित्सितु मिति

। अथ द्रव्यम् । सर्वे द्रव्य मपे क्षन्ते रोगी प्रभृतयो यतः ॥

विनाचित्तं न भेषज्यं चिकित्साङ्गं नतो धनुम् ॥ ६७ ॥

अथ परिचारकस्य लक्षणम् ।

स्निग्धोऽनुगुप्सु बलवान् युक्तो व्याधिरक्षणे ॥ वैद्य

वाक्यं कृदशान्तो युज्यते परिचारकः ॥ ६८ ॥

भा० नव नक चिकित्सा करनी चाहिये जब तक मनुष्य श्वास लेता है । क्यों कि कदाचित् हैवयोगसे मरण चिन्ह वालाभी रोगी जीवता है ॥ ६६ ॥
(क) यह तो जिसकी असाध्यता सन्देह युक्त है उसके प्रति कहा है ॥ जिनमें असाध्यता शास्त्र सेवा अनुभवसे निश्चय की गई वे फिरसे चिकित्सा करने के योग्य नहीं है । जैसे कि कहा है ॥ वे सदैव नहीं है जो साध्यकी चिकित्सा शुरू नहीं करने ॥ अनन्तर द्रव्य कहने हैं ॥ रोगी आदि सब द्रव्य चाहते हैं । क्यों कि बिना द्रव्य चिकित्साका अंग औषध नहीं होता इसवासे धन चाहिये ॥ ६७ ॥ अनन्तर सेवक कालक्षण कहने हैं ॥ प्रीतिवाला अनिन्दक बलवान् रोगी की रक्षा करने में युक्त । वैद्यके कहने के अनुसार चलने वाला । मेहनती इस प्रकार का परिचारक होना चाहिये ॥ ६८ ॥

(क) स्निग्धः प्रीतिः अनुगुप्सुः अनिन्दकः । अथ भेषजस्य लक्षणम् ॥ वैद्यो व्याधिं हरेद्येन तद्रव्यं प्रोक्तमौषधम् ॥

• तथा दृशमवप्रयं स्याद्रोगघ्नं तादृशं ब्रुवे ॥ ६९ ॥

[तत्रौषधग्रहणपरिभाषा ।]

प्रशस्तदेशे सज्जानं प्रशस्तेऽहनि चोद्धतम् ॥ अल्प

मात्रं बहुगुरां गन्धवर्णरसान्वितम् ॥ ७० ॥

भा० अनन्तर औषधका लक्षण कहने हैं । वैद्य जिसके द्वारा व्याधिको दूर करता है उसवस्तुको औषध कहने हैं । वोह जिस प्रकारकी रोग नाशक अवश्य होनी चाहिये वैसे को कहने हैं ॥ ६९ ॥ उसमें औषध लेने के नियम को कहने हैं । अच्छे देशमें उत्पन्न हुई अच्छे दिन उखड़ी । थोड़ी मात्रा

त्रा करके युक्त बद्धतगुणा वाली गन्धवर्ण रसकरके युक्त ॥ १०० ॥

दोषघ्नमग्लानि करमधिकं न विकारि यत् ॥ सभी

द्व्य काले दत्तञ्च शेषजं स्याद्गुणा वहम् ॥ १०१ ॥

आग्नेया विन्ध्यशैलाद्याः सौम्यो हिम गिरिःस्मृतः ॥

अतस्तदौषधानि स्यु र्नुरूपाणि हेतुभिः ॥ १०२ ॥

(क) आग्नेयाः अधिकाग्न्यांशः सौम्यः अधिकसौम्यं

शः ॥ औषधयोः सवैषधानि । अत्र स्यार्थे अण् ।

भा० दोषनाशक ग्लानि न करने वाली न बद्धत विकार को करने वाली ।

देखकर समय पर दीर्घ ईर्ष प्रकारकी औषधीगुणा वह है ॥ १०१ ॥

विन्ध्याचलादिक पर्वत आग्नेय अर्थात् अधिक उष्ण गुणा हैं ॥ और हि

मालय पर्वत सौम्य अर्थात् अधिक शीत गुणा कहा गया है ॥ इसवास्ति उ

न में के औषध कारण के सहपा होते हैं ॥ १०२ ॥

(अनुरूपाणि सदृशानि ।)

अन्येष्वपि प्ररोहन्ति वनेषूप वनेषु च ॥ गृह्णीया

तानि सुमना शुचिः प्रातः सुवासरे ॥ १०३ ॥ आदि

त्य सम्मुखो मौनी नमस्कृत्य शिवं हृदि ॥ साधारण

धराद्रव्यं गृह्णीयाद्दुत्तराश्रितम् ॥ १०४ ॥

(क) साधारण धराद्रव्यं । सर्वभूमि भवन्द्रव्यम् । उत्तरा

श्रितं स्वस्मात् उत्तरदिग्भवम् ॥

चल्मीक कुत्सितानूप शमशानोध रमार्गजाः ॥

जन्तुवन्दि हिमव्याप्ता नौषध्यः कार्यसाधिकाः ॥ १०५ ॥

भा० औरभी बाग जंगलेंमें उत्पन्न होती हैं । यवित्र और स्वस्थ चित्त होकर अच्छे दिन प्रातःकालमें उनको ग्रहण करे ॥ १०३ ॥ सूर्यके सम्मुख मोन धारण करके हृदयमें शिवका ध्यान कर और नमस्कार करके उत्तर दिशाकी साधारण भूमिसे औषधका ग्रहण करे ॥ १०४ ॥

(क) सब भूमिमें उत्पन्न हुवे द्रव्योंको । जपने से उत्तर की तरफ हुवे बिं चोद । कुलित वज्रन पानीकी जगह प्रमथान कसर और स्त्रोमें होनी वाली । तथा जीव जन्तु आग पाला इनसे व्याप्त औषधि कार्य्य साधक नहीं होती ॥ १०५ ॥

शरदाखिल काय्यार्थं ग्राह्यं सरसमौषधम् ॥ वि

रेक वमनार्थन्तु वसन्तान्ते समाहरेत् ॥ १०६ ॥

(क) वसन्तान्ते वसन्त मध्ये समाहरेत् संगृहीयान् ।

अतिस्थूल जटायास्युःस्तासां ग्राह्या त्वचो ध्रुवम् ।

गृहीयान् सूक्ष्ममूलानि सकलान्यपि बुद्धिमान् १०७

अन्यच्च । महान्ति येषां मूलानि काष्ठगर्भाणि सर्व्वनः ॥

तेषास्तु चल्कलं ग्राह्यं ह्रस्वमूलानि सर्व्वशः ॥ १०८ ॥

न्यग्रोधदे त्वचो ग्राह्या शरः स्याद्दीजकादितः ॥

तालीसादिष्व पत्राणि फलं स्यात् त्रिफलादितः ॥ १०९ ॥

भा० शरदकालमें संपूर्ण कार्य्य के अर्थ रस करके युक्त औषध लेनी चाहिये । वसन्तमें वमन और विरेचन के अर्थ लावे ॥ १०६ ॥ जो वज्रन मोठी जटावाली औषधी हैं उनकी छाल लेनी चाहिये ॥ और छोटे मूलवाली सबकी जड़ बुद्धिवान् लेवे ॥ १०७ ॥ औरभी । जिनकी बड़ी जड़ चारों तरफ काष्ठसे भरी है ॥ उनकी छाल और छोटी जड़वालोंकी जड़ लेनी चाहिये ॥ १०८ ॥ षडगि दृष्टोंकी त्वचा लेनी चाहिये और विजयसारा दिकोंका शर लेना चाहिये । तालीसादिकोंके पत्र और त्रिफलादिकोंके फल लेने चाहिये ॥ १०९ ॥

क्वचिन्मूलं क्वचित्कन्दः क्वचित्पत्रं क्वचित्फलम् ॥

क्वचित्पुष्पं क्वचित्सर्व्वं क्वचित्सारः क्वचित्त्वचः ॥

॥११०॥ चित्रकं सूररां निम्बो वासाच त्रिफला क्रमात् ॥

धानकी करण्टकारी च खदिरः क्षीरपादपः ॥१११॥

क्वचिन्निम्बस्य गृह्णीयात् पत्राभावे त्वचामपि ॥

बालंफलन्तु विल्वस्य पक्कमारग्वधस्य च ॥११२॥

भा० कहींपर जड़ कहीं कन्द कहीं पत्ते कहीं फल ॥ कहीं पुष्प कहीं सब कहीं सार और कहीं छाल कहीं है ॥ ११० ॥ क्रमसे चित्रकामूल सूररा का कन्द निम्बके पत्ते और वांसेके भी पत्ते त्रिफलाके फल धायका फूल कटेलीका सब अंग खदिर का सार और दटादिकों की छाल लेनी चाहिये ॥ १११ ॥ कहींपर नीमके पत्तोंकी जगह छालभी लेवे ॥ बेलका कच्चा फल और अमलनास का पक्का फल लेवे ॥ ११२ ॥

अङ्गुःऽनुक्ते जटा ग्राह्या भगिःऽनुक्ते ऽखिलं समम् ॥ पा

त्रेःऽनुक्ते मृदः पात्रं कालेऽनुक्ते त्वह सुखम् ॥ ११३ ॥

नवान्येवहि योज्यानि द्रव्याण्यखिल कर्मसु ॥ विं

ना विडङ्ग कृष्णाभ्यां गुडधान्याज्यमादिकैः ॥ ११४ ॥

(धान्यमन्त्र) पुराणन्तु प्रशस्तं स्यात्ताम्बूलङ्गुज्जिक

न्तथा ॥ शुष्कं नवीन द्रव्यन्तु योज्यं सकल कर्मसु ॥ ११५ ॥

भा० जहाँपर औषधिका अंग न कहा हो तौ वहाँ जड़ लेनी चाहिये और भाग न कहा हो तौ सब समभाग लेवे ॥ पात्र न कहा हो तौ मट्टीका पात्र लेवे और समय न कहा हो तौ प्रातःकाल लेना चाहिये ॥ ११३ ॥ सब कामों में नवीन ही द्रव्य योजना करना चाहिये ॥ वायु विडंग पीपल गुड धान घृत पाहन इनको छोड़के बाकी सब नवीन होनी चाहियें ॥ ११४ ॥ (धान्य अर्थात् अन्न) पुराने पान और कांजी अच्छी होनी हैं ॥ सब कामोंमें सूखी और

नवीन औषधयोजना करनी चाहिये ॥ ११५ ॥

आर्द्रन्तु द्विगुणं युञ्ज्या देष सर्वत्र निश्चयः ॥ गुड

ची कुटजो वासा कूष्माण्डश्च शानावरी ॥ ११६ ॥

अश्वगन्धा सहचरो शत पुष्या प्रसारिणी ॥ प्रयोक्त

व्याः सदैवार्द्रा द्विगुणं नैव कारयेत् ॥ ११७ ॥

(क) सहचरः कुरारकः कटसरै आ इतिलोके ॥

वासानिम्ब पटोलकेतकचला कूष्माण्डकेदीवरी ।

वर्षाभूः कुटजाश्च कन्द सहिता सापूति गन्धास्मृता ॥

॥ ११८ ॥ सेन्दीनागबला कुरारक पुरोछत्राभृता सर्व

दा ॥ सार्द्रा एव तु तत् क्वचित् द्विगुणिता काव्येषु योज्या

बुधैः ॥ ११९ ॥

भा० गौलीदवा दूनी देनी चाहिये यह सब जगह निश्चय है ॥ गिलोय कुरै
व्या वांसा पेठा सतावर असगन्ध कटसरैया सोंफ गं प्रसारणी ॥ इनको
सदा गौलीही प्रयोग करनी चाहिये और दुगनी नकरे ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ वांसा
नीम पटोल केवडा वरियारा पेठा सतावर । गद्दपूरना ॥ कुरैया कन्द सहिन
वो गन्ध प्रसारणी कही है ॥ ११८ ॥ इन्द्रायन गुल शकरी पीले फूलकी कट
सरैया गुगल सोंफ गिलोय सदा ॥ इनको गौलीही योजना करे और य
दित कहींपर दुगनीभी योजना करे ॥ ११९ ॥

(क) सेन्दी इन्द्र वारुणी । वरी शानावरी । पूतिगन्धा ।

गन्धप्रसारणी नागबला गुल शकरी ।

कुरारकः पीन पुष्य कटसरै आ पुरोगुग्गुलः ॥

घृतं नैलञ्च पानीयं कषायं व्याञ्जनादिकम् ॥

पक्वा शीती घृतं चोष्यं तत सर्व्वं स्या द्विपोपमम् ॥ १२० ॥

भा० घनतैल जलकाढ़ा और दाल तरकारी इत्यादिकों को ॥ यदाके श्री
नहवेको गिरसे गरम करेते वोह सब विपके समान होता है ॥ १२० ॥

[अथ द्रव्याणां परीक्षा ।]

सूक्ष्मास्थिमांसला पथ्या सर्व्वकर्मणि पूजिता ॥

क्षिप्तान्भसि निमज्जेद्या भस्मातव्य सथोत्तमा ॥ १२१ ॥

वराह भूर्द्ध वत्कन्दो वाराही कन्द संज्ञकः ॥ शौचर्व

लन्तु काचाभं सैन्धवं स्फटिक प्रथमम् ॥ १२२ ॥ सुव-

र्णो च्छदिकं ज्ञेयं स्वर्णं गालिकं सुत्तमम् ॥ इन्द्र गो

ष प्रतीकाशं मनो ह्वा चोत्तमा मता ॥ १२३ ॥ श्रेष्ठं

शिला जतुज्ञेयं प्रक्षिप्तं न विशोर्धते ॥ तोय पूर्णं कां

स्य पत्ने प्रप्तनेन विवर्द्धते ॥ १२४ ॥ कर्पूरः स्तुवरः

स्निग्धः एला सूक्ष्म फलावरा ॥ श्वेत चन्दन मन्य

न्तं सुगन्धि गुरु पूजितम् ॥ १२५ ॥

भा० अनन्तर द्रव्योंकी परीक्षा कहते हैं ॥ छोटी गुठलीवाली गूदेदार और
पानी में लालनेसे जो डूब जाती है इस प्रकार की हड़ सब कामों में अच्छी है
॥ उसी प्रकार का भिलावाभी अच्छा होता है ॥ १२१ ॥ सूवर के सिके सह
शा जो कन्द होता है ॥ उसको वाराही कन्द कहते हैं । कांच के समान सोंचल
। और सैन्धव स्फटिक के समान होता है ॥ १२२ ॥ सोनेकी सी रंगतवालीको
अच्छी सोना माखी जाननी चाहिये । वीर वड़ड़ी की सी रंगतवाली मैं सि
ल अच्छी हैनी है ॥ १२३ ॥ अच्छी शिलार्जीन उसको जानना चाहिये कि
जो फेका डूबा नहीं बिखरता । और पानी भर डूबे कांसेके कटोरे में वे
ल सूतके समान जो बढता है ॥ १२४ ॥ कसेला चिकना कर्पूर अच्छा हो
ता है । छोटे फलवाली इलायची अच्छी होनी है । और स्वेत चन्दन बड़न
सुगन्ध करके युक्त और भारी अच्छा होता है ॥ १२५ ॥

रक्त चन्दन मन्यन्तं लौहितं म्पवरं मनम् ॥ काक

तुण्डा निभः स्निग्धो गुरुः श्रेष्ठो गुरुर्मतः ॥ १२६ ॥
 सुगन्धि लघु रूक्षञ्च सुरदारु वरं मतम् ॥ सर
 लं स्निग्धमत्यर्थं सुगन्धि च गुणावहम् ॥ १२७ ॥
 अति पोता प्रशास्तातु ज्ञेया दारुनिशा बुधैः ॥ जा
 तीफलं गुरु स्निग्धं समं शुभ्रान्तरं वरम् ॥ १२८ ॥
 मृद्धीकासौत्तमा ज्ञेया योखाङ्गीस्तनसन्निभाः ॥
 करमर्द्ध फलाकारा मध्यमा सा प्रकीर्तिता ॥ १२९ ॥

(क) गोस्तनसन्निभाः मुनक्का इतिलोके । करमर्द्ध फला
 कारा । करौन्दीदारु इतिलोके ।

भा० लालचन्दन बड़न लाल अच्छा होता है ॥ और अगर कौब्वाठो
 ठी के समान रंगतवाला चिकना भारी अच्छा होता है ॥ १२६ ॥ सुगन्ध यु
 क्त हलका रूखा देवदार अच्छा होता है । और दूसरी किसमका देवदार
 बड़न चिकना सुगन्धि गुणाकारक होता है ॥ १२७ ॥ बड़न पीली दार
 वरकी अच्छी होती है ॥ जायफल भारी चिकना सम भीतर सुफेद अ
 च्छा होता है ॥ १२८ ॥ जो मुनक्का गायके घनों की सी होनी है वो अच्छी
 है करौन्दी के फलके आकार जो मुनक्का होती है वो मध्यम कही गई
 है ॥ १२९ ॥

खण्डन्तु विमलं श्रेष्ठं चन्द्रकान्त समप्रभम् ॥ ग
 व्याख्यसदृशं रुच्यं गन्धं मधु वरम्मत्तम् ॥ १३० ॥

अथ स्वभावतो हितानि ।

शालीनां लोहितः शालिः यष्टिकेषु च यष्टिका ॥
 शूकधान्येषु यवो गोधूमः प्रवरो मतः ॥ १३१ ॥
 शिन्धिधान्येषु वरो मुद्गो मसूरश्चाद्दको तथा ॥ रसे

धु मधुरः श्रेष्ठो लवणेषु च सैन्धवः ॥ १३२ ॥ दाडि
मा मलकन्द्राक्षा खर्जूरञ्च परुषकम् ॥ राजादनं
मातुलुङ्गं फलवर्गेषु शस्यते ॥ १३३ ॥ (क)

परुषकं फारसा इतिलोके ॥ राजदनं खिरणी इतिलो-
के । मातुलुङ्गं विजउरा इतिलोके ।

पत्रशाकेषु वास्तुकं जीवन्ती पोतिका वरा ॥ पटो
ल फलशाकेषु कन्दशाकेषु सूरणम् ॥ १३४ ॥

एणाः कुरङ्गे हरिणी जाङ्गलेषु प्रशस्यते ॥ पक्षि
णां तित्तिरिलीवो दूरो मत्स्येषु रोहितः ॥ १३५ ॥

भा० चन्द्रकान्त के समान स्वच्छ खाँड अच्छी होनी है ॥ गो घृत के
समान रुचिकर और सुगन्ध इस प्रकार का मधु श्रेष्ठ कहा है ॥ १३० ॥
अनन्तर स्वभाव से जो हित वस्तु हैं उनकी कहते हैं ॥ धानों में लाल धान
और साठी चावलों में साठ दिन में होने वाले श्रेष्ठ हैं ॥ और शूक धानों में
भी जो गेहूं श्रेष्ठ कहे हैं ॥ १३१ ॥ शिंवी धान्य अर्थात् सेम वाले धान्य में
मूंग मसूर अरहर श्रेष्ठ है ॥ रसमें मधुर रस श्रेष्ठ है । और लवणों में से
धा श्रेष्ठ है ॥ १३२ ॥ अनार आंवले दारु खर्जूर फालसे । खिरनी विजौरा
नीवू ये फलवर्ग में प्रशस्त हैं ॥ १३३ ॥ सागों में बधुवा जीवन्ती पोर्ई अ
च्छ है ॥ फल शाक में परवल और कन्द शाकों में जिमीकन्द । प्रश
स्त है ॥ १३४ ॥ जांगल मांस में एणा कुरङ्ग हरिण प्रशस्त है । पक्षियों
में नीतर वटेर श्रेष्ठ है । और मछलियों में रोहू मछली अच्छी है ॥ १३५ ॥

हरिणा स्नात्रवर्गाः स्या देराः कृष्णतयामतः ॥ कु

रङ्गस्ताम्र उद्दिष्टो हरिणा कृकिकी महान् ॥ १३६ ॥

जलेषु दिव्यं दुग्धेषु गव्यमाज्येषु गो भवम् ॥ तैले

षु निलजन्तैल भैक्षवेषु सिताहिता ॥ १३७ ॥

[अथ स्वभावाद हितानि ।]

शिल्पीषु माषान् ग्रीष्मर्तौ लवणेष्वोषरं त्यजेत् ।

फलेषु लकुचं शाके सार्वपं न हितम्मतम् ॥ १३८ ॥

गोमांसं ग्राम्य मांसेषु न हितं महिषीवसा ॥ मेघी

पयः कुसुम्भस्य तैलन्याज्यञ्च फाणितम् ॥ १३९ ॥

इक्षुरसः परिपक्वो योऽर्द्धं घनफाणितम् ॥

(क) तद्विच्छेद्याराव इति लोके । अथ संयोग विरुद्धानि।

भा० हरिण लालवर्णी होता है । और एरा काला हिरन कहा गया है । और कुरंग लाल वर्णी कहा गया है । तथा हिरन के समान आकृतिवाला और बड़ा होता है । १३६ ॥ जलों में आकाशका जल दूधों में गायका दूध घृतों में गो घृत । तैलों में तिलकानेल । गुड़ आदि यों में चीनी श्रेष्ठ है । १३७ ॥ अनन्तर स्वभाव से अहित वस्तुओं को कहते हैं ॥ शिंवी धान्यों में उड़द । ऋतुवों में ग्रीष्म । लवणों में पांगलवण । इनको त्याग करे और फलों में बदल शाकों में सरसोंका शाक ये वस्तु अहित कही हैं ॥ १३८ ॥ ग्राम के मांसों में गोमांस और भैंसकी चरवी हित नहीं है ॥ मेढीका दूध, कुसुम्भतैल अर्थात् कण्डकानेल, और राव इनको त्याग करना चाहिये ॥ १३९ ॥ गन्नेके रसको पकाके जो आधा गढ़ा किया जाना है उसको राव कहते हैं । अनन्तर संयोगसे अहित करनेवाली वस्तुओं को कहते हैं ॥

मत्स्यमानूप मांसञ्च दुग्धसुक्तं विवर्जयेत् ॥ कयो

नं सर्षपस्त्रिहं भर्जितम्परि वर्जयेत् ॥ १४० ॥ मत्त

स्यानिक्षौर्विकारिण तथा क्षौद्राण वर्जयेत् ॥ प्राक्

न्मांसपयोयुक्ता नुष्येणर्द्धधि विवर्जयेत् ॥ १४१ ॥

उष्येर्नभोऽम्बुना क्षौद्रं पायसं रुशरा न्वितम् ॥

रम्भाफलं त्यजेत् तक्रं दधिविल्वफलान्वितम् ॥१४२॥
 दशाह सुषितं सर्पिः कांस्ये मधुघृतं समम् ॥ कृता
 त्रञ्च कषायञ्च पुनरुष्णीकृतं त्यजेत् ॥१४३॥ ए
 कत्र बद्ध मांसानि विरुध्यन्ते परस्परम् ॥ मधुसर्पिर्व
 सा तैलं पानीयं वा पयस्तथा ॥१४४॥

भा० मछली और अनुपमांसकी भी दूधके सहित नसेवनकरे ॥ और सर
 सोंके तैलसे भुनेइये कबूतर के मांसको नसेवनकरे ॥ १४० ॥ तथा मीठे
 के या प्राहतके साथ मछलियोंको नभक्षणकरे ॥ मांस रसके साथ सूके
 और उष्णदधिइनको भी त्यागदे ॥ १४१ ॥ उष्ण या आकाशकाजलइन
 के साथमधु और खिचड़ीके साथ दूध इनको भी त्यागदे ॥
 मीठके साथकेला और दहीकेलफलके साथ त्यागदेवे ॥ १४२ ॥ कसेके बर्तन
 में दसदिनका रक्वाइवा घी और बराबर घीसहनको भी नसेवनकरे ॥
 १४२ ॥ सिद्ध किया अन्न और कषायइनको फिरसे गरमकरके नसेवनकरे
 । एक जगह कई किस्यके मांसोंको मिलाके नसेवनकरे ॥ १४३ ॥ मधुघ
 त चरबीनेलजलदूधइनको आपसमेंमिलाके नसेवन करे ॥ १४४ ॥

[अथ भेषज ग्रहणासङ्केतः।] लवणसैन्धवं प्रोक्तं चन्द्र
 नंरक्तचन्दनम् ॥ चूर्णालेहा सवस्त्रेहाः साध्या धवलच
 न्दनैः ॥ १४५ ॥ कषायलेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचन्द
 नम् ॥ अंतःसम्मार्ज्जने ज्ञेया ह्यजमोदा यवानिका ॥
 ॥१४६ ॥ वहिःसम्मार्ज्जने सैव विज्ञातव्याजमोदिका ॥
 पयःसर्पिः प्रयोगेषु गन्धमेवहि गृह्यते ॥ १४७ ॥

सकृद्रसो गोमयकं मूत्रं गोमूत्रमुच्यते ॥

भा० अनन्तर औषधोंके ग्रहणकरनेका संकेत कहनेहैं ॥ लवणकहा
 होवेतो सैन्धव और चंदनकी जगह रक्तचंदन जानना चाहिये ॥ चूर्णलेह
 आसव घृत तैलादि ये स्वेतचन्दनसे सिद्ध करने चाहिये ॥ १४५ ॥ कषाय

और लेप में प्राय रक्तचन्दन मिलाया जाना है ॥ खनि पीने में अजवायन लि-
खी होती अजमोद लेनी चाहिये ॥ २४५ ॥ और लेपादिक में वही अजवाय-
न लेनी चाहिये ॥ योग में घृष्ट और घी लिखा ही तो गायका ही लेना चाहि-
ये ॥ २४६ ॥ गोबर का रस हीवे तो गायका और मूत्र गोमूत्र लेना चाहिये ॥

[प्रतिनिधिः] चित्रका भावतो दन्ती चारः शिखरि जो
अथवा ॥ अभावे धन्वया सस्य प्रक्षेप्या तु दुरालभा ॥

॥ २४८ ॥ (शिखरी अयामार्गः ।) तगरस्याप्यभा

वे तु कुष्ठं दद्याद्भिवग्वरः ॥ मूर्वाभावे त्वचो ग्राह्या

जिङ्गिनी प्रभवा बुधैः ॥ २४९ ॥ अहिं स्त्राया अभा

वे तु मानकन्दः प्रकीर्तितः ॥ लक्षणाया अभावे

तु नीलकराट शिखा मता ॥ २५० ॥

भा० चबले में रैनेकी वस्तुओंको कहते हैं ॥ चित्रक के अभावमें जमाल
गोटकी जड़ अथवा अंगेका खार लेवे ॥ बॉसेके अभावमें जवासा लेवे ॥
२४८ ॥ वैद्य तगरके अभावमें कूट देवे । मरोडु फलीके अभावमें मजीठ की
छाल । मालकंगनीके अभावमें मानकेवूके लेवे ॥ लक्षणा के अभा-
वमें मोरशिखा देवे ॥ २५० ॥

वकुला भावतो देयं कलहारोत्पल पङ्कजम् ॥ नीलो

त्पल स्याभावे तु कुसुदं देय निष्यते ॥ २५१ ॥ ज्ञानी पु

ष्यं न यत्रास्ति त्वङ्गं तत्र दीयते ॥ अर्क्यणीदि पय

सो ह्यभावे तदसौ मतः ॥ २५२ ॥ पौष्करा भावतः

कुष्ठं तथा लाङ्गुल्य भावतः ॥ स्थैरोय कस्यां भा

वे तु भिषग् भिर्वीयते गदः ॥ २५३ ॥ चविका गज पि

प्यल्यौ पिप्यली मूलवत् स्मृतौ ॥ अभावे सोम राज्यां

स्तु प्रपुन्नाटफलं मतम् ॥ १५४ ॥ यदि न स्याद्दारु
निशा तदा देया निशा बुधैः ॥

भा० मौलसरीके अभावमें खेतकामल । नीलोफरके अभावमें लाल क
वल देना चाहिये ॥ १५१ ॥ चमेली फूल जहां न मिले वहां लवंग देना चाहि
ये ॥ आकवगैरह का बुध न मिलनेमें उसीकार सहे ॥ १५२ ॥ पुष्कर मूल
के अभावमें कलहारी के अभावमें कूट देवे ॥ ककरोदे के अभावमें भी वै
द्य कूट देने हैं ॥ १५३ ॥ चाव और गजपीपल पीपलांमूल के समान कहे ग
ये हैं ॥ बकची के अभावमें चकोड़ के बीज देवे ॥ १५४ ॥ जहां दारु हलदी
न मिले वहां हलदी देवे ॥

(क) सोमराजी चाकुची । प्रपुन्नाटफलं चक्रमर्दफलम् ।
दारुनिशा दारुहरिद्रा निशा हरिद्रा ।

रसाञ्जनस्या भावे तु सम्यग्दार्वी प्रयुज्यते ॥ सौरा
ष्ट्रभावतो देया स्फटिका नद्गुणा जनैः ॥ १५५ ॥

(ख) सौराष्ट्री सौरदीमाटी इतिलोके । स्फटिका फटिका
री इतिलोके ॥ तालीस पत्रका भावे स्वर्णताली

प्रशस्यते ॥ भार्ग्य भावे तु तालीसं कराटकारी जटाथ
वा ॥ १५६ ॥ रुचका भावतो दद्यान्नवरणं पांशुपूर्वकम् ।
अभावे मधुयष्ट्यास्तु धातकीञ्च प्रयोजयेत् ॥ १५७ ॥

भा० रसौनके अभावमें अच्छीदार हरदी देवे ॥ सौरदीमाटीके अभावमें फ
टकारी देवे । वो उसीके गुणावाली है ॥ १५५ ॥ तालीस पत्रके अभावमें स्व
र्णतालीसपत्र देवे ॥ भार्ग्यके अभावमें तालीसपत्र अथवा कटेली कीज
डु देवे ॥ १५६ ॥ सांचलंके अभावमें खारीनमंक देवे ॥ मुलहठीके अभावमें
धाविका फूल देवे ॥ १५७ ॥

(क) रुचकं चौहार इतिलोके पांशुलवरां खारी अथवा रेह ।

इति लोके । अम्लवेतसका भावे चुक्रंदातव्य मिष्यते ॥
 द्राक्षा यदि न लभ्येत प्रदेयं काशमी फलम् ॥ १५८ ॥
 तयोरभावे कुसुमं बन्धूकस्य मतं बुधैः ॥ लवङ्गकुसुं
 मंद्रेयं नखस्याभावतः पुनः ॥ १५९ ॥ कस्तूर्य भावे
 कङ्गोलं क्षेपणीयं विदुर्बुधाः ॥ कङ्गोलस्याप्यभावे
 त्व जातीपुष्यं प्रदीयते ॥ १६० ॥

भा० अम्लवेत के अभाव में इमली देवे । और यदि दाख न मिले तो कुंभेर का फल देवे ॥ १५८ ॥ वे दोनों न मिले तो दुपहरिया का फूल देवे । नख न मिले तो लवंग देवे ॥ १५९ ॥ कस्तूरी के अभाव में कंकाल देनी चाहिये ॥ ऐसा पंडित कहते हैं ॥ और कंकाल भी न मिले तो चमेली के पुष्प डाले ॥ १६० ॥

सुगन्धिसुस्तकं देयं कर्पूराभावतो बुधैः ॥ कर्पूराभा
 वतोऽयं ग्रन्थिपणो विशेषतः ॥ १६१ ॥ कुङ्कुमाभा
 वतो दद्यात् कुसुम्भ कुसुमं नवम् ॥ श्रीखण्डच-
 न्दनाभावे कर्पूरं देय मिष्यते ॥ १६२ ॥ अभावे त्वेतयो
 र्वैद्यः प्रक्षिपेत् रक्तचन्दनम् ॥ रक्तचन्दन का भावे
 नवोशीरं विदुर्बुधाः ॥ १६३ ॥ सुस्ताचातिविषाभा
 वे शिवा भावे शिवामता ॥ अभावे नागपुष्यस्य य
 द्मकेसर मिष्यते ॥ १६४ ॥

भा० कर्पूर न मिले तो नागरमोथा देना चाहिये ॥ और कर्पूर के अभाव में उकरीवा विशेषकरके देना चाहिये ॥ १६१ ॥ केसर के अभाव में नवीन कुसुम के फूल डालने चाहिये ॥ श्रीखण्डचन्दन के अभाव में कर्पूर देवे ॥ १६२ ॥ इनके अभाव में वैद्य रक्तचन्दन देवे रक्तचन्दन के अभाव में नवीन खस देवे ॥ १६३ ॥ अनीसके अभाव में मोथा सूहके अभाव में ओंवला नागकेसर के अभाव में यद्मकेसर डाले ॥ १६४ ॥

मेदा जीवककाकोली ऋद्धिद्वन्द्वेऽपि वा सति ॥ वरी
 विदार्य्यं प्रवंगन्धा वाराही च क्रमान् क्षिपेत् ॥ १६५ ॥
 (वरी शातावरी ।) वाराह्याश्च तथाभावे चर्मकारालुको
 मतः ॥ वाराहीकन्द संज्ञस्तु पश्चिमे गृष्टि संज्ञकः ॥ १६६ ॥
 वाराही कन्द एवांन्यश्चर्मकारालुको मतः ॥ अनूप
 सम्भवे देशे वराह इव लोमवान् ॥ १६७ ॥ भल्लान्
 का सहत्वे तु रक्तचन्दन मिष्यते ॥ भल्लान् भावनश्चि
 त्तं नलश्चेत्तोर भावतः ॥ १६८ ॥ सूवर्णाभावतः स्व
 र्णामाक्षिकं प्रक्षिपेत् बुधः ॥ श्वेतन्तुमाक्षिकं ज्ञेयं
 बुधैः रजतवत् क्रवम् ॥ १६९ ॥

भा० मेदा जीवक काकोली ऋद्धि और वृद्धि इनके नमिलनेमें भी । सताव
 र विदारिकन्द असंगंध वाराहीकन्द इनको क्रमसे डाले ॥ १६५ ॥ वाराहीक
 न्दके अभावमें जंगली आलूको डाले ॥ वाराहीकन्दका नाम पश्चिमदेश
 में गृष्टिकहते हैं ॥ १६६ ॥ और लोग वाराहीकन्दको चर्मकारआलू कह
 ते हैं ॥ अनुपदेश में वाराहके मानिन्द रोमवाला होता है ॥ १६७ ॥ मिलाव
 के नहीं सहन होनेमें रक्तचन्दन देवे ॥ मिलावके अभावमें चित्रक और गन्ने
 के अभावमें नर्कट देवे ॥ १६८ ॥ स्वर्णके अभावमें बुद्धिवान् सोना मखी
 डाले ॥ रूपा मखीको चौदीके समान पंडितों ने कहा है ॥ १६९ ॥

माक्षिकस्याप्यभावे तु प्रदद्यात् स्वर्णगैरिकम् ॥ सु
 वर्णमथवा रौप्यं मृतं यत्र न लभ्यते ॥ १७० ॥ तत्र
 कान्ते न कर्म्मरिणि भिषकुर्थ्याद्विचक्षणाः ॥ का
 न्ताभावे नीक्षणा लोहं योजयेद्द्वैद्य संतमः ॥ १७१ ॥

अभावे मौक्तिकस्यापि मुक्ताशुक्तिं प्रयोजयेत् ॥ मधु
यत् न लभ्येत तत्र जीर्णगुडो मतः ॥ १७१ ॥ मत्स्य
एडा भावतो दद्युर्भिषजः सितशर्कराम् ॥ असम्भवे
सितायास्तु बुधैः खराडं प्रयुज्यते ॥ १७३ ॥ क्षीराभावे
रसो मौद्धो मासूरो वा प्रदीयते ॥ अत्र प्रोक्तानि वस्तू
नि यानि तेषु च तेषु च ॥ १७४ ॥

भा० रूपा माखीके अभावमें सुनहरी गेरू देवे ॥ जहाँ पर सोनेका या चांदीका
भस्म नहीं मिलता ॥ १७० ॥ वहाँ पर चतुर वैद्य कान्तिसार से काम करे ॥ और
जहाँ पर कान्तिसार न मिले वहाँ तीक्ष्ण लोहकी वैद्यवर योजना करे ॥ १७१ ॥
मोतीके अभावमें भी मोतीकी सीप देवे ॥ ग्रहण जहाँ पर नहीं मिलता वहाँ सु
राना गुड़ देवे ॥ १७२ ॥ वैद्य मिथ्रीके अभावमें सफ़ेद चीनी देवे और सफ़ेद चीनी
भी न मिले तो खंड देवे ॥ १७३ ॥ दूधके अभावमें मूंगका या मसूरका पानी दे
नेहै ॥ यहाँ पर कही जड़ जो वस्तू है उन २ में ॥ १७४ ॥

योज्यमेकतराभावे परं वैद्येन जानता ॥ रसवीर्य्य विपा
काद्यैः समद्रव्यं विचिन्त्य च ॥ १७५ ॥ युज्याद्विविधय
न्यद्वाद्रव्यानान्तु रसादिवित् ॥ योगे यद्प्रधानं स्यात्त-
स्य प्रतिनिधिर्मतः ॥ १७६ ॥ यत्तु प्रधानं तस्यापि स
दृशं नैव गृह्यते ॥ व्याधेर्युक्तं यत् द्रव्यं गरुणोक्तमपि
तत् त्यजेत् ॥ १७७ ॥ अनुक्तमपि युक्तं यत् योजयेत्
तद्रसादिवित् ॥

भा० जाननेवाले वैद्यके द्वारा एकके अभावमें दूसरे को देना चाहिये ॥ रस
वीर्य्य विपाक आदि इन करके समद्रव्यको विचार करके ॥ १७५ ॥ किस्म २
के और भी द्रव्योंको योजना करे रसोंके जन्मवाला योगमें जो अग्रधान है उ
सकी प्रतिनिधी कही गई है ॥ १७६ ॥ और जो प्रधान है उसके सहस्रकोनही

ही ग्रहण करने ॥ व्याधि के अयुक्त जो द्रव्य हो वोह गण में कहा हुआ भी त्याग देवे ॥ १७७ ॥ और न कहा हुआ भी जो युक्त है उसके रसादिक के जोत्रे वा जो जना करे ॥ [इतस्तु द्रव्यगतपञ्चपदार्थकर्मभार्याह ।]

द्रव्ये रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च ॥ पदार्थः

पञ्च तिष्ठन्ति स्वं स्वं कुर्वन्ति कर्म च ॥ १७८ ॥

(तत्र वाग्भटः ।) रसः स्वाद्वस्त्रलवणतिक्तोषणक

षायकाः ॥ षट्द्रव्यमाश्रितास्ते च यथापूर्वं बलाव-

हाः ॥ १७९ ॥ (ऊषणाः कटुः) तत्राद्या मारुतं

घ्नन्ति स्त्रयस्तिक्तादयः कफम् ॥ कषायतिक्तम

धुराः पित्तमन्ये तु कुर्वन्ते ॥ १८० ॥

भा० यहाँपर द्रव्यमें प्राप्त पांच पदार्थों के कर्मको कहते हैं ॥ द्रव्यमें रस गुण वीर्य विपाक शक्ति ये पांच पदार्थ रहते हैं और अपने-अपने कर्मोंको भी करते हैं ॥ १७८ ॥ उसमें वाग्भट ने कहा है] मधुर अम्ल लवण कटु कषाय तिक्त ये छः रस द्रव्यके आश्रित रहते हैं वे एक से एक पहले बलको देनेवाले हैं ॥ १७९ ॥ उनमें पहले तीन वायुको नाश करते हैं । और अंके तिक्तादि तीन कफको नाश करते हैं ॥ कषाय तिक्त मधुर पित्तको नाश करते हैं ॥ और मधुर कफ अम्ल पित्तको कटु वायु की इस प्रकारसे करते हैं ॥ १८० ॥

ये रसा वातशमनाः भवन्ति यदि तेषु वै ॥ रौक्ष्यला

घवशैन्यानि न ते हन्युः समीरणम् ॥ १८१ ॥ ये रसाः

पित्तशमना भवन्ति यदि तेषु वै ॥ तीक्ष्णोष्णलघु

ता चैव न ते तत्कर्मकारिणः ॥ १८२ ॥ ये रसा श्लेष्म

शमना भवन्ति यदि तेषु वै ॥ स्नेह गौरव शैन्यानि

न ते हन्युः कफं तदा ॥ १८३ ॥

भा० जोरसवातके शमन करनेवाले हैं यदि उनमें ॥ रूक्षता हलकापन और शीतता है तो वे वायु को नहीं नाश करते ॥ १८२ ॥ जोरस पित्तके शमन करनेवाले हैं यदि उनमें ॥ तीक्ष्णता उष्णता और स्लघुता है तो वे उस कर्मको करनेवाले नहीं होते ॥ १८३ ॥ जोरस कफको शमन करनेवाले हैं यदि उनमें ॥ चिकनापन भारीपन और शीतलता होवे तो वे कफको नहीं नाश करते ॥ १८३ ॥

[त्रय मधुरसस्य गुणाः ।] मधुरो हि रसः प्रीतो धातुस्त
न्य बलप्रदः ॥ चक्षुष्यो वातपित्तघ्नः कुर्यात् स्थौ
ल्यमलक्रिमीन् ॥ १८४ ॥ रसेषु प्रवरश्चापि स्निग्धः
प्रीत्यायुषो हितः ॥ [अथाति युक्तस्य मधुरसस्य गु-
णाः ॥] बालवृद्धक्षतक्षीणवर्णकेशेन्द्रियोजसाम् ॥
प्रशस्तो वृहणः कण्ठो गुरुः सन्धानकृत् मतः ॥ १८५ ॥
विषघ्नः पिच्छिलश्चापि स्निग्धः प्रीत्यायुषो हितः ॥
सोऽतियुक्तो ज्वरश्वासगलगण्डार्बुदकृमीन् ॥ १८६ ॥
स्थौल्याग्निमान्द्यमेहांश्च कुर्यात् मेदः कफामयान् ॥

भा० उसमें मधुर रसका गुण कहने हैं ।] मधुर रस प्रीत रसाविक धातु दूध और बलको देनेवाला है ॥ चक्षु के हित वात पित्त का नाशक और स्थूलता मल कृमी इनको करता है ॥ १८४ ॥ रसोंमें प्रेष भी है और स्निग्ध प्रीती आयुके हित है ॥ अनन्तर बज्रत सेवन किये जवे मधुर रसका गुण कहते हैं ।] बालक वृद्ध क्षत क्षीण वर्ण केशेन्द्रिय और ओज इनको प्रशस्त है ॥ धातुओंके बढानेवाला कंठका हिन भारी संधान करनेवाला कहा गया है ॥ १८५ ॥ और विषका नाशक चेषदार चिकना प्रीति आयुके हित भी है ॥ बोह बज्रत सेवन किया जवा ज्वर श्वास गलगण्ड अर्बुद कृमी ॥ १८६ ॥ स्थूलता अग्निमान्द्य प्रमेह मेद और कफके रोगों को करता है ॥

[अथात्तस्य गुणाः ।] रसोऽस्त्रः पाचनो रुच्यः पित्तघ्नः

प्लासुदो लघुः ॥ लेखितोष्णो वहिः शीतक्लेदनः पवना
 पहः ॥ १८७ ॥ स्निग्धस्तीक्ष्णाः सरः शुक्र विवन्धानाह
 दृष्टिहा ॥ हर्षणो रोमदन्तानामक्षिभू विनिकोचनः ॥
 ॥ १८८ ॥ लेखितः लेखनः वहिः शीतः स्पर्शः शीतः वि
 निकोचनः सङ्कोचनः । [सथातियुक्तस्यान्वस्य गुणाः ।]
 सोऽतियुक्तो भ्रमं कुर्यात् तद् दाहतिमिरज्वरान् ॥
 कण्डुपाराडुत्ववी सर्पशोथ विस्फोटकुष्ठकृत् ॥ १८९ ॥

भा० अनन्तर अम्लकागुणा कहते हैं ॥ पाचन रुचिको करनेवाला पित्तक
 फ रक्त इनको करनेवाला हलका ॥ लेखन उष्ण स्पर्श में शीत क्लेदन वायुका
 नाशक अम्ल रस होता है ॥ १८७ ॥ स्निग्ध तीक्ष्ण रेचन शुक्र विवन्ध आनां और
 दृष्टि इनका नाशक ॥ तथा रोम दान इनका हर्षण और आंखकी भवोंका
 सुकड़ानेवाला होता है ॥ १८८ ॥ अनन्तर अतियुक्त अम्लकागुणा कहते हैं
 ॥ वो अतिसेवन किया जावना भ्रम तृषा दाह निमिर और ज्वर इनको करता
 है ॥ तथा कण्डू पाण्डुता विसर्प शोथ विस्फोट और कुष्ठ इनको करनेवाला है
 ॥ १८९ ॥ [अथ लवणास्य गुणाः ।]

लवणः शोधनो रुच्यः पाचनः कफपित्तदः ॥ पुं
 रूचवातहरः काय शौथिल्यमृदुताकरः ॥ १९० ॥
 चक्षुर्नासास्य जलदः कपोलगलदाहकृत् ॥

भा० अनन्तर लवणके गुणा कहते हैं ।] शोधन रुचिको करनेवाला पाचन
 कफ पित्तको करनेवाला । पुरुषत्व और वानकानाशक पारिरकी शिथि
 लता तथा मृदुता इनका करनेवाला ऐसा लवण होता है ॥ १९० ॥
 चक्षु नासिका मुख इनमें पानीको देनेवाला और रक्त नुषा गले में दाह
 को करनेवाला होता है ॥

[अतियुक्तस्य लवणास्य गुणाः ।] सोऽतियुक्तोऽक्षिपाका

स्र पित्तकोष्ठक्षतादि कृत् ॥ वृत्ती पलितखालित्यं कुष्ठ
 वीसर्प्य तृदप्रदः ॥ १६१ ॥ कीठो वरटाकृतदंश शो
 थवत् । पलितं केशशुक्लता । खलित्यं शिरसि केशनाशः
 ॥ [अथ कटुगुणाः ।] कटुरुष्णश्च तीक्ष्णश्च विशदो वा
 त पित्तकृत् ॥ प्लेष्म हल्लघु राग्नेयः क्रिमिकण्डू
 विषापहः ॥ रूक्षस्तन्य हरश्चापि मेदः स्थौल्यापक
 र्षणः ॥ अश्रुदो नासिकास्यान्ति जिह्वायोद्देजको मतः
 ॥ १६३ ॥ दीपनः पाचनोरुच्यो नासिकाशोषणो भृश
 म् । क्लेद मेदो वसामज्जा प्राकृतमूलोप शोषणः ॥ १६४
 स्नानः प्रकाशको रूक्षो मेध्यो वर्चो विवन्धकृत् ॥

भा० बहुतसेवन कियेइवे लवणका गुण कहनेहैं ॥ बोह अतिसेवन कि
 याइवा नेत्रपाक रक्तपित्तचकते और क्षतादि को करताहै । कुरियां बालों
 की सफेदी गंजापन कोइ विसर्प और नृषा इनको देताहै ॥ १६१ ॥
 अथ कटुके गुण कहनेहैं ॥ कटु उष्ण तीक्ष्ण विशद और वात पित्तके करने
 वाला होताहै ॥ फफकानाशक हलका अग्निगुणवाला क्रिमि कण्डू विषका
 नाशक होताहै ॥ १६२ ॥ रूक्ष दूधकानाशक मेद और स्थूलताका घटानेवा
 ला । आंसुवोंके देनेवाला नासिकासुखनेत्र और जिह्वाके अग्रभागमें क्लेष
 करने वाला कहागयाहै ॥ १६३ ॥ दीपन पाचन रुचिके योग्य नासिकाका अती
 शोषण करनेवाला क्लेद मेद वसामज्जा मलमूलइनका सुकानेवालाहै ॥
 १६४ ॥ श्रोतोंका प्रकाश करनेवाला रूक्ष मेध्य मलकारेकनेवालाहै ॥

आग्नेयः अधिकाग्न्यांशः । मेध्यो मेधायेः हितः । वर्चो
 विवन्धकृत् । मलवद्धं करोति । [अतियुक्तस्य कटुरस
 स्य गुणाः ।] सोऽतियुक्तो भ्रान्तिदाहसुखताल्बोष्ठशोष

कृत् ॥ कण्ठादि पीडा मूर्च्छान्तर्दीहदो बलकान्तिहृत् ॥

१८५ ॥ [अथ तिक्त रसस्य गुणाः।] तिक्तः शीत स्तृ

षामूर्च्छा ज्वरपित्त कफान् जयेत् ॥ कृमिकृष्टविषो

त्क्लेद दाह रक्त गदापहः ॥ १८६ ॥ रुच्यः स्वय मरो

चिष्णुः कण्ठ स्तन्य विणोधनः ॥ वातलोऽग्नि करोना

सा शोषरोगो रूक्षरोगो लघुः ॥ १८७ ॥

भा० अति सेवन किये ज्वरे कटु रसका गुण कहने हैं ॥] अति सेवन किया हुआ मुख नालु होठ इनका शोषण करने वाला। कंठादिमें पीडा मूर्च्छा अन्तरदाह इनको करने वाला और बलकान्तिका नाशक होता है ॥ १८५ ॥

अनन्तर तिक्त रसका गुण कहने हैं।] तिक्त रस शीत तथा मूर्च्छा ज्वर पित्त कफ इनको जीतता है ॥ कृमिकृष्ट विष उक्लेद दाह रक्त इन रोगोंको नाश करता है ॥ १८६ ॥ रुचिके हिन आप अरु विकरने वाला और कंठवृग्ध इनको शोधन है ॥ वातको करने वाला अग्नि को करने वाला नासिकाका शोषण करने वाला रूक्ष और हलका होता है ॥ १८७ ॥

रुच्यः अन्येषु वस्तुषु रुचिमुत्पादयति । स्वयमरोचिष्णुः य

था निम्बः स्वयन्न रोचते ॥ अन्येषु वस्तुषु रुचिं करोति ।

[अतियुक्तस्य तिक्तस्य गुणाः।] सोऽतियुक्तः पिरः शूल

मन्या स्तम्भश्चमार्त्तिकृत ॥ कम्प मूर्च्छा तृषा कारी

वल शुक्रक्षय प्रदः ॥ १८८ ॥ [अथ कषाय गुणाः।]

कषायो रोपणो ग्राही स्तम्भनः शोधनस्तथा ॥ लेश

नः पीडनः सौम्यः शोषरोगो वातकोपनः ॥ १८९ ॥

कफ शोषान पित्तघ्नो रूक्षः शीतो लघुर्मतः ॥ त्वक

प्रसाधनं मामस्य स्तम्भनो विशदो मतः ॥ २०० ॥ जि
ह्वाया जाड्यकृतं कण्ठस्रोतसाञ्च विवन्धकृतं ॥

(क) शोषणः ब्रणस्य स्तम्भनो गात्राणां शोधनो ब्रणस्य ले
खनो ब्रणाद्युतं सन्नर्मांसस्य शोषणो ब्रणमज्जादीनाम्
पीडनो हृदयस्य वातकारित्वात् सौम्यः सोमादुत्पन्नः ॥

भा० अतिसेवन किये हवे तिकरसका गुण कहते हैं ।] वोह अतिसेवन
किया हुआ सिर पीड़ा ग्रन्था स्तम्भ, अमपीडा इनको करना है ॥ कभ्य मूर्छा तथा
का करनेवाला । बल शुक्रवृत्तका क्षय करनेवाला होता है ॥ १६० ॥

अनन्तर कषायके गुण कहने हैं ।] कषाय भरलानेवाला ग्रही स्तम्भन तथा
शोधन होता है । और लेखन पीडाको करनेवाला सौम्य शोषको करनेवाला
वातको कुपित करनेवाला होता है ॥ १६६ ॥ कफरक्तपित्तकानाशक रूत ।
श्रीत लघु कहा है ॥ त्वचा का स्वच्छ करनेवाला आँवका रोकनेवाला और
विशद कहा है ॥ २०० ॥ जिह्वाकी जड़नाको करनेवाला कण्ठके सोतींकारो
कनेवाला होता है ॥ (क) शोषण शरीरका स्तम्भन शब्दोंको शोधन दृणाका
लेखन दृणादिसे ऊपर उठे हवे मांसका शोषण दृणा मज्जादिकों का पीडन
हृदयका वातकारी होनेसे सौम्य अर्थात् सोमसे उत्पन्न ॥

[अतियुक्तस्य कषायस्य गुणाः ।] सोऽतियुक्तो गृहाध्मा

न हृत्पीडाक्षेपणादि कृतं ॥ मधुरादीनामपरे विशेषे

षाः ॥ मधुरं श्लेष्मणं प्रायो जीर्णं पालिं यवाहते ॥

मुद्गाद्गोधूमतः दौद्रात् सिताया जाङ्गला मिषान् ॥

२०१ ॥ अम्लं पित्तकरं प्रायो विना धात्वीञ्च दाडिमीम् ॥

भा० अतिसेवन किये कषायका गुण कहते हैं ।] वोह अतियोजना किया
हुवा गृह अधमान हृद पीडा और आक्षेपणादिकरना है । मधुरादियों का दू
रा विशेष गुण है ॥ मधुर कफको करनेवाला है प्रायः पुराने चावल और ज
वोंके सिवा ॥ मूंग गेहूँ शहन चीनी और जांगल मांस इनके सिवाभी ॥ २०१ ॥

अम्ल प्रायः पित्तको कर्नेवाला होता है सिवा अँचले और अनारके ॥

लवणं प्रायशो द्वेषि नेत्रयोः सैन्धवं विना ॥ २०२ ॥

प्रायः कटु तथा तिक्त मृदुष्यं वातकोपनम् ॥ शुष्ठी

कृणारसोनानि पटोलममृतं विना ॥ २०३ ॥

[चरकेऽपि ।] पिष्यली नागरं चृष्यं कटु चाचृष्यमुच्यते ॥

प्रायशः स्तम्भनं प्रोक्तं कषायमभयां विना ॥ २०४ ॥

सामान्ये नात्र निर्दिष्टा गुणाः षड्रससम्भवाः ॥ रसा

नां योगतस्तु स्यादन्य एव गुणोदयः ॥ २०५ ॥

भा० लवण प्रायः नेत्रके अहित है सैन्धवके विना ॥ २०२ ॥ कटुरस और ति

क्तस प्रायः अचृष्य तथा वातको कुपित करनेवाला होता है ॥ सोठ पीपलसह

सन परवृत्त और गिलाय इनके विना ॥ २०३ ॥ चरकमें भी कहा है ॥ पीपलसे

अचृष्य और कटुरस अचृष्य होता है ॥ कषाय रस प्रायः स्तम्भन होता है परंतु

हरीतकीके विना ॥ २०४ ॥ यहाँपर सामान्य चरके षट् रसोंसे उत्पन्न षड्वेगुण

कहे गये हैं ॥ रसोंके संयोगसे और गुणोंका उदय होना है ॥ २०५ ॥

संयोगाद् विषतां याति सममाज्ये न माक्षिकम् ॥ अ

मृतत्वं विषं याति सर्पदष्टस्य वै यथा ॥ २०६ ॥

[अथ गुणाः ।] लघुर्गुरु स्तथा क्षिग्धो रूक्षस्तीक्ष्ण इति क्र

मान् ॥ नभोभूवारिवातानां चन्द्रे रेने गुणाः स्मृताः ॥

२०७ ॥

[अथ लघ्वादि गुणावतां गुणाः ।]

लघु पथ्यं परं प्रोक्तं कफघ्नं शीघ्रपाकि च ॥ लघु द्रव्यम्

भा० संयोगसे विष होना है । घृत और मधुकी समतासे ॥ और विष अमृत

त्वको प्राप्त होना है जैसे साँपके काटेको ॥ २०६ ॥ अनन्तर गुण कहते हैं ॥

हल्का भारी चिकना रूखा तीखा ये क्रमसे ॥ आकाश पृथ्वी जल वायु और

अग्नि इनके ये गुण कहे गये हैं ॥ २०७ ॥ अनन्तर लघु आदि गुणोंके गुण

कहते हैं । लघु परम पत्य्य कहा गया है और कफका नाशक तथा श्रांघ पाक होनेवाला भी कहा गया है ॥ लघु अर्थात् द्रव्य ॥

एवं गुर्वादि तथा चोक्तम् ॥ गुर्वाद्यो गुणाद्द्रव्ये पृथिव्यादौ रसाश्रये ॥ रसेषु व्यपदिश्यन्ते साहचर्योपचरतः ॥ २०८ ॥

गुरुवानहरं पुष्टिं श्लेष्मकारि चृष्यं बलावहम् ॥ स्निग्धं वानहरं श्लेष्मकारि चृष्यं बलावहम् ॥

२०९ ॥ रूक्षां समीरणाकरं परं कफहरं मतम् ॥ तीक्ष्णं पित्तकरं प्रायो लेखनं कफवानहत् ॥ २१० ॥ सुश्रुते तु गुणाग्ने विंशतिस्तान् द्रुवे शृणु ॥

गुरुर्लघुः स्निग्ध रूक्षौ तीक्ष्णाः श्लक्ष्णाः स्थिरः सरः ॥ २११ ॥

भा० इसी प्रकार गुरु आदि । उस प्रकार कहा है ॥ पृथ्वी आदि रसके आश्रय द्रव्यमें गुरुवादि गुण । और रसमें साहचर्यके उपचार से जनिजाने हैं ॥ २०८ ॥ गुरुवानका नाशक पुष्टि कफ को करनेवाला चिरपाकवाला भी कहा है ॥ और चिकनावान नाशक कफकारी चृष्य बलको देनेवाला है ॥ २०९ ॥ रूक्ष वायुको करनेवाला और अत्यन्त कफका नाशक होना है ॥ तीखा पित्तका करनेवाला और प्रायः लेखन तथा कफवाननाशक भी है ॥ २१० ॥ सुश्रुत में ये गुणादीस कहे हैं उनको कहनाइं सुनों ॥ भासीहलका स्निग्ध रूक्षां तीखा चिक्रणा स्थिर रेचन ॥ वेपदार विप्राध प्रानल उष्म मृदु और कर्कश ॥ २११ ॥

पिच्छिलो विप्रादः पीत उष्णश्च मृदु कर्कशी ॥ स्थूलः रूक्षो द्रवः सुष्कः आयुर्भेदः स्पृता गुणाः ॥

तत्र गुरु लघु स्निग्ध रूक्ष तीक्ष्णा गुणा उक्ता एव २१२ ॥

श्लक्ष्णाः श्लेहं विनापि त्याज्यं कठिनोऽपि हि चिक्रणाः

। स्थिरो वान भलस्तम्भी तरस्तेषां प्रवर्त्तकः ॥ पिच्छि-

लस्तन्तुलो वल्यः सन्धानः श्लेष्मलो गुरुः ॥ २१४ ॥
 सन्धानो भग्नस्य । क्लेदच्छेदकरः ख्यातो विशदो ब्रण
 रोपणः ॥ शीतसुल्हादनः स्तम्भी मूर्च्छा तृट् स्वेददा
 हनुन् ॥ २१५ ॥ उष्णो भवति शीतस्य विपरीतश्च या
 चनः ॥ (क) ल्हादनः सुखजनकः स्तम्भीरक्तातिप्र
 वृत्त्यादीनाम् उष्णः शीतस्य विपरीतस्तेन असुखजन
 कः रक्तातिप्रवृत्त्यादीनाम् स्तम्भनः । मूर्च्छा तृट् स्वेद
 दाहकृत् पाचनो ब्रणादीनाम् । मृदु कर्कशौ प्रसिद्धौ ।

भा० तथा स्थूल सूक्ष्म द्रव्यशुष्क आशुकारी और मंद ये बीस गुणक
 हे गये हैं ॥ २१२ ॥ श्लेष्मण क्षिण्डके बिनाभी होता है ॥ और कठिनभी
 विक्रण होता है ॥ स्थिर वात मलका स्तम्भन करने वाला और सर उनका
 प्रवर्तक होता है ॥ पिच्छल तारको घेने वाला बलका हितु जुं डाने वाला ।
 कफकारी और भारी होता है ॥ २१४ ॥ सन्धान अर्थात् दूटेइवेका जोड़ने वा
 ला । क्लेद छेदन करने वाला कहा गया है । और विशद घावकी भरने वाला
 होता है ॥ शीतलं खुशीकी घेने वाला स्तम्भन करने वाला और मूर्च्छा तृषा य
 सीना दाह इनका नाशक होता है ॥ २१५ ॥ उष्ण शीतके विपरीत और पा
 चन होता है ॥ (क) ल्हादन अर्थात् सुखकी उत्पन्न करने वाला स्तम्भी
 अर्थात् रक्तादिकी अनिप्रवृत्तिका स्तम्भन । मूर्च्छा तृषा स्वेद दाहका क
 रने वाला पाचन ब्रणादिकोंका । मृदु और कर्कश प्रसिद्ध है ॥

स्थूलः स्थौल्यकरो देहे स्रोतसामवरोधकृत् ॥

देहस्य सूक्ष्मच्छिद्रेषु विशेषतः यत् सूक्ष्ममुच्यते ॥ २१६ ॥

द्रवः क्लेदकरो व्यापी शुष्कस्तद्विपरीतकः ॥ आ

शुक्राशुक्रो देहे घावत्यम्भसि तैलवत् ॥ २१७ ॥

मन्दः सकलकार्येषु शिथिलोऽल्पोऽपि कथ्यते ॥

[अथ गुणाप्रस्तावे दीपनादयो गुणाः । स लक्षणा लिख्येते]

पचेन्नामं वह्निं कृद्यद्दीपनं तद्यथाभिसिः ॥

(क) वह्निं कृद्यद्दीपनं कृतम् । ननु यद्वह्निं प्रदीपयति तदा मद्भूयं न पचेदित्याशङ्क्या मुच्यते । दीपनद्रव्यन्तावत्तं वह्निं प्रदीपयति । तथा अत्र भोक्तुमिच्छामुत्पादयति नत्वामं पक्तुं क्षमः यथा सूक्ष्मदीपाग्निरुत्पातं करोति नतु वह्नं स्थालीस्थान् तराडुला नोदनं कर्तुं क्षमः ।

भा० स्थूलस्थूलताको करनेवाला और देहमें सोतेका अवरोध करनेवाला है । शरीरके सूक्ष्म छिद्रोंमें जो जावे उसकी सूक्ष्म कहते हैं ॥ २१६ ॥ ब्रह्मक्षैदके करनेवाला और व्यापि होता है । तथा शुष्कउत्के विपरित करनेवाला होता है ॥ आशुशीघ्र करनेवाला शरीरमें होता है ॥ जैसे पानीमें तेलदौड़नेके मानिन्द ॥ २१७ ॥ मन्द सब कामोंमें शिथिल और अल्पभी कहा गया है ॥

[अनन्तर गुणाप्रस्तावमें दीपनादिक गुणलक्षणके सहित लिखे हैं ॥

आमको न पचवे और अग्निको करेउत्को दीपन कहते हैं जैसे सोंफ ॥

(क) वह्निं कृतम् अर्थात् अग्निको दीपन करनेवाला । (ननु) शंका भोवह्नीको दीपन करता है वोह आमको क्यों नहीं पचाता इस शंकाको कहते हैं । दीपनद्रव्यं उतनी वह्निं को दीपन करता है । जैसे अन्नमें भोजन करनेकी इच्छा उत्पादन करता है न कि आमको पका सक्ता है जैसे सूक्ष्मदीपिकी अग्नि प्रकाशको कारणी है न कि बड़े घरननमें के चावलोंको पका सकती है ॥

पचत्यामन्नं वह्निञ्च कुर्याद्यत्तद्धि पाचनम् ॥ नाग

केशरवद्विद्या चित्रो दीपनपाचनः ॥ २१८ ॥

(क) ननु यद्वह्निं नदीपयति तदामं कथं पचतीत्याशङ्क्या माह । पाचनं वह्निदीपितमकुर्वीणामप्याम्यचति । यथा गन्धाधानीस्थाऽङ्गारसमूहोऽन्यम्यचति ॥ नतु दीपवत्सर्व्वं

तः प्रदीपयति ॥ न शोधयति यत् दोषान् समाक्षोदी
 रयत्यपि ॥ समीकरोति विषमान् शमनन्तद् यथा मृता
 ॥ २९६ ॥ (क) यत् द्रव्यन्दोषत्रयं न शोधयति नोर्द्धाधो मा
 र्गाभ्यामानयति ॥ समान् दोषान्क्षोदीरयति न बर्द्धयति ।
 शमनं तत् ॥ कृत्वा पाकम्भलानाञ्च भित्वा बन्धमधो
 नयेत् ॥ तच्चानु लोमनं ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी ॥ २९७ ॥

भा० जो आमको पचाता है और अग्निको नहीं करता वो पाचन है । जैसे नागके
 मर और चित्रक दीपन पाचन है ॥ २९८ ॥ (क) ननुःशंका) जो अग्निको दी
 पन नहीं करता वोह आमको कैसे पचाता है । इस आशकामें कहने हैं ।
 पाचन अग्नि दीपन न करना ब्रवाभी आमको पचाता है । जैसे जलमें का
 अंगार समूह अन्नको पचाता है । न किं दीप की मानिद सब तरफ प्रकाश
 करता है ॥ जो दोषों को नहीं शोधन करता और समदोषोंको नहीं बढ़ाना । न
 या विषम दोषोंको सम करता है वोह शमन है । जैसे गिलोय ॥ २९६ ॥
 (क) जो द्रव्य तीनों दोषोंको नहीं शोधन करता अर्थात् ऊपर नीचे से नहीं ले
 जाता । और समदोषोंको नहीं बढ़ाना वोह शमन है ॥
 जो मलोंका पाक कफके और सुर्दोंको फोड़के नीचे लेजाता है ॥ उसको अनु
 लोमन जानना चाहिये जैसे हरीतकी कही है ॥ २९७ ॥

(क) मलानाम् । अपक्वानां वातपित्त श्लेष्मणां बन्धं वा
 यु बन्धं भित्वा अधो नयेत् । मलानधः यातयति ।
 पक्त्वा यद् पक्त्वा व प्लिष्टं कोष्ठे मलादिकम् ॥ नय
 त्यधः र्खं सनन्तद् यथा स्यात् कृतमालकम् ॥ २९९ ॥
 मलादिकम् आदि शब्दान्कफ पित्त । कृतमालः घन ब
 हेरा इतिलोके ॥ मलादिक मबद्धं यद्धृदं वा पिरिद्धं

मलैः ॥ भित्वाधः पातयति यद्भेदनं कर्तुं कीयथा ॥ २२२ ॥

(क) अवहं शिथिलम्बद्धगुदं मलैः दोषैः तत्रापि चतैः ॥

बहुत्वमाधिक्यबोधनार्थनैः पिरिडितम् । गुटिकी कृतम् ॥

विपक्वं यदपक्वं वा मलादि द्रवतां नयेत् ॥ रेचयत्य

पि तज्ज्ञेयं रेचनन्त्रिचता यथा ॥ २२३ ॥

रेचयत्यपि । अंधः पातयति च । त्रिचताप निलरा ।

भा० (क) मलोंका अर्थात् अपक्व वात पित्त कफोंका बंध अर्थात् वायुके बंधकों फोड़कर नीचे लेजाता है । अर्थात् मलोंको नीचे गिराना है । कोठे में लगेके ठहरे ऊँचे पकनेके योग्य मलादि कोंको बिना पकाये ही ॥ नीचे लेजाता है उसको स्वसंकोते है जैसे अमलनास ॥ २२२ ॥ मलादिक । आदि शब्द से कफ पित्त जानने चाहिये ॥ ढीला मल अथवा बंधा हुआ या सु है इनको जो । फोड़कर नीचे गिराना है वह भेदन है जैसे कुटकी । २२२ (क) अवह अर्थात् ढीला बद्ध अर्थात् सरल मल अर्थात् दोषोंसे उसमें वातसे । पिरिडित अर्थात् गुठलीके समान । बहुत्व पके ऊँचे अथवा कच्चे मलादिकोंको ढीला करके निकाले ॥ उसको रेचन कहने हैं जैसे निसोत ॥ २२३ ॥ विन पके ऊँचे पित्त कफ अश्रुको बलात्कार से ऊपर जो लेजावे ॥

अपक्वं पित्तं प्लेष्मानं बलाद्दूर्द्धं नयेत्तु यत् ॥ वम

नन्तद्धि विज्ञेयं मदनस्य फलं यथा ॥ २२४ ॥

(ख) ऊँचे नयेत् सुख मार्गेण वहिष्कुर्यात् । मदनस्य

फलं मयन फल मिति लोके,

स्थानाद्बहिर्नयेदूर्द्धं मधीवा मल सञ्चयम् ॥ देहे

संशोधनन्तत् स्या देवदाली फलं यथा ॥ २२५ ॥

(ग) देवदाली सोनेप्रा इति लोके ॥

भा० उसको वृमन जानना चाहिये जैसे मैनफल ॥ २२४ ॥

(ख) उपर लेजावे अर्थात् मुंहसे बाहर निकाले । शरीरमें संचय हुवे मलको स्थान से बाहर नीचे या ऊपर लेजावे । उसे संशोधन कहते हैं । जैसे देवदालीफल ॥ २२५ ॥ (ग) देवदालीको लोकमें सोनईया कहते हैं ॥

दीपनम्याचनं यत् स्या दूषात्वा द्रव शोधकम् ॥ ग्रा

ही तच्च यथा शुराठी जीरकङ्गज पिप्पली ॥ २२६ ॥

रौदयाच्छै त्यात्कषायत्वा लघु पाकाच्च यद्भवेत् ॥

वातकृत् स्तम्भनन्तत् स्याद् यथा वत्स कटु रादुकी ॥

॥ २२७ ॥ वातकृत् प्रतिलोम वातकृत् । स्तम्भनं अ

धोगामि मलादीनाम् । वत्सक कुरै आदुण्टक सो

नापाठा । श्लिष्टान् कफादिकान् दोषानुन्मूलयति

यद्बलात् ॥ छेदनन्तत् यथा क्षार मरिचानि शिलाज

तु ॥ २२८ ॥

भा० जो दीपन याचन उष्णत्वसे रत्नवनको सुकानेवाला है । वोह ग्राही है जैसे सोंठ जीरा और गज पीपल ॥ २२६ ॥ रूक्षता से शीतलता से कषायसे और लघु पाक से जो वायुको करनेवाला होना है ॥ वोह कंभन है जैसे कुरै या और सोनापाठा ॥ २२७ ॥ जो श्लिष्ट कफादि दोषोंको बलान्कार से उखेड़ता है ॥ उसको छेदन कहते हैं जैसे जवारखार कालीमिर्च और शिलाजीत ॥ २२८ ॥

[क्षार यवक्षारादयः।

धातून्मलान् वा देहस्य विशोष्ये ल्लेखयेच्च यत् ॥ ले

खनन्तद् यथा क्षौद्रं नीरमुष्णं वचायवा ॥ २२९ ॥

[उल्लेखयेत् कृशी कुर्व्यात् । लेखनं कृशीकारकं क्षौद्रं म

धु । यवा इन्द्र यवाः । यस्माद्दुव्याद्भवेत् स्त्रीषु हर्षोवाजी

हितत ॥ यथाश्व गन्धा मुशली शर्करा च शतावरी ॥

॥ २३० ॥ हर्षा रन्तुं समुत्साहः ।

भा० शरीर के धातु अथवा मलोंको सुकाके कृश करे उसको लेखन कहते हैं । जैसे शहत गरमपानी वच और इन्द्रजी ॥ २२६ ॥ जिस ब्रह्मसे स्त्री में हर्ष होता है उसको वाजीकरण कहते हैं ॥ जैसे असगन्ध मुसली शर्करा और शतावर ॥ २३० ॥

यस्माच्छुक्रस्य वृद्धिः स्याच्छुक्रलं हिनदुच्यते ॥ य

था नागबलाद्याः स्युर्वीजञ्च कपिकच्छुजम् ॥ २३१ ॥

नागबला गुलसकरी ।) दुग्धं माषाश्च भल्लान फलमज्जा

मलानि च ॥ एतानि जनकानि स्युः रेचकानि च रेत्सः ॥

॥ २३२ ॥ (क) जनकानि प्रभावाच्छीघ्रमेव रसाद्युत्

पादन पूर्व्वकं शुक्रञ्जनयन्ति । (ख) रेचकाणि आधि

क्यात् प्रवर्तयन्ति च ।

भा० जिससे शुक्रकी वृद्धि होती है उसके शुक्रल कहते हैं ॥ जैसे गुलसकरी आदिक और किवांचका बीज ॥ ३३१ ॥ दूध उद्द भिक्षावे के फलकी गिरी आंबल । ये शुक्रके उत्पन्न करने वाले और शुक्रके रेचक भी हैं ॥ ३३२ ॥

(क) प्रभाव से शीघ्र ही रसादियोंको उत्पन्न करके कको उत्पन्न करते हैं ।

(ख) अधिकता से निकालते हैं । स

प्रवर्तनी स्त्रीशुक्रस्य रेचनं दहती फलम् ॥ जानीफलं

सम्भकं स्यात् कालिङ्गं क्षयकारि च ॥ २३३ ॥

(क) स्त्रीस्मरणा कीर्तनदर्शन सम्भाषण स्पर्शनचुम्बना

लिङ्गनिधुवनैः समस्तैर्व्यस्तैश्च शुक्रस्य प्रवर्तनी ।

प्रवर्तिनी प्रवृत्तिकारिणी रेचनी । वृहती फलम् ।
 वृहत्कराटकारी फलमपि शुक्रस्य रेचकम् प्रवर्तकम् ।
 कालिङ्गं कलिन्दफलम् ।

रसायनन्तु तजज्ञेयं यत् जराव्याधिनाशनम् ॥ यथा ।

हरीतकीरुदन्तीच गुग्गुलुश्च शिलाजतु ॥ २३४ ॥

पूर्वं व्याप्याखिलं कायं ततः पाकञ्च गच्छति ॥ व्यवा

यि तद यथा भङ्ग फेनञ्चाहि समुद्भवम् ॥ २३५ ॥

(क) अन्यद्रव्यं पक्वन्तद्गुणं करोति व्यवायितु अपक्वमेव
 स्वगुणैः सकलशरीरं व्याप्य पाकं याति । अहि समुद्भव
 फेनम् अफीम् । सान्धिवन्धांस्तु शिथिलान् यत् करोति

विक्राशितम् ॥

भा० स्त्री शुक्रकानिकालनेवाला कटेलीका फल है । और जायफल संभक
 है । तथा क्षयकरनेवाला मतीरेका फल है ॥ २३३ ॥ (क) स्त्रीका स्मरण या
 कीर्तन दर्शन सम्भाषण स्पर्श चुम्बन आलिंगन और मैथुन इन सबोंसे या
 सक २ से शुक्रकी प्रवृत्ति होती है । प्रवर्तिनी अर्थात् प्रवृत्तिकारिणी रेचनी
 कटेलीका फल । बड़ी कटेलीका फल भी रेचक है और शुक्रको क्षयकरनेवाला
 तरबूज ॥ जो जराव्याधिका नाश करनेवाला है उसको रसायन जानना चाहिये
 । जैसे । हरीतकी रुद्रवन्ती गुग्गुलु और शिलाजीत ॥ २३४ ॥ जो पहले संपूर्ण श
 रीर में व्याप्त होकर पश्चात् पाक होता है उसको व्यवायी कहते हैं जैसे भांग औ
 र अफीम ॥ २३५ ॥ (क) और द्रव्य पक्व उस गुणको करना है और व्यवा
 यी तो बिनपके ही अपने गुणोंसे संपूर्ण शरीर में फैलकर पाकको प्राप्त होता
 है । जो जोड़ोंके बन्धनोंको शिथिल करता है वोह विक्राशी है ॥

विषोष्यो जश्च धातुभ्यो यथा क्रमुककोद्रवौ ॥ २३६ ॥

धातुभ्यः सकलशरीरस्थेभ्यो दोषेभ्यः । ओजः उपभ्या

तु विषोषम् विषोष्य । क्रमुकम् पूगफलम् ।

बुद्धिं क्षुम्यति यत् द्रव्यं मदकारि तदुच्यते ॥ तमो गुण
प्रधानञ्च यथा मद्यं सुरादिकम् ॥ २३७ ॥

मदकारि मादकम् । व्यवायि च विक्राशि स्यात् प्लेष्म
छेदि मदावहम् ॥ आग्नेयं जीवितहरं योगवाहि स्मृतं
विषम् ॥ २३८ ॥

भा० और ओज धातुओं को शोषणकरता है जैसे कीदों और सुपारी ॥ २३६ ॥
जो द्रव्य बुद्धि को संभ्रमकरे और तमोगुण प्रधान हो उसको मदकारी कहते हैं
जैसे मद्य और सुरादिक ॥ २३७ ॥ व्यवायी और विक्राशी कफके नाशक औ
र नशा करने वाले होते हैं ॥ उषा और योगवाही पाणके नाशक रहेगये हैं ।
जैसे विष ॥ २३८ ॥

(क) व्यवायि सकलकाय गुणव्यापन पूर्वक पाकगमन शी
लम् । विक्राशि ओजः शोषणपूर्वक सन्धिवन्ध शिथिली
करण शीलम् । मदावहम् । तमो गुणाधिक्येन बुद्धि विध्वं
सकम् । आग्नेयं अधिकाग्निगुणम् योगवाहि संसर्गि गु-
णग्राहकम् विषं लक्ष्यं दृष्टान्तो वत्सनाभ शक्तुकादिभिः ।
निजवीर्येण यद् द्रव्यं स्रोतेभ्यो दोष सञ्चयम् ॥ नि
रस्यति यमायि स्यात्तद्यथा मरिचं वचा ॥ २३९ ॥

भा० (क) व्यवायी अर्थात् सम्पूर्ण शरीर में गुणको फैलाकर पाक होनेवाला
। मद करनेवाला अर्थात् तमोगुणकी अधिकतासे बुद्धिको नाशक । आग्नेय अ
र्थात् अधिक अग्निगुण । योगवाही अर्थात् संसर्गीके गुणको ग्राहण करने
वाला यहाँपर विपलक्ष है । दृष्टान्त वत्सनाभ शक्तुकादि । जो द्रव्य अपने
वीर्यसे दोषोंके संचयको स्रोतोंसे निकालता है उसको प्रमायी कहते हैं, जैसे
मरिच, वचा ॥ २३९ ॥

(दोषावातादयः ।)

पैच्छिल्याङ्गौरवा द्रव्य रुद्धा रसवहाः शिरा । धत्ते यद्

गौरवं नत्स्यादभिष्यन्दि यथादधि ॥२४०॥ (गौरवं शरीरे)

विदाहि द्रव्यमुद्गार मल्लं कुर्यात् तथा तृषाम् ॥ हृदि दा

हञ्च जनयेत्याकं गच्छति तच्चिरात् ॥ २४१ ॥

(क) गृह्णाति योगवाहिद्रव्यं संसर्गिवस्तु गुणान् । पच्यमानं
तथैतन्मधु जलतैलाज्यसूतलोहादि अथ वीर्यम् । तत्र वाग्
भटः । उष्ण शीत गुणोत्कर्षात् बुधैः वीर्यम् द्विधा स्पृ-

तम् ॥ यत्सर्वमग्नि सौमीयं दृश्यते भुवन त्रयम् ॥ २४२ ॥

(अथ तद्गुणः) उष्णं वातकफौ हन्याच्छीतन्नु ननुते जराम् ।

शीतं वातकफात्कृणु कुरुते पित्तहृत्परम् ॥ २४३ ॥ अन्यच्च]

भा० पिच्छिलतासे और गौरवसे जो द्रव्य रसको लेजानेवाली शिराओंको रोक कर गुरुताको धारणकरता है वोह अभिष्यन्दि है जैसे वही ॥ २४० ॥ विदाही द्रव्य खट्टी इन्कार और तृषाको करता है । और हृदयमें दाहको भी उत्पन्न करता है तथा देरमें वोह पकाता है ॥ २४१ ॥ (क) योगवाही द्रव्य संसर्गिवस्तुके गुणोंको ग्रहण करता है । पकाइता जैसे यह मधु जलनेल घृत सूत लोह आदि । अनन्तर वीर्यको कहते हैं । उष्मेवाभट ने कहा है । ऊष्ण और शीतकी अधिकतासे पंडितोंने दो प्रकारका वीर्य कहा है ॥ वोह सब तीनों भुवनोंमें गरम शीत दिखार्इ देता है ॥ २४२ ॥ अनन्तर उस्के गुण कहते हैं ॥ उष्ण वात कफ को नाश करता है । और शीत जराको बढ़ाना है । शीत वात कफके रोगोंको कर ता है और अत्यन्त पित्तका नाशक है ॥ २४३ ॥

तत्रोष्णं भ्रमत्तट्ग्लानि स्वेददाहाशु पाकताम् ॥ शम

ञ्च वातकफयोः करोति शिशिरं पुनः ॥ २४४ ॥ ह्ला

दनं जीवनं स्तम्भं प्रसादं रक्तपित्तयोः ॥ [अथ श्लिषाकः]

जाठरेणाग्निना योगाद्यबुदेति रसान्तरम् ॥ रसानां

परिमान्ते स विपाक इति स्मृतः ॥ २४५ ॥ मिष्टः पटु
 श्व मधुरमम्लोऽम्लं पच्यते रसः ॥ कटुतिक्तकषाया
 राणां पाकः स्यात् प्रायशः कटुः ॥ २४६ ॥ (तथा च वा-
 ग्भटः।) त्रिधा रसानां पाकः स्यात् स्वादुस्त्रकटुकात्म
 कः ॥ प्रायः पदेन त्रीहिः स्यात् स्वादुस्त्र रवि पाकतः ॥
 २४७ ॥ (क) शिवा कषाया मधुरा पाके सुराठी कटुका
 मधुर पाके न्यादि । [अथ विपाकानां गुणाः।]

भा० उर्सें उष्म भ्रम नृषा ग्लानि पसीना दाह और शीघ्र पाक । तथा वायु
 और कफका शमन करना है पुनः शीतल ॥ २४४ ॥ हृष्य जीवन स्तंभ और रक्त
 पित्तकी स्वच्छता इनको करना है ॥ अनन्तर विपाक को कहने हैं ॥ उदर अग्नि
 के योगसे रसोंके परिणामके अन्तमें जो रसान्तर उत्पन्न होना है उसको विपा
 क कहने हैं ॥ २४५ ॥ मधुर और लवण रसका मधुर पाक होता है । तथा अम्ल
 का अम्ल पाक होता है । और कटु तिक्त कषाय इनका प्रायः कटु पाक होता है ।
 ॥ २४६ ॥ इस प्रकार वाग्भटने कहा है ॥ तीन प्रकार रसोंका पाक होता है ॥
 मधुर अम्ल कटु ॥ प्रायः पदकरके धान्य अविपाकसे स्वादु और
 अम्ल होता है ॥ २४७ ॥ (क) हड़ कसेली है परंतु पाकमें मधुर होती है ॥ उसी प्र
 कार सोंठ कटु है और पाकमें मधुर होती है इत्यादि ॥

प्लेष्मकृन्मधुरः पाको वातपित्तहरो मतः ॥ अम्लस्तु
 कुरुते पित्तं वातप्लेष्मगदापहः ॥ २४८ ॥ कटुः कुरो
 ति पवनं कफं पित्तञ्च नापायेत् ॥ विशेष रघ्वरसतो
 विपाकानां निदर्शितः ॥ २४९ ॥ [अथ प्रभावः।]

रसादिसाम्ये यत्कर्म विशिष्टं तत्प्रभावजम् ।

दन्तीरसाद्यैः तुल्यापि चित्रकस्य विरेचनी ॥ मधु
 कस्य च मृद्वीवा घृतं क्षीरस्य दीपनम् ॥ २५० ॥

भा० अनन्तर वियाकों के गुण कहते हैं ॥ मधुर पाक कफको करता है । औ वान पित्तका नाशक है । अम्ल पाक पित्तको करता है । और वान कफके रोगों का नाशक है ॥ २४७ ॥ कटु पाक वायुको करता है । और कफ पित्तको नाश करता है ॥ रससे ही वियाकों का विशेष कहा गया है ॥ २४८ ॥ अनन्तर प्रभावको कहते हैं ॥ रसादियोंकी समता में जो अधिक कर्म है उसको प्रभावज कहते हैं ॥ जैसे चित्रकके रसादि करके समान भी जड़ जमालगोटे की जड़ विरेचन करनेवाली है ॥ २४९ ॥ और मद्भवेके समान रससे मुनक्कानथ दूधके समान घृत दीपन है ॥ २५० ॥

प्रभावस्तु यथा धात्री लकुचस्य रसादिभिः ॥ समापि
कुरुते दोष त्रितयस्य विनाशनम् ॥ २५१ ॥ क्वचित्तु
केवलं द्रव्यं कर्मकुर्यात् प्रभावतः ॥ ज्वरं हन्ति शि
रो बद्धा सह देवी जटा यथा ॥ २५२ ॥

तथा नानौषधियोगेषु फलं प्रति स्वभाव एवाश्रयणी
यो न तु तत्र रसादिरूपहेतु विचारः कर्तव्यः ।

ह [यत आह सुश्रुतः ।]

भा० जैसे प्रभाव वहलके रसादि से तुल्यभी आवले तीनों दोषों के नाशको करने हैं ॥ २५१ ॥ कहीं पर केवल द्रव्य प्रभाव से कर्मको करता है ॥ जैसे सह देवीकी जटा सिरमें बांधनेसे ज्वरको नाश करती है ॥ २५२ ॥

(क) निस्से नाना औषधीके योगके फलमें स्वभावहीको आश्रयण करना चाहिये । नकि उसमें रसादि रूप कारण का विचार करना चाहिये । जैसा कि सुश्रुत ने कहा है ॥

अमी सामान्य चिन्त्यानि प्रसिद्धानि स्वभावतः ॥ आ
गमेनोपयोज्यानि भेषजानि विचक्षणैः ॥ २५३ ॥ प्रत्य
क्षलक्षणफलाः प्रसिद्धाश्च स्वभावतः ॥ नौषधीर्ह
तुभिर्विद्वान् परीक्षेत कदाचन ॥ २५४ ॥ विरुद्धगुण

संयोगे भूयसाल्यं हि जायते ॥ रसं विपाकस्तौ वीर्यं
 प्रभावस्तान् व्यपोहति ॥ २५५ ॥ (क) इति रसगुण
 वीर्यविपाकप्रभावाणां स्वरूपाण्यभिधाय कुत्र द्रव्यके
 रसगुण वीर्यविपाकप्रभावाः सन्तीति बोधयितुं द्रव्य
 गतान् रसगुण वीर्यविपाकप्रभावानाह । तत्र प्रथमं
 हरीतक्या उत्पत्तिनाम लक्षणागुणानाह ।

भा० चतुर्विधा के द्वारा शास्त्र से उपयोग करने योग्य प्रसिद्ध येह औषध स्व
 भावसे सामान्य करके विचार करने के योग्य होने हैं ॥ २५३ ॥ स्वभावसे प्रत्यक्ष
 लक्षणा फलको करने वाली प्रसिद्ध । औषधियों विद्वान कमी भी तर्कके द्वारा परि
 क्षांकरे ॥ २५४ ॥ विरुद्ध गुणके संयोगमें बहुत भी थोड़ा होजाता है ॥ जैसे विपा
 क रसको और उन दोनोंको वीर्य तथा उनको प्रभावनाश करला है ॥ २५५ ॥

(क) इस प्रकार रसगुण वीर्य विपाक और प्रभावोंके स्वरूपको कहकर किस
 द्रव्यमें कौन से रसगुण वीर्यविपाक और प्रभाव हैं उनको जानने के बाले द्रव्य
 में के रसगुण वीर्य विपाक प्रभावोंको कहने हैं ॥ उसमें प्रथम हरीतकीकी उत्प
 त्तिनाम लक्षणा और गुण इनको कहने हैं ॥

दत्तं प्रजापतिं स्वस्थ मग्निं नो वाच्यमूचतुः ॥ कुतो
 हरीतकी जाता तस्यास्तु कति जातयः ॥ २५६ ॥ रसाः
 कति समाख्याताः कति चोपरसाः स्मृताः ॥ नामानि
 कति चोक्तानि किं वा त्साञ्च लक्षणम् ॥ २५७ ॥
 केच वरणा गुणाः के च काच कुत्र प्रयुज्यते ॥ केन
 द्रव्येण संयुक्ता कांश्च रोगान् व्यपोहति ॥ २५८ ॥

भा० स्वस्थ दक्षप्रजापतिसे अम्बनी कुमारोंने पूछा । कहाँसे हरीतकी उत्पन्न
 हुई और उसकी कितनी किस्में हैं ॥ २५६ ॥ तथा रस कितने और उपरस कितने
 कहे गये हैं ॥ नाम कितने कहे गये और उनका लक्षण क्या है ॥ २५७ ॥ कितने
 वरण और कितने गुण हैं और किसको कहाँपर देनी चाहिये ॥ कौन से द्रव्यके

साथ देनेसे कौनसे लोगों को नाश करती है ॥ २५८ ॥

प्रश्नमत्तद् यथा पृष्टं भगवन् । वक्तुमर्हसि ॥ अश्विनो
वचनं श्रुत्वा दक्षो वचनमब्रवीन् ॥ २५९ ॥ पयात वि
सुर्मेदिन्यां शक्रस्य पिवतोऽमृतम् ॥ ततो दिव्यात्स
सुत्पन्ना सप्तजातिर्हरीतकी ॥ २६० ॥ हरीतक्य भयाप
थ्या कायस्था पूतनामृता ॥ हेमवत्यव्यथा चापि चेत
की श्रेयसी शिवा ॥ २६१ ॥

भा० जैसे यह प्रश्न मैंने पूछा है, इसको आप कह सकेंगे हो ॥ अश्विनी कुमारों का
यह वचन सुनकर दक्ष प्रजापति बोले ॥ २५९ ॥ इन्द्र के अमृत पीते हवे में एक
विन्दु पृथ्वीपर गिरा ॥ उस अमृत से सात जातकी हरीतकी पैदा हुई ॥ २६० ॥
हरीतकी, अभया, कायस्था, पूतना, अमृता ॥ हेमवती, अव्यथा, चेतकी,
श्रेयसी, शिवा ॥ २६१ ॥

वयस्था विजया चापि जीवन्ती रोहिणीति च ॥ विजया
रोहिणी चैव पूतना चामृता भया ॥ २६२ ॥ जीवन्ती च
तकी चैति विज्ञेयाः सप्तजातयः ॥ अलाबुदत्ता विज
या दत्तासा रोहिणी स्मृता ॥ २६३ ॥ पूतनास्थिमती
सूक्ष्मा कथिता मांसलामृता ॥ पञ्चरेखा भया प्रो
क्ता जीवन्ती स्वर्गायरीनी ॥ २६४ ॥ त्रिरेखा चेतकी
जेया सप्ताना मियमाकृतिः ॥ विजया सर्वरोगेषु रो
हिणी व्रारोहिणी ॥ २६५ ॥

भा० वयस्था, विजया, जीवन्ती, और रोहिणी; ये नाम हड़के हैं ॥ विजया
रोहिणी, पूतना, अमृता, अभया ॥ २६२ ॥ जीवन्ती, चेतकी, ये सात जा
॥ मूम्बी के समान गोल विजया होती है ॥ और वोह गोल रोहि
॥ २६३ ॥ छोटी गुठलीवाली पूतना और सूदेदार अमृता

कही गई है ॥ पांच लकीरोंवाली अभया और सौनेके रंगकी सदृश जीवन्ती होती है ॥ २६४ ॥ तीन लकीरोंवाली चेतकी सातों हठोंका ये स्वरूप है ॥ सब रोगोंमें विजया । घावोंके भरनेमें रोहिणी देनी चाहिये ॥ २६५ ॥

प्रलेपे पूतना योज्या शोधनार्थेऽमृता हिता ॥ अक्षिरो
गेऽभया एस्ता जीवन्ती सर्वरोग हन् ॥ २६६ ॥ चूर्णार्थे
चेतकी शस्ता यथा युक्तं प्रयोजयेत् ॥ चेतकी द्विविधा
प्रोक्ता श्वेता कृष्णा च वर्णतः ॥ २६७ ॥ षडङ्गुलाय
ता शुक्ला कृष्णा त्वेकाङ्गुला स्मृता ॥ काचिदा स्वाद
मात्रेण काचिद् गन्धेन भेदयेत् ॥ २६८ ॥

भा० लेपमें पूतना और शोधनके अर्थ अमृता अच्छी है । नेत्रके रोगमें अभया और जीवन्ती सर्वरोगोंकी नाशक है ॥ २६६ ॥ चूर्णमें चेतकी अच्छी होती है । योगके अनुसार योजना करे ॥ चेतकी रंगमें दो प्रकारकी कही है सफ़ेद और काली ॥ २६७ ॥ सुपेद छः अंगुल सन्धी और काली एक अङ्गुल की कही गई है ॥ कोई खाने मात्रसे ही दस्तोंको करती है । और कोई सूँघने से दस्त लानी है ॥ २६८ ॥

काचित् स्पर्शेन दृष्ट्या न्या चतुर्धा भेदयच्छिवा ॥ चेत
की पादयज्ञाया मुपसर्ष्यन्ति ये नराः ॥ २६९ ॥ भिद्य
न्ते तत्क्षणादेव पशु पक्षि मृगादयः ॥ चेतकी तु घृता
हस्ते यावत्तिष्ठति देहिनः ॥ २७० ॥ तावद्भिद्येत वेगैस्तु
प्रभावान्नात्र संशयः ॥ न धार्यं सुकुमाराणां कृष्णा
नां भेषज द्विषाम् ॥ २७१ ॥

भा० कोई छूनेसे और कोई देखनेसे दस्त लानी है ऐसे चार प्रकारकी हठें होती हैं ॥ जो मनुष्य चेतकीके दृष्टकी साया में जाते हैं ॥ २६९ ॥ उनको उम्मीक्षणमें दस्त लगते हैं । और पशु पक्षी मृगादिकोंको भी दस्त लगते हैं ॥ मनुष्य चेतकीको जव

तक धारण करते हैं ॥ २७० ॥ तब तक उसके प्रभावसे दस्त लगने हैं इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ सुकमार रूद्र और औषध के शत्रु इनके धारण करने योग्य नहीं होती ॥ २७१ ॥

चेतकी परमा शास्ता हिता सुख विरेचनी ॥ सप्तानाम
पि ज्ञानीनां प्रधानं विजया स्मृता ॥ २७२ ॥ सुख प्रयो
ग सुलभा सर्वरोगेषु शस्यते ॥ हरीतकी पञ्चरसा
लवणानु घरा परम् ॥ २७३ ॥ रूक्षोष्णा दीपनी मे
ध्या स्वादुपाका रसायनी ॥ चक्षुष्या लघुराक्षुष्या
दृंहणी चालोमिनी ॥ २७४ ॥ श्वासकास प्रमेहा
र्षाकुष्ठ शोथोदर कृमीन् ॥ वैस्वर्यग्रहणी रोग वि
बन्ध विषम ज्वरान् ॥ २७५ ॥

भा० चेतकी बद्धत अच्छी सुख विरेचन में होती है ॥ सान जानों में विजया प्रधान कही गई है सुख पूर्वक प्रयोग में देने योग्य होती है और सुलभ सब रोगों में प्रशस्त होती है ॥ हरीतकी पांच रसों से युक्त और लवण से रहित तथा बद्धत कसैली होती है ॥ २७३ ॥ सूखी गरम अग्नि को दीपन करने वाली पवित्र मधुर पाक वाली रसायनी होती है ॥ नेत्रके दिन हलकी आशुके दिन दृंहणी तथा वायु और मलको नीचे करने वाली होती है ॥ २७४ ॥ श्वास कास प्रमेह बवाक्षीर कौढ़ सूजन उदर रोग कृमी ॥ स्वरभंग ग्रहणी रोग विबन्ध अर्थात् कृबल और विषमज्वर ॥ २७५ ॥

गुल्माघ्नान तथाच्छर्दि हिक्का कराडू हृदामयान् ॥

कामलां शूलमानाहं स्त्रीहानञ्च यकृतया ॥ २७६ ॥

अश्मरी मूत्रक्षुञ्च मूत्रा घानञ्च नाशयेत् ॥

स्वादुनिःकषायत्वात्पित्तहृत्कफहन्तु सा ॥ २७७ ॥

कटुतिक्तकषायत्वा दम्भत्वाद्वातहृच्छिवा ॥ पित्तकृ
 त्कटुकाश्लत्वाद्वातकृन्न कथं शिवा ॥ २७८ ॥ प्रभा
 वादोषहन्तृत्वं सिद्धं यत्तत् प्रकाशयते ॥ हेतुभिः पि
 ष्यबोधार्थं न पूर्व्वं कथ्यतेऽधुना ॥ २७९ ॥ कर्म्मनि
 त्वं गुणैः साम्यं दृष्टमाश्रयभेदनः ॥ यतस्ततो नेति चि
 न्त्यं धात्रीलकुचयोर्यथा ॥ २८० ॥

भा० वायुगोला आध्मान तृषावमनरुचकी खुजलीहृद्दोग ॥ कामला शूल
 अफारा पिलही तिल्ली ॥ २७६ ॥ पथरी मूत्ररुच्छ और मूत्राघात इनको नाश
 करती है ॥ मोटा तीखा और कसैले पनसेबोह पित्तनाशक और कफनाशक
 होती है ॥ २७७ ॥ कटु तिक्त कषाय इनसे और खट्टे पनसे हरीतकी वातकी ना
 शक है ॥ कटुवे और खट्टे पन से पित्तको करनेवाली हड्डि है नबवानको कर
 नेवालीक्यांनहीं है ॥ २७८ ॥ प्रभावसे जो दोषकी नाशकता सिद्ध है उसको
 कहनेहै ॥ शिष्य बोधके अर्थ प्रथम हेतुओंसेनहींकहा अब ॥ २७९ ॥ आ
 श्रयके भेदसे गुणोंकी समता और कर्माण्यता देखी ॥ जिसेतिसेचिंतनकर
 लेके योग्य नहीं है जैसे आंवलेबहुँलोंकी ॥ २८० ॥

पथ्याया मज्जनिखादुःस्त्राव्यावहो व्यवस्थितः ॥ दृ
 ते तिक्तस्त्वचिकटु रस्थिल्लुतुवरो रसः ॥ २८१ ॥ नवा
 स्त्रिगधा घनादृत्ता गुर्वी क्षिप्ता च याम्भसि ॥ निमज्जेत्
 सांश्रस्ता च कथितातिगुराप्रदा ॥ २८२ ॥ नवादि
 गुरासुक्तत्वं नथैकत्वं द्विकर्षता ॥ हरीतक्याः फले यत्र
 द्वयं तच्छ्रेष्ठमुच्यते ॥ २८३ ॥

भा० हड्डीकी मज्जामें मधुर स्वायुमें अम्लरहनाहै ॥ पड़दे में तिक्तता छिलकेमें
 कटु और अस्थिमें कसैलारसहोनाहै ॥ २८१ ॥ नवीन स्त्रिगधघनगोल भाग
 और पानीमें डालनेसेडुबेबोह अच्छी और गुराको देनेवाली कही गई है । २८२

नवादि गुणकरके युक्त और वैसेही एक जगह रोमोले की श्रेष्ठ है ॥ और जहां हरि-
की के दो फल जुड़े ऊँचे वीह श्रेष्ठ है ॥ २०३ ॥

चर्विता बर्हयत्यग्निं पेथि ना मल शोधिनी ॥ खिन्ना

संघ्राहिणी पथ्या मृष्टा मोक्ता विदोषनुत् ॥ २०४ ॥

उन्मीलिनी बुद्धिबले इन्द्रियाणां निर्मूलिनी पित्तकफा

निलानाम् ॥ विस्रंसिनी मूत्र शकृन् मलानां हरीतकी

स्यात् सह भोजनेन ॥ २०५ ॥ अन्न पान कृतान् दोषा

न् वातपित्त कफोद्भवान् ॥ हरीतकी हरत्याश्च भुक्तस्यो

परि योजिता ॥ २०६ ॥

भा० चर्वण की ऊँच आग्निको बढ़ाती है पीसी ऊँच मलको शोधन करने वा
ली है ॥ और नली ऊँच संग्रहणी तथा भुनी ऊँच विदोष नाशक कही गई है ॥

२०४ ॥ बुद्धि बल इन्द्रियों को प्रकाश करने वाली और पित्त कफ वायु को नाश
करने वाली ॥ तथा मूत्र मल दोषों को निकालने वाली हरीतकी होती है भोजन
के साथ ॥ २०५ ॥ वात पित्त कफ से उत्पन्न ऊँचे दोष और अन्न पान से ऊँचे दो-
षोंको ॥ भोजन के उपरांत योजना की ऊँच हरीतकी शीघ्र नाश करती है ॥ २०६ ॥

लवणो न कफं हन्ति पित्तं हन्ति शर्करा ॥ घृतेन वा

तजान् रोगान् सर्वरोगान् गुडान्विता ॥ २०७ ॥ सिन्धु

त्य शर्करा शुरांठी करणा मधुगुडैः क्रमात् ॥ वर्षादि

ष्वभयां प्राण्या रसायनं गुरोषिराणां ॥ २०८ ॥ अध्वा

तिखिन्नो बलवर्जितश्च सूक्ष्मः कृशोः लंघनकर्षित

श्च ॥ पित्ताधिको गर्भवती च नारी विमुक्त रक्तस्त्व

भयान्नखादिन् ॥ २०९ ॥

भा० लवण के साथ कफको नाश करती है और शर्करा के सहित पित्तको

घनके सहितवानके रोगोंको और गुड़के साथ हरीतकी सब रोगोंको नाशकरनी है ॥ २०७ ॥ सैन्धव लवण पार्कश शुंठी पीपल मधु और गुड़ कमसे इनके साथ हरीतकी । वर्षादि ऋतुओंमें रसायन के गुण चाहनेवालोंने प्राशन अर्थात् खानी चाहिये ॥ २०८ ॥ मार्गसे अति खिन्नहुवा बलसे रहित रूखा रूश लंघनसे दुर्बलहुवा ॥ पित्ताधिकवाला गर्भवती स्त्री और फल लियाहुवा ये सब हरीतकीको नखावे ॥ २०९ ॥

[अथ विभीतकस्य नामानि गुणाश्च ।]

विभीतक स्त्रीलिङ्गः स्यात्तद्वः कर्पफलस्तु सः ॥

कलिद्रुमो भूतवासस्तथा कलियुगालयः ॥ २१० ॥

विभीतकं खादुपाकं कपायं कफपित्तनुत् ॥ उष्णवी

र्यं हिमस्पर्शं भेदनं कासनाशनम् ॥ २११ ॥ रूक्षं नेत्र

हितं केश्यं कृमिवैस्वर्यं नाशनम् ॥ विभीतमज्जा तृट्

च्छर्द्दि कफवातहो लघुः ॥ २१२ ॥ कपायो मदकृ

ञ्चाथ धात्रीमज्जापि तद्गुणः ॥

भा० अनन्तर बहेड़े के नाम और गुण कहने हैं ॥ विभीतक त्रिलिङ्ग अक्ष कर्प फल ॥ कलिद्रुम भूतवास कलियुगालय । यह बहेड़े के नाम हैं ॥ २१० ॥ बहेड़ा पाकमें मधुर कसेला कफ पित्तका नाशक ॥ उष्ण वीर्यवाला स्पर्शमें शीतल भेदन कासका नाशक ॥ २११ ॥ रूखानेत्रके हित केशके हिन कृमी स्वर भंगका नाशक होना है ॥ बहेड़े की गिरी नृषा वमनकफ वात दूनकी नाश करनेवाली और हलकी ॥ २१२ ॥ तथा कसेली नशाकरने वाली शीतली है । और आंचले की गिरीभी इसीके समान गुणकी करती है ॥

[अथामलक्या नामानि गुणाश्च ।]

त्रिद्वयत्वन्तु मारव्यान् धात्री त्रिष्वफला मृता ॥ ह

रीतली मरुतपात्री मालं किन्तु विशेषतः ॥ २१३ ॥

रक्तपित्तप्रमेहघ्नं परं वृष्यं रसायनम् ॥ हन्तिवातं तद
 क्लृप्त्वात् पित्तं माधुर्य्यशैत्यतः ॥ २८४ ॥ कफं रुक्ष
 कषायत्वात् फलं धात्र्या द्विदोषजित् ॥ यस्य य
 स्य फलस्येह वीर्य्यं भवति यादृशम् ॥ २८५ ॥ त
 स्य तस्यैव वीर्येण भज्जानमपि निर्दिशेत् ॥

भा० अनन्तर आंवलेके नाम औरगुण कहनेहैं ॥ नीनों आंवलों में धात्री आम
 लक प्रसिद्ध है और नीनोंमेंवे फलवाली अमृता प्रसिद्ध है ॥ हरीतके समान
 गुणधात्रीफलका है किन्तु विशेषकरके ॥ २८३ ॥ रक्त पित्त और प्रमेहकी ना
 शाक और अत्यन्त वृष्य तथा रसायन होनी है ॥ वोह खटे पनसे वायुको नाश
 करता है ॥ और मधुरता और शीततासे पित्तको नाश करता है ॥ २८४ ॥
 रुखे और कसेले पनसे कफके करता है ॥ ऐसे आंवला विशेषके जीतने
 वाला है ॥ यहां पर जिस २के फलका वीर्य्य जैसे होना है ॥ २८५ ॥ उस २के वीर्य्य
 से मज्जाको भी जानलेवे ॥

अथ त्रिफलाया लक्षणानाम गुणाः ।] पथ्याविभी
 तधात्रीनां फलैः स्यात् त्रिफलासमैः ॥ फलत्रिक
 च त्रिफला सा वरा च प्रकीर्तिता ॥ २८६ ॥ त्रिफला
 कफ पित्तघ्नी मेह कुष्ठहरा सरा ॥ चक्षुष्या दीपनी
 रुच्या विषमज्वर नाशिनी ॥ २८७ ॥

भा० अनन्तर त्रिफलाके लक्षण और नाम तथा गुण कहनेहैं ॥ हड़ बहे
 डा और आंवलाइनके समफलोंसे त्रिफला होनी है । फलत्रिक त्रिफला औ
 र वोह वराह भीकही गई है ॥ २८६ ॥ त्रिफला कफ पित्तकी नाशक प्रमेह कु
 ष्टकी नाशक और इस्तावर नेत्रके हिन अग्निके दीपन करनेवाली रुचिके क
 रने वाली और विषमज्वर नाशक है ॥ २८७ ॥

[अथ शुण्ठी नामानि गुणान्त्र ।]

शुण्ठी विश्वा च विश्वञ्च नागरं विश्वभेषजम् ॥ ऊष

रांकटु भद्रञ्च शृङ्गवेरं महौषधम् ॥ २६८ ॥ शुराठीरु
 व्यामवानघ्नी पाचनी कटुका लघुः ॥ स्निग्धोष्णा म
 धुरा पाके कफवात विवन्धनुत् ॥ २६९ ॥ चृष्या सख्यी
 वमिश्वास्त शूलकास हृदामयान् ॥ हन्ति श्लीपद शो
 थार्थ आनाहोदरभारुतान् ॥ ३०० ॥ आम्लिय गुणा भूर्ध
 ष्टं तोयां शम्पारिषोषि यत् ॥ संगृह्णाति मलं तत्तु ग्राहि
 ष्वरुष्यादयो यथा ॥ ३०१ ॥ विवन्धभेदनी यातु साकष्टं
 ग्राहिणी भवेत् ॥ शक्तिर्विवन्धभेदे स्यात् यतो न यत्
 पानने ॥ ३०२ ॥

भा० अनन्तर सोंठके नाम गुणा कहते हैं ॥ शुंठी विष्वा विष्वा नागर विष्वा
 भेषज ॥ कृपण कटुभद्र शृंगवेर महौषध यह सोंठके नाम है ॥ २६८ ॥ सोंठ
 रुचिको करने वाली आमवान की नाशक पाचन कड़वी हलकी ॥ चिकना भ
 रम पान में मधुर कफवात और क्वजियन को नाश करने वाली है ॥ २६९ ॥
 चृष्य मलको अनुलोमन करने वाली वामन श्वास शूल खांसी हृदय के
 रोग ॥ श्लीपद सूजन ववासीर अफार इदर रोग और घात इनको नाश करती
 है ॥ ३०० ॥ बड़न गरम जलके अंशको शोषण करने वाली जो ॥ वोह मलको
 बाधती है । जैसे ग्राही शुराठ्यादिक ॥ ३०१ ॥ विवन्धको भेदन करने वाली जो
 है वोह कैसे ग्राहणी होती है ॥ विवन्ध भेदमें शक्ति है क्यों कि मल पानन में
 नहीं ॥ ३०२ ॥

[अथार्द्रकस्य नामानि गुणाश्च ।]

आर्द्रकं शृङ्गवेरं स्यात् कटुभद्रं तथा र्द्रिका ॥ आर्द्रि
 का भेदिनी गुर्वी तीक्ष्णोष्णा दीपनी मृता ॥ ३०३ ॥
 कटुका मधुरा पाके रुक्षा वात कफा पहा ॥ ये गुणाः
 कथिताः शुंठ्या स्तेऽपि संत्यार्द्रकेऽपि त्वलाः ॥ ३०४ ॥
 भोजनाद्ये सदापथ्यं लवणाद्रिक भक्षणम् ॥ अग्नि

सन्दीपनं रुच्यं जिह्वाकरु विप्रोधनम् ॥ कुष्ठ या-
रङ्गामये कृच्छ्रे रक्तपित्ते ब्रह्मो ज्वरे ॥

भा० अनन्तर अदरक के नाम और गुण कहते हैं ॥ आर्द्रक शृंगवेर क
दुमद्र आर्द्रिका यह नाम है ॥ अदरक भेदन करनेवाला भारी तीखा
गरम दीपन कस्ता गया है ॥ ३०३ ॥ कड़वा पाकमें मधुर रूखा वातकफ
काना प्रकहे ॥ जो गुण सोंठमें कहे गये हैं वोह सब अदरकमें है ॥ ३०४ ॥
भोजनबोपहले नमक और अदरक का खाना सदा पथ्य है ॥ अग्निका
दीपन रुचि करनेवाला जीभ करुठ इनका विप्रोधन है ॥ ३०५ ॥ कुष्ठ पांडुरो
ग और मूत्र कृच्छ्रे रक्तपित्त जखम और ज्वर इनमें भी पथ्य है ॥

दाहे निदाघ शरदो नैव पूजितमार्द्रकम् ॥ ३०६ ॥

[अथ पिप्पल्या नामानि गुणाश्च ।

पिप्पली मागधी हृष्या वैदेही चपला करणा ॥

उपकुल्याषणा शौण्डी कीला स्यात् तीक्ष्णा तराडु
ला ॥ पिप्पली दीपनी वृष्या स्वादुपाका रसायनी

॥ अनुषा कटुका स्निग्धा वातप्लेष्म हरी लघुः ॥

३०७ ॥ पिप्पली रेवनी हन्ति प्रसासकासोदर ज्वरान् ॥

कुष्ठप्रमेह गुल्मार्शः स्तीह शूलाममारुतान् ॥ ३०८ ॥

आर्द्रो कफप्रदा स्निग्धा शीतला मधुरा गुरुः ॥ पित्त

प्रशमनी सा तु सृष्का पित्त प्रकोपिणी ॥ ३१० ॥

भा० दाहमें शीघ्र और शरद में अदरक अच्छा नहीं होता ॥ ३०६ ॥

[अनन्तर पिप्पलीनाम और गुण कहते हैं ॥ पिप्पली, मागधी, हृष्या,
वैदेही, चपला, करणा, उपकुल्या, उष्मा, शौण्डी, कीला, तीक्ष्णा, तराडु
ला, यह पीपला के नाम हैं ॥ ३०७ ॥ पीपल दीपन और कुष्ठ पाकमें मधुर
रसायन ॥ हृष्येक गरम कड़ु विदना ॥ और वातकफ को दूर करने

वाली तथा हलकी होती है ॥ ३०८ ॥ पीपल दस्तावर होती है और श्वासकास उदर
रोग तथा ज्वर इनको नाश करती है ॥ कोढ़ प्रमेह वायगोला बचासीर सिही शूल
श्रागवात ॥ ३०९ ॥ इनको नाश करती है गीली पीपल कफकी करनेवाली चिकनी
शीतलमधुर भारी ॥ पित्तकी शमन होती है । और बोह बहन सूखी हुई पित्तको
प्रकीर्ण करनेवाली होती है ॥ ३१० ॥

पिप्पली मधुसंयुक्ता मेद कफ विनाशिनी ॥

श्वास कास ज्वरहरा वृष्या मेध्याग्निवर्द्धिनी ॥ ३११ ॥

जीर्णज्वरे ऽग्निमान्द्ये च शस्यते गुड पिप्पली ॥ कासा

जीर्णोरुचिश्वास हृत्पाराडु कृमिरोगनुन् ॥ ३१२ ॥ द्विगु

णः पिप्पली चूर्णाद् गुडोऽत्र भिषजां मतः ॥

[अथ मरिचस्य नामानि गुणाश्च ।

मरिचं वेत्तजं कृष्ण मूपरां धर्मपत्तनम् ॥ मरिचं कटु

कं तीक्ष्णं दीपनं कफवातजित् ॥ ३१३ ॥ उष्णं पित्त

करं रुक्षं श्वासशूल कृमीन् हरेत् ॥ नदाद् मधुरं पा

कं नात्युष्णं कटुकं गुरुः ॥ ३१४ ॥ किञ्चि तीक्ष्णं गु

णं श्लेष्मप्रसेकि स्याद पित्तलम् ॥

भा० मधुके सहित पीपल मेद कफ इनको विनाश करनेवाली ॥ श्वास कास
ज्वर इनकी नाशक उष्ट बुद्धि को बढ़ानेवाली अग्नि बढ़ानेवाली होती है ॥ ११
जीर्णज्वरमे और भन्दाग्निमें गुड पीपल अच्छी होती है ॥ कास अजीर्ण अरुची
श्वास इनको नाश करनेवाली और पांडुरोग और कृमीरोग इनको नाश करने
वाली होती है ॥ ३१२ ॥ पीपलके चूर्णसे गुड इगना वैद्योंके सम्मत है ॥
अनन्तर मरिचके नाम और गुण कहने हैं ॥ मरिच, वेत्तज, कृष्ण, पण, धर्म
पत्तन, येह मरिचके नाम हैं ॥ मरिच कटु तीक्ष्ण दीपन कफवातकी नाशक
होती है ॥ ३१३ ॥ उष्ण पित्तको करनेवाली सूखी श्वास शूल रुमि इनको नाश
करती है ॥ बोह गीली पाकमें मधुर होती है । और न बहन गर्भकटुवी भारी होती

है ॥ ३१४ ॥ कुछ तीखी गुणवाली कफको निकालने वाली पित्तको करनेवाली होती है ॥

[अथ त्रिकटुक नाम लक्षणगुणाः।]

विश्वोपकुल्या मरिचं त्रयं त्रिकटु कथ्यते ॥ कटु त्रिक
लु त्रिकटुं त्र्यूषणां व्योष उच्यते ॥ ३१५ ॥ त्र्यूषणां दीप
नं हन्ति श्वासकास त्वगामयान् ॥ गुल्ममेह कफस्थौ
ल्य मेद श्लीपद पीनसान् ॥ ३१६ ॥

भा० अनन्तर त्रिकटु के नाम और लक्षण तथा गुण कहने हैं ॥ सोंठ, पीपल, मिर्च, इन तीनोंको त्रिकटु कहते हैं ॥ कटुत्रिक, त्रिकटु, त्र्यूषण, व्योष, यह त्रिकटु के नाम हैं ॥ ३१५ ॥ त्रिकटु दीपन है श्वासकास त्वचाके रोग इनको नाश करेगा है । गुल्म भ्रमेह कफ स्थूलता मेद श्लीपद पीनस इनको भी नाश करेगा है ॥ ३१६ ॥

[अथ पिप्पलीमूलस्य नामानि गुणाश्च।]

ग्रन्थिकं पिप्पलीमूल मूषणां चटकाशिरः ॥ दीपनं पि
प्पली मूलं कटूषणां पाचनं लघु ॥ ३१७ ॥ रूक्षं पित्तकरं
भेदि कफ वातोदरा पहम् ॥ श्रानाह श्लिह गुल्मघ्नं हृमि
श्वासक्षया पहम् ॥ ३१८ ॥

भा० अनन्तर पीपलामूल के नाम और गुण कहने हैं ॥ ग्रन्थिक, पीपलामूल, ऊषणा चटकाशिर यह पीपलामूलके नाम हैं । पीपलामूल दीपन कटुवा उष्ण पाचन हलका होता है ॥ ३१७ ॥ रूखा पित्तको करनेवाला भेदन करनेवाला कफ वान उदर रोग इनका नाशक ॥ श्रानाह श्लिह वायुगोला इनका नाशक तथा हृमि श्वास क्षय इनका नाशक है ॥ ३१८ ॥

अथ चतुरूपरास्य लक्षणा गुणाः।] त्र्यूषणां सकरा
मूलं कथितं चतुरूपराम् ॥ व्योषस्यैव गुणाः प्रोक्ता
अधिवाश्चतुरूपरोगोः ॥ [चव्यगुणाः] भवेच्चव्यनु च

दिका कथिता सा नथोपरा ॥ करणमूलगुणचव्य
विशेषान् गुदजापहम् ॥ ३२० ॥

[अथगजपिपल्या नामानि गुणाः ।] चविकायाः फः
गजः ल प्राज्ञैः कथिता पिपली ॥ कपिवल्ली कीलवल्ली
श्रेयसी च शिरश्च सा ॥ ३२१ ॥ गजरूपणा कटुर्वा
त स्लेष्महृद्बहिर्बहिनी ॥ उषणानिहन्यती सारं
श्वासकरांशामयकृमीन् ॥ ३२२ ॥

भा० अनन्तर चतुरूपण के लक्षण और गुण कहते हैं ॥ अ्युषण अर्थात् त्रिक
टु पीपला मूल के सहित चतुरूपण कहा गया है ॥ त्रिकटु कहीं अधिक
गुण चतुरूपण में कहे गये हैं ॥ ३२१ ॥ अनन्तर चाव्य के गुण कहते हैं ॥
चव्य, चरिक, नथा उपरा, कही गई है ॥ पीपल का गुण चव्य में है विशेष
करके बवासीर का नाशक होता है ॥ ३२२ ॥ अनन्तर गजपीपल के नाम
और गुण कहते हैं ॥ चाव के फलको बुद्धि वानों ने गज पीपल कहा है ॥
कपिवल्ली, कीलवल्ली, श्रेयसी, शिर ॥ ३२१ ॥ यह गज पीपल के नाम हैं ॥
गजपीपल कड़वी वात कफ को नाशक अग्नि को बढ़ाने वाली ॥ उष्ण है
और अनीमार श्वास कंठरोग हृमि इनको नाश करती है ॥ ३२२ ॥

[अथ चित्रकम्य नामानि गुणाश्च ।] चित्रकीऽनलं ना
मा च पीठी व्यालस्तथोपराः ॥ चित्रकः कटुकः
पाके वृद्धि कृत्वा चनो लघुः ॥ ३२३ ॥ रूक्षोपणा ग्र
हणी कुष्ठ शोथार्थः कृमिकासनुत् ॥ वातस्लेष्म
हने ग्राही वानार्थी स्लेष्मपित्तहत ॥ ३२४ ॥

भा० अनन्तर चित्रक के नाम और गुण कहते हैं ॥ चित्रक, अग्नि के नाम वा
ला, पीठव्याल, इपणा, ये चित्रक के नाम हैं ॥ चित्रक पाके में कटु वा अग्नि
ने कृमि नाशक और हलका होता है ॥ ३२३ ॥ कटु उष्ण है ग्रहणी ।

कोष्ठ सृजन बवासीर कृमि और कास इनका नाशक भी है ॥ चान कफका नाश
क ग्राही वायकी बवासीर को और कफ पित्त को नाश करता है ॥ ३२४ ॥

अथ पञ्चकोलस्य लक्षणा गुणाः । पिप्पली पिप्पली
मूलं चव्य चित्रक नागैः ॥ पञ्चभिः कोलमात्रं य
त्पञ्चकोलं तदुच्यते ॥ ३२५ ॥ पञ्चकोलं रसे पाके
कटुकं रुचिकृतं मतम् ॥ तीक्ष्णोष्णं पाचनं श्रेष्ठं
दीपनं कफवाननुत् ॥ ३२६ ॥ गुल्महीहोदराना
ह शूलघ्नं पित्तकोपनम् ॥

भा० अन्तर पंचकोलके लक्षण और गुण कहते हैं ॥ पीपल, पीपल
मूल, चाब, चित्रक, सोंठ ॥ इन पाँचोंके ८ भासेको पंचकोल कहते हैं
३२५ ॥ पंचकोल रसे और पाकमें कटुवा और रुचिकरने वाला है ॥ ती
खा उष्ण पाचन बद्धन अञ्छा दीपन और कफ वानके नाश करनेवाला
है ॥ ३२६ ॥ गुल्म वायु गोलापित्तही उदररोग अफारा और शूल इन
कानाशक पित्तकुपित्त करने वाला है ॥

अथ षड्घरास्य लक्षणा गुणाः । पञ्चकोलं स
मरिचं षड्घरा मुदा ह तम् ॥ पञ्चकोल गुणाम् न
त्र रूक्षमुष्णं विषापहम् ॥ ३२७ ॥

अथ यवान्या नामानि गुणाः । यवानिकोऽप्रगंधा
च ब्रह्मर्षाऽजमोदिका ॥ सैवोक्ता दीप्यका दीप्या
तथा स्याद्यवसा ह्वया ॥ ३२८ ॥ यवानी पाचनी
रुच्या तीक्ष्णोष्णा कटुका लघुः ॥ दीपनी च तथा
नित्ता पित्तला शुक शूलहृत् ॥ ३२९ ॥

भा० अनन्तर षडुषणके लक्षण और गुण कहते हैं ॥ और बोह पंचकोलके
समान गुणवाला है ॥ तथा रूखा ऊष्ण विषका नाशक भी है ॥ ३२७ ॥
अथ अजवायनके नाम और गुण कहते हैं ॥ यवानिका, उषण्धा, ब्रह्म
दर्भा, अजमोदिका, और बोही कही गई है दीपिका, दीप्या तथा यवसाह्य
येह अजवायनके नाम हैं ॥ ३२८ ॥ अजवायन पाचन करनेवाली रुचि
के हिन तीरवी उष्ण कड़वी हलकी ॥ अग्निको दीपन करनेवाली तथा तिरु
पित्तको करनेवाली शुक्र और शूलको नाशक होती है ॥ ३२९ ॥

वानश्लेष्मोदरा नाह गुल्म शीह कृमि प्रणत् ॥

अथाजमोदायाः नामानि गुणाश्च ।] अजमोदा खराश्वा
च मयूरो दीप्यकस्तथा ॥ तथा ब्रह्मकुशा प्रोक्ता कार्वी
ली च समस्तका ॥ ३३० ॥ अजमोदा कटुस्त्रीलाणा दीप
नी कफवान्नुत् ॥ उष्णा विदाहिनी हृद्या वृष्या च
लक्ष्मी लघुः ॥ ३३१ ॥ नेत्रामयकफच्छर्दि हिक्का
वस्ति रुजोहरेत् ॥

भा० वानकफ अफाह वायगोला सही कृमि इनकी नाशक भी है ॥ अनन्तर
अजमोदाके नाम और गुण कहते हैं ॥ अजमोदा, खराश्वा, मयूर, दीप्यक
॥ तथा ब्रह्मकुशा, कार्वी, समस्तका, यह अजमोदके नाम हैं ॥ ३३० ॥
अजमोद कड़वी तीरवी दीपन कफवानकी नाशक ॥ उष्ण विदाहको करने
वाली हृद्य वृष्य बल करनेवाली और हलकी होती है ॥ ३३१ ॥ नेत्र रोगकफ
को चमन हिचकी पेहकी पीड़ा इनको दूर करती है ॥

अथ खरासानी यवानी गुणाः ।] पारसीक यवानी तु
यवानी सहशी गुणैः ॥ विशेषान् पाचनी रुच्या या
हिरणी मादिनी गुरुः ॥ ३३२ ॥ अथ सुक्तजीरा कृष्य
जीरा कलौंजी एषां नामानि गुणाश्च ।]

जीरको जरगो जाजी कणास्या दीर्घ जीरकः ॥ कृष्णाजी
 रः सुगन्धश्च तथैवोद्धार शोधनः ॥ ३३३ ॥ कालाजी
 जी तु सुषवी कालिका चोपकालिका ॥ पृथ्वीका कार
 वो पृथ्वी पृथु कृष्णाप कुञ्चिका ॥ ३३४ ॥ उपकुञ्ची च
 कुञ्ची च वहजीरक इत्यपि ॥ जीरक वितथं रुहांकद्
 षां दीपनं लघु ॥ ३३५ ॥ संग्राही पित्तलं मेध्यं गर्भा
 शय विशुद्धिकृत ॥ ज्वरं पाचनं हृद्यं बल्यं रुच्यं
 कफापहम् ॥ ३३६ ॥ चक्षुष्यं पवनाध्मान गुल्म छ
 द्येति सार हन् ॥

भा० अनन्तर खुरासानी अजवायन के नाम और गुण कहने हैं । खुरासानी अ
 जवायन गुणो में अजवायन के सदृश होती है ॥ विशेष करके पाचन रचि को
 करने वाली ग्राहणी नशा करने वाली भारी होती है ॥ ३३२ ॥ अनन्तर सफेद
 जीर का काला जीर तथा कलौजी इनके नाम और गुण कहने हैं ॥ जीरक, जर
 ग, अजाजी, कणा, दीर्घ जीरक, यह सफेद जीरके नाम हैं ॥ कृष्ण जीरक, सु
 गन्ध तथा उद्धार शोधन ॥ ३३३ ॥ कालाजी, सुषवी, कालिका, उपकालिका
 पृथ्वीका कारवी पृथ्वी, पृथु, कृष्णा, उपकुञ्चिका, येह स्याह जीरके नाम हैं
 ॥ ३३४ ॥ उपकुञ्ची, कुञ्ची, वहजीरक, येह भी जीरके नाम हैं ॥ तीनों जीर रूखे
 कड़वे, उष्ण दीपन हलके ॥ ३३५ ॥ संग्राही पित्तको करने वाले शुद्धिको बढ़ाने
 वाले गर्भाशयकी शुद्धिको करने वाले हैं ॥ ज्वरके नाशक पाचो अटीको करने
 वाले बलको देने वाले रुचिको करने वाले और कफा के नाशक हैं ॥ ३३६ ॥
 नेत्रके हिन वायु पेटका फूलना वायुगोला दमन श्रतीसार इन्के नाशक हैं ॥

[अथ धान्यकस्य नामानि गुणाश्च ।

धान्यकं धानकं धान्यं धान्ना धानियकं तथा ॥ ह्रुन
 दीर्घे तुक्ता, छत्रा कुस्तुम्बुरु दिवुन्नकम् ॥ ३३७ ॥ धा
 न्यकं तुवरं स्निग्धमवृष्यं मूत्रलं लघु ॥ निक्तं, कटूष्ण

वीर्यञ्च दीपनं पाचनं स्मृतम् ॥ ३३८ ॥ ज्वरघ्नं रोचकं
 याही स्वादु पाकि विदोषं नुत् ॥ नृष्या दाह वमिप्रवा
 स कासकार्श्यं क्रिमिप्रणत् ॥ ३३९ ॥ आर्द्रन्तु तद्गुणं
 स्वादु विशेषान् पित्तनाशितत् ॥

भा० अनन्तर धनिये के नाम और गुण कहने हैं ॥ धान्यक, धानक, धान्य,
 धाना, धनियक, ॥ कुन्दी, धेसुका, छत्रा, कुसुम्बरु, विनुन्नक, येह धनिये
 के नाम हैं ॥ ३३७ ॥ धनिया कसेली विकनी पुरुषत्वको नाश करने वाली मूत्र
 को लाने वाली हलकी ॥ निककडवी उषण वीर्यवाली दीपन पाचन कर्ही गर्दे है
 ॥ ३३८ ॥ ज्वरकी नाशक रुचिकी करनेवाली दस्तको बन्द करनेवाली ॥ पाक में
 मधुर विदोषकी नाशक ॥ नृष्या दाह वमन काम श्वास दुर्बलता और रुमी दन्त
 की नाशक है ॥ ३३९ ॥ गीली उसीके समान गुणवाली मधुर विशेष करके पि
 त्तको नाश करने वाली होती है ॥

अथ सौफिसो श्रातयोर्नामानि

गुराश्च ॥ शतपुष्या शनाह्वा च मधुरा कारवी मिसिः ।

श्रतिलम्बी सितछत्रा संहिता छत्रिकापि च ॥ ३४० ॥

च्छत्रा शालेय शालीनी मिश्रेया मधुरा मिसिः ॥

शतपुष्या लघुस्त्रीक्ष्णा पित्तकृत् दीपनी कटुः ॥ ३४१ ॥

उष्या ज्वरानिल प्लेष्पं ब्रणशूलाक्षि रोगहृत् ॥

मिश्रेया तद्गुणा शंक्ता विशेषाद्योनि शूलनुत् ॥ ३४२ ॥

भा० अनन्तर सौफ और सौवा उनके नाम और गुण कहने हैं ॥ शतपु-
 ष्या, शताह्वा, मधुरा-कारवी, मिसि, ॥ श्रतिलम्बी, सितछत्रा, संहि
 ता, छत्रिका, यह सौफ के नाम हैं ॥ ३४० ॥ छत्रा, शालेय, शालीन, मि
 श्रेया, मधुरा, मिसि, यह सौवा के नाम हैं ॥ सौफ हलकी तीखी पित्तको
 करनेवाली दीपन कडवी है ॥ ३४१ ॥ उष्य ज्वर वात कफ क्षया शूल
 और नेत्ररोग इनकी नाशक है ॥ सौवा उसी समान गुणवाला कहा गया
 है विशेष करके योनि शूलका नाशक है ॥ ३४२ ॥

अग्निमान्द्य हरी हृद्या बद्ध विट्कृमि शुक्र हृत् ॥ रू-
क्षीष्णा पाचनीकास वमि श्लेष्मानिलान् हरेत् ॥ ३४३ ॥

[अथमेथी वनमेथी नामगुणाः।]

मेथिका मिथिति मेथि दीपनी बद्धपत्रिका ॥ बोधि-
नी बद्धबीजा च जाति गन्ध फला तथा ॥ ३४४ ॥

बल्लरीष्णा कामन्या मिश्रपुष्पा च कैरवी ॥ कुञ्चि-
का बद्धपर्णी च पित्तजित् वायुनुत् द्विधा ॥ ३४५ ॥

मेथिका वात शमनी श्लेष्मघ्नी ज्वरनाशिनी ॥ ततः
स्वल्पगुणाः बल्या वाजिनां सातु पूजिता ॥ ३४६ ॥

अथ चन्द्रशूरगुणाः।]

भा० अग्निमान्द्य को नाश करने वाली हृद्य कृद्धियत् कृमि शुक्र इनको नाश
करने वाली ॥ रूखी उष्ण पाचनकास वमन कफ नाश इनको नाश करती है
॥ ३४३ ॥ अनन्तर मेथी वनमेथी के नामगुणा कहते हैं ॥ मेथिक, मिथिनी, मे-
थी, दीपनी, बद्धपत्रिका ॥ बोधिनी, बद्धबीजा, जातिगन्ध, फला, ॥ ३४४ ॥
बिल्लरी, कामन्या, येह मेथी के नाम हैं। मिश्रपुष्पा, पैरवी, कुञ्चिका, बद्धपर्णी, पित्त-
जित्, वायुनुत्, येह दो प्रकार की वनमेथी होती हैं ॥ ३४५ ॥ मेथी
वात को शमन करने वाली कफ की नाशक और ज्वरको शूर करने वाली होती है
॥ उसे स्वल्प गुण वाली बलको देने वाली और घोड़ोंको बोह अच्छी होती है
॥ ३४६ ॥ अनन्तर चन्द्रशूर के नाम और गुणा कहते हैं ॥

चन्द्रिका चर्महन्त्री च पशुमेहनकारिका ॥ नन्दिनी
कारवी भद्रा वासपुष्पा सुवामरा ॥ ३४७ ॥ चन्द्रशूरं
हिनं हिक्का वात श्लेष्मानि सारिणाम् ॥ असृग्वात ग-
दद्वेषि बलपुष्टि विवर्द्धनम् ॥ ३४८ ॥

भा० चन्द्रिका चर्महन्त्री पशुमेहनकारिका ॥ नन्दिनी कारवी भद्रा वासपुष्पा

सुवासय, येह चन्द्र शूरके नाम हैं ॥ ३४३ ॥ चन्द्र शूर हिचकी वातकफ अनीसार
में हिन करता है ॥ रक्तवात रोगको दूर करनेवाला बलसुप्तिको बढ़ानेवाला ही
ना है ॥ ३४४ ॥ [अथ चारदाना ।]

मेथिका चन्द्र शूरश्च कालाजाजीयवानिका ॥ एतच्च
तुष्टयं युक्तं चतुर्वीजमिति स्मृतम् ॥ ३४६ ॥ तृचूरीं च
क्षितं नित्यं निहन्ति पवनामयम् ॥ अजीरीं शूलमाध्या
नं पार्श्वशूलं कटिव्यथाम् ॥ ३५० ॥

[अथ हिङ्गुः ।] सहस्रवेधिजतुकं वाङ्गीकं हिङ्गुं रामठम् ॥
हिङ्गुषां पाचनं रुच्यं तीक्ष्णं वातबलासहन् ॥ ३५१ ॥
शूल गुल्मोदरानाह कृमिघ्नः पित्तवर्धनः ॥

भा० अनन्तर चारदाना मेथी चन्द्रशूर स्याहजीर अर्जवायन ॥ यह चर्से मि
लकर चतुर बीज कहा गया है ॥ ३४६ ॥ उसके चूर्णको नित्य मक्षेण करनेसे
वातके रोग नाश होने हैं ॥ अर्ध अजीरी शूल पेटका फूलना पसलीका शूल
कमरकी पीड़ा इनको दूर करता है ॥ ३५० ॥ अनन्तर हींगके नाम और गु-
ण कहते हैं ॥ सहस्रवेधि, जतुक, वाङ्गीक, हिङ्गु, रामठ ॥ येह हींगके नाम
हैं ॥ हींग गरम पाचन रुचिको करनेवाला तीखा वातकफका नाशक है ॥
३५१ ॥ शूल गुल्म वायुगोला उदर रोग अफारा और कृमीदहनका नाशक ।
पित्तका बढ़ानेवाला है ॥ [अथ वचनामानि गुराणां च ।]

वचोय गन्धा षड् ग्रन्था गौलीमी शतपर्विका ॥ क्षुद्र
पत्री च मह्नल्या जदिलोग्राच लोमशा ॥ ३५२ ॥ वचो
यगन्धा कटुका तिक्तोष्णा वान्ति वन्दिहन् ॥ विबन्धा
ध्यानशूलघ्नी शकृन् मूत्रविशोधिनी ॥ ३५३ ॥ अप-
स्मारकफौन्माद् भूतजनन्व निलान् हरेत् ॥

भा० अनन्तर वचके नाम और गुण कहते हैं ॥ वच, उग्रगन्धा, घड़ुग्रन्था, गो
लीमि, शतपर्विका ॥ क्षुद्रपत्री, मंगल्या, जटिली, उग्रा, यह वचके नाम हैं ॥
३५२ ॥ वच कड़वी तिक्त उष्ण है ॥ और वमन अग्निको करनेवाली ॥ क्लृप्त
पेटका फूलना और शूल इनको नाश करनेवाली तथा मूल मूत्रको विशेषध
न करनेवाली है ॥ ३५३ ॥ [अथ खुरासानी वचा ।]

पारसीक वचा शुक्ला प्रोक्ता हैमवतीति सा ॥ हैमवत्युदि
ता तद्वद्वातं हन्ति विशेषतः ॥ ३५४ ॥

अथ महाभरी वचा ।] यस्या लोके कुलिञ्जन इति नामा
न्तरम् ॥ सुगन्धा प्युग्रगन्धा च विशेषतः कफको
सनुत् ॥ सुस्वरत्वकरी रुच्या हृत्कराठ मुखशोधिनी
॥ ३५५ ॥ अपरा सुगन्धा ।] स्थूलग्रन्थिः यस्या लो
के महाभरी इति नाम ॥

भा० अमरी, कफ, उन्माद, मूत्र, कृमी, खान इनको नाश करती है ॥
अनन्तर खुरासानी वचके नाम और गुण कहते हैं ॥ पारसीक वचा, शुक्ला, है
मवती, ॥ हैमवत्युदिता, यह खुरासानी वचके नाम है ॥ वह विशेषकर
के वातको नाश करती है ॥ ३५४ ॥ अनन्तर कुलिञ्जनके नाम और गुण क
हते हैं ॥ सुगन्धा और उग्रगन्धा यह दोनों विशेषकरके कफकासके नाशक
हैं ॥ और अच्छा स्वर तथा अच्छी त्वचा करनेवाली रुचिको करनेवाली हृत्
कराठ मुख इनके शोधन करनेवाली है ॥ ३५५ ॥ दूसरी सुगन्धा मोटीगांठ
की जिन्को लोकमें महाभरी कहते हैं ॥

स्थूलग्रन्थिः सुगन्धा स्यात् ततो हीनगुणा स्मृता ॥

अथ चोवचीनीनि लोके तु प्रसिद्धा तस्या गुणाः ॥

हीपान्तर वचा किञ्चिन्निक्त्रोषणा वहिदीप्ति कृत ॥

विद्वज्जामान शूलघ्नी शकन् मूत्र विशोधिनी ॥ ३५६ ॥

वातव्याधी नयन्सार सुन्मादं तनुवेदनाम् ॥ व्यपो
हति विशेषेण फिरङ्गं मयनाशिनी ॥ ३५७ ॥

अथ हौहवेर द्वयम् ।] तन्मध्ये प्रथमं फलं मत्स्य
सदृशं विस्वगन्धं द्वितीयं मध्वत्स्यफलसदृशं मत्स्य
गन्धं तयोर्नामानि गुणाश्च ॥

भा० मोदी गांठ की वच सुगंध होती है और उसे कमगुणवाली कही गई है ॥ अनन्तर चौबचीनी के नाम और गुण कहते हैं ॥ अन्य दीपकी वच कुच्छ निक्त और उष्ण होती है तथा आग्निको दीपन करने वाली है ॥ कृत्वा पेटका फूलना और शूल इनकी नाश करनेवाली और मल मूत्रको रोधन करनेवाली है ॥ ३५६ ॥ वानरोग घृणी उन्माद शरीरकी रीड़ा ॥ इनको नाश करती है ॥ और विशेष करके फिरंग रोग का नाश करने वाली है ॥ ३५७ ॥ अनन्तर दोनों हौवेर के नाम और गुण कहते हैं ॥ उसमें पहलेका फल मछलीके सदृश कचुमांसाके गंधवाला होता है ॥ दूसरे पीपलके फल सदृश मकलीके गंधसदृश होता है ॥

हवुषा पुष्यवस्ता च पराम्वत्स्य फला मता ॥ मत्स्य
गन्धा लीह हन्त्री विषघ्नी ध्वाक्षनाशिनी ॥ ३५८ ॥

हवुषा दीपनी निक्ता मृदूष्णा तु वरा गुरुः ॥ पित्तो
दर समीराशो ग्रहणी गुल्म शूलहन ॥ ३५९ ॥
पराम्वे तद्गुणा प्राक्ता रूप भेदी द्वयोरपि ॥

भा० हवुषा पुष्यवस्ता और दूसरा अम्बत्स्य फला कही गई है ॥ मत्स्य गन्धा, लीह हन्त्री, विषघ्नी, ध्वाक्षनाशिनी, ये हौवेर के नाम हैं ॥ ३५८ ॥ हौवेर दीपनी निक्ता मृदु उष्ण कसेली भारी होती है ॥ पित्तोदर वायुकी वचा सीर संग्रहणी वायुगोला और शूल इनकी नाशक है ॥ दूसरी भी इसी प्रकारकी गुणवाली कही गई है ॥ और दोनोंके लक्षणके भेदभी कहे गये हैं ॥ ३५९ ॥

[अथ वायुभृङ्ग इति लोके ।]

युंसि क्लीवि विडङ्गः स्यात् कृमिघ्ना जन्तुनाशनः ॥ न
 एडुलश्च तथा वेल्म ममोघा चित्रनराडुला ॥ ३६० ॥ वि
 डङ्गं कटु तीक्ष्णोष्णं रूक्षं हृन्धिकरं लघु ॥ शूलाध्मा
 नोदर श्लेष्म कृमिवात विबन्धनुत् ॥ ३६१ ॥

[अथ तुम्बुरु फलम् ।] तुम्बुरुः सौरभः सौरो वनजः सा
 नुजोऽन्धकः ॥ तुम्बुरु प्रथितं तिक्तं कटु पाकेऽपित्तक
 टु ॥ ३६२ ॥ रूक्षोष्णं दीपनं तीक्ष्णं रुच्यं लघु विदाहि च ।
 वात श्लेष्माक्षि कर्णोष्ठ शिरोरूक् गुरुता कृमीन् ॥
 ३६३ ॥ कुष्ठ शूलारुचिश्वास स्नीह कृच्छरिण नाशयेत् ॥

भा० अनन्तर बायविडंग को कहते हैं ॥ युस्मिङ्ग और नपुंसक लिंगमें बायविडंग
 होता है ॥ कृमिघ्न जन्तुनाशक । नराडुल वेल्म अमोघ चित्रनराडुल ॥ ३६० ॥
 ये बायविडंग के नाम हैं । बायविडंग कडवातीरवा उष्ण रूखा अग्निको करने
 वाला हलका । शूल आध्मान उदररोग कफ कृमिवात कृञ्ज इनका नाश करने
 वाला है ॥ ३६१ ॥ [अनन्तर तुम्बुरु फलके नाम कहते हैं ॥ तुम्बुरु सौर
 भ सौरवनज । सानुज अंधक । ये तुम्बुरु फलके नाम हैं ॥ तुम्बुरु तिक्त कहा
 गया है । और कटु तथा पाकमें भी कटु कहा है ॥ ३६२ ॥ रूखा उष्ण दीपन तीरवा
 रुचिको करनेवाला हलका विदाही ॥ वात कफ के रोग और नेत्र कर्ण शिर होंठ
 इनमें की पीड़ा और गुरुता कृमी ॥ ३६३ ॥ कुष्ठ शूल अरुचि प्रवास पित्तही तथा मू
 त्र कृच्छ्र इनको नाश करता है ॥

[अथ वंशलोचन नामगुणाः ।] स्याद्वंशरोचना वांशी तुगा
 क्षीरा तुगाशुभा ॥ न्वकक्षीरी वंशजा शुभ्रा वंशक्षीरी
 च वैणवी ॥ ३६४ ॥ वंशजा वृंहणी वृष्या बल्या स्वाही
 च शीतला ॥ नृषणा कास ज्वर श्वास क्षय पित्तास्र का
 मलाः ॥ ३६५ ॥ हरेत्कुष्ठं व्रणं पाण्डुं कपायं वात कृच्छ्रजित्

भा० अनन्तर वंशलोचन के नाम और गुण कहते हैं ॥ वंशरोचन वं श्री तुगादी
री० तुगा शुभा ॥ तुगादीरी० शुभा० वंशलोचनी० बैराची० येह वंशलोचन के नाम हैं
॥ ३६४ ॥ वंशलोचन शुक्रको बढ़ानेवाला पुष्ट मलको देनेवाला मधुर शीतल
तृण० कांस० ज्वर० श्वास० क्षय० रक्तपित्त० कामला० इनको नाश करनेवाला है ॥ ३६५
कुष्ठ० त्रण० पीडुरोग० और वातके मूत्ररुच्छकी कषाय को जीतता है ॥

[अथ समुद्र फेनः]

समुद्र फेनः फेनश्च डिग्दीरीऽब्धिकफ स्तथा ॥ समुद्र
फेन चक्षुष्यो लेखनः शीतलश्चसः ॥ ३६६ ॥ कषा-
यो विष पित्तघ्नः कर्णरुक्कफ हल्लघुः ॥

[अथाष्टक वर्गस्य लक्षणां गुणाः।] जीव कर्षभकौ मेदेका
कोल्यौ ऋद्धि वृद्धिके ॥ अष्टवर्गीऽष्टभिर्द्रव्यैः कथित
श्चरकादिभिः ॥ ३६७ ॥ अष्टवर्गो हिमः स्वादुः चंहणः
शुक्रलोगुरुः ॥ भग्न सन्धान् कृत्काम वलास वलव
र्त्तनः ॥ ३६८ ॥ वान पित्तास्त्रनृद दाह ज्वरमेह क्षयापहः ॥

भा० अनन्तर समुद्र फेन के नाम और गुण कहते हैं ॥ समुद्र फेन-फेन-डिग्दी
रीऽब्धिकफ । येह समुद्र फेन के नाम हैं ॥ समुद्र फेन नेत्रकी हित लेखन शीतल
होता है ॥ ३६६ ॥ और कसैला विष पित्तका नाशक और हलका होता है ॥

[अनन्तर अष्टवर्गकालक्षण और गुण कहते हैं]

जीवक जेषभक मेदा महामेदा कानोली वीरकाकोली । ऋद्धि वृद्धि । येह अ
ष्टवर्गके नाम हैं आठद्रव्योंसे चरकादि युनियों ने कहा है ॥ ३६७ ॥ अष्टवर्ग शीतल
मधुर धातुओंकी वृद्धि करनेवाला शुक्रको उत्पन्न करनेवाला भारी है ॥ वृद्धे दाहको
जोड़नेवाला कामदेवकफ और घन इनको बढ़ानेवाला है ३६८ ॥ वात पित्त
रक्त क्षयापह ज्वर प्रमेह क्षय इनका नाशक है ॥

[तन्व जीवकर्षभकयो रूत्यन्ति लक्षणां नामगुणाः]

जीवकर्षभकौ ज्ञेयौ हिमाद्रि शिखरोद्भवौ ॥ रसो न क-

न्द्वत् कन्दी निःसारौ सूक्ष्मपत्रकौ ॥ ३६६ ॥ जीवकः
 कूर्चकाकार ऋषभो वृषशृंगवत् ॥ जीवकोःमधुरः शृ
 ङ्गाङ्गः कूर्चशीर्षकः ॥ ३७० ॥ ऋषभो वृषभो धी
 रो विषाणी द्राक्ष इत्यपि ॥ जीवकर्षसकौ बल्यौ श्री
 तो शुक्रकफप्रदौ ॥ ३७२ ॥

भा० उमें जीवक, ऋषभक, इन दोनोंकी उत्पत्ति लक्षण नाम और गुण इनको
 कहने हैं ॥ जीवक, ऋषभक, ये दोनों हिमाचल पर्वत पर होते हैं ॥ लहसुन
 के कन्द सदृश कन्दवाले होते हैं ॥ और सार रहिन छोटे पत्तेवाले होते हैं ॥ ३६६
 ॥ कूर्चको आकार जीवक होता है । और ऋषभक बैल के शृंग के सदृश होता है
 ॥ जीवक, मधुर, शृंग, दृस्वांग, कूर्च, शीर्षक, येह जीवक के नाम हैं ॥ ३७० ॥
 ऋषभ, वृषभ, धीर, विषाणी, द्राक्ष, येह ऋषभक के नाम हैं ॥ जीवक, ऋ
 षभक, बलकी देने वाले श्रीन शुक्रकफको करनेवाले होने हैं ॥ ३७२ ॥

मधुरौ पित्तदाहाच्च कार्श्यवानक्षयापहौ ॥

[अथ मेदा महामेद योरुत्पत्ति लक्षण नाम गुणाः ।]

महामेदाभिधः कन्दो भोरङ्गदो प्रजायते ॥ महामेदा
 र्वनो मेदा स्यादित्युक्तं मुनीश्वरैः ॥ ३७२ ॥ शुक्लाद्रि
 कनिभः कन्दो लताजातः सुपाण्डुरः ॥ महामेदा
 भिदो ज्ञेयो मेदा लक्षणमुच्यते ॥ ३७३ ॥

भा० और मधुर पित्त दाह रक्त क्लेशता वान क्षय इनके नाशक हैं ॥ अनन्त
 र मेदा महामेदा इन दोनोंकी उत्पत्ति लक्षण नाम गुण कहने हैं ॥ महामेदा,
 नामक, कन्दभोरंगमें उत्पन्न होता है ॥ महामेदा और मेदा खानमें होती है ।
 सेता मुनीश्वरोंने कहा है ॥ ३७२ ॥ श्वेत और गीलासा कन्द लतामें होता है
 । और बहुन शुभ्रभी होता है । ऐसे कन्दकी महामेदा जानना चाहिये ॥
 और मेदाका लक्षण कहने हैं ॥ ३७३ ॥

शुक्लकन्दो नखच्छेद्यो मेदो धातु मिद स्रवेत् ॥ यः

स मेदेति विज्ञेयोजिज्ञासातत्यरेर्ज्जनेः ॥ ३७४ ॥

शल्पपर्णी मरिाच्छिद्रा मेदा मेदोभवा ध्वरा ॥ महा

मेदा वसुच्छिद्रा त्रिदन्ती देवता मरिाः ॥ ३७५ ॥

मेदायुगं गुरु स्वादु वृष्यं स्तन्य कफावहम् ॥ वृंह

रां शीतलं पित्त रक्त वातज्वर प्रणुत् ॥ ३७६ ॥

भवेः

श्लो० श्वेतकन्द नखसे छेदमें से जो धातु के सदृश जिसें श्राव होता है।
उसको मेदा कहते हैं। जानने की इच्छामें नन्यर ज्वे मनुष्य ॥ ३७४ ॥ शल्प
पर्णी मरिाच्छिद्रा मेदा मेदोभवा अध्वरा येह मेदाके नाम हैं ॥ महामेदा
वसु छिद्रा त्रिद न्ती देवता मरिा येह महामेदाके नाम है ॥ ३७५ ॥ दोनोंमेदा
भारी मधुर पुष्ट दूधकी उत्पन्न करनेवाले कफकी उत्पन्न करनेवाले वृंहण
शीतल पित्त रक्त वातज्वर इनके नाशक होते हैं ॥ ३७६ ॥

[अथ काकोली क्षीरकाकोल्यो रूपात्ति लक्षणानाम गुणाः।]

जायते क्षीरकाकोली महामेदोद्भव स्थले ॥ यत्र

स्यान् क्षीरकाकोली काकोली तत्र जायते ॥ ३७७ ॥

पीवरी सदृशाः कन्दः क्षीरं स्रवति गन्धवान् ॥ स

प्रोक्तः क्षीरकाकोली काकोली लिङ्ग मुच्यते ॥ ३७८ ॥

यथा स्यान् क्षीरकाकोली काकोल्यपि तथा भवेत् ॥

एषा किञ्चिद्भवेत् क्षाषा मेदोऽथ मुभयोरपि ॥ ३७९ ॥

भा० अनन्तर काकोली क्षीरकाकोली के उत्पत्ति लक्षणानाम गुणा कहते
हैं ॥ महामेदाके उत्पन्न होने की जगह में क्षीर काकोली उत्पन्न होती है ॥
और जहां पर क्षीर काकोली उत्पन्न होती है वहां पर काकोली भी उत्पन्न होती
है ॥ ३७७ ॥ स नावर के सदृश कन्द होता है और उसमे से मुग्धपुक्त दूध निक

लता है ॥ उसको क्षीर काकोली कहा है ॥ काकोली कालक्षरण कहने हैं ॥ ३०८ ॥
जैसे क्षीर काकोली होती है उसी प्रकार काकोली भी होती है । यह कुछेक काली
होती है दोनों में यही भेद है ॥ ३०९ ॥

काकोली वायसोली च वीरा कायस्थिका तथा ॥ साश्रु
क्ला क्षीर काकोली वयस्था क्षीर वल्लिका ॥ ३०० ॥
कथिता क्षीरिणी धारा क्षीर शुक्ला पयस्विनी ॥ काको
ली युगलं शीतं शुक्रलं मधुरं गुरु ॥ ३०१ ॥ वृहरां वा
न दाहास्र पित्त शोषज्वर पहम् ॥

भा० काकोली वायसोली वीरा कायस्थिका । यह काकोली के नाम हैं और
वो खेन होती है ॥ वयस्था क्षीर वल्लिका क्षीर काकोली ॥ ३०० ॥ क्षीरिणी धारा
क्षीर शुक्ला पयस्विनी यह क्षीर काकोली के नाम हैं ॥ दोनों काकोली शीतल
शुक्रको बढ़ाने वाली मधुर भारी होती है ॥ ३०१ ॥ धातुओं को बढ़ाने वाली वा
न दाह रक्तपित्त शोषज्वर इनकी नाश करने वाली है ॥

[अर्थाद्द्वि वृद्धौ रुत्यन्ति लक्षणा नाम गुणाः ।] ऋद्धि वृ-
द्धिश्च कन्दोद्भौ भवतः कौशां यामले ॥ शीतलोमान्वि-
तः कन्दो लताज्जातः सुरन्ध्रकः ॥ ३०२ ॥ सखव ऋद्धि
वृद्धिश्च भेद मप्येतयो ज्ञेवे ॥ स्थूल ग्रन्थि समा ऋद्धि
वीमा वर्त्त फलाच सा ॥ ३०३ ॥ वृद्धिस्तु दक्षिणा वर्त्त फला
प्रोक्ता महर्षिभिः ॥ ऋद्धिर्युग्मं सिद्धि लक्ष्या वृद्धे रप्याह
या इमे । ३०४ ॥ ऋद्धिर्मत्स्या विदोषघ्नी शुक्रला मधुरा गु-
रुः ॥ प्रारौ श्वर्य्य करी सूच्छी रक्त पित्त विनाशिनी । ३०५

भा० [अनन्तर ऋद्धि और वृद्धि इनकी उत्पत्ति लक्षणा नाम गुणा कहने हैं ।]
ऋद्धि और वृद्धि यह दो कन्द यामल देश में होते हैं । श्वेन लोमकारके युक्त फल ॥ ३०६

के सहित लनामें उत्पन्न होना है ॥ ३५२ ॥ उसीको ऋद्धि और वृद्धि कहते हैं ॥ उनके भेदोंको भी कहना है ॥ मेघर की गाँठके समान वामावर्त फलवाली चर ऋद्धिहोती है ॥ ३५३ ॥ महर्षियों ने दक्षिणावर्त फलवाली वृद्धि कही है ॥ दोनों ऋद्धि, सिद्धि, लक्ष्मी, यह नाम । ऋद्धि भी है ॥ ३५४ ॥ ऋद्धि विद्वेषकी नाशक शुक्रको उत्पन्न करनेवाली । मधुर भारी होनी है । और प्राण ऐश्वर्य इनको करनेवाली तथा मूर्च्छा रक्त पित्त इनको नाशक है ॥ ३५५ ॥

वृद्धि गर्भप्रदा शीता वृंहणी मधुरा स्मृता ॥ वृष्या पित्ता
स्वशामनी क्षतकास क्षया पहा ॥ ३५६ ॥ राज्ञामव्यष्ट
वर्गास्तु यतोऽयमतिदुर्लभः ॥ तस्मादस्य प्रतिनिधिर्गृ
ह्णीयात्तद्गुणं भिषक् ॥ ३५७ ॥

(मुख्यः सहशः प्रतिनिधिः) [गुणस्य प्रतिनिधिमाह ।]

मेदा जीवक काकोली ऋद्धि वृद्धेऽपि चासती ॥ वरी
विदार्यश्चगन्धा वाराहीश्चक्रमात् क्षिपेत् ॥ ३५८ ॥

भा० (क) मेदा महामेदास्थाने शतावरी मूलम् जीवकपर्पभक
स्थाने विदारीमूलम् ॥ काकोली क्षीर काकोलीस्थाने
अश्वगन्धामूलम् । ऋद्धिवृद्धिस्थाने वाराहीकंदगुणैस्तनुष्य

भा० वृद्धि गर्भको करनेवाली शीतल पुष्ट मधुर कही गई है ॥ सुरूपत्व को बढ़ाने वा
लोरक्त पित्तकी नाशक क्षतकास तय इनकी नाशक है ॥ ३५६ ॥ जिस कारण यह
अष्टवर्ग राजाओंको भी अति दुर्लभ है ॥ जिस कारण इसकी प्रतिनिधि उसी गुणवाली
को वैद्य ग्रहण करे ॥ ३५७ ॥ इसके प्रतिनिधी को कहते हैं ॥ मेदा जीवक काकोली
ऋद्धि इनके नमिलनेमें शतावरी विदारीकन्द असगन्ध वाराहीकन्द इनको
मके साथ डालते ॥ ३५८ ॥ (क) मेदा महामेदाकी जगहमें शतावरीकी जड़ ॥
जीवक ऋषभक की जगहमें विदारकी जड़ । काकोली क्षीरकाकोलीकी जगहमें
असगन्धकी जड़ । ऋद्धिवृद्धिकी जगहमें वाराहीकन्दको डालते । यह गुणमें उन

के समान है ॥

[अथ जेठी मधु ।] यष्टी मधु तथा यष्टी मधुकं
 लीतकं तथा ॥ अन्यत् लीतनकन्तु भवेतोये मधूलि
 का ॥ ३८६ ॥ यष्टी हिमा गुरुः स्वाद्दी चक्षुष्या बलवर्णा
 क्तन् ॥ सुस्निग्धा शुक्रला केश्या स्वर्था पित्तानिलास्त्रि
 न् ॥ ३८७ ॥ ब्रगा शोथ विषच्छर्दिं तृषणा ग्लानि क्षया
 पहा ॥ [अथ कम्बीला ।] काम्पिल्लः कर्कशश्च
 न्द्रो रक्ताङ्गो रोचनो ऽपि च ॥ काम्पिल्लः कफ पित्तास्त्र
 कृमि गुल्मोदर व्रणान् ॥ ३८९ ॥ हन्ति रेची कटूष्णश्च
 मेहानाह विषाश्मनुत् ॥

भा० अनन्तर मुलहठी को कहते हैं ॥ यष्टी, मधुक, लीतक ॥ और दूसरा लीत
 नक, जलमं होता है उसको मधूलिका कहते हैं ॥ ३८६ ॥ मुलहठी शीतल भारी म
 धुर नेत्रोंको हिन करने वाली और बल वर्णको करने वाली होती है ॥ अच्छे वि
 ग्ध शुक्रको करने वाली केशके हिन सरके हिन पित्त वानरक्त इनको जीनने वाली हो
 ती है ॥ ३८७ ॥ ज्ञस्रम सूजन विष धमन तृपा ग्लानी क्षय इनकी भी नाशक होती
 है ॥ अनन्तर कम्बीला के नाम और गुण कहते हैं । काम्पिल्ल कर्कश चन्द्र
 रक्तांग रोचन यह सूवकला के नाम हैं ॥ सूवकला कफ रक्त पित्त कृमी वायुगोल
 उदर रोग ज्ञस्रम इनको नाश करती है ॥ ३८९ ॥ दस्तावर कड़वी गरम होती है । और
 प्रमेह अफारा विष पथरी इनकी नाशक है ॥

[अथ धन वहेरा ।]

आरग्वधो राजरक्षः शम्याकश्च तुरङ्गुलः ॥ आरवे-
 नो व्याधिघानः कृतमालः सुवर्णकः ॥ ३९२ ॥ कर्ण
 कारो दीर्घफलः स्वर्णाङ्गुः स्वर्ण भूषणः ॥ आरग्वधो
 गुरुः स्वादुः शीतलः स्रंसनो मृदुः ॥ ३९३ ॥ ज्वर हृद्रोग

पित्तास्र वातोदावर्तं शूलनुत् ॥ तत्फलं स्वसनं रु
 च्यं कुष्ठपित्तकफापहम् ॥ ३६४ ॥ ज्वरेतु सततं प
 थ्यं कोष्ठशुद्धि करं परम् ॥ [अथ कटुकी ।]
 कटी तु कटुका तिक्ता कृष्णाभेदा कटुम्भरा ॥ अशो
 का मत्स्य शकला चक्राङ्गी शकुलादनी ॥ मत्स्यपि
 ता काराडरुहा रोहिणी कटु रोहिणी ॥ कट्वी तु
 कटुका पाके तिक्ता रूक्षा हिमालयः ॥ ३६६ ॥
 भेदिनी दीपनी हृद्या कफपित्तज्वरापहा ॥ प्रमे
 ह श्वासकासास्र दाह कुष्ठ कृमि प्रणुत् ॥ ३६७ ॥

भा० अनन्तर अमलतासके नाम और गुण कहने हैं ॥ आरग्वध राज
 रक्ष शंपाक चतुरंगुल ॥ आरवेत् व्याधिघान कृतमाल सुवर्णक ॥
 ३६२ ॥ कर्णिकार दीर्घफल सुवर्णीग वर्णभूषण । यह अमलतासके
 नाम हैं ॥ अमलतास भारी मधुर शीतल दस्तावर मुलायम ॥ ३६३ ॥
 होता है । ज्वर हृद्योग रक्तपित्त वातको उदावर्त शूल इनका नाशक होता है
 ॥ इसका फल दस्तावर रुचिको करने वाला कुष्ठ पित्त कफ इनका नाश
 क होता है ॥ ३६४ ॥ ज्वर में सदा पथ्य होता है । और अन्यन्त कोष्ठकी शु
 द्ध करता है ॥ अनन्तर कुट्टकी के नाम और गुण कहने हैं । कटी, कटु
 का तिक्ता कृष्ण भेदा कटुम्भरा ॥ अशोका मत्स्य शकला चक्राङ्गी, शकुला
 दनी ॥ ३६५ ॥ मत्स्यपित्ता, काराडरुहा, रोहिणी, ये कटुकी के नाम हैं ॥ कटुकी
 कट्वी और पाके तिक्त रूखी पीतल हलकी ॥ ३६६ ॥ भेदन करने वाली दी
 पन हृद्य कफ पित्त ज्वरकी नाशक ॥ प्रमेह श्वासकासर रक्त पित्त दाह कुष्ठ कृ
 मि इनकी नाशक है ॥ ३६७ ॥

[अथ चिराहता ।] किरात तिक्तः कैरातः कटु तिक्तः कि
 रातकः ॥ काराड तिक्तो नार्य्य तिक्तो भूनिम्बो रामसेनकः
 ॥ ३६८ ॥

किरातकोऽन्यो नैपालः सोऽद्वितिको ज्वरान्तकः ॥ कि
 रानः सारको रूक्षः शीतल स्तिकको लघुः ॥ ३६६ ॥
 सन्निपात ज्वरश्वास कफ पित्तास्रदाहनुन् ॥ कास शो
 थ तृषा कुष्ठ ज्वर व्रण कृमि प्रणुत् ॥ ४०० ॥

भा० अनन्तर विरायतेके नाम और गुण कहते हैं ॥ किरान, तिक, कैरान, कटु
 तिक, किरानक, ॥ काण्ड तिक नारी तिक भूमिम्ब रामसेनक ॥ ३६६ ॥ दूसरा वि
 रायता नेपाली बोह कुछ कडवा होना है ज्वरान्तक यह विरायतेके नाम हैं ॥ विरा
 यता सारक रूक्ष शीतल तिक लघु होता है ॥ ३६६ ॥ और सन्निपात ज्वर श्वास
 कफ पित्त दाह इनका नाशक होता है ॥ कास सूजन तृषा कुष्ठ ज्वर व्रण कृमी इन
 का नाशक है ॥ ४०० ॥ [अथ इन्द्रयवः ।]

उक्तं कुटजबीजन्तु यव मिन्द्रयवं तथा ॥ कालिङ्गञ्चापि
 कालिङ्गं तथा भद्रयवा अपि ॥ ४०१ ॥

[इति धन्वन्तरिः प्राह अमरे प्राह ।]

कचिदिन्द्रस्य नामैव भवेत्तद भिधायकम् ॥ फलानीन्द्र
 यवास्तस्य तथा भद्रयवा अपि ॥ ४०२ ॥ इन्द्रयवं त्रिदोष
 घ्नं संग्राहि कटु शीतलम् ॥ ज्वरान्तीसार रक्तार्शः वमि
 वीसर्प कष्टनुन् ॥ ४०३ ॥ दीपनं गुद कीलास्र वातास्र
 श्लेष्म शूलजित् ॥

भा० अनन्तर इन्द्रयवके नाम और गुण कहते हैं ॥ कुटजबीज यव इन्द्रयव ।
 कालिङ्ग कालिङ्ग भद्रयव यह इन्द्रयवके नाम हैं ॥ ४०१ ॥ -
 इस प्रकार धन्वन्तरिने कहा है और अमर में कहा है तथा इन्द्रके नाम पर उसके ना
 म कहे गये हैं ॥ इन्द्रयव त्रिदोषनाशक संग्राही कटु शीतल ॥ होता है और ज्वर
 अतीसार तूनी गवासीर वमन विसर्प कुष्ठ इनका नाशक भी है ॥ ४०२ ॥ दीपन

गुदकील रक्तवात कफ शूल इनको जीतनेवाला है ॥

[मयन फलम्] मदनं मृदुर्दनः पिण्डीनटः पिण्डीतक

स्तथा ॥ करहाटो मरुवकः शल्यको विषपुष्यकः ॥ ४०४ ॥

मदनो मधुरस्तिक्ता वीर्यीषो लेखनी स्रुषुः ॥ वान्ति ह

ह विद्रधिहरः प्रतिश्याय अरणान्तकः ॥ ४०५ ॥ रुक्षः

कुष्ठ कफानाह शोथ गुल्मव्रणापहः ॥

अथ रासना ।] रास्ना युक्तरसा रस्या सुवहारसना रसा ॥

रलापर्णी च सुरस्ता सुगन्धा श्रेयसी तथा ॥ ४०६ ॥ रा

स्नामपाचिनी तिक्ता गुरुषणा कफवानजित् ॥ शोथ

श्वाससमीरास्र वातशूलोदरापहा ॥ ४०७ ॥ कास

ज्वर विषाशीति वातिकामय हिध्महत् ॥

भा० अनन्तर भैरवफलके नाम और गुण कहते हैं ॥ मदनं मृदुर्दनं पिण्डीनटं

पिण्डीतकं ॥ करहाटं मरुवकं शल्यकं विषपुष्यकं । येह भैरवफलके नाम हैं

॥ ४०४ ॥ भैरवफल मधुर तिक्त वीर्यमें उष्ण लेखनी हलका होता है ॥ और वमन

को करनेवाला विद्रुधिका नाशक तथा जुकाम और ज्वरम का भी नाशक होता

है ॥ ४०५ ॥ रुक्षं कुष्ठं कफ अकार गुल्म शोथ व्रण इनका भी नाशक है ॥

अनन्तर रास्नाके नाम और गुण कहते हैं ॥ रास्ना युक्तरसा रस्या सुवहा रसना

रसा ॥ रलापर्णी सुरस्ता सुगन्धा श्रेयसी ॥ ४०६ ॥ यह रास्नाके नाम हैं ॥

रास्ना आमपाचन करनेवाली तिक्त भारी उष्ण कफवानको जीतनेवाली । शो

थ श्वास वात रक्त वात शूल उदररोग इनके नाश करनेवाली है ॥ ४०७ ॥ और

कामज्वर मिष अस्तीवान के रोग हिध्म इनको नाश करनेवाली है ॥ २भी

अथ रास्नाभिदनाइ इतिलेके ॥ नाकुली सरसा नाग सुग

न्धा गन्धनाकुली ॥ नकुलेष्टा भुजङ्गक्षी सर्पाङ्गी विष

नाशिनी ॥ ४०८ ॥ नाकुली तुवरा तिक्ता कटुकोष्णा विना
 शयेन ॥ भोगीलूना च्छ्विकाखु विषज्वर क्षमि व्रणान्
 ॥ ४०८ ॥ [अथ माचिका ।] (पश्चिमदेश मोड़ आ इ
 नि लोके प्रसिद्धो वृक्ष विशेषः ।)

माचिका प्रस्थिकाम्बुष्ठा तथा वा म्बालिकाम्बिका ॥
 मयूर विदला केशी सहस्रा बालमूलिका ॥ ४१० ॥
 माचिकाम्बुष्ठा रसे पाके कषाया शीतला लघुः ॥ पक्का
 तीसार पित्तास्र कफ कण्ठा भया पहा ॥ ४११ ॥

भा० अनन्तर रास्त्रा का भेद जिसको लोकमें नाई कहने है ॥ नाकुली सरसा
 नामसुगंधा गंधनाकुली ॥ नकुलेष्टा भुजंगाक्षी सर्पाक्षी विषनाशनी, येइ
 नाकुली के नाम हैं ॥ ४०८ ॥ नाकुली कसैली तिक्त कटु उष्ण होती है ॥
 और सर्प विच्छू मकड़ी मूसा इनके विषको और ज्वर क्षमि व्रणा इनको नाश क
 रती है ॥ ४०८ ॥ अनन्तर किमाच के नाम और गुण कहते हैं ॥ पश्चिम देश में
 मोड़ आ इस प्रकार लोकमें प्रसिद्ध वृक्ष विशेष है ॥ माचिका अस्थिका अम्ब
 ष्टा अम्बलिका ॥ मयूर विदला केशी सहस्रा बालमूलिका येह किमाचके
 नाम हैं ॥ ४१० ॥ किमाच रसमें अम्ल पाकमें कषैला शीतल हलका होता है
 ॥ पक्का तीसार रक्तपित्त कफ कण्ठरोग इनको नाश करने वाला है ॥ ४११ ॥

[अथ तेजवती ।] तेजवत्कल इति च । तेजस्विनी तेज
 वती तेजा ह्वा तेजनी तथा ॥ तेजस्विनी कफ एवास
 कासास्थामय वातहन् ॥ ४१२ ॥ पाचन्त्युष्णा कटुस्ति
 क्ता रुचि वन्धि प्रदीपिनी ॥

भा० अनन्तर तेजवती के नाम और गुण कहते हैं ॥ तेजस्विनी तेजवती
 तेजा ह्वा तेजनी येह तेजवती के नाम हैं ॥ तेजवती कफ एवास कास शूल
 रोग इनको नाश करती है ॥ ४१२ ॥ पाचन उष्ण कड़वी तिक्त रुचिकी
 वन्धीको दीपन करने वाली है ॥

[अथ अभिजिनी मालकाङ्गनी इति वा ।]

ज्योतिष्मती स्यात् कटभी ज्योतिष्का कङ्गनीति च ॥

पारवत पदी परया लता प्रोक्ता ककुन्दनी ॥ ४१३ ॥

ज्योतिष्मती कटुस्त्रिक्ता सरा कफ समीर जित् ॥

भा० अनन्तर मालकङ्गनी के नाम और गुण कहते हैं ॥ ज्योतिष्मती कटु भी ज्योतिष्का कङ्गनी ॥ पारवत, पदी, परया । येह मालकङ्गनी के नाम हैं ॥ उसकी लता को ककुन्दनी कहते हैं ॥ ४१३ ॥ मालकङ्गनी कटुवी निरक्त सर कफ वातको जीतने वाली है ॥

अत्युष्णा वामनी नीक्षणा वह्नि बुद्धि स्मृति प्रदा ॥ ४१४ ॥

अथ कूटः ।] कुष्ठ रोगा ह्वयम्बाप्यं पारिभव्यन्तथोत्पलम् ॥

कुष्ठ मुष्णाङ्गु स्वादु सुक्रलन्तिककं लघु ॥ ४१५ ॥

हन्ति वातास्रवी सप्य कास कुष्ठ सरुत्कफान् ॥

अथ कुष्ठभेद पुष्कर मूलम् ।] उक्तं पुष्कर मूलन्तु पौष्करं

रं पुष्करञ्च तत् ॥ पद्मपत्रञ्च काशमीरं कुष्ठ भेद

मिमंजयुः ॥ ४१६ ॥ पौष्करं कटु कन्तिकं मुक्तं वात

कफ ज्वरान् ॥ हन्ति शोथारुचि श्वासान्विशोषात्या

श्वं मूलानु ॥ ४१७ ॥

भा० बहुत गरम वमन कराने वाली नीरवी और अग्नि बुद्धि स्मृति इनको देने वाली है ॥ ४१४ ॥ अनन्तर कूट के नाम और गुण कहते हैं ।] कुष्ठ रोगा ह्वयवाप्य पारिभव्य उत्पल येह कूट के नाम हैं ॥ कूट गरम कडवा मधुर सुक्र को बढ़ाने वाली निरक्त और हलका होता है ॥ ४१५ ॥ नद्यावात रक्त येद सब कास कुष्ठ वात कफ इनको नाश करता है ॥

अनन्तर कूटको भेद उस्तागुरा और नाम कहते हैं ॥ पुष्करमूल पौष्कर पुष्कर । पद्मपत्र काशमीर येह कुष्ठ के नाम कहे हैं ॥ इसकी कूरका भेद कहे हैं

॥ ४१६ ॥ पुष्करमूल कडवा तिक्त कहा है और वानकफ ज्वरको । नाश करता है ॥
तथा शोथ अरुचि श्वास विशेष करके पार्श्व मूलको नाश करता है ॥ ४१७ ॥

अथ चोक ।] कटुपर्णी हेमवती हेमक्षीरी हिमावती ॥ हेमा
ह्वा पीतदुग्धा च तन्मूलञ्चोक मुच्यते ॥ ४१८ ॥ हेमाह्वा
रेचनी तिक्ता भेदिन्युत् क्लेषा कारिणी ॥ कृमिकराड् वि
धानाह कफ पित्तास्रकुष्ठवुन् ॥ ४१९ ॥

अथ काकरा शृङ्गी ।] शृङ्गी कर्कट शृङ्गी च स्यात् कुलीर
विषाणिका ॥ अज शृङ्गी च वज्रा च कर्कटारव्या च की
र्तिता ॥ ४२० ॥ शृङ्गी कषाया तिक्तोष्णा कफघ्न क्षय
ज्वरान् ॥ श्वासोऽर्द्धे वानतृकास हित्कारुचि वमीन् हरेत् ॥ २१ ॥

भा० अनन्तर चोकके नाम और गुण कहने हैं ॥ कटुपर्णी हेमवती हेमक्षीरी हिमा
वती हेमाह्वा पीतदुग्धा येह चोदतृक्षके नाम हैं ॥ और उसके मूलको चोक कहने हैं
॥ ४१८ ॥ चोकदस्तावर तिक्त भेदन करने वाली और मतलीको करने वाली होती है
॥ तथा कृमि रज्जुली विष अफारा कफ मूल रुच्छररूपित कुष्ठ इनकी भी नाशक
है ॥ ४१९ ॥ अनन्तर काकडासोंगीके नाम और गुण कहने हैं ॥ शृङ्गी कर्कट शृङ्गी
कुलीर विषाणिका ॥ अज शृङ्गी वज्रा कर्कटारव्या येह काकडासोंगीके नाम हैं ॥
४२० ॥ काकडासोंगी कसेली तिक्त कफघ्न क्षय ज्वरोंको ॥ और श्वास उर्ध्वान्त
त्प्राकास हृचकी अरुचि वमन इनको दूर करती है ॥ ४२१ ॥

अथ कायफरस्य नाम गुणाः ॥] कटुफलः सोमवस्तुश्च
कैट्यः कुम्भिकाऽपिच ॥ श्रीपरीका कुमुदिका भ
द्रा भद्रवतीति च ॥ ४२२ ॥ कटुफल सुवरस्तिक्तः कटु
घ्नान्त कफज्वरान् ॥ हन्ति श्वास प्रमेहार्शः कासकराण
मयारुचीः ॥ ४२३ ॥ [अथ भार्गीवभनेटी इति च ।]

भा० अनन्तर कायफल के नाम और गुण कहते हैं ॥ कटुफल सोमघल्क के
 टर्य कुम्भिका ॥ श्रीपर्णीक कुमुदिका भद्रा भद्रवती । यह काय फल के नाम हैं ॥
 ॥ ४२२ ॥ कायफल कसैला निक्त कडुबा होता है । और वान कफ ज्वरोंकी नाश
 करता है ॥ तथा श्वास प्रमेह बवासीर कास कंठके रोग अरुचि इनकोभी नाश क
 रता है ॥ ४२३ ॥ अनन्तर भारंगी के नाम और गुण कहते हैं ॥

भारङ्गी भृगुभवा पद्मा फञ्जी ब्राह्मणायष्टिका ॥ भारंगी
 रूक्षा कटुस्तिक्ता रुच्योष्णा पाचनी लघुः ॥ ४२४ ॥ दीप
 नी तुवरा गुल्म रक्तजन्नाशयेद् ध्रुवम् ॥ शोथकास क
 फ श्वास पीनसज्वर मारुतान् ॥ ४२५ ॥

अथ पाषाणभेदः ।] पाषाणभेद कोऽश्मघ्नी गिरिभिद्धि
 न्नयाजनी ॥ अश्मभेदो हिमस्तिक्तः कषायो वस्ति शो
 धनः ॥ ४२६ ॥ भेदनो हन्ति दोषार्शोगुल्म कृच्छ्राश्म हृद्बु
 जः ॥ योनिरोगान् प्रमेहांश्च स्त्रीह मूलव्रणानि च ॥ ४२७ ॥

भा० भारंगी भृगुभवा पद्मा फञ्जी ब्राह्मणायष्टिका ॥ यह भारंगी के नाम हैं ॥
 भारंगी रूखी कडुवी निक्त रुचिकी करनेवाली उष्ण पाचन हलकी होती है ॥ ४२४ ॥
 और दीपन कसैली होती है ॥ तथा रक्तका वायुगोला इसके निश्चय नाश करती है
 ॥ और शोथकास कफ श्वास पीनसज्वर वायु इनकोभी नाश करती है ॥ ४२५ ॥
 अनन्तर पाषाण भेदके नाम और गुण कहते हैं ॥ पाषाण भेदक अश्मघ्नी गि
 रभित भिन्नयाजनी । यह पाषाण भेदके नाम हैं ॥ पाषाणभेद पीनल निक्त क
 सैला वस्तिपोधन होता है ॥ ४२६ ॥ और भेदन है । तथा दोष बवासीर गुल्म
 मूलकृच्छ्र पथरी हृदयकी पीड़ा ॥ योनिरोग प्रमेहमेंतही मूल व्रण इनको भी
 नाश करता है ॥ ४२७ ॥

अथ धावर्द्ध ।] धातकी धानुपुष्पी च नाम्नपुष्पी च कुञ्ज
 रा ॥ सुभिन्ना वङ्गपुष्पी च चन्दिज्वाला च सास्मृता ॥ ४२८ ॥

धातकी कट्टका पीता मृदु क्तुवरा लघुः ॥ तृष्णाती
 सार पितास्र विष कृमि विसर्पजित् ॥ ४२६ ॥
 अथ मञ्जिष्ठा ॥ मञ्जिष्ठा विकसा जिङ्गी समङ्ग कालमे-
 षिका ॥ मण्डूकपर्णी भण्डीरी भण्डी योजन वल्ल्यपि ॥
 ॥ ४३० ॥ रसायन्यरुणा काला रक्ताङ्गी रक्तयष्टिका ॥
 भण्डीतकी च गण्डीरी मञ्जूषा वस्त्ररञ्जिनी ॥ ४३१ ॥
 मञ्जिष्ठा मधुरा तिक्ता कषाया स्वर वर्णकृत् ॥ गुरु
 रुषणा विष प्रलेष्म प्रोथयो न्यक्षिकरी रुक् ॥ ४३२ ॥
 रक्तातीसार कुष्ठास्र वीसर्प्यं व्रणमेहनुत् ॥

भा० अनन्तर धवके नाम और गुण कहने हैं ॥ धातकी धातुषुष्पी ताम्रषुष्पी कुं-
 जरा ॥ सुमिक्षा बह्वुष्पी वह्निज्वाला । यह धवके नाम कहे गये हैं ॥ ४२७ ॥ धव
 कडुवी शीतल सुलायम करने वाली । कर्षली और हलकी होती है ॥ तथा तृष्णा अ-
 तीसार रक्तपित्त विष कृमि विसर्प । इनको जीतने वाली है ॥ ४२६ ॥
 अनन्तर मञ्जीठके नाम और गुण कहने हैं ॥ मञ्जिष्ठ विकसा जिङ्गी समङ्ग काल
 मेषिका ॥ मंडूकपर्णी भण्डीरी भण्डी योजन वल्ली ॥ ४३० ॥ रसायनी अरुणा का
 ला रक्ताङ्गी रक्तयष्टिका ॥ भण्डीतकी गण्डीरी मञ्जूषा वस्त्र रञ्जनी । यह मञ्जीठके
 नाम हैं ॥ ४३१ ॥ मञ्जीठ मधुर तिक्त कसैली होती है ॥ और स्वर वर्णको करने वा-
 ली । तथा भारी उष्ण होती है और विष कफ प्रोथयोनि पीडा नेत्र पीडा करी पी-
 डा ॥ ४३२ ॥ रक्तातीसार कुष्ठ रक्तपित्त विसर्प व्रण प्रमेह । इनको नाश करने वा-
 ली है ॥

[अथ कुसुम्भ ।]

स्यात् कुसुम्भम्वह्नि शिखं वस्त्रं रज्जक मित्यपि ॥ कु-
 सुमम्बातलं कृच्छ्रं रक्तपित्त कफापहम् ॥ ४३३ ॥
 अथ लाहरी । लाक्षापलं कपालक्री यावो वृक्षामयो जतुः ॥

लाक्षावर्या हिमा बल्या स्निग्धा चतुवरा लघुः ॥
 ॥ ४३४ ॥ ब्राह्मण्यङ्गार वल्ली च स्वरशाका च हन्त्रिका ॥
 श्रुणुषा कफ पिताक्ष हिक्का कासज्वर प्रणत ॥
 ॥ ४३५ ॥ ब्रसोरः क्षत वीसर्प्य कृमि कुष्ठ गदापहा ॥
 अलक्तको गुणै स्त हृदि शेषाद् व्यङ्ग नाशनः ॥ ४३६ ॥

भा० अनन्तर कुसुंभ के नाम और गुण कहते हैं ॥ कुसुंभ बन्धि शिख
 , वखरंजक, यह कुसुंभ के नाम हैं ॥ कुसुंभ घातज है और मूत्र कच्छ
 रक्तपित्त कफ इनका भी नाशक है ॥ ४३३ ॥ ३

अनन्तर लाही के नाम और गुण कहते हैं ॥ लाक्षा, पलंकषा, लक
 या बटुक्षामय जतु । यह लाही के नाम हैं ॥ लाही वर्या को करनेवा
 ली शीतल बलको देनेवाली चिकनी कसेली और हलकी होती है ॥
 ४३४ ॥ ब्राह्मणी अंगार वल्ली स्वरशाका हन्त्रिका ॥ यह भारंगी के ना
 म हैं ॥ भारंगी शीतल कफ रक्तपित्त ज्वर कास ज्वर इनकी नाशक है ॥
 ४३५ ॥ और जखम उरक्षण विसर्प कृमि कुष्ठ इन रोगों की भी नाशक है ।
 लाही गुण करके इसीके समान है । लेकिन विशेष करके व्यङ्ग की नाशक
 है ॥ ४३६ ॥

[अथ हरिद्रा ।]

हरिद्रा काञ्चनी पीता निशाख्या वर चर्षिणी ॥ कृमि
 ह्ना हलदी योषित् प्रिया हृद् विलासिनी ॥ ४३७ ॥
 हरिद्रा कडुका तिक्ता रूक्षोष्णा कफपित्त मुत् ॥ व
 र्या त्वदोष मेहास्त्र शोथ पाण्डु झणापहा ॥ ४३८ ॥
 कर्पूर हरदि ।] दावी भेदास्त्रगन्धा च सुरभी दारु दारु च ।
 कर्पूरा पद्म पत्रा स्यात् सुरीमत् सुरतारका ॥ ४३९ ॥

भा० अनन्तर हरिद्रा के नाम और गुण कहते हैं ॥ हरिद्रा, काञ्चन, पीता
 निशाख्या, वर चर्षिणी, ॥ कृमिह्ना, हलदी, योषित् प्रिया, हृद्, विलासि

नी ॥ ४३७ ॥ यह हलदी के नाम हैं । हलदी कड़वी तिक्त रूक्ष उष्ण कफ पित्तकी नाशक होती है ॥ वर्ण को करने वाली त्वचा के दोष प्रमेह रक्त शोथ पांडुरोग और चुरा इनको नाशक है ॥ ४३८ ॥ कपूर हलदी के नाम और गुण कहने हैं ॥
 दाखी भेदा आम्रगंधा सुरभि दारु दारु ॥ कर्पूरा पद्मपत्रा सुरी मत्स्यरुकारिका ॥
 यह कपूर हलदी के नाम हैं ॥ ४३९ ॥

अथ वनहरदी ।] अरण्यहलदी कन्दः कुष्ठ वातास्त्र नाशनः।

आम्रगन्धि हरिद्रा या सा शीता वातला मता ॥ ४४० ॥

पित्तहन्मधुरा तिक्ता सर्वकण्डू विनाशिनी ॥

दारुहरिद्रा ।] दाखी दारु हरिद्रा च पर्जन्या पर्जनीति च ॥

कटंकटेरी पीता च भवेत्सैव पचम्पचा ॥ ४४१ ॥ सैव

कालीयकः प्रोक्तस्तथा कालेयकोऽपि च ॥ पीतद्रु

श्च हरिद्रुश्च पीतदारु कपीतकम् ॥ ४४२ ॥ दाखी नि

शागुरा किन्तु नेत्रकर्णीस्य रोगनुत् ॥

भा० अर्नन्तर वनहलदी के नाम और गुण कहने हैं ॥ अरण्यहलदी कन्द ये कुष्ठ वात रक्त को नाश करने वाली है ॥ और कपूर हलदी शीतल वर्ण को करने वाली कही गई है ॥ ४४० ॥ और पित्तको नाश करने वाली मधुर तिक्त सम्पूर्ण खुजलियों को नाश करने वाली है ॥ दारु हलदी के नाम और गुण कहने हैं ॥ दाखी दारुहरिद्रा पर्जन्या पर्जनी ॥ कटंकटेरी, पीता, पचंपचा ॥ ४४१ ॥ कालीयक कालेयक पीतद्रु हरिद्रा पीतदारु कपीतक यह दारु हरदी के नाम हैं ॥ ४४२ ॥ दारु हरदी हरदी के गुण के सदृश होती है । इनको विशेष करके नेत्र कर्णी मुख इनके रोगों को नाश करने वाली है ॥

[रसाञ्जनम् ।]

दाखी काथसमं क्षीरं पादम्यक्ता यथा घनम् ॥ तदा

रसाञ्जनारव्यन्तन् नेत्रयोः परमं हितम् ॥ ४४३ ॥ रस

ञ्जनन्तार्द्यं शैलं रसगर्भञ्च तार्द्यजम् ॥ रसाञ्जनद्रुः

दृ श्लेष्म विषनेत्र विकारनुत् ॥ ४४४ ॥ उषां रसायननि
 क्तं छेदनं त्रणदोषहनुं ॥ [अथ वकुची ।] अवलगुजी
 वाकुची स्यात् सोमराजी सुपरिरीका ॥ शशिलेखा हृषण
 फला सोमा पूत फलीति च ॥ ४४५ ॥ सोमवल्ली काल
 मेधी कुष्ठघ्नी च प्रकीर्तिता ॥ वाकुची मधुरा तिक्ता कटु
 पाका रसायनी ॥ ४४६ ॥ विष्टम्भहृद्धिमा रुच्या सरांशे
 ष्मास्र पित्तनुत् ॥ रूक्षा हृद्या श्वासकुष्ठ मेहज्वर कृमि
 प्राणुत् ॥ ४४७ ॥ तन् फलं पित्तलं कुष्ठ कफानिलहरं क
 टु ॥ केश्यन्वच्यं वमिश्वास कास शोथामपाण्डुनुत्
 ॥ ४४८ ॥ [अथ चक्रमर्हः ।]

हे ॥ ४४४ ॥ और उषा रसायन तिक्त छेदन त्रणदोष कानाशक है ॥
 अनन्तर वकुची के नाम और गुण कहते हैं ॥ अवलगुज वाकुची सोमराजी
 सुपरिरीका शशिलेखा हृषणफला सोमा पूतफली ॥ ४४५ ॥ सोमवल्ली का
 लमेधी कुष्ठघ्नी ये वकुची के नाम कहे हैं ॥ वकुची मधुर तिक्त पाकमें कटु
 रसायनी ॥ ४४६ ॥ विष्टम्भ को नाश करनेवाली शीतल रुचिको करनेवाली ।
 दस्तावर कफ और पित्तको नाश करनेवाली है ॥ रूक्ष हृदय के प्रिय श्वास
 कुष्ठ प्रमेहज्वर कृमि इनको नाश करनेवाली है ॥ ४४७ ॥ इसका फल पित्त
 को करनेवाला । कुष्ठ कफ वात इनका नाशक कडुवा ॥ कैमर्क हिन न्वाचके
 अच्छा करनेवाला वमन श्वास कास सूजन पाण्डुरोग इनका नाशक है ॥ ४४८

चक्रमर्हः प्रपुत्राटो दद्रुघ्नी मेघलोचनः ॥ पद्मारः स्या

देड गजश्चक्री पुत्राट इत्यपि ॥ ४४६ ॥ चक्रमर्दो लघुः
 स्वादु रूक्षः पित्तानिलापहः ॥ हृद्यो हिमः कफश्वास
 कुष्ठदद्रु कृमीन् हरेत् ॥ ४५० ॥ हन्युष्णान्त फलं कु
 ष्ट कण्डू दद्रु विषानिलान् ॥ गुल्मकास कृमिश्वास
 नाशनं कटुकं स्मृतम् ॥ ४५१ ॥ [अथ अतीसः।]
 विषा त्वतिविषा विश्वा शृङ्गी प्रतिविषारुणा ॥ शुक्ल
 कन्दा चोपविषा भङ्गुरा घुरावल्लभा ॥ ४५२ ॥ विषा सो
 षणा कटु स्निग्धा पाचनी दीपनी हरेत् ॥ कफ पित्तानि
 साराम विषकासवमि कृमीन् ॥ ४५३ ॥

भा० अनन्तर चकीड़ के नाम और गुरा कहने हैं ॥ चक्रमर्द प्रपुत्राट दद्रुघ्न
 मेपलोचन पत्राट । डगज चकीपुत्राट । यह चकीड़ के नाम हैं । ४४६ ॥
 चकोड़ हलका मधुर, रूखा पित्तवायुकानाशक ॥ हृदय का प्रिय शीतल
 कफ श्वास कुष्ठ दाद कृमी इनकी नाश करना है ॥ ४५० ॥ इसका फल बरु
 नगरम होता है और कुष्ठ कंडु दाद विष वान् ॥ वायुगोला कास कृमि श्वास
 इनका नाशक है । और कडुवा कहा गया है ॥ ४५१ ॥
 अनन्तर अतीस के नाम और गुरा कहने हैं ॥ विषान्वतिविषा विषवाशृङ्गी
 प्रतिविषा अरुणा ॥ शुक्ल कन्दा उपविषा भङ्गुरा घुरावल्लभा । यह अती
 सके नाम हैं ॥ ४५२ ॥ अतीस कुछ गरम कड़वी निक्त पाचन दीपन होती
 है ॥ और कफ पित्त अतिसार आम विष कास वमन कृमी इनकी नाश कर-
 ती है ॥ ४५३ ॥

अथ सावर लोधः पटिआ लोध इति लोके ।] लोघस्ति
 रीटक श्वैव शावरी मालवस्तथा ॥ द्वितीयः पटिका
 लोधः क्रामुकः स्थूल बल्कलः ॥ ४५४ ॥ जीर्ण पट्टो
 वृत्त्यत्रः पट्टी लाक्षा प्रसादनः ॥ लोघो ग्राही लघुः

शीत श्वेतप्यः कफपित्तनुत् ॥ ४५५ ॥ कषायो रक्त

पित्तात्तद्गृज्वरातीसार शोथहृत् ॥ [अथ लशुनः ।]

भा० लशुनस्तु रसोनः स्यादुग्रगन्धो महौषधम् ॥ अरिष्टो

श्लेच्छकन्दश्च यवनेष्टो रसोनकः ॥ ४५६ ॥

भा० अनन्तर लोध और पठानी लोधके नाम और गुण कहने हैं ॥ लोध किरीटक ग्रावर मालव । यह लोधके नाम हैं ॥ और दूसरी पहिका लोध हामिक स्पूल बल्कल ॥ ४५५ ॥ जीर्णपत्र दहन्यत्र पट्टी लाक्षा प्रसादन येह पठानी लोधके नाम हैं ॥ लोध ग्राही अल्प शीतल चतुकेहीन कफ पित्तकी नाशक है ॥ ४५५ ॥ और कसेली रक्त पित्त ज्वर अतीसार शोथ । इनकी नाशक है ॥ अनन्तर लहसुन के नाम और गुण कहने हैं ॥ लहसुन रसोन उग्रगंध महौषध ॥ अरिष्ट श्लेच्छकन्द यवनेष्ट रसोनक येह लहसुन के नाम हैं ॥ ४५६ ॥

तदा ततोऽप्यतद्विन्दुः सरसोनोऽभवद्भुवि ॥ यञ्च

भिश्च रसेयुक्तो रसेवान्धेन वर्जितः ॥ ४५७ ॥ तस्मा

द्रसोन इत्युक्तो द्रव्याणां गुणवेदिभिः ॥ कटुकश्चा

पिमूलेषु निरुक्तपत्रेषु संस्थितः ॥ ४५८ ॥ नाले कषा

य अद्विष्टो नालाये लवणः स्मृतः ॥ वीजैर्लु मधुरः

प्रोक्तो रसस्तद्गुण वेदिभिः ॥ ४५९ ॥ रसोनो वृंह-

णो वृष्यः स्निग्धोष्णः पाचनः सरः ॥ रसे पाके

च कटुक स्निग्धो मधुर की मतः ॥ ४६० ॥

भा० जब अस्ते वृद्धी पर वृन्द गिरी वो लहसुन जवा ॥ पांच रसों से युक्त और अम्ल रस से रहित होता है ॥ ४५७ ॥ इसवाले द्रव्यों के गुण कर नेवालों ने रसोन ऐसा कहा है ॥ मूल में कटुवा और पत्र में निरुक्त रहना है ॥ ४५८ ॥ नाल में कसेला और नालके अथभाग में ल

वरा ऐसा कहा गया है । बीजमें मधु इस प्रकार रस इसके गुण जानने वालोंने
 कहे हैं ॥ ४५८ ॥ लहसुन धातुओं के बढ़ाने वाला और पुरुषत्व को बढ़ाने
 वाला । त्रिग्ध उष्ण पाचन दस्तावर होता है तथा रस और पाक में कड़ुवा
 तीक्ष्ण उष्ण और मधुर भी कहा गया है ॥ ४६० ॥ टटे हाड़ को जोड़ने वाला कं
 ठ के हिन भारी रक्त पित्त को बढ़ाने वाला ॥ बल वर्ण को बढ़ाने वाला है ॥

बलवर्ण करो मेधा हितो नेत्र्यो रसायनः ॥ ४६१ ॥

हृद्रोग जीर्णज्वर कुक्षि शूल विबन्ध गुल्मा रुचिका

स शोफान् ॥ दुर्नाम कुष्ठानलसाद जन्तु समीरण

श्वास कफांश्च हन्ति ॥ ४६२ ॥ मद्यं मांसं तथा स्लज्ज

हिनं लशुनसेविनाम् ॥ व्यायामभानयं रोष मनिनीरं

पयो गुडम् ॥ ४६३ ॥ रसोनमश्रन् पुरुषस्त्यजे देता

त्रिरन्तरम् ॥

भा० टटे हाड़ का जोड़ने वाला कंठके हिन भारी रक्त पित्तको बढ़ाने वाला ॥

बलवर्ण को बढ़ाने वाला कानिके हिन नेत्रके हिन रसायन होता है ॥ ४६१ ॥

और हृद्रोग जीर्णज्वर कूखके शूलको विबन्ध वायुगुला अरुचिकास शोथ

दुर्नाम कुष्ठ अग्निमांद्य क्षमि वान श्वास और कफ इनको नाश करता है

॥ ४६२ ॥ लहसुन के सेवन करने वालेको मद्य मांस और खटवार्ही ये ह हिन है

॥ और कसरत घृणक्रोध बह्नन जल दूध गुड ॥ ४६३ ॥ इनको लहसन स्वा

ने वाला पुरुष निरन्तर त्याग देवे ॥

[अथ पित्राज्ज ।]

पलाण्डुर्य वनेष्टश्च दुर्गन्धो मुखदूषकः ॥ पलाण्डुस्तु

गुरौ ज्ञेयो रसोन सदृशो गुरौः ॥ ४६४ ॥ स्वादुपाके र

सोऽनुष्णः कफ रुन्नाति पित्तलः ॥ हरते केवलं वातं

बलवीर्यं करो गुरुः ॥ ४६५ ॥

भा० अनन्तर प्याजके नाम और गुण कहने हैं ॥ पलां इये वनेष्ट दुर्गन्ध
सुखद्वेषक । ये प्याजके नाम हैं ॥ प्याज सहस्रानुके सहस्रा गुणा हैं ॥ ४६४
॥ पाकमें मधुर रस शीत कफको करनेवाला और बहून पित्त करनेवाला
नहीं ॥ केवल वातको नाश करता है । और बलवीर्यको करनेवाला है ।
नथा गुरु है ॥ ४६५ ॥

अथ मेला ।] भल्लानकं त्रिषु प्रोक्त मरुष्कोऽरुष्करोऽग्नि

कः ॥ तथैवाग्निसुखी भल्ली वीरवृक्षश्च शोफरुत् ॥

॥ ४६६ ॥ भल्लानक फलं पक्वं स्वादु पाकरसं लघु ॥ क

षायं पाचनं स्निग्धं तीक्ष्णोष्णं च्छेदि भेदनम् ॥ ४६७

॥ मेध्यं वह्निकरं हन्ति कफ वातत्रणोदरम् ॥ कुष्ठार्शो

ग्रहणी गुल्म शोफानाह ज्वर कृमीन् ॥ ४६८ ॥

भा० अनन्तर भिलावेके नाम और गुण कहने हैं ॥ भल्लानक, नीनेमें
कहा गया है । मरुष्क अरुष्कर अग्निक । यह भिलावेके नाम हैं ॥ उसी
प्रकार अग्निसुखी भल्ली वीरवृक्ष शोफरुत् । यह भी कहे गये हैं ॥ ४६६ ॥
भिलावेका फल पकाइवा पाकमें मधुर रस हलका ॥ कसैला पाचन स्निग्ध
तीखा उष्ण छेदन करनेवाला । और भेदन करनेवाला होता है ॥ ४६७ ॥
और कान्तिको करनेवाला अग्निको करनेवाला होता है । कफवातदृष्ट
और उदररोग इनको नाश करता है ॥ नथा कुष्ठ बवासीर संग्रहणी वाय
गोला शोथ अफारा ज्वर कृमि इनको भी नाश करता है ॥ ४६८ ॥

तन्मज्जा मधुरो दृष्यो लंहणी वानपित्तहा ॥ दृत्त मा

रुष्करं स्वादु पित्तघ्नं केष्यमग्निरुत् ॥ ४६९ ॥ भल्ला

नकः कषायोष्णः शुक्रलो मधुरो लघुः ॥ वानश्ले

ष्मोदरानाह कुष्ठार्शो ग्रहणी गदान् ॥ ४७० ॥

हन्ति गुल्मज्वरशिवत्र वन्दिमान्द्य क्रिमिब्रणान् ॥

उसकी गिरी मधुर पुरुषत्व की बढ़ाने वाली ॥ बलके देने वाली वान पित्त की नाशक होती है । मोल भिलावा मधुर पित्तका नाशक केश अग्नि को करनेवाला होता है ॥ ४६८ ॥ भिलावा कसेला है गरम शुक्रको करनेवाला मधुर हलका होता है । वानकफ उदर रोग अफारी कुष्ठ बवासीर संग्रहणी इनको नाश करता है ॥ ४६९ ॥ और वायगोला ज्वर स्वेतकुष्ठ अग्निमान्द्य कृमि व्रण इनको भी नाश करता है ॥ [अथ भङ्गा ।]

भङ्गा गज्जा मानुलानी मादिनी विजया जया ॥ भ

ङ्गा कफ हरी तिक्ता ग्राहणी पाचनी लघुः ॥ ४७१ ॥

नीलशोषणा पित्तला माह मन्दवाग्बन्धि वर्द्धिनी ॥

[अथ पोस्ता ।] तिलभेदः स्वसतिलः कास श्वास हरः

स्मृतः ॥ स्यात्वा स्वसफलोद्भूतं बल्कलं शीतलं ल

घु ॥^{४७२} ग्राहि तिक्तं कषायञ्च वातकृत् कफास्रहन् ॥

धानूनां शोषकं सूक्ष्मं मदकृद् वाग्विवर्द्धनम् ॥ ४७३ ॥

सुहर्माहकरं रुच्यं सेवनान् पुंस्त्व नाशनम् ॥

भा० अनन्तर भांगके नाम और गुण कहने हैं ॥ भंगा गजामानुलानी मादिनी विजया जया । यह भांग के नाम हैं ॥ भांगकफको करनेवाली तिक्ता ग्राहणी पाचन हलकी ॥ नीला उष्ण होती है और पित्तको करने वाली मोह मन्दवागी मन्दाग्नि । इनको बढ़ाने वाली होती है ॥ ४७१ ॥ अनन्तर पोस्त के नाम और गुण कहने हैं ॥ तिल भेद स्वसतिल । यह पोस्तके नाम हैं ॥ और कास श्वास के नाशक कहे गये हैं ॥ पोस्तके फल में उत्पन्न हुआ बल्कल शीतल हलका^{४७२} ॥ ग्राही तिक्तकसेला वातको करनेवाला कफ रक्तका नाशक ॥ धानुओंका शोषक सूखा नष्ट करनेवाला वारीको बढ़ानेवाला ॥ ४७३ ॥ चार बार मोहको करनेवाला रुचिको देनेवाला होता है । और सेवन से पुरुषत्वको नाश करनेवाला है ॥ [अथ अफीम ।]

अनन्तर अफीमके नाम और गुण कहने हैं ॥

उक्तं खसफलक्षीरमाफूकमहिफेनकम् ॥ आफूकं
शोषणं ग्राहि प्लेष्मघ्नं वानपित्तलम् ॥ ४७४ ॥ तथा
खसफलोद्भूतवल्कल प्रायमिन्यपि ॥

अथ खारवसदान ।] उच्यन्ते खसवीजानि ते खारवस नि
ला अपि ॥ खसवीजानिवल्यानि चृथ्याणि सुगुरूणि
च ॥ ४७५ ॥ जन्यन्ति कफम् तानि शमयन्ति समीर
णम् ॥ [अथसैन्धव ।] सैन्धवोऽस्योशीन शिवं
माणिमन्यञ्च सिन्धुजम् ॥ सैन्धवं लवणं स्वादु दीप
नं पाचनं लघु ॥ ४७६ ॥ सिग्धं रुच्यं हिमं चृष्यं सूक्ष्मं
नेत्र्यं त्रिदोषहनु ॥

भा० पोस्त के फलके दूधको अफूक और अहिफेनक कहा है ॥ अफीम
सुकानेवाली ग्राही कफको नाश करनेवाली वान पित्तको करनेवाली होती है
॥ ४७४ ॥ तथा पोस्तके फलसे उत्पन्न हुये वल्कल सदृश प्रायः गुणमें हीनी है
॥ अनन्तर खसखसके नाम और गुण कहने हैं ॥ पोस्तके बीजोंको खारवस-
तिलभी कहने हैं ॥ खस खस बलको देनेवाली पुष्ट भारी होती है ॥ ४७५ ॥
और कफको उत्पन्न करती है । तथा वानको शमन करती है ॥
अनन्तर सैन्धवके नाम और गुण कहने हैं ॥ सैन्धव शीत शिव माणिमंघ
सिन्धुज यह सैन्धवके नाम हैं ॥ सैन्धव लवण स्वादु दीपन पाचन हलका
होता है । चिकना रुचिको देनेवाला शीतल प्रफुल्लव को करनेवाला सूक्ष्म
नेत्रका हिन और त्रिदोषका नाशक होता है ॥ ४७६ ॥

[अथ शाकम्भरि ।] शाकम्भरोपं कथितं गुडारव्यं रोमकन्त
था ॥ गुडारव्यं लघु चानघ्नं मत्स्युषां भेदि पित्तलम् ॥

॥ ४७७ ॥ तीक्ष्णोष्णं च्वापि सूक्ष्मं च्वाभिष्यन्दि कटु पाकि च

[अथ पाङ्ग ।] सामुद्रं यत्तु लवणा मक्षारं वशाञ्च तत् ॥ सा
 मुद्रं सागरजं लवणो दधि सम्भवम् ॥ ४७८ ॥ सामु
 द्रं मधुरव्याके सनिक्तं मधुरङ्गुरु ॥ नात्युषां दीपनं भे
 दि सक्षारं मविदाहिव ॥ ४७९ ॥ श्लेष्मलं वान्तु नित्त
 मरूक्षं नातिशीतलम् ॥

भा० अनन्तर सामर नमक के नाम और गुण कहने हैं ॥ शाकम्भरी मुद्रा
 तथ्य तथा शैमक । यह सामर नमक के नाम कहे गये हैं ॥ सामर हलका
 वान्तका नापाक बहन गरम भेदी पित्तको करनेवाला ॥ ४७७ ॥ नीला उष्ण रू
 क्ष अभिष्यन्दि पाकमें कटु होता है ॥ अनन्तर पाङ्ग के नाम और गुण
 कहने हैं ॥ समुद्र जो लवणा होता है वोह क्षार रहित होता है ॥ उस्को वपार
 कहने हैं ॥ सामुद्रज सागरज उदधि सम्भव । यह पाङ्ग लवणा के नाम है ॥
 ॥ ४७८ ॥ पाङ्ग पाकमें मधुर कुच्छ नित्त मधुर भारी । अति उष्ण दीपन शैवी
 कुच्छ क्षार और अविदाही होता है ॥ ४७९ ॥ और कफको करनेवाला वान्तका
 नाशक नित्त क्षिण्ड न अतिशीतल होता है ॥

अथ विरिश्वा सोचर इति ।] विडव्याकञ्च कतकं तथा
 द्राविडं मासुरम् ॥ विडं सक्षारं मूद्दीधः कफवान्तानु
 लोमलम् ॥ ४८० ॥ (क) ऊर्ध्वं कफमध्ये वान्तं मच्छारये
 दिव्यर्थः ।) दीपनं लघु तौक्ष्णोष्णं रुक्षं रुच्यं च वायुश्च ॥
 विवन्धानाह विष्टम्भ हृदयक गौरव शूलतुत् ॥ ४८१ ॥

भा० अनन्तर विडके नाम और गुण कहने हैं ॥ विडपाक कतक तथा द्रा
 विड अण्डर । यह नाम विडके हैं ॥ विड कुच्छ क्षार ऊर्ध्व अप कफ वान्त
 का अनुलोमन करनेवाला है ४८० ॥ (क) ऊपर कफ और नीचे वान्त इनको
 निकालता है ॥ दीपन हलका नीला उष्ण रुखा रुचिको करनेवाला च
 वायु होता है । और विवन्ध अफार विष्टम्भ हृदयकी पीड़ा भारीपन औ
 र शूल । इनका नाशक होता है ॥ ४८१ ॥

[अथ सौच्यारकीडा इति च ।] सौच्यं लं स्याद्रुचकमन्धपा
 कञ्च तन्मतम् ॥ रुचकं रोचनम्भेदी दीपनम्याचन
 म्यरम ॥ ४८२ ॥ सुस्नेहं वातनुनाति पित्तकं विप्रदं
 लघु ॥ उद्गार शुद्धिदं सूक्ष्मं विबन्धा नाह शूलजित्
 ॥ ४८३ ॥ (रेह गह गया प्रभृति ।) औद्धिदं प्यांशु
 लवणा वज्जातं भूमिः स्वयम् ॥ क्षारङ्गु कटु स्नि
 ग्धं शीतलं वातनाशनम् ॥ ४८४ ॥

भा० अनन्तर सौचरके नाम और गुण कहने हैं ॥ सौच्यं लं रुचक प्र-
 म्य पाक । ये सौचरके नाम हैं । सौचर रुचिको करनेवाला भेदी दीपन अ-
 न्यन्न पाचन होता है ॥ ४८२ ॥ चिह्नरा वातकानाशक और न अतिपित्त
 को करनेवाला विषघ्न हलका होता है ॥ और उद्गारको सुद्ध करनेवाला
 सूक्ष्म विबन्ध अफारा और शूल हनका जीतनेवाला है ॥ ४८३ ॥
 अनन्तर कचलोन के नाम और गुण कहने हैं ॥ औद्धिदं प्यांशु लवणा
 येह कचलोन के नाम हैं ॥ जो भूमिसे स्वयं उत्पन्न होता है ॥ क्षार भारी
 कड़वा स्निग्ध शीतल वातकानाशक है ॥ ४८४ ॥

अथ चराकलोनी ।] चराका स्लक मत्युष्णो दीपनन्दन

हर्षणम् ॥ लवणानुरसं रुच्यं शूलाजीर्णविबन्ध
 नुत् ॥ ४८५ ॥ [अथ यवक्षारः सानी सौर ।]

पाकाः क्षारो यवक्षारो यावशूको यवाग्रजः ॥ स्व
 र्जिकापि स्मृतः क्षारः कापोतः सुखवर्चकः ॥ ४८६
 कथितः स्वर्जिका भेदो विशेषज्ञो सुवर्चिकः ॥ यव
 क्षारो लघुः स्निग्धः सुसूक्ष्मो बन्धि दीपनः ॥ ४८७ ॥

भा० अनन्तर चनेके खारको कहने हैं ॥ चनेका खार बज्जन गरम दी-
 पन । रंजोको रंठनेवाला होता है । और लवणके अनुरास रुचिको
 करनेवाला । तथा शूल अजीर्णविबन्ध । इनकानाशक है ॥ ४८५ ॥

अनन्तर जवाखार, सज्जी, शोग, इनके नाम और गुण कहने हैं ॥ पाकारवार, य
वाक्षार यर्विशक्यवाग्रज यह यवारवारके नाम हैं ॥ सज्जी भी क्षार कही गई है
कापोत सुखवर्चक ॥ ४८६ ॥ यह सज्जीका भेद बुद्धिवानोंने सुवर्चिक कहा है।
जवाखार हलका त्रिगुणवृद्धत सूक्ष्म अग्निको दीपन करनेवाला है ॥ ४८७ ॥

निहन्ति शूलवाताम श्लेष्म श्वासग्लामयान् ॥ पा

रदुर्शो ग्रहणी गुल्मानाह स्नीह हृदामयान् ॥ ४८८ ॥

स्वर्जिकाल्पगुणा तस्माद्विषेधाद् गुल्म शूलहन् ॥

सुवर्चिका स्वर्जिकाब्द बोद्धव्या गुणतो जनैः ॥ ४८९ ॥

[अथ सोहागा ।] सौभाग्यं टङ्कुरां क्षारो धातुद्रावकमुच्यते ॥

टङ्कुरां वह्नि कृद्रूक्षं कफहृद् वान पित्तहन् ॥ ४९० ॥

भा० और शूलवान आमकफ श्वास गलेके रोग इनको नाश करना है ॥
नया पांडुरोग ववासीर संग्रहणी वायुगोला अफार स्नीह हृदयके रोग इन
को भी नाश करता है ॥ ४८८ ॥ सज्जी उसे अल्पगुणवाली है । और विशेष
करके वायुगोला को नाश करती है । और शोरा सज्जीके समानगुण से क्षोग
कहने हैं ॥ ४८९ ॥ अनन्तर सुहागेके नाम और गुण कहने हैं ॥ सौभाग्य
टंकरा क्षार धातुद्रावक कहने हैं ॥ सुहागा अग्निको करनेवाला और रू-
खा कफका नाशक वान पित्तको करनेवाला होता है ॥ ४९० ॥

अथ क्षारद्वयं क्षार यवम् ॥ स्वर्जिका यावशूक्तश्च क्षार द्व

यमुदाहनम् ॥ टङ्कुरीणं सुतं तत्तु क्षारत्रयमुदीरितम् ॥

॥ ४९१ ॥ मिलितसूक्तगुणवद्विषेधाद् गुल्महृत्परम् ॥

[क्षाराष्टकं] पलाशवज्जीशिश्वरिचिञ्चार्कतिलनालजाः ॥

यवजः स्वर्जिकाचेति क्षाराष्टकमुदाहनम् ॥ ४९२ ॥ क्षा

रा रतेऽग्निना तुल्या गुल्मशूलहराभृशम् ॥

भा० अनन्तर क्षार द्वय और क्षार त्रयको कहते हैं ॥ सज्जीखार जत्राखार इन को क्षार द्वय कहा है ॥ सुहागेसे युक्त वोह क्षार त्रय कहा गया है ॥ ४६१ ॥ वोह मिलेहुसे उक्तगुणको करनेवाले हैं ॥ विशेष करके अन्यन्तवायुगोलाके नाशक हैं ॥ अनन्तर क्षाराष्टकको कहते हैं ॥ पलास धूपर चिचरा इमली आक तिल ॥ जव और सज्जी इन आठ खारोंको क्षाराष्टक कहा है ॥ ४६२ ॥ येह क्षार आगके समान हैं और वायुगोला और शूल इनके अन्यन्तनाशक हैं ॥

[अथ चूक्रम् ।] चुक्रं सहस्रवेधि स्याद्रसाम्भं शुक्लमित्यपि ॥

चुक्र मत्यन्तमुष्णञ्च दीपनं पाचनं परम् ॥ ४६३ ॥

शूल गुल्म विवन्धाम वातश्लेष्महरं सरम् ॥ कृमि

तृष्णास्यचैरस्य हृत्पीडा वह्निमान्द्यहत् ॥ ४६४ ॥

भा० अनन्तर चोकके नाम और गुण कहते हैं ॥ चुक्र सहस्रवेधि रसाम्भ, शुक्ल येह चोकके नाम हैं ॥ चोक बहुत खटा गर्म दीपन पाचन होता है । शूल वायु गोला विवन्ध आमवान कफ इनका नाशक और दस्तावर होता है ॥ कृमि तृष्णा मुखकी विरसता हृदयपीडा अग्निमान्द्य इनका नाशक है ॥ ४६४ ॥

इतिश्री मिश्र लटकन तनय श्रीमिश्रभाव विरचिते भावप्रकाशे हरीनक्यादि वर्गः ॥

अथ कर्पूरादि वर्गः । [तत्रादौ कर्पूरस्य नाम गुणाश्च]

पुंसिल्लीवेच कर्पूरः सिताश्रो हिमवाल्कुकः ॥ घ

नसारश्चन्द्र संज्ञः हिमनामापि सस्मृतः ॥ १ ॥

कर्पूरः शीतलो वृष्यश्चक्षुष्यो लेखनो कषुः ॥ सु

रभिर्न्मधुरस्तिक्कः कफपित्तविषापहः ॥ २ ॥

भा० इतिश्री मिश्र लटकनके पुत्र श्रीभावमिश्रका विरचित भाव प्रकाशमें हरीनक्यादि वर्ग समाप्त ॥

अनन्तर कर्पूरादि वर्गः] उसमें प्रथम कर्पूरके नाम और गुण कहते

नेहै ॥ पुल्लिङ्ग और नपुंसक लिंगमें भी कर्पूर सिताभ्र हिमवाल्मुक ॥ घनसार चन्द्रसंज्ञ हिमनामवालाभी बोह कहा गया है ॥१॥ कर्पूर शीतल है वृष्य चक्षुके हिन लेखन हलका ॥ सुगन्धयुक्त मधुर निक्त होता है । और कफपित्त विष इनका नाशक है ॥२॥

दाह तृष्णास्य वैरस्य मेदो दौर्गन्ध्यनाशनः ॥ कर्पूरो
द्विविधः प्रोक्तः पक्वापक्व प्रभेदतः ॥ ३ ॥ पक्वात्कर्पू
रतः प्राङ्गुरपक्वं गुणवत्तरम् ॥ [अथ चिनीआ कर्पूरः]
चीनाक संज्ञः कर्पूरः कफक्षयकरः स्मृतः ॥ कुष्ठ क
ण्डू वमिहर स्तथा निक्तरस श्व सः ॥ ४ ॥

अथ कस्तूरी ।] मृगनाभिमृगमदः कथितस्तु सहस्रभि
त् ॥ कस्तूरिका च कस्तूरी वेधसुख्या च सा स्मृता ॥ ५ ॥
काशमरी कपिलच्छाया कस्तूरी त्रिविधा स्मृता ॥ काम
रूपोद्भवा श्रेष्ठा नैपाली मध्यमा भवेत् ॥ ६ ॥

भा० दाह तृष्णा मुखकी विस्तता मेद दुर्गन्धता इनका भी नाशक है ॥ कर्पूर दो प्रकारका कहा गया है कच्चा और पक्का इसभेदसे ॥ ३ ॥ पक्के कर्पूरसे कच्चा कर्पूर गुणमें अधिकतर कहा है ॥ अनन्तर चिनियां कर्पूर । चिनाकसंज्ञा चिनियां कर्पूरकी है बोह कफ क्षय करनेवाला कहा गया है । कुष्ठ खुजली वमन इनका नाशक तथा निक्त रसवाला बोह होता है ॥ ४ ॥ अनन्तर कस्तूरीके नाम और कहने है ॥ मृगनाभि मृगमद सहस्रभिन् यह कस्तूरीके नाम कहे हैं ॥ और कस्तूरिका कस्तूरी वेदसुख्या बोह कही गई है ॥ ५ ॥ काशमरी कपिलच्छाया कस्तूरी । ऐसे तीन प्रकारकी कही गई है ॥ कामरूपमें उत्पन्न होनेवाली श्रेष्ठ और नैपालमें होने वाली मध्यम होती है ॥ ६ ॥

कामरूपोद्भवा रुष्मा नैपाली नीलवर्णा युक् ॥ काशमी
रदेश सम्भूता कस्तूरी ह्यधमा मता ॥ ७ ॥ कस्तूरिका

कटुस्तिक्ता क्षारोष्णा शुक्रलायुः ॥ कफवान वि
षच्छर्द्दि शीतदौर्गन्ध्य शोषहन् ॥ ८ ॥

अथ मुसुकदाना ।] लता कस्तूरिका तिक्ता स्वाद्वीच्य्याहि
मालघुः ॥ चक्षुष्या च्छेदिनी श्लेष्म तृष्णावस्त्यास्य
रोगहन् ॥ ९ ॥

भा० काष्ठरु में होनेवाली काली और नैपालकी नीली होती है । काश्मीरदे
शमें उत्पन्न होनेवाली कस्तूरी अधमकही गई है ॥ ७ ॥ कस्तूरी कडवी ति-
क्त क्षार उष्ण शुक्रको करनेवाली मारी होती है ॥ और कफवान विषवम
न शीत दुर्गन्धिता शोष हनकी नाशक भी है ॥ ८ ॥ [अनन्तर मुसुकदाना ।]
फरकूरिका लता तिक्त मधुर पुष्ट शीतल हलकी होती है ॥ चक्षुकेहित के
दन करनेवाली कफ तृष्णा और पेड़ मुखके रोगकी नाशक है ॥ ९ ॥ -

अथ गौरासाखभेद आराडी इति लोके ।] गन्धमाञ्जरी
वीर्यन्तु वीर्यहान् कफवान हन् ॥ कराडु कुष्ठ हरं
नेत्र्यं सुगन्धं खेद गन्धनुत् ॥ १० ॥ [अथ चन्दनः ।]
श्रीखराडं चन्दनं नस्ती भद्रः श्रीस्तैलपरिणिकः ॥ ग
न्दसारो मलयजस्तथा चन्द्र द्युतिश्च सः ॥ ११ ॥

भा० अनन्तर गौरासाखभेद आंड़ी इस प्रकार लोकमें कहते हैं ॥ गन्धमा-
जरी वीर्य तो यह बल करनेवाला कफवानका नाशक है ॥ और कराडु कु
ष्ठ इनका नाशक नेत्रकाहित सुगन्ध पसीनाकी गन्धकी नाश करनेवाला है
॥ १० ॥ इस्ती विह्ली लोसन भी कहते हैं ॥ अनन्तर चन्दन श्रीखराड च
न्दन भद्र श्रीस्तैलपरिणिक । गन्धसार मलयज तथा चन्द्रद्युतिय यह चन्दन
के नाम हैं ॥ ११ ॥

स्वादो तिक्तं कषे पीतं च्छेदे रक्तं तनो सितम् ॥ ग्रन्थि
कोट रसं युक्तं चन्दनं श्रेष्ठं मुच्यते ॥ १२ ॥ चन्दनं शीत-

लंरूक्षं तिक्तमाह्लादनं लघु ॥ अमशोषविषश्लेष्मनृषणा
पित्तास्रदाहनुत् ॥ २३ ॥

भा० स्वादु में तिक्त घिसनेमें पीत और काढ़नेमें लाल और शरीरके लगाने
में ध्वेन होना है ॥ तथा गांठ और खोड़से युक्त चंदन श्रेष्ठ है ॥ २३ ॥ चन्दन शी
तलरूक्षतिक्त हर्षको देने वाला होता है और हलका है ॥
और अमशोष विषकफ नृषारक्त पित्तदाह इनका नाशक है ॥ २३ ॥

अथ पीतचन्दनम् ।] (कलम्बक इति लोके ।)

कालीयकन्तु कालीयं पीतामं हरिचन्दनम् ॥ हरि
प्रियंकालसारं तथा कालानुसार्यकम् ॥ २४ ॥ काली
यकं रक्तगुणं विशेषाद्वाङ्गनाशनम् ॥

अथ रक्तचन्दनम् ॥ रक्तचन्दनमारख्यातं रक्ताङ्गं च्छुद्र
चन्दनम् ॥ तिलपर्णी रक्तसारं तन्प्रवालफलं स्मृत
म् ॥ २५ ॥ रक्तं शीतं गुरु स्वादु छर्दि नृषणापित्तहन् ॥
तिक्तं नेत्रहिनं वृष्यं ज्वरत्रणा विषापहम् ॥ २६ ॥

भा० अनन्तर पीतचन्दन । कलम्बक वृक्षप्रकार लोकमें कहते हैं ॥ काली
यक कालीय पीताम हरिचन्दन ॥ हरिप्रिय कालसार तथा कालानुसार्य
क । यह पीतचन्दनके नाम हैं ॥ २४ ॥ पीतचन्दन रक्तचन्दनके समान गुण
में है विशेष करके मुखपरकी जाँड़की नाशकरना है ॥ अनन्तर रक्तचन्दन ।
रक्तचन्दन रक्तांग क्षुद्रचन्दन कहा गया है ॥ और तिलपर्णी रक्तसार प्रवा
लफल कहा गया है ॥ २५ ॥ रक्तचन्दन लाल शीतल भारी मधुर चमन नृषार
क्तपित्त इनका नाशक है ॥ और तिक्त नेत्रकाहिन वृष्य होता है ॥ तथा ज्वर ज
स्वम विष इनका नाशक भी है ॥ २६ ॥

[अथ वकम् ।] पतङ्गं रक्तसारञ्च सुखं रज्जनं तथा ॥ प
ट्टरञ्जकमारख्यातं पत्तूरञ्च कुचन्दनम् ॥ २७ ॥

अनन्तर पतंगके नाम और गुणा कहते हैं ॥ रक्तसार पतंग सुरंग रञ्जन ॥ पट्टं
रंजक कहा गया है । और पत्तूर कुचन्दन । ये ह भी पतंगके नाम हैं ॥ ये ह च
न्दनकी किस्म से होता है ॥ १७ ॥

पतङ्गं मधुरं शीतं पित्तश्लेष्मक्षरणास्त्रुत ॥ हरिचंद्र
नवद्वेद्यं विशेषाद्वाहनाशनम् ॥ १८ ॥ चन्दनानि तु
सर्वाणि सदृशानि रसादिभिः ॥ गन्धेन तु विशेषांस्ति
पूर्वः श्रेष्ठतमो गुरौः ॥ १९ ॥

भा० पतंग मधुर शीतल पित्तकफ वृण रक्त इनका नाशक ॥ और हरीचन्द्र
नके सदृश जानना चाहिये और विशेषकरके दाहका नाशक है ॥ १८ ॥
सब चंदन रसादिकरके समान होते हैं ॥ और गन्धसे विशेष है उनमें पहले गु
णोंसे श्रेष्ठ होते हैं ॥ १९ ॥ [अथ अगर ।]

(कृष्णा गुरु अगुरु सत ।) अगुरु प्रवरं लोहं रजार्हं यो
गजं तथा ॥ वशिष्कं कृमिजं चापि कृमिजग्ध मना
र्यकम् ॥ २० ॥ अगुरुषां कटु त्वच्यं निक्तं तीक्ष्णञ्च पि
तलम् ॥ लघु कर्णाक्षिरोगघ्नं शीत बाल कफ प्रणुत ॥
॥ २१ ॥ कृष्णां गुणाधिकं तनु लोहवद्धारि मज्जति ॥
अगुरु प्रभवः स्नेहः कृष्णा गुरु समस्मृतः ॥ २२ ॥

मस्तदारु द्रुकिलिमं क्लृप्तमं सुरभूरुहः ॥ २३ ॥ देवदारु
रु लघु स्निग्धं तिक्तोष्णं कटु पाकिच ॥ विबन्धाध्मा
न शोथाम तन्द्राहिक्का ज्वरास्त्रजित् ॥ २४ ॥ प्रमेह
पीनस श्लेष्म कास कराडू समीरनुत् ॥

[अथ धूप सरलः।] सरलः पीतवृक्षः स्या तथा सुरभिदा
रुकः ॥ सरसो मधुरस्निक्तो कटु पाकरसो लघुः ॥ २५ ॥
स्निग्धोष्णः कर्ण कण्ठाहिरो गरक्षो हरः स्पृष्टः ॥ क
फानिल खेददाह कास मूर्च्छा व्रणा पहः ॥ २६ ॥

भा० अनन्तर देवदारु के नाम और गुण कहने हैं ॥ देवदारु, दारुमद्र, दारवी, इन्द्रदारु ॥ मस्तदारु, द्रुकिलिमं क्लृप्तमं सुरभूरुह, यह देवदारु के नाम हैं ॥ २३ ॥ देवदारु हलका चिकना तिक्त उष्ण पाक में कटु होता है। विबंध अधिमान सूजन तन्द्रा हिचकी ज्वर रक्त इनको जीतने वाला है ॥ २४ ॥ और प्रमेह पीनस कफ कास खुजली वान इनका भी नाशक है ॥ दूसरी किसमके देवदारु के नाम और गुण ॥ सरल पीतवृक्ष सुरभि दारुक यह दूसरी किसमके देवदारु के नाम हैं ॥ देवदारु मधुर तिक्त पाक में कटु रस होता है ॥ २५ ॥ और स्निग्ध उष्ण तथा कर्ण कंठ नेत्ररोग और राक्षस इनका नाशक कहा गया है ॥ और कफ पसीना दाह कास मूर्च्छा व्रणा इनका भी नाशक है ॥ २६ ॥ [अथ तगरः।]

कालानुसार्यं तगरं कुटिलं नघुपं नतम् ॥ अपरं पि
रडतगरं दराड हस्ती च वर्हिणाम् ॥ २७ ॥ तगर द्वय सु
ष्णं स्थान स्वादु स्निग्धं लघु स्मृतम् ॥ विषा पस्मार
शूलाक्षि रोगक्षेप त्रयापहम् ॥ २८ ॥

भा० अनन्तर तगरको कहने हैं ॥ कालानुसार्यं तगर कुटिल नघुप नत ॥ यह तगर के नाम हैं ॥ और दूसरे तगर को पिरडतगर दराड हस्ति च वर्हिणाम् कहने हैं ॥ २७ ॥ दोनों तगर गर्भ हैं और मधुर चिकने हलके कहे

गयेहै ॥ तथा विष मिरगी मूल नेत्ररोग और विदोष इनका नाशक है ॥ २८ ॥

अथ पद्माक ।] पद्मकं पद्मगन्धि स्यात्तथा पद्माह्वयं स्मृ

तम् ॥ पद्मकन्तु परन्तिकं शीतलं वानसं लघु ॥ २९ ॥

वीसर्पदाह विस्फोट कुष्ठ प्लेष्मास्र पित्तनुत् ॥ गर्भ

संस्थापनं दृष्यं वमिद्वरण नृषा प्रणत् ॥ ३० ॥

अथ गुग्गुलुः ।] गुग्गुलुर्देव धूपश्च जटायुः कौशिकः पुरः

॥ कुस्तालूख लकं लीवे महीषाक्षः पलङ्कषः ॥ ३१ ॥

महीषाक्षो महानीलः कुमुदः पद्म इत्यपि ॥ हिरण्यः

पञ्चमो ज्ञेयो गुग्गुलोः पञ्च जातयः ॥ ३२ ॥ भृङ्गाञ्जन

सवर्णस्तु महिषाक्ष इति स्मृतः ॥ महानीलस्तु विज्ञेयः

स्व नाम सम लक्षणः ॥ ३३ ॥

भा० अनन्तर पद्मकाष्ठ को कहते हैं ॥ पद्मक पद्मगन्धि तथा पद्माह्वय पद्मकाष्ठ के नाम कहे हैं ॥ पद्मकाष्ठ कसैला तिक्त शीतल वानको करनेवाला हलका है ॥ २९ ॥ और विसर्प दाह विस्फोट कुष्ठ कफ रक्तपित्त इनका नाशक भी है ॥ तथा गर्भको करनेवाला रुचिके हित तथा वमन दृषा नृषा इनका भी नाशक होता है ॥ ३० ॥

अनन्तर गुग्गुलु के नाम और गुण कहते हैं ॥ गुग्गुलु देवधूप जटायु कौशिक पुर । कुस्तालु खलक यह गुग्गुलुके नाम नपुंसक लिंगमें कहे हैं ॥ और महिषाक्ष पलंकष यह भी गुग्गुलुके नाम हैं ॥ ३१ ॥ महिषाक्ष महानील कुमुद पद्म ॥ और पांचवा हिरण्य भी यह गुग्गुलु पांच जात हैं ॥ ३२ ॥ भौरे के सदृश स्याह रंगवाला महिषाक्ष कहा गया है ॥ और महानील अपने नामके समान लक्षणवाला जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

कुमुदः कुमुदाभः स्यात् पद्मो मार्णक्य सन्निभः ॥

हिरणयाक्षस्तु हेमामः पञ्चानां लिङ्ग मोरितम् ॥ ३४ ॥

महिषाक्षो महानीलो गजेन्द्राणां हिता वृषो ॥ हया
 नां कुमुदः पद्मः स्वस्त्यारोग्य करौ परौ ॥ ३५ ॥ वि
 शेषेण मनुष्याणां कनकः परिकीर्तितः ॥ कदाचि
 न्महिषाक्षश्च यतः कैश्चिन्नृणामपि ॥ ३६ ॥ गुग्गुलु
 निर्घ्रादस्तिक्तो वीर्योष्णः पित्तलः सरः ॥ कवायः
 कटुकः पाके कटू रूक्षो लघुः परः ॥ ३७ ॥ भग्न स
 न्धान रुद् दृष्यः सूक्ष्मः स्वर्यो रसायनः ॥ दीपनः
 पिच्छलो बल्यः कफवान व्रणापचीः ॥ ३८ ॥

भा० और कुमुद स्वेन कमल के समान तथा पद्म माणिक के सदृश होता
 है ॥ हिरण्यवक्ष कुवर्ण के सदृश होता है । इस प्रकार पांचों कालक्षरा क
 हा है ॥ ३५ ॥ महिषाक्ष और महानील येह दोनों गजेन्द्रों के हिन होते
 हैं । और घोड़ों को कुमुद तथा पद्म येह दोनों अत्यन्त अरोग्य करने वाले
 हैं ॥ ३६ ॥ विशेष करके मनुष्यों को कनक हिन है ऐसा कहा गया है । क
 दाचिन् मनुष्यों को भी महिषाक्ष हिन होता है ॥ ३६ ॥ गुग्गुलु विषद निक्त
 वीर्य में उष्ण पित्तको करनेवाला सर ॥ कसेला कडुवा और पाक में क
 टू रूखा और बज्जन हलका होता है ॥ ३७ ॥ हटे हाड़ को जोड़ने वाला पुष्ट
 सूक्ष्म स्वरको अच्छा करनेवाला रसायन ॥ दीपन चपदार बलको कर
 नेवाला होता है और कफवान व्रण अपची ॥ ३८ ॥

मेदो मेहाण्म वातांश्च क्षौद्र कुंष्टाममारुतान् ॥ पिडि
 का ग्रन्थि शोफार्णः गरुडमाला कृमीन् जयेत् ॥ ३९ ॥
 माधुर्याच्छमये द्दानं कषायत्वाच्च पित्तहा ॥ नि
 क्तत्वात् कफजिघेन गुग्गुलुः सर्वदोषहा ॥ ४० ॥
 सनवो वृंहणी दृष्यः पुराण रूचति लेखनः ॥ स्नि
 ग्धः काञ्चन सङ्गणः पक्वा जम्बू फलोपमः ॥ ४१ ॥

आ० वेद प्रमेह पथरी ज्ञान ज्ञेद पुष्ट आमवान इनको तथापि डिका ग्रन्थि सू
जन ववासी गंडमाल कृमि इनको जीतता है ॥ ३९ ॥ मधुरता से वानको प्र
मन करता है । कृत्तिले पनसे पित्तनाशक है । और तिक्त पनेसे कफको जीतनेवा
ला है ॥ उसकरके गुग्गुल सर्वदोषनाशक कहा गया है ॥ ४० ॥ वह गुग्गुल न
या शुकको बढ़ानेवाला पुष्ट होता है । और पुराना वजन लेखन होता है ।
चिकना सुवर्ण के सदृश अथवा पक्षे जामन के सदृश होता है ॥ ४१ ॥

नूतनो गुग्गुलुः प्रोक्तः सुगन्धिव्यस्तु पिच्छिलः ॥ शु
क्लो दुर्गन्धकश्चैव त्यक्त प्रकृति वर्णकः ॥ ४२ ॥ पुरा
णः सनु विज्ञेयः गुग्गुलुर्वीर्यं वर्जितः ॥ अम्लं ती
क्ष्णामजीरोञ्च व्यवायं श्रममातपम् ॥ ४३ ॥ मद्यं
रोषन्त्यजेत् सम्यग्गुराणी पुर सेवकः ॥

आ० नया गुग्गुलु सुगन्ध चोपदार कहा गया है । शुष्क
दुर्गन्धके करनेवाला तथा स्वभाविक वर्णसे रहित ॥ ४२ ॥ पुराना बोह जान
ना चाहिये जो गुग्गुलु वीर्यसे रहित है ॥ खटाई भिर्च अजीर्ण मैथुन श्रम
द्युम ॥ ४३ ॥ मद्यं क्रोध इनको गुग्गुलुका सेवन करनेवाला गुराणी त्याग
देवे ॥

[अथ सरलनिर्यासगुग्गुलुः ।]

श्रीवासः सरलश्रावः श्रीविष्टो वृक्षधूपकः ॥ श्रीवा
सो मधुरस्तिक्तः क्षिग्धोऽथा यमैला सरः ॥ ४४ ॥ पि-
त्तलो वान मूर्धाक्षि स्वर रोग कफापहः ॥ रत्नोद्यः स्वे
ददौर्गन्धः यूकाकराहू श्रण प्रणुत् ॥ ४५ ॥

आ० अनन्तर अर्धात देवदारुका किस्म उसके गोंदको गुग्गुलु कहते हैं ॥
श्रीवास सरल श्राव श्रीविष्ट वृक्षधूपक । यह सरलके नाम है ॥ सर-
ल मधुर तिक्त क्षिग्ध अथा यमैला सर होता है ॥ ४४ ॥ और पित्तकी
कारनेवाला तथा चात सिर नेत्र स्वर इनके रोग और कफ इनका नाशक

है । और रक्तसों का नाशक तथा मसीना दुर्गन्धना जूआं खुजली घाव इन का भी नाशक है ॥ ४५ ॥

[अथ रत्नः।]

रत्नस्तु शालनिर्व्यासस्तथा सर्जसः स्मृतः ॥ दे
वधूपो यक्षधूपस्तथा सर्वरसश्च सः ॥ ४६ ॥ रत्नो
हिमो गुरु निक्तः कषायो ग्राहको हरेत् ॥ दोषास्व
स्वेद विसर्प ज्वर व्रण विपादिकाः ॥ ४७ ॥ ग्रह म-
ग्नाग्निदग्धाश्च शूलान्तीसार नाशनः ॥

(अथ कुन्दुरु सुगन्ध द्रव्य शालकी निर्व्यासः) कुन्दुरु
रत्नस्तु मुकुन्दः स्यात् सुगन्धः कुन्द इत्यपि ॥ कुन्दुरु
मधुर निक्त नीदगास्त्वच्यः कटु हरेत् ॥ ४८ ॥ ज्वर
स्वेद ग्रहालक्ष्मी मुखरोग कफाऽनिलान् ॥

भा० अनन्तर रत्नको केहने हैं ॥ रत्न शाल निर्व्यास तथा मर्जस । कहा गया है । और देवधूप यक्षधूप तथा सर्जस यह रत्नके नाम हैं ॥ ४६ ॥ रत्न शीतल भारी निक्त कसैली ग्राहक है ॥ और दोष रक्त पसीना विसर्प ज्वर घाव विपादिक इनको नाश करती है । और शूल अतीसार यह भी नाश करती है । ग्रह और दूटे हाड़ की तथा आगसे जले ज्वेको नाश करती है ॥ अनन्तर कुन्दुरु नाम सुगन्ध द्रव्य सोना वररत्न का गोंद है उसके नाम और गुण कहने हैं ॥ कुन्दुरु मुकुन्द सुगन्ध कुन्द । यह कुन्दुरु के नाम हैं ॥ कुन्दुरु मधुर निक्त नीदगास्त्वच्यके हिन और कटु होना है ॥ ४८ ॥ और ज्वर स्वेद ग्रह अलक्ष्मी मुखरोग कफ वायु इनको नाश करना है ॥

अथ शिलारसः ।] सिलहकस्तु नुरुष्कः स्याद्यतो यवन

देशजः कपिनैलञ्च संख्यातास्तथा च कपिनामकः

॥ ४९ ॥ सिलहकः कटुकः स्वादुः स्निग्धोष्णः शुक्रका-

निकृत् ॥ दृष्यः कराठ्यः स्वेद कुष्ठ ज्वर दाह ग्रहा पहः ॥ ५० ॥
 अथ जायफल ।] जातीफलं जातिकोशं मालतीफलमित्य
 पि ॥ जातीफलं रसे निकृत् तीक्ष्णोष्णं रोचनं लघु ॥ ५१ ॥
 कटुकं दीपनं ग्राहि स्वर्ध्वं श्लेष्मानिलापहम् ॥ निह
 न्ति मुखवैरस्वं मद्यदौर्गन्ध्यकृष्णताः ॥ ५२ ॥ कृमि
 कास वमि श्वास शोथ पीनसहृद्भुजः ॥

भा० अनन्तर शिला रसको कहने हैं ॥ सिल्हक तुरुष्क यवनदेशज ॥ कपि
 ल तथा कपिनामक यह शिलारसके नाम हैं ॥ ५० ॥ शिलारस कडुवा
 मधुर चिकना शुक्र कान्ति को करनेवाला पुष्ट ॥ कंठ के हिन और पसीना
 कुष्ठ ज्वर दाह यह इनका नाशक है ॥ ५० ॥

अनन्तर जायफलके नाम गुण कहते हैं ॥ जातीफल जातिकोश मालती फ
 ल । यह जायफलके नाम हैं ॥ जायफल रसमें निकृत् तीक्ष्ण उष्ण रुचिको करने
 वाला हलका ॥ ५१ ॥ कडुवा दीपन ग्राही स्वरको अच्छा करनेवाला ॥ कफ
 वात का नाशक है । और मुखकी विरसता मद्यकी दुर्गन्धता और कृष्णता घ्न
 का भी नाशक है ॥ ५२ ॥ तथा कृमि कास वमन श्वास शोथ पीनस और हृद्
 की पीडा । इनको भी नाश करता है ॥

अथ जावत्री ।] जातीफलस्य त्वक् प्रोक्ता जातीपत्री भिष
 र्वैः ॥ जातीपत्री लघुः स्वादुः कटूष्णारुचिवर्णकृत् ॥
 ५३ ॥ कफ कास वमि श्वास तृषणा कृमिविषा पहा ॥
 अथ लवङ्गः ।] लवङ्गं देवकुसुमं श्रीसंज्ञं श्रीप्रसूनकम् ॥
 लवङ्गं कटुकं निकृत् लघु नेत्र हिनं हिमम् ॥ ५४ ॥ दीप
 नं पाचनं रुच्यं कफ पित्तास्र नाशकृत् ॥ तृषणां ह्यर्हं
 तथा ध्मानं शूनमाशु विनाशयेत् ॥ ५५ ॥ कासं
 श्वासञ्च हिक्काञ्च क्षयं क्षययति ध्रुवम् ॥

आ० अनन्तर जावित्री के नाम और गुण कहने हैं ॥ वैद्य बरोने जायफल की छाल को जावित्री कहा है ॥ जावित्री हलकी मधुर कड़वी उष्ण रुचि वर्णा इन को करने वाली है ॥ ५३ ॥ कफ कास वमन श्वास नृषा कृमि विष इनकी नाश करती है ॥ [अनन्तर लवङ्ग के नाम और गुण कहने हैं ॥ लवङ्ग देवकुसुम श्री संज्ञा श्री प्रसूनक यह लोंग के नाम हैं ॥ लोंग कड़वी तिक्त हलकी नेत्र के हिन शीतल है ॥ ५४ ॥ दीपन पाचन रुचिकेहिने वाली कफ रक्त पित्त इनके नाश करने वाली है ॥ और नृषा वमन पेट फूलना शूल इनको शीघ्र नाश करती है ॥ ५५ ॥ और कास श्वास हिचकी क्षय इनको भी नाश करती है ॥

[अथ इलायची पूरवी ।]

एला स्थूला च बड़ला पृथ्वीका त्रिपुटापि च ॥ भ

द्रेला रहदेला च चन्द्रवाला च निष्कृतिः ॥ ५६ ॥ स्थू

लैला कडुका पाके रसे चानल क्लृप्तघुः ॥ सूक्ष्मोष्णा

प्लेष्मपित्तास करडु श्वास नृषा यहा ॥ ५७ ॥ हृल्लास

विष वस्त्यास्य शिरो रुग् चभि कासनुत् ॥ ५८ ॥

अथ एला गुजराती ।] सूक्ष्मोपकुञ्चिका तुच्छा कोरङ्गो

द्राविडी वृष्टिः ॥ एला सूक्ष्मा कफ श्वास काशाशो मू-

त्ररुच्छहन् ॥ ५९ ॥ रसेनु कडुका शीता लघ्नी वानहरी

मता ॥

छोटी इलायची कफ श्वास काष्ठ ववासीर मूत्र रुच्छ्र इन्कोनाण करती है ॥
५६ ॥ रसमें कड़वी शीतल हलकी चानकी नाशक कही गई है ॥

अथ नज ।] त्वक् पत्रञ्च वराङ्ग स्याद् भृङ्गं चोदन्तथोत्क

टम् ॥ त्वचं लघूषणं कडुकं स्वादु तिक्तञ्च रुक्षकम्

॥ ६० ॥ पित्तलं कफवानघ्नं कण्डूमा रुचि नाशनम् ॥

हृद्घ्नि रोग वातार्शः हामि पीनस शुक्रहृत् ॥ ६१ ॥

दालचीनी ।] त्वक् स्वादीनु तनुत्वक् स्यात्तथा दारुसिता

मता ॥

अनन्तर दारचीनी के नाम और गुण कहते हैं ॥ त्वक् पुत्र,
वरान्द भृङ्ग उदन्त उत्कट यह दारचीनी के नाम हैं ॥ दारचीनी हलकी गर्म क
ड़वी मधुर तिक्त रुखी ॥ ६० ॥ पित्तको उत्पन्न करनेवाली कफवानकी नाशक
और खुजली आम अरुचि इनकी नाशक है ॥ और हृदय पेड़ इनका पेग और
चातववासीर हामि पीनस शुक्र इनकी नाशक है ॥ ६१ ॥ अनन्तर कल्मी दार
चीनी को कहते हैं ॥ त्वक् तनुत्वक् तथा दारुसिता यह कल्मी दारचीनी के
नाम हैं ॥

उक्ता दारुसिता स्वाद्री तिक्ता चानिल पित्तहृत् ॥ सुर

भिः शुक्रला वर्या मुखशोष तृषापहा ॥ ६२ ॥

अथ पत्रकम् ।] पत्रन्तमालपत्रञ्च तथा स्यात् पत्रबाम

कम् ॥ पत्रकं मधुरं विजिह्वीक्षणीयं पिच्छिलं ल

घु ॥ ६३ ॥ निहन्ति कफ वातार्शो हल्लासा रुचि पीनसा

न् ॥

भा० दारचीनी मधुर और तिक्त तथा वात पित्तको नाश कर
नेवाली कही गई है ॥ ६२ ॥ सुगन्धयुक्त शुक्रकी बढ़ानेवाली रंगको अच्छा
करनेवाली है ॥ और मुख शोष तृषा इनकी नाशक है ॥

अनन्तर पत्रक ॥ पत्र ममालपत्र तथा पत्रनामक यह नेत्रपानके नाम हैं ॥ नेत्र
पान मधुर रुच्छ्र तीक्ष्ण उष्ण चैपदम हलका होता है ॥ ६३ ॥ और कफ वान

बवासीर मन्ली अरुचि पीनस रोग इनको नाश करता है ॥

अथ नागकेशरः ।] नागपुष्पः स्मृतो नागः केशरो नाग
केशरः ॥ चाम्पेयो नागकिञ्जल्कः कथिनः काञ्च
नाह्वयः ॥ ६४ ॥ अयं पुष्येणु ह्रीवि ।] नागपुष्पं
कषायोष्णं रूक्षं लघुम पाचनम् ॥ ज्वर कण्डू तृ
षा स्वेद च्छर्दि हृल्लास नाशनम् ॥ ६५ ॥ दौर्गन्ध्य कु
ष्ट वीसर्प कफ पित्त विषापहम् ॥

भा० अनन्तर नागकेशर ॥ नागपुष्प नाग केशर नागकेशर चाम्पेय नाग
किञ्जल्क काञ्चनाह्वय येह नागकेशर के नाम हैं ॥ ६४ ॥ येह पुष्यमै नपुंसक
है ॥ नागकेशर कसैला गर्भ रूखा हलका आमका पाचन है ॥ और खुजली
तृषा पसीना वमन मन्ली इनको नाश करता है ॥ ६५ ॥ और दुर्गन्धता कुष्ट
विसर्प कफ पित्त विष इनका नाशक है ॥

अथ त्रिजातचतुर्जातके ।] त्वर्गला पत्रकैस्तुल्यै त्रिषु
गन्धि त्रिजातकम् ॥ नागकेशर संयुक्तं चतुर्जातक
मुच्यते ॥ ६६ ॥ तद् द्वयं रेचनं रूक्षं तीक्ष्णोष्णं भुख
गन्धहृत् ॥ लघु पित्ताग्नि ह्राहरणं कफ वात क्षिपाप
हम् ॥ ६७ ॥

भा० अनन्तर त्रिजातचतुर्जातक ॥ दारचीनी इलायची पत्रक इनके समान
भागके त्रिषुगन्धि त्रिजातक कहते हैं ॥ तथा नागकेशर से संयुक्त हुआ चतु
र्जातक कहा है ॥ ६६ ॥ वोह दोनों रेचन रूक्ष तीक्ष्ण उष्ण और भुखकी दुर्गन्ध
ताके नाशक हैं ॥ और लघु पित्त अग्नि को करनेवाला वरीको अच्छा करने
वाला कफ वात विषका नाशक है ॥ ६७ ॥

अथ कुङ्कुमम् ।] कुङ्कुमं घस्तरंगं रक्तं काशमीरं पीतकं व
रम् ॥ सङ्गेचं पिशुनन्धारं बाह्वीकं शोरिगतामिध
म् ॥ ६८ ॥ काशमीर देशजे स्तेवे कुङ्कुमं यद्भवंधि तत् ॥

सूक्ष्म केशर मारुक्तं पद्मगन्धि तदुत्तमम् ॥ ^{६६॥}वाल्मीक
 देशसञ्जातं कुङ्कुमं पाराडु रम्मतम् ॥ केतकी गन्ध
 युक्तन्तन्मध्यमं सूक्ष्मकेशरम् ॥ ७० ॥ कुङ्कुमग्रा
 रसीके यत् मधुगन्धि तदीरितम् ॥ इषत् पाराडु र
 वर्णं तदधमं स्थूलकेशरम् ॥ ७१ ॥ कुङ्कुमं कडुके
 स्त्रिगंधं शिरोरुग्ं ब्रह्म जन्तु जिन् ॥ निकं वसिहरं
 वार्यं व्यङ्गदोष त्रयापहम् ॥ ७२ ॥

भा० भनन्तरकेसर । कुङ्कुम घसरा रक्त काश्मीर पीतक वर ॥ संकोच ।
 पिशुनधीर वाल्मीक शोणिताभिध । येह केसर के नाम हैं ॥ ६० ॥ काश्मीर के
 शंभे जो केशर होना है वोह । सूक्ष्मकेशर रक्तवर्ण पद्मके सदृश गन्धवाला
 होना है ॥ वाह उत्तम है ॥ ६६ ॥ वाल्मीक देश अर्थात् वलरुह देशमें उत्पन्न हु
 वा केशर खेत होता है । वोह केवडे के गन्धके समान गन्धवाला सूक्ष्मकेशर
 होना है वोह मध्यम है ॥ ७० ॥ जो केशर पारसमें होना है उसको मधुगन्धि
 कहा गया है । कुङ्कुम श्वेत वर्ण और स्थूल केशर होना है । वोह मध्यम है ॥ ७१
 केशर कडुवा चिकना सिरके रोग जस्रम कृमि इनको जीमने वाला है ॥ और
 निक वमनका नाशक रंगको अच्छा करनेवाला और जाँई तीनों दोष इन
 का नाशक है ॥ ७२ ॥

[अथ गौरोचना ।]

गौरोचना तु मङ्गल्या बन्धा गौरी च रोचना ॥ गौरोच
 ना हिमा निक्ता वषया मङ्गल कान्दिदा ॥ ७३ ॥ विषा
 लक्ष्मी ग्रहोन्माद गर्भस्त्राव क्षतास्र हन् ॥

अथ नख नखी गन्धद्रव्यम् ।] नखं व्याघ्रनखं व्याघ्रा ।

युधन्त चक्र कारकम् ॥ नखं स्वल्पं नखी प्रोक्ता हनु
 र्हेट विलासिनी ॥ ७४ ॥ नख द्रव्य ग्रह प्लेष्म वाना

स्व ज्वरं कुष्ठं हन् ॥ लघूणां शुक्रलं वरार्थं स्वादु ब्रगा
विषापहम् ॥ ७५ ॥ अलक्ष्मी मुखदौर्गन्ध्यहत्या कर
सथोः कटुः ॥

भा० अनन्तर गौरोचन ।] गौरोचना मंगल्या वन्द्या गौरी रोचना यह गौरोचन के नाम हैं ॥ गौरोचन शीतल तिक्त वश करनेवाला और मंगल और कान्ति इनको देने वाला है ॥ ७३ ॥ तथा विष अलक्ष्मी ग्रह उन्माद गर्भश्राव रक्त इनको दूर करनेवाला है ॥ [अनन्तर नख नखी सुगन्धद्रव्य । नख व्याघ्रनख व्याधायुध चक्रकारक ॥ छोटे नखके नखी और हनु हृद्द विलासिनी कहा है ॥ ७४ ॥ नख द्रव्य यत् कफ वातरक्त ज्वर कुष्ठ इनका नाशक है ॥ हलका शुक्रको उत्पन्न करनेवाला वरगोको अच्छा करनेवाला मधुर जखम तथा विष इनका नाशक है ॥ ७५ ॥ और अलक्ष्मी मुखकी दुर्गन्धि इनका नाशक है तथा पीक और रसमें कटु होता है ॥

अथ सुगन्धवाला ।] बालं हीवेर वार्हिष्ठो दीच्यङ्केशाम्बु
नाम च ॥ बालकं शीतलं रुक्षं सधु दीपन पाचनम्
॥ ७६ ॥ हल्लासा रुचि वीसर्प हृद्दोगा माति सारजित् ॥
अथ वीरणम् ।] स्याद् वीरणं वीर तरु वीरज्व बङ्ग मूल
कम् ॥ वीरणं म्पाचनं शीतं वान्ति हल्लघु तिक्तकम् ॥
७७ ॥ स्तम्भनं ज्वर नुद् वान्ति मदजित् कफ पित्तहत् ।
॥ लघूणां स्रविष वीसर्पं कृच्छ्र दाह ब्रणापहम् ॥ ७८ ॥

भा० अनन्तर सुगन्धवाला ॥ बाल हीवेर वार्हिष्ठ उदीच्य केश अम्बुनाम यह सुगन्धवाला के नाम हैं ॥ सुगन्धवाला शीतल रुखा दीपन हलका पाचन ॥ ७६ ॥ और मनली अरुचि विसर्प हृद्दोगा आमातिसार इनको दूर करनेवाला है ॥ [अनन्तर वीरण अर्थात् जिसकी जड़ खस है ॥ वीरण वीर तरु वीर बङ्गमूल क यह वीरण के नाम हैं ॥ वीरण पाचन शीतल वमन इनका नाशक हलका तिक्त है ॥ ७७ ॥ और स्तम्भन ज्वरका नाशक वान्ति मद

इनका दूर करनेवाला । कफ पित्त का नाशक । और मृषारक्त विष विसर्प
मूत्र कच्छ दाह ब्रण इनका नाशक है ॥ ७७ ॥

[अथ उशीर ।]

वीरणास्य तु मूलं स्यादुशीरं नलदञ्च तत् ॥ अमृणा

लञ्च सेव्यञ्च समगन्धिक मित्यपि ॥ ७८ ॥ उशी

रम्पाचनं शीतं स्तम्भनं लघु तिक्तकम् ॥ मधुरं

ज्वर हृद्वान्ति मदनुत् कफ पित्त हत् ॥ ८० ॥ तृषणा

स्र विष वीसर्प दाह कच्छ ब्रणापहम् ॥

भा० अनन्तर खस बीरणा की जड़ खस है उसी नलद उशीर ॥ अमृ
णाल सेव्य संगन्धिक भी कहते हैं ॥ ७८ ॥ खस पाचन शीतल स्तम्भन
हलका तिक्त मधुर ज्वर का नाशक वमन मदका नाशक और कफ
पित्त का नाशक है ॥ ८० ॥ और मृषारक्त विष विसर्प दाह मूल कच्छ
ब्रण इनका नाशक है ॥

अथ जटामांसी ।] जटामांसी भूतजटा जटिला च तपस्वि

नी ॥ भांसी तिक्ता कषाया च मेध्या क न्तिबलप्रदा

॥ ८१ ॥ स्वाद्वी हिमा त्रिदोषास्र दाह वीसर्प कुष्ठनुत्

॥ अथ भूरच्छरील इति लोके ॥] शैलेपन्तु शिलापु

ष्यं वृद्धङ्गलानु सार्थकम् ॥ शैलेयं शीतलं हृद्यं

कफ पित्त हरं लघु ॥ ८२ ॥ कराडू कुष्ठाशमरीदाह

विषहंजुर् रक्तहृत् ॥

भा० अनन्तर जटामांसी । जटामांसी भूतजटा जटिला तपस्विनी । ये
जटामांसी के नाम हैं ॥ जटामांसी तिक्त कसेली पवित्र कान्ति और बल
को देनेवाली ॥ ८१ ॥ मधुर शीतल त्रिदोषरक्त दाह विषर्प कुष्ठ इन
की नाशक है ॥ [अनन्तर भूरच्छरील इस प्रकार लोकमें
प्रसिद्ध है ॥ शैलेय शिलापुष्य वृद्ध कालानुसार्थक ये बालकृष्ण के

नामहैं ॥ बाल छेड़ शीतल हृदय का प्रिय कफ पित्तका नाशक हलका होता है ॥ ८२ ॥ तथा खुजली कुष्ठ पथरी दाह विष इनका नाशक और गुश्के रक्तका नाशक है ॥

मोथा नागर मोथा ।] मुस्तकं न स्त्रियां मुस्तं त्रिषु वारिद

नामकम् ॥ कुरु विन्द अक्षरव्यातोऽपरः क्रौडकसेरु

कः ॥ ८३ ॥ भद्र मुस्तञ्च गुन्द्रा च तथा नागर मुस्तकः

॥ मुस्तं कटु हिमं ग्राहि तिक्तं दीपन पाचनम् ॥ ८४ ॥

कषायं कफ पित्तास्र तृट्ज्वरा रुचिजन्तुहन् ॥ अनूप

देशो यज्जानं मुस्तकं तत् प्रशस्यते ॥ ८५ ॥ तथापि मु

निभिः प्रोक्तं वरं नागर मुस्तकम् ॥

भा० मोथा और नागर मोथा ।] मुस्तक मुस्त वारिद नामक कुरुविन्द सरव्या न दूसरा क्रौडकसेरुक ॥ ८३ ॥ भद्र मुस्त गुन्द्रा तथा नागर मुस्तक ये नागर मोथाके नाम हैं ॥ मोथा कटुवा शीतल हस्तको रोकनेवाला तिक्त दीपन पाचन ॥ ८४ ॥ कसेला कफ रक्त पित्त तृपाज्वर अरुचि क्षमि इनका नाशक है ॥ अनूपदेशमें जो नागर मोथा उत्पन्न होता है वोह, अच्छा है ॥ ८५ ॥ उस्में भी मुनियोंने नागर मोथा श्रेष्ठ कहा है ॥ [अथ कर्चूर ।]

कर्चूरा वैधमुख्यश्च द्राविडः कल्पकः शटी ॥ कर्चूरो

दीपनो रुच्यः कटुकस्तिक्त एव च ॥ ८६ ॥ सुगन्धिः

कटुपाकः स्यात् कुष्ठाशो ब्रणकासनुन् ॥ उषो ल

घुः हरेच्छासं गुल्मवान कफ क्षमीन् ॥ ८७ ॥

भा० अनन्तर कर्चूर ॥ कर्चूर वैधमुख्य द्राविड कल्पक शटी येह कर्चूर के नाम हैं ॥ कर्चूर दीपन रुचिको करनेवाला कटुवा और तिक्त भी होता है ॥ ८६ ॥ सुगन्धि युक्त और गरम में कटु होता है । तथा कुष्ठ वदासीर घाव कास इनका नाशक ॥ और गरम हलका होता है ॥ और श्वासवायु गोना वान कफ क्षमि इनको नाश करता है ॥ ८७ ॥

अथ रुकागी ।] मुरीगन्ध कटी दैन्या सुरभिः शालपर्णिका ॥

मुरानिका हिमा स्वाद्वी लध्वी पिना निलायहा ॥ ८६ ॥

ज्वरा सृगभूत रक्षोघ्नी कुष्ठकास विनाशिनी ॥

अथ गन्ध पलाशी ।] (सुगन्ध द्रव्यं काश्मीरं प्रसिद्धा ।)

शठी पलाशी षड् ग्रन्था सुव्रतागन्ध मूलिकाः ॥ गन्धा

रिका गन्ध बधू र्वधूः पृथु पलाशिका ॥ ८८ ॥ मवेङ्गन्ध

पलाशी तु कषाया प्राहिणी लघुः ॥ तिक्ता तीक्ष्णा च

कटुका उष्णास्य मलनाशिनी ॥ ८९ ॥ श्लेथ कास रज्ज्वा

श्वस शूलहिध ग्रहापरा ॥

भा० अनन्तर रुकागी ॥ मुरी गन्ध कटी दैन्या सुरभि शालपर्णिका । देरु मरोड फलीके नाम हैं । मरोड फली तिक्ता शीतल पृथु रज्जुकी और पिना वानको भाग करने वाली हैं ॥ ८६ ॥ और ज्वर रक्त भूत रादास इनकी नाशक तथा कुष्ठ कास इनकी भी नाशक है ॥ [अनन्तर गन्ध पलाशी ॥ यह सुगन्ध द्रव्य काश्मीर में प्रसिद्ध है । शठी सुन्दर के त्रिस्पर्शे होता है । शठी पलाशी षड् ग्रन्था सुव्रता ॥ गन्ध मूलिका गन्धारिका गन्ध बधू र्वधू पृथु पलाशिका । यह गन्ध पलाशिके नाम हैं ॥ ८८ ॥ गन्ध पलाशी कसेली दस्तके रोकने वाली हलकी होती है ॥ और तीखी कड़वी उष्ण सु र्वके मलप्रेनाश करने वाली ॥ ८९ ॥ और सूजन कास घाव श्वास शूल हिध पर इनकी नाशक है ॥

[अथ प्रियङ्गु गन्ध प्रियङ्गु ।

प्रियङ्गुः फलिनी कान्ता लता च महिला ह्वया ॥ गुन्द्रा

गुन्द्र फला प्यामा विष्वक्सेनाङ्गना प्रिया ॥ ९१ ॥

प्रियङ्गुः शीतला तिक्ता तुवरानिल पिप्पहत ॥ रक्ता

नियोग ह्यैर्गन्ध स्वेद दाह ज्वरापहा ॥ ९२ ॥ गुल्फ

नट्ट चिपमोहघ्नी ताहद् गन्ध प्रियङ्गुकाः ॥ तत् फलं

मधुरं रूक्षं कषायं शीतलद्रुम् ॥ ६३ ॥ विवन्धाध्मा
न बलवान् संयाहि कफ पित्तजित् ॥

भा० अनन्तर प्रियङ्गु गन्ध प्रियङ्गु ॥ प्रियङ्गु फलनी कान्ता लता महिला
हुया ॥ गुन्दा गुन्द्रफलाश्यामा विष्वकसेना श्रंगनाभिया ये प्रियंगु के
नाम हैं ॥ ६१ ॥ प्रियंगु शीतल तिक्त कसेला वान पित्तका नाशक ॥ और
रक्तका अतियोग दुर्गन्धना पसीना दाहज्वर इनका नाशक है ॥ ६२ ॥ औ
र वायुगोला तृषा विष मोह इनका नाशक है ॥ उसीके समान गन्ध प्रियङ्गु
भी है ॥ उस्का फल मधुर रूक्ष कसेला शीतल भारी ॥ ६३ ॥ विवन्ध पेटका फ
लना और बल इनको करनेवाला तथा मलका अवरोध करनेवाला तथा
कफ पित्तका दूर करने वाला है ॥ [अथ रेणुका मरिच सदृशा ।]

रेणुका राजपुत्री च नन्दिनी कपिला द्विजा ॥ भस्म
गन्धा पाराडु पुत्री स्मृता कौन्ती हररेणुका ॥ ६४ ॥ रेणुका
कटुका पक्के तिक्तामुषणा कटुर्लघुः ॥ पित्तला दीपनी
मेध्या पाचिनी गर्भ पातिनी ॥ ६५ ॥ बलासवात रुचै
व तृटकराडु विषदाह नृत् ॥

भा० अनन्तर रेणुका येह मरिचके सदृश सुगन्धद्रव्य होना है ॥ रेणुका,
राजपुत्री नन्दिनी कपिला द्विजा भस्मगन्धा पाराडुपुत्री कौन्तीय हररेणुका
येह रेणुकाके नाम हैं ॥ ६४ ॥ रेणुका पकमें कड़वी तिक्त उष्णकटु हलकी
होती है और पित्तको करनेवाली दीपन बुद्धि के बढ़ानेवाली पाचनगर्भको
गिरानेवाली है ॥ ६५ ॥ और कफ वानको करनेवाली तथा तथा खुजलीवि
षदाह इनकी नाशक है ॥ [अथ ठिवन ।]

ग्रन्थिपर्णं ग्रन्थिकञ्च काकपुच्छञ्च पुच्छकम् ॥
नीलपुष्पं सुगन्धञ्च कथितन्तैल पर्णकम् ॥ ६६ ॥
ग्रन्थि पर्णान्तिक्त नीलां कटूणां दीपनं लघुः ॥ कफ
वान विष प्रवास कराडु दौर्गन्ध्य नाशनम् ॥ ६७ ॥

अनन्तर ठीविन । ग्रन्थिपर्णी ग्रन्थिक काकपुच्छ गुच्छक नीलपुष्प ,
सुगन्ध नैलपर्णीक येह भटोराके नामहैं ॥६६॥ भटोरा तिक्त नीलान्ना,
कटु उष्ण दीपन लघुहै । और कफ वान विष श्वास कण्डु दुर्गन्ध
ना इनका नाशकहै ॥६७॥

(अथ ग्रन्थिपर्णस्यैव भेद

ईषत्सुगन्धः स्थैरोयं थनेर इतिलोके प्रसिद्धम् ।)

स्थैरोयकं वहिर्वह शुक्र वर्हञ्च कुक्कुरम् ॥ शीर्य

रोमशुकञ्चापि शुष्कपुष्पं शुकच्छरम् ॥ ६८ ॥

स्थैरोयकं कटु स्वादु तिक्तं स्निग्धन्त्रिदोषनुत् ॥

मेधाशुक्रकारं रुच्यं रक्तोष्णं ज्वरजन्तु जित् ॥ ६९ ॥

हन्तिकुष्ठास्तृड् दाहदौर्गन्ध्यतिलकालकान् ॥

भा० अनन्तर भटोराही भेद कुछ सुगंधवाला स्थैरोय अर्थात् थनेर
इस प्रकार लोकमें प्रसिद्ध है । स्थैरोयक वहिर्वह शुक्र वर्ह कुक्कुर (पी
षे रोम शुक शुकपुष्प शुकच्छर येह ककरोंदाके नामहैं ॥ ६८ ॥
थनेर कड़वा मधुर तिक्त स्निग्ध त्रिदोषका नाशक ॥ और बुद्धिशुक्रइन
के करनेवाला रुचिकेहिम रक्तसोंका नाशक और ज्वरनया क्लमि इनकी
भी दूर करनेवाला है ॥ ६९ ॥ और कुष्ठ रक्तवृषा दाह दुर्गन्धता तथा तिल
कालक इनको नाश करता है ॥

[अथ ग्रन्थिपर्णस्यैव भेदः भटे उर इति नेपालदेशे भ-

वति ।] निशाचरो धनहरो कितवो गणहालकः ॥

रोचको मधुरस्तिक्तः कटुपाके कटुलघुः ॥ १०० ॥

तीक्ष्णो हृद्यो हिमोहन्तिकुष्ठकण्डुकफानिलान् ॥

रक्षाश्रीस्वेदमेदोऽस्त्रज्वरगन्धविषत्ररान् ॥ १०१ ॥

भा० अनन्तर कुक्कुरोंदेके किससे भटे उर इस नामसे नेपाल देश में

होता है ॥ निशाचर धनहर कितव गणनाशक यह भटेउर के नाम हैं ॥ भटेउर रुचिके करने वाला मधुर निक्त पाकमें कटु और कटु तथा हलका होता है ॥ १०० ॥ और नीलगा हृदय के प्रिय शीतल होता है ॥ तथा कुष्ठ कण्डु कफ वान इनको नाश करता है ॥ और रात्स कान्ति पसीना मेद रक्तज्वर गंध विषत्रण इनको भी नाश करता है ॥ १०१ ॥

[अथ भूम्यामलकी सदृश। स्नालीसः।] नालीस
 सुक्तम्पत्राढ्यं धानृ पत्रञ्च नत् स्मृतम् ॥ नालीसं
 लघु नीलगाषां श्वासकासकफानिजान् ॥ १०२ ॥
 निहन्य रुचिगुल्भामवन्दिमान्द्यक्षयामयान् ॥
 अथ कङ्गोलंसुगन्धद्रव्यम् । सीतल चीनीनि लोके ।
 कङ्गोलकोलकम्प्रीकं तथा कोशफलं स्मृतम् ॥
 कङ्गोलं लघु नीलगाषां निक्तं हृद्यं रुचिप्रदम् । १०३ ॥
 आस्यदौर्गन्ध्यहृद्दोगकफवानामयान्ध्यहन् ॥

भा० अनन्तर भूमि आवले के सदृश नालीसपत्र होता है ॥ नालीस पत्राढ्य धात्रीपत्र उल्का कहा है ॥ नालीसपत्र हलका नीरवा उष्ण श्वास कास कफ वान इनको नाश करता है ॥ १०२ ॥ और अरुचि गुल्म अग्नि मान्द्य क्षयरोग इनको भी दूर करता है ॥ अनन्तर कङ्गोलसुगन्धद्रव्य । जिस्को लोकमें सीतल चीनी कहते हैं ॥ कंकोल तथा कोशफल येह कंकोलके नाम हैं । कंकोल हलका नीरवा उष्ण निक्त हृदयका प्रिय और रुचि इनको देने वाला है ॥ १०३ ॥ और मुखकी दुर्गन्धता हृद्दोगकफ वानरोग अन्यापन इनको नाश करता है ॥

[अथ गन्धकोकिला ।] गन्धमालती । स्निग्धोष्णा
 कफहृत्तिक्ता सुगन्धा गन्धवोकिला ॥ गन्धको

किलया तुल्या विज्ञेया गन्धमालती ॥ १०४ ॥

[अथ लामञ्जकमुशीरवत् शीतच्छवि तृण विशेषः।]

लामञ्जकं सुनालं स्याद्मृणालं लयं लघुः ॥ इष्टिका
का पथकं सेव्यं नलदञ्चा वदानकम् ॥ १०५ ॥ ला-
मञ्जकं हिमंनिकं लघुदोष त्वयात्वजित् ॥ त्वगा
मय खेद छच्छ दाह पित्तास्र रोगनुत् ॥ १०६ ॥

भा० अनन्तर गन्धकोकिला और गन्धमालतीको कहनेहैं ॥ यह च
मेलीकी किससे सुगन्धयुक्त होती है ॥ स्निग्ध उष्ण कफको दूर करने
वाली निक सुगन्ध इत प्रकार गंधकोकिला होती है । और कोकिला के
सदृश गन्धमालतीको जानना चाहिये ॥ १०४ ॥

अनन्तर लामञ्जक खसके सदृश पीसी घास होती है ॥ लामञ्जक सुना
ल अमृणाल लयं यह लामञ्जक के नाम हैं ॥ और इष्टिका पथक
सेव्य नलद अवदानक यह भी लामञ्जक के नाम हैं ॥ १०५ ॥ लाम-
ञ्जक शीतल निक हलकी विदोष नाशक है ॥ और त्वचाके रोग पसी-
ना मूलकच्छ दाह रक्तपित्त इनकाभी नाशक है ॥ १०६ ॥

[अथ सलवालुकं कङ्गील सदृशं कुष्ठगन्धिः।] सलवा

लुकं मैलेयं सुगन्धि हरिवालुकम् । सलवालुकं
मैलालुकपित्तं यत्रमीरितम् ॥ १०७ ॥ सलवालुकं क-
टुकं पाके कषायं शीतलं लघु ॥ हन्ति कण्डू ब्र-
णच्छर्दि तृट् कालारुचि हृद्भुजः ॥ १०८ ॥ बलास
विष पित्तास्र कुष्ठ मूल गद रुमीन् ॥

भा० अनन्तर सलवालुक यह शीतलचीनीके सदृश कटुके गन्धयु
क्त होता है । इसके बालुककङ्गी भी कहनेहैं । सलवालुक, मैलेय,
सुगन्धि हरिवालुक सलवालुक सलवालुकपित्त यत्र यह सलवालुक
के नाम हैं ॥ १०७ ॥ सलवालुक कटुवा पाकमें कसेला शीतल हलका

होना है ॥ और खुजली घाव वमन नृषाकास अरुचि इनका नाशक ॥
१९८ ॥ और पीड़ा कफ विष पित्त रक्त कुष्ठ मूत्ररोग हृमि । इनको नाश
करना है ॥ [कोसची मोथा]

गुड़ तजी इति च इयन्तु वितुन्नक नाम्ना वृक्षस्य त्वक् सु
स्ताकृतिः । कुटन्नटं दासपुरं बालेषं परिपेलवम् ॥

स्रव गोपुरगो नर्द कैवर्ती मुस्तकानि च ॥ १९९ ॥

मुस्तावत्येलवं पुष्टं शुक्राभं स्याद्वितुन्नकम् ॥ वि
तुन्नकं हिमं तिक्तं कषायं कटु कान्तिदम् ॥ १९० ॥

कफ पितास्र वीसर्प कुष्ठ कण्डू विष प्रणुत् ॥

भा० अनन्तर जल मोथा के नाम ॥ कुटन्नट, दासपुर, बालेय, परिवेलव
स्रव, गोपुर, गोनरद, कैवर्ति मुस्तक, ॥ १९९ ॥ मोथाके सदृश पेलव,
पुट शकाभ वितुन्नक यह जलमोथा के नाम हैं ॥ जलमोथा शीतल
तिक्त कसेला कड़वा कान्ति के देनेवाला होता है ॥ १९० ॥ और कफ
रक्त विसर्प कुष्ठ खुजली विष इनका नाशक है ॥

[अथ सृक्का सुगन्धिद्रव्यं शाक विशेषः । लङ्गे इक पु-

रीनि लोके च ।] सृक्का सृक् ब्राह्मणी देवी मरुन्माला

ला लता लघुः ॥ समुद्रान्ता वधूः कोटि वर्षा लङ्गे

पिके न्यपि ॥ १९१ ॥ सृक्का स्वाही हिमा वृष्या तिक्ता

निखिल दोषनुत् ॥ कुष्ठ कण्डू विषस्वेद दाहास्र

ज्वर रक्त हन् ॥ १९२ ॥

भा० अनन्तर सृक्का यह एक सुगन्धिद्रव्य शाक विशेष है ॥ इस्को
पिंडित शाक कहते हैं ॥ सृक्का सृक् ब्राह्मणी देवी मरुन्माला लता ।
समुद्रान्ता वधूः कोटि वर्षा लङ्गेपिका यह सृक्का के नाम हैं ॥ १९१ ॥

स्वरको मधुर शीतल धानुवोंको बढ़ानेवाली निकृत्त सम्पूर्ण दोषों कीनाश
कहै ॥ और कुष्ठ खुजली विष पसीना दाह रक्तज्वर और रक्त इनकी
नाशकहै ॥ ११२ ॥

अथ पर्यटी इति प्रसिद्धं पद्मावती इति च । उत्तरदेशे
सुगन्धिद्रव्य ।] पर्यटी रज्जना कृष्णा जतुकाजन
नी जनी ॥ त्व कृष्णाग्नि संस्पर्शा जतु कचक्र
वर्तिनी ॥ ११३ ॥ पर्यटी तुवरा तित्ता शिशिरा चर्षा
कल्लघु ॥ विषत्रण हरी कराडू कफपित्तासुकुष्ठ
नुत् ॥ ११४ ॥

भा०- अनन्तर पर्यटी इस प्रकार प्रसिद्ध है और पद्मावती इस नाम से
उत्तर देशमें प्रसिद्ध है । और मालवमें चकचन् कहते हैं । पर्यटी रजना
कृष्णा जतुका जनी जनी जतुकृष्णा अग्नि संस्पर्शा जतुकन् चक्र
वर्तिनी ॥ ११३ ॥ पापडी कसैली निक शीतल रंगको अच्छा करनेवाली
हलकी होती है ॥ और विष नखमको दूरनेवाली तथा खुजली कफ
रक्तपित्त कुष्ठ इनकी नाश करनेवाली है ॥ ११४ ॥

अथ नलिका उत्तरापथे प्रसिद्धा । सुगन्धावला इति
यवारी इति च क्वचित् प्रसिद्धा ॥

नलिका विद्रुमलना कपोत चरणा नदी ॥ धम
न्यज्जन केशी च निर्मध्या सुषिरा नली ॥ ११५ ॥
नलिका शीतला लघ्वी चक्षुष्या कफपित्त हृत् ॥
कृच्छ्राश्म वान नृणास्तु कुष्ठ कराडू ज्वरापहा ॥ ११६ ॥

भा० अनन्तर नलिका को कहते हैं । उत्तर देशमें प्रसिद्ध है । सुगन्ध
वस्थारे के किसिम से है ॥ और यवारी इस नामसे प्रसिद्ध है ॥
नलिका विद्रुमलना कपोतचरणा नदी ॥ धमनी अञ्जनकेशी

निर्मध्या सुषिरा नली यह नडके नाम है ॥ ११५ ॥ नड शीतल हलका
नेत्रके हिन और कफ पित्तका नाशक है तथा मूत्र कृच्छ्र पथरी वान
नृषा रक्तकुष्ठ खुजली ज्वर इनका नाशक है ॥ ११६ ॥

अथ प्रपौण्डरीकं सुगन्धद्रव्यं पुण्डेरी इति लोके प्रसि-
द्धम् ॥ प्रपौण्डरी पौण्डर्यं चक्षुष्यं पौण्डरीयकम् ॥

पौण्डर्यं मधुरं तिक्तं कषायं शुक्रलं हिमम् ॥

॥ ११७ ॥ चक्षुष्यं मधुरं पाके वार्यं पित्तकफप्रणुन

॥ ॥ इति भावप्रकाशे कर्पूरादि वर्गः ॥ ॥

भा० पुंडेरीके नाम । यह सुगन्धद्रव्य है । प्रपौंडरीक-पौण्डर्य-चक्षुष्यं
-पौंडरीयक-यह पुंडेरीके नाम है ॥ अनन्तर प्रपौंडरीक यह सुगन्ध
द्रव्य और पुंडेरी इस नामसे लोक में प्रसिद्ध है । पुंडरी मधुर तिक्त कसै-
ली शुक्रको उत्पन्न करनेवाली शीतल ॥ ११७ ॥ चक्षुके हिन पाक में
मधुर वर्णको अच्छा करनेवाली पित्तकफकी नाशक है ॥

॥ ॥ इति भावप्रकाशे कर्पूरादि वर्ग समाप्त ॥ ॥

[अथ गुडूच्यादि वर्गः।

[तत्रादौ गुडूच्या उत्पत्तिर्नामानि गुणाश्च ।]

अथ लङ्केश्वरो मानी रावणो रत्नसाधियः ॥ राम

पत्नीं बलात् सीतां जहार मदनानुरः ॥ ११८ ॥ त

तस्तं बलवान् रामो रिपुं जाप पहारिणाम् ॥ नतो

चावरसैन्येन जघान रण मूर्धनि ॥ ११९ ॥

भा० अनन्तर गुडूच्यादि वर्गः ॥ इसमें पहले गुडूची अर्थात् भिल्लोय
की उत्पत्ति और नाम और गुण कहते हैं ॥ अभिमान वाला राक्षसोंका
राजा लंकेश्वर रावण मदनानुर जवा रामपत्नी सीताको बलानकारसे
बुरा ले गया ॥ ११८ ॥ उसके अनन्तर बलवान रामने पत्नी के चुरानेवाले

शत्रु को वानरों की सेनासे रणमें मारा ॥११६॥

हने नस्मिन् सुरारानो रावणे वल गर्विने ॥ देवराजः
सहस्राक्षः परि नुष्टोऽति राघवे ॥ ११७ ॥ तत्र ये वान-
राः केचिद्राक्षसैर्निहिता रणो ॥ तानिन्दो जीवया मा
स संसिच्या मृतवृष्टिभिः ॥ ११९ ॥ ततो येषु प्रदे-
शेषु कपिगात्रात् परिच्युता ॥ पीयूष विन्दवः ये
तु नेभ्यो जाना गुड चिका ॥ १२२ ॥

भा० वल करके गर्विने देवताओंका शत्रु उस रावणके मलेमें ॥ देवता
ओंका राजा इन्द्र रामपर बहुत प्रसन्नहुवा ॥ ११७ ॥ उस रणमें राक्षसके
द्वारा जो मारे गये ॥ उनको इन्द्रने अमृतकी वर्षासे सींचकर जिवाया ॥
॥ ११९ ॥ जिस देशमें वानरोंके शरीर से जो अमृतकी बूंद गिरी उनसे मिले
या उत्पत्ति हुई ॥ १२२ ॥

गुडूची मधुपरी स्याद् मृताऽमृतबल्ली ॥ छिन्ना छि
न्नरुहा छिन्नोद्भवा वत्सादनीनि च ॥ १२३ ॥ जीवन्ती
नन्त्रिका सोमा सोमवल्ली च कुरण्डली ॥ चक्रलक्ष
णिका घीरा विशल्या च रसायनी ॥ १२४ ॥ चन्द्र
हासी वयस्था च मण्डली देव निर्मिता ॥ गुडूची क
ड्कानिन्ता स्वादुपाका रसायनी ॥ १२५ ॥ संग्राहि
णी कषायोष्णा लघ्वी बल्याग्नि दीपनी ॥ दोषत्रया
मनूद्दाह मेहकासांश्च पाराडुताम् ॥ १२६ ॥ काम
ला कुष्ठवानास्र ज्वर रुमि वमीनहरेत् ॥ प्रमेह
प्रवास का सार्श कृच्छ्र हृद्रोग वाननुत् ॥ १२७ ॥

भा० गुडचौमधुपर्णी अमृता अमृतवल्लरी छिन्ना छिन्नरुहा छिन्दोद्भवा
 मत्स्यादनी ॥ १२३ ॥ जीवती नन्धिका सौमा समवल्ली कुंडली ॥ चक्रल
 क्षणिका धौर विशल्या रसायनी ॥ १२४ ॥ चन्द्रहासी चयस्था मंडली
 देवनिर्मिता ॥ यह गिलायके नाम हैं ॥ गिलोय कड़वी निक्त याकमें म
 धुर रसायनी ॥ १२५ ॥ संग्राहणी कसैली उषा हलकी बलकी करने वा
 ली अग्निके शीपन करने वाली ॥ तीन दोष आम तथा दाह प्रमेह कास
 पाराड रोग ॥ १२६ ॥ कामला कुष्ठ वातरक्त ज्वर कृमि वमन इनको नाश
 करती है ॥ आर प्रमेह श्वास कास चवासीर मूत्रकृच्छ्र हृदरोग वात इन
 की नाशक है ॥ १२७ ॥ [अथ पान ।]

नाम्बूल वल्ली नाम्बूली नागिनी नागवल्ली ॥ ना
 म्बूलं विशदं रुच्यं तीक्ष्णोष्णं तुवरं सरम् ॥ १२८ ॥
 वश्यं तिक्तं कटुत्तारं रक्तपित्तकरं लघुः ॥ बल्यं
 श्लेष्मास्य दौर्गन्ध्य मलवानश्रमा यहम् ॥ १२९ ॥

[अथ वेल ।] विल्वः शारिडल्य शैलूषौ मालूर श्रीफ
 लावपि ॥ श्रीफल सुवरस्निको ग्राही रुक्षोऽग्नि पि-
 त्तहन्त ॥ १३० ॥ वातप्लक्ष्म हरो वल्यो लघुरुष्णाश्र पाचनः

भा० अनन्तर पान । नाम्बूल वल्ली नाम्बूली नागिनी नागवल्ली । यह
 पान के नाम हैं ॥ पान विशद रुचिको करने वाला तीक्ष्ण उष्ण कसै-
 ला सरहोता है ॥ १२८ ॥ और चशीकरणा तिक्त कटु त्तार तथा रक्त
 पित्तकी करने वाला हलका ॥ बलको करने वाला तथा कफ सु-
 खकी दुर्गन्धना मल वात श्रम इनका नाशक है ॥ १२९ ॥ अनन्तर वेल
 विल्व शारिडल्य शैलूष मालूर श्रीफल यह वेलके नाम हैं । वेल कसै
 ला तिक्त ग्राही रुक्षता अग्नि पित्तको करने वाला है और वात कफ का नाश
 क बलको करने वाला हलका उषा पाचन है ॥

[अथ गम्भारी ।]

गम्भारी भद्रपर्णी च श्रीपर्णी मधुपर्णिका ॥

काशमीरी काशमेरी हीरा काशमर्थ्यः पीनरोहिणी ॥

१३१ ॥ कृष्णावृन्ता मधुरसा महाकुसुमिकापिच ॥

काशमीरी तुवरा तिक्ता वीर्योष्णा नधुरा गुरुः ॥ १३२ ॥

दीपनी पाचनी मेघ्ना भेदिनी भ्रमशोषजित् ॥ दो

ष तृष्णा मशूलाशी विषदाह ज्वरा पहा ॥ १३३ ॥

तत् फलं वृहदां वृष्यं गुरु केश्यं रसायनम् ॥ वा

तपित्त तृषा रक्त क्षय मूत्र विवन्धनुत् ॥ १३४ ॥

खादु पाके हिमं स्निग्धं तुवराम्ल विष्णुदिक्त ॥ ह-

न्यादाह तृषावान रक्तपित्त क्षतक्षयान् ॥ १३५ ॥

भा० अनन्तर गम्भारी ॥ गम्भारी मधुपरिणी श्रीपर्या मधुपरिणीका काशमीरी काशमीरी हीरा काशमर्थ्य पीनरोहिणी ॥ १३१ ॥ कृष्णावृन्ता मधुरसा महाकुसुमिका यह गम्भारी के नाम हैं । कुम्भेर कसैली तिक्त वीर्यमें उष्ण मधुर भारी होती है ॥ १३२ ॥ और दीपन पाचन कांनिको बढ़ानेवाली भेदनकर निवाली भ्रम शोषको जीननेवाली दोष तृषा आम शूल बवासीर विष दाह ज्वर इनकी नाशक है ॥ ३३ ॥ उस्का फल उष्ट शुकको उत्पन्न करनेवाला रसायन है ॥ वात पित्त तृषा रक्त क्षय मूत्रका बंद होना इनकी नाश करता है ॥ ३४ ॥ पाक में मधुर शीतल चिकना कसैला खटा शुद्धी को करनेवाला है ॥ और दाह तृषा वानरक्त पित्त क्षत क्षय इनको भी नाश करता है ॥ १३५ ॥

[अथ पाराडरि कराठपाराडरि ।]

पाटलिः पाटला मेघ्ना मधुदूनी फलेरुहा ॥ कृष्णावृ

न्ता कुवेरादी कालस्थाल्यलि वल्लभा ॥ १३६ ॥ नाम

पुष्पी च कथिता परास्यात् पाटला सिता ॥ मुष्कको

मोक्षको घण्टा पाटलिः काष्ठपाटला ॥ १३७ ॥

(कालस्थालीत्यत्र काचस्थाली न्येके।)

पाटला तु वसु निक्ता बुध्वा ॥ दोषत्रया पहा ॥ अरुचि
शवास शोथोश्च रुद्धिं हिक्का तृषाहरो ॥ १३८ ॥ पुष्यं
कषायं मधुरं हिमं हृद्यं कफात्त्वनुत् ॥ पित्तानिसार
हृत्कारणं फलं हिक्काश्च पित्तहन् ॥ १३९ ॥

भा० अनन्तर पाटला काष्ठ पाटला ॥ पाटलि पाटला मोघा मधुदूती
फलेरुहा हृष्याहता कुबेराक्षी कालस्थाली अलि बल्लभा ॥ १३६ ॥ नाम
पुष्यो येह पाटलाके नाम कहैहैं ॥ और दूसरी पाटला सिना । सुष्कक
मोक्षक घराटा पाटली काष्ठ पाटला येह कट पाटलके नामहैं ॥ १३७ ॥
काचस्थाली यंत्रांपर कोई काचस्थाली भी कहनेहैं ॥ पाटला कसैली
निक्त शीतल गीनों दोषोंका नाश करनेवाली अरुचि श्वास शोथ रक्त
वमन झटकी तृषाद्वनकी नाशक है ॥ १३८ ॥ उस्का पुष्य कसैला मधुर
शीतल हृद्यकी हित करनेवाला कफ रक्तका नाशक ॥ पित्तानिसारकाना
शक करणको अच्छा करनेवाला है और उस्का फल हृचकी रक्तपित्तक
फ हनका नाशक है ॥ १३९ ॥

[अथ अगेंथ गनियारी इति च ।] अग्निमन्थो जयः

स स्याच्छ्रीपर्णी गरिाकारिका ॥ जया जयन्ती नर्का-
री नादेयी वैजयन्तिका ॥ १४० ॥ अग्निमन्थः श्वय-
थुनुर्दीर्घोष्णः कफवानहन् ॥ पाण्डुनुत् कटुक
स्तिक्त स्तुवरो मधुरो ऽग्निहः ॥ १४१ ॥

भा० अनन्तर अगेंथ जिस्को गनियारी भी कहनेहैं ॥ अग्निमन्थ जयः
श्रीपर्णी गरिाकारिका जया जयन्ती नर्कारी नादेई वैजयन्तिका । येह अ
रुनीके नामहैं ॥ १४० ॥ अरुनी शोथकी नाशक वीर्यमें उष्ण कफवान
को दूर करनेवाली पाण्डुरोगकी नाशक कड़वी निक्त कसैली मधुर अग्नि
को करनेवाली है ॥ १४१ ॥ [अथ सोनापाठा ।]

स्योनाकः शोषणश्च स्यान्नटकडूङ्गदुराटुकः ॥

मगडकपर्णी पत्रोर्णी शुक्रनाश कुटञ्जटा ॥ २४२ ॥ दी
 र्घचन्तो रत्नश्र्वापि पृथुशिम्वः कटम्भरः ॥ स्योना
 को दीपनः पाके कटुक स्ववरो हिमः ॥ २४३ ॥ ग्राही
 तिक्तोऽनिलः श्लेष्म पित्त कास प्रणाशानः ॥ दुग्दु-
 कस्य फलं बालं रुद्धं वान कफोपहम् ॥ २४४ ॥ हृ
 द्यं कषायं मधुरं रोचनं लघुदीपनम् ॥ गुल्मार्शः
 कृमिहृत्प्रीढं गुरुवान प्रकोपणम् ॥ २४५ ॥

भा० अनन्तर सोनापाठा ॥ स्योनाक शोपण नद कटुक इन्द्रक ॥ मगड
 कपर्णी पत्रोर्णी शुक्रनाश कुटञ्जटा ॥ २४२ ॥ दीर्घचन्त अरत्न प्रथुशिम्वः
 कटम्भर । यह सोनापाठाके नाम है ॥ सोनापाठा दीपन पाकमेकटु कसै
 ला शीतल है ॥ २४३ ॥ और दस्तको बंद करने वाला तिक्तमान कफ पित्त जा
 स इनका नाशक है ॥ और सोना पाठे का कच्चा फल रुद्धा वान कफका ना
 शक होता है ॥ २४४ ॥ तथा हृदयका हिन कसैला मधुर रुचिको करने वाल
 हल्का दीपन होता है । वायुगोला बवासीर कृमि इनका नाशक है ॥ तथा
 पक्का फल भारी वानका प्रकोप करने वाला है ॥ २४५ ॥

[अथ वृहत्पञ्च मूलस्य लक्षणं गुणाः ।]

श्रीफलः सर्वतो भद्रा पाटला गणकारिका ॥ स्योना
 कः पञ्चभिश्चैतैः पञ्चमूलं महन्मनम् ॥ २४६ ॥
 पञ्चमूलं महत्तिक्तं कषायं कफवाननुन् ॥ म
 धुरं श्वास कासघ्नं सुषणं लघुग्निदीपनम् ॥ २४७ ॥

भा० अनन्तर वृहत्पञ्च मूलका लक्षण और गुण कहने हैं ॥ कृमि पाट
 ला अरणी सोनापाठा । इन पांचों से वृहत्पञ्च मूल होता है ॥ २४६ ॥
 पंचमूल तिक्त कसैला कफ वानका नाशक है ॥ और मधुर श्वास का
 शक नाशक । उपाह हृदका अग्निका दीपन होता है ॥ २४७ ॥

अथ सरिवन] शालिपर्णी स्थिरा सौम्या त्रिपर्णी
पीवरी गुहा ॥ विदारि गन्धा दीर्घाङ्गी दीर्घपात्रां
शुमत्यपि ॥ १४८ ॥ शालिपर्णी गुरुच्छदी ज्वर
श्वासानिसारजित् ॥ शोष दोषत्रय हरी वृहण्यु
क्ता रसायनी ॥ १४९ ॥ तिक्ता विष हरी स्वादुःक्ष-
न कास कृमि प्रणुत् ॥

भा० अनन्तर सरिवन । शालिपर्णी स्थिरा सौम्या त्रिपर्णी पीवरी । वि-
दारिगन्धा दीर्घाङ्गी दीर्घपात्रा अंशुमती येह सरिवन के नाम हैं ॥ १४८ ॥
सरिवन भारी होता है और वमन ज्वर श्वास अनीसार इनको दूर करना
है । शोष त्रिदोष इनका नाशक धातुओं का सृष्ट करने वाला रसायन है
॥ और तिक्त विषका नाशक मधुर क्षन कास कृमी इनका भी नाशक
है ॥

[अथ पिठवन ।]

पृष्णिपर्णी पृथक्पर्णी चित्रपर्य हि रथ्य पि ॥
क्रोष्टु विन्ना सिंह पुच्छी कलशीद्धा वनिर्गुहा ॥ १५० ॥
पृष्णिपर्णी त्रिदोषघ्नी वृष्योष्णा मधुरा सरा ॥ हन्ति
दाह ज्वर श्वास रक्तातीसार नृड् वमीः ॥ १५१ ॥

भा० अनन्तर पिठवन ॥ पृष्णिपर्णी पृथक्पर्णी चित्रपरिः हि परिः
क्रोष्टु विन्ना सिंह पुच्छी कलशी धावनी गुहा ॥ १५० ॥ येह पिठवन के
नाम हैं । पिठवन त्रिदोषकी नाशक धातुको सृष्ट करने वाली उष्ण मधुर
सरहोती है ॥ और दाह ज्वर श्वास रक्तानिसार तृषा वमन इनको नाशक
ती है ॥ १५१ ॥

[अथ वरहराट्टा ।]

वार्त्ताकी क्षुद्र भरटाकी महती वृहती कुल्ली ॥ हिङ्गु-
ली राष्ट्रिका सिंही महोष्ट्री दुःप्रधर्षिणी ॥ १५२ ॥
वृहती प्राहिणी हृद्या पाचनी कफवान हन् ॥

कटु तिक्तास्य वैरस्य मलारोचकं नाशिनी ॥१५३॥
उष्ण कुष्ठं ज्वरश्वास शूलकासाग्निमान्द्यजित् ॥

[अथ भटकटैः प्रा रोगिणी इति च ।]

करणकारी तु दुःस्पर्शा क्षुद्रां व्याघ्री निदिग्धिका ॥ क
रालिका कण्टकीनि धावनी वहनी तथा ॥१५४॥
उभे च वहन्यौ । यत आह सुश्रुतः ।

भा० अनन्तर बड़ी कटेली ॥ वानीकी क्षुद्र भण्टाकी महती वहनी कुली ।
हिंगुली राष्ट्रिका सिंही महोष्ठी बुधधरिणी ॥ १५२ ॥ यह बड़ी कटेलीके
नाम हैं ॥ बड़ी कटेली का बिज्ञ हृदयके हित पाचन कफ वातकी नाशक
है ॥ और कड़वी तिक्त सुखकी विरसता मल अरुचि इनकी नाशक है ॥
१५३ ॥ और उष्ण हीनी है तथा कुष्ठ ज्वर प्रवास शूलकास अग्निमान्द्य इन
को जीतने वाली है ॥ ॥ अनन्तर छोटी कटेली करणकारी दुस्पर्शा क्षु
द्रा व्याघ्री निदाधिका । करालिका कण्टकीनी धावनी वहनी यह छोटी
कटेलीके नाम हैं ॥ १५४ ॥ दोनों कटेली । जैसे कि कहा है सुश्रुतने ॥

क्षुद्राया क्षुद्र भद्राख्या वहनीति निगद्यते ॥ श्वेता
क्षुद्रा चन्द्रहासा लक्ष्मणा क्षेत्रवृत्तिका ॥ १५५ ॥
गर्भदा चन्द्रभा चन्द्री चन्द्रपुष्या प्रियङ्गुरी ॥ करण-
कारी सरा तिक्ता कटुका दीपनी लघुः ॥ १५६ ॥ रूक्षो
ष्ण पाचनी कास प्रवासज्वर कफा निलान् ॥
निहन्ति पीनसं प्रवास पार्श्व पीडा हृदामयान् ॥ १५७

भा० छोटी कटेली और बड़ी कटेली इनकी वहनी ऐसा कहते हैं ॥ और
सुक्रेद कटेलीको चन्द्रहासा लक्ष्मणा क्षेत्रवृत्तिका ॥ १५५ ॥ गर्भदा,
चन्द्रप्रभा चन्द्री चन्द्रपुष्या प्रियङ्गुरी ऐसा कहते हैं ॥ कटेली सर तिक्त
कड़वी दीपन हलकी ॥ १५६ ॥ रूखी गर्भ पाचन कास प्रवासज्वर कफ

वान इनको नाश करती है ॥ और का स श्वास पसलीकी पीड़ा हृदयेग ।
इनको भी नाश करती है ॥ १५७ ॥

नयो फलं कटुरसे पाके
च कटुकं भवेत् ॥ शुक्रस्य रेचनं भेदि तिक्तं पिप्ता
ग्नि क्लृप्तं ॥ १५८ ॥ हन्यात् कफ मरुत् करण्डू का-
स भेद कृमिज्वरान् ॥ तद्वन्त्रोक्ता सिताक्षुश विशे-
षान् गर्भ कारिणी ॥ १५९ ॥

भा० इनका फल रसमें कड़वा और पाकमें भी कड़वा होता है ॥ शुक्र का
रेचक भेदन करनेवाला तिक्त पित्त अग्निकी करनेवाला हलका होता है
१५८ ॥ और कफ वायु खुजली कास भेद कृमिज्वर इनको नाश करती है
॥ उसी प्रकार सुक्रेद कटेलीके भी गुण हैं विशेष करके गर्भको करने वा-
ली है ॥ १५९ ॥

[अथ गोक्षुर ।]

गोक्षुरः क्षुरकोऽपि स्थान् विकण्टः स्वादुकरण्टकः ।

गोकरण्टको गोक्षुरको वनशृङ्गाट इत्यपि ॥ १६० ॥

फलं कषाश्रवा दंष्ट्रा च तथा स्याद्विस्तृगन्धिका ॥

गोक्षुरः शीतलः स्वादुर्बलहाद् वस्ति शोधनः ॥

॥ १६१ ॥ मधुरो दीपनो वृष्यः पुष्टिदश्चाशमरी हरः ॥

प्रमेह श्वासकासांश्च कच्छ हृदयेग वाननुत् १६२ ॥

भा० अनन्तर गोखरु ॥ गोक्षुर क्षुरक विकण्डू स्वादुकण्टक ॥ गोकण्टक गो-
क्षुरक वनशृङ्गाट ॥ १६० ॥ पल्लवुप श्वदंष्ट्रा इक्षुगन्धिका । येह गोखरु-
के नाम हैं ॥ गोखरु शीतल मधुर बलकी करनेवाला वस्ति शोधक ॥
१६१ ॥ मधुर दीपन शुक्रको बढ़ानेवाला पुष्टिकी देनेवाला अशमरीका नाश
करे ॥ और प्रमेह श्वास कास स्वामीर मूत्रकच्छ हृदयेग वान का
नाशक है ॥ १६२ ॥

[अथ लघु पञ्च मूलस्य लक्षणं द्रुणाश्च
 शालिपर्णी पृष्ठपर्णी वार्ताकी कराटकारिका ॥
 गोक्षुरः पञ्चभिश्चैतेः कनिष्ठं पञ्चमूलकम् ॥ २६३
 पञ्च मूलं लघु स्वादु वल्यम्पित्तानिलापहम् ॥
 नात्युष्णं दंहरां ग्राहि ज्वर श्वासो श्मरी प्रणान् ॥ २६४

[अथ दशमूलस्य लक्षणं द्रुणाश्च ।

उभाभ्यां पञ्चमूलाभ्यां दशमूलमुदाहृतम् ॥ द-
 शमूलं त्रिदोषघ्नं श्वासकासशिरोरुजः ॥ २६५ ॥

तन्द्राश्लेथज्वरानाह पार्श्वपीडा रुचिहरेत् ॥

भा० अनन्तर लघु पंचमूल के लक्षण और गुण ॥ सरिवन पिठवन
 दोनों कटेली ॥ गोखरु इन पांचों से लघु पंचमूल हीना है ॥ २६३ ॥ पंच
 मूल हलका मधुर बलको देनेवाला पित्त वातका नाशक है । और न
 वहन गम धातुको घटानेवाला काविज है और ज्वर श्वास पथरी इन
 कानाशक है ॥ २६४ ॥ ॥ अनन्तर दशमूल का लक्षण और गुण ।
 दोनों पंचमूलों से दशमूल कहा गया है ॥ त्रिदोष कानाशक और श्वास
 कास सिरकी पीडा ॥ २६५ ॥ तन्द्रा श्लेथज्वर अफारा पसलीकी पीडा अ
 रुचि इनको नाश करना है ॥

[जीव इति शाक विशेषः । शर्करावन्मधुर पुष्या व्रततिः ।]

जीवन्ती जीवनी जीवा जीवनीया मधुसवा ॥ मङ्गल्या
 नामधेया च शाकं श्रेष्ठा पयस्विनी ॥ २६६ ॥ जीव-
 न्ती पीतला स्वादुः स्निग्धा दोषत्रयापहा ॥ रसाय-
 नी बलकरी चक्षुष्या ग्राहिणी लघुः ॥ २६७ ॥

भा० जीवन्ती शाक विशेष है । शर्कराके सहस्र मधुर पुष्यवाली व्रत ति
 है । जीवन्ती जीवनी जीवा जीवनीया मधुर श्रवा । मङ्गल्य
 नामधेया शाकश्रेष्ठा पयस्विनी यह जीवन्तीके नाम है ॥ २६६ ॥ जीवन्ती

शीतल मधुर चिकनी विदोषनाशक ॥ रसायन बलको करनेवाली चतुर्के
हिन कविज्ञ हलकी होती है ॥ १६७ ॥ [अनन्तर वन मृग ।]

अथ मुद्गपर्णी ।] मुद्गपर्णी काकपर्णी सूर्यपर्य्ये लिय-
का सहा ॥ काकमुद्गा च सा प्रोक्ता तथा मार्जारगंधिका

॥ मुद्गपर्णी हिमा रूक्षा तिक्ता स्वादुश्च शुक्रला ॥ च
क्षुष्या क्षतशोथघ्नी ग्राहिणी ज्वर दाह नृत् ॥ १६८ ॥
दोषत्रयहरी लघ्नी ग्रहण्यशोऽतिसार जित् ॥

अथ माषपर्णी ।] माषपर्णी सूर्यपर्य्ये काम्बोजी हय
पुच्छिका ॥ पाण्डु लोमषपर्णी च कृष्णाटन्ता म
हा सहा ॥ १७० ॥ माषपर्णी हिमा तिक्ता रूक्षा शु-
क्र बलास्वकृत् ॥ मधुरा ग्राहिणी शोथ वान पित्त
ज्वरं स्रजित् ॥ १७१ ॥

भा० अनन्तर वन मृग ॥ मुद्गपर्णी काकपर्णी सूर्यपर्य्ये अल्पिका स-
हा काकमुद्गा मार्जारगंधिका । ये वनमृगके नाम हैं ॥ १६७ ॥ वनमृग
शीतल रूक्ष तिक्त मधुर शुक्रको उत्पन्न करनेवाला ॥ चतुर्के हिन क्षत
शोथ कानाशक काविज्ञ ज्वर दाह कानाशक ॥ १६८ ॥ तीनों दोषोंको दृ-
र करनेवाला हलकी है और संग्रहणी बवासीर अतिसार इनको जीतने वा-
ला है ॥ अनन्तर वन उड़द ॥ माषपर्णी सूर्यपर्य्ये काम्बोजी हयपु-
च्छिका पाण्डु लोमषपर्णी कृष्णाटन्ता महासहा ॥ १७० ॥ ये वन उ-
ड़दके नाम हैं ॥ वन उड़द शीतल तिक्त रूक्ष शुक्र और बलको करने
वाला मधुर काविज्ञ है ॥

और शोथ वान पित्त ज्वर रक्त इनको जीत-
ने वाला है ॥ १७१ ॥

[अथ जीवनीय गणस्य लक्षणा गुणाश्च ।]

अष्टवर्गः सयष्टीको जीवन्ती युद्धपरिष्का ॥ माषपरीणी
 गरुणाऽयन्तु जीवनीयगराः स्मृतः ॥ १७२ ॥ जीवनी
 मधुरश्चापि नाम्ना स परिकीर्तितः ॥ जीवनीयगराः
 प्रोक्तः शुक्रकृद् वृंहणो हिमः ॥ १७३ ॥ गुरुर्गर्भ प्रद
 स्तन्य कफकृन् पित्तशक्तहृन् ॥ नृषाणां शोषं ज्वरं
 दाहं रक्तपित्तं व्यपोहति ॥ १७४ ॥

भा० अनन्तर जीवनीय गणका लक्षण और गुण ॥ अष्टवर्ग । मुलह ठीके
 साथ और जीवन्ती वनमूंग । वन उड़द ये जीवनीय गणकहा है ॥ १७२ ॥
 जोवन और मधुर भी नामसे बोह कहा गया है ॥ जीवनीय गण शुक्र की
 करनेवाला धातुको बढ़ानेवाला शोतल ॥ १७३ ॥ भारी गर्भको देनेवा-
 ला दूध और कफको करनेवाला पित्तरक्त कानाशक है ॥ नृषा शोष
 ज्वर दाह रक्तपित्त वृन्को नाश करता है ॥ १७४ ॥

[अथ शुक्लरक्तैरण्डः ।]

शुक्ल एरण्ड आमराडु श्वित्री गन्धर्व हस्तकः ॥
 पञ्चाङ्गुलो वर्द्धमानो दीर्घदराडोऽप्यदण्डवः ॥ १७५ ॥
 वानारि स्तरुणाश्चापि रुवूकश्च निगद्यते ॥ रक्तोऽप्यो
 रुवूकः स्याद्रुवूको रुवूस्तथा ॥ १७६ ॥ व्याघ्रपु
 ष्ठश्च वानारिश्चञ्चु रुत्तानपत्रकः ॥ एरण्ड युग्मं
 मधुरं मुष्णं गुरु विनाप्रायेत ॥ १७७ ॥

भा० अनन्तर स्वेत अरुंड ॥ अरुंड ॥ आमण्ड चित्र गंधर्व हस्तक । पं
 चांगुल वर्द्धमान दीर्घदराड अदण्डव ॥ १७५ ॥ वानारि तरुणा रुवूक ये
 ह एरण्ड के नाम हैं ॥ वृसरा लाल अरण्ड ॥ उरुवूकरुवू ॥ १७६ ॥ व्या
 घ्रपुष्ठ वानारि चञ्चु उत्तानपत्रक ये ह लाल । एरण्ड के नाम हैं ये ह
 दोनों अरुंड मधुर उष्ण भारी होते हैं ॥ १७७ ॥

शूल शोथ कटीवस्ति शिरः पीडोत्तर ज्वरान् ॥ ब्रध्म

श्वास कफानाह कासकुष्ठा ममारुतान् ॥ १७८ ॥
 सरगड पत्रं वानघ्नं कफ कृमि विनाशनम् ॥ मूत्र
 कृच्छ्र हरञ्चापि पित्तरक्त प्रकोपणम् ॥ १७९ ॥
 वातार्य्य प्रदलं गुल्मं वस्तिशूल हरं परम् ॥ कफ
 वात कृमीन् हन्ति वृद्धिं सप्तविधामपि ॥ १८० ॥
 सरगड फल मन्थुषां गुल्म शूला निलापहम् ॥
 यक्षत् स्त्रीहोदराणोघ्नं कटुकं दीपनं परम् ॥ १८१ ॥
 तद्वन्मज्जा च विड् भेदी वातश्लेष्मोदरा पहः ॥

भा० शूल शोथ तथा कमर पेड़ सिर इनकी पीड़ा उदररोग ज्वर च
 श्वास कफ अफार कास कुष्ठ आमवात इनको नाश करता है ॥ १७८ ॥
 अंडीका यत्ना वातनाशक कफ कृमि को दूर करने वाला ॥ और मूत्र
 कृच्छ्रका नाशक तथा पित्तरक्त को प्रकोप करने वाला है ॥ १७९ ॥
 अंडीका अग्रदल वायुगोला पेड़का शूल इनका अन्य नानाशक है ।
 कफ वात कृमि और सात प्रकार की अंडवृद्धि इनको भी नाश करता है
 ॥ १८० ॥ अंडीका फल बहत्तं गरम होता है और वायुगोला शूल
 वात इनका नाशक तथा यक्षत् स्त्री उदर चवासीर इनका नाशक
 कटु अन्यन्त दीपन ॥ १८१ ॥ होता है उसी प्रकार उस्कौगिरी मलकी
 भेदन करनेवाली वात कफ उदरकी नाशक है ॥

[अथ शुक्ल रक्तार्क इति लोके ।]

अलर्को गुणरूपः स्यान्मन्दारो वसुकोऽपि च ॥ श्वेत
 पुष्यः सदापुष्यः सवालार्कः प्रतीपसः ॥ १८२ ॥ र
 क्तोयरोर्कं नामा स्याद्वर्कं पर्यो विकीरणः ॥ रक्त उ
 ष्यः शुक्ल फल स्यात्स्फोटः प्रकीर्णितः ॥ १८३ ॥

अर्कद्वयं सरं वान कुष्ठ कण्डू विषत्रणान् ॥ निहन्ति
 लीह गुल्मार्शं प्लेष्मोदर प्राकृत कृमीन् ॥ १८४ ॥
 अलर्कं कुसुमं चष्यं लघुदीपन पाचनम् ॥ अरोच
 क प्रसेकार्शः कास श्वास निवारणम् ॥ १८५ ॥
 रक्तार्कं पुष्यं मधुरं सतिक्तं कुष्ठ कृमिघ्नं कफनाश
 नञ्च । अर्थो विषं हन्ति च रक्तपित्तं संग्राहि गुल्मे
 श्वयथौ हितं नन् ॥ १८६ ॥ तीर मर्कस्य निक्तोष्णं
 क्षिग्धं सलवणं लघु ॥ कुष्ठ गुल्मोदर हरं श्रेष्ठ मेत-
 द् विरचनम् ॥ १८७ ॥

भा० अनन्तर सफेद और लाल आक को कहने हैं ॥ अलर्क गुणरूप
 मंदार वस्तुक ॥ श्वेतपुष्य सदापुष्य सवान्तार्क प्रतीपस । यह सफेद
 आक के नाम हैं ॥ १८२ ॥ दूसरा लाल सूर्यके नामवाला होता है । और
 अर्कपल विकीर्ण । रक्तपुष्य शुक्लफल तथा स्फोट यह नाम कहें हैं ॥
 ॥ १८३ ॥ दोनों आक सरवान कुष्ठ कण्डू घाव विष । इनको नाश कर
 ता है । औरपलही वायुगोला ववासीर कफ उदर मल कृमि इनको भी
 नाश करता है ॥ १८४ ॥ आक का फूल धानूकोबढ़ानेवाला हलका ची
 यन पाचन होता है । और अरुचि प्रसेक ववासीर कास श्वास । इनका
 दूर करनेवाला है ॥ १८५ ॥ लाल आकका फूल मधुर तिक्त होता है ।
 और कुष्ठ हानि इनका नाशक और कफका भी नाशक है ॥ ववासीर
 निष इनको नाश करता है और रक्त पित्तका भी नाशक है । और का-
 बिज तथा वायुगोला सूजनमें भी रोह हित है ॥ १८६ ॥ आकका दूध
 तिक्त उष्ण चिकना लवण के सहित होता है हलका ॥ तथा कुष्ठ गुल्म
 उदर इनका नाशक और यह श्रेष्ठ रेचन है ॥ १८७ ॥

[अथ सेङ्गरुडः] सेङ्गरुडः सिंहनुगडः स्या द्वज्जी वज्रद्रु
 मोऽपि च । सुधासमन्त दुग्धा च स्तुक स्त्रियां स्या
 न् स्नुही गुडा ॥ १८७ ॥ सेङ्गरुडो रेचन स्त्रीदणो दीपनः

कटको गुरुः ॥ शूलमष्टीलिका अध्मानः कफगुल्मी
 दरा निलान् ॥ १८६ ॥ उन्माद मोह कुष्ठार्शः शोथ
 भेदोऽश्म पारादुताः ॥ व्रण शोथ ज्वर स्नीह विष
 दूर्वा विषं हरेत् ॥ १८७ ॥ उष्णवीर्यं स्नुही क्षीरं स्नि
 ग्धञ्च कटुकं लघु ॥ गुल्मिनां कुष्ठिनाञ्चापि नथे
 वौदर रोगिणाम् ॥ १८९ ॥ हितमेतद्विरेकार्थे ये च
 न्ये दीर्घ रोगिणः ॥

भा० अनन्तर शूहर ॥ सेह्रगड सिंह तुण्ड क्री वज्रद्रुम । सुधा समंत
 दुग्धास्त्रुक स्नुही गुडा येह शूहर के नाम हैं ॥ १८८ ॥ थोहर रेचन नी
 क्षण दीपन कटु भारी होता है और शूल अष्टीलिका आध्मान कफ वा
 य गोला उदर वात ॥ १८६ ॥ उन्माद मोह कुष्ठ ववासीर शोथ भेद पथ
 री पांडुरोग घृण शोथ ज्वर स्नीह विष सूषिविष इनको नाश करता है ॥
 १८७ ॥ शूहर का दूध उष्ण वीर्य स्निग्ध कटु लघु होता है । और गुल्म
 वाले और कुष्ठ रोग वाले तथा उदर रोग वाले इनको ॥ १८९ ॥ यह विरे
 चन के अर्थ हित है तथा और दीर्घ रोगियों को हित है ॥

[अथ सेह्रगड भेदः ।] शानला अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धा ।]

शानला सप्तला सारा विमला विदुला च सा ॥ तथा
 निगदिता भूरिफेना चर्मकषेत्यपि ॥ १८२ ॥ शान-
 ला कटुका पाके वानला शीतला लघुः ॥ तिक्ता
 शोथ कफानाह पित्रोदावर्त्त रक्तजित् ॥ १८३ ॥

भा० अनन्तर थोहर भेद । शानला इस नामसे प्रसिद्ध है । शानला सप्त
 ला सारा विमला विदला तथा भूरिफेना चर्मकषा येह सीका काईके
 नाम हैं ॥ १८२ ॥ सीका फाई पाक में कटु वायुको करनेवाली शीतल
 हलकी होती है ॥ और तिक्त होती है । तथा शोथ कफ अफारा पित्त
 उदावर्त्त रक्त इनको जीतनेवाली है ॥ १८३ ॥

अथ करिहारी ।] कलिहारी तु हलिनी लाङ्गुली शक्रपु-
ष्यधि ॥ विशाल्याग्निं शिरवानन्ता वह्नि वक्त्रा च ग-
र्भनुत् ॥ २६४ ॥ कलिहारी सरा कुष्ठ शोफार्शो व्रणा
शूलजिन् ॥ सक्षारा श्लेष्म जिज्ञिता कटुका नुवरापि
च ॥ २६५ ॥ नीलोष्णा कृमिहृत्स्वी पित्तला गर्भ
पातिनी ॥

भा० करिहारी कलिहारी हलिनी लाङ्गुली शक्रपुष्पी विशाल्या अग्निशि-
खा अनन्ता वह्निवक्त्रा गर्भनुत् यह कलिहारी के नाम हैं । २६४ ॥
कलिहारी सर कुष्ठ शोफ बवासीर व्रणा शूल इनको जीतने वाली है ।
कुष्ठेक क्षारवाली कफको जीतने वाली तिक्त कड़वी कसैली भी होती
है ॥ २६५ ॥ नीलोष्णा उष्णा कृमिको नाश करने वाली हलकी पित्तको उ-
त्पन्न करने वाली गर्भकी गिराने वाली होती है ॥

अथ श्वेत रक्त करवीरः ।] करवीरः श्वेतपुष्यः शत
कुम्भो ऽश्वमारकः ॥ द्वितीयो रक्तपुष्यश्च चण्डा
नीलगुडस्तथा ॥ ^{२६६} करवीर द्वयं तिक्तं कषायं कटुक
ञ्च तत् ॥ व्रणालाघव कृन्नेत्र कोपकुष्ठव्रणाय-
हम् ॥ २६७ ॥ वीर्य्येषां कृमिकराद्भ्रं भक्षितं वि
षवन्मतम् ॥

भा० अनन्तर मुफेद और लाल कनेरको कहते हैं ॥ सफ़ेद फूलके कनेरको ।
शतकुम्भ अश्वमारक कहते हैं ॥ और दूसरे लाल फूलके कनेरको चंडात
नीलगुड कहते हैं ॥ २६६ ॥ दोनों कनेर तिक्त कसैले कड़वे होते हैं और जखम
हलका करनेवाले और नेत्रको कुष्ठ व्रणा इनके नाशक होते हैं ॥ २६७ ॥
नया वीर्य्यमें उष्णा कृमि खुजली इनकी नाशक है ॥ और खानेसे विषके
समान होते हैं ॥

अथ धनूरः ।] धनूर धूर्त धनूरा उन्मत्तः कनकाह्वयः ॥
 देवता कितवचूरी महामोही शिवप्रियः ॥ १९८ ॥
 मातुलो मदनश्चास्य फले मातुलपुत्रकः ॥ धनूरी
 मदवर्णाग्निं वानकृज्ज्वर कुष्ठनुन ॥ १९९ ॥ कषा
 यो मधुरस्त्रिको युकालिसा विनाशकः ॥ उष्णो
 गुरुज्वरां श्लेष्मं कराडु कृमि विषा पहः ॥ २०० ॥

भा० अनन्तर धनूर ॥ धनूर धनूरा उन्मत्त स्वर्णके नामवाला देवता कि
 तवचूरि महामोही शिवप्रिया ॥ १९८ ॥ मातुल मदन यह धनूरे के ना
 म है । और इसके फलको मातुल पुत्रक कहते हैं ॥ धनूरा मद अग्निवा
 न इनको करनेवाला ज्वर कुष्ठ का नाशक ॥ १९९ ॥ कसैला, मधुर, निक्त,
 होता है जूवां लीक इनका नाशक । गरम भारी होता है । दृण कफ खुजली
 कृमि विष इनका नाशक है ॥ २०० ॥

अथ अरूसा ।] वासको वाशिका वासा भिषडुमाता च
 सिंहिका ॥ सिंहास्थो वाजिदन्ता स्यादाट रूखोऽट रू
 खकः ॥ २०१ ॥ आट रूखो दृषस्ताम्रः सिंहपर्णश्च स
 स्मृतः ॥ वासकी वानकृत् स्वर्ध्वः कफ पितास्र ना
 पानः ॥ २०२ ॥ निक्त स्तुवरको हृद्यो लघुः शीत रूठ-
 डर्निहत् ॥ पवास कासज्वर च्छर्दि मेह कुष्ठ लया
 पहः ॥ २०३ ॥ [अथ दवन् वाधरा ।]

अनन्तर वांसा ।] वासक वाशिका वासा भिषडुमाता सिंहिका ॥ सिंहास्य
 वाजिदन्ता आटरूख अटरूखक ये वांसेके नाम हैं । और दृष नाम सिंघ
 पर्णी वांसा वानकी करनेवाला स्वरको अच्छा करनेवाला कफ रक्त पित्त
 इनका नाशक ॥ २०१ ॥ निक्त कसैला हृद्यको अच्छा करनेवाला हलक
 शीत नृपा पीड़ा इनको नाश करनेवाला । पवास कास ज्वर वमन प्रमेह

कुष्ठ और क्षय इनका नाशक होता है ॥ २०३ ॥ [पित्तपापड़ा]

पर्यटोचर त्रिक्तश्च स्मृतः पर्यटकश्च सः ॥ कृषिन्तः

पांशुपर्यायस्तथा कवच नामकः ॥ २०४ ॥ पर्यटो

हन्ति पित्तास्र भ्रमनृषणा कफज्वरान् ॥ संग्राही

शीतलस्त्रिक्तो दाहनुद्दानलो लघुः ॥ २०५ ॥

अथ निम्बः ।] निम्बः स्यात् पिचुमर्दश्च पिचुमन्दश्च

त्रिक्तकः ॥ अरिष्टः पारिभद्रश्च हिङ्गुः निर्व्यास इत्यपि

॥ २०६ ॥ निम्बः शीतो लघुर्ग्राही कटु पाकोग्नि वात

नुत् ॥ अहृद्यः श्रमनृद् कासज्वररुचि कृमिप्रणुत्

॥ २०७ ॥ व्रण पित्तकफ छर्दि कुष्ठहृल्लास मेहनुत् ॥

निम्बपत्रं स्मृतं नेत्र्यं कृमि पित्त विषप्रणुत् ॥ २०८ ॥

वातलंकटु पाकञ्च सर्वाशोचक कुष्ठनुत् ॥ निम्ब

फलं रसे त्रिक्तं पाके कटु भेदनम् ॥ २०९ ॥ स्त्रि

ग्धं लघूषां कुष्ठघ्नं गुल्मार्शः कृमि मेहनुत् ॥

भा० अनन्तर पित्तपापड़ा ॥ पर्यट वरिक्त पर्यटक पांशुपर्याय कवच

च नामक । येह पित्तपापड़ेके नामहैं ॥ २०४ ॥ पित्तपापड़ा पित्त भ्रम

नृषा कफज्वर इनको नाश करताहै । और कृषिन्त शीतल त्रिक्त

दाह इनको नाश करनेवाला वातको करनेवाला हलका ॥ २०५ ॥

[अनन्तर नींबूके नाम और गुण ।] नींबूपिचुमर्द पिचुमन्द त्रिक्तक

अरिष्ट पारिभद्र हिङ्गुनिर्व्यास । येह नींबूके नामहैं ॥ २०६ ॥ नींबू शी

तल हलका कृषिन्त पाकोमकटु अग्निवायुको करनेवाला हृद्य का

अप्रिय श्रमनृषा कासज्वर अरुचिकृमि इनका नाशक है ॥ २०७ ॥

और व्रण पित्तकफ भ्रमन कटु हृल्लास प्रमेह इनका नाशक है ॥ नींबूका

पत्रा आंखों को हिन कृमि पित्त विष इनका नाशक ॥ २०० ॥ और वायुको करने वाला पाकमें कटु सम्पूर्णा अरुचि कुष्ठ इनका नाशक है ॥ और निम्बोली रसमें तिक्त और पाकमें तिक्त तथा कड़वी भेदन होती है ॥ २०१ ॥ चिकनी हलकी गरम तथा कुष्ठकी नाशक वायुगोला बवासीर कृमि प्रमेह इनका नाशक है ॥

अथ वकाइन ।] महानिम्बः स्तूतो द्वैका रम्यको विषमु-

ष्टिकाः ॥ केशा मुष्टि निम्बकश्च कार्मुको जीव इत्य-

पि ॥ २१० ॥ महानिम्बो हिमोरुक्ष स्तितो याही कया

यकः ॥ कफ पित्त भ्रमच्छर्दि कुष्ठ हृल्लास रक्तजित्

॥ २११ ॥ प्रमेह श्वास गुल्मापेण मूषिका विष नाश

तः ॥ [अथ फरहद ।] पारि भद्रो निम्बतरुर्मन्दार-

रः पारिजातकः ॥ पारि भद्रोऽनिल प्लेष्म शोथ

भेदः कृमिप्रणत् ॥ २१२ ॥ पत्रं पित्तरेगघ्नं कर्ण-

व्याधि विनाशनम् ॥

भा० अनन्तर वकाइन । महानिम्ब उद्रेक अरम्यक विष मुष्टिक । केशा मुष्टि निम्बक कार्मुक जीव यह वकाइन के नाम हैं ॥ २१० ॥ वकाइन शीत लरुक्ष तिक्त काबिज्ञ कसैला ॥ कफ पित्त भ्रम वमन कुष्ठ हृल्लास रक्त इन को जीतने वाला है ॥ २११ ॥ प्रमेह श्वास वायुगोला बवासीर मूषिके विषका नाशक है ॥ २१२ ॥ अनन्तर फरहद ।] पारिभद्र निम्बतरु मंदार पारिजातक । यह जलनीम के नाम हैं ॥ जलनीम वात कफ शोथ भेद कृमि इनका नाशक है ॥ २१२ ॥ और इसका पत्र पित्तरेग का नाशक और कर्णरोगका भी नाशक है ॥

अथ कचनारः ।] काञ्चनारः काञ्चनको गरुडारिः शो

गापुष्पकः ॥ [अथ कचनार भेदः ।] कौविदारश्च

मरिकः कुहालो युगपत्रकः ॥ कुण्डली ताम्रपुष्पश्च

स्मन्तकः स्वल्पकेशरी ॥ २१३ ॥ काञ्चनारी हिमो ग्रा-
ही त्वर श्लेष्म पित्तनुत् ॥ कृमि कुष्ठ गुद भ्रंश ग-
ण्डमाला व्रणा पहः ॥ २१४ ॥ कोविदारोऽपि नद्वत्स्या
तयोः पुष्यं लघु स्मृतम् ॥ रूक्षं संग्राहि पितास्र प्रद-
र क्षय कासनुत् ॥ २१५ ॥

भा० अनन्तर कचनार ॥ काञ्चनार काञ्चनक गंडारी शोणपुष्पक । येह
कचनार के नाम हैं ॥ [अनन्तर दूसरी कचनार के नाम ।] कोविदार मरिच
कुहाल युगपत्त्वक ॥ कुंडली नाम्नपुष्प अस्मन्तक स्वल्पकेशरी ॥ २१३ ॥
यह दूसरी क्लिस्मकी कचनार के नाम हैं ॥ कचनार शीतल क्वाविज कसेला
कफ पित्तका नाशक ॥ कृमि कुष्ठ गुदभ्रंश गंडमाला व्रण इनका नाशक हैं
॥ २१४ ॥ दूसरे क्लिस्मका कचनार भी उसीके समान होता है ॥ और उनका फूल
ल हलका होता है ॥ रूखा क्वाविज रक्तपित्त प्रदर क्षय कास इनका नाशक
है ॥ २१५ ॥

अथ सहिज्जन प्रथमः श्वेत रक्तश्च ॥] शोभाज्जनः

शिशु नीक्षो गन्धका क्षीवमोचकः ॥ तद्दीजं श्वेत
मखिं मधु शिशुः सलोहिनः ॥ २१६ ॥ शिशुः कटुः
कटुः पाके नीक्षोष्णो मधुरो लघुः ॥ दीपनो रोचनो
रूक्षः चारुतिक्तो विदाहकन् ॥ २१७ ॥ संग्राही शु-
क्रलोहयो पित्त रक्त प्रकोपनः ॥ चक्षुष्यः कफ
वानघ्नो विद्रधि प्रवयथु कृमीन् ॥ २१८ ॥

भा० अनन्तर सहजना काला सुफेद लाल ॥ शोभाजन शिशु नीक्षा गं-
धक आक्षीव मोचक । उस्का दीज सफेद मिस्वके समान है । मधुर
सहजना कुछ लाल होता है ॥ २१६ ॥ सैजना कटुवा पाकमें कटु नीक्षा
उष्ण मधुर हलका दीपन रोचन रूक्ष क्षार तिक्त विदाहकी करने वाला ।
॥ २१७ ॥ क्वाविज शुक्रको उत्पन्न करने वाला हृदयको अच्छा करने वाला
पित्त रक्ताका कोप करने वाला चक्षुके हिम कफ वानका नाशक विद्रधी

सहजन क्षमि । इनकी नाश करता है ॥ २१८ ॥

मेदो पची विषस्त्रीह गुल्म गण्ड व्रणान् हरेत् ॥ खे-

नः प्रोक्त गुणो ज्ञेयो विशेषाद्दाह कृद्भवेत् ॥ २१९ ॥

स्त्रीहानं विद्रधिं हन्ति व्रणघ्नः पित्त रक्त हत् ॥ मधु

शिशुः प्रोक्त गुणो विशेषाद्दीपनः सरः ॥ २२० ॥

शिशु वल्कल पत्राणां खरसः परमार्तिहत् ॥ चक्षु-

ष्यं शिशुजं बीजं तीक्ष्णोष्णं विषनाशनम् ॥ २२१ ॥

अवृष्यं कफ वानघ्नं तत्रस्येन शिरोर्तिनुत् ॥

भा० मेद अपचि विषधतही चायगोला गण्ड व्रण इनको नाश करता है । सुफेद कहे ज्वे गुण के समान जान लेना । विशेष करके दाह को करना है ॥ २१९ पित्तही विद्रधी को नाश करना है व्रणका नाशक है पित्त रक्तको दूर करता है ॥ सहजनका बीज कहे ज्वे गुणवाला विशेष करके दीपन

॥ २२० ॥ सहजनकी छाल पत्र इनका खरस अत्यंत पीडाको नाश

करनेवाला है और चक्षुकाहिन सहजनका बीज तीखा उष्ण विषका नाशक है ॥ २२१ ॥ धातुकी वक्षीण करनेवाला कफ वानकानाशक और बोह नास लेनेसे सिरकी पीडाको नाश करता है ॥

[अथ ध्वेनपुष्या नीलपुष्या अपराजिता ।] आस्फोता

गिरिकर्षी स्या द्विषणुकान्ता पराजिता ॥ अपराजि

ते कटु मेध्ये शीते कराख्ये सुसृष्टि दे ॥ २२२ ॥ कुष्ठ

भूज द्विदोषाम शोथ व्रण विषापहे ॥ कषाये कटु

के पाके तिक्तेच स्मृति बुद्धि दे ॥ २२३ ॥

भा० अनन्तर सुफेद फूल और नीले फूलकी विष्णुकान्ता ॥ आस्फोता गिरिकर्षी विष्णुकान्ता अपराजिता यह विष्णुकान्ताके नाम हैं ॥ विष्णुकान्ता कड़वी और बुद्धीको उत्पन्न करनेवाली शीतलकंठको अच्छा कर

ने वाली ॥ २२२ ॥ अच्छी दृष्टि को देने वाली कुष्ठ मूत्र दोष आम शोथ व्रण
विष इनको नाशक ॥ कसैली कड़वी पाकमें तिक्तभी । और स्मृतिबुद्धी-
को देने वाली है ॥ २२३ ॥

अथ मेउडी सम्भालू । सेन्दुवार इति च ।] सिन्दुवा-

रः खेतपुष्पः सिन्दुकः सिन्दुवारकः ॥ नीलपु-

ष्पी तु निर्गुण्डी शोफाली सुवहा च सा ॥ २२४ ॥

सिन्दुकः स्मृतिदस्तिक्तः कषायः कटुको लघुः ॥

केश्या नेत्रहितो हन्ति शूल शोथा ममारुतान् ॥

२२५ ॥ कृमि कुष्ठा रुचि श्लेष्म ज्वरान्नीलापि नदिधा ।

सिन्दुवारदलं जन्तु वानश्लेष्म ह्रं लघु ॥ २२६ ॥

भा० अनन्तर मेउडी सम्भालू ॥ सिन्दुवार इस प्रकार भी कहने हैं ॥ सिन्दु-
वार खेतपुष्प सिन्दुक सिन्दुवारक नीलपुष्पी निर्गुण्डी शोफाली सुवहा
येह मेउडी के नाम हैं ॥ २२४ ॥ मेउडी स्मृति को देने वाली तिक्त कसै-
ली कड़वी हलकी ॥ केशको अच्छा करने वाली । नेत्रके हित होती है ॥
और शूल शोथ आम वायु इनको नाश करती है ॥ २२५ ॥ कृमि कुष्ठ अ-
रुचि कफज्वर इनको नाश करती है ॥ बोह नीलीभी दो प्रकारकी होती
है । मेउडी का पत्र कृमि वान कफ इनका नाशक हलका होता है ॥ २६

अथ कौरैश्चा ।] कुटजः कूटजः कीटी वन्सको गिरि म

ल्लिका ॥ कालिद्रुः शक्र शारवी च मल्लिका पुष्प

इत्यपि ॥ २२७ ॥ इन्द्रो यवफलः प्रोक्तो वृक्षकः पा-

डु रद्भुमः ॥ कुटजः कटुको रूक्षो दीपनः सुवरो

हिमः ॥ २२८ ॥ अशीं शनिसारं पिताम्ब कफश्लेष्म

मकुष्ठनुर ॥

भा० अनन्तर कुरैया कुट्टन कुट्टन कीटी वत्सक गिरि मल्लिका कालिंग
शक्र शाक मल्लिका पुष्य । येह कुरैया के नाम हैं ॥ २२७ ॥ और इन्द्रयव
फल वृक्षक पांडुर इम पहमी कुरैया के नाम हैं । कुरैया कडवी रूखी दीप
न कसैली ठंठी ॥ २२८ ॥ होनी है । और बवासीर अनांसार रक्त पित्त ह्या
आम कुष्ठ इनकी नाशक है ॥

अथ कण्टकरेजा करञ्ज घोर

करञ्ज ॥ करञ्जो नक्त मालश्च करञ्जश्चिर विल्व-
कः ॥ घृतपूर्ण करञ्जोऽन्यः प्रकीर्य्यः पूतिकोऽपि च
॥ २२८ ॥ स चोक्तः पूति करञ्जः सोमवल्कश्च स
स्पृतः ॥ करञ्जः कटुकस्त्रीक्ष्णो वीर्य्योष्णो योनि
दोषहन् ॥ २३० ॥ कुष्ठोदावर्त गुल्मार्शो ज्वर कृमि
कफापहः ॥ तप्तत्वं कफवानार्शः कृमि शोथहरं
परम् ॥ २३१ ॥ भेदनं कटुकं पाके वीर्य्योष्णं पित्त-
लं लघु ॥ तप्त फलं कफवानघ्नं मेहार्शः कृमि कु
ष्ठजित् ॥ २३२ ॥ घृतपूर्ण करञ्जोऽपि करञ्ज
सदृशो गुणैः ॥

भा० अनन्तर कण्टकरेजा करंज घोर करंज को कहते हैं ॥ करंज नक्त
माल चिर विल्वक घृतपूर्ण और दूसरा करंज प्रकीर्य्य पूतिक भी
कहते हैं ॥ २२८ ॥ वोह पूतिकरंज कहा गया है ॥ और वही सोमवल्क
क भी कहा गया है ॥ करंजवा कडुवा तीखा उष्ण वीर्य्य में उष्ण योनि
दोषका नाशक है । और कुष्ठ उदावर्त गुल्म बवासीर ज्वर कृमिकफ
घृतका नाशक है ॥ उस्का पत्र कफवान बवासीर कृमि स्पृजन इन
का नाशक है ॥ २३१ ॥ भेदन कडुवा पाकमें वीर्य्यमें उष्ण पित्तको कर
नेवाला ॥ हलका होता है ॥ उस्का फल कफ वान्तका नाशक प्रमेह ववा
सीर कृमिकुष्ठ इनको जीतनेवाला ॥ २३२ ॥ घृतपूर्ण नाम दूसरा करंजवा

भी करंज्वेके सदृश गुणमें है ॥ [अथ अरारि ।]

उदकीर्य्य स्तृतीयोऽन्यः षड्ग्रन्था हस्तिवारुरागी ॥

मर्कटी वायसी चापि करञ्जी करभञ्जिका ॥ २३३ ॥

करञ्जी स्तम्भनी तिक्ता तुवरा कटु पाकिनी ॥ जी-

र्य्योष्णा वमि पित्तार्शः कृमिकुष्ठप्रमेह जित् ॥ २३४ ॥

अथ श्वेत रक्त गुञ्जा । श्वेता रक्तोच्चटा प्रोक्ता कृष्णाला-

चापि सा स्मृता ॥ रक्ता सा काक चिञ्ची स्यात् का-

कानन्ता च रक्तिकः ॥ २३५ ॥ काकादनी काकपी-

लुः सा स्मृता काकवल्लरी ॥ गुञ्जा द्वयन्तु केश्यं

स्यात् वात पित्तज्वरा पहम् ॥ २३६ ॥ मुख शोष

श्रम श्वास नृणा मह विनाशनम् ॥ नेत्रामय हरं

वृष्यं वल्यं कण्डूव्रणं हरत् ॥ २३७ ॥ कृमीन्द्रलु-

प्तकुष्ठानि रक्ता च धवलापि च ॥

भा० अनन्तर डार करञ्ज । उदकीर्य्य और तीसरा करंजवा हस्ति वारुरागी

षड्ग्रन्था ॥ मर्कटी वायसी करं जी कर भञ्जिका यह डार करंज के नाम हैं

॥ २३३ ॥ डार करंज स्तम्भन करनेवाली तिक्त कसैली कटु पाकवाली ॥ जी-

र्य्यमें उष्णहोती है ॥ और वमन पित्तकी वबीसीर कृमिकुष्ठ प्रमेह इ-

नको जीतनेवाली होती है ॥ २३४ ॥

अनन्तर सुफेद और लाल चिरमिठी को कहते हैं ॥ सफेद और लाल

को उच्चय और कृष्णाला भी कहते हैं ॥ और लालको काकचिञ्ची का

तानन्ता रक्तिक ॥ २३५ ॥ काकादनी काकपीलू काकवल्लरी । यह लाल

चिरमिठीके नाम हैं ॥ दोनों चिरमिठियां केशको हिन करती हैं और

वात पित्त ज्वरकी नाशक हैं ॥ २३६ ॥ तथा मुख शोष श्रम श्वास नृणा

मह इनकी नाशक है ॥ और नेत्र रोग को दूर करनेवाली पुष्टव लकोकर

न वाली तथा कण्डू व्रण इनको भी नाश करती है ॥ २३७ ॥ और कृमि
वृत्त कुष्ठ लाल सुफेद भी इनकी नाश करती है ॥

कपिकच्छु रात्र्य गुप्ता वृष्या प्रोक्ता च मर्कटी ॥ अज-
रा कण्डू राव्यङ्गा दुःस्पर्शा प्रावृषायणी ॥ २३८ ॥
लाङ्गुली शूकसिम्बी च सैव प्रोक्ता महर्षभिः ॥ क-
पिकच्छू मृशं वृष्या मधुरा वृंहणी गुरुः ॥ २३९ ॥
निक्तावानहरी वल्वा कफ पित्तान्न नांशिनी ॥ नद्धी-
जं वातशमनं स्मृतं वाजीकरं परम् ॥ २४० ॥

भा० अनन्तर किमांश्व ॥ कपिकच्छू आत्मगुप्ता वृष्या मरकटी ॥ अज-
रा कण्डूरा, व्यंगा दुस्पर्शा प्रावृषायणी ॥ २३८ ॥ लांगुली सूक शिम्बी
येह किमांश्व के नाम महर्षियों ने कहे हैं ॥ किमांश्व अन्यन्त धातुको बढ़ा
वाली मधुर पुष्ट भारी होती है ॥ २३९ ॥ और निक्तावानकी नाशक चलन
करनेवाली कफ रक्त पित्तकी नाशक होती है । और उसका बीज वात को
नाशक होता है अन्यन्त वाजीकरण कहा गया है ॥ २४० ॥

अथ रोहिणी । मांस रोहिण्य निरुहा वृत्ता चर्मकारी
कृशा ॥ प्रहारवह्नी विकशा वीर वन्यपि कथ्यते ॥
॥ २४१ ॥ स्यान्मांसरोहिणी वृष्या सरा दोषत्रयाप-
हा ॥ [अथ चिलह ।] चिलहको वातनिर्हारी प्लेष्म
घ्नो धातुप्रष्टिकृत् ॥ आग्नेयो विषवद्यस्य फलम-
त्स्य निषूदनम् ॥ २४२ ॥

भा० अनन्तर रोहिणी ॥ मांसरोहिणी अनिरुहा वृत्ता चर्मकारी कृ-
प्रहारवह्नी विकशा वीरवनी येह रोहिणी के नाम हैं ॥ २४१ ॥ मांस-
हणी पुष्ट सर दोषत्रयकी नाशक होती है ॥ [अनन्तर चिलह ।

चिल्हक वाननिरहार श्लेष्मघ्न । यह चीलूके के नाम हैं ॥ चीलू श्लेष्म
का नाशक धातू का खुरच करने वाला ॥ और उष्ण तिस्का फल विषके स
मान मछरीका नाशक होता है ॥ २४२ ॥ [अथ टड्गुरि ।]

टड्गुरि वानजित्तिका श्लेष्मघ्नी दीपनी लघुः ॥
शोथोदर व्यथा हन्ती हिना पीठ विसर्पिणाम् ॥
॥ २४३ ॥ [अथ वेतसः । वेतसां नम्रकः प्रोक्तो
वारीरो वञ्जुलस्तथा ॥ अम्रपुष्यश्च विदुलो र-
थ शीतश्च कीर्तितः ॥ २४४ ॥ वेतसः शीतलो दाह
शोथार्शो योनिरुक् प्रणुत् ॥ हन्ति विमर्ष कच्छा-
स्र पितामर कफानिलान् ॥ २४५ ॥

भा० अनन्तर टंकारी ॥ टंकारी घातकी जीतनेवाली कफ नाशक दीपन
हलकी ॥ शोथ उदर व्यथा इनकी नाश करनेवाली और पीठ विसर्प रोगवा
लोंको हिन होती है ॥ २४३ ॥ अनन्तर वेतस । वेतस नम्रकः वारीर वञ्जु
ल अम्रपुष्य विदुल रथपीत यह वेतके नाम हैं ॥ २४४ ॥ शीतल दाह
शोथ ववासीर योनिपीडा इनको नाश करनेवाली है ॥ और विसर्प श्वत्र
कच्छू रक्तपित्त अमरी कफ वायु इनको नाश करता है ॥ २४५ ॥

अथ जलवेतसः । [निकुञ्चकः परिव्याधो नादेयो ज-

लवेतसः ॥ जलजो वेतसः शीतः कुष्ठहृद्घातको प-

नः ॥ २४६ ॥ [अथ इज्जल समुद्रफल इति लोके]

इज्जलो हिज्जलश्चापि निबुलश्चाम्बुजस्तथा ॥

जलवेतसवद्देद्यो हिज्जलोऽर्थ विषापहः ॥ २४७ ॥

भा० अनन्तर जलवेतस ॥ निकुञ्चकः परिव्याध नादेय जलवेतस यह नाम
जलवेतके ॥ जलवेत शीतल कुष्ठका नाशक वानका प्रकोप करनेवाला
है ॥ २४६ ॥ अनन्तर इज्जल समुद्रफल ऐसा लोकमें । इज्जल हिज्ज

ल निचुल अम्बुज । येह समद्र फल के नाम हैं ॥ जलवेत के समान दूस्कोज
नना चाहिये । येह विषका नाशक है ॥ २४७ ॥

अथ देरा । अङ्गोटे दीर्घकीलः स्यादङ्गोलश्च निको-
चकः ॥ अङ्गोटकः कटुस्तीक्ष्णः सिग्धोष्णस्तुवरो
लघुः ॥ २४८ ॥ रेचनः कृमि शूलाम शोफग्रह वि-
षां पहः ॥ विसर्पकफ पित्तास्र मूषकाहि विषांप-
हः ॥ २४९ ॥ तत् फलं शीतलं स्वादु श्लेष्मघ्नं वृ-
हणं गुरु ॥ चलयं विरेचनं वान पित्तदाह क्षयास्र
जित् ॥ २५० ॥

५ल

भा० अनन्तर अंखाट ॥ अंकोट दीर्घकी अंकोल निकोचक येह हिंगोट
के नाम है ॥ हिंगोट कडुवा तीक्ष्ण चिकना उष्ण कसैला हलका ॥ २४८ ॥
रेचन कृमि शूल आंव शोथ ग्रह विष इनका नाशक है ॥ विसर्पकफ रक्त
पित्त चूहा सर्प इनके विषका नाशक है ॥ २४९ ॥ उस फल शीतल मधुर
कफका नाशक धातुको बढ़ानेवाला भारी ॥ बलको करनेवाला रेचक
वान पित्त दाह क्षय रक्त इनका जीतनेवाला है ॥ २५० ॥

(अथ वरि आर सहदेवी ककहिआ गुलसकरी । इति
बलाचतुष्टयम् ।)

वाद्या वाद्यालिका वाद्या सैव वाद्यालका ऽपि च ॥
महाबला पीतपुष्या सहदेवी च सा स्मृता ॥ २५१ ॥
ततो ऽन्यातिबला ऋष्य प्रोक्ता कङ्कनिका च सा ।
गाङ्गेरुकी नागबला ह्येषा ह्रस्वा गवेधुका ॥ २५२ ॥
बलाचतुष्टयं शीतं मधुरं बलकान्ति कृतं ॥ स्त्रि-
ग्धं ग्राहि समीरास्र पित्तास्रक्षत नाशान्मू ॥ २५३ ॥

बला मूलस्तवच म्रूणी पीतं स क्षीरशर्करम् ॥ मूत्रा
 तिसारं हरति दृष्टमेतन्न संशयः ॥ २५४ ॥ हीरेन्म-
 हाबला कृच्छ्रं भवेद्वातानुलोमनी ॥ हन्यादति ब-
 ला मेहं पयसा सितया समम् ॥ २५५ ॥ ३३

भा० अनन्तर वरिया सहदेई बद्धिया गुलशकरी यह बला चंद्रय है ॥
 वाद्या वाद्यालिक । यह वरियरे के महाबला शीतप्रय्या सहदे
 यो यह सहदेई के नाम है ॥ २५१ ॥ और उस्स दूसरी ककनिका अति-
 बला यह ककरैया के नाम कृषियोंने कहे हैं ॥ गाङ्गेरुकी नागबला ह-
 श्वाग वेधुका यह गुल शकरी के नाम है ॥ २५२ ॥ यह चारों शीतमधु-
 र बलकान्ति की कनेवाली ॥ चिकनी क्राविज वातरक्त पित्त रक्त क्षत
 इनको नाश करने वाली है ॥ २५३ ॥ वरियरे की जड़के छालके चुरण
 को दूध और शर्कर के साथ पीनेसे मूत्रानीसार को नाश करता है । यह
 देखा है इसमें संशय नहीं ॥ और महाबला मूत्र कृच्छ्र को नाश करती
 है ॥ और वातको अनुलोमन करनेवाली है ॥ और गुल शकरी दूध और
 चीनी के साथ पीने से प्रमेह को नाश करती है ॥ २५५ ॥

और और वसी को वाद्यालिका भी कहते हैं ।

अथ लक्ष्मणा । पुत्रकाकार रक्ताल्य विन्दुभिली-

ञ्छिता सदा ॥ लक्ष्मणा पुत्रजननी वस्तगन्धा
 कृतिर्भवेत् ॥ २५६ ॥ कथिता पुत्रदा वषयं लक्ष्म-
 णा मुनिपुङ्गवैः ॥ [स्वर्गावल्ली ।]

स्वर्गावल्ली रक्तफला काकायुः काकवल्लरी ॥ स्व
 र्गावल्ली पिरः पीडां त्रिदोषान् हन्ति दुग्धदा ॥ ५७

भा० अनन्तर लक्ष्मणा ॥ पुत्रकाकार रक्ताल्य विन्दुओंसे लाञ्छित
 होती है लक्ष्मणा पुत्रजननी वस्तगन्धा ॥ २५६ ॥ पुत्रदा यह लक्ष्मणा
 के नाम है ॥ मुनि श्रेष्ठोंने लक्ष्मणा अवश्य पुत्रको देनेवाली है ऐसा

कहा है ॥ [अनन्तर स्वर्णवल्ली] स्वर्णवल्ली रक्तफला कर्कायु काकव-
ल्ली ॥ स्वर्णवल्ली सिरकी पीड़ाको और त्रिदोषको नाश करती है । औ-
र दुग्धको करनेवाली है ॥ २५७ ॥

अथ कपास] कार्पासी तुरण्डकेरी च समुद्रान्ता च
कथ्यते ॥ कर्पसकी लघुः कीष्णा मधुरा वान
नाशनी ॥ २५८ ॥ तत्पलाशं समीरघ्नं रक्तकृन्मू-
त्रवर्द्धनम् ॥ तत्कर्णपीडकानादपूयाश्चाव वि-
नाशनम् ॥ २५९ ॥ तद्बीजं स्तन्यदं दृष्यं स्निग्धं
कफकरं गुरु ॥

भा० अनन्तर कपास । कार्पासी तुरण्डकेरी समुद्रान्ता । यह कपासके
नाम हैं- कपास हलका कुछ गरम मधुर वान नाशक है ॥ २५८ ॥ उस्का
पत्ता वानकानाशक रक्तको करनेवाला और मूत्रका बढ़ानेवाला है ।
और कर्णपीड़ा नाद पूयकाश्चाव इनका भी नाशक है ॥ २५९ ॥ उस्का
बीज दूधको बढ़ानेवाला शुकको उत्पन्न करनेवाला कफ करनेवाला
भारी होता है ॥

अथ वंश ।] वंशस्त्वक् सारकर्मार त्वचिसारः तृण-
ध्वजः ॥ शतपर्वा शतफली वेणु मस्कर तेजनाः ॥
॥ २६० ॥ वंशः सरो हिमः स्वादुः कषायो वस्तिशो-
घनः ॥ छेदनः कफपित्तघ्नः कुष्ठासत्रणशोथ
जित् ॥ २६१ ॥ तत्करीरः कटुः पाके रसे रूक्षो गु-
रुः सैरः ॥ कषायः कफकृत् स्वादुर्विदाही वात
पित्तलः ॥ २६२ ॥ तद्यवास्तु सरा रूक्षाः कषायाः
कटुपाकिनः ॥ वातपित्तकरा उष्णा बहूधूनाः

कफापहाः ॥ २६३ ॥ [अथ नलः ।]

नलः पोटगलः शून्यमध्यश्च धमनस्तथा ॥

नलस्तु मधुरस्तिक्तः कषायः कफ रक्तजित् ॥ २६४ ॥

उष्णो हृद्दस्ति योन्यर्त्तिदाह पित्तविसर्प हृत् ॥

भा० अनन्तर वांस । वंश त्वकसार करपार नृणध्वज ॥ शतपर्वा, शतफली वेणु मस्कर तेजन, येह वांस के नाम हैं ॥ २६० ॥ वांस वायु को अनुलोम करनेवाला शीतल मधुर कसैला बस्तिका शोधन ॥ छेदन कफ पित्तका नाशक कुष्ठ रक्त घाव शीथ इनको जीतनेवाला है ॥ २६१ ॥ उस्का अङ्गुर पाकमें कड़वा रसमें कड़वा रुखा भारी दस्तावर ॥ कसैला कफको करनेवाला मधुर विदाही वातपित्तको करनेवाला होता है ॥ २६२ ॥ उसके जी वायुको अनुलोम करनेवाले रुखे कसैले कटुपाकवाले ॥ वात पित्तको करनेवाले उष्ण मूत्रको रोकनेवाले कफके नाशक होते हैं ॥ २६३ ॥

अनन्तर नडु ।] नल पोटगल शून्यमध्य धमन येह नरकट के नाम हैं ॥ नरकट मधुर तिक्त कसैला कफ रक्तको जीतनेवाला होता है ॥ २६४ ॥ उष्ण हृदय बस्ति योनि इनकी पीड़ा दाह पित्त विसर्प इनका नाशक है ॥ [अथ रामशर ।] शरपत इति वा ।

भद्र मुञ्जः शरे वाराः तेजनश्चक्षु वेष्टनः ॥

अथ मुञ्जः ।] मुञ्जो मुञ्जातको वाराः स्थूलदर्भः

सुमेखलः ॥ २६५ ॥ मुञ्जद्वयन्तु मधुरं तुवरं शि-

शिरं तथा ॥ दाह तृषणा विसर्प्या ममूत्र रुच्छा क्षि

रोग जित् ॥ २६६ ॥ दोषत्रय हरं तृष्यं मेखलासू-

पयुज्यते ॥

भा० अनन्तर रामशर या सरपत ।] भद्रमुञ्ज शर वारा तेजन चक्षु वेष्टन येह सरपत के नाम हैं । [अनन्तर मुञ्ज ।] मुंज मुंजातक वा एा स्थूलदर्भ सुमेखल येह मूजके नाम हैं ॥ २६५ ॥ दोषो मूज मधुरकसै

ले शीतल होते हैं ॥ और दाह तथा विसर्ष मूत्र कृच्छ्र नेत्र रोग इनकी जीतने वाले हैं ॥ २६६ ॥ तथा तीनों दोषों के नाशक घातुके सुष्ठु करने वाले होते हैं ॥ और मेरुदला में उस्का उपयोग किया जाता है ॥

अथ कांशः ।] काशः काशोत्तुरुद्दिष्टः संस्यारिद्ध सरस्तथा ॥ इत्त्वालिके इत्तुगन्धा च तथा पोटगलस्मृतः ॥ २६७ ॥ काशः स्यान्मधुरस्निक्तः स्वादुपाको हिमः सरः ॥ मूत्र कृच्छ्र श्मदाहाश्च क्षयपित्तज रोगजित् ॥ २६८ ॥

भा० अनन्तर कांस ।] कांस कसैलु इत्तुसर इत्त्वालिक इत्तुगन्धा पोटगल यह कांसके नाम हैं ॥ २६७ ॥ कांस मधुर स्निक्त पाकमें मधुर शीतल दस्तावर ॥ मूत्र कृच्छ्र पथरी दाह रक्तक्षय पित्तके रोगोंको जीतने वाला होता है ॥ २६८ ॥ [गन्धपटेर इति च ।]

गुन्द्रः पटेरकोरच्छः शृङ्गवेराभ मूलकः ॥ गुन्द्रः कषायो मधुरः शिशिरः पित्तरक्तजित् ॥ २६९ ॥ स्तन्यः शुक्ररजो मूत्र शोधनो मूत्र कृच्छ्र हत ॥

मोथीन्दरा विशेषः ।] सरका गुन्द्रमूला च शिविर्गुन्द्रा शरीति च ॥ सरका शिशिरा वृष्या चक्षुष्या वात कोपिनी ॥ २७० ॥ मूत्र कृच्छ्राश्लरी दाह पित्त शोणित नाशिनी ॥

भा० अनन्तर गन्धपटेर ॥ गुन्द्र पटेर कोरच्छ शृङ्गवेराभ मूलक यह गन्धपटेरके नाम हैं ॥ गन्धपटेर कसैला मधुर शीतल पित्तरक्त को जीतने वाला ॥ २६९ ॥ मूत्रको उत्पन्न करने वाला शुक्र रज मूत्र इनका शोधक और मूत्र कृच्छ्र का नाशवा होता है ॥

अनन्तर मोयी तृणा विशेष है ॥ सरका गुन्डमूला पिपीपुन्दा प्ररी येह मो
यी के नाम हैं ॥ मोयी शीतल धानुको उष्ट करने वाली नेत्रके बातको प्र-
क्षेप करने वाली ॥ २७० ॥ मूत्रकच्छू अशमरी दाह रक्तपित्त इनको नाश
करने वाली है ॥

[अथ कुशा ।]

कुशा दर्भस्तथा वह्निः सूच्यग्रो यज्ञभूषणः ॥

[अथ डाम ।] ततोऽन्यो दीर्घ पत्रः स्यात् क्षुरपत्रस्त
थैव च ॥ दर्भक्षयं त्रिदोषघ्नं मधुरं तुवरं हिमम् ॥

॥ २७१ ॥ मूत्रकच्छू अशमरी तृणा वस्तिरुक् प्रदरा-
सृजित् ॥ [अथ कर्तृणाम् ।] (रोहिष सोधि आ

इति च ।) कच्छूणं रोहिषं देव जग्धं सौगन्धिकं तथा ।

मृतीकं ध्यामपौरञ्च श्यामकं धूमगन्धिकम् ॥ २७२ ॥

रौहीषं तुवरं तिक्तं कटु प्राकं व्ययोहति ॥ हृत्क-

रठ व्याधिपित्तास्र शूलकास कफज्वरान् ॥ २७३ ॥

भा० अनन्तर कुशा ॥ कुशा दर्भ वह्नि सूच्यग्र यज्ञभूषण येह कुशा
के नाम हैं ॥ अनन्तर डाम ।] उत्सेदसरे किस्म का कुशा ॥ दीर्घ

पत्र क्षुरपत्र येह डामके नाम हैं ॥ येह दोनों कुशा त्रिदोष नाशक
मधुर कसेली शीतल ॥ २७१ ॥ मूत्रकच्छू अशमरी तृणा येह कीपीडा
प्रदर रक्त इनकी नाशक है ॥ [अनन्तर कर्तृणाम् । रोहिष

सोध्या इस प्रकार लोक में कहने हैं ॥ कच्छूण रोहिष देवजग्ध सौग
न्धिक ॥ मृतीक, ध्याम, पौर, ध्य मक, श्यामक, धूमगन्धिक । येह

पीले किस्मकी खसके नाम हैं ॥ २७२ ॥ कच्छूण कसेला तिक्त कटु
प्राक में होता है ॥ और हृदय कंठके रोग रक्त पित्त शूल कास कफ
ज्वर इनकी नाश करता है ॥ २७३ ॥

[अथ मूस्तृणाम् ।

गुह्यवीजन्तु मृतीकं सुगन्धं जम्बुकं प्रियम् ॥

भूतृणां तु भवेच्छत्रा मालानृणाकमित्यपि ॥ २७४ ॥
 भूतृणां कटुकं तिक्तं तीक्ष्णोष्णं रेचनं लघु ॥ विदा-
 हि दीपनं रुक्ष मनेत्र्यं मुख शोधनम् ॥ २७५ ॥ अ-
 वृष्यं बह्व विट्कञ्च पित्तरक्त प्रदूषणम् ॥

भा० अनन्तर भूतृण ॥ गुहावीज भूतीक सुगंध जम्बुकप्रिय ये भूतृ-
 णके नाम हैं ॥ येह भी एक घास सुगंधकी किस्म से है ॥ भूतृण छत्रा
 माला नृणाक । येह भी उसीके नाम हैं ॥ २७४ ॥ भूतृण कटुवा तिक्त तीक्ष्ण
 उष्ण रेचन हलका ॥ विदाही दीपन रुक्ष मनेत्रके अहित मुखका शो-
 धन ॥ २७५ ॥ नपुंसकता को करनेवाला बह्वन मलको उत्पन्न करने
 वाला पित्त रक्तको बिगाड़नेवाला होता है ॥

अथ नीलदूर्वा ।] नीलदूर्वा रुहानन्ता भार्गवी शत-
 पर्विका ॥ शष्यं सहस्रवीर्या च शतवल्ली च
 कीर्तिता ॥ २७६ ॥ नीलदूर्वा हिमा तिक्ता मधुर
 तुवरा हरा ॥ कफपितास्र वीसर्प नृषणा दाहत्व
 गामयान् ॥ २७७ ॥ [अथ श्वेतदूर्वा ।]

दूर्वा शुक्ला तु गोलोमी शतवीर्या च कथ्यते
 श्वेतादूर्वा कषाया स्यात् स्वादी व्रणया च जीवनी
 ॥ २७८ ॥ तिक्ता हिमा विसर्पास्र तृद् पित्त कफदाहहृत्

भा० अनन्तर नील दूर्वा ॥ नीलदूर्वा रुह्य अनन्ता भार्गवी शत
 पर्विका । येह नील दूर्वाके नाम हैं ॥ शष्य सहस्रवीर्या शतवल्ली,
 येह काली दूर्वाके नाम हैं ॥ २७६ ॥ कालीदूर्वा शीतल तिक्त मधुर कसे-
 लीहीती है ॥ और कफ रक्तपित्त विसर्प नृषा दाह त्वचाके रोग इनको
 नाश करनेवाली है ॥ २७७ ॥ अनन्तर सफ़ेद दूर्वा । श्वेतदूर्वा गोलो-
 मी शतवीर्या यह सफ़ेद दूर्वाके नाम हैं ॥ सफ़ेद दूर्वा कसेली मधुर घाव
 को अच्छा करनेवाली जीवन ॥ २७८ ॥ तिक्त शीतल कसेली विसर्परक्त

तथा पित्त कफ दाह इनकी नाशक है ॥

[अथ गण्डरिं दूविपाच इति च ।]

गण्ड दूर्वातु गण्डाली मत्स्याक्षी शकुलाक्षकः ॥

गण्ड दूर्वा हिमालोह द्राविणी ग्राहिणी लघुः ॥

॥ २७६ ॥ तिक्ता कषाया मधुर वात कृत्कटु पाकि -

नी ॥ दाह तृष्णा बलासास्र कुष्ठ पित्त ज्वरापहा ॥ ७०

२७० ॥ [अथ विदारीकन्दः क्षीर विदारी गेरिष्ठ इति लो-

के ।] वाराहीकन्द एवान्यै श्वर्मकारा लुकोमतः ॥

अनूप सम्भवे देशे वाराह इव लोमवान् ॥ २७१ ॥

विदारी स्वादुकन्दा च सातु क्रौष्ट्री सिता स्मृता ॥

भा० अनन्तर गण्डरि ॥ गण्डदूर्वा. कण्डाली. मत्स्याक्षि. शकुला. अक्षक येह गण्डरि के नाम हैं ॥ गण्डरि शीतल लोहे को गलाने वाली का विज्ञ हलकी होती है ॥ २७६ ॥ और तिक्ता कसैली मधुर वातको करने वाली पाकमें कटु ॥ दाह तृष्णा कफ रक्त कुष्ठ पित्तज्वर इनकी नाशक है ॥ २७० ॥ [अनन्तर विदारीकन्द को कहते हैं । क्षीर विदारी गैठी

ऐसा भी लोकमें कहते हैं ।] वाराहीकन्द ही को कोई आचार्य चर्मकार लुक कहते हैं ॥ अनूप देश में वाराह के समान रोमवाला होता है ।

॥ २७१ ॥ विदारी स्वादुकन्दा क्रौष्ट्री सिता ॥ इक्षुगंधा. क्षीरवल्ली. क्षीरशुक्ता. पयस्वनी ॥

इक्षुगन्धा क्षीर वल्ली क्षीरशुक्ता पयस्विनी ॥ २७२ ॥

वाराह चदना गृष्टिर्वदरेत्यपि कथ्यते ॥ विदारी

मधुर तिग्धाहंरणी स्तन्य शुक्रदा ॥ २७३ ॥ शीता-

स्वर्था मूलला च जीवनी वल्लवर्णादा ॥ गुरुः पिनास्र

पवनदाहान् हन्ति रसायनी ॥ २०४ ॥

अथ भुशलीकन्दम् ॥] तालमूली तु विद्वद्धि भुश-
ली परि कीर्तिता ॥ भुशली मधुरा वृष्या वीर्योष्णा
वृंहणी गुरुः ॥ २०५ ॥ तिक्ता रसायनी हन्ति गुद
जान्यनिलन्तथा ॥

आ० वराह वदना ग्रंथी वदरा यह नाम विदारीकन्द के हैं ॥ विदारीकंद
मधुर क्षिण्य पुष्ट दुग्ध शुक्र को उत्पन्न करनेवाला ॥ २०३ ॥ शीत स्वर
को अच्छा करनेवाला मूत्रको उत्पन्न करनेवाला जीवन बल वर्ण को
देनेवाला ॥ भारी है और रक्तपित्त वात दाह इनका नाश करता है और
रसायन है ॥ २०४ ॥ [अनन्तर मूसली । तालमूली को विद्वानोंने मू-
सली ऐसा कहा है । मूसली मधुर पुरुषत्व को उत्पन्न करनेवाली वीर्य
भ्रं उष्ण और पुष्ट भारी होती है ॥ २०५ ॥ और तिक्तरसायन है तथा व-
दासीर वात इनको नाश करती है ॥

[अथ शतावरी महाशतावरी ।] शतावरी बड़ सुता

भीरु रिन्दीवरी बरी ॥ नारायणी शतपदी शत-
वीर्या च पीवरी ॥ २०६ ॥ महाशतावरी चान्या श-
तमूल्यर्द्ध करिष्का ॥ सहस्रवीर्या हेतुश्च ऋष्या
प्रोक्ता महोदरी ॥ २०७ ॥ शतवरी गुरुः शीता तिक्ता
खाद्दी रसायनी ॥ मेधाग्निपुष्टिदा क्षिण्धा नेत्या
गुल्मानिसार जित् ॥ २०८ ॥ शुक्र स्तन्य करी वल्या
वात पित्तस्य शोथ जित् ॥ महाशतावरी मेध्या
हृद्यं वृष्या रसायनी ॥ २०९ ॥ शीत वीर्या निह-
न्त्यर्शो ग्रहणी नयना मयान् ॥

भा० अनन्तर शतावर और महाशतावर ।] शतावरी. बडसुता. भीह.
इन्दीवरी. वरी. नारायणी. शतपदी. शतवीर्या. पीवरी ॥ २८६ ॥ येह
शतावर के नाम हैं ॥ दूसरी महाशतावरी ॥ शतमूली. अर्धकुरिदका
सहस्रवीर्या. हेतु चरिष्या. महोदरी. येह बड़ी शतावर के नाम हैं
॥ २८७ ॥ भारी शीत तिक्त मधुर रसायन होती है और कान्ति अग्नि
पुष्टि इनको देनेवाली स्त्रिग्ध होती है ॥ और को हित करने वाली । नेत्र
वायुगोला अतिसार को जीतनेवाली ॥ २८८ ॥ और शुक्र दुग्ध को
करनेवाली बलके हित वात पित रक्त शोथ इनको जीतने वाली है ॥
बड़ी शतावर कान्तिको करनेवाली । दिलको ताकत देनेवाली पुरु
षत्वको बढ़ानेवाली रसायनी होती है ॥ २८९ ॥ बड़ी शतावर बवासीर
संग्रहणी नेत्ररोग इनको नाश करती है ॥

अथ असगन्धः ।] गन्धान्तावाजि नामादि श्वग-
न्धा हयाह्वया ॥ वराह करणी वरदा वरदा कुष्ठ ग-
न्धिनी ॥ २९० ॥ अश्वगन्धा निल श्लेष्म श्वित्र
शोथ क्षयापहा ॥ बल्या रसायनी तिक्ता कषा-
यो श्रान्ति शुक्रला ॥ २९१ ॥

भा० अनन्तर असगन्ध ॥ गन्धान्ता घोड़ेके नाम आदिवाला ।
अश्वगन्धा. हयाह्वया. वराह करणी. वरदा. कुष्ठगन्धिनी. येह अस-
गन्ध के नाम हैं ॥ २९० ॥ असगन्ध वातकफ श्वित्र शोथ क्षय इनका
नाशक बलको देनेवाला रसायन तिक्त कसेला और खानेसे शुक्रको
उत्पन्न करनेवाला है ॥ २९१ ॥

अथ पाठा ।] पाठां वष्टा वष्टकीच प्राचीना यापचे
लिका ॥ एकष्ठीला रसा प्रोक्ता पाठिका वरति-
क्तिका ॥ पाठोष्णा कडुका तीक्ष्णा वात श्लेष्म
हरी लघुः ॥ हन्ति शूल ज्वर छर्दि कुष्ठातीसार
हृद्रुजः ॥ २९३ ॥ दाह कण्ड विष प्रवास कृमि-

गुल्म गर व्रणान् ॥ [अथ श्वेतपनिलर ।]
 श्वेता त्रिवृता भण्डी स्यात् त्रिवृता त्रिपुटापि च ॥
 सर्व्वानुमूतिः सरला निशोत्रारेचनी तिच ॥ २६४ ॥
 श्वेता त्वष्ट्रेचिनी स्यात् स्वादुरुषणा समीर हृत् ॥
 रूक्षा पित्तज्वर श्लेष्मपित्त शोथोद्गर यहा ॥ २६५ ॥

भा० अनन्तर पाठा ॥ पाठा अम्बुष्ठा अम्बुष्ठीकी प्राचीना पापचेस्त्रिका ॥ एकष्टीला रसा पाटिक वरनिकिका ॥ २६३ ॥ यह पाठा के नाम हैं ॥ पाठा उष्ण कड़वी तीक्ष्ण वात कफ को नाश करनेवाली हल्की होती है ॥ और शूलज्वर वमन कुष्ठ अतीसार हृदय की पीड़ा ॥ २६३ दाह खुजली विष स्वास कृमि वायुगोला व्रण इनको नाश करती है ॥ [अनन्तर सुफेद निसोत ॥ श्वेता त्रिवृता भण्डी त्रिपुटा सर्वाणु भूति सरला निशोत्रारेचनी येह सुफेद निसोत के नाम हैं ॥ २६४ ॥ सुफेद निसोत दस्तावर होती है । मधुर उष्ण वातकी नाशक ॥ रूक्ष पित्तज्वर श्लेष्मपित्त शोथ उदर इनकी नाशक है ॥ २६५ ॥

अथ प्रथामपनिलर ।] त्रिवृत प्रथामार्द्ध चन्द्रा च पालिन्दी च सुषेणिका ॥ मसूर विदला कोल कौषिका कालमेथिका ॥ २६६ ॥ प्रथामा त्रिवृत ततो ही न गुणा तीव्र विरेचनी ॥ मूर्च्छादाह मद भ्रान्ति करोत् कर्षण कारिणी ॥ २६७ ॥

भा० अनन्तर काला निसोत ॥ त्रिवृत प्रथामा अर्द्धचन्द्रा पालिन्दी सुषेणिका, मसूर विदला, कोल के थिका कालमेथिका येह कालीनिसोत के नाम हैं ॥ २६६ ॥ कालीनिसोत उस्से हीन गुणा वाली और अधिक दस्तावर होती है ॥ तथा मूर्च्छा दाह मद भ्रान्ति कंठका उत्कर्षण करनेवाली होती है ॥ २६७ ॥

अथ लघुदन्ती ।] लघुदन्ती विशाल्या च स्यादुदुम्बर
 परार्थे पि ॥ तथैराड फला शीघ्रा श्येन घराटा धु
 रा प्रिया ॥ २६८ ॥ वाराहाङ्गी च कथिता निकुम्भ-
 श्च मकूलकः ॥ [अथ बृहत् दन्ती ।] एराड प
 च विट्या ।] द्रवन्ती सा वरी चित्रा प्रत्यक् परार्थाखु
 परार्थपि ॥ चत्राप चित्रान्यग्रोधं प्रत्यक् च्छ्रे
 राया खुकर्णयपि ॥ इना द्रयं सरम्पाके रसे च
 कटु दीपनम् ॥ गुदाङ्गुणाश्म शूला शं कराडू कु-
 ष्ट विदाहनुत् ॥ ३०० ॥ तीक्ष्णोष्णां हन्ति पित्ता
 स्र कफ शोथोदर कृमीन् ॥

भा० अनन्तर छोटी दन्ती ।] लघुदन्ति, विशाल्या, उदुम्बर परार्थी, ॥ एरा-
 ड फला, शीघ्रा श्येन घंटा गुणा प्रिया वाराहांगी ॥ २६८ ॥ निकुम्भ मकू-
 लक येह छोटी दन्तीके नाम हैं जिस्का फल जमालगोटा है ॥ अनन्तर
 बड़ी दन्ती इसके पत्ते अराडीके पत्तोंके समान होते हैं ॥ द्रवन्ती, वरी,
 चित्रा प्रत्यक् परार्थी आखु परार्थी ॥ चित्राप चित्रान्योग्रोधि प्रत्यक् च्छ्रेणिं आ-
 खु करणी येह दन्तिके नाम हैं ॥ २६९ ॥ दोनों दन्ति दूलावर पाक और
 रसमें कडवी दीपन ॥ बवासीर पथरी शूल बवासीर खाज कुष्ठ विदाह
 बूगकी नाशक है ॥ ३०० ॥ तीक्ष्ण और उष्ण है तथा रक्तपित्त कफ शोथ
 उदर रोग कृमि इनकी नाशक है ॥

अथ लघुदन्ती फलम् ।] क्षुद्र दन्ती फलन्तु स्यान्
 मधुरं रस पाकयोः ॥ शीतलं सृष्ट विन्मूत्रं गर
 शोथ कृफापहय ॥ ३०१ ॥ जयपालो दन्ति बीजं
 विर्यं तन्तिलो फलम् ॥ जयपालो गुरुः

स्निग्धो रेचि पित्तकफापहः ॥ ३०२ ॥

इन्द्रारुणा बड़ी इन्द्रकला ।] ऐन्द्रीन्द्र वारुणी चित्रा
गवाक्षी च गवादिनी ॥ वारुणी च पराप्युक्ता सा
विशाला महाफला ॥ ३०३ ॥ श्वेतपुष्या मृगाक्षी
च मृगैर्वीरु मृगादनी ॥ गवादिनी द्यंतिक्तं पा-
के कटु सरं लघु ॥ ३०४ ॥ वीर्य्याषां कामला पि-
त्तकफलीहो दरापहम् ॥ श्वास कासा पहङ्कुष्ठ
गुल्म ग्रन्थि व्रणा प्रणुत् ॥ ३०५ ॥ प्रमेह मूढ गर्भा
म गरडामय विषापहम् ॥

भा० अनन्तर छोटे जमालगोटेका फल रस और पाकमें मधुर होता है
॥ और शीतल होता है । तथा मिलेहुवे मल मूत्र को निकालनेवाला विष
के शोथको कफको इनको नाश करता है ॥ ३०१ ॥ जयपाल, दन्तिवीज, ति-
न्तिली फल यह जमालगोटे के नाम है ॥ जमालगोटा भारी चिकना रेचन
पित्तकफका नाशक है ॥ ३०२ ॥ [अनन्तर इन्द्रायन ।]

ऐन्द्री इन्द्रवारुणी चित्रा गवाक्षि गवादिनी ॥ वारुणी यह इन्द्रायन
के नाम है ॥ दूसरी इन्द्रायसाके नाम] विशाला महाफला ॥ ३०३ ॥
श्वेतपुष्या मृगाक्षि मृगैर्वीरु मृगादनी यह बड़ी इन्द्रायनके नाम है ॥
होनों इन्द्रायन तिक्त पाकमें कड़ेवे दस्तावर हलके ॥ ३०४ ॥ वीर्य्यमें उष्ण
हैं तथा कामला पित्तकफ पिलही अदररोग इनके नाशक हैं ॥ और श्वा-
सकासके नाशक तथा कुष्ठ वायुगोला गांठ वृणा इनके भी नाशक हैं
॥ और प्रमेह मूढ गर्भ श्राव गरडरोग गरडमाला विष इनकी नाशक हैं ।

अथ नील ।] नीलीतु नीलिनी तूली काल दोला च
नीलिका ॥ रञ्जनी श्रीफली तुच्छ ग्रामीणा मधु
परिणिका ॥ क्लीतका कालकेशी च नील पुष्या च

सा स्मृता ॥ नीलिनी रेचिनी तिक्ता केश्या मोह भ्र
मापहा ॥ ३०७ ॥ उष्णा हन्त्युदर स्त्रीह वातरक्त क-
फानिलान् ॥ आमवात मुदावर्तं मन्दं च विष मु-
द्धृतम् ॥ ३०८ ॥

भा० अनन्तर नील ॥ नीली निलनी तूली कालदीला नीलिका ॥ रंज-
नी श्रीफली तुच्छ ग्रामिणा मधुपर्शिका ॥ ३०६ ॥ स्त्रीतका कालकेशी
नीलपुष्पा । यह नीलके नाम है ॥ नील रेचन तिक्त केशके हित मोह
भ्रमको नाशक है ॥ ३०७ ॥ उष्ण तथा उदररोग पिलही वातरक्त कफचा-
त आमवात उदावर्त मन्दाग्नि इनको नाशकरती है । विष निकाली हुई
॥ ३०८

अथ सरफोका । शरपुष्पाः स्त्रीह शत्रु नीली वृक्षा
कृति श्वसः ॥ शर पुष्पे यकृत स्त्रीह गुल्म व्रण वि-
घापहाः ॥ ३०९ ॥ तिक्तः कषायः कासास्त्र श्वासः
ज्वरहरो लघुः ॥

भा० अनन्तर सरफोका ॥ शर पुं स्त्री स्त्रीह शत्रु यह सरफोका के नाम है
ये नीलके वृक्षके आकार होती है ॥ सरफोका तिक्ती पिलही वायगोला
व्रण विष इनकी नाशक है ॥ ३०९ ॥ और तिक्तकसेला काररक्त श्यामज्व-
र इनकी नाशक और हलका है ॥ [अथ जवासादुराला ।

यासोप वासीदुःस्पर्शा धन्वयासः कुनाशकः ॥
दुरालभा दुरालम्भा समुद्रान्ता च रोदिनी ॥ ३१० ॥
गान्धारी कच्छुरा नन्ता कषाया हरविग्रहा ॥ या
सः स्वादुः सरस्तिक्तः स्तुवरः पीतलो लघुः ॥ ३११
कफ मेदो मदम्रान्ति पित्तासू कुष्ठ कास जित् ॥
तृषेण विसर्प वातास्र वमिज्वर हरः स्मृतः ॥ ३१२ ॥

यवासस्य गुणैस्तुल्या बुधैरुक्ता दुरालभा ॥

भा० अन्तर जवासा ॥ यास उपवास दुस्पशै धन्वयास दुरालभा दुरालं
भा० समुद्रान्ता रोदनी ॥ ३१० ॥ गान्धारी कच्छुरा नन्ता कषाय हर विग्रह
॥ यह जवासे के नाम हैं ॥ जवासा मधुर दस्तावर तिक्त कसैला शीतल हल
का है ॥ ३११ ॥ और कफ मेद मद भ्रान्ति रक्तपित्त कुष्ठ कास इनको जीमने
वाला है ॥ और तृषा विसर्प वातरक्त वमन ज्वर इनको नाशक कहा गया
है ॥ ३१२ ॥ पंडितों ने जवासे के गुण के समान दुरालभा के गुण कहे हैं ॥

अथ सुराडी ।] सुराडी भिक्षुरपि प्रोक्ता श्रावणी च त-
पोधना ॥ श्रवणा ह्यमुण्डतिका तथा श्रवणा शी-
र्षका ॥ ३१३ ॥ महाश्रावणिका न्यातु सा स्मृता
भूकदम्बिका ॥ कदम्बपुष्पिका च स्यादव्यथा
तितपस्विनी ॥ ३१४ ॥ मुण्डतिका कटुः पाके वी-
र्योष्णा मधुरा लघुः ॥ मेध्या गण्डापची कृच्छ्र
कृमियोन्यर्त्ति पारुडनुत् ॥ ३१५ ॥ श्लीपदा रुच्यप-
स्मार स्त्रीह मेदो गुदार्त्तिहत् ॥ महासुराडी च तत्तु-
ल्या गुरो रुक्ता महर्षिभिः ॥ ३१६ ॥

भा० अन्तर मुन्डी । सुराडी भिक्षु श्रावणी तपोधना । श्रवणा ह्यमुण्ड-
तिका । श्रवणा शीर्षका यह सुराडी के नाम हैं ॥ बड़ी सुराडी महाश्रावणि-
का भूकदम्बिका । कदम्बपुष्पिका अव्यथा अनितपस्विनी ॥ ३१४ ॥
मुन्डी पाक में कड़वी वीर्य में उष्ण मधुर हलकी होती है ॥ कान्तीको
ईनेवाली गण्डमाला अपची सूत्रकृच्छ्र कृमियोनि पीडा पारुडुरोग
इनको नाश करनेवाली ॥ ३१५ ॥ और श्लीपदा अरुचि मिरगी पिल-
ही मेद गुदाकी पीडा इनको नाश करनेवाली है ॥ बड़ी सुराडी गुणों में
उत्ती के समान महर्षियों ने कही है ॥ ३१६ ॥

अथ चिरचिरि ।] अपामार्गस्तु शिखरी ह्यधः

शाल्यो मयूरकः ॥ मर्कटो दुर्ग्रहाचापिकि णही
 खरमञ्जरी ॥ ३१७ ॥ अपामार्गः सरस्तीदणः दीपनः
 स्तिक्तकः कटुः ॥ पाचनो रोचनं छर्द्दि कफमेदो
 अनिलापहः ॥ ३१८ ॥ निहन्ति हृद्गुजा ध्मार्शः क
 र्ण्डू शूलोदरापची ॥ [अथ रक्तचिरेचिरे।
 रक्तान्योव शिरोवृत्त फलोधामार्गवोऽपि च ॥ प्र
 त्यक्पर्णी केशपर्णी कथिता कपिपिप्यली ॥ ३१९ ॥
 अपामार्गोऽरुणो वातविष्टम्भी कफकृत् हिमः ॥
 रूक्षः पूर्वगुणैर्न्यूनः कथितो गुणावेदिभिः ॥ ३२० ॥
 अपामार्ग फलं स्वादु रसेपाके च दुर्जरम् ॥ वि
 ष्टम्भि वातलं रूक्षं रक्तपित्त प्रसादनम् ॥ ३२१ ॥

भा० अनन्तर चिचेंडा ॥ अपामार्ग शीखरी अघशल्य मयूरक ॥ मर्क
 टो दुर्ग्रहा किराही खरमंजरी येह चिचेंडे के नाम हैं ॥ ३१७ ॥ चिचेंडा दस्ता
 वर नीक्षण उषा दीपन तिक्त कटु ॥ पाचन रोचन कफमेद वमन वात इन
 को नाशक है ॥ ३१८ ॥ हृदय की पीड़ा भापमान बवासीर खुजली मूल उदर रोग
 अपची बुन्को नाश करता है ॥ [अनन्तर रक्त चिचेंडा। दूसरा लाल।
 वशिष्ठ वृत्तफल अपामार्गव ॥ प्रत्यक्पर्णी केशपर्णी कपिपिप्यली येह
 लालचिचेंरे के नाम हैं ॥ ३१९ ॥ लालचिचेंरे अरुण वातको विष्टम्भ करने
 वाला कफको करनेवाला शीतल ॥ रूक्ष और पहलेके गुणों से हीन गुणाके
 जाननेवालोंने ऐसा कहा है ॥ ३२० ॥ चिचेंरेका फल रसमें मधुर
 और पक्वमें भी मधुर विशुद्ध ॥ विष्टम्भ को करने वाला वा
 तको करनेवाला रूखा रक्तपित्तको अच्छा करने वाला होता है ॥ ३२१ ॥

अथ तालमखाना ।] कोकिलाक्षस्तु काकेक्षुरिक्षु-
 रः क्षुरकः क्षुरः ॥ भिक्षुः कारुडेक्षुरप्युक्तः इक्षु

गन्धेक्षु वालिका ॥ ३२२ ॥ क्षुरकः शीतलो वृष्यः
स्वाद्वस्त्र पित्तलस्तथा ॥ तिक्तो वातामशो यथाप्रम
तृष्णादृष्य निलास्रजित ॥ ३२३ ॥

अथ हृदसङ्गारि ।] अन्धिमानस्थि-संहारी वज्राङ्गी वा
स्थि शृङ्खला ॥ अस्थिसंहारकः प्रोक्तो वातश्लेष्म
हरोऽस्थियुक ॥ ३२४ ॥ उष्णः सरः कृमिघ्नश्च दुर्नी-
मघ्नोऽक्षिरोगजित ॥ रूक्षः स्वादुर्लघुर्दृष्यः पाचनः
पित्तलः स्मृतः ॥ ३२५ ॥ कारडत्वग्विरहितमस्थि
शृङ्खलाया माषाद्रिं द्विदलमकं चुकं तदद्वैम् ॥
सम्यिष्टं तदनु तत स्तिलस्य तैले सम्पक्वं वटक
मतीव वातहारि ॥ ३२६ ॥

भा० अनन्तर तालमखाना ।] कौकिलाक्ष, काकिक्षुः, इक्षुर, क्षुरक, क्षुर
॥ इक्षु कांडेक्षु इक्षुगन्धा इक्षुवालिका यह तालमखानेके नाम हैं ॥
तालमखाना शीतल शुक्रको उत्पन्न करनेवाला मधुर अम्ल पित्तको उत्पन्न
करनेवाला तिक्त आम वात पथरी शोथ तृष्णा दृष्टिरोग वातरक्त इनको जीत
नेवाला है ॥ ३२३ ॥ [अनन्तर हर सिंगार । अन्धिमान अस्थिसंहार वज्रां
गी अस्थिश्रंखला । अस्थिसंहारक, यह हर सिंगारके नाम हैं ॥ हर सिंगार
वात कफ का नाशक और हड्डियों को जोड़नेवाला उष्ण दस्तावर कृमिको
नाशक बवासीर का नाशक नेत्ररोगको जीतनेवाला रूखा मधुर हलका
शुक्रको उत्पन्न करनेवाला पाचन पित्तको करनेवाला कहा गया है । ३२४
तालमखाना त्वचासे रहित हर सिंगारका भी गीला उड़द चुक
उत्से आधा ॥ इनको पीसके उसके पश्चात् उसके तिलके तेलमें पकाया वड़
अति वातका नाशक है ॥ ३२६ ॥

अथ घाउकुञ्जारि ।] कुमारी गृहकन्या च कन्या

घृतकुमारिका ॥ कुमारी भेदिनी शीता तिका ने
 व्या रसायनी ॥ ३२७ ॥ मधुरा वृहणी बल्या वृष्या
 वात विष प्रणुत ॥ गुल्म सीह यरुद् वृद्धि कफ
 ज्वर हरी हरेत् ॥ ३२८ ॥ ग्रन्थ्याग्नि दग्ध विस्फोट
 पित्त रक्त त्वगामयान् ॥

भा० अनन्तर घीकुवार ॥ कुमारी ग्रहकन्या कन्या घृतकुमारी । येह
 घीकुवारके नाम है ॥ घीकुवार भेदन शीत तिकनेत्रका हित रसायन ॥ ३२७ ॥
 मधुर पुष्ट बलको बढ़ानेवाला क्षुद्रको उत्पन्न करनेवाला वात विषका ना
 शक । गुल्म वायुगोला पिलही तिहो अंचवृद्धि कफ ज्वर इनका नाशक
 है ॥ ३२८ ॥ और ग्रन्थि अग्निदग्ध विस्फोट पित्तरक्त त्वचर्किरोग इनको
 नाश करता है ॥ [अथ श्वेत पुनर्नवा ।]

पुनर्नवा श्वेतमूला शोथघ्नी दीर्घपत्रिका ॥ कटुः
 कषायानुरसा पाण्डुघ्नी दीपनीसरा ॥ ३२९ ॥ शो
 फानिलगर श्लेष्महरी व्रणयोदर प्रणुत ॥

अथ रक्तपुष्या पुनर्नवा ।] पुनर्नवा परा रक्ता रक्तपुष्या
 शिलाटिका ॥ शोथघ्नः क्षुद्रवर्षाभूत्पकेतुः कपि
 ल्लकः ॥ ३३० ॥ पुनर्नवारुणा तिका कटुपाका हि
 मालघुः ॥ वानला ग्राहिणी श्लेष्म पित्तरक्त विनाशि
 नी ॥ ३३१ ॥

भा० अनन्तर सफ़ेद गदहपूरन ॥ पुनर्नवा श्वेतमूला शोथघ्नि दीर्घ
 पत्रिका । येह सफ़ेद गदहपूरनाके नाम है ॥ सफ़ेद पुनर्नवा कसैला
 पाण्डुरोगका नाशक दीपन है और वात विष कफ इनकी नाशक है
 तथा व्रण उदररोगका भी नाशक है ॥ [अनन्तर गदापूरना । पुन
 र्नवा दूसरी रक्तपुष्या शिलाटिका । येह लाल पुनर्नवाके नाम है ॥

शोथघ्नः क्षुद्रः वर्षाभूः लृषकेतूः कपिल्लकः येह पुनर्नवा के नाम हैं ॥ ३३० ॥
पुनर्नवा लाल तिक्त पाक में कदु शीतल हलका ॥ वात को उत्पन्न करने वा-
ला अग्नि कफ विना रक्तका नाशक है ॥ ३३१ ॥

अथ गन्धप्रसारणी ।] प्रसारणी राजबला भद्रपरीणी
प्रतापनी ॥ सरणी सारणी भद्रा बला चापि कटुम्भ
रा ॥ ३३२ ॥ प्रसारिणी गुरुवृष्या बलसन्धान कृत्स
रा ॥ वीर्योष्णा वातहृत् तिक्ता वातरक्त कफापहा
॥ ३३३ ॥

भा० अनन्तर गन्धप्रसारणी ।] प्रसारणी राजबला भद्रपरीणी प्रतापनी ॥
सरणी सारणी भद्रा बला कटुम्भ । यह गन्धप्रसारणी के नाम हैं ॥ ३३२ ॥
गन्धप्रसारणी भारी शुक्र को उत्पन्न करने वाली बलको देने वाली हड्डियों
को जोड़ने वाली दस्तावर ॥ वीर्य में उष्ण वातकी नाशक तिक्त वातरक्त
कफ इनको नाश करने वाली है ॥ ३३३ ॥

अथ करिआवासा ।] इन्द्रजम्बूक वत्पत्रा सुगन्धा
कलघण्टिका ॥ कृष्णातु शारिवा प्रयामा गो-
पी गोप वधूश्च सा ॥ ३३४ ॥ [गोरिआ सांउ ।]
इयमपि जम्बूवत्पत्रा दुग्धगर्भा व्रततिर्भवति ।
धवला शारिवा गोपी गोपकन्या कृशोदरी ॥ स्फो-
टा प्रयामा गोपवल्ली लतास्फोटा च चन्दना ॥ ३३५ ॥

भा० अनन्तर काला शारिवा । बड़े जामन के पत्तों के समान पत्ते होते हैं ॥
और सुगन्ध भी होता है । कलघण्टिका, सुगन्धा, इन्द्रजम्बूकवत्, पत्रा ॥ कृ-
ष्णा, शारिवा, प्रयामा, गोपी, गोपवधू, येह काले शारिवा के नाम हैं ॥ उसकी
पूर्व में सांऊ कहते हैं ॥ ३३४ ॥ अनन्तर श्वेत शारिवा । इसकी भी जामन
केसे पत्ते होते हैं ॥ भीतर दूध होता है । और लतावाला होता है । धवला,
शारिवा, गोपी, गोपकन्या, कृशोदरी, स्फोटा, प्रयामा, गोपवल्ली, लता-

आस्फेता चन्दना ॥ ३३५ ॥

(क) गोपी । गोपस्य स्त्री । पुंयोगादीप् । गोपा । गोपा
तीति गोपा गोपकन्या । प्रयामा पदेन कृपणा
श्वेनापि सारिवा कथ्यते । साश्वतेन सारिवा पद-
स्य प्रयुक्तत्वात् ।

तद्यथा] सारिवायां निशि प्रयामा श्यामौच हरिता सि-
ताविनि ॥ सारिवा युगलं स्वादु स्निग्धं शुक्रकरं गु-
रु ॥ अग्निमान्द्या रुचिश्वास कासामविषनाश

नम् ॥ ३३६ ॥ दोषत्रयास्त प्रदरज्वरातीसार नाशनम्

भा० यह स्वतः सारिवा के नाम हैं । (क) (गोपी) गोपकी स्त्री । पुंयोग
से इयं प्रत्यय है । (गोपा) गायकी जोरत्ना करता है वोह गोप है ॥
(गोपकन्या) प्रयामा पदसे काली और सुपौद सारिवा कही है ॥ वोह स्वे-
त सारिवा पदके प्रयोग होनेसे । वोह जैसे-

सारिवा में निशि, प्रयामा, श्यामौ, हरिता, सिता. इस प्रकार कहा है ॥
दोनों सारिवा मधुर, चिकने शुक्रको उभयत्र कलेचाले भाँते हैं ॥ और अग्नि
मान्द्य अरुचि श्वास कास आम विष इनके नाशक हैं ॥ ३३६ ॥
नपा विदोष रक्त प्रदर ज्वरातिसार इनको नाश करने है ॥

अथ भृङ्गरा । भृङ्गराजो भृङ्गनो भाकं चो भृङ्ग-

एव च ॥ अङ्गरकः केशराजो भृङ्गारः केशरञ्जनः

॥ ३३७ ॥ भृङ्गारः कड़क स्त्रीदणो रूक्षोष्णः कफ

वातनुत् ॥ केशयस्त्वच्यः कृमिश्वास कास पीथा

मपा रङ्गनुत् ॥ ३३८ ॥ दन्त्यो रसायनो वल्यः

कुष्ठनेत्र शिगेर्तिनुत् ॥

भा० धनतर भृङ्गा ॥ भृङ्गराज, भृङ्गरज, भाकं च, भृङ्ग, अंगारक, केशराज.

भृंगारां केशरंजन. येह भृंगरं के नाम हैं ॥ भृंगरा कड़वा ताँवा रूखा मरम कफ वान का नाशक है ॥ और केशके हिन त्वचको अच्छा करने वाला और हृमि श्वास कास शोथ पांडुरोग का नाशक है ॥ ३३० ॥ और दाँतों को अच्छा करने वाला रसायन बलको देने वाला कुष्ठ मेदरोग शिरकी पीड़ा इनका नाश करने वाला है ॥

[शणपुष्या इति च ह्रली । शण इव पुष्या ।]

शणपुष्यी स्मृता घराटा शणपुष्य समाकृतिः ॥

शणपुष्यी कटुस्तिक्ता वामिनी कफ पित्तजित् ॥

॥ ३३६ ॥

[अथ त्रायमाना] बलभद्रा त्रायमा-

ना त्रायन्ती गिरिसानुजा । त्रायन्ती तु वरा तिक्ता

सरा पित्तकफापहा ॥ ३४० ॥ ज्वर हृद्रोग गुल्माशी

भ्रमशूल विष प्रणु ॥

भा० अनन्तर शणपुष्या । इसको ह्रली भी कहने हैं । इसके फूल सनके फूलके सदृश होते हैं ॥ शणपुष्यी घंटा शणपुच्छ समाकृति । यह ह्रली के नाम है । ह्रली कड़वी तिक्त वमनको कराने वाली कफ पित्तको जीतने वाली है ॥ ३३६ ॥ [अनन्तर त्रायमाणा । बलभद्रा . त्रायमाणा ,

त्रायन्ति, गिरिसानुजा ॥ येह त्राय माणाके नाम हैं ॥ त्रायमाणा कसैली तिक्त दस्तावर पित्तकफकी नाशक है ॥ ३४० ॥ और ज्वर हृद्रोग वायुगोला चवासीर भ्रमशूल विष इनकी नाशक है ॥

[अथ चूर्णहार]

मूर्वी मधुरसादेवी मोरटा नेजनी सुवा ॥ मधूलि-

का मधुश्रेणी गोकार्णी पीलु परार्थपि ॥ ३४१ ॥ मू-

र्वी सरा गुरुः स्वादुस्तिक्ता पिनास्रमेहनुत् ॥ त्रि-

दोष तृषणा हृद्रोग कण्डू कुष्ठज्वरापहा ॥ ३४२ ॥

भा० अनन्तर मोरहफली । मूर्वी मधुरसा देवी मोरटा नेजनी सुवा ॥

मधूलिका, मधुश्रेणी, गोकर्णी, पीलुपर्णी, येह मरोडफली के नाम हैं ॥
३४१ ॥ मरोडफली मलवात को नीचे करने वाली भारी मधुर तिक्त रक्त पित्त
प्रमेह इनको नाशक है ॥ और त्रिदोष तथा हृदरोग खुजली कुष्ठज्वर इन
की भी नाशक है ॥ ३४२ ॥

[अथ कवैत्रा ।]

काकमाची ध्वाङ्गमाची काकाह्वा चैव वायसी ॥

काकमाची त्रिदोषघ्नी स्निग्धोष्णा स्वर शुक्रदा ॥

३४३ ॥ तिक्ता रसायनी शोथ कुष्ठार्शो ज्वर मेहं जि

त् ॥ कटु नेत्र हिता हिक्का च्छर्दि हृदरोग नाशिनी

॥ ३४४ ॥ [कौआढोढी ।] काकनासा तु काका

ङ्गी काकतुराड फला च सा ॥ काकनासा कषायो

ष्णा कटुकार्स्पाकयोः ॥ ३४५ ॥ कफघ्नी वाम

नी तिक्ता शोथार्शः शिवत्र कुष्ठ हृत् ॥

भा० अन्तर किमांच । काकमाची ध्वाङ्गमाची काकाह्वा वायसी । येह
किमांच के नाम हैं ॥ किमांच त्रिदोषनाशक चिकनी उष्ण स्वर शुक्रको
करने वाली ॥ ३४३ ॥ तिक्त रसायन शोथ कुष्ठ ववासीर ज्वर प्रमेह इनको दूर
करने वाली है ॥ कड़वी नेत्रके हित कुचकी वमन हृदरोग इनको नाशकर
ने वाली है ॥ ३४४ ॥ अन्तर कौआढोढी ।] काकनासा काकाङ्गी काकतुं
डफला । येह कौवा ढोढी के नाम है ॥ कौवाढोढी कसैली गरम रस पाक में
कड़वी होती है ॥ ३४५ ॥ और कफकी नाशक वमनकरने वाली तिक्त पूजन
ववासीर शिवत्रकुष्ठ इनका नाशक है ॥ [अथ काकजंघा नसीति

लोके ।] काकजङ्घा नदाकान्ता काकतिक्ता सुलोयशा

॥ पारवणपदी दासी काकाचापि प्रकीर्णिता ॥ ३४६ ॥

काकजङ्घा हिमा तिक्ता कषाया कप पित्त जित् ॥

निहन्ति ज्वर पित्रास्र ज्वरकराड विषकृमीन् ४७
 अथ नागपुष्पी] नागपुष्पी श्वेतपुष्पा नागिनी रा
 मदूतिका ॥ नागिनी रोचनी तिक्ता तीक्ष्णोष्णा कफ
 पित्तनुत् ॥ ३४८ ॥ विनिहन्ति विषं शूलं योनिदो-
 षवमिहृमीन् ॥

भा० अनन्तर काकजंघा इस्कोलोकमें मसी ऐसा कहते हैं ॥ काकजंघा न
 दीकांता काकतिक्ता सुलोमशा ॥ परावतपदी दासी काका । येह मसी
 के नाम हैं ॥ ३४६ ॥ काकजंघा शीतल तिक्त कसैली कफ पित्त की नाश
 करे ॥ और ज्वर पित्त रक्त हृमि कराड विष इनको नाश करती है ॥ ४७
 ॥ अनन्तर नागपुष्पी । नागपुष्पी श्वेतपुष्पा नागिनी रामदूतिका येह ना
 गिनीके नाम हैं ॥ नागिनी रुचिको करनेवाली तिक्त तीक्ष्ण उष्णा कफ पित्त
 की नाशकरे ॥ ३४८ ॥ और विष शूल योनिदोष घमन हृमि इनको दूर
 करती है ॥

[अथ मेढासिङ्गी]

मेषशृङ्गी विषाणी स्यान्मेषवल्ल्यज शृङ्गीका ॥

मेषशृङ्गी रसे तिक्ता वातला श्वासकास हृत् ॥ ३४९

रूक्षा पाके कटु स्तिक्त व्रणश्लेष्माक्षिशूलनुत् ॥

मेषशृङ्गी फलं तिक्तं कुष्ठमेह कफ प्रणुत् ॥ ३५० ॥

दीपनं स्वंसनं कास हृमि व्रण विषापहम् ॥

भा० अनन्तर मेढासींगी ॥ मेषशृङ्गी विषाणी मेषवल्ली अजशृङ्गीका ।
 येह मेढासींगी के नाम हैं ॥ मेढासींगी रसमें तिक्त वातको उत्पन्न करनेवा
 ली । श्वास कास की नाशकरे ॥ ३४९ ॥ और रूखी पाकमें कटु तिक्त व्र
 ण कफ नेत्र शूल इनको नाश करनेवाली है ॥ मेढासींगी का फल तिक्त
 कुष्ठ प्रमेह कफ इनका नाशकरे ॥ ३५० ॥ दीपन दस्तावर कास हृमि व्र
 ण विष इनका नाशकरे ॥

[अथ हंसपदी ।]

हंसपादी हंसपदी कीटमाता त्रिपादिका ॥ हंस-

पादी गुरुः शीता हन्ति रक्त विष ब्रणान् ॥ ३५२ ॥

विसर्प दाहातीसार लूता भूताग्निरोहिणी ॥

अथ सोमलता ।] सोमवल्ली सोमलता सोमक्षीरी द्वि
जप्रिया ॥ सोमवल्ली विदोषघ्नी कटुस्त्रिका रसा
यनी ॥ ३५२ ॥

[अथ आकाशवल्ली ।] (अमरवेलि इति च ।)

आकाशवल्ली तु बुधैः कथिता मरवल्लरो ॥ ख

वल्ली ग्राहिणी तिक्ता पिच्छिला क्षामया पहा ॥

तुवराग्निकरी हृद्या पित्तश्लेष्मामनाशिनी ॥ ३५३ ॥

भा० अनन्तर हंसपदी । हंसपादी । हंसपदी । कौटमाता । त्रिपादका । येह हंसपदी
के नामहैं ॥ हंसपदी । भारी । शीत । रक्त । विष । ब्रण । को नाश करती है ॥ ३५२ ॥

और विसर्प । दाह । अतीसार । लूता । भूत । अग्नि । रोहिणी । इनकी भी नाशक
रती है ॥ [अनन्तर सोमलता । सोमवल्ली । सोमलता । सोमक्षीरी । द्विज-
प्रिया । येह सोमलताके नामहैं । सोमलता । विदोषनाशक । कडवी । तिक्त ।
रसायनी है ॥ ३५२ ॥ [अनन्तर अमरवेल । आकाशवल्ली को पंडित अमर-
वल्ली कहतेहैं । आकाशवल्ली । काविज तिक्त । चेषदार । राजयत्सा रोगकी नाश
क ॥ कसैली अग्निको करनेवाली । हृद्य पित्त कफ आम इनकी नाशक है ॥
३५३ ॥ अथ पाताल गरुड़ी ।] छिलिहिराटो महामूलः

पाताल गरुडाह्वयः ॥ छिलिहिराटः परं वृष्यः क

फघ्नः पवनापहः ॥ ३५४ ॥ [अथ वन्दा ।]

वन्दा वृक्षा दनी वृक्ष भक्ष्या वृक्ष रुहापि च ॥

वन्दाकः स्याद्विमस्त्रिकः कषायो मधुरो रसे ॥ ३५५ ॥

माङ्गल्यः कफ वातास्त्र रक्षो ब्रण विषापहः ॥

भा० अनन्तर पाताल गरुडी ।] छिलिहिरादः महामूलः पाताल गरुड नाम वाली ॥ येह पाताल गरुडी के नाम हैं ॥ पाताल गरुडी, अत्यन्त शुक्रको उत्पन्न करनेवाली कफ नाशक और वान नाशक है ॥ ३५४ ॥

अनन्तर वन्दा] वृक्षादनी, वन्दा, वृक्षभक्षा, वृक्षरुहा, येह वन्दाक के नाम हैं ॥ वन्दाक शीतल तिक्त कसेला रसमें मधुर है ॥ ३५५ ॥ और मंगल कारक कफ वात रक्त रजसं ब्रण विष इनका नाशक है ॥

अथ वटपत्री ।] वटपत्री तु कथिता मोहिनी रेचनी बुधैः ॥ वटपत्री कषायोष्णा योनिमूत्र गदापहा ॥ ३५६ ॥ अथ हिङ्गुपत्री तु कवरी पृथ्विका पृथुका पृथुः ॥ हिङ्गुपत्री भवेद्रुच्या तीक्ष्णोष्णा पाचनी कटुः ॥ ३५७ ॥ हृहस्ति रुग्विवन्धारीः श्लेष्मः गुल्मा निलापहा ॥

भा० अनन्तर वटपत्री ।] वटपत्री, मोहिनी, रेचनी, येह वटपत्री के नाम पंडितों ने कहे हैं ॥ वटपत्री कसेली गरम है । और योनिरोग मूत्ररोग इनकी नाशक है ॥ ३५६ ॥ अनन्तर हिङ्गुपत्री, हिङ्गुपत्री, कवरी, पृथ्विका, पृथुका, पृथु ॥ येह हिङ्गुपत्री के नाम हैं । हिङ्गुपत्री रुचिको करनेवाली तोरखी उष्ण पाचन कड़वी है ॥ ३५७ ॥ और हृदय पेड़की पीड़ा विबन्ध बवासीर कफ बायगोला वात इनकी नाशक है ॥

अथ वंशपत्री ।] वंशपत्री, वेणुपत्री, पिङ्गु, हिङ्गु, शिवाटिका ॥ हिङ्गुपत्री गुणा विज्ञे वंशपत्री च कीर्तिता ॥ ३५८ ॥ [अथ मत्स्याक्षी ।]

मच्छेष्टी इतिलोके । छ्छ मच्छरि आइति च । मत्स्याक्षी बाह्विका मत्स्यगन्धा मत्स्यादनीति च । च ॥ मत्स्याक्षी ग्राहिणी शीता कुष्ठ पित्त कफा

सजित् ॥ ३५६ ॥ लघुस्तिक्ता कषाया च स्वाद्वी क-
ट्टु विपाकिनी ॥

भा० अनन्तर वंशपत्री] वंशपत्री वेणुपत्री पिण्डा हिंगुशिवाटिका । यह
वंशपत्री के नाम हैं ॥ वंशपत्री हिंगुपत्री के समान गुण में कही है ॥
अनन्तर मत्स्याक्षी इस्को मच्छेही और मच्छरिया से सा कहते हैं ॥ मत्स्याक्षी
वान्हिका मत्स्यगन्धा मत्स्यादनी । यह मत्स्याक्षिके नाम हैं ॥ मत्स्याक्षी का विज्ञ ।
शीतल है । और पित्त कुष्ठ कफ रक्त इनको जीतनेवाली है ॥ ३५६ ॥ और हल-
की निक कसैली मधुर पाक में कटु होती है ॥

अथ सरहटी गरिडनीति च । सर्पाक्षी स्यात्तु गरडा-
ली तथा नाडी कपालकः ॥ सर्पाक्षी कटुका तिक्ता सो

ष्णा कृमि विरुन्तनी ॥ ३६० ॥ दृश्रिकीन्दु रसर्पाणां
विषघ्नी व्रणरोगिणी ॥ [अथ शङ्खपुष्पी ।]

शङ्खपुष्पी तु शङ्खाह्वा माङ्गल्य कुसुमापि च ॥ श-
ङ्खपुष्पी सरा मेध्या वृष्या मानस रोगहत् ॥ ३६१ ॥

रसायनी कषायोष्णा स्मृति कान्ति बलाग्नि

दा ॥ दोषापस्मार भूतादि कुष्ठ कृमि विष प्रणुत् ॥ ३६२ ॥

भा० अनन्तर सरहटी गंडनी से सा भी कहते हैं ॥ सर्पाक्षी गरडाली तथा ना-
डी कपालक यह सर्पाक्षी के नाम हैं ॥ सर्पाक्षी कटुका तिक्त कुष्ठ गरसहोती
है और कृमिकी नाशक है ॥ ३६० ॥ और विच्छू चूहा सांप इनके विष
की नाशक और घावको भरनेवाली है ॥

अनन्तर शंखपुष्पी । शंखपुष्पी शंखाह्वा माङ्गल्य कुसुमापि च यह शंखपुष्पी
के नाम हैं ॥ शंखपुष्पी मल वात को अनुलोम करनेवाली कान्तीको बढ़ाने
वाली सुक्रको उत्पन्न करनेवाली मानस रोगकी नाशक ॥ ३६१ ॥ और
रसायन कसैली गरम स्मृति कान्ति बल आग्नि को देनेवाली और मिरगी भू-
त कुष्ठ कृमि विष इनकी नाशक है ॥ ३६२ ॥

अथ अर्कपुष्पी ।] अर्कपुष्पी क्रूर कर्मा पयस्या
जलकामुका ॥ अर्कपुष्पी कृमिश्लेष्ममेह पि-
त्तविकारजित् ॥ ३६३ ॥ [अथ लज्जालुः ।
लज्जालुः स्यात् शमीपत्री समङ्गा जलकारिका ॥
रक्तपादी नमस्कारी नाम्ना खदिरकेत्यपि ॥ ३६४ ॥
लज्जालुः शीतला तिक्ता कषाया कफपित्तजित् ॥

भा० अनन्तर अर्कपुष्पी ॥ अर्कपुष्पी क्रूरकर्मा पयस्या जलकामुका
॥ यह अर्कपुष्पी के नाम है ॥ अर्कपुष्पी कृमिकफ प्रमेह पित्त रोग इनकी
नाशक है ॥ ३६३ ॥ [अनन्तर लज्जालुः । लज्जालु शमीपत्री समङ्गा जल-
कारिका रक्तपादी नमस्कारी खदिरका । यह लज्जालु के नाम है ॥ ३६४ ॥
लज्जालु शीतल तिक्त कसैली होती है । और कफापित्त को जीतनेवाली तथा
रक्त पित्त अतीसार योनिरोग इनको नाश करती है ॥ ३६५ ॥

रक्तपित्तमतीसारं योनि रोगान् विनाशयेत् ॥ ३६५ ॥

लज्जालुभेदः ।] अलम्बुषा ।] अलम्बुषा स्वरत्नक
च तथा मेदोगला स्मृता ॥ अलम्बुषा लघुः स्वादुः
कृमिपित्तकफापहा ॥ ३६६ ॥ अथ दूधी ।]

दुग्धिका स्वादुपर्णी स्यात् क्षीराविक्षीरणी तथा ॥
दुग्धिकीषणा गुरू रूक्षा वातला गर्भकारिणी ॥ ३६७ ॥
स्वादु क्षीरा कदुस्तिक्ता सृष्टमूत्र मलापहाः ॥ स्वा
दुर्विष्टम्भिनी वृष्या कफकुष्ठ कृमिप्रणुत् ॥ ३६८ ॥

भा० अनन्तर लज्जालुका भेद ॥] अलम्बुषा । अलम्बुषा स्वरत्नक
मेदोगला यह होवेर के नाम है ॥ हाऊवेर हलका मधुर, कृमि, पित्त,
रक्तका नाशक है ॥ ३६६ ॥ अनन्तर दूधी । दुग्धिका स्वादुपर्णी क्षीरा,

क्षीरणी, येह दुद्धीके नामहैं ॥ दुद्धी गरम भारी रूखी वानको करले वाली
 और गरमको करनेवाली ॥ ३६७ ॥ और मधुर दुग्धवाली कड़वी तिक्त मूत्र
 को करनेवाली मूलनाशक मधुर विष्टम्भको करनेवाली शुक्र को उत्पन्न
 करनेवाली और कफ कुष्ठ कृमी इनकी नाशकहै ॥ ३६८ ॥

[अथ भुइआंबरा]

भूम्यामलिकिका प्रोक्ता शिवातामलकीति च ॥

बहुपत्रा बहुफला बहुवीर्या जटापि च ॥ ३६९ ॥

भूधात्री वातकृत् तिक्ता कषाया मधुरा हिमा ॥

पिपासा कासपित्तास्र कफकराडू क्षतापहा ॥ ३७० ॥

अथ वरंभी ।] ब्राह्मी कपोतवङ्का च सोमवल्ली सर-

स्वती ॥ [ब्रह्ममाराडूकी । मराडूक परी माराडू

की त्वाष्ट्री दिव्या महौषधी ॥ ३७१ ॥ ब्राह्मी हिमा

सरतिक्ता लघुर्मेघ्या च शीतला ॥ कषाया मधु

रा स्वादु पाका युष्मारसायनी ॥ ३७२ ॥ स्वर््या स्तृ

तिप्रदा कुष्ठ पाण्डु मेहास्र कासजित् ॥ विषशोथ

ज्वरहरी तद्धन्मराडूक परिणी ॥ ३७३ ॥

भा० अनन्तर भुइआंबला ॥ भूम्यामलिक शिवातामलकी ॥ बहु पत्रा-
 बहुफला बहुवीर्या जटा । येह भुई आंबलेके नामहैं ॥ ३६९ ॥ भुई
 आंबला वानको करनेवाला तिक्त कसैला मधुर शीतलहै ॥ और व्यास
 कास रक्त पित्तकफ खुजली क्षत इनका नाशक ॥ ३७० ॥

अनन्तर ब्रह्मी ॥ ब्राह्मी कपोतवङ्का, सोमवल्ली सरस्वती ॥ मराडूक परी
 माराडूकी न्याष्ट्री दिव्या महौषधी ॥ येह ब्राह्मी और मराडूक परीके
 नामहैं ॥ ३७१ ॥ ब्राह्मी शीतल सर तिक्त हलकी बुद्धीको बढ़ानेवालीहै ।
 शीतल कसैली मधुर पाकमें मधुर अर्थको देनेवाली रसायनीहै ॥ ३७२ ॥

श्रीर.स्वरको अच्छा करनेवाली स्मृतिको देनेवाली तथा कुष्ठ पाण्डुरोग प्र
मेह रक्त कास इनको जीतनेवाला है ॥ श्रीर विष शोथज्वर इनकी ना
शक है मण्डूक परिणी भी जहाँके समान गुण में है ॥ ३९३ ॥

[अथ गूमा ।] द्रोणा च द्रोणा पुष्पी च फले पुष्पा
च कीर्तिता ॥ द्रोणा पुष्पी गुरुः स्वादु रूक्षोष्णा वा
तपित्तकृत् ॥ ३९४ ॥ स तीक्ष्णालवणा स्वादु पाका
कट्टी च भेदिनी ॥ कफामकामला शोथ तमक
श्वासजन्तुजित् ॥ ३९५ ॥

भा० अनन्तर गूमा ।] द्रोणा द्रोणा पुष्पी फले पुष्पा यह गोमाके नाम कहे
गये हैं ॥ गोमा भारी मधुर रूखी गरम वात पित्तको करनेवाली है ॥ ३९४ ॥
नीरली नमकीन पाकमें मधुर और कटुभी तथा भेदन है ॥ श्रीर कफ आम
कामला शोथ तमक श्वास कृमि इनको जीतनेवाली है ॥ ३९५ ॥

[अथ हर हर । द्वितीय हर हर ।]

सुवर्चला सूर्यभक्ता वरदा वदरापि च ॥ सूर्या
वर्ता रविपीताऽपरा ब्रह्म सुवर्चला ॥ ३९६ ॥ सु-
वर्चला हिमा रूक्षा स्वादु पाका सरा गुरुः ॥ अ-
पित्तला कटुः क्षारा विष्टम्भ कफ वात जित् ॥ ३९७ ॥
अन्या तिक्ता कषायोष्णा सरा रूक्षा लघुः कटुः ॥
निहन्ति कफ पित्तास्र श्वास कासारुचि ज्वरान् ॥
३९८ ॥ विस्फोट कुष्ठमेहास्र योनिरुक्कृमि पाण्डुताः ॥

भा० अनन्तर हर हर श्रीर दूसरा हर हर ॥ सुवर्चला सूर्यभक्ता वरदा वद
रा ॥ सूर्यवर्ता रविपीता श्रीर दूसरी ब्रह्म सुवर्चला यह दूसरे हर हरके नाम

हैं ॥ ३७६ ॥ हर हर शीतल रूखी पाकमें मधुर सर भागी ॥ पित्तको न करनेवाली कड़वी क्षार है । और विष्टंभ कफ वानको नीतने वाली है ॥ ३७७ ॥
और दूसरी तिक्त कसेली गरम सर रूखी हलकी कड़वी ॥ और कफ रक्त पित्त प्रबासे कास घ्नरुचिज्वर इनको नाश करती है ॥ ३७८ ॥ तथा किस्कीट कुष्ठ प्रमेह रक्त योनि पीडा कृमि पाण्डुता इनकी भी नाश करनी है ॥

अथ वाभूरव सा ।] बन्ध्या कर्कोटकी देवी कन्या योगीश्वरीति च ॥ नागारि नक्रदमनी विषकण्टकिनी तथा ॥ ३७९ ॥ बन्ध्या कर्कोटकी लघ्वी कफनुद् ब्रणशोधिनी ॥ सर्पदर्प हरी तीक्ष्ण विसर्पविषहारिणी ॥ ३८० ॥

भा० अथ वीज खकसा ॥ बन्ध्या कर्कोटकी देवी कन्या योगीश्वरी ॥ नागारी, नक्रदमनी, विषकण्टकिनी यह वंशखकसा के नाम हैं ॥ ३७९ ॥ वीज खकसा हलका कफ नाशक ब्रणशोधन सर्पके दर्पको दूर करनेवाला तीखा विसर्प विष नाशक है ॥ ३८० ॥

[अथ भूइखकसा ।

बल्ली भूमिप्रसरणशीला ।] मार्कण्डिका भूमिबल्ली मार्कण्डी मृदुरेचनी ॥ मार्कण्डिका कुष्ठहरी कर्माधः कायशोधिनी ॥ ३८१ ॥ विषदुर्गन्धकासघ्नी गुल्मोदरविनाशिनी ॥

भा० अनन्तर भूइखकसा ॥ यह क्षता भूमिपर फैलनेवाली होती है ॥ मार्कण्डिका भूमिबल्ली मार्कण्डी मृदुरेचनी यह भी खकसा के नाम हैं ॥ खकसा कुष्ठनाशक कफ और नीचेसे शरीर को शोधन करने वाली है ॥ ३८१ ॥ और विषदुर्गन्ध कास इनकी नाशक और वायुगोला उदररोग इनकी भी नाशक है ॥

अथ देवदाली सोनैत्रा । खखसा वत् फलव्रतनिः ।] देवदाली तु वैराग्यस्यात् कर्कटी च

[अथ वरवेल ।] वेलन्तरो जगति वीरतरुः प्रसिद्धः
श्वेता सितारुणविलोहितनीलपुष्पः ॥ स्याज्जा
तितुल्यकुसुमः शमिसूक्ष्मपत्रः ॥ स्यात्करट
की विजलदेशज एष वृक्षः ॥ ३६२ ॥

वेलन्तरो रसेपाके तिक्तः तृषणा कफापहः ॥ मू
त्राघानाशमजित् प्राहीयोनिमूत्वानिलार्तिजित् ६३

भा० अनन्तर वरवेल । वेलन्तर जगतमें वीरतरु नाम प्रसिद्ध है ॥ वोह
सुफेद काला अरुण लाल नीला ऐसे फूलवाला होता है ॥ अपनी जाति
के सृष्टे श फूल होने हैं ॥ और शमी वृक्षके समान सूक्ष्मपत्र होने हैं । तथा
कांठिके सहित निर्जल देशमें यह होता है ॥ ३६२ ॥ वरवेल रस और पाक
में तिक्त होता है और तृषा कफका नाशक । मूत्राघान पथरी इनको जीतने
वाला काबिज तथा योनिरोग मूत्रवातकी पीड़ा इनको जीतने वाला है ॥ ६३

[छिक्कनी ।] छिक्कनी क्षवकृतीक्षणा छिक्किका प्रा
णदुःखदा ॥ छिक्कनी कडुकारुच्या तीक्ष्णोष्णा
वन्धिपित्तकृत् ॥ ३६४ ॥ वातरक्तहरी कुष्ठ कृमि
वात कफापहः ॥ [अथ कुकुन्दर ।]

कुकुन्दर स्ताम्वचूडः सूक्ष्मपत्रो मृदुच्छदः ॥ कुकु
न्दरः कटुस्तिक्तो ज्वर रक्त कफापहः ॥ ३६५ ॥

तन्मूलमाद्रेः निःक्षिप्तं वदने सुरवशोषहत् ॥

भा० अनन्तर नकछिक्कनी ॥ छिक्कनी क्षवकृतीक्षणा छिक्किका प्रा
णदुःखदा यह नकछिक्कनीके नाम है ॥ नकछिक्कनी कडुवी रुचिको
करनेवाली तीक्ष्ण और गरम अग्नि पित्तको करनेवाली है ॥ ३६४ ॥ और
वात रक्तकी नाशक तथा कोष्ठ कृमि वात कफकी नाशक है ॥

अनन्तर कुकरोन्दा । कुकुरन्दर . नाश्रुवृद्ध . सूक्ष्मपत्रं . मृदुच्छद , येह ककरो
 दाकेनामहें ॥ ककरोन्दा कड़वातिक्तज्वर रक्तकफकानाशकहैं ॥ ३६५ ॥
 उसकी गीलीजड़ बुंहमें डालेसे मुखशोषकी नाशकरतीहै ॥

अथ सुदर्शनः] सुदर्शना सोमवल्ली चक्राह्वा मधु
 परिणिका ॥ सुदर्शना स्वादुरुषणा कफशोफास्रवा
 तजित् ॥ ३६६ ॥ [अथ मूसाकर्णी] आखुकरणी
 त्वाखुकरणी परिणिका भूद्री भवा ॥ आखुकरणी
 कटुस्तिक्ता कषाया शीतला लघुः ॥ ३६७ ॥ विया-
 के कटुका मूत्रकफामय रुमिप्रणुत् ॥

भा० अनन्तर सुदर्शन । सुदर्शना सोमवल्ली चक्राह्वा मधुपरिणिका ॥ येह
 सुदर्शनके नामहैं ॥ सुदर्शन मधुर उष्ण कफ शोथ रक्तवानको जीतनेवा
 लीहै ॥ ३६६ ॥ [अनन्तर मूसाकर्णी । आखुकरणी आखुकरणी परिणिका ,
 भूद्री भवा येह मूसाकर्णीके नामहैं ॥ मूसाकर्णी कड़वी तिक्त कसेली शी
 तल, हलकीहोतीहै ॥ ३६७ ॥ और पाकमें कड़वी तथा मूत्रकफ रोग
 रुमि इनकी नाशकहै ॥

[अथ मयूरशिखा ।

मयूराह्वशिखा प्रोक्ता सहस्वाहिर्मधुच्छूदा ॥
 नीलकराठशिखा लघ्नी पित्तश्लेष्मातिसारजित् ॥
 इति भावप्रकाशे गुडुच्यादिवर्गः ।

[अथ शुष्यवर्गः ।]

[तत्रादौ कमलस्य नामानि गुणाश्च ।] वापुंसि
 पद्मं नलिनमरविन्दं महोत्पलम् ॥ १ ॥ सहस्र
 पत्रं कमलं शतपत्रं कुशेशयम् ॥ २ ॥ पङ्केरुह

गरागरी ॥ देवताराडी वृत्तकोश स्तथा जीमूत इत्यपि
 ॥ ३८२ ॥ पीता परा खरस्यर्णा विषघ्नी गर नाशिनी ॥
 देवदाली रसे तिका कफार्णः शोफ पाण्डुताः ॥ ३८३ ॥
 ॥ नाशयित् वामनी तिका क्षय हिक्का कृमिज्वरान् ॥
 देवदाली फलं तिक्तं कृमि श्लेष्म विनाशनम् ॥ ३८४ ॥
 खंसनं गुल्म शूलघ्नमर्शोघ्नं वातजित्परम् ॥

भा० अनन्तर देवदाली । जिसको सोनया भी कहते हैं ॥ यह खाकसके स-
 आन फल और लतावाली है ॥ देवदाली वेणी कर्कटी गरागरी ॥ देवता-
 राडी वृत्तकोश तथा जीमूत यह सोनयाके नाम हैं ॥ ३८२ ॥ और दूसरी
 पीली खरस्यर्णा विषघ्नी गरनाशिनी ॥ यह पीली सोनैयाके नाम है ॥
 सोनैया रसेमें तिक्त कफ ववासीर पाण्डुरोग इनको नाश करती है ॥ ३८३ ॥
 और कैलानेवाली तिक्त है तथा क्षय हिचकी कृमिज्वर इनको नाशक
 रती है ॥ सोनैयाका फल तिक्त कृमिकफकानाशक है ॥ ३८४ ॥ और द-
 स्तावर चायगोला शूल इनका नाशक ववासीर का नाशक वात पित्त
 को जीतनेवाला है ॥

[अथ जल पिप्पली पनीसगा इति लोक ।]

जलपिप्पल्य भिहिता शारदी शकलादनी ॥ मत्स्या
 दनी मत्स्यगन्धा लाङ्गलीत्यपि कीर्तिना ॥ ३८५ ॥
 जलपिप्पलिका हृद्या चक्षुष्या शुक्रला लघुः ॥
 संग्राहिणी हिमा रूक्षा रक्तदाह ब्रणा पहा ॥ ३८६ ॥
 कटुपाक रसा रुच्या कषाया बन्धि वर्दिनी ॥

भा० अनन्तर जलापिप्पली इसके पनीसगा ऐसा लोकमें कहते हैं ॥ जल
 पिप्पली शारदी शकलादनी ॥ मत्स्यादनी मत्स्यगन्धा लाङ्गना यह जल पि-
 प्पलीके नाम हैं ॥ ३८५ ॥ जलपिप्पली हृद्य नेत्रके हित शुक्रकी उत्पन्न करने
 वाली हृद्यकी काबिज्ञ शीतल गरुबी रक्तदाह ब्रणाकी नापाकह ॥ ३८६ ॥

श्रीर पाक रसमें कड़ु रुचिको करनेवाली कसैली अग्निको बढानेवाली है ॥

अथ गोभी ।] गोजिह्वा गोजिका गोभी दार्विका
खर परिणी ॥ गोजिह्वा वातला शीता ग्राहिणी क-
फ पित्तनुत् ॥ ३८७ ॥ हृद्या प्रमेह कासास्र ब्रणज्व-
र हरीलघुः ॥ कीमला तुवरा तिक्ता खादुपाक रसा
स्मृता ॥ ३८८ ॥

भा० अनन्तर गावतुबां ॥ गोजिह्वा गोजिका गोभी चारविका खर परिणी ।
येह गावतुबां के नाम हैं ॥ गावतुबां वातको करनेवाली शीतल का विक्र
कफ पित्तकी नाशक है ॥ ३८७ ॥ और हृद्य प्रमेह कास रक्त ब्रणज्वर इन
की नाशक है ॥ और हलकी होती है तथा कीमल कसैली तिक्त पाक श्री
रसमें मधुर कही गई है ॥ ३८८ ॥ [अथ नागदमनी ।]

विज्ञेया नागदमनी बलामोटा विषा पहा ॥ नाग-
पुष्पी नागपत्रा महायोगेश्वरीति च्च ॥ ३८९ ॥ ब-
ला मोटा कटु स्तिक्ता लघुः पित्त कफा पहा ॥ मूत्र
कृच्छ्र ब्रणान् रक्षो नाशये ज्जाल गर्दभम् ॥ ३९० ॥
सर्वग्रह प्रशमनी निःशेष विषनाशिनी ॥ जयं-
सर्वत्र कुरुते धनदा सुमतिप्रदा ॥ ३९१ ॥

भा० अनन्तर नागदमन । नागदीन । नागदमनी बला मोटा विषापहा
॥ नागपुष्पी नागपत्रा महायोगेश्वरी ॥ ३८९ ॥ नागदमन कड़वी तीरवी हल
की पित्तकफकी नाशक है और मूत्रकृच्छ्र घाव राक्षस इनको नाश करती
है । और जाल गर्दभ नाम फुनसीको नाश करती है ॥ ३९० ॥ और संपूर्ण
ग्रहों को नाश करती है ॥ तथा अशेष विषकी नाशक है ॥ और सर्वत्र जय
को करती है तथा धनको देनेवाली है । तथा अच्छी मतिको देनेवाली है ॥ ३९१

न्तामरसं सारसी सरसीरुहम् ॥ विश प्रसून रजी-
व पुष्कराम्भोरुहाणि च ॥ २ ॥ कमलं शीतलं
वरायं मधुरं कफपित्तजित् ॥ नृषणा दाहास्त्र वि-
स्फोट विषवीसर्पनाशनम् ॥ ३ ॥ विशेषतः सि-
तं पद्मं पुराडरीक मिति स्मृतम् ॥ रक्तं कोकनदं ज्ञे-
यं नीलमिन्दीवरं स्मृतम् ॥ ४ ॥ धवलं कमलं शी-
तं मधुरं कफपित्तजित् ॥ तस्मादल्पगुणं किञ्चि-
दन्यद् रक्तोत्पलादिकम् ॥ ५ ॥

भा० अनन्तर मोरशिखा ॥ मयूराह शिखा सहस्रा अहि मधुच्छदा
नीलकंठ शिखा ॥ येह मोर शिखा के नाम हैं । मोरशिखा हलकी पित्त
अतीसार को जीतने वाली है ॥ ३८६ ॥

इति भावप्रकाशे गुड्यादि वर्ग समाप्त ॥ ३८ ॥

अनन्तर पुष्पवर्ग ॥ [उस्में पहले कमलके नाम और गुण कहते हैं ।]
पद्म नलिन अरविंद महोत्पल ॥ सहस्रपत्र कमल शतपत्र कुशेशय ॥
॥ १ ॥ पंकेरुह नामरस सारस सरसिरुह ॥ विषप्रसून रजीव पुष्कर
अम्भोरुह ॥ २ ॥ येह कमलके नाम हैं । कमल शीत ज्वराको अच्छीरु
रेवाला मधुर कफ पित्तको जीतनेवाला ॥ और नृषावाह रक्त विस्फो
ट विष विसर्प इनका नामाक है ॥ ३ ॥ विशेषकरके स्वेत पद्म को पुराडरी-
क, ऐसा कहा है ॥ लालको कोकनद जानना चाहिये और नीलेको इन्दी-
वर ऐसा कहा है ॥ ४ ॥ स्वेत कमल शीतल मधुर कफको जीतनेवाला है
उसे कुछ अल्पगुणवाले दूसरे लालकमलादिक है ॥ ५ ॥

अथ पद्मिनी ।] मूलनाल दलोत् फुल्लः फलैः
समुदिता पुनः ॥ पद्मिनी प्रीच्यते प्राज्ञैर्विसिन्या
दि च सा स्मृता ॥ ६ ॥

(क) आदिशब्दावलिनी कमलिनीत्यादि ।

पद्मिनी शीतला गुर्वी मधुरा लवणा चसा ॥ पित्ता
सृष्टः फनुद्रूक्षा वात विष्टम्भकारिणी ॥ ७ ॥

भा० अनन्तर पद्मिनी ॥ मूलनाल पत्रपुष्प फल इन कके युक्तको पद्मिनी प्रोक्त कहते हैं ॥ और मूल बिसनी आदि कही गई है ॥ ६ ॥

(क) आदि शब्द से नलिनी कमलिनी इत्यादिक । पद्मिनी शीतल भारी मधुर लवणा रसों कके युक्त होती है । और बोह रक्त पित्त कफ इन को नाश करने वाली तथा वातको विष्टम्भ करने वाली है ॥ ७ ॥

अथ नव पत्रादि ।] सम्बर्तिका नवदलं बीजको
शस्तु कारिका ॥ किञ्जलकः केसरः प्रोक्तो म-
करन्दो रसः स्मृतः ॥ ८ ॥ पद्मनालं मृणालं स्या
तथा विश मिति स्मृतम् ॥ सम्बर्तिका हिमा ति
क्ता कषाया दाह तृट् प्रणुत् ॥ ९ ॥ मूत्र कृच्छ्र गु-
दव्याधि रक्तपित्त विनाशिनी ॥ पद्मस्य कारिका
तिका कषाया घमुरा हिमा ॥ १० ॥ सुख वैशद्य
कृष्णघ्नी तृणास्र कफ पित्तनुत् ॥ किञ्जलकः
शीतलो वृष्यः कषाया ग्राहकोऽपि सः ॥ ११ ॥
कफपित्त तृपादाह रक्ताशो विष शोथ जित् ॥
मृणालं शीतलं वृष्यं पित्तदाहास्र जिद्गुरु ॥ १२ ॥
दुर्जरं स्वादु पाकञ्च सन्धानिल कफ प्रदम् ॥
संग्राहि मधुरं रूक्षं शालूक मपि तद्गुणम् ॥ १३ ॥

भा० अनन्तर नौ पत्रादि ।] कवल के नये पत्तोंको संवर्तिका कहते हैं ।

और बीजको कोश तथा कारिका कहते हैं ॥ और तिरियां को किंजन्क केसर कहते हैं ॥ तथा रसको मकरन्द ऐसा कहते हैं ॥ ८ ॥ और उसके नालको मृणाल मृणाल पद्मनाल विष ऐसा कहते हैं ॥ नवीन पत शीतल कसेल दाह तथा हेनाशक है ॥ ९ ॥ और मूत्र कृच्छ्र गुदाभोग रक्तपित्त इनकी नाशक है ॥ और उसके बीजतिक्त कसेले शीतल होते हैं ॥ १० ॥ और मुखको स्वच्छ करने वाले हलके तथा तृपारक्त कफ पित्त इनकी नाशक है ॥ तिरियां शीतल शुक्रको उत्पन्न करनेवाली कसेली काविज होती है ॥ ११ ॥ कफ पित्त तथा दाह रक्तको बवासीर विष सूजन इनकी जीतने वाला ॥ कमलकी नाल शीतल शुक्रको उत्पन्न करनेवाली और पित्त दाह रक्त इनकी जीतनेवाली भारी है ॥ १२ ॥ दुर्जर पाकमें मधुर दुग्ध वात कफ इनकी उत्पन्न करने वाली है ॥ तथा काविज मधुर सूखी होती है और शण्डुक अर्थात् उसकी जड़ भी उसीके समान गुणमें है ॥ १३ ॥

[अथ स्थलकमल] पद्मचारिण्यति चराव्यथा पद्मा

च शारदा ॥ पद्मानुषणा कटु स्तिक्ता कषाया कफ-
वात जित ॥ १४ ॥ मूत्रकृच्छ्राशम शूलघ्नी श्वासका
स विषापहा ॥

२ अथकुमुदिनी कोई इनिलोके ।

श्वेतं कुवलयं प्रोक्तं कुमुदं कैरवं तथा ॥ कुमुदं पि
च्छिलं स्निग्धं मधुरं हृद्य शीतलम् ॥ १५ ॥

१ अथकुमुद । कुमुद्वती कैरविका तथा कुमुदिनीति
च ॥ सा तु मूलादि सर्वाङ्गैः रुक्ता समुदिता बुधैः ॥

॥ १६ ॥ पद्मिन्या ये गुणाः प्रोक्ता कुमुदिन्याश्च ते स्मृताः ॥

भा० अनन्तर स्थलकमल ॥ पद्मचारिणी । अतिचराव्यथा. पद्मा. शार-
दा. यह स्थलकमलके नाम हैं । थलकमल शीतल कड़वा तिक्त कसेल
कफ वातकी जीतने वाला है ॥ १४ ॥ और मूत्रकृच्छ्र पथरी शूल. इनका

नाशक तथा श्वास कास विष इनका भीनाशक ॥

अनन्तर कुमुद कहने हैं ॥ स्वेत कमल को कुमुद तथा केरव कहते हैं ॥

स्वेत कमल चिकना चेपदार मधुर हृद्य शीतल होता है ॥ १५ ॥

अनन्तर कुमुदिनी ॥ कुमुदवती कैरविका कुमुदिनी येह कुमुदिनीके नाम हैं

॥ वोह मूल आदि सब अंगोंसे खिली हुई होती है ॥ ऐसा पड़ितोने कहा है

॥ १६ ॥ जापद्मिनीके गुण कहे गये हैं वोही कुमुदनीके भी कहे हैं ॥

अथ जलकुम्भी सैवार ।] वारिपरणी कुम्भिका स्या

च्छैवालं शैवलञ्च तत् ॥ वारिपरणी हिमा तिका

लघी स्वाद्वी सरा कटुः ॥ १७ ॥ दोषत्रय हरी रुद्धा

शोणित ज्वर शोष क्त ॥ शैवालं तुवरं तिक्तं मधु-

रं शीतलं लघु ॥ १८ ॥ स्निग्धं दाह तृषा पित्त र

क्त ज्वर हरं परम् ॥

भा० अनन्तर जलकुम्भी और सिवार ॥ वारिपरणी कुम्भिका । येह जलकुम्भीके

नाम हैं ॥ शैवाल शैवलु येह सैवारके नाम हैं । जलकुम्भी शीतल ति

क्त हलका मधुर सर कटु होता है ॥ १७ ॥ और त्रिदोषको नाश करनेवाली

रुक्ती रक्त ज्वर शोष इनको करनेवाली है ॥ और सिवार कसेला तिक्त मधु

र हलका चिकना और दाह तृषा पित्त रक्तज्वर इनको दूर करनेवाला है ॥

अथ सेवती । गुलाव इति च । शतपत्री तरुण्यु

क्ता करिणिका चारु केशरा ॥ महाकुमारी गन्धाढ्या

लाक्षा कृष्णाति मुञ्जला ॥ १९ ॥ शतपत्री हिमा

हृद्या ग्राहिणी शुक्रला लघुः ॥ दोषत्रयास्तजि

द्वार्या तिका कट्वी च पाचनी ॥ २० ॥

भा० अनन्तर सेवती ।] शतपत्री तरुणा करिणिका चारु केशरा ॥ महा

महाकुमारी, गन्धाह्वा, लाक्षा कृष्णा अतिमञ्जुला । येह सेवतीके नाम हैं ॥ १९ ॥ सेवती शीतल हृदयको प्रिय कादिज्ञ शुक्रको उत्पन्न करने वाली । हलकी । और त्रिदोष रक्त इनको जीतने वाली और वरुणको अच्छा करने वाली तिक्त कड़वी पाचन है ॥ २० ॥

अथ वसन्ती । नेवारि इति लोके ।] नेपाली कथिता तज्ज्ञैः सप्तला नवमालिका ॥ वासन्ती शीतलालघी तिक्ता दोषत्रयास्र जित् ॥ २१ ॥

[अथवा वार्षिकी । वेल इति लोके । श्रोपदी षट् पदानन्दा वार्षिकी सुक्तवन्धना ॥ वार्षिकी शीतलालघी तिक्ता दोषत्रया पहा ॥ २२ ॥ कर्णाक्षिमुखरोगस्या तत्तैलं तद्गुणं स्मृतम् ॥

भा० अनन्तर निवारी । नेपाली . सप्तला . नवमालिका . येह निवारीके नाम हैं । निवारी शीतल हलकी तिक्त त्रिदोषको जीतने वाली है ॥ २१ ॥ अनन्तर वार्षिकी वेल . अर्थात् वर्षाती वेल ॥ श्रोपदी षट्पदा नन्दा वार्षिकी सुक्तवन्धना । येह वर्षाती वेलके नाम हैं । वर्षाती शीतल तिक्त हलकी त्रिदोषकी नाशक है ॥ २२ ॥ और कान आंख मुख इनके रोगोंकी नाशक है उसका तेल उसीके समान गुणमें कहा गया है ॥

अथ चम्बेली । स्वर्णजाती ।] जातिर्जाती च सुमना मालती राजपुत्रिका ॥ चैतिका हृद्यगन्धा च सा पीता स्वर्णजातिका ॥ २३ ॥ जातीयुगं तिक्तमुष्णं तुवरं लघुदोषजित् ॥ क्षिरोक्षि मुखदन्तार्ति विषकुष्ठा निलास्रजित् ॥ २४ ॥

भा० अनन्तर चम्बेली ।] पीली चम्बेली] जाति जाती सुमना मालती राज

पुत्रिका-येह चमेलीके नाम हैं ॥ और चैनिका हृद्यगन्धा खणीजातिका,
 येह पीली चमेलीके नाम हैं ॥ २३ ॥ दोनों चमेलीतिल उष्ण कसैलीहल
 की दोषको जीतने वाली है ॥ और सिरनेत्र मुख दांत इनकी पीड़ा और
 विषकुष्ठ वात रक्त इनको जीतने वाली है ॥ २४ ॥

अथ जुही सुवर्णीजुही ।] यूथिका गरिकास्वष्टा
 सापीता हेमपुष्पिका ॥ यूथी युगं हिमं तिक्तं क-
 दुपाकरसं लघु ॥ २५ ॥ मधुरं तुवरं हृद्यं पित्तघ्नं कफ-
 वातलघु ॥ ज्रणास्र मुखदन्तादि शिरोरोग विषा-
 पहम् ॥ २६ ॥ अथ चम्पा ।] चाम्पेयश्चम्पकः प्रोक्तो
 हेमपुष्पश्च सस्मृतः ॥ सतस्थकलिका गन्धफली-
 तिकायिता युधैः ॥ २७ ॥ चम्पकः कडकस्तिक्तः क-
 वायु मधुरो हिमः ॥ विषहामि हर हृच्छू कफ वा-
 तास्रपित्तजित् ॥ २८ ॥

भा० अनन्तर जुही । और पीली जुही ।] यूथिका. गरिका. अस्वष्टा ।

येह जुहीके नाम हैं ॥ और हेमपुष्पिका-येह पीली जुहीके नाम हैं ॥
 दोनों जुही शीतल तिक्त पाकमें कड़वी हलकी होती है ॥ २५ ॥ और मधु-
 र कसैली हृद्य पित्तनाशक । कफ वात को करने वाली है ॥ और घावरक्त
 मुख दन्तनेत्र शिर इनके रोग तथा विष ज्वरकी नाशक है ॥ २६
 अनन्तर चम्पा ।] चाम्पेय चम्पक हेमपुष्प येह चम्पके नाम कहेंह ॥
 इसकी फलीको गन्धफली ऐसा पंडितों ने कहा है ॥ २७ ॥ चम्पा. कडवा,

पाकरसो गुरुः ॥ २९ ॥ कफपित्तविषशिवत्रकृमि
दन्तगदापहः ॥ [अथ वकुलवृहद्मौलसरीति च]
शिवमल्ली पाशुपत एकाष्टीलोबुको वसुः ॥ बुको
ऽनुषाः कटुस्तिक्तः कफपित्तविषापहः ॥ ३० ॥
यौनिमूल तृषादाह कुष्ठ शोथोत्थनाशनः ॥

भा० अनन्तर मौरसरी ॥ वकुल मधुगन्ध सिंह केसरक येह मौलसि
रीके नामहैं ॥ मौलसरी कसैली शीतल पाकरसमें कटु हलकी भारीहै
कफ पित्त विष स्त्रिव कृमि दन्तरोग इनका नाशक है ॥

अनन्तर बड़ी मौलसरी ॥ शिवमल्ली पाशुपत एकाष्टील बुक वसु येह
बड़ी मौलसरीके नामहैं ॥ मौलसिरी शीतल कड़वी तिक्त है और कफ
पित्त विषकी नाशक है ॥ ३० ॥ यौनिमूल तृषादाह कुष्ठ रक्तशोथ इन
का नाशक है ॥

अथ कदम्बः । कदम्बः प्रियको नीपो वृत्तपुष्पो
हरिप्रियः ॥ कदम्बो मधुरः शीतो कषायो नव
शो गुरुः ॥ ३१ ॥ सरो विष्टम्भ कद्रून्तः कफस्तन्या
निलप्रदः ॥ [अथ कूजा ।] कुञ्जको भद्र तराणी
वृहत्पुष्पोऽति केसरः ॥ सहा सहा कराटकाद्या नी
ला लिकुल सङ्कुला ॥ ३२ ॥ कुञ्जकः सुरभिः स्वा
दुः कषायानुरसः सरः ॥ त्रिवोय प्रामनी चष्यः
शीत हर्ता च स स्मृतः ॥ ३३ ॥

भा० अनन्तर कदम्ब । कदम्ब, प्रियक, नीप, वृत्तपुष्प, हरिप्रिय येह
कदम्बके नामहैं ॥ कदम मधुर शीतल कसैला नमकीन भारी ॥ ३१ ॥
सर विष्टम्भ करनेवाला फूलवाहै । और कफ दुग्ध वात इनको करने
वालाहै ॥ [अथ कूजा । कुञ्जक भद्रतराणी वृहत्पुष्प अतिकेसर ।

महासहा, कण्ठकाय, नीलालिकुल संकुल, येह कूजाके नामहैं ॥ येह फूल
सेवती की क्रिस्मसे होताहै ॥ ३२ ॥ कूजा सुगन्धयुक्त मधुर पीछे से कसेला
सर ॥ त्रिदोष शमन शुक्रको उत्पन्न करनेवाला शीत कहा गयाहै ॥ ३३ ॥

**अथ मल्लिका ।] मल्लिका मद्यन्ती च शीतभीरुश्च
भूपदी ॥ मल्लिकीष्णा लघुर्वृष्या तिक्ता च कटुका
हेत ॥ ३४ ॥ वातपित्तस्य दृग्गव्याधिकुष्ठा रुचि
विषव्रणान् ॥ [अथ माधवी । माधवीस्यात्तु
वासन्ती पुण्ड्रको मण्डकोऽपि च ॥ अतिमुक्तो
विमुक्तश्च कामुको भ्रमरोत्सवः ॥ ३५ ॥ माधवी
मधुरा शीता लघ्वी दोषत्रयापहा ॥**

भा० अनन्तर मालती ॥ मल्लिका मद्यन्ति शीत भीरु भूपदी ॥ येह माल
तीके नामहैं ॥ मालती गरम हलकी शुक्रको उत्पन्न करनेवाली तिक्त क
ड़वीहोतीहै ॥ ३४ ॥ और वात पित्त मुख दृष्टि रोग कुष्ठ अरुचि विषव्रण
दनको नाशकरतीहै ॥ [अनन्तर माधवी । माधवीवासन्ती पुण्ड्रक
मण्डक अतिमुक्त विमुक्त कामुक भ्रमरोत्सव ॥ ३५ ॥ येह मोतियाके नाम
हैं । मोतिया शीतल मधुर हलका दोषत्रय का नाशक होताहै ॥

**[केवरा सुवर्णकेतकी ।] केतकः सूचिकापुष्यो ज-
म्बुकः क्रकचच्छदः ॥ सुवर्णकेतकी त्वन्य लघु
पुष्या सुगन्धिनी ॥ ३६ ॥ केतकः कटुकः स्वादु
र्लघुस्तिक्तः कफायहः ॥ उष्या तिक्त रसा शीया च-
क्षुष्या हेमकेतकी ॥ ३७ ॥**

भा० अनन्तर केवडा । और सुनहरी केवडा ।] केतक सूचिकापुष्य जंबु
क क्रकचच्छद येह केवडेके नामहैं ॥ और दूसरा सुनहरीकेवडा छी
टे फूलवाला सुगन्धयुक्त होताहै ॥ ३६ ॥ केवडा मधुर हलका तिक्त कफ

नाशक होता है ॥ और सुनहरी के वड़ा उष्ण रसमें तिक्त नेत्रके हिन होत है ३५

[अथ किङ्किरात इति गौडादौ प्रसिद्धः।]

किङ्किरातो हेम गौरः पीतकः पीत भद्रकः ॥

किङ्किरातो हिमस्तिक्तः कषायश्च हंरदसौ ॥ ३८ ॥

कफ पित्त पिपासास्र दाह शोथ वमिक्वमीन् ॥

[अथ करिणिकारः।] करिणिकारः परिव्याधः पाद

पोत्पल इत्यपि ॥ करिणिकारः कटु स्तिक्त स्तुवरः

शोधनो लघुः ॥ ३६ ॥ रज्जनः सुरवदः शोथ स्ते-

ष्मास्र व्रण कुष्ठ जित् ॥

भा० अनन्तर किङ्किरात इस प्रकार प्रसिद्ध है ॥ किङ्किरात हेमगौर पीतक पीतमद्रकें यह किङ्किरात के नाम हैं ॥ किङ्किरात शीतल तिक्त कसेला है ॥ ३८ ॥ और कफ पित्त तृषा रक्तदाह शोथ वमन क्वमिद्धन को जीतता है ॥ अनन्तर करिणिकारः ॥ करिणिकारं परिव्याध पादपोत्पल ॥ यह करिणिकार के नाम हैं ॥ करिणिकार कड़वी तिक्त कसेली शोधन हलकी ॥ ३६ ॥ रज्जन सुखदेनेवाली शोथ कफ रक्त व्रण कुष्ठ इनको जीतनेवाली है ॥

[अथ अशोक असोमि।]

अशोको हेम पुष्यश्च वञ्जुलस्तान्त्र पल्लवः ॥

कङ्कैलिः पिराडपुष्यश्च गन्धपुष्यो नटस्तथा ॥ ४० ॥

अशोकः शीतलस्तिक्तो ग्राही वार्यः कषायकः

॥ दोषापची तृषादाह क्वमि शोथ विषास्र जित् ४१

भा० अनन्तर अशोक । अशोक हेमपुष्य वंजुलस्तान्त्र पल्लव अंकेली पिंड पुष्य गंधपुष्य नट यह अशोक के नाम हैं ॥ ४० ॥ अशोक शीतल तिक्त काविज्ञवर्ण को अच्छा करनेवाला कसेला है ॥ दोष अपचि तृषा

दाह कृमि शोथ विष रक्त इनका जीतने वाला है ॥ ४२ ॥

[अथ वाराणपुष्य इति गौडादौ प्रसिद्धः।] अस्त्रा
तोः स्नादनः प्रोक्तस्तथा स्नानक इत्यपि ॥ कु
राटको वर्ण पुष्यः स एवोक्तो महा सहः ॥ ४२ ॥
अस्नादनः कषायोष्णः स्निग्धः स्वादुश्च तिक्त-

कः ॥ [अथ कटशरीरा। सैरेयकः श्वेतपु-
ष्यः सैरेयः कटसारिका ॥ सहाचरः सहचरः।
सचमिन्दुपि कथ्यते ॥ ४३ ॥ कुराटकोऽत्र पीते
स्याद्रक्तं कुरवकः स्मृतः ॥ नाले वाराणद्वयोरु-
क्तो दासेऽर्त्तगलश्च सः ॥ ४४ ॥ सैरेयः कुष्ठ
वातास्र कफकण्डू विषापहः ॥ तिक्तोष्णो म
धुरोऽनम्लः सुस्निग्धः केशरञ्जनः ॥ ४५ ॥

भा० अनन्तर वाराणपुष्य ॥ अस्नात अस्नादन तथा अस्नातक कुरं-
टक वर्णपुष्य महासह यह वाराणपुष्यके नाम है ॥ ४२ ॥ वाराणपुष्य कसे-
ला गरम चिकना मधुर तिक्त होता है ॥ [अनन्तर कटशरीरा।]
सैरेयक श्वेतपुष्य सैरेय कटसारिका ॥ सहाचर सहचर भिन्नि यह क-
टशरीयाके नाम है ॥ ४३ ॥ कटशरीया पीली फूलवाली को कुरंटक कह-
ते हैं ॥ और लाल फूलवाली को कुरवक कहा है ॥ और नाले फूलवा-
ली को वाराण कहा है ॥ और दुर्गे फूलवाली को दास अर्त्तगल कहा है ॥
४४ ॥ कटशरीया कुष्ठ वातरक्त कफ खुजली विष इनकी नाशक है ॥
और तिक्त गरम मधुर वै खट्टी चिकनी केशकी रंजन होती है ॥ ४५ ॥

अथ कुन्दः। कुन्दन्तु कथितं मान्द्यं सदा पुष्य
ज्व तत स्मृतम् ॥ कुन्दं शीतं लघु श्लेष्म शिरो
रुग् विष पित्तहृत् ॥ ४६ ॥

अथ मुचकुन्द नाम्नैव प्रसिद्धः ॥ मुचुकुन्दः क्षत्र
 वृक्ष श्वित्रकः प्रति विष्णुकः ॥ मुचुकुन्दः शिरः
 पीडा पित्तास्र विष नाशनः ॥ ४७ ॥

अथ तिलाक्षपुष्य स्तिलक नाम्नैव प्रसिद्धः ॥ तिलकः
 क्षुरकः श्रीमान् पुरुष छिन्न पुष्यकः ॥ तिलकः क-
 टुकः पाके रसे चोषो रसायनः ॥ ४८ ॥ कफ कुष्ठ
 कृमीन् वस्ति मुखदन्त गदान् हरेत् ॥

भा० अगन्तर कुन्द ॥ कुन्द मांस सदापुष्य यह कुन्द के नाम हैं ॥ कु-
 न्द शीतल हलका कफ शिरकी पीडा विष पित्त इनका नाश करता है । ४६ ॥
 अगन्तर मुचुकुन्द ॥ मुचुकुन्द क्षत्रवृक्ष श्वित्रक प्रतिविष्णुक यह मुचुकु-
 न्दके नाम हैं ॥ मुचुकुन्द शिरकी पीडा रक्तपित्त विष इनका नाशक है ॥
 ४७ ॥ अगन्तर तिलक इनका फूल तिलके फूल समान होता है और
 इसी नामसे प्रसिद्ध है ॥ तिलक क्षुरक श्रीमान् पुरुष छिन्न पुष्यक । यह
 तिलक के नाम हैं । तिलक पाक रसेमें ऊँचुवा उषा रसायन होता है ॥ ४८
 और कफ कुष्ठ कृमि वस्ति मुखदन्त इनके रोगोंको नाश करता है ॥

[अथ गेजुनिम्बा ।] बन्धूको बन्धूजीवश्च रक्तो माध्या

न्हिकोऽपि च ॥ बन्धूकः कफ हृत् प्राही वातपित्त

हरो लघुः ॥ ४९ ॥ [अथ वाडहल ।] तथा साम्यी ।

ऊर्ध्वपुष्यञ्जपा चाथ त्रिसन्ध्या सारुणा सिता ॥

जपा संग्राहिणी केश्या त्रिसन्ध्या कफ वातजित् ॥ ५० ॥

भा० अगन्तर दुपहरिया ॥ बन्धूक बन्धू जीव रक्त माध्यान्हिक । यह दु-
 पहरिया के नाम हैं । दुपहरिया कफको करने वाला क्वाविज्ञ वातपित्तको
 नाशक हलका होता है ॥ ४९ ॥ [अगन्तर जवा वृक्ष ।] ऊर्ध्वपुष्य जयापुष्य
 त्रिसन्ध्या सारुणा, सिता, यह जवापुष्यके नाम हैं ॥ जवापुष्य क्वाविज्ञ केश

को अच्छा करनेवाला । कफ वातको जीतनेवाला है ॥ ५० ॥

अथ सिन्दूरिन्ध्रा । सिन्दूरी रक्तबीजा च रक्तपुष्पा सु-
कोमला ॥ सिन्दूरी विष पितास्व तृषणा वान्ति हरी-
हिमा ॥ ५१ ॥ [अथागस्तिः । अथागस्त्यो वदन्सेनो
मुनिपुष्यो मुनिद्रुमः ॥ अगस्तिः पित्तकफजित् वा
तुर्थकहरो हिमः ॥ ५२ ॥ रूक्षो वातकर स्तिकः प्रति

प्रयाय निवारणः ॥

भा० अनन्तर सिन्दूरिया । सिन्दूरी रक्तबीजा रक्तपुष्पा सुकोमला येह सि-
न्दूरियाके नामहैं ॥ सिन्दूरी विषरक्त पित्त हृषा वमन इनको दूर करनेवाली
शीतल होती है ॥ ५१ ॥ [अनन्तर अगस्त] अगस्त्य वंगसेन मुनिपुष्य मुनि-
द्रुम येह अगस्त्यके नामहैं ॥ अगस्त्य पित्तकफ को जीतनेवाला और चानु-
थकज्वरका नाश करनेवाला शीतलहैं ॥ ५२ ॥ और रूखा वातको करनेवा-
ला तिक्त रुकाम को दूर करनेवाला है ॥

[अनन्तर तुलसीशुक्ला रुषणा च]

तुलसी सुरसा ग्राम्या सुलभा बहुमञ्जरी ॥ अपे
तरक्षसी गौरी शूलघ्नी देव दुन्दुभिः ॥ ५३ ॥ तुलसी
कटुका तिक्ता हृद्योष्णा दाह पित्त हन् ॥ दीपनी कुष्ठ
छच्छ्रास्व पाशर्वरुक्कफवातजित् ॥ ५४ ॥ शुक्ला
रुषणा च तुलसी शुरौ स्तुल्या प्रकीर्तिता ॥

ऽपेन

भा० अनन्तर काली और तुलसी ॥ तुलसी सुरसा ग्राम्या सुलभा बहु
मञ्जरी । अपेन तरक्षसी गौरी शूलघ्नी देव दुन्दुभी । येह तुलसीके नामहैं ।
॥ ५३ ॥ तुलसी कटुवी तिक्त हृद्य उष्ण दाह पित्तको करनेवाली है ॥ श्रो-
र दीपन है ॥ तथा कुष्ठ मूत्ररुच्छ्र रक्तपल्लीकी पीड़ा कफ वात इनको
जीतनेवाली है ॥ ५४ ॥ काली और सैत तुलसी शुरा में समानरही गई है ॥

अथ मरुआ ।] मारुतोऽसौ मरुवको मरुन्मरुरपि
स्मृतः ॥ फरणी फरिणज्वकश्चापि प्रस्थ पुष्यः समी
रणः ॥ ५५ ॥ मरुदग्नि प्रदो हृद्य स्तीक्ष्णोष्णः पित्त-
लोलघुः ॥ वृश्चिकादि विषम्लेष्व वातकुष्ठ हृमि
प्रणुत् ॥ ५६ ॥ कटुपाक रसो रुच्य स्तिक्तो रूक्षः सु-
गन्धिकः ॥

भा० अनन्तर मरुआ ॥ मारुत मरुवक मरुण मरु । यह मरुआके
नाम कहे हैं ॥ ५५ ॥ मरुआ अग्निको करनेवाला हृद्य तीक्ष्ण उष्ण
पित्तको करनेवाला हलका होता है । और विच्छू आदियों के विषक
फ वातकुष्ठ हृमि इनका नाशक है ॥ ५६ ॥ और पाक रसमें कड़वा रुचि
को करनेवाला तिक्त रूखा सुगन्धिक होता है ॥

[अथ दमना ।] उक्तो दमनको दान्तो मुनिपुत्रस्तपो
धनः ॥ गन्धोत्कटो ब्रह्मजटो विनीतः कल्पत्रकः
॥ ५७ ॥ दमनस्तुवरस्तिक्तो हृद्यो वृष्यः सुगन्धिकः
॥ ग्रहराणा द्विषकुष्ठास्त्र क्लेदकराड् विदोषजित् ॥ ५८

भा० अनन्तर दमना ॥ दमनक दान्त मुनिपुत्र तपोधना ॥ गन्धोत्कट
ब्रह्मजट विनीत कल्पत्रक यह दमनाके नाम हैं ॥ ५७ ॥ दमना कसेला
तिक्त हृद्य शुक्रको उत्पन्न करनेवाला सुगन्धिक होता है ॥ और पीने विष
कुष्ठ रक्त क्लेद खुजली विदोष इनको जीतता है ॥ ५८ ॥

[अथ वर्वरी ।] वर्वरी तुवरी तुङ्गी खरपुष्याज गंधि-
का ॥ पराणांशस्तत्र कृष्णो तु कटिल्लक कुठेरको ॥ ५९
तत्र शुक्लेऽर्जकः प्रोक्तो वटपत्रस्ततो परः ॥ वर्वरी
त्रितयं रूक्षं शीतं कटु विदाहि च ॥ ६० ॥

तीक्ष्णां रुचिकरं हृद्यं दीपनं लघुपाकि च ॥ पित्त-
लंकफवातास्र कण्डू कृमि विषायहम् ॥ ६१ ॥

इति श्री भावप्रकाशे पुष्पादिवर्गः ॥

[अथ वटदिवर्गः तत्रादौ वटस्य नामानि गुराणां च ।]

वटोरक्तफलः शृङ्गो न्यग्रोधः स्कन्धजो ध्रुवः ॥ क्षी-
री वैश्रवणो वासो बहुयादो वनस्पतिः ॥ ६२ ॥ वटः
शीतो गुरुग्राही कफपित्त व्रणायहः ॥ वर्यो वि-
सर्पदाहघ्नः कषायो योनिदोषहृत् ॥ ६३ ॥

भा० अनन्तरवर्वरी ॥ वरवरी तुवरी तुंगी खरपुष्पा अजगन्धिका ॥ यणी
ए येहवर्वरीके नामहै ॥ उस्मे कालाकदिलक और कुटेरक होनाहै ॥ ५६
॥ उन्में सुफेद अरजक वटपत्र कहा गयाहै ॥ तीनी वर्वरी रूखी शीतल
कड़वी विदाहको करनेवालीहोतीहै ॥ ६० ॥ तथा तीखी रुचिको करनेवाली
हृद्य दीपन और पाकमें हलकीहोतीहै ॥ और पित्तको करनेवालीकफ
वातरक्त खुजली कृमि विष इनकी नाशक ॥ ६१ ॥

इति श्री भावप्रकाशे पुष्पादिवर्गः ॥ ॐ ॥ अनन्तरवटदिवर्गः ॥
उनमें पहले वटके नाम और गुराणां ॥ वट, रक्तफल, शृङ्गी, न्यग्रोध, स्कन्धज,
ध्रुव ॥ क्षीरी वैश्रवण वास बहुयाद वनस्पति ॥ ६२ ॥ येह वटके नामहै ॥
वट शीतल भारी क्वाविज्ञ कफ पित्त व्रणाका नाशकहै ॥ और वरणाकी
अच्छ करनेवाला तथा विसर्पदाहका नाशक कसेला और योनि दोष
का नाशकहै ॥ ६३ ॥

[अथ पीपर । बोधिदुः पिप्पलोऽश्वत्थश्चल्पत्रो
गजाशनः ॥ पिप्पलो दुर्जरः शीतः पित्तश्लेष्म
व्रणास्रजित् ॥ ६४ ॥ गुरुस्तुवरको रूक्षो वर्यो यो
नि विषोघ्नः ॥ [अथ पिप्पलभेदः ।]

गजदण्ड सहोरा द्रुत लोके ।] पारीषोऽन्यः पलाश
 श्रु कपिरुतः कमण्डलः ॥ गर्द भाण्डष्कन्दरालः
 कपीतन सुपार्श्वकः ॥ ६५ ॥ पारीषो दुर्जरः स्नि-
 ग्धः क्षमि शुक्र कफ प्रदः ॥ फलेऽस्ती मधुरो मू-
 ले कषायः स्वादु मज्जकः ॥ ६६ ॥

भा० अनन्तर पीपल ॥ बोधिद्रु पीपल अश्वत्थ चलपत्र गजशान । यह
 पीपलके नाम है ॥ पीपल दुर्जर शीतल पित्त कफ भ्रण रक्तको जीवने
 वाला है ॥ ६५ ॥ और भारी कसैला रूखा चरीको अच्छा करनेवाला योनि
 का शोधक है ॥ अनन्तर पीपलका भेद ॥ गजदण्ड सोहरा इस प्रकार
 लोकमें कहते हैं ॥ पारीष अन्यपलाश कपिरुत कमण्डल गर्दभाण्ड कंद-
 राल कपीतन सुपार्श्वक । ये हूँस पीपलके नाम हैं ॥ ६५ ॥ : पा
 [पारस पीपल] दुर्जर चिकना क्षमि शुक्रको कफको करनेवाला है ॥
 फलमें खटा मूलमें मधुर गिरी कसैली और मधुर होती है ॥ ६६ ॥

[अथ वेलिया पीपर ।] नन्दीवृक्षोऽश्वत्थ भेदः प्रो
 ही गजपादयः ॥ स्थालीवृक्षः क्षयतरुः क्षीरी च
 स्या द्वनस्यतिः ॥ ६७ ॥ नन्दीवृक्षो लघुः स्वादुः ति
 क्तस्तुवर उष्णकः ॥ कटु पाक रसो ग्राही विष पि-
 त्तदाफास्र जित् ॥ ६८ ॥

भा० अनन्तर वेलिया पीपर ॥ नन्दीवृक्ष अश्वत्थवेल प्रोही गजपाद
 प- ॥ स्थालीवृक्ष क्षयतरु क्षीरी वनस्यति यह वेलिया पीपरके नाम हैं
 ॥ ६७ ॥ वेलिया पीपर हलका मधुर तिक्त कसैला गरम होता है ॥ और
 पाक रसमें कटु का विज्ञ विष पित्त कफ रक्त का नाशक है ॥ ६८ ॥

अथ उदुम्बराः ॥ उदुम्बरो जन्तुफलो यत्राङ्गे हेम-

दुग्धकः ॥ उदुम्बरो हिमो रूक्षो गुरुः पित्तकफाक्षि-
 त् ॥ ६६ ॥ मधुर स्तुवरो वर्यो ब्रह्म शोधन रोपणः ॥
 [अथ कदुम्भरी ।] काको दुम्बरिका फलयुग्मल पू-
 र्जघने फला ॥ मलपूस्तम्भकलिका शीतला तु-
 वरा जयेत् ॥ ७० ॥ कफपित्तत्राणशिवत्र कुष्ठपा-
 रादृशं कामलाः ॥

भा० अनन्तर गूलर ।] उदुम्बर जंतुफल यज्ञांग हेतुदुग्धक । यह गूलर
 के नाम हैं । गूलर शीतल रूखा भारी पित्त कफ रक्तको जीतने वाला है ॥
 ६६ ॥ और मधुर कसैला वर्यो को अच्छा करने वाला ब्रह्मका शोधन
 रोपण है ॥ [अनन्तर कठिया गूलर । काको दुम्बरिका फलयुग्मल पू-
 र्जघना । यह कठिया गूलर के नाम हैं ॥ कठिया गूलर त्तमन करने वाला
 तिक्त शीतल कसैला है ॥ ७० ॥ और कफ पित्तत्राण शिवत्र कुष्ठ पांडुरोग ववा-
 सीर कामला इनको जीतता है ॥ [अथ पाकरि ।]

सप्तो जटीपर्करी च पक्वटी च स्त्रियामपि ॥ सक्षः
 कषायः शिशिरो ब्रह्मयोनि गदापहः ॥ ७१ ॥ दाह
 पित्तकफास्रघ्नः शोथहा रक्तपित्तहृत् ॥

[अथ शिरीषः ।] शिरीषो भण्डिलो सराडी भण्डीरश्च
 कपीजनः ॥ शुकपुष्पः शुकतरु मृदुपुष्पः शुकप्रि-
 यः ॥ ७२ ॥ शिरीषो मधुरोऽनुष्णस्तिक्तश्च तुवरो
 लघुः ॥ दोषशोथ विसर्पघ्नः कासघ्नश्च विषापहः ॥ ७३

भा० अनन्तर पाकर ।] सक्ष जटी पर्करी फरकटी । यह पाकर के नाम
 हैं ॥ पाकर कसैला शीतल ब्रह्म योनिरोग इनका नाशक है ॥ ७१ ॥ और
 दाह पित्त कफ रक्त इनका नाशक शोथ नाशक रक्त पित्तको दूर करने
 वाला है ॥ [अनन्तर शिरीष । शिरीष भण्डिल भण्डीर कापजन

शुकपुष्प शुकतरु मृदुपुष्प शुकप्रिय । येह शिरीष के नाम हैं ॥ ७२ ॥
सिरस मधुर शीतल तिक्त कसैला हलका होना है ॥ और दोष शोथ विसर्प
इनका नाशक तथा कास व्रण इनका नाशक है विषका नाशक है ॥ ७३ ॥

[अथ क्षीरवृक्षः पञ्चवल्कल योनिरोगं गुणान्श्रु ।]

न्यग्रोधो दुम्बराश्वत्थपारीषत्सत् पादपाः ॥ पञ्चै
ते क्षीरिणी वृक्षास्तेषां त्वक् पञ्चवल्कलम् ॥ ७४ ॥

केचित्तु पारीषस्थाने शिरीषं चेतसं परे वदन्तीति शेषः

। क्षीरवृक्षा हिमावर्ण्या योनिरोग व्रणा यहाः ॥ रू-

क्षाः कषा या मेदोघ्ना विसर्पामय नाशनः ॥ ७५ ॥

शोथ पित्त कफा स्वघ्नाः स्तन्या भग्नास्थि योजका ।

त्वक् पञ्चकं हिमं ग्राहि व्रण शोथ विसर्प जित् ॥

७६ ॥ तेषां पत्रं हिमं ग्राह कफवाताश्च नुल्लघु ॥

विष्टम्भाध्मानजित् तिक्तं कषायं लघुलेखनम् ॥ ७७ ॥

भा० अन्तर क्षीर वृक्ष ॥ पच वल्कलों का लक्षण और गुण कहते हैं ॥

बड़ गून्तर पीपल पार्श्व पीपल पाकर ॥ पांच येह क्षीर वृक्ष हैं ॥ उनकी

ः
ः
ः

हाल पच वल्कल हैं ॥ ७४ ॥ कोई पार्श्व पीपल को सिरि, और कोई चेतस

को कहते हैं येह शेष हैं । क्षीर, शीतल वर्णको अच्छा करने वाले योनिरोग

व्रण इनके नाशक हैं ॥ सूखे कसैले मेदके नाशक विसर्प रोगके नाशक हैं

॥ ७५ ॥ तथा शोथ पित्त कफ रक्त इनके नाशक दूध करने वाले दूधे हाड़

को जोड़ने वाले हैं ॥ और पांचोंकी छाल शीतल का विज्ञ व्रण शोथ विस

र्प इनको जीतने वाली हैं ॥ ७६ ॥ इनके पत्ते शीतल का विज्ञ कफ वातरक्त

के नाशक हलके होते हैं ॥ और विष्टम्भाध्मान इनको जीतने वाले तिक्त

कसैले लेखन है ॥ ७७ ॥

[अथ शालः ।]

शालस्तु सर्जका ध्व्यार्त्वे कारिका प्रास्य सम्बरः ॥

अश्वकर्णः कषायः स्याद् ब्रणस्वेद कफ कृमीन्
 ॥७८॥ ब्रध्म विद्रधि वाधिर्य्य योनिकर्णा गदान्
 हरेत् ॥ [अथ शालभेदः ।] सर्जकोऽजक क
 र्णः स्याच्छालो मरिचपत्रकः ॥ अजकर्णाः कटु
 स्तिक्तः कषायोष्णो व्यपोहति ॥७९॥ कफ पा
 ण्ड श्रुति गदान् मेह कुष्ठ विषव्रणान् ॥

भा० अनन्तर शाल ॥ शाल सर्जकार्ण्य अश्वकर्णिका शस्य शम्बर
 येह शालके नाम है ॥ शाल कसैला होता है और ब्रण स्वेद कफ कृमि ॥
 ७८ ॥ वद विद्रधी बहरापन योनिरोग कर्णरोग इनको नाश करता है ॥
 [दूसरा शालभेद । सर्जक अजकर्ण शालमरिच पत्रक येह शाल भेदके
 नाम है ॥ दूसरा शाल कडुवा तिक्त कसैला उष्ण होता है और ॥७९॥ कफ
 खुजली कर्णरोग प्रमेह कुष्ठ विषव्रण इनको नाश करता है ॥

अथ शालद्व ।] शालकी गज भक्ष्या च सुवहासुर-
 भीरसा ॥ महेरुणाकुन्दुरुकी वल्लकी च बहुश्रुवा
 ॥८०॥ शालकी तुवरा शीता पित्तश्लेष्मातिसार
 जित् ॥ रक्तापित्त ब्रणहरी सुष्टिकृत् समुदीरिता ॥८१॥

भा० अनन्तर सलैई ॥ शालकी गजभक्षा सुवहा सुरभिरसा ॥ महेरुणा
 कुन्दुरुकी वल्लकी बहुश्रुवा ॥८०॥ येह सलैई के नाम है ॥ सरई कसैली
 शीतल पित्त कफ अनिसारको जीतनेवाली रक्त पित्त व्रण इनको नाश
 करनेवाली उष्टिको करनेवाली कही गई है ॥८१॥

[अथ शीसव ।] कपिलवर्णा शीसव ।]

शिंशिषा पिच्छिला श्यामा कृष्णासारा च सा गुरुः ।
 कपिला सैव मुनिभि र्भस्मगर्भेति कीर्तिता ॥८२॥
 शिंशिषा कटुका तिक्ता कषाया शोथहारिणी ॥

अरि मेदक । यह दुर्गन्ध खैर के नाम हैं ॥ दुर्गन्ध खदिर कसैला गरम भुखदंत
के रोग रक्त इनको जीतनेवाला है ॥ ६९ ॥ और खजली विष कफ कृमिकु-
ष्ठ विष ब्रण इनको नाश करता है ॥

अथ रोहितकः ।] रोहीतको रोहितको रोही दाड़ि-
मपुष्पकः ॥ रोहीतकः स्नीह घाती रुच्यो रक्त प्र-
साधनः ॥ ६२ ॥ अथ ववूल ।] ववूलः कि-
ङ्किरातः स्यात् किङ्किराटः सपीतकः ॥ ससवक-
थित स्तजज्ञौ रामाषपद मोदिनी ॥ ६३ ॥ ववूलः
कफवद् ग्राही कुष्ठ कृमि विषापहः ॥

[अथरीठा ।] अरिष्टकस्तुमाङ्गल्यः कृष्णवर्णोऽर्थ
साधनः ॥ रक्तबीजः पीतफेनः फेलिलो गर्भपा-
ननः ॥ ६४ ॥

भा० अतन्तर रोहितक चस्मे अनारकेसे फूल होने हैं ॥ रोहितक रोहीतक
रोही दाड़िमपुष्पकः । यह रोहि के नाम हैं ॥ रोही पिलहीकोनाश करनेवाली
रुचिको करनेवाली रक्तको स्वच्छ करनेवाली है ॥ ६२ ॥

अतन्तर कीकर ॥ ववूल किंकरात किंकराट सपीतक ॥ यह ववूल के ना-
म हैं ॥ उसीको उसके जाननेवालोंने आभाषपद मोदिनी । ऐसा कहा है
॥ ६३ ॥ कीकर कफनाशक काविज कुष्ठ कृमि इनका नाशक है ॥

अतन्तर रीठा ॥ अरिष्टक मांगल्य कृष्णवर्ण अर्थसाधन ॥ रक्तबीज पी-
तफेण फेलिल गर्भपानन । यह रीठेके नाम हैं ॥ ६४ ॥

अथ पित्तोजिआ ।] पुत्रजीवो गर्भकरो यष्टीपुष्यो
ऽर्थसाधकः ॥ पुत्रजीवो गुरुर्घष्यो गर्भदः स्लेष्म
वातहृत् ॥ ६५ ॥ सृष्ट मूत्रमलो रुद्धी हिमः स्वादुः

पदुःकदुः ॥ [अथ इडुदी ।] इडुदी उडुगर वृक्ष
 अत्र तिक्तकस्तपसद्रुमः ॥ इडुदः कुष्ठ भूतादि
 ग्रह व्रण विष कृमीन् ॥ ६६ ॥ हन्त्युषाः शिवत्र
 शूलघ्नः स्तिक्तकः कदु पाकवान् ॥

भा० अनन्तर पुत्रजीवा के नाम ॥ पुत्रजीव गर्भकर यष्टीषुष्य अर्थसाध
 क । यह पुत्रजीवा के नाम हैं ॥ पुत्रजीवा भारी शुक्र को उत्पन्न करने वाली ।
 गर्भको करने वाली रूखी प्रीतल मधुर नमकीन कड़वी होती है ॥ गर्भको
 करने वाली कफ की नाशक है ॥ ६५ ॥ [अनन्तर हिंगोट ।]
 वृंगुद अंगारवृक्ष तिक्तक तपसद्रुम यह हिंगोट के नाम हैं ॥ हिंगोट कुष्ठ
 भूतादि ग्रह व्रण विष कृमि इनको नाश करता है ॥ ६६ ॥ और उष्ण है त
 था शिवत्र शूलका नाशक तिक्त कदु पाकवाला है ॥

[अथ जिङ्गिनी ।] जिङ्गिनी किङ्गिनी किङ्गी सु-
 निर्व्यासा प्रमोदिनी ॥ जिङ्गिनी मधुर सोषणा क
 षाया व्रण शोधिनी ॥ ६७ ॥ कदुका व्रण हृद्योग
 वानातीसार हृत्पदुः ॥ तमालः शाल वद्वेद्यो हा-
 ह विस्फोट हृत्पुनः ॥ ६८ ॥

भा० अनन्तर जिङ्गिनी के नाम ॥ जिङ्गिनी किङ्गिनी किङ्गी सुनिर्व्यासा
 प्रमोदिनी यह जिङ्गिनी के नाम हैं ॥ जिङ्गिनी मधुर कुछ गरम कर्षणी
 व्रण शोधक है ॥ ६७ ॥ और कड़वी है तथा व्रण हृद्योग वानातिसा
 र इनकी नाशक नमकीन होती है ॥ तमाल और शाल के सदृश इस्त
 को जानना चाहिये और दाह विस्फोट के नाशक होती है ॥ ६८ ॥

[अथ तूणी ।]

तूणी स्तुन्नक आपीन स्तुणिकः कच्छकस्तथा ॥
 कक्षकः कान्तलको नन्दि वृक्षश्च नन्दकः ॥ ६९ ॥

उष्णावीर्या हरेन्मैदः कुष्ठश्वित्तव वमि क्रिंमीन् ॥

॥ ८३ ॥ चरित्तरुग् व्रणदाहास्त्र बलासान् गर्भपातिनी

भा० अनन्तर शीशम ॥ और कणिलवर्गी शीशम । शिंशिया पिच्छि
ला प्रथमा कृष्णसारा । यह शीशमके नाम है । और वह भारी होता है ॥
कपिला भस्मगर्भा ऐसा मुनियोंने उसीको कहा है ॥ ८२ ॥ शीशम कड़वा
तिक्त कसैला शोषनाशक ॥ उष्णावीर्य होता है और भेद कुष्ठ श्वित्त व
मत् कृमि इनको नाश करता है ॥ ८३ ॥ और पेड़की पीड़ा व्रण दाह रक्त
कफ इनको भी नाश करता है ॥ और गर्भको गिरोनेवाला है ॥

[अथ कौह ।] ककुभोऽर्जुन नामारव्यौ नदीसर्ज्जश्च

कीर्त्तितः ॥ इन्द्रदुर्वीर वृक्षश्च वीरश्च धवलः स्मृतः ।

॥ ८४ ॥ ककुभः शीतलो हृद्यः क्षतक्षय विषास्रजि-

त् ॥ मेदो मेह व्रणान् हन्ति तुवरः कफ पित्त हृत् ॥ ८५ ॥

भा० अनन्तर अर्जुन वृक्ष ॥ ककुभ अर्जुन नामारव्य नदीसर्ज ॥ इन्द्र दु-
र्वीरवृक्ष, वीर, धवल, यह अर्जुन वृक्षके नाम कहे हैं ॥ ८४ ॥ अर्जुन शीत
ल हृद्य क्षत क्षय विषरक्त इनको जीतनेवाला है ॥ और भेद प्रमेह व्रण इन
को नाश करता है और कसैला है तथा कफ पित्तका नाशक है ॥ ८५ ॥

[अथासन विजयसार इति च ।] बीजकः पीतसार-

श्च पीतशालक इत्यपि ॥ बन्धूक पुष्यः प्रियकः

सर्ज्जक आसनः स्मृतः ॥ ८६ ॥ बीजकः कुष्ठ वीस-

र्य श्वित्त मेह गुद कृमीन् ॥ हन्ति श्लेष्मास्त्र पित्त-

ज्व त्वचः केश्यो रसायनः ॥ ८७ ॥

भा० अनन्तर आसन और विजयसार भी कहे हैं ॥ बीजक, पीतसार
पीतशालक, बन्धूक पुष्य, प्रियकसर्जक आसन यह विजयसारके
नाम हैं ॥ ८६ ॥ विजयसार कुष्ठ श्वित्त मेह गुद कृमि इनको नाश

करताहै ॥ और कफ रक्त पित्तको भी नाश करताहै ॥ तथा लवचाका हित केश
कां हिन रसायनहै ॥ ८७ ॥

[अथ खदिर ।]

खदिरो रक्त सारश्च गायत्री दन्तधावनः ॥ कण्ठकी
बाल पत्रश्च बहु शल्यश्च यन्त्रियः ॥ ८८ ॥ खदिरः
शीतलो दन्त्यः कण्ठु कासा रुचिप्रणुत् ॥ तिक्त क-
षायो मेदोघ्नः कृमिमेह ज्वर व्रणान् ॥ ८९ ॥ श्वेत
शोथामपित्तास्र पाण्डु कुष्ठ कफान् हरेत् ॥

भा० अनन्तर खैर । खदिर रक्तसार गायत्री दन्तधावन ॥ कण्ठकी बालपत्र बहु
शल्य यन्त्रीय येह खैरके नामहैं ॥ ८८ ॥ खैर शीतल दान्तकी अच्छा करनेवा-
ला कण्ठ कास अरुचि इनको नाशक ॥ तिक्त कसेला मेदका नाशक कृमि
प्रमेह ज्वर व्रणा ॥ ८९ ॥ शोथ आमरक्त पित्त पांडुरोग कुष्ठ कफ इनको नाश
करताहै ॥

[अथ श्वेतखदिर पपरी खयर इति च ।] खदिरः
श्वेतसारोऽन्यः कदरः सोम वल्कलः ॥ कदरो वि-
षदो वर्या मृग्वरोग कफास्र जित् ॥ ९० ॥

[अथ इरिमेद दुर्गन्ध खदिर इति च ।] इरिमेदो विट्
खदिरः कालस्कन्धोऽरिमेदकः ॥ इरिमेदः कषा
योषो मुरखदन्त गदास्र जित् ॥ ९१ ॥ हन्ति कण्ठु
विषप्लेष्म कृमि कुष्ठ विष व्रणान् ॥

भा० अनन्तर मुफेद कत्या जिस्को पपड़ी खैर कहतेहैं ॥ खदिर श्वेतसार
कद सोमवल्कल । येह पपड़ी खैरके नामहैं ॥ पपड़ी खैर विराद वरगको
अच्छा करनेवाला मुरखरोग कफ रक्त इनको जीतनेवाला ॥ ९० ॥
अनन्तर इरिमेद अर्थात् दुर्गन्ध खैर ॥ इरिमेद, विट्खदिर कालस्कन्ध,

तुरीयरक्तः कटुः पाके कषायो मधुरो लघुः ॥ तिक्तो
 ग्राही हिमो वृष्यो ब्रणकुष्ठास्र पित्तजित् ॥ १०० ॥
 अथ भूर्जपत्र ।] भूर्जपत्रः स्मृतो भूर्ज चर्मो बहुल
 बल्कलः ॥ भूर्जो भूतग्रह श्लेष्म कर्णरूक् पि-
 त्तरक्तजित् ॥ १०१ ॥ कषायो राक्षसघ्नश्च मेदोविष
 हरः परः ॥

भा० अनन्तर तुन ॥ तुरीय तुत्रक आपील तुरीयक कच्छक ॥ कुठरक का
 न्तलक नन्दीवृक्ष नन्दक येह तुनके नामहैं ॥ ६६ ॥ तुन पाकमें कड़वा क-
 सैला मधुर हलका होताहै ॥ और तिक्त कादिज्ञ शीतल शुक्रको उत्पन्न
 करनेवाला ब्रण कुष्ठ रक्त इनको जीतने वालाहै ॥ १०० ॥

अनन्तर भोजपत्र ।] भूर्जपत्र भूर्ज चर्मो बहुलबल्कल । येह भोजपत्र
 के नामहैं ॥ भोजपत्र भूत ग्रह कफ कर्णपीडा पित्तरक्त इनको जीतने वाला
 है ॥ १०१ ॥ और कसैला राक्षस कानाशक मेद विषका नाशक है ॥

अथ पलाश ।] पलाशः किंशुकः परीं यन्त्रियो
 रक्तपुष्यकः ॥ क्षार श्रेष्ठो वात हरो ब्रह्म वृक्षः स
 मिह्वरः ॥ १०२ ॥ पलाशो दीपनो वृष्यः सरोष्णा ब्र
 णगुल्मजित् ॥ कषायः कटुक स्तिक्तः स्निग्धो गु-
 दजरोग जित् ॥ १०३ ॥

हं

भा० अनन्तर पलाश ॥ पलाश किंशुक परीं यन्त्रियो रक्तपुष्य क्षारश्रेष्ठ वा
 त ब्रह्मवृक्ष समिह्वर ॥ येह पलाशके नामहैं ॥ पलाशदीपन शुक्रको उ
 त्पन्न करनेवाला सर ॥ १०२ ॥ उष्णहै । और ब्रण वायुगोला इनको जीतने
 वालाहै ॥ तथा कसैला कड़वा तिक्त चिकना गुदाके रोगोंको जीतनेवाला । ३

भग्न सन्धान रुहोष ग्रहणयशी कृमीन हरेत् ॥

तत्पुष्यं स्वाद् पाके तु कटु तिक्तं कषायकम् ॥ १०४ ॥

वातलङ्घ्यं पित्तास्रं कृच्छ्रं जिद्ग्राहि शीतल
 म् ॥ तृड् दाहं शमकं वात रक्तकुष्ठहरम्परम् ॥
 १०५ ॥ फलं लघूष्णं महार्शं कृमिवातकफाप
 हम् ॥ विपाके कटुकं रुक्षं कुष्ठगुल्मोदरप्रणत
 ॥ १०६ ॥ [अथ शाल्मलिः ।] शाल्मलिस्तु
 भवेन्मोचा पिच्छला पूरणीति च ॥ रक्तपु
 ष्यास्थिरायुश्च कण्टकाढ्या च तूलिनी ॥ १०७ ॥
 शाल्मली शीतला स्वाद्वी रसे पाके रसायनी ॥
 श्लेष्मला पित्तवातास्रहारिणी रक्तपित्तजित् १०८

भा० दूरेद्वे हाड़को जोड़नेवाला और संग्रहणी बवासीर कृमि इनको
 नाश करता है । उस्का पुष्य पाकमें मधुर कड़वा तिक्त कसेला होता है ।
 ॥ १०४ ॥ तथा वातको करनेवाला कफ रक्त पित्त मूत्र कृच्छ्र इनकी जीत
 नेवाला कृमिज शीतल होता है । और तृषा दाहका शमन करने वाला
 अत्यन्त वातरक्त और कुष्ठ इनका नाशक है ॥ १०५ ॥ उस्का फल हलका
 उष्ण होता है और प्रमेह बवासीर कृमि वात कफ इनका नाशक है ॥
 विपाक में कटु रुखा होता है ॥ तथा कुष्ठ वायुगोला उदर रोग इनका
 नाशक है ॥ १०६ ॥ अनन्तर सेमल । शाल्मली मोचा पिच्छला
 पूरणी ॥ रक्तपुष्यां स्थिरायु कण्टकाढ्या तूलिनी येह सेमलके नाम
 हैं ॥ १०७ ॥ सेमल शीतल रसमें और पाकमें मधुर रसायनी कफको
 करनेवाली पित्तवातरक्तकी नाशक रक्तपित्तकी जीतनेवाली है ॥ १०८

अथ मोचरसः ।] निर्य्यासः शाल्मलिः पिच्छला
 शाल्मली वेष्टकोऽपि च ॥ मोचा स्वावो मोच
 रसो मोचनिर्य्यास इत्यपि ॥ १०९ ॥ मोचा स्वा-

हिमो ग्राही स्निग्धो वृष्यः कषायकः ॥ प्रवाहि
कातिसाराम कफपित्तास्र दाहनुत् ॥ ११० ॥

[अथ कूट शाल्मलिः ।] कुतसितः शाल्मलिः प्रो
क्तो रोचनः कूटशाल्मलिः ॥ कूट शाल्मलिक
स्तिक्तः कटुकः कफवातनुत् ॥ १११ ॥ भेद्युष्णः
स्नीह जठरः यकृद् गुल्म विषापहः ॥ भूलाना-
ह विवन्धास्र मेदः शूल कफापहः ॥ ११२ ॥

भा० मोचरस येह सेमल का गोंदहें ॥ पिच्छा शाल्मली वेष्टक । मोचा
आव मोचरस मोचनिर्यास येह मोचरसके नामहैं ॥ १०६ ॥ मोचरस,
शीतल क्वाविज चिकना शुक्रको उत्पन्न करनेवाला कसैला होनाहै ॥ श्री
रप्रवाहिका अतिसार आमकफ रक्त पित्त दूनको नाश करनेवालाहै ॥
११० ॥ अनन्तर कूट शाल्मलि ॥ कुतसिता शाल्मली रोचन कूट
शाल्मली । येह कूट शाल्मली के नामहैं । कूट सेमल तिक्त कटुक कफ वा
तनाशक ॥ १११ ॥ भेदन करनेवाली उष्ण होतीहै और पित्तही ज्वररोग य-
कृत वायुगोला विष दूनकी नाशकहै । और भूत अफाग विवन्ध रक्त
मेद शूलकफ इनकी नाशक है ॥ ११२ ॥

[अथ धवः ।]

धवो धटोनन्दि तरुः स्थिरो गौरो धुरन्धरः ॥ धवः

शीत प्रमेहर्शः पाण्डुतिक्त कफापहः ॥ ११३ ॥

मधुरस्तुवर स्तस्य फलञ्च मधुरं मनाक् ॥

अथ धामिनः ।] धन्वङ्गस्तु धनुर्दक्षो गोत्वृक्षः
सुतेजनः ॥ धन्वङ्गः कफ पित्तास्र कासहृत्तुव
रोलघुः ॥ ११४ ॥ वृंहणी बलकृद्रूक्षः सन्धि

कृतत्रणारोपणः ॥ [अथ करीर ।]
 करीरः क्रकरो पत्रो ग्रन्थिलो मरुभूरुहः ॥
 करीरः कटुकस्तिक्तः स्वद्युषणो भेदनः स्मृतः ॥ ११५ ॥
 दुर्नाम कफवाताम गरशोथत्रण प्रणत् ॥

भा० अन्तरधव ॥ धट्गन्धितरु स्थिर गौर धुरंधर ॥ येह धवके नाम हैं ॥ धव शीतल प्रमेह बवासार पाण्डु पित्तकफ इनका नाशक है ॥ ११३ ॥
 मधुर कसैला होता है उस्का फल कुछ मधुर होता है ॥

अन्तरधामिन ॥ धन्वंग धनुर्वक्ष गोत्रवृक्ष सुतेजन ॥ येह धामिन के नाम हैं ॥ धामिन कफरक्त पित्तकास इनको नाश करने वाली हलकी होती है ॥ और पुष्टबलको करने वाली रूखी संधीको करने वाली घावको भराने वाली है ॥ अन्तर करील । करीर क्रकर पत्र ग्रन्थिल मरुभूरुह । येह करीर के नाम हैं । करील कड़वातिक्त पसीनालानेवाला उष्ण भेदन कहा गया है ॥ ११५ ॥ और बवासीर कफवात आम विष शोथत्रण इनका नाशक है ॥

अथ सहोरा ।] शाखोटः पीतकलको भूतावासः
 स्वरच्छदः ॥ शाखोटो रक्तपित्तार्शो वातश्ले
 ष्मातिसारजित् ॥ ११६ ॥ [अथ वरुणाः ।]
 वरुणो वरुणाः सेतु स्तिक्त शाकोऽग्निदीपनः ॥
 कषायो मधुरस्तिक्तः कटुको रूक्षको लघुः ॥ ११७ ॥

भा० अन्तर सहोरा ॥ शाखोट पीतकलक भूतावास स्वरच्छद येह सहोरा के नाम हैं । सहोरा रक्तपित्त बवासीर वात कफ अतीसार । इनको जीतनेवाला है ॥ ११६ ॥ [अन्तर वरुणा । वरुणा वारुणा सेतु तिक्त शाक येह वरुणा के नाम हैं ॥ वरुणा अग्निदीपन कसैला मधुर तिक्त कड़वा रूखा हलका होता है ॥

[अथ कटुभी ।]

कटुभी स्वादु पुष्यश्च मधुरेणुः कटुम्बरः ॥

कटुभीतु प्रमेहार्शः नाडी त्रिण विष कृमीन् ॥
 ॥११७॥ हन्त्युष्णा कफ कुष्ठघ्नी कटू रूक्षा च की
 र्तिता ॥ तत्फलं तुवरं ज्ञेयं विशेषात् कफ श्रु
 क्र हत् ॥ ११८ ॥

भा० अन्तर कटुभि ॥ कटुभी स्वादपुष्प मधुरेण कटुम्भर । यह कटुभीके
 नामहैं ॥ येह मालकंगनीकी किस्म सेहै ॥ कटुभि प्रमेह ववासीर नाडी त्रि
 ण विष घमि इनको नाश करतीहै ॥ ११७ ॥ और उष्ण होतीहै तथा कफ
 कुष्ठकी नाशक कडुवी रूखी कहीं गईहै ॥ इस्का फल कसैला जानना चा
 हिये विशेषकरके कफ श्रुकका नाशकहै ॥ ११८ ॥

[अथ मोक्ष पलाशवत् पर्वत वृक्षः ।] मोक्षस्तु
 मोक्षकोऽपि स्याद्गोलीढ गोलि हस्तथा ॥ क्षार
 श्रेष्ठः क्षार वृक्षो द्विविधः खेत कृष्णाकः ॥ ११९ ॥
 मोक्षकः कटु कस्तिकी प्राच्युष्णः कफ वात हत् ॥
 विषमेदो गुल्म काण्डू वस्ति रुक्मिं शुक्रनुत् ॥ १२० ॥

भा० अन्तर मोक्ष अर्थात् घंटा पाटला ॥ येह लोथकी किस्मसे होताहै ।
 इस्के पते पलासके से होतेहैं और पहाड़ी दररूह है ॥ मोक्ष मोक्षक गोलीढ
 गोलिः क्षारश्रेष्ठ क्षारवृक्ष येह घंटा पाटला के नामहैं ॥ येह दो प्रकार
 का होताहै काला और सुफेद ॥ ११९ ॥ घंटा पाटल कडुवा निक काविज्ञ उ
 षण कफ वात का भाषक है । और विष मेद वायगोला खुजली वस्तिकी पी
 डा और घमि शुकका नाशकहै ॥ १२० ॥

[अथ जल सिरषि-
 टिंटरिण इति च ।] शिरिषिका टिगिटिगिका दुर्व
 लाम्बु शिरीषिका ॥ त्रिदोष विष कुष्ठार्शो हरी
 वारि शिरीषिका ॥ १२१ ॥ [अथ शमी ।]

शमी शक्तु फला तुङ्गा केशहन्त्री फला शिवा ॥
 मङ्गल्या च तथा लक्ष्मी शमीरः साल्यिका स्मृ-
 ता ॥ १२२ ॥ शमी तिका कटुः शीता कषाया रेव-
 नी लघुः ॥ कफ कास भ्रमश्वास कुष्ठार्शः कृमि
 जित् स्मृता ॥ १२३ ॥

भा० अन्तर शिरीष ॥ इस्को दिङ्गणी भी कहते हैं । शिरसीका दि-
 ङ्गिका दुर्बला, अंबुशिरीष का । यह जल शिरीष के नाम हैं ॥ जल-
 शिरीष त्रिदोष विष कुष्ठ ववासीर इनको नाश करने वाली है ॥ १२२ ॥
 अन्तर शमी ॥ शमी शक्तु फला तुङ्गा केशहन्त्री फला शिवा ॥ मङ्गल्या
 लक्ष्मी शमीरः साल्यिका येह शमिके नाम हैं ॥ १२२ ॥ शमिकुडुबी तिका
 शीतल कसैली दस्तावर हलकी हीती है ॥ और कफ कास भ्रमश्वास कु-
 ष्ट ववासीर कृमि इनको जीतने वाली कही गई है ॥ १२३ ॥

अथ छितवन ।] सप्तपर्णी विशालत्वक् शार-
 दे विषमच्छदः ॥ सप्तपर्णी ब्रण श्लेष्म वात
 कुष्ठस्रजन्तुजित् ॥ १२४ ॥ दीपनः श्वासगुल्मघ्नः
 स्निग्धोष्ण स्तुवरः सरः ॥

अथ तिनिशः तिरिच्छ इति च ।] तिनिशः स्य
 न्दनो नेमी रथदुर्वञ्जुलस्तथा ॥ तिनिशः श्ले-
 ष्म पित्तास्र मेदः कुष्ठ प्रमेह जित् ॥ १२५ ॥ स्तुव-
 रः श्वित्रदाहघ्नो ब्रण पाराहु कृमि प्रणुत् ॥ १२६ ॥

भा० अन्तर छितवन ॥ सप्तपर्ण विशालत्वक् शारद विषमच्छद
 येह छितवन के नाम हैं ॥ छितवन ब्रण कफ वात कुष्ठरक्तजन्तु इन-
 को जीतता है ॥ १२४ ॥ और दीपन घायगोला इनका नाशक चिकनाउ-
 या कसैला सर है ॥ अन्तर तिनिश । इस्को तिरिच्छ भी कहें हैं

तिनिस स्पंगन नेमी रथद्रुह वञ्जुल येह तिनीश के नाम हैं ॥ तिनीश कफ रक्त पित्तमेद कुष्ठ प्रमेह इनको जीतने वाला है ॥ १२५ ॥ और कसैला शिव दवाह का नाशक ब्रण पांडु कृमि इनका भी नाशक है ॥

अथ भुइसहा ।] भूमिसहो द्वार दारु चरिदारुः
स्वरच्छदः ॥ भूमिसहस्तु शिशिरो रक्त पित्त
प्रसादनः ॥ १२६ ॥

इति श्री भावप्रकाशे वटादिवर्गः ॥ * ॥

भा० अनन्तर भुईसहा ॥ भूमिसहो द्वारदारु चरिदारु स्वरच्छद । येह भुइसहा के नाम हैं ॥ भुइसहा शीतल रक्तपित्त को अच्छा करने वाला है ॥ १२६ ॥ इति भावप्रकाशे वटादिवर्गः ॥ * ॥

अथाम्नादि फलवर्गः ॥ तत्रादावान्नस्य नामानि
गुणाश्च ।] आम्रः प्रोक्तो रसालश्च सहकारो
ऽति सौरभः ॥ कामाङ्गो मधुदूतश्च माकन्दः
पिकवल्लभः ॥ १२७ ॥ आम्रपुष्यमतीसारं कफ
पित्त प्रमेहनुत् ॥ असृग्दुष्टि हरं शीतं रुचि
कृद् ग्राहि वातलम् ॥ १२८ ॥

भा० आम्रादि फलवर्गः ॥ उमें पहले आम्रके नाम और गुणकी कहने हैं ॥ आम्र रसाल सहकार अतिसौरभ ॥ कामांग मधुदूत माकन्द पिकवल्लभ येह आम्रके नाम हैं ॥ १२७ ॥ आम्रका पुष्य अतिसार कफ पित्त प्रमेह इनका नाशक है । और दुष्टरक्त का नाशक शीतल रुचिकरने वाला काबिज्ञ वातकी करने वाला है ॥ १२८ ॥

आम्रं बालं कषायारुहं रुच्यं मारुत पित्तकृत्

तरुरान्तु नदत्यन्तं रूक्षं दोषत्रया स्वकृतम् ॥१२८॥
 आश्वमामं त्वचाहीनमातपेऽतिविशोषितम् ॥
 अम्लं स्वादु कषायं स्याद्भेदनं कफ वातजित् १३०
 पक्वन्तु मधुरं वृष्यं सिग्धं बल सुख प्रदम् ॥ गुरु
 वातं हरं हृद्यं वर्यं शीतमपित्तलम् ॥ १३१ ॥
 कषायानुरसं वह्नि श्लेष्म शुक्र विवर्द्धनम् ॥
 तदेव वृक्षसम्पक्वं गुरुवात हरं परम् ॥ १३२ ॥
 मधुराम्ल रसं किञ्चिद्भवेत् पित्तप्रकोपनम् ॥
 अम्ल कृत्रिमपक्वञ्च तद्भवेत् पित्तनाशनम् ॥ १३३
 रसस्याम्लस्य हीनस्तु माधुर्याच्च विशेषतः ॥

भा० कैरी कसेली खट्टी रुचिकी करनेवाली वात पित्तकी करने वाली है ॥
 और कच्चा आम अत्यन्त खटा रूखा होता है तथा तीनों दोष और रक्त
 को करनेवाला है ॥ १२८ ॥ बेछिलके का कच्चा आम धूपमें सुखाया इ
 वा ॥ खटा मधुर कसेला होता है ॥ और भेदन कफ वातकी जीतने वा
 ला है ॥ १३० ॥ और पका हुआ मधुर शुक्रकी उत्पन्न करने वाला चिक
 ना बल सुखको देनेवाला है ॥ और भारी वात नाशक हृद्य वर्णको अ
 च्छा करनेवाला शीतल पित्तकी करनेवाला ॥ १३१ ॥ पीछेसे कसेला
 अग्नि कफ शुक्र इनकी बढ़ानेवाला है ॥ और बोही वृक्षपर पका हुआ
 भारी परम वातनाशक होता है ॥ १३२ ॥ और मधुर कुच्छेक खटा पित्तकी
 करनेवाला है ॥ अम्ल रससे हीन और अधिक मधुरतासे बोह पासका
 पका हुआ पित्तनाशक होता है ॥ १३३ ॥ और रक्ता हुआ बोह परम रुचि
 की करनेवाला बलको देनेवाला शुक्रकी उत्पन्न करने वाला हलका होता
 है ॥ १३४ ॥

उषितं तत्परं रुच्यं बल्यं वीर्यं करं
 लघु ॥ ३४ ॥ शीतलं शीघ्रपाकिस्या द्वातपित्त

हरं सरम् ॥ तद्रसो गालितो बल्यो गुरुर्वातहरः
 सरः ॥ १३५ ॥ अहृद्यस्तर्पणोऽतीव वृंहणः क
 फवर्द्धनः ॥ तस्य खण्डं गुरु परं रोचनं चिरया
 किच ॥ १३६ ॥ मधुरं वृंहणं बल्यं शीतलं वात
 नाशनम् ॥ वातपित्तहरं रुच्यं वृंहणं बलवर्द्ध
 नम् ॥ १३७ ॥ वृष्यं वर्णकरं स्वादु दुग्धाम्रं गुरु
 शीतलम् ॥ मन्दानलत्वं विषमज्वरञ्च रक्ताम
 यं बद्धगुदोदरञ्च ॥ आश्रति योगो नयनामयं
 वा करोति तस्मादति तानि नाद्यात् ॥ १३८ ॥
 एतदस्त्राम्रविषयं मधुरास्य परं ननु ॥

भा० और शीतल शीघ्रपाक वाला वात पित्तका नाशक सर होता है ॥
 उस्का निचोड़ा हुआ रस बलको देने वाला भारी वात नाशक सर होता है
 ॥ १३५ ॥ और अहृद्य तर्पण और बद्धन पुष्टिको करने वाला कफका बहाने
 वाला है ॥ और उस्का टुकड़ा भारी अत्यन्त रुचिका करने वाला बद्धन काल
 में पाक होने वाला है ॥ १३६ ॥ और मधुर पुष्टबलको करने वाला शीतल
 वात नाशक है ॥ दूध आमवान पित्तको करने वाला रुचिको करने वाला
 पुष्टबलको बढ़ाने वाला ॥ १३७ ॥ शुकको उत्पन्न करने वाला वर्णको क
 रने वाला मधुर भारी शीतल होता है ॥ बद्धन आमका सेवन मन्दाग्नि
 विषमज्वर रक्त के रोग बद्ध गुदोदर ॥ और नै रोग इनको करता है । इस
 वास्ते बद्धन न सेवन करे ॥ १३८ ॥ यह खड़े आमके विषय में कहा है
 नकि मधुर आमके विषय में ॥

मधुरस्य परं नैत्र हितं न्वाद्या गुराण यतः ॥ १३८ ॥
 शुराण्याम्भसोऽनुपानं स्यादाम्बाराणा मतिभक्ष-

शो ॥ जीरकं वा प्रयोक्तव्यं सहसौ वर्चलेन च ॥ १३६ ॥
 [अथाम्नावर्तस्य लक्षणं गुणाश्च ।] पक्वस्य सह
 कासस्य पटे विस्तारिता रसः ॥ घर्मश्चुकीमुद्-
 र्दत्त आम्नावर्त इति स्मृतः ॥ १४० ॥

अम्बवट इति लोके ।

आम्नावर्त स्तृषाच्छर्दि वात पित्त हरः सरः ॥
 रुच्यः सूर्योपुधिः फाकाल्लघुश्च सहि कीर्ति
 तः ॥ १४१ ॥

भा० मधुर परम नेत्र को दित होता है ॥ क्योंकि पहले कहे डूबे गुणों से ॥

॥ आम्रकं अति भक्षण में पीछे से लोह और पानी पीवे अथवा जीरा
 और सौचल नामक मिलाकर पीवे ॥ १३६ ॥ अनन्तर अम्बवट के लक्षण
 और गुण ॥ पके डूबे आम के रसको कपड़े पर फैलाकर धूप में सुखाया डूबा
 और फिर मे सुट दिये डूबे की आम्नावर्त ऐसा कहते हैं ॥ १४० ॥ और अम्बव
 ट ऐसा लोक में कहते हैं ॥ अम्बवट तृषा वमन वात्र पित्त इनका नाशक
 सर ॥ रुचिको करने वाला है और सूर्यको किरणों के द्वारा पाक होने से
 बौद्ध हलका कहा गया है ॥ १४१ ॥

[अथ कोड्लीयाः]

आम्बवीजं कषायं स्याच्छर्द्यतीसारनाशनम् ।

ईषदम्लञ्चमधुरं तथा हृदयदाहनुत् ॥ १४२ ॥

[अथ नवपल्लवः] आम्रस्य पल्लवं रुच्यं कफपित्त

विनाशनम् ॥

भा० अनन्तर आमकी गुठली ॥ आमकी गुठली कसैली और वमन अ-
 तीसारकी नाशक कुछ खटी मधुर तथा हृदय दाहकी नाशक ॥ १४२ ॥

अनन्तर आमके नवीन पत्ते ॥ आमके पत्ते रुचिको करने वाले कफ पित्त

के नाशक हैं ॥

[अथ अम्वरा।]

आम्रातकः पीतनश्च मर्कटाश्वः कर्पीतनः ॥ आ-
 म्रातमसं वातघ्नं गुरूषां रुचिकृत्सरम् ॥ २४३ ॥
 पक्वन्तु तुवरं स्वादु रसेपाके हिमं स्मृतम् ॥ नर्प-
 णं श्लेष्मलं सिग्धं वृष्यं विष्टम्भि वृंहणम् ॥ २४४ ॥
 गुरु बल्यम्भ रुत्पित्त क्षतदाह क्षयास्त्रजित् ॥

भा० अनन्तर अम्वरा। आम्रातक पीतन मर्कटाश्व कर्पीतन। यह अम्वरा
 डे के नाम हैं ॥ अम्वरा खद्य बातनाशक भारी गरम रुचिको करनेवाला सर
 है ॥ २४३ ॥ पक्का कसैला पाक रसेमें मधुर और शीतल कहा है ॥ नर्पणा क
 फको करनेवाला चिकना सुक्रको उत्पन्न करनेवाला विष्टम्भि पुष्ट है ॥ २४४
 तथा भारी बलके हित है और वात पित्त क्षत दाह क्षयरक्त इनको जीतने
 वाला है ॥

[अथ राजाम्बः।] राजाम्बष्टङ्क आम्रातः कामा-
 ह्वो राजपुत्रकः ॥ राजाम्बतुवरं स्वादु विशदं शी-
 तलं गुरु ॥ २४५ ॥ ग्राहि रूक्षं विबन्धाध्म वात
 कृत्कफपित्तनुत् ॥

अथ कोशाम्ब कोशम्भ इति च।] कोशास्त्र उक्तः
 क्षुद्राम्बः कृमि वृक्षः सुकोशकः ॥ कोशाम्बः कु-
 ष्ठाश्यास्त्र पित्त व्रण कफापहः ॥ २४६ ॥ तत्फ-
 लं ग्राहि वातघ्नमसंश्लोऽसंश्लं गुरु पित्तलम् ॥ पक्वन्तु
 दीपनं रुच्यं लघूषां कफवानुत् ॥ २४७ ॥

भा० अनन्तर राजाम्ब।] राजाम्ब, ष्टङ्क, आम्रात कामाह्व राजपुत्रक। ये
 ह कसैला मधुर विशद शीतल भारी ॥ २४५ ॥ क्राविज्ञ रूखा है और विव-

न्य आधमानवात दूनको करनेवाला और कफ पित्तका नाशक है ॥

अनन्तर कोशाम्ब इसको कोशाम्भ भी कहते हैं] कोशाम्ब क्षुद्राम्ब कामिद-
क्ष सुकोशक । यह कोशाम्ब के नाम हैं ॥ कोशाम्भ रक्त पित्तकृष सृजन व्रण
कफ । दूनको दूर करनेवाला है ॥ १४६ ॥ उस्का फल काविज वात नाशक
खट्टा और पाकमें भी खट्टा होता है । भारी पित्तको करनेवाला है । तथापका
हुवाहीपन रुचिको करनेवाला हलका उष्ण कफ वात का नाशक है ॥ १४७ ॥

[अथ कटहर ।] पराशः करादकिफलः परासोऽति
दृहत्फलः ॥ पराशं शीतलं पक्वं स्निग्धं पित्तानि
लापहम् ॥ १४८ ॥ तर्पणं वृंहणं स्वादु मांसलं प्ले-
ष्मलं भृशम् ॥ बल्यं शुक्र प्रदं हन्ति रक्त पित्त क्ष-
तव्रणान् ॥ १४९ ॥ आमन्तदेव विष्टम्भि वातल
न्तुवरं गुरु ॥ दाहकृतं मधुरं बल्यं कफ मेदो विव-
र्द्धनम् ॥ १५० ॥ परासोद्भूत बीजानि वृष्याणि मधु-
राणि च ॥ गुरुणि बद्ध विट्कानि सृष्ट मूत्राणि
संवदेत् ॥ १५१ ॥

भा० अनन्तर कटहर ।] पराशकं टकी फल परास अति दृहत्फल यह
कटहल के नाम हैं ॥ कटहल शीतल और पकाहुवा चिकना पित्त वातका
नाशक है ॥ १४८ ॥ तर्पिको करनेवाला सुष्ट मधुर मांसको करनेवाला और
अत्यन्त कफको करनेवाला है ॥ तथा बलको करनेवाला और शुक्र को
करनेवाला है । रक्त पित्त क्षतव्रण दूनको नाश करता है ॥ १४९ ॥ बोही क
चा विष्टम्भ करनेवाला वातल कसेला भारी है ॥ और दाहको करनेवाला म
धुर बलके हित कफ मेदका बढ़ानेवाला है ॥ ५० ॥ कटहल के बीज शुक्र
को उत्पन्न करनेवाले मधुर हैं ॥ और भारी मलको रोकनेवाला तथा मूत्रको
करनेवाले हैं ॥ १५१ ॥

अन्यच्च ।

सृज्या परास जौ वृष्यो वात पित्त कफापहः ॥

विषूषात्परासो वर्ज्यः गुल्मिभिर्मन्दबन्धिभिः ॥
१५२ ॥ [अथ बड़हर ।]

लकुचः क्षुद्रपरासो लकुचौडङ्ग इत्यपि ॥ आ-
मंलकुचक्षुषाञ्च गुरु विष्टम्भकतथा ॥ १५३ ॥

मधुरञ्च तथास्त्रञ्च दोषवितथ रक्तकृत् ॥ शु-
क्राग्निनाशनं वापि नेत्रयो रहितं स्मृतम् ॥ १५४ ॥

सुपक्वन्तु मधुरमस्त्रञ्चानिल पित्तहृत् ॥ कफ-
बन्धि करं रुच्यं वृष्यं विष्टम्भकञ्च तत् ॥ १५५ ॥

भा० कटहलकीगिरी शुक्रकी करनेवाली वात पित्त कफकी नाशक है ॥ विशेष करके बायगोला वाले और मन्दाग्निवाले कटहल को न सेवन करे ॥ १५२ ॥ अनन्तर बड़हर ॥ लकुच क्षुद्रपरासो लकुचौडङ्ग इत्यने नाम बड़हर के हैं ॥ कच्चा बड़हर गरम भारी विष्टम्भकी करने वाला है ॥ १५३ ॥ और मधुर तथा खट्टा तीनों दोषोंकी और रक्तकी करनेवाला है ॥ और शुक्र तथा अग्निको नाशन और नेत्रोंके अहित कहा है ॥ १५४ ॥ और अच्छे प्रकार पकाइया खट्टा और भीठ होता है तथा वात पित्तको नाश करनेवाला है ॥ और कफ अग्निको करनेवाला रुचिके हित शुक्रकी करने वाला और विष्टम्भक है ॥ १५५ ॥

[अथ कदली ।] कदली चारणा मोचाशु सारां
शुमती फला ॥ मोचाफलं स्वादु शीतं विष्टम्भि
कफक्षुद्र गुरु ॥ १५६ ॥ श्लिग्धं पित्तान्नमृदाह
क्षय क्षय समीरजित ॥ पृच्छं स्वादु हिमं पाके
स्वादु वृष्यञ्च वृंहशासु ॥ १५७ ॥ क्षुत्तथा नेत्र
गदहन्मेहघ्नं रुचिमांसकृत् ॥
माशिक्य मर्त्या मृतजम्पकाद्या भेदाः कदलाः

वहवोऽपि सन्ति ॥ उक्ता गुणास्तेष्वधिका भवन्ति
निर्दोषता स्यात्सघुता च तेषाम् ॥ १५८ ॥

भा० अनन्तर कैला । कदली वारणा मोचा अम्बुसरा अंशुमती फला । येह
केलेके नामहैं ॥ कैला मधुर शीतल विष्टंभकरनेवाला कफ नाशक भारी
है ॥ १५६ ॥ और विकना पितरक्त लूया दाहका नाशक और क्षत क्षय वात
द्वनको जीतने वाला है ॥ पकाइवा शीतल मधुर और फकमें मधुर सुकको
करनेवाला और प्रसूहै ॥ १५७ ॥ क्षुधा लूया नेत्र रोग द्वनका नाशक प्रमेह
कानाशक और रुचि मांस को करनेवाला है ॥ भारिाक्य भर्त्या अमृत चंपक
आदि केलेके बहुत भेदहैं । उन्में येह कहै ज्ये भारी अधिकहैं ॥ और उन्में
निर्दोषता तथा लघुता है ॥ १५८ ॥

[अथ गुरुभीहं भुक्त्वा इति च ।] विभिद घेनुद्
गधञ्च तथा गोरक्ष कर्कटी ॥ विभिदं मधुरं रूक्षं
गुरु पित्तकफापहम् ॥ १५९ ॥ अनुषां ग्राहि वि
ष्टम्भि पक्वं तूष्णञ्च पित्तलम् ॥

भा० अनन्तर भुक्त्वा ॥ विभिद घेनुद्गध गोरक्ष कर्कटी ॥ येह भुक्त्वा कं
नामहैं ॥ भुक्त्वा मधुर रूक्ष पित्तकफ का नाशक भारी है ॥ १५९ ॥ और
उषा काविज्ञ विष्टम्भि है और पकाइवा उषा तथा पित्तको करनेवाला है

[अथ नारिकेल ।] नारिकेरो दृढ फलो लाङ्गली
कूर्च प्रीर्यकः ॥ तुङ्गस्कन्ध फल श्रेव तृणारा-
जः सदाफलः ॥ १६० ॥ नारिकेर फलं शीतं दुर्ज्ज-
रं वस्तिशोधनम् ॥ विष्टम्भि दृंहारां बल्यं वात
पित्तास्र दाहनुत् ॥ १६१ ॥ विशीघनः कोमल
नारिकेरं निहन्ति पित्तञ्चर पित्तदोषान् ॥ सदेव
जांरुं गुरु पित्तकारि विहाहि विष्टम्भि मत्तंभिपग

निलापहम् ॥ तेषु यच्चाक्लमधुरं सत्तारञ्च रसा
 इवेत् ॥ १६७ ॥ रक्तपित्तकरन्ततु मूत्रकृच्छ्रकर-
 म्परम् ॥ [अथ लघु खीरा बालमखीरा ।
 त्रपुसं कराटक फलं सुधावासः सुशीतलम् ॥ त्र
 पुसं लघु नीलञ्च नवं तट् क्लमदाह जित् ॥ १६८ ॥
 स्वादु पित्तापहं शीतं रक्तपित्तहरम्परम् ॥ नत् प
 क मस्त्रमुपां स्यात् पित्तलं कफवाननुत् ॥ १६९ ॥
 तद्वीजं मूत्रलं शीतं रुक्षं पित्तास्र कृच्छ्र जित् ॥

भा० अनन्तर खरबूजा ।] दशांगुल खरबूज । यह खरबूजे के नाम हैं ।
 अनन्तर उसके गुण कहते हैं ॥ खरबूज मूत्रको करनेवाला बलको कर
 नेवाला कोष्ठकी शुद्धि करनेवाला और भारी होता है ॥ १६६ ॥ और विक
 ना बहुत मधुर शीतल शुक्रको करनेवाला पित्तघातका नाशक है ॥
 उनमें जो खट्टा मधुर क्षारके सहित रस सं होता है । बोह रक्त पित्तको करने
 वाला और मूत्र कृच्छ्र को करनेवाला है ॥ १६७ ॥

अनन्तर बालम खीरा । त्रपुस कंदकी फल सुधावास सुशीतल । यह वा-
 लमखीरे के नाम हैं ॥ खीरा नरा और नया खीरा हलका होता है । वो दूया
 क्लम दाह इनको जीतनेवाला है ॥ १६८ ॥ और मधुर पित्तनाशक ।
 शीतल और रक्तपित्तका नाशक होता है ॥ वो पका हुआ खट्टा ऊषण और
 पित्तको करनेवाला कफघातका नाशक है ॥ १६९ ॥ उस्का बीज मूत्र
 को करनेवाला शीतल रुखा रक्तपित्त और मूत्रकृच्छ्र इनको जीतनेवाला है

अथ सुपारी छोटी ।] घोरराटः पूगी पूगञ्च गुवा
 कः क्रमुकोऽस्य तु ॥ फलम्पूगी फलम्प्रेक्त मुह-
 गञ्च तदीरितम् ॥ १७० ॥ पूगङ्गरु हिमं रुक्षं क
 षायाङ्कफपित्तजित् ॥ मोहनं न्दीपनं रुच्यं मा-
 स्य वैरस्य नाशनम् ॥ १७१ ॥ आर्द्रं तद्गुर्वं भिष्यति

बन्धि दृष्टि हरं स्मृतम् ॥ स्विन्नं दोषत्रय च्छेदि
दृढमध्यन्तदुत्तमम् ॥ १७२ ॥

भा० अनन्तर छोटी सुपारी ॥ घोरंट पूगी पूग गुवाकः क्रशुक ॥ फल
पूगीफल उद्वेग । यह सुपारी के नाम हैं ॥ १७० ॥ सुपारी भारी शीतल सूखी
कसैली कफ पित्तकी जीतनेवाली है ॥ और मोहन दीपन भारी रुचिकी
करनेवाली मुखके विरसताकी नाशक है ॥ १७१ ॥ बोह गीली भारी अ
भिष्यन्दी होती है ॥ और अग्नि दृष्टिकी नाशक कही गई है ॥ चिकनी नीने
दोषों के नाश करनेवाली बीच में जो दृढ होती वोह उत्तम है ॥ १७२ ॥

अथ तालः ।] तालस्तु लेखपत्रः स्यात् तृणराजो
महोन्नतः पक्वं तालफलं पित्त रक्त श्लेष्म वि
वर्द्धनम् ॥ १७३ ॥ दुर्जरस्वज्ञ मूत्रञ्च तन्द्राभिष्य
न्दि शुक्रदम् ॥ तालजज्जा तु तरुणाः किञ्चिन्मद
करो लघुः ॥ १७४ ॥ श्लेष्मलो वात पित्तघ्नः शस्त्रे-
हो मधुरः सरः ॥

भा० अनन्तर ताड़ ॥ ताल-लेखपत्र तृणराज महोन्नत । यह ताड़ के नाम
हैं ॥ पका हुआ ताड़फल रक्त पित्त कफ दूनको बढ़ानेवाला ॥ १७३ ॥
दुर्जन वृद्धन मूत्रको करनेवाला तन्द्रा अभिष्यन्दी और शुक्रको देने वाला
है ॥ पके हुवे तालकी गिरी कुछ नशा करनेवाली और हलकी होती है ॥
१७४ ॥ और कफको करनेवाली वात पित्तकी नाशक कुछ चिकनी मधुर
सर होती है ॥

अथ ताड़ी ।] तालजन्तरुणान्तोय मतीवमाद
कान्तम् ॥ अस्त्री भूतन्तदा तु स्यात् पित्त रुद्धा-
त्तदोषहृत् ॥ १७५ ॥ [अथ बेल ।]
विल्वः शरिडल्य शैलूषो मालूर श्रीफलावपि ।

बालं विल्वफलं विल्व कर्कटी विल्व पेथिका ॥७६॥
ग्राहिराणी कफ वाताम शूलघ्नी विल्व पेथिका ॥

भा० अनन्तर ताड़ी ।] ताड़ी बद्धत नशाके करनेवाली होती है ॥ और जब खड़ी होती है तब पित्तको करनेवाली और धान दोषको नाशक है ॥ १७५ ॥
अनन्तर बेल ।] विल्व कशाण्डिल्य शैल्यूष मालूर श्रीफल । यह बेल फलके नाम हैं ॥ और कच्चे बेलफल विल्वकर्कटी और विल्व पेथिका कहते हैं ॥ १७६ ॥ कच्चाबेल काविज कफ वात आग शूल इनका नाशक है ॥

[अन्यच्च ।

बालं विल्वफलं ग्राहि दीपनम्याचनकटु ॥ क-
षायोषां लघु स्निग्धं तिक्त वातकफापहम् ॥
१७७ ॥ पक्व गुरु त्रिदोषस्यात् दुर्जरं पूतिमारुत
म् ॥ विदाहि विष्टम्भकरं मधुरं वह्निमान्यकृत
॥ १७८ ॥ फलेषु परिपक्वं यज्जुरा वत्तदुदाहतम्
॥ विल्वादन्यत्र विज्ञेय मामन्त द्विगुणाधिकम् ॥
१७९ ॥ द्राक्षा विल्व शिवादीनां फलं शुष्कं गु-
णाधिकम् ॥

भा० औरभी । कच्चा बेलफल काविज दीपन पाचन कटु कसैला उष्ण हलका चिकना तिक्त वात कफ का नाशक है ॥ १७७ ॥ और पका हुआ भारी त्रिदोषको करनेवाला होता है और सड़ा हुआ तुरंगी और वात को करता है तथा विदाहको करनेवाला विष्टम्भी मधुर अग्निमांदाको करने वाला है ॥ १७८ ॥ फलोंमें पका हुआ जो होता है वोह गुणयुक्त होता है ॥ परन्तु बेलसे अतिरक्तोंको जानना चाहिये यह कच्चा गुणमें अधिक होता है ॥ १७९ ॥ दारव बेल आमले इत्यादिकोंके फल सूखे हुए गुणमें अधिक होता है ॥

[अथ कैथि ।] कपित्थस्तु दधित्थः स्यात्

तथा पुष्य फलः स्मृतः ॥ कपि प्रियो दधि फल

स्तथा दन्त प्राठोऽपि च ॥ १६० ॥ कपिथ्य मामं सं-
 ग्राहि कषायं लघु लेखनम् ॥ पक्वां गुरु तृषाहि-
 का शमनं वात पित्तजित् ॥ १६१ ॥ स्यादल्पन्तु-
 वरङ्कुराठ शोधनं ग्राहि दुर्जरम् ॥

भा० अनन्तर कैथ । कपिथ्य दधिथ्य पुष्यफलं । येह कैथ के नाम हैं ॥
 और कपिप्रिय दधिफल तथा दन्तप्राठ येह भी कैथ के नाम हैं ॥ १६० ॥
 कच्चा कैथ क्वाविज कसैला हलकारेचन होता है ॥ और पकाइवा भारी होता
 है और तृषा हिचकी शमन करने वाला वातपित्तका नाशक है ॥ १६१ ॥

[अथ नारङ्गी ।] नारङ्गो नागरङ्गः स्यात्त्वक् सुग-
 न्धो मुखप्रियः ॥ नारङ्गो मधुरास्त्रः स्याद्दीपनं वा-
 तनाशनम् ॥ १६२ ॥ अपरन्त्वस्त्र मत्युषां दुर्जरं
 वात हत सरम् ॥ अथ तेदु ।] तिन्दुकः
 स्फूर्त्यकः कालस्कन्धश्चासितकारकः ॥ स्या-
 दामन्तिदुकं ग्राहि वातलं शीतलं लघु ॥ १६३ ॥
 पक्वंपित्तप्रमेदास्त्र श्लेष्मघ्नं मधुरं गुरु ॥

भा० छोटा कसैला कंदशोधन क्वाविज होता है ॥
 अथ नारंगी के नाम गुण ॥ नारङ्ग नागरङ्ग त्वक् सुगन्ध मुखप्रिय यह
 नारङ्गी के नाम हैं ॥ नारङ्गी मिठी और खट्टी होती है मिठी दीपन वातनाश
 कहता है ॥ १६२ ॥ और खट्टी चङ्गन गरम दुर्जर वातनाशक सर होता है ॥
 अनन्तर तेदु ॥ तिन्दुक स्फूर्त्यक कालस्कन्ध असितकारक । येह तेदु
 के नाम हैं ॥ कच्चा तन्दु क्वाविज वात को करने वाला शीतल हलका होता
 है ॥ १६३ ॥ और पकाइवा पित्त प्रमेह रक्त कफ घनकानाश करने वाला ।
 मधुर और भारी होता है ॥

[अथ कुपीलु ।] यस्य फलं कुचिला इति लोके

मकरतेदुश्चा इति च ।] तन्दुको यस्य कथितो ज-
लदो दीर्घ पत्रकः ॥ कुपीलः कुलकः काल स्ति-
न्दुकः कालपीलुकः ॥ १८४ ॥ काकेन्दु विषति
न्दुश्च तथा मर्कट तन्दुकः ॥ कुपीलुः शीतलं
तिक्तं वातलं मद क्लृप्तं ॥ पादव्यथा हरं ग्राहि
कफ पित्तास्र नाशनम् ॥ १८५ ॥

भा० अनन्तर कुपीलु जिसके फलको लोकमें कुंचल कहते हैं ॥ तन्दुक
जलद दीर्घ पत्रक ॥ कुपीलु, कुलक, काल, तन्दुक, कालपीलुक ॥
॥ १८४ ॥ काकेन्दु विषतिन्दु तथा मर्कट तन्दुक यह कुचिलाके वलकाना
महै ॥ कुपीलु शीतल तिक्त वातको करनेवाला और नशा करनेवाला हल्का
है ॥ और पादोंकी पीड़ाको दूर करनेवाला काबिज तथा कफ रक्त पित्त इन
को नाश करनेवाला है ॥ १८५ ॥

[अथ फलेन्द्रा ।] फलेन्द्रा कथिता नन्दी राज जम्बू
महाफला ॥ तथा सुरभि पत्रा च महाजम्बू रपिस्तु
ता ॥ राजजम्बू फलं स्वादु विष्टम्भि गुरु रेचनम् ॥

[अथ जामुनी नदी जामुनी ।] क्षुद्रो जम्बूः सूक्ष्मप
त्रा नादेयी जल जम्बुका ॥ जम्बूः स्याहिणी रू-
क्षा कफ पित्तास्र दाह जित् ॥ १८७ ॥

भा० अनन्तर बड़े जामुन ॥ फलेन्द्रा नन्दी राज जम्बू महाफल ॥ तथा सु-
रभिपत्रा महाजम्बू, येहभीनाम कहे हैं ॥ १८६ ॥ बड़े जामुनका फल मधु-
र विष्टम्भ करनेवाला ॥ भारी रेचन है ॥

अनन्तर जामुनी और नन्दी जामुनी भी ॥ क्षुद्रजम्बू सूक्ष्मपत्रा नादेयी
जलजम्बुका अनन्तर छोटी जामुनके नाम हैं ॥ छोटी जामुनकाबिज
कफ रक्त पित्त दाह इनको जीतनेवाला है ॥ १८७ ॥

[अथ वैरि ।] पुंसिस्त्रियाञ्च कर्कन्धुवदरी कोल

मित्यपि ॥ फेनिलं कुवलयं घोठां सौवीरं वदरं मह-
 त ॥ १८८ ॥ अजप्रिया कुहा कीली विषमो भय
 करटका ॥ [तत्र वदर विशेषाणां लक्षणानि गुणा
 अ] पच्यमान सुमधुरं सौवीरं वदरं महत् ॥ सौवी-
 रं वदरं शीतं भेदनं गुरु शुक्रलासम् ॥ १८९ ॥ वृंह-
 णाम्पित्तदाहास्र क्षय नृणां निवारणाम् ॥ सौवी-
 रं लघुं सम्यक् मधुरं कीलमुच्यते ॥ १९० ॥

भा० अनन्तर बेर । उल्लिंग और स्त्रीलिंग में कर्कन्धु वदरी और कील
 यह भी होता है ॥ फेनिल कुवलय घोठा सौवीर वदर ॥ अज प्रिया कुहा की-
 ली विषम उभय करटक ॥ १८८ ॥ येह बेरके नाम हैं । उर्में बेर विशेषणों
 के लक्षण और गुणों को कहते हैं ॥ पके जवे अच्छे मीठे को सौवीर और ब-
 डा बेर कहते हैं ॥ सौवीर वदर शीतल भेदन भारी शुक्र को करने वाला है ॥
 ॥ १८९ ॥ और वृंहण पित्त दाह रक्त क्षय नृणां इनको दूर करने वाला है ॥
 वडा बेर पकाइवा पकाइवा और मधुर सेसे को कील कहते हैं ॥ १९० ॥

कीलन्तु वदरं ग्राहि रुच्यमुष्णञ्च वातलम् ॥

कफ पित्तकरञ्चापि गुरु सारक सीरितम् ॥ १९१ ॥

कर्कन्धु क्षुद्र वदरं कथितं पूर्वसूरिभिः ॥ ३३

स्लं स्यात् क्षुद्र वदरं कषायं मधुरं मनाक् ॥ १९२ ॥

स्निग्धं गुरु च तिक्तञ्च वातपित्तापहं स्मृतम् ॥

शुष्कं भेद्यग्नि कृत्स्वं लघु नृणां क्लमास्रजित् ६३

भा० कील बेर का बीज रुचिको करने वाला गरम वात को करने वाला है ॥
 और कफ पित्त को करने वाला भारी सारक कहा है ॥ १९१ ॥ पहिले विद्वानों
 ने छोटे बेर को कर्कन्धु ऐसा कहा है ॥ छोटा बेर खटा कसेला और थोड़ा

मीठा होता है ॥ १६२ ॥ और चिकना भारी तिरु वान पित्तका नाशक कहा है
॥ तथा सूखा भेदन करनेवाला और अग्नि को करनेवाला है । और सब हृत्के
होते हैं । तथा तथा रुमिरु इतको जीतने वाला है ॥ १६३ ॥

अथ मनि अस्वरा । प्राचीना मालकं लोके या-
नीया मलकं स्मृतम् ॥ प्राचीना मलकं दोष त्रय
जिद् ज्वरघाति च ॥ १६४ ॥

[अथ लवली । हर फारी इति च ।] सुगन्ध मूला ल-
वली पाण्डुः कोमल चल्कला ॥ लवली फल म ।
शमार्शः कफ पित्त हरं गुरु ॥ १६५ ॥ विशदं रोचनं
रूक्षं स्वादुस्लन्तु वरं रसे ॥

भा० अनन्तर पानी आंवाला ॥ प्राचीना मालकं को लोके में पानीया मलक
कहा है ॥ प्राचीना मलक त्रिदोष को जीतनेवाला और ज्वर नाशक है ॥
१६४ ॥ [अनन्तर हरफारेवडीय सुगन्धमूला लवली पाण्डु कोमल च
ल्कला यह हरफारेवडी के नाम हैं ॥ हरफारी का फल पथरी और
चवासीर कफ पित्त इनका नाशक भारी ॥ १६५ ॥ विशद रोचन रूखा
मधुर खटा और कसैला रसे में होता है ॥

[अथ करोंदा । करौंदी]

करमर्दः सुषेणः स्यात् कृष्ण पाक फलस्तथा ॥

तस्माल्लघु फलायास्तु सा ज्ञेयां करमर्दिका ॥

१६६ ॥ करमर्दं हृद्यं त्वामभस्त्रं गुरु तृषा हरम् ॥

उष्णं रुचिकरं प्रोक्तं रक्तपित्त कफप्रदम् ॥ १६७ ॥

तत्पक्वं मधुरं रुच्यं लघु पित्त समीरजित् ॥

भा० अनन्तर करोंदा । और करौंदी] करमर्द सुषेण कृष्ण पाक फल

येह करेण्डाके नामहैं ॥ और छोटेको करमर्दि का कहतेहैं ॥ १६६ ॥
 दोनों करेण्डे खड़े भारी तृषा नाशकहै । और उष्ण रुचिको करनेवाले तथा
 रक्त पित्त कफको देनेवाले कहेहैं ॥ १६७ ॥ दोह पकाइवा मधुर रुचिको क
 रनेवाला हलका और वात पित्तको जीतने वाला है ॥

अथ पित्राल चिरोञ्जी ।] पित्रालस्तु खरस्क-
 न्ध श्वारो बहल वल्कलः ॥ राजादनस्तापसेष्टः
 सन्नकद्रु धनुष्यदः ॥ १६८ ॥ चारः पित्तकफास्त्र-
 मस्तत् फलंमधुरं गुरु ॥ स्निग्धं सरं मरुत्पित्तदा
 हज्वर तृषाफहम् ॥ १६९ ॥ पित्रालमज्जा मधु-
 रो वृष्यः पित्ता निलापहः ॥ हृद्योऽतिदुर्जरः
 स्निग्धो विष्टम्भी चामवर्द्धनः ॥ २०० ॥

भा० अनन्तर चिरोञ्जी ॥ पित्राल खरस्कन्ध चार बहल वल्कल । राजादन
 तापसेष्ट सन्नकद्रु धनुष्यद । येह चिरोञ्जीके नामहैं ॥ १६८ ॥ चिरोञ्जी
 पित्त कफ रक्त इनका नाशक है । और उष्ण फल मधुर भारी चिकना सर
 होता है और वात पित्त दाहज्वर तृषा इनका नाशक है ॥ १६९ चिरोञ्जी
 को गिरी मधुर शुकको करनेवाली पित्त वातका नाशक ॥ हृद्य अतिदुर्ज-
 र स्निग्ध विष्टम्भी आमको बढ़ानेवाली है ॥ २०० ॥

[अथ क्षीररागी ।] राजादनः फलाध्यक्षो राजन्या
 क्षीरिकापि च ॥ क्षीरिकायाः फलं वृष्यं वल्यं
 स्निग्धं हिमं गुरु ॥ २०१ ॥ तृषणा मूर्च्छाभदम्भा-
 न्तिक्षय दोषत्रयास्त्रजित् ॥

[अथ कराटाइ ।] विकङ्कतः सुपातृक्षो ग्रन्थि-
 लः स्वादुकराटकः ॥ सरवयश्चतुश्चकराट-

की व्याघ्रपादपि ॥ २०२ ॥ विकङ्कतफलं प-
कं मधुरं सर्वदोषजित् ॥

भा० अन्नन्तर खिरनी । राजादन फलाध्यक्ष राजन्या । यह खिरनी के नाम हैं ॥ खिरनी का फल शुककी करनेवाला बलको देनेवाला चिकन शीतल भारी होता है ॥ २०१ ॥ और मूर्च्छा मद् भ्रान्ति क्षय विदोष रक्त इनको जीतनेवाला है ॥ [अन्नन्तर कंटाई । विकङ्कत सुवाच-
क्ष ग्रन्थिल स्वादुकंदक ॥ यज्ञवृत्तकंदकी व्याघ्रपाद यह कंटाई के नाम हैं ॥ २०२ ॥ कंटाई का पकाफल मधुर और सब दोषोंको जीतनेवाला है ॥

[अथ कमलगद्दा ।]

पद्मबीजन्तु पद्माक्षं गालोड्यं पद्मकर्कटी ॥ प-

द्मबीजं हिमं स्वादु कषायं तिक्तकंगुरु ॥ २०३ ॥

विष्टम्भि वृष्यं रूक्षञ्च गर्भसंस्थापकं परम् ॥

कफ वात करं बल्यं ग्राहि पित्तास्र दाहनुत् ॥ २०४ ॥

[अथ मखाना ।] मखानं पद्मबीजाभं पानीय फ-

लमित्यपि ॥ माखन्नं पद्मबीजस्य गुणैस्तुल्यं-

विनिर्दिशेत् ॥ २०५ ॥

भा० अन्नन्तर कमलगद्दा । पद्मबीज पद्माक्ष गालोड्य पद्मकर्कटी ॥ यह कमलगद्दा के नाम हैं ॥ कमलगद्दा शीतल मधुर कसेला तिक्त भारी ॥ २०३ ॥ विष्टम्भी शुकको करनेवाला रूखा गर्भको स्थापन करनेवाला है ॥ और कफ वात को करनेवाला बलके हिनं क्राविज्ञ रक्त पित्त और दाह इनका नाशक है ॥ २०४ ॥ [अन्नन्तर मखाना] मखानं पद्मबीजाभं पानीयफल । यह मखानेके नाम हैं ॥ मखाना कमलगद्देके समान गुणमें जानना चाहिये ॥ २०५ ॥

अथ सिंघाडा ।] शृङ्गाटकं जलफलं त्रिकीणाफल

मित्यापि ॥ शृङ्गाटकं हिमं स्वादु गुरु वृष्यं कषाय-
कम् ॥ २०६ ॥ ग्राहि शुक्रानिल श्लेष्मप्रदं पित्ता-
स्रदाहनुत् ॥ [अथ भेंट।] उक्तं कुमुद बीजन्तु
बुधैः कैरविणी फलम् ॥ भवेत् कुमुद्वती बीजं स्वा-
दु रूक्षं हिमं गुरु ॥ २०७ ॥ [अथ महुवा वन-
महुवा।] मधूको गुड़पुष्यः स्यान् मधुपुष्यो म-
धुस्रवः ॥ वानप्रस्थो मधुशीलो जलजेत्र मधू-
लकः ॥ २०८ ॥ मधूक पुष्यं मधुरं शीतलं गुरु
वृंहणम् ॥ बल शुक्र करं प्रोक्तं वात पित्त बिना-
शनम् ॥ २०९ ॥ फलं शीतं गुरु स्वादु शुक्रलं वा-
त पित्तनुत् ॥ अहद्यं हन्ति तृष्णास्र दाह श्वा-
स क्षत क्षयान् ॥ २१० ॥

भा० अनन्तर सिंघाड़ा ॥ शृंगटाक जलफल त्रिकोणफल यह सिंघाड़े के नाम हैं ॥ सिंघाड़ा शीतल मधुर भारी शुक्रको करनेवाला कसेला ॥ २०६ ॥ काविज्ञ और शुक्र वात कफ इनको देनेवाला तथा पित्तरक्त दाह इनका नाशक है ॥ [अनन्तर भेंट।] कुमुद के बीज की कैरविणी फल से सा पंडितोंने कहा है ॥ कुमुदवती का बीज मधुर रूखा शीतल होता है ॥ २०७ ॥ [अनन्तर महुवा और वन महुवा।] मधूक गुड़पुष्य मधुपुष्य मधुस्रव ॥ वानप्रस्थ मधुशील जलजेत्र मधूलक ॥ २०८ ॥ यह महुवे के नाम हैं ॥ महुवा मधुर शीतल भारी पुष्ट ॥ बल शुक्रको करनेवाला और वात पित्तका नाशक कहा है ॥ २०९ ॥ उसका फल शीतल भारी मधुर शुक्र का करनेवाला वात पित्तका नाशक ॥ और अहद्य होता है तथा तृष्णा रक्त दाह स्वास क्षत क्षय इनको नाश करता है ॥ २१० ॥

[अथ फरुसां।] परुषकन्तु परुषमल्पास्थिच

परापरम् ॥ परूषकं कषायाम्लमामं पित्तकरं
 लघु ॥ २११ ॥ तत्पक्वं मधुरं पाके शीतं विष्टम्भि
 वृंहणम् ॥ हृद्यन्तु पित्तदाहास्रज्वरक्षय समीर
 हत् ॥ २१२ ॥ [अथ तूत ।]

तूतःस्थूलश्च पूगश्च क्रमुको ब्रह्मदारु च ॥
 तूतं पक्वं गुरु स्वादु हिमं पित्तनिलापहम् ॥ २१३ ॥
 तदेवामं गुरु सरमम्लोष्णं रक्तपित्तकृत् ॥

भा० अत्रन्तर फालसा ।] परूषक परुष अल्पास्थि परापर ॥ येह
 फालस के नाम हैं ॥ फालसा कसैला खटा पित्तको करनेवाला हलका
 होता है ॥ २११ ॥ वोह यकाङ्गवा पाकमें मधुर शीतल विष्टम्भी उष्व होता
 है ॥ और हृद्य पित्तदाह रक्तज्वरक्षय चात वृन्का नाशक है ॥ २१२ ॥

[अत्रन्तर तूत ।] तूत स्थूलश्च पूग क्रमुक ब्रह्मदारु । यह तूतके नाम
 हैं ॥ यकाङ्गवा तूतभारी मधुर शीतल पित्तवातका नाशक है ॥ २१३ ॥
 और वोही कच्चा भारी सर खटा उष्ण रक्त पित्तको करने वाला है ॥

[अथ अनार ।] दाडिमः करकोदन्तबीजोलोहि
 तपुष्पकः ॥ तत्फलं त्रिविधं स्वादु स्वादुम्लं के
 वलाम्लकम् ॥ २१४ ॥ तत्तु स्वादु त्रिदोषघ्नं वृद्ध
 दाहज्वरनाशनम् ॥ हृत्कराठमुखगन्धघ्नं तर्प
 णं शुक्रलं लघु ॥ २१५ ॥ कषायानु रसं ग्राहि
 स्निग्धं मेधाबलापहम् ॥ स्वादुम्लं दीपनं रुच्यं
 किञ्चिन्पित्तकरं लघु ॥ २१६ ॥ अम्लन्तु पित्तज
 नकमम्लं वातकफापहम् ॥

भा० अत्रन्तर अनार । दाडिम करको दन्तबीज लोहितपुष्पक । यह

अनार के नाम हैं ॥ उस्का फल तीन प्रकार का होता है ॥ मधुर मधुरखट्टा और केवल खट्टा ॥ २१४ ॥ उन्मे मधुर त्रिदोषनाशक और तृषा दाह ज्वर इन का भी नाशक है ॥ हृद्य करण मुखगंध इनका नाशक नर्परा शुक की करनेवाला हलका होता है ॥ २१५ ॥ पीछेसे कसैला क्राविज्ञ चिकना होता है ॥ और मेधाबल इनका नाशक है ॥ और खट्टा मीठा दीपन रुचिको करनेवाला कुच्छक पित्तका करनेवाला हलका होता है ॥ २१६ ॥ खट्टा पित्तको करनेवाला और वात कफ का नाशक है ॥

[अथ बह्वारः ।] बह्वारस्तु शीतः स्यादुद्दालो
बह्वारकः ॥ शैलुः प्लेष्मातकश्चापि पिच्छ
लो भूत वृक्षकः ॥ २१७ ॥ बह्वारो विषस्फोट व्रण
वीसर्पकुष्ठसुत् ॥ मधुर स्तुवरस्तिक्तः केशयश्च क-
फ पित्त हृत् ॥ २१८ ॥ फलमामन्तु विष्टम्भि रूक्षं-
पित्तकफास्व जित् ॥ तत् पक्वं मधुरं त्निग्धं प्लेष्म-
लं शीतलं गुरु ॥ २१९ ॥

भा० अनन्तर बह्वार ॥ बह्वार शीत उद्दाल बह्वारक ॥ शैलुः प्लेष्मांतक पिच्छल भूतवृक्षक । यह बह्वार के नाम हैं ॥ २१७ ॥ बह्वार विष विषफोट व्रण वीसर्पकुष्ठ इनका नाशक है ॥ और मधुर कसैला तिक्त केशके हित कफ पित्तका नाशक है ॥ २१८ ॥ कच्चा फल रूखा विष्टम्भकर नेवाला रूखा पित्त कफ रक्त को जीतनेवाला है ॥ और बीह पका हुआ मधुर चिकना कफ को फलेवाला शीतल भारी है ॥ २१९ ॥

[अथ कतकः ।] पयः प्रसादि कतकद्रुतकं तत्
फलञ्च तत् ॥ कतकस्य फलं नेत्र्यं जलनिर्मल
ताकरम् ॥ २२० ॥ वातप्लेष्म हरं शीतं मधुरं
तुवरं गुरु ॥

[अथ द्राक्षा ।] द्राक्षा स्वादु फलाश्री-
 क्ता तथा मधुर सापि च ॥ मृद्दीक्य हारहूरा च गो-
 स्तनी चापिकीर्तिता ॥ २२१ ॥ द्राक्षा पक्वा सरा शी-
 ता चक्षुष्या दृंहणी गुरुः ॥ स्वादु पाक रसा स्व-
 र्या तुचरासृष्ट मूत्रविट् ॥ २२२ ॥ कीष्टमारुतकं-
 द् चक्षुष्या कफपुष्टि रुचि प्रदा ॥ हन्ति नृषणा ज्वर
 श्वास वात वातास्र कामलाः ॥ २२३ ॥ कृच्छ्रास्र
 पित्तसंमोह दाह शोष मदात्ययान् ॥ आमास्व-
 ल्यगुणा गुर्वी सैवाक्ला रक्त पित्तकृत् ॥ २२४ ॥
 दृष्या स्याद् गोस्तनी द्राक्षा गुर्वी च कफ पित्तनुत्

भा० अन्नन्तर निर्मली ॥ पयः प्रसादि कतक । और उस्का फल भी क-
 तक है ॥ निर्मलीका फलनेत्रके हित और जलकी निर्मलता करनेवा-
 ला है ॥ २२० ॥ और वात कफको दूर करनेवाला शीतल मधुर कसेला भा-
 गै है ॥ [अनन्तर दारव ।] द्राक्षा स्वादुफला मधुरसा मृद्दीका हारहूरा गो-
 स्तनी येह दारवके नाम हैं ॥ २२१ ॥ पकी हुई दारव सर शीतल नेत्रको हि-
 त करनेवाली पुष्ट भारी होता है ॥ और पाक रसमें मधुर सरको अच्छा कर-
 नेवाली कसेली मल मूत्रको करनेवाली है ॥ २२२ ॥ और कोष्ठ वातको कर-
 नेवाली शुक्रकी उत्पन्न करनेवाली तथा कफ पुष्टि रुचि इनको देनेवाली
 है ॥ और स्या ज्वर श्वास वात वातरक्त कामला इनको नाश करती है ॥ २२३
 ॥ और मूत्र कृच्छ्र रक्त पित्त मोह दाह शोष मदात्य इनको भी नाश करता
 है ॥ और कच्ची वस्से अल्प गुणावाली भारी होती है और वही खटीरक्त पि-
 त्तको करनेवाली है ॥ २२४ ॥ गोस्तनी दारव शुक्रकी उत्पन्न करनेवाली ।
 भारी और कफ पित्तकी नाशक होती है ॥

[गोस्तनी मुनक्का इतिलोके ।] अवीजान्या स्वल्प
 तरा गोस्तनी सदृशी गुणैः ॥ द्राक्षा पक्वेतजालघी

सास्त्रा ऋक्षमास्त्र पितृकृत ॥ २२५ ॥ द्राक्षापर्व
तजायादृक् नाहशी कर्मर्दिका ॥

(क) अवीजा । ईषहीजा । किसिमिस इति लोके ।
पर्वजा यहारी इति लोके । कर्मर्दिका करौदी इति
लोके । [अथ क्षुद्र खज्जूरी । पिण्ड खज्जूरी चो
हार ।] भूमिखज्जूरीका स्वाद्वी दुरारोहा मृदु
च्छदा ॥ तथा स्कन्धफला काक कर्कटी स्वादु
मस्तका ॥ २२६ ॥ पिण्ड खज्जूरीका त्वन्यासादे
शेषश्चिमे भवेत् ॥ खज्जूरी गोस्तनाकारा पर
द्वीपादिहागता ॥ २२७ ॥

भा. गोस्तनी मुनक्का इत्प्रकार लोके में कहते हैं ॥ दूसरी बीजसे रहित
वृद्धन छोटी मुनक्का से समान गुणमें होती है ॥ पहाड़ीदारव हलकी होती है
और कुछ खटी होती है ॥ तथा कफ अग्निपित्त को करनेवाली है ॥ २२५ ॥
जिस प्रकारकी पहाड़ीदारव होती है वैसेही करौंदी करौंदी होती है ॥
(क) अवीज अर्थात् छोडे बीजवाली जिसको किसिमिस कहते हैं ॥
पर्वतजा पहाड़ी वृक्ष प्रकार लोकमें कहते हैं ॥ कर्मर्दिका करौंदी वृक्ष
प्रकार लोकमें कहते हैं ॥ अनन्तर खज्जूर भूमि खज्जूरका
स्वाद्वी दुरारोहा मृदु च्छदा ॥ स्कन्धफल काक कर्कटी स्वादु मस्तका ।
येह खज्जूरके नाम हैं ॥ २२६ ॥ और दूसरी पिण्ड खज्जूर वोह पश्चिम में
होती है ॥ मुनक्काके समान जो खज्जूर होती है वाह और दीपसे यहा आई
है ॥

जायते पश्चिमे देशे साच्छेहारेति कीर्त्तयते ॥
खज्जूरी त्रितयं शीतं मधुरं रसपाकयोः ॥ २२८ ॥
स्निग्धं रुचकरं हृद्यं क्षतक्षय हरंगुरुः ॥ तर्पण

रक्तपित्तघ्नं पुष्टिविष्टम्भशुक्रदम् ॥ २२८ ॥ कोष्ठ
 मारुतहृद्दल्यं चान्तिवातकफापहम् ॥ ज्वरति
 सारक्षत्तृषणाकासश्वासनिवारकम् ॥ २३० ॥
 मदमूर्च्छामरुत्पित्तमद्योद्भूतगदान्तकृत् ॥ म
 हतीभ्यां गुणैरल्पास्वल्पखर्जूरिकास्मृता ॥
 २३२ ॥ खर्जूरी तरुतोयन्तु मदपित्तकरं भवेत्
 ॥ वातश्लेष्महरं रुच्यं दीपनं बलशुक्रकृत् २३२

भा० और पश्चिमदेश में होती है उसको छुहारा सेसा कहते हैं ॥ तोनो
 खजूर शीतल रसपाक में मधुर होती है ॥ २२८ ॥ और चिकनी रुचिको क
 रनेवाली हृद्य क्षत क्षय इनकी नाश करनेवाली भारी ॥ तर्पण रक्त पित्तकी
 नाशक पुष्टिविष्टम्भशुक्र इनकी करनेवाली ॥ २२९ ॥ कुछ वात की नाश
 क बलको देनेवाली वमन वात कफ इनकी नाशक ॥ ज्वर अनिसार क्षुधा
 तृषणा कास श्वास इनकी दूर करनेवाली ॥ २३० ॥ मल मूर्च्छा वात पित्त
 और मद्य के सेवन से उत्पन्न ज्वरे रोगोंको नाश करनेवाली है ॥ वडीर खजु
 रेंसे छोटी खजूर गुणमें न्यून कही गई है ॥ खजूर के दूधका जल मदपि
 त्त इनकी करनेवाला है ॥ और वातकफ नाशक रुचिको देनेवाला दीप
 न बल शुक्रको करनेवाला है ॥ २३२ ॥

[अथ पिराड खर्जूरी भेदः सुलेमानां ।] सुलेमा

नीनु मृदुला दलहीन फलाच सा ॥ सुलेमानीश्च
 मभ्रान्ति दाहमूर्च्छास्य पित्तहृत् ॥ २३३ ॥

[अथ बादाम ।] वातादो वातवैरी स्यात्त्रैतोपम
 फलस्तया ॥ वाताद उष्णः सुस्निग्धो वातघ्नः
 शुक्रकृद् गुरुः ॥ २३४ ॥ वाताद मज्जा मधुरो

दृष्यः पित्ता निलापहः ॥ स्निग्धोष्णः कफकृ-
नैद्यो रक्तपित्तविकारिणाम् ॥ २३५ ॥

भा० अनन्तर पिंड खजूरका भेद सुलैमानी है ॥ सुलैमानी मृदुला द
लहीन फला । यह सुलैमानी खजूर के नाम हैं ॥ सुलैमानी खजूर अम
आनि दाह रक्त पित्त इनको नाश करनेवाला है ॥ २३३ ॥

अनन्तर वादाम ॥ वाताद वातवैरी त्रैपफल ॥ यह वादामके नाम हैं
॥ वादाम उष्ण स्निग्ध वात नाशक शुक्र करनेवाला भारी होता है ॥ २३४
॥ वादामकी गिरीमधुर शुक्रको करनेवाली पित्त वातकी नाशक ॥ स्नि
ग्ध उष्ण कफ करनेवाली होती है ॥ और रक्त पित्तके रोगवालोंकी हिन
नहिं होती ॥ २३५ ॥

[अथ सेव ।]

मुष्टिप्रमाणां वदरं सेवं सिवितिका फलम् ॥ से

वं समीर पित्तघ्नं वृहणं कफकृद् गुरु ॥ २३६ ॥

रसे पाके च मधुरं शिशिरं रुचि शुक्रकृत ॥

[अथामृतफलम् ।] यत् वदकसान् काविलप्रमृति
षु देशेषु नासयातीनि प्रसिद्धः ॥

अमृत फलं लघु वृष्यं सुखादुत्तीर्णं हरेत् दोषान्

देशेषु मुद्गलानां बहुलान्तल्लभ्यते लोकैः ॥

भा० अनन्तर सेव । मुष्टिप्रमाणा वदर सेव सिवितिका फल । यह सेवके
नाम हैं ॥ सेव वात पित्तका नाशक पुष्ट कफको करनेवाला भारी होता है
॥ २३६ ॥ और रसपाक में मधुर शीतल रुचि और शुक्रको करनेवाला ।

॥ अनन्तर अमृतफल यह काविल-आदि देशोंमें नासपाती इस
नामसे प्रसिद्ध है ॥ अमृतफल हलकी शुक्रको उत्पन्न करने वाला म
धुर होता है और तीनों दीपोंकी नाश करता है ॥ मुगलोंके देशोंमें
यह विशेष करके मिलता है ॥

[अथ पीलु ।] पीलुगुलफलः संस्री तथा शीत

फलोऽपि च ॥ पीलुः श्लेष्म समीरघ्नं पित्तलं मे-
दि गुल्मनुत् ॥ २३७ ॥ स्वादु तिक्तञ्च यत् पीलु
तन्नात्युष्णान्त्रिदोषहत् ॥

[अथ अखरोट पीलुः ।] पीलुः शैल भवो क्षोटः
कर्परालश्च कीर्तितः ॥ अक्षोट कोऽपि वाताम
सहशः कफपित्तहत् ॥ २३८ ॥

भा० अनन्तर पीलू । गुल्फफल अंसी तथा शीतफल । यह पीलूके
नाम है ॥ पीलू कफ वातको नाशक पित्तको करनेवाला भेदन करनेवा
ला वायुगोलाका नाशक होता है ॥ २३७ ॥ और जो पीलू मधुर तिक्त हो
ना है । वोह बड़न गरम नहीं होता और त्रिदोषको नाश करना है ॥

[अनन्तर अखरोट । पीलू शैल भव क्षोट कर्पराल यह अखरोट
के नाम कहें हैं ॥ अखरोट भी खादामके समान गुण में होता है और
कफ पित्तको करनेवाला है ॥ २३८ ॥

अथ विजौरा ।] बीजपूरो मानुलुङ्गो रुचकः
फल पूरकः ॥ बीजपूर फलं स्वादु स्तैस्त्र्यं दीप-
नं लघु ॥ २३९ ॥ रक्तपित्तहरं करणजिह्वा हृदय
शोधनम् ॥ श्वासकासारुचिहरं हृद्यं तृषणा
हरं स्थितम् ॥ २४० ॥

भा० अनन्तर विजौरा । बीजपूर मानुलुङ्ग रुचक फलपूरक यह वि
जौरे के नाम है । विजौरे का फल रसमें मधुर और अस्त्र होता है ॥ दी
पनहलका होता है ॥ २३९ ॥ रक्तपित्तका नाशक होता है करण जिह्वा
हृदय इनका शोधन । तथा श्वासकास अरुचि इनका नाशक हृद्य
और तृषाका नाशक कहा गया है ॥ २४० ॥

[अथ विजौर भेद मधुकाकडि ।] बीजपूरोऽपरः

प्रोक्तौ मधुरो मधुकर्कटी ॥ मधुकर्कटिका स्वा-
द्वी रोचनी शीतला गुरुः ॥ २४१ ॥ रक्तपित्तक्षय
श्वास कास हिक्का भ्रमापहा ॥

[अथ जम्बीरी द्वयम् ।] स्याज्जम्बीरी दन्त शठो
जम्भजम्भीरजम्भलाः ॥ जम्बीर मुष्णगुर्व-
स्त्रं वात श्लेष्म विबन्धनुत् ॥ २४२ ॥ शूलका-
सकफोत् क्लेश छर्दि तृष्णा मदोषजित ॥ आ-
स्य वैरस्य हृत्पीडा वह्नि मान्द्य कृमीनहरेत् ॥
२४३ ॥ स्वल्पजम्बीरिका तद्वत् तृष्णा छर्दि नि-
वारणी ॥

क्रिस्मके

भा० अनन्तर विजौरे को मेद मधुककड़ी ॥] और बिजौरे को मधुकक-
ड़ी कहने हैं ॥ मधुककड़ी मधुरुचिकी करनेवाली शीतल भारी ॥ २४१ ॥
रक्तपित्तक्षयश्वासकास हिक्काकी भ्रम इनकी नाशक होती है ॥
अनन्तर दोनों क्रिस्मके जम्बीरी नीचू ॥ जम्बीर दन्तशठ जम्भ जम्भीर जम्भ-
ला । यह जम्बीरी नीचू के नाम हैं ॥ जम्बीर उष्ण भारी खटा वात कफ वि-
बन्ध इनका नाशक ॥ २४२ ॥ और शूलकासकफ मतलीवमन तृष्णा और
आमदोष इनको जीतनेवाला है ॥ और मुखकी विरसना हृदय पीडा
अनिमान्द्य कृमि इनको नाश करता है ॥ २४३ ॥

[नीम्बु ।]

निम्बूस्त्री निम्बुकं क्लीवे निम्बूकमपि कीर्तित-
म् ॥ निम्बूकमस्त्रं वातघ्नं दीपनं पाचनं लघु ॥

॥ २४४ ॥ [अन्यच्च ।] निम्बूकङ्गुमि समो

ह नाशनन्तीत्सा भस्म सुदर ग्रहापहम् । वात
पित्तकफ शूलिने हितं कष्ट नष्टरुचि रोचनम्

परम् ॥ २४५ ॥ त्रिदोषवन्नि क्षयवातरोगनि-
पीडितानां विष विह्वलानां । मन्दानले बद्ध
गुदे प्रदेयं विसूचिकायां मुनयो वदन्ति ॥ २४६
[अथ मिष्टनिम्बू ।] मिष्टनिम्बू फलं स्वादु गुरु
मारुतपित्तवृत् ॥ गररोगविषध्वंसिकफोत्क्रे
शिच रक्तहृत् ॥ २४७ ॥ शोषारुचितृषा छर्दि
हरं बल्यञ्च वृंहणम् ॥ [अथ कर्मरङ्ग ।
कर्मरङ्गं हिमं ग्राहि स्वाद्मूलं कफवातहृत् ॥

भा० छोटी जंभीरा उसीके समान गुणमें होती है और तृषा वमनको
नाश करनेवाली है ॥ [अनन्तर नींबू । नींबू ये स्त्रिलिंगमें और न
पुंसकलिङ्गमें निंबुक और नींबुक भी कहा गया है ॥ नींबू खटावात
नाशक दीपन पाचन हलका होता है ॥ २४४ ॥ नींबू कृमिमोह दून-
कानाशक तीखा खटा होता है । और तने डूबे पेटको नाशकरता है ।
और वात पित्त कफ इनके मूलमें हित तथा कष्टसाध्य और नष्टसे
अरुचि रोगमें अत्यन्त रुचिको करनेवाला है ॥ २४५ ॥ त्रिदोष अग्निह
यवातरोग इनसे पीडित और विषसे विह्वल इनको । और मन्दान्नि में
बद्धगुद में तथा विसूचिका में देना चाहिये ऐसा मुनियों ने कहा है ॥
॥ २४६ ॥ [अनन्तर मीठानींबू ।] मधुर भारी वात पित्तकानाशक है ।
और गररोग विष इनका नाशक को उरदे देनेवाला रक्तकानाशक ॥ २४७
॥ शोष अरुचि तृषा वमन इनका नाशक बलकाहित और पुष्ट होता है ।
॥ अनन्तर कमरख ॥ कर्मरंग येह कमरखकानाम है ॥ कमरख उी
तलकाविज मधुर खटा कफ वातका नाशक होता है ॥

अथ अम्बिली ॥ अम्बिका बुक्रिका म्लीच
बुक्रा दन्त शठायिच । अम्ला च विच काचि

ञ्चातिन्तिडी काचतिन्तिडी ॥२४८॥ अश्लिका-
श्ला गुरुर्वात हरी पित्त कफास्रकृत ॥ पक्वातुदी
पनी रूक्षा सरीषा कफ वातनुत् ॥२४९॥

अथाश्लवेतसः ।] स्वादश्लवेतसश्चुक्रं शतवेधि
सहस्रनुत् ॥ अश्लवेत समत्यश्लं भेदनं लघु दीप
नम् ॥ २५० ॥ हृद्योयं शूलगुल्मघ्नं पित्तलं लोमह-
र्षनम् ॥ रूक्षं विण्मूत्रदोषघ्नं शोही दावर्तनाश-
नम् ॥ २५१ ॥ हिक्कानाहारुचि श्वासकासाजीर्ण-
वधिप्रणुत् ॥ कफवातामथध्वंसि छागसांस
द्रवत्वकृत ॥ २५२ ॥ चरणकाम्बु गुरां ज्ञेयं लोह
सूची द्रवत्वकृत ॥

श्री० अनन्तर इमली ॥ अश्लिका बुकिका अश्ली चुका वन्तघाटा ॥
अश्ला विचिका चिंचा तिन्तिडी काचतिन्तिडी येह इमली के नाम हैं ॥२४८
इमली खड़ी भारी वातकी नाशक पित्त कफ रक्त को करनेवाली है ॥
और पकी हुई दीपन रूखी सर उष्ण कफ वातकी नाशक होती है ॥२४९
अनन्तर अश्लवेत ॥ अश्लवेतस चुक्र शतवेधि सहस्रनुत् येह अमलवेत
के नाम हैं ॥ अमलवेत बहुत खड़ा भेदन हलका दीपन होता है ॥ २५० ॥
और हृद्य रोग शूल वायगोला इनका नाशक पित्तको करनेवाला और
रोमांच के करनेवाला ॥ रूखा मल मूत्र दोषका नाशक । और पिलही
उदावर्तनका भी नाशक है ॥ २५१ ॥ और हिचकी अफारा अरुचि प्रवा-
सकास अजीर्ण वमन इनका नाशक ॥ तथा कफ वात के रोगोंकी नाश
करनेवाला और चकरी के भासकी गलानेवाला है ॥ २५२ ॥ चरणकाम्बु
के ममान गुणमें है । और लोहेकी सुई को गलानेवाला है ॥

अथ विषाखिल ।] वृक्षाश्लान्तिन्तिडीकञ्च

चुक्रं स्यादस्त्रं चक्षुकम् ॥ चक्षुःस्त्रं सामं मन्त्रोष्णं
 वातघ्नं कफपित्तलम् ॥ २५३ ॥ पञ्चान्तु गुरु संघा-
 हि कटुकन्तुवरं लघु ॥ अस्त्रोष्णं रोचनं हृत्प्रदी-
 पनं कफवातकृत् ॥ २५४ ॥ तृष्णाप्रो ग्रहणी गु-
 ल्म शूल हृद्दोग जन्तुजित् ॥
 अथ चतुरस्रं पञ्चास्त्रयोर्लक्षणम् ॥ अस्त्रवे-
 तसश्चास्त्रं चहज्जम्बीरं निम्बुकैः ॥ चतुरस्रं
 हि पञ्चान्तं बीजं पूरयुते भवेत् ॥ २५५ ॥

भा० अनन्तर चक्षुःस्त्रं । चक्षुःस्त्रं त्रिंतिङ्गीक चुक्र अस्त्रचक्र ॥ ये वि-
 पाम्बिलके नाम हैं ॥ विषयिद्वल कच्ची खही उष्ण वातनाशक कफ
 पित्त को करनेवाली होती है ॥ २५३ ॥ और पकी हुई भारी काविज क
 डूवी और कसैली हलकी ॥ खही गरम अरुचिको करनेवाली स्वर्वादी
 पन कफ वात को करनेवाली ॥ २५४ ॥ और तृष्णाववासीर संग्रहणी
 वायुगोला शूल हृद्दोग कृमि इनको जीतनेवाली है ॥

अनन्तर चतुरस्र और पञ्चास्त्र इन दोनों का लक्षण कहते हैं ॥ अस्त्र-
 वेत चक्षुःस्त्र और बड़ा जम्बीर नींबू । इनसे चतुरस्र होता है और विजो-
 रे के मिलाने से पञ्चास्त्र होता है ॥ २५५ ॥

अथ परिभाषा । फलेषु परिपक्वं द्रुणवत्त
 दुदाहतम् ॥ विल्यादन्यत्र विज्ञेय सामं तद्दिगुण
 धिकम् ॥ २५६ ॥ फलेषु सरसं यत्स्याद्गुणवत्तदुदा-
 हतम् ॥ द्राक्षा विल्वशिवादीनां फलं शुष्कं गुणा
 धिकम् ॥ २५७ ॥ फलवत्यगुणं सर्वं मज्जान
 अपि निर्दिशेत् ॥ फलं हिमाग्निदुर्वातव्या
 लकीटादिदूषितम् ॥ २५८ ॥ अकालजङ्गुः मू

भोजभ्याकातीतं न भक्षयेत् ॥

पाकप्रतीतं पाकमति क्रम्य स्थितम् ॥

इतिश्री भावप्रकाशे फलवर्गः ॥ ❀ ॥

भा० अनन्तर परिभाषा । फलोंमें जो पका हुआ है वोह गुणवाला क
हा गया है ॥ वेलके सिवा जानना चाहिये कच्चा वेल गुरामें अधिक
होना है ॥ २५६ ॥ फलोंमें रसके सहित जो होता है वोह गुरामें अधिक
कहा है ॥ परन्तु दाखबेल आंवले इनके फल सूके हुवे गुरामें अधिक
होते हैं ॥ २५७ ॥ सबके मज्जाओंका गुण फलके समान होता है ॥ हिम
अग्नि दुष्टवात सर्प कीट आदिसे दूधित ॥ २५८ ॥ और वे जंतुका फल
कुत्सिन भूमिका वे पका हुआ ऐसे फलको भक्षण न करे ॥
इति भावप्रकाशे फलवर्गः ॥ ❀ ॥

अथ धातूपधातु रसोपरस रत्नोपरत्न विषोप
विष वर्गः ॥ [तत्र धातूनां लक्षणानि गु-

णाश्च ॥] स्वर्गं रूप्यञ्च ताम्रञ्च रङ्गं यस
दमेव च ॥ सीसं लौहञ्च सप्तैते धातवो गिरि
सम्भवाः ॥ १ ॥ ब्ली पलित खालित्य का-
श्या बल्यजरा मयान् ॥ निवार्य्य देहं दधति
नृणां तद्घातवो मताः ॥ २ ॥

भा० अनन्तर धातु उपधातु रस उपरस रत्न उपरत्न और विष उपविष
इनका वर्ग ॥ ॥ उसमें धातुओंका लक्षण और गुण कहते हैं ॥
सौना रूपा ताम्बा रंग जस्त ॥ शीसा लोहा येह सान पहाड़ से उत्पन्न
होनेवाली धातु हैं ॥ १ ॥ फुरियां बालोंकी सुफेदी गंजापन कृशता और
दुर्बलता बुढ़ापा । इन रोगोंको दूर करके जो मनुष्योंके शरीरको
धारण करते हैं वोह धातु कहे गये हैं ॥ २ ॥

[तत्रादी सुवर्गस्योत्पत्ति नाम लक्षण गुणाश्च ।

पुरानिजाश्रमस्थानां सप्तर्षीणां जिलात्मनाम् ॥
 पत्नीर्विलोचयलावण्य लक्ष्मीसम्पन्न यौवनाः ॥
 ॥३॥ कन्दर्प्यदर्पविध्वस्तचेतसो जातवेदसः ॥
 पतितं यद्दराष्ट्रे रेतस्तद्धेमता मगात् ॥४॥
 वशिष्टश्चेति सप्तैते कीर्तिताः परमर्षयः ॥ म-
 रीचिरङ्गिरा अत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥५॥
 कृत्विमञ्चापि भवति तद्रसेन्द्रस्य वेधतः ॥ स्व-
 र्गासुवर्गा कनकं हिरण्यं हेमहाटकम् ॥६॥ त-
 पनीयञ्च गाङ्गेय कलधौतञ्च काञ्चनम् ॥ चा-
 म्पीकरं शातकुम्भं तथा कार्त्तस्वरञ्च तत् ॥७॥
 जाम्बूनदं जातरूपं महारजत इत्यपि ॥ दाहं
 रक्तं सितं च्छेदे निर्षेकं कुङ्कुम प्रभम् ॥ ८ ॥

भा० इनमें पहले सुवर्णकी उल्यति नाम लक्षण और गुण कहते हैं ॥ य-
 हले निज आश्रम में रहनेवाले जितेन्द्रिय सप्त ऋषियोंकी लावण्य लक्ष्मी
 इन कारके युक्त यौवनवाली स्त्रियोंको देखकर ॥३॥ कंदर्पके दर्पसे ह-
 स्त होगयाहै चित्त जिस्का ऐसे अग्निका जो पृथ्विपर शुक गिरा बोह सौ
 ना होगया ॥४॥ मरीची अंगिरा अत्री पुलस्त्य पुलः हत ॥ वशिष्ट, येह
 सातमहर्षि कहे गयेहैं ॥५॥ कृत्वि भी सुवर्णदोनाहै बोह पारेके भेदसे
 ॥ स्वर्गासुवर्गा कनक हिरण्य हेम हाटक तपनीय गांगेय कलधौत कां-
 चन ॥ चाम्पीकर शातकुम्भ तथा कार्त्तस्वर ॥७॥ जाम्बूनद जातरूप म-
 हारजत, येह सुवर्णके नामहैं ॥ दाह में लाल काटनेमें सुफेद और कसौ
 वीमें केसरके समान होताहै ॥ ८ ॥

तारं शुल्वाजितं स्निग्धं कोमलं गुरुहेमसत् ॥

(सत्तमम् ।) तच्छेतं कठिनं रूतं विवर्णं समलं

दलम् ॥ दाहे छेदं सितं श्वेतं कथेत्याज्यं लघुस्फु-
टम् ॥ ८ ॥ दलज्जोर इति लोके । स्फुटं यद्वना-
हतं स्फुटति । सुवर्णी शीतलं वृष्यं बल्यं गुरु
रसायनम् ॥ स्वादु तिक्तञ्च तुवरं पाके च स्वादु
पिच्छिलम् ॥ १० ॥ पवित्रं वृंहणं नेत्र्यं मेधा स्मृ-
तिमतिप्रदम् ॥ हृद्यमायुःकरं कान्तिवाक् वि-
शुद्धिस्थिरत्वकृत् ॥ ११ ॥ विषद्वयक्षयोन्मादत्रि-
दोषज्वरशोषजित् ॥ बलं सर्वार्थ्यं हरते नराणां
रोगज्जान् शोषयतीह काये ॥ असौख्यकर्त्ता च
सदा सुवर्णमशुद्धमेतन्मरणाञ्च कुर्यात् ॥ १२ ॥
असम्यक्सारितं स्वर्णं बलं वीर्यञ्च नाशयेत् ॥
करोति रोगान्मृत्युञ्च तद्वन्था द्यत्नतस्ततः ॥ १३ ॥

भा० और चाँदी ताम्बेको जीतने वाला । चिकना कोमल भारी रसायन सुव-
र्ण बज्रत अच्छा है ॥ और जो करिण रूखा विवर्ण समदल दलवाला
दाहमें और काटनेमें श्वेत हलका अलग होनेवाला बोह छेत है । बोह
त्यागने योग्य है ॥ ८ ॥ दलजोर वृषप्रकार लोकमें कहने है ॥ सोना शीत
ल शुक्रको उत्पन्न करनेवाला बलकारी भारी रसायन ॥ मधुर तिक्तकसी
ला और पाकमें भी मधुर पिच्छिल ॥ १० ॥ पवित्र पुष्ट करनेवाला नेत्रके
हित मेधा स्मृति शुद्धि इनको देनेवाला हृद्य आयुको करनेवाला कान्ति
वाणिकी शुद्धि स्थिर इनको करनेवाला ॥ ११ ॥ संसर्ग विषको नाश कर
नेवाला उन्माद त्रिदोषज्वर शोष इनको जीतनेवाला है ॥

अशुद्ध स्वर्ण मनुष्यों का बल वीर्यके सहित हरता है । और बज्रतसे रोगों
को करता है और कायाको सुकाता है ॥ नथा क्लेशको करनेवाला होता है
॥ नथा मरणको भी करता है ॥ १२ ॥ अच्छी तरह नफूकाइवा सोना बल वी-
र्यको नाश करता है ॥ और रोगोंको नथा मृत्युको भी करता है इसवास्ते यत्न

सेतुकं ॥१३॥

[अथ रूप्यस्योत्पत्तिनाम लक्षणगुणाश्च ।
 त्रिपुरस्य बधार्थीय निर्द्धिमिषैर्विलोचनैः ॥ नि-
 रीक्षया मास शिवः क्रोधेन परिपूरितः ॥ १४ ॥ अ-
 ग्निस्तत्कालमपतत्तस्यैकस्माद्विलोचनात् ॥
 ततोरुद्रः समभवद्वैश्वानर इवज्वलन् ॥ १५ ॥
 द्वितीयादपतत्तेत्वादश्रुविन्दुस्तु वामकात् ॥ त-
 स्माद्रजतमुत्पन्नमुक्तकर्मसु योजयेत् ॥ १६ ॥
 कृत्रिमञ्च भवेतद्विवद्गादिरसयोगतः ॥ रूप्य-
 लु रजतं तारञ्चन्द्रकान्ति सितप्रभम् ॥ १७ ॥ गु-
 रुस्निग्धं मृदु श्वेतं दाहे छेदे घनक्षमम् ॥ वर्णा-
 ढ्यं चन्द्रवत्स्वच्छं रूप्यं नवगुणं शुभम् ॥ १८ ॥
 कठिनं कृत्रिमं रक्तं पीतदलं लघु ॥ दाहच्छे-
 दघनेर्नष्टं रूप्यं दुष्टं प्रकीर्तितम् ॥ १९ ॥

भा० अनन्तर चाँदीकी उत्पत्ति नाम और लक्षण गुणा ॥ त्रिपुरासुरके
 मारनेके अर्थ क्रोधसे भरेहुवे शिवजीने निमेष रहितनेत्रोंसेदेखा ॥१४॥
 उसीकाल उनके एकनेत्रसे अग्नि निकला ॥ अग्नि के समानजाज्वल्य
 मान उसे रुद्र हुआ ॥ १५ ॥ इसरी वाँई आँखसेजो आँसूगिरी ॥ उसे चाँ-
 दीउत्पन्न हुई उसको कहेहुवे काममें योजनाकरे ॥ १६ ॥ और बौहरांगा
 और पारा आदिकी योजनासे कृत्रिमभी होती है ॥ रूप्य रजत तार च-
 न्द्रकान्ति सितप्रभ ॥ १७ ॥ येह चाँदीके नामहैं । चाँदी भारी चिकनी गुना
 यम दाहमें और काटने में खेत और चोट सहनेवाली ॥ और चाँदके स-
 मान श्वेत स्वच्छ येह चाँदीके तो गुण शुभहैं ॥ १८ ॥ और कृत्रिम कठि-
 न रक्तवी लाल पीले परदों सेयुक्त हलकी दाहमें काटने में और चोटमें नष्ट

होनेवाली इस प्रकार की चांदी खराब होती है ॥ १९ ॥

रूप्यं शीतं कषायास्त्रं स्वादु पाकरसम् सरम् ॥

वयसः स्थापनं स्निग्धं लेखनं वात पित्तजित् ॥

॥ २० ॥ प्रमेहादिक रोगांश्च नाशयत्य चिराद्

ध्रुवम् ॥ ॥ तारं शरीरस्य करोति तापं बद्धं घ-

नं यच्छति शुक्रं नाशम् ॥ वीर्यं बलं हन्ति त-

नीश्च युष्टिं महागदान् शोषयति ह्य शुद्धम् ॥ २१ ॥

भा० चांदी शीतल कसैली खही और रस पाक में मधुर सर ॥ वयसो स्थापन करने वाली चिकनी लेखन वात पित्तको जीतने वाली है ॥ २० ॥ और प्रमेह आदि रोगोंको निश्चय नाश करती है ॥ विन सोधि चांदी शरीर में जलन करती है ॥ और बन्धे हुए तथा गाढ़े शुक्रको नाश करती है ॥ और वीर्य बल तथा शरीरकी युष्टिको नाश करती है और बड़े रोगोंको सुकाती है ॥ २१ ॥

अथ ताम्रस्य उत्पत्तिर्नाम लक्षणा गु-

णाश्च ॥ शुक्रं यत् कार्तिकेयस्य पतितं धरणी

तले ॥ तस्मात्ताम्रं ससुत्पन्नमिदमाहुः पुरा वि-

दः ॥ २२ ॥ ताम्रं मौन्दुवरं सुत्व मुन्दुवर मपि

सुवृतम् ॥ रविप्रियं स्नेच्छमुखं सूर्यपथ्याय

नामकम् ॥ २३ ॥ जया कुसुमसङ्काशां स्निग्धं

मृदु घनक्षमम् ॥ लोहनागोज्झितं ताम्रं मार-

णाय प्रशस्यते ॥ २४ ॥ क्षणां रुद्धमति स्तब्धं

श्वेतञ्चापि घनासहम् ॥ लोहनागयुतञ्चेति

शुल्बं दुष्टं प्रकीर्तितम् ॥ २५ ॥ ताम्रं कषायं म-
 र्धुञ्च तिक्तं मल्लञ्च पाके कटुसारकञ्च ॥ पि-
 तापहं श्लेष्महरञ्च शीतं तद्रौपणी स्यान्नघुले
 खनञ्च ॥ २६ ॥ पाण्डु दराशी ज्वरकुष्ठ कास
 प्रवास क्षयान् पीनसमल्ल पित्तम् ॥ शोथं कृ-
 मिं शूलमपाकरोति प्राहः परं वृंहणमल्पमेत-
 त् ॥ २७ ॥ रण्को दोषो विषेताश्चे त्वसम्यग्मारि-
 नेऽष्टते ॥ दाहः स्वेदो रुचिर्मूर्च्छा क्लेशो रेको वमि-
 श्रमः ॥ २८ ॥ (रेकः विरेकः)

भाव-अनन्तर ताम्बेकी उत्पत्ति नाम लक्षणा और गुणाकी कहने हैं ॥
 कार्तिके पकाजो युक्त पृथ्वीपर गिरा ॥ उसेस ताम्बा उत्पन्नहुवा ऐसा परिह-
 ले लोग कहते हैं ॥ २२ ॥ ताम्र औदुम्बर शुल्ब उदुंबर । रोवेप्रिय म्लेच्छ
 मुख और सूर्यके पर्ययनाम यह ताम्बेके नाम हैं ॥ २३ ॥ जवाफूल के स-
 दृश वर्ण चिकना मुलायम चोटको सहनेवाला ॥ लोह शीशा इनसेरहित
 ताम्बा कूकनेकेवासे अच्छा होता है ॥ २४ ॥ काला रूखाअग्नि स्वेन
 और चोटको नसहनेवाला ॥ लोह शीशेसे युक्त ऐसा ताम्बा खर्वब कहा है
 ॥ २५ ॥ ताम्बा कसैला मधुर तिक्त श्लेष्म पाकमें कटु और सारक ॥ तथापि
 कानापाक रुफनापाक शीतल होता है और रौपण और हलकालेखन भी हो-
 ता है ॥ २६ ॥ और पाण्डु रोग उदररोग ज्वरकुष्ठ कास प्रवास क्षय पीनस अल्ल
 पित्त ॥ शोथ कृमि शूल इनको नाश करता है और आचार्य्य उक्तो अल्पवृ-
 हणा भी कहते हैं ॥ २७ ॥ विषमें रण्को दोष और अच्छी तरह नफके इविमें शू-
 ट दोष होते हैं ॥ दाह स्वेद अरुचि मूर्च्छा क्लेश वमन विरेचन भ्रम । यह आठ
 दोष हैं ॥ २८ ॥

वैहः

[अथ रङ्गस्य नाम लक्षणा गुणाः ।

रक्तं वङ्गं त्रपु प्रोक्तं तथा पिचट मित्यपि ॥ खुर
 कं मिश्रकञ्चापि द्विविधं वङ्गं मुच्यते ॥ २९ ॥

उत्तमं खुरकं तत्र मिश्रकं त्ववरं मतम् ॥ रङ्गं ल-
घुसरं रूक्षं मुषां मेह कफ कृमीन् ॥ ३० ॥ निह-
न्ति पाराङ्गं सश्वासं चक्षुष्यं पित्तलं मनाक ॥
सिंहो यथा हस्ति गणं निहन्ति तथैव वज्रोऽखि-
लमेह वर्गम् ॥ देहस्य सौख्यं प्रचलेन्द्रियत्वं न
रस्य पुष्टिं विदधाति नूनम् ॥ ३१ ॥

भा० अगन्तर रंगके नाम और लक्षण और गुण कहते हैं ॥ लाल रंगको त्र
पु तथा पिच्छरभी कहते हैं ॥ खुरक और मिश्रक ऐसे दो प्रकारका रंग हो
ता है ॥ ३० ॥ उत्तमं उत्तमं खुरक और मिश्रक खणव होता है ॥ रंग
हलका सर रूखा गरम होता है और प्रमेह कफ कृमि इनको ॥ ३० ॥
नाश करता है और पांडुरोग श्वास इनको भी नाश करता है ॥ नथानेव
के हित और अल्पपित्त करनेवाला होता है ॥ जैसे सिंह गज गणों को नाश क
रता है वैसे रंग सम्पूर्ण प्रमेह वर्गको नाश करता है ॥ और देहका सौख्य
इन्द्रियकी प्रचलता और पुष्टिको भी निश्चय करता है ॥ ३१ ॥

[अथ यसद । यसदं रङ्गसदृशं रीति हेतुश्च त-
न्मतम् ॥ यसदं त्ववरं तिक्तं शीतलं कफपित्तह-
न्त ॥ ३२ ॥ चक्षुष्यं परमं मेहात् पाराङ्गं प्रवासञ्च
नाशयेत् ॥ [अथ सीसस्योत्पत्तिर्नाम गुणाश्च ।
दृष्ट्वा भोगिसुतांस्यां वासुकिस्तु मुमोचयत् ॥ वी-
र्यं जातस्ततो नागः सर्वरोगापहो नृणाम् ॥ ३३ ॥
सीसं ब्रधञ्च वप्रञ्च योगेष्टं नागनामकम् ॥
[नागनामकम् । नागः मुजङ्गः इत्यादि ।]

सीसं रङ्गगुणं ज्ञेयं विशेषान् मेह नाशनम् ॥ ३४ ॥
 नागस्तु नाग शततुल्य बलं ददाति व्याधिं विना-
 शयति जीवनमाननोति । वह्निं प्रदीपयति का-
 मवलं करोति मृत्युञ्ज्य नाशयति सन्ततसेवितः
 सः ॥ ३५ ॥ पाकेन हीनो किल बद्धनागो कुष्ठा-
 नि गुल्मांश्च तथाति कष्टान् ॥ कराडुं प्रमेहानल-
 सादपोथ भगन्दरादीन् कुरुतः प्रभुक्तौ ॥ ३६ ॥

भा० अन्तरजस्त । यस्य रंगसंदेश रीति हेतु प्रथान् पीतलका कार-
 णात्केो कहाहे ॥ जस्तकसेला तिल शीतल कफपित्तका नाशक ॥
 ॥ ३२ ॥ परमनेत्रका हित प्रमेह पाण्डुरोग इवास इनको भीनाशकरनाहे
 अन्तर एषिकी उत्पत्ति नाम और गुण कहतेहे ॥ बसुकी ते सुंदर
 नागकन्याओं की देखकर वीर्यको छोड़ अस्ति मनुष्यों के सब रोगों का
 नाशक शीघ्र उत्पन्नहूरा ॥ ३३ ॥ पीस हृद्य वप्र योगेष्ठ नाग नामक
 अर्थात् सांपके नामवाला येह शसिके नामहैं ॥ पीसा गुणमें रंगके स-
 मान होनाहे ॥ और विशेषकरके प्रमेह कानाशकहे ॥ ३४ ॥ पीसा सी-
 हाथीके समान बलको देताहे और रोगोंके नाशकरनाहे तथा जीवनको दे-
 ताहे और अग्निको दीपन करता तथा काम बलको देताहे ॥ निरन्तर सेव-
 नकरनेसे वोह मृत्युको नाश करनाहे ॥ ३५ ॥ अच्छी तरह नफके हवे
 नाग और खंजी के खानेसे वोह कृष्टवायुगोला तथा अतिकष्ट खुजली
 ॥ प्रमेह अग्निमान्य वृजन भगन्दर आदियों को करतेहे ॥ ३६ ॥

[अथ लोहस्योत्पत्तिर्नाम लक्षणं गुणश्च ।]

पुरा लोमिनदैत्यानां निहतानां सुरैर्युधि ॥ उत्प-
 न्नानि शरीरेभ्यो लोहानि विविधानि च ॥ ३७ ॥
 लोहोऽत्त्रीषास्त्रकं तीक्ष्णं पिशुनं कालाद्यसा-
 यसी ॥ गुरुता दृढनोतक्रेद्दः कष्टमलं दाहकारि

ता ॥ ३७ ॥ अश्वमेदोषः सुदुर्गन्धो दीपाः सप्ताय-
 सस्य तु ॥ लोहं तिक्तं सरं शीतं मधुरं तुवरं गुरु ॥
 ॥ ३८ ॥ रूक्षं वयस्यं चक्षुष्यं लेखनं वातलं जघेत् ॥
 कफं पित्तं गरं शूलं शोथार्शं स्नीहं पाण्डुताः ॥ ४० ॥
 मेदो मेहं कृमीन् कुष्ठं तत किट्टं तद्दृशेव हि ॥
 पाण्डुत्वं कुष्ठामयं मृत्युदं भवेत् हृद्भोगशूलौ कुरु-
 तेऽश्वरीञ्च ॥ नाना रुजानाञ्च तथा प्रकीर्णं
 करोति हृत्प्रासमशुद्धं लोहम् ॥ ४१ ॥ जीवहारी म-
 दकारी चायसं देहं शुद्धिं मदं संस्कृतं ध्रुवम् ॥
 पाटवं न तनुते शरीरके दारुणां हृदि रुजाञ्च य-
 च्छति ॥ ४२ ॥ कूष्माण्डं तिलतैलञ्च माषान्नं
 राजिकां तथा ॥ मद्यं मसू रसञ्चापि त्यजेन्नो-
 हस्यं सेवकः ॥ ४३ ॥

भा० अतन्तर लोहकी उत्पत्तिनाम लक्षण और गुण कहते हैं ॥ देवता
 ओंकी लड़ाईमें मारि डूबे लोभिन देवोंके ॥ शरीरोंमें से नाना प्रकार
 के लोह उत्पन्न हवे ॥ ३७ ॥ लोह शस्त्रक तीक्ष्ण पिण्डकाल आपस ।
 यह लोहके नाम है ॥ भारीपन हृत्ता मत्लीकरना कस दाह करना ॥
 ॥ ३८ ॥ अश्वमेदोष मृदु दुर्गन्धता यह सान दोष लोहे के है ॥ लोह ति-
 क्त सर शीतल मधुर कसेला भारी ॥ ३९ ॥ रूखा रसायन नेत्रके हित ।
 लेखन और वातल है ॥ और कफ पित्त विष शूल सूजन बुवासीर पिल
 ही पाण्डुरोग ॥ ४० ॥ मेद प्रमेह कृमि कुष्ठ इनको जीतता है । और उस्का
 की रभी उसीके समान होना है ॥

अशुद्ध लोहा पाण्डुत्व कुष्ठ रोग और मृत्यु इनको करनेवाला है और हृद
 रोग मल अश्वरी इनको भी करता है । तथा अनेक प्रकारकी पीड़ाओंका

प्रकोप और हल्लास इनको भी करता है ॥ ४१ ॥ दिन शुधानोहाजीवन का नाशक मर करनेवाला और वमन विरेचन करने वाला निश्चय है ॥ और शरीर में चैतन्यता नहीं करता तथा हृदय में दाहण पीड़ा भी करता है ॥ ४२ ॥ पेट तिल तेल उड़द राई ॥ मदिरा खटाई इनको लोह का सेवन करने वाला न्याय देवे ॥ ४३ ॥

[तत्र सारलोहस्य लक्षणं गुणाश्च ॥

क्षमाभृच्छिखराकारान्यङ्गान्यक्षेन लेपयेत् ॥

लोहे स्युर्यत्र सहस्राणि तत्सारमभिधीयते ॥ ४४ ॥

लोहं साराह्वयं हन्यात् ग्रहणीमत्तिसारकम् ॥

अर्द्धं सर्वाङ्गं वातं शूलञ्च परिणामजम् ॥ ४५ ॥

छर्दिञ्च पीनसं पित्तं श्वासं कासं च्यपोहति ॥

भा० उसमें सार लोह के लक्षण और गुण कहते हैं ॥ पहाड़ वा शिखराकार अंगोंको खटाईसे लेपकरे ॥ उस लोहेमें से जो सूत्र अंश होते हैं ॥ उसको सार कहते हैं ॥ ४४ ॥ सार नामक लोह संग्रहणी अतीसार ॥ और अर्धाङ्ग तथा सर्वाङ्ग वात तथा परिणाम शूल इनको नाश करता है ॥ ४५ ॥ और वमन पीनस पित्त श्वास कास इनको भी नाश करता है ॥

[अथ कान्तलोहस्य लक्षणं गुणाश्च ।] यत्पा

त्रेन प्रसरति जले तैलविन्दुः प्रतप्ते हिङ्गुर्गन्ध

न्त्यज्यति च निजं तिक्ततां निम्बबल्कः ॥ ४६ ॥

तप्तं दुग्धं भवति शिखराकारकं नैति भूमिं कृ

ष्णाङ्गः स्यात् सजलचरणकः कान्तलोहं तदुक्त

म् ॥ ४७ ॥ गुल्मीदरार्थः शूलाममामवातं भग

न्दरम् ॥ कामला शीथ कुष्ठानि त्रयं कान्तमयो

हरेत् ॥ ४८ ॥ सीहानमस्य पित्तञ्च यद्वृद्धापि
शिरो रुजम् ॥ सर्वान्नोगान् विजयते कान्तलो-
हं न संशयः ॥ ४९ ॥ बलं वीर्यं वपुः पुष्टिं कुरु-
तेऽग्निं विवर्द्धयेत् ॥

भा० कान्त लोहका लक्षण और गुण कहते हैं ॥ जिस जलके भरे शा-
त्र में नेलकी बून्द नहीं फैलती और तपाने में हींग सी गन्ध निकलती है
॥ तथा नीमकी छाल सा कड़वा होता है ॥ ४८ ॥ और जिसें गरम वृद्ध पित्त
खर के आकार ऊंचा होता है परन्तु जमीन पर नहीं गिरता ॥ और जलके
सहित चने काले हो जाते हैं उसको कान्तलोह कहा है ॥ ४९ ॥ कान्तलोह
वायुगोला उदररोग बवासीर मूल आम और आमवात भगंदर ॥ कामला
घृजन कुष्ठ और क्षय इनको नाश करता है ॥ ४८ ॥ और पिलही अम्लपित्त
यकृत शिरकी पीड़ा ॥ तथा सव रोग इनको कान्तलोह जीतता है इसमें कोई
संशय नहीं ॥ ४९ ॥ और बलवीर्य शरीरकी पुष्टि करता है तथा अग्निको बढ़ा-
ता है ॥

[अथ कीटी।]

ध्माय मानस्य लोहस्य मलं मण्डुरमुच्यते ॥ लो-
हसिंहानिका किटी सिंहानञ्च निगद्यते ॥ ५० ॥
यस्योहं यद्गुणं प्रोक्तं तत् किटस्यपि तद्गुणाम् ॥

भा० अनन्तर कीटी । तपाये हुवे लोहेका जो कीटी है उसको
मंडुर कहते हैं ॥ लोह सिंहानिका किटी सिंहानभी कहते हैं ॥ ५० ॥
जो लोहा जिसगुणवाला कहा गया है उसका कीट भी उसी गुणवाला है ॥

अथोपधातवः ।] तत्रोपधातूनां लक्षणं गुणञ्च ।]

सप्तोपधातवः स्वर्णमादिकं तारमादिकम् । तु
त्थंकांस्यं चरोतिश्च सिन्दूरश्च शिलाजतु ॥ ५१ ॥

[उपधातवः गौराणधानवः ।] उपधातुषु सर्वेषु तत्त
द्वातु गुणा अपि ॥ सन्ति किंतेषु तेऽत्रोना तरं

शाल्य भावतः ॥ ५२ ॥ [तत्र सुवर्णमादिकस्य
नामानि गुणाश्च । स्वर्णमादिकमारख्यातं ता-
पीजं मधुमादिकम् ॥ ताप्यं मादिकधातुश्च
मधुधातुश्च सस्मृतः ॥ ५३ ॥ किञ्चित् सुवर्णं
साहित्यात् स्वर्णमादिकमोरितम् ॥ उपधा-
तुः सुवर्णस्य किञ्चित् स्वर्णं गुणान्वितम् ॥ ५४

भा० अनन्तर उपधातुको कहते हैं ॥ उसमें उपधातुवों का लक्षण
और गुण कहते हैं ॥ सोना माखी रूपा माखी लीला थोथा कांसा
पीतल सिंदूर शिलाजीत । येह सात उपधातु हैं ॥ ५२ ॥ सब उपधातु
वों में उन २ धातुवों के गुण भी हैं ॥ तो क्या उतमें वो घट के हैं क्यों कि उन
उन के अंश अल्प होने से ॥ ५३ ॥ उनमें सोना माखी के नाम और गु-
ण कहते हैं ॥ सुवर्णमादिक तापीज मधुमादिक ॥ ताप्य मादिक
धातु मधुधातु । येह उसके नाम हैं ॥ ५३ ॥ कुछ एक सोनेके मिलेही
ने से सोना माखी कही गई है ॥ सोने की उपधातु कुछ एक सोनेके गुण
से युक्त होती है ॥ ५४ ॥

तथा च काञ्चना भवेदीयते स्वर्णमादिकम्
किन्तु तस्यानुकं पत्वात् किञ्चिद्गुणान्तरः
॥ ५५ ॥ न केवलं स्वर्णगुणाः वर्तन्ते स्वर्णमादि-
के ॥ द्रव्यान्तरस्य संसर्गात् सन्त्यन्येऽपि गुणा-
यतः ॥ ५६ ॥ सुवर्णमादिकं स्वादु तिक्तं वृष्यं
रसायनम् ॥ चक्षुष्यं वस्तिरुक्लृष्टं पाराडु मेह-
विषोदरान् ॥ ५७ ॥ अर्शः शोथं विषङ्गरडुं
त्रिदोषमपि नाशयेत् ॥

मन्दानलत्वा बलहानि सुग्रा विष्टम्भानां नेत्रं
गदान् सकुष्ठान् तथैव मालां ब्रह्मपूर्विका
ञ्च करोति तापीज मसृष्टमेतद् ॥ ५७ ॥

भा० वैसेही स्वर्णके अभावमें सोनांमारीकी दीजातीहै । क्योंकिउस्सेपीछे
कहनेसेउस्से कुछरुक गुणभंग्युनहै ॥ ५५ ॥ केवल सुवर्णकेही गुण सो
नामारीमें नहीं है । किन्तु द्रव्यान्तर के संयोगसे औरभी गुणहैं ॥ ५६ ॥
सोनामारी मधुर तिक्त गुकको उत्पन्न करनेवाली रसायन नेत्रके हितहै
। और वस्तिकी पीडा कुष्ठ पाण्डुरोग प्रमेह विष उदर रोग ॥ ५७ ॥ वबा
सीर शोथ विष कंडू त्रिदोष इनको भीनाश करती है ॥ बिना सीधी सो
नांमन्दाग्नि बलकी हानि अत्यन्त विष्टम्भ का होना नेत्ररोग कुष्ठ ॥ वैसे
ही गंडमाला इनको करती है ॥ ५८ ॥

अथ तारमालिकस्य नाम गुणाः । तारमालिकं
मन्यत्तु तद्भवे द्रज तोपमम् । किंचिद्रजत साहि
त्यात् तारमालिक मीरितम् ॥ ५६ ॥ अनुकल्प
तथातस्य ततो हीन गुणाः स्मृताः ॥ नकेवलं रू
प्य गुणाः यतः स्यात्तारमालिकम् ॥ ६० ॥ स्वादु
पाकं रसे किञ्चित् तिक्तं वृष्यं रसायनम् ॥ चक्षु
ष्यं वस्तिरुक कुष्ठ पाण्डु मेह विषोदरम् ॥ ६१ ॥
अर्शः शोथं क्षयङ्कण्डं त्रिदोषमपि नाशयेत् ॥

भा० अनेनरूपामारीके नाम और गुण ॥ और दूसरीरूपामारीके
दोके समान होतीहै ॥ कुछेक चांदीके मिलनेसे रूपामारीकहीहै ॥ ५६ ॥
उस्के पीछे कहनेसे उस्से हीन गुण कहीगई ह ॥ केवल चांदीके गुण रूपा
माखामें नहीं है ॥ ६० ॥ जैसे पाकभेमधु रममें कुछ तिक्त शुक्रको उत्प
न्न करने वाली रसायननेत्रके हितहै और पेड़की पाडा और कुष्ठ पाण्डुरोग

प्रमेह विष उदररोग ॥ ६१ ॥ वचासीर सूजन जय कंडू विपदोष इनको नाश करती है ॥

मन्दानलत्वं बलहानि मुग्धा विष्टम्भितान्नेत्रग-
दानसकुष्ठान् । तथैव मालांशुणा पूर्व्वि काञ्च
करोति नापीज भिदञ्च तद्वत् ॥ ६२ ॥

अथ तूतीआ ।] तुत्यं वितुन्नकञ्चापि शिखि
ग्रीवं मयूरकम् ॥ तुत्य नाम्नोपधातुर्हि किञ्चि
ताम्रेण तद्भवेत् ॥ ६३ ॥ किञ्चित्ताम्रगुणान्तस्मा
द्वल्यमाणा गुणाञ्च तत् ॥ तुत्यकं कटुकं क्षारं क-
षायं वामकं लघु ॥ ६४ ॥ लेखनभेदनं
शीतं चक्षुष्यं कफपित्तहृत् ॥ विषाण्मकुष्ठ
कराड्घ्नं खर्परञ्चापि तद्गुणम् ॥ ६५ ॥

भा० विनसोधी जड़ रूपी मारुती मन्वाग्नि बलहानो विष्टम्भिता नेत्ररोग
कुष्ठ गंडमाला इनको करती है ॥ ६२ ॥

अनन्तर तूतिया ।] तुत्य वितुन्नक शिखि ग्रीवं मयूरक । येह नीले घोषे
के नाम हैं ॥ नीला घोषा तांवेकी उपधातु और घोड़े नाम्बसे होता है इसवा
से घोड़ेसे तांवेके गुण और कहे जड़े गुण होते हैं ॥ नीला घोषा कडवा क्षार
कसैला वमन करने वाला हलका ॥ ६४ ॥ लेखन भेदन शीतल नेत्र के हि-
न कफ पित्तका नाशक है । और विष अण्मरी कुष्ठ कंडू इनका नाशक
होता है ॥ और खपरिया भी उसी समान गुणमें है ॥ ६५ ॥ ३के

अथ कांसो ।] ताम्रत्वपुज मारुत्यात् डूंगस्य घोष
ञ्च कंसकम् ॥ उपधातु भवेत् कांस्यं द्वयोस्तरणि
रङ्गयोः ॥ ६६ ॥ कांसस्य तु गुणा ज्ञेयाः स्वयानि

सदृशा जनैः ॥ संयोगज प्रभावेण तस्यान्येऽपि
गुणाः स्मृताः ॥ ६७ ॥ कांस्य दूषायन्ति कौष्यं
लेखनं विशदं सरम् ॥ गुरुनेत्रहितं रूक्षं कफ
पित्तहरम्यरम् ॥ ६८ ॥

भा० अनन्तर कांसा ।] ताम्बे और रंगोसे उत्पन्न हुवा प्रसिद्ध है ॥ कांस्य
घोष कंसक । यह कांस के नाम है ॥ कांसा ताम्बा और रंगोंका उपधातु
है ॥ ६६ ॥ कांसे के गुण अपने कारण के समान जानने चाहिये ॥ संयोगज
प्रभाव से उसके और भी गुण कहते हैं ॥ कांसा कसेला तिक्र उष्ण लेखन सर
विषद ॥ भारी नेत्रकेहित रूखा कफ पित्तकानाशक है ॥ ६८ ॥

[तथा पीतारि । कांची पीतारि ।] पित्तलं त्वार कूटं
स्यादारो रीतिश्च कथ्यते ॥ राजरीतिः ब्रह्मरीतिः
कपिला पिङ्गलापि च ॥ ६९ ॥ रीतिरप्युपधातुः
स्यात्ताम्रस्य यसदस्य च ॥ पित्तलस्य गुणा ज्ञेयाः
स्वयोनि सदृशा जनैः ॥ ७० ॥ संयोगज प्रभावेण
तस्याप्यन्ये गुणाः स्मृताः ॥ रीतिका युगलं रूक्षं
तिक्रञ्च लवणं रसे ॥ ७१ ॥ शोथनं पाराडु रोगघ्नं
कृमिघ्नं नाति लेखनम् ॥

भा० अनन्तर पीतल और कच्चा पीतल । पित्तल आस्कुर और रीति ।
येह पीतल के नाम हैं ॥ और राजरीति ब्रह्मरीतिकपिला पिङ्गला । येह
कच्चे पीतल के नाम गुण हैं ॥ ६९ ॥ पीतल भी ताम्बा और जस्तका उ
पधातुक है पीतल के गुण अपने कारण के सदृश जानने चाहिये ॥ ७० ॥
संयोगज के प्रभाव से उसके और गुण कहते हैं ॥ दोनों पीतल रूखे तिक्र
लवण रस में हैं ॥ ७१ ॥ और शोथन पाराडु रोग के नाशक कृमि नाशक

न बद्धत लेखन हे ॥

अथ सिन्दूर ।] सिन्दूरं रक्तं रोगंश्च नागं गर्भंश्च
सीसजम् ॥ सीसोपधातुः सिन्दूरगुरौ स्तत् सी
सवन्मतम् ॥ संयोगजप्रभावेण तस्याप्यन्ये गु
णाः स्मृताः ॥ ७३ ॥ सिन्दूरं मुख्यां वीसर्पं कुष्ठक
ण्डं विषापहम् ॥ भग्नसन्धानजननं व्रणशोधन
रोपणम् ॥ ७४ ॥

भा० अनन्तर सिन्दूर] सिन्दूर रक्त रोग नाग गर्भ सीसज । यह सिन्दूर
के नाम है ॥ ७३ ॥ सिन्दूर सीसिका उपधातु है और गुणा सीसिके समान
हैं ॥ तथा संयोगज प्रभावसे उसके भी और गुणा कहे हैं ॥ ७३ ॥ सिन्दूर ग
र्भ विसर्प कुष्ठ खुजली इन कानों शक ॥ और दूँदुबे को जोड़ने वाला ।
व्रण शोधन और रोपण है ॥ ७४ ॥

अथ शिलाजित ।] तदुत्पत्तिर्नाम लक्षणं गुणा
श्च ।] निदाघे धर्म सन्तप्ता धातु सारन्धरा धराः
॥ निर्यासवत् प्रमुञ्चन्ति तच्छिलाजित कीर्ति
तम् ॥ ७५ ॥ सौवर्गी राजतन्ताम्ब्रमायसन्तश्चतु
र्विधम् ॥

भा० अनन्तर शिलाजित ।] उसकी उत्पत्ति नाम लक्षण गुणा ॥ ग्रीष्म
में संतप्त जड़ों पर्वत धातुके सारको गोदके समान छोड़ने हैं उसको शि
लाजित कहते हैं ॥ ७५ ॥ सोनेका चान्दीका ताम्बेका और लोहेका
से चार प्रकार का बौह होता है ॥

शिलाजित्वदिजतु च शैल निर्यास इत्यपि ॥
॥ ७६ ॥ गैरियमप्रसजञ्चापि गिरिजं शैल धातु
जम् ॥ शिलाजं कटु तिक्तौषणं कटु पाकं रसा-

यनम् ॥ ७७ ॥ छेदियोग वहं हन्ति कफभेदाश्म
 शर्कराः ॥ मूत्र रुच्छं क्षयं श्वासं वाताशौसि
 च पाण्डुताम् ॥ ७८ ॥ अपस्मारन्तयोन्मादं
 शोथकुष्ठोदर कृमिन् ॥ ७९ ॥ सौवर्णन्तु जवा
 पुष्प वर्णं भवति तद् रसात् ॥ मधुरं कटु तिक्त
 च्च शीतलं कटु पाकि च ॥ ८० ॥ राजतम्याण्डु
 रं शीतं कटुकं स्वादु पाकि च ॥ ताम्रं मयूरक
 र्णामं तीक्ष्णमुष्णञ्च जायते ॥ ८१ ॥ लौहं
 जटायुपक्षाभं तत्तिक्तं लवणम्भवेत् ॥ विपा
 के कटुकं शीतं सर्वं श्रेष्ठमुदाहृतम् ॥ ८२ ॥

भा० शिलाजतु अद्रिजतु शैल निर्यास ॥ ७६ ॥ गैरेय अशमज गिरिज
 शैलधातुज येह शिलाजीत के नाम हैं ॥ शिलाजीत कहवा तीताउष्ण
 पाकमें कटु रसायन है ॥ ७७ ॥ और छेदन करनेवाला तथा योग वाही
 है ॥ और कफ भेद अप्रमरी शर्करा इनको नाश करता है ॥ तथा मूत्र
 रुच्छ क्षय श्वास वातकी ववासीर पाण्डुता ॥ ७८ ॥ मिरगी उन्माद शो
 थ कुष्ठ रोग उदर रोग कृमि इनको नाश करता है ॥ ७९ ॥ सौवर्ण शिलाजी
 त वर्णमें जवाफूल के समान होता है ॥ और रसमें मधुर कटु तिक्त
 शीतल पाकमें कटु होता है ॥ ८० ॥ चांदीके मेलका शिलाजीत वर्णमें
 श्वेत शीतल कटु पाकमें मधुर होता है ॥ ताम्रिका वर्णमें मोरके कण्ड के
 समान नीला उष्ण होता है ॥ ८१ ॥ लोहे का रंगनमें गिरिजे पंख समान
 होता है और वोह तिक्त लवण होता है ॥ तथा पाकमें कटु शीतल और
 सर्वमें श्रेष्ठ कहा है ॥ ८२ ॥

[अथ रसः ।] तत्र रसस्य निरुक्तिः ।]

रसायनार्थिभिर्लोकेः पारदो रस्यते यतः ॥

ततो रस इति प्रोक्तः स च धातुरपि स्मृतः ॥ ८३ ॥

[अथ पारदस्योत्पत्तिर्लक्षणनामगुणाः ।]

शिवाङ्गत् प्रच्युतं रेतः पतितन्धरणी तले ॥ तद्दे

हं सारं जानत्वा च्छुक्त्वा मच्छ मधूच्च तत् ॥ ८४ ॥

क्षेत्रभेदेन विज्ञेयं शिववीर्य्यञ्चतुर्विधम् ॥

श्वेतं रक्तन्तथा पीतं कृष्णान्तस्तु भवेत् क्रमात् ॥

८५ ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च खलुजा-

तितः ॥ श्वेतं प्रास्तं रुजां नाशे रक्तङ्गुल रसाय-

नम् ॥ ८६ ॥ धातुबेधेतु तर्प्येत् खेगतौ कृष्णभे-

द्व ॥ पारदो रसधातुश्च रसेन्द्रश्च महारसः ॥ ८७ ॥

भा० अनन्तरपारा ।] और उसकी निरुक्ति । जिस कारण रसायन चाहनेवाले लोग पारा खाते हैं उस कारण रस इस प्रकार से कहा है और वोह धातु भी कहा गया है ॥ ८३ ॥ अनन्तर पारेकी उत्पत्ति लक्षणनामगुण कहते हैं ॥ शिवजी के रंगमें निकला हुआ वीर्य्य पृथ्विपर गिरा ॥ उन के देह सासे उत्पन्न होनेसे वोह श्वेत और खच्छ हुआ ॥ ८४ ॥ पारा क्षेत्र भेदसे चार प्रकार का जानना चाहिये ॥ सफेद लाल पीला काला क्रमसे ॥ ८५ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन जातिसे होना है ॥ श्वेत रोगोंके नाशमें प्रयास है । और लाल रसायन ॥ ८६ ॥ धातु बेधमें पीला और और आकाशगमनमें काला प्रयास है ॥ पारद रसधातु रसेन्द्र महा रस ॥ ८७ ॥

चपलः शिववीर्य्यञ्च रसः स्मृतः शिवाह्वयः ॥

पारदः पङ्कसः क्षिग्धः खिदोषघ्नो रसायनः ॥

॥ ८८ ॥ योगवाही महावृष्यः सर्वा दृष्टिबलप्रदः ॥

सर्वामय हरः प्रोक्तो विशेषात्सर्व्वं कुष्ठनुत् ॥
 ॥ ८६ ॥ स्वस्थोरसो भवेद् ब्रह्मा बद्धो ज्ञेयो ज-
 नार्हिनः ॥ रञ्जितः कामितश्चापि साक्षाद्देवो
 सहेश्वरः ॥ ८७ ॥ मूर्च्छितो हरति रुजं बन्धन
 मनुभूयस्वे गतिं कुरुते ॥ अजरी करोति हि सृ-
 तः कोऽन्य कुरुणा करः सूतात् ॥ ८८ ॥

भा० चपल शिववीर्य्य रससूत शिवनाम यह पारेके नामहैं ॥ पारा
 छ रससे युक्त चिकना त्रिदोषनाशक रसायन ॥ ८६ ॥ योगवाही अ-
 त्यन्त शुक्रको करनेवाला, और दृष्टिबलको देनेवाला है ॥ तथा सब
 रोगोंका नाशक और विशेषकरके कुष्ठ नाशक कहा है ॥ ८६ ॥ स्वस्थ
 रत्न ब्रह्मा होता है और बन्धाहवा पारा विष्णु होता है ॥ रञ्जित नया का-
 मित साक्षात् महादेव है ॥ ८७ ॥ मूर्च्छित पारा रोगोंको नाश करता है और
 बन्धनको जानकर आकाशमें गलितो करता है ॥ तथा मरा हुवा अजर
 करता है ॥ इसवास्ते पारेसे सिवाय और कौन कुरुणा कर है ॥ ८८ ॥

असाध्यो यो भवेद्दोगो यस्य नास्ति चिकित्सि-
 तम् ॥ रसेन्द्रा हन्ति तं रोगं नरकुञ्जर वाजिना-
 म् ॥ ८९ ॥ मूलं विषं वह्नि गिरित्व चापलनैस-
 गिकन्दोषं मुशन्ति पारदे ॥ उपाधिजो द्वौ त्वपु
 नागयोगजो दोषो रसेन्द्रे काथितो मुनिश्वरेः ॥
 ॥ ९० ॥ मलेन मूर्च्छा मरणां वि षेण दाहोऽ-
 ग्निना कष्टतरः शरीरे ॥ देहस्य जाड्यङ्घ्रिणा
 सदा स्यात् चाञ्चल्यतो वीर्य्ये हतिश्च पुंसाम् ॥
 ॥ ९१ ॥ वङ्गेन कुष्ठस्युजगेन घण्डो भवेत्तो-

इसौ परि शोधनीयः ॥ वह्निर्विष मलञ्चेति मुख्य
 दोषा स्वयोरसे ॥ ६५ ॥ एते कुर्वन्ति सन्तापं मृतिं
 मूर्च्छां नृणां क्रमात् ॥ अन्येऽपि कथिता दोषा
 भिषगभिः पारदे यदि ॥ ६६ ॥ तथाप्येते त्रयो दो
 षा हरणीया विशेषतः ॥ संस्कार हीनं खलु सत
 राजं यः सेवते तस्य करोति बाधासु ॥ देहास्य ना
 शं विदधाति नूनं कष्टांश्च रोगाञ्जनयेन्न रसा
 म् ॥ ६७ ॥

भा० जो रोग असाध्य हो जाता है और जिसकी दवा नहीं है ॥ उस रोगको
 और मनुष्य घोड़ा हाथी इनके रोगोंकी पारनाश करता है ॥ ६२ ॥ मल
 विष वह्नि गिरित्वचपलता ये पारमें नैसर्गिक दोष कहे हैं ॥ दो उपाधि
 सीसा और रांगा इनके योगसे उत्पन्न ज्वरे दोष पारमें मुनिश्चरोंने कहा है ॥
 ॥ ६३ ॥ मलसे मूर्च्छा विषसे मरण अग्निसे शरीर में अत्यन्त कठिन दाह
 गिरिसे देहमें सदा जड़ता होती है और चंचलतासे मनुष्योंके शीर्षका नाश
 होता है ॥ ६४ ॥ रांगेसे कोढ़ सीसे से नपुंसकता होती है । इसवास्ते यह पा
 श शोधने योग्य है ॥ पारमें तीन दोष मुख्य हैं वह्नि विष और मल ॥ ६५ ॥
 यह दोष मनुष्योंकी क्रमसे सन्ताप मृत्यु मूर्च्छा करते हैं ॥ यदि औरभी
 दोषवेद्योंने पारमें कहे हैं ॥ ६६ ॥ परंतु तथापि यह तीन दोष विशेष कर
 के दूर करने चाहिये ॥ संस्कार हीन पारको जो सेवन करता है उक्तो बाधा
 करता है ॥ और मनुष्योंकी देहका नाश करता है तथा अत्यन्त कष्ट साध्य
 रोगोंकी भी करता है ॥ ६७ ॥

अथोपरसानां लक्षणात् । गन्धो हिङ्गुल मध्र
 तालकशिलाः स्रोतोऽञ्जनराटङ्गराम् ॥ राजा
 वर्त कचुम्बको स्फटिकया शङ्खः खटी गेरिकम्

कासीसं रसकङ्कः पर्ह सिकता बोलाश्च कङ्कः
क्रम ॥ सौराष्ट्री च मता अमी उपरसाः सूतस्य कि
ञ्चिद्गुणैः ॥ ६२ ॥ (उपरसा गौरा रसाः।)

[हिङ्गुलस्य नामानि लक्षणं गुणाश्च।

हिङ्गुलन्दरदं म्लेच्छ मिङ्गुलम् पूर्णं पारदम् ॥

दरदं स्त्रिविधः प्रोक्तं चर्म्मरः शुक्रतुण्डकः

॥ ६३ ॥ हंसपादस्तृतीयः स्याद्गुणवानुत्तरोत्तर

म् ॥ चर्म्मरः शुक्लवर्णः स्यात्सपीतः शुक्रतु-

ण्डकः ॥ ६४ ॥ जवाकुसुमं सङ्गणो हंसपादो

महोत्तमः ॥ तिक्तं कषायं कटु हिङ्गुलं स्यान्ने

त्रामयघ्नं कृष्णं पित्तहारि ॥ हल्लासकं शुष्कं ज्वर

कामलांश्च स्नीहामवातौ च गरन्निहन्ति ॥ ६५

ऊर्ध्वपातनं युक्त्या तुडमरुयन्त्रपाचनम् ॥

हिङ्गुलन्तस्य सूतन्तु शुद्धमेवं न शोधयेत् ॥ ६६

भा० अनन्तर उपरसोंका लक्षण ॥ गन्धक सिंगरफ अंधक हरताल
मनसिल सुरमा खुहागा ॥ रेह चुम्बक पस्थर विस्त्रौर पांख खडिया मा
यी गेरू ॥ ६० ॥ हीरा कसीस रसकपूर कीडी रेत बो ल इसको फूल
सन्वभी कहतेहै पहाडीमटी ॥ सोखीमाटी येह उपरस कहेगयेहै ॥
पारेका कुछ एक गुण इनमें होनाहै ॥ ६२ ॥

उपरस अर्थान् गौरा रस।] सिंगरफ के नाम और गुण ॥ हिंगुल
दरद म्लेच्छ इंगुल पूर्णपारद । येह सिंगरफ के नामहैं ॥ सिंगरफ ती
न प्रकारका होनाहै ॥ चर्म्मर शुक्र तुंडक ॥ ६३ ॥ और तीसरा हंसपा
द । येह उत्तरोत्तर गुणमें अधिक ॥ चर्म्मर सफ़ेद होनाहै । और पीला
ई के सहित शुक्रतुंडक होनाहै ॥ ६४ ॥ हंसपाद जवा फूल के समान

होता है । बोह बड़हन उत्तम है ॥ तिक्त कसेला कहुवा हिंगुल होता है ॥ और ने
त्र रोगका नाशक तथा कफ पित्तका नाशक होता है ॥ और हृत्सास कुष्ठ अर
कामला रून्का तथा पिलही आमवात और विष दून्को भी नाश करता है ॥
२५ ॥ ऊर्ध्व पातनकी युक्ति मे अथवा दमरुयंत्र से यकाया ज्ववा ॥ हिंगुल उत्तम
पारा इस प्रकार सिद्ध होता है इसको नशोधन करे ॥ २६ ॥

[अथ गन्धकस्थीत्यन्ति नाम लक्षणा गुणान्त्र]

श्वेत द्वीपे युवा देव्याः क्रीडन्त्या रजसा स्तुतम् ॥ दुकृ
लन्ते न ब्रह्मेण स्नातायाः क्षीरं नीरथौ ॥ ६७ ॥ प्रसू
ने यद्गज स्वस्मात् गन्धकः समभूततः ॥ गन्धको गन्ध
कश्चापि गन्धयापारा इत्यपि ॥ ६८ ॥ सौगन्धिकश्च
काथितो बलिर्वलरसापिच ॥ चतुर्द्वी गन्धकः प्रोक्तो
रक्तः पितः सितोऽसितः ॥ ६९ ॥ रक्तं हेमं सितं चारुं
क्तः पीतश्वेतो रसायने ॥ ब्रह्मादि लेपने श्वेतः कृ
ष्णः श्रेष्ठः सुदुर्लभः ॥ ७० ॥

भा० अनन्तर गन्धक की उत्पत्ति और नाम लक्षणा गुणों को कहते हैं ॥ श्वेत
द्वीपमें पहिले क्रीडा करती हुई पार्वतीजीका कपड़ा रजसे सन गया था उस क
पड़ेसे ॥ क्षीर सागर में स्नान करती हुई का उस साद्वीसे जो रजकैला उसे ग
न्धक ज्ववा । गन्धक गन्धिक गन्धयापारा ॥ ६८ ॥ सौगन्धिक बलि वनरस
येह गन्धक के नाम हैं ॥ गन्धक चार प्रकार का होता है लाल पीला सुफेद
काला ॥ ६९ ॥ लाल सुवर्ण क्रियामें काम आता है ॥ और पीला सुफेद रसा
यन में कहा है ॥ और घाव आदि के लेपमें सुफेद तथा काला श्रेष्ठ होता है वो
ह दुर्लभ है ॥ ७० ॥

(श्रेष्ठः हेमक्रियादिषु सर्वत्र प्रशस्ततरः,)

गन्धकः कटुकस्निक्तो वीर्योष्णस्त्वरः सरः ॥

वच्च सेउत्पन्न होनेसे और अभ्रवादलों के गरज सेउत्पन्न होनेसे तथा आकाश से गिरनेसे गगन माना है ॥ १०५ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन भेदोंसे वोह चार प्रकार का होता है ॥

क्रमेणैवा सितं रक्तं पीतं कृष्णञ्च वर्णितः ॥ १०६ ॥
प्रशरयते पितन्तारं रक्तं तत्तु रसायने ॥ पीतं हेमनि
कृष्णान्तु गदेषु हृतये ऽपि च ॥ १०७ ॥ पिनाकं दुर्दुरं
नागं वज्रञ्चेति चतुर्विधम् ॥ सुञ्चत्यग्नौ विनि
क्षिप्तं पिनाकन्दल सञ्चयम् ॥ १०८ ॥ अज्ञाना
ङ्गलां तस्य महाकुष्ठ प्रदायकम् ॥ दुर्दुरं त्वग्नि
निःक्षिप्तं कुरुते दुर्दुर ध्वनिम् ॥ १०९ ॥ गोलका
न्वज्जृषाः कृत्वा सस्यान्मृत्यु प्रदायकः ॥

श्री० क्रमसे सफ़ेद लाल पीला काला इन चार वर्णों से चार जातिका है ॥ १०६ ॥ पीत चांदीमें प्रशस्त है और रक्त रसायन में प्रशस्त है ॥ तथा पीला सोनेमें और काला रोगमें तथा गलानेमें भी प्रशस्त है ॥ १०७ ॥ पिनाक दुर्दुर नाग वज्र ऐसे चार प्रकार का अभ्रक होता है ॥ पिनाक आगमें डालने से पत्र २ अलग होजाता है ॥ १०८ ॥ विनजाने उसको खाने से महाकुष्ठ उत्पन्न होता है ॥ दुर्दुर आगमें डालने से दुर्दुर शब्दको करता है ॥ १०९ ॥ वज्रत से गोलको को करके वोह मृत्युदायक होता है ॥ नाग अभ्रक सर्पको समान अग्निमें फूतकार शब्दोंको करता है ॥ उसको खानेसे अवश्य भगंदर होता है ॥ ११० ॥

नागन्तु नागवद् वन्हौ फुत्कारं परि सुञ्चति ॥
तद्भक्षिंश्च वश्यन्तु विदधाति भगन्दरम् ॥ ११० ॥
वज्रन्तु वज्रवतिष्ठे तन्नाग्नौ विलतिं व्रजेत् ॥ स
र्वाभ्रेषु चरं वज्रं व्याधि वार्द्धक्य मृत्यु हन् ॥ १११ ॥

अंशु सुतरं शैलौत्थं बहुसत्वं गुणाधिकम् ॥ दक्षि
 रगादि भवं स्वल्प सत्य मल्प गुण प्रदम् ॥ ११२ ॥ अ
 श्र कषायं मधुरं सुशीत मायुष्करं धातु विवर्द्धनञ्च
 ॥ हन्यात् त्रिदोषं ब्रण मेह कुष्ठ स्त्रीहोदरं ग्रन्थि वि
 ष कृमींश्च ॥ ११३ ॥ रोगान् हन्ति दृढयति वपु वीर्य
 वृद्धिं विधत्ते ॥ तारुण्याढं रमयति शान्तं योषितां नि
 त्यमेव ॥ ११४ ॥ दीर्घा युष्कान् जनयति सुतान् विक्र
 भैः सिंह तुल्यान् ॥ मृत्याभीतिं हरति सततं सेव्यमा
 नं मृताश्रमम् ॥ ११५ ॥ पीडां विधत्ते विविधां नराणां
 कुष्ठं क्षयं पाण्डु गदञ्च शोथम् ॥ हृत्याश्व पीडा
 ज्व करोत्य शुद्ध मश्रन्त्व सिद्धं गुरुता प्रदं स्यात्
 ॥ ११६ ॥

भा० वज्र अग्निमें वज्रके समान उहरता है जोह अग्निमें विकारको नहीं प्राप्त होता । सब अश्रकों में वज्र श्रेष्ठ है वोह रोग दुदापा और मृत्यु इनका नाशक है ॥ ११२ ॥ उत्तर दिशाके पहाड़ों में उत्पन्न हुआ अश्रक अधिक सत्वसे युक्त गुणमें अधिक होता है ॥ दक्षिण के पहाड़ोंमें उत्पन्न हुआ थोड़े सत्व वाला और अल्पगुणको देनेवाला है ॥ ११३ ॥ अश्रक कसेला मधुर शीतल आद्य की करनेवाला धातुको बढ़ानेवाला होता है ॥ और त्रिदोष ब्रण प्रमेह कुष्ठ स्त्रीहोदर ग्रन्थि विष कृमि इनको नाश करता है ॥ ११३ ॥ सेवन किया हुआ अश्रक का भस्म रोगोंको नाश करता है ॥ शरीरको दृढ़ करता है और शुक्री की वृद्धि को करता है ॥

तारुण्य से भरी जड़ से स्त्रियों को भोग करना है इसके सेवन करनेवाला मनुष्य वृद्ध भी तारुण्यता को प्राप्त होता है ॥ ११४ ॥

तिहके समान पराक्रम वाले और दीर्घ आयुवाले पुत्रों को उत्पन्न करता है

और मृत्यु के भय को दूर करता है ॥ ११५ ॥ विन सुधाजूवा और असिद्ध अम्रक मनुष्यों को नाना प्रकारकी पीड़ा को करता है और कुछ वायु पाण्डुर रोग सृजन । हृदय पसली की पीड़ा इनकी करता है तथा भारीपन और सन्नाप इनकी भी करने वाला है ॥ ११६ ॥

[अथ हरितालस्य नामानि लक्षणं गुणाश्च । हरि
तालं तु तालंस्या दालं तालक मित्यपि ॥ हरिता
लं द्विधा श्रेष्ठं यत्रास्व्यं पिराड संज्ञकम् ॥ ११७ ॥
तयो राद्यं गुरौः श्रेष्ठं ततो हीन गुणं परम् ॥ स्व
र्णं बर्णं गुरु स्निग्धं सपत्रं चास्त्रपत्रवत् ॥ ११८ ॥
यत्रास्व्यं तालकं विद्या जुगाढ्यं तद्रसायनम् ॥ नि
ष्पत्रं पिराड सदृशं स्वल्प सत्त्वं तथा गुरु ॥ ११९ ॥
स्त्री पुष्य हारकं स्वल्प गुणं तत् पिराड तालकम् ॥
हरितालं कटु स्निग्धं कषायोष्णं हरेद्विषम् ॥ १२० ॥
कराडु कुष्ठास्य रोगास्त्र कफ पित्त कच व्रणान् ॥ ह
रति च हरिताल ज्वारुतां देह जाताम् । सृजति च
बहु नाया मङ्ग सङ्कोच पीडाम् ॥ वितरति कफ
वातौ कुष्ठ रोगं विदध्या । दिद मणित मशुद्धम् मा
रित ज्ञाप्य सम्यक् ॥ १२१ ॥

भा० अनन्तर हरिताल के नाम और लक्षणों को कहने हैं ॥ हरिताल ताल आल तालक यह हरिताल के नाम हैं ॥ हरिताल दो प्रकार का होता है एक बरकी दूसरा गोवरिया ॥ ११७ ॥ उनमें पहिला गुण में -

प्रेष्ठ है और दूसरा हीन गुण है ॥ रंगमें सोनेके समान भारी विकना और वरक के सहित अमृक के वरके के समान जो होता है ॥ ११८ ॥ उसको वरकी हरिताल जानना चाहिये वोह गुणमें अधिक और रसायन है ॥ बेवरक पिंड के समान थोड़े स्त्ववाला तथा भारी ॥ ११९ ॥ स्त्रीके रजका नाशक वोह पिंड हरिताल गुणमें न्यून होती है ॥ हरिताल कड़वी विकनी कसेली गरम होती है और विष ॥ १२० ॥ खजली कुष्ठ मुरवरोग रक्त कफ पित्त क्वत्रण इनको नाश करती है ॥ अशुद्ध और अच्छी तरह बफुकी हुई हरिताल खार्दू, ऊई देहकी सुन्दरता को नाश करती है और अधिक सन्ताप शरीर का संकोच पीड़ा इनको करती है कफ वात बढ़ के कुष्ठ रोगको करते हैं ॥ १२१ ॥

[अथ मनःशिलानामानि गुणाश्च]

मनःशिला मनोगुप्ता मनोह्ला नागजिह्विका ॥

नैपाली कुनदी गोला शिला दिव्यौषधिः स्मृता ॥

॥ १२३ ॥ मनःशिला गुरुर्वर्षा सरोषणालेखनी

कटुः ॥ तिक्ता स्निग्धा विषप्रवासकासभूत कफा

खनुत् ॥ १२४ ॥ मनःशिला मन्दबलं करोति ज-

न्तुं ध्रुवं शोधनमन्तरेण ॥ मलानुबन्धं किल मू-

त्ररोधं सशर्करं कृच्छ्रगदञ्च कुर्यात् ॥ १२५ ॥

भा० अनन्तर मैनशिल के नाम और गुण कहते हैं ॥ मनःशिला मनोगुप्ता मनोह्ला नागजिह्विका ॥ नैपाली कुनदी गोला शिला दिव्यौषधि यह मैनसिल के नाम कहे हैं ॥ १२३ ॥ मैनसिल भारी वर्षाको अच्छा करनेवाली सर उष्ण लेखनी कड़वी ॥ तिक्त विकनी होती है और विष श्वावकास भूतकफरक्त इनको नाश करनेवाली है ॥ १२४ ॥ शोधनके बिना मैनसिल बलको कम करती है और निश्चय छमिको करती है ॥ तथा क्वत्रियत मूत्रकानहोना शर्कराके सहित मूत्र कृच्छ्रको करती है ॥ १२५ ॥

[अथ सुरमा । सौवीर ।]

अञ्जनं यामुनञ्चाधि कापोताञ्जनमित्यपि ॥
 नत्तु श्रोतोऽञ्जनं कृष्णां सौवीरं श्वेतमीरितम् ॥ १२६ ॥
 बल्मीकशिरवराकारं भिन्नमञ्जनसन्निभम् ॥
 घृष्टन्तु गैरिकाकारमेतत् श्रोतोऽञ्जनस्मृतम् ॥
 १२७ ॥ श्वेतोऽञ्जनसमंक्षेपं सौवीरन्तत्तु शराडुर
 म् ॥ श्वेतोऽञ्जनं स्मृतं स्वादु चक्षुष्यं कफं पित्त
 नुत् ॥ १२८ ॥ कषायं लेखनं स्निग्धं ग्राहि छर्द्दि
 विषापहम् ॥ सिध्मक्षयास्त्रहृच्छ्रोत्रं सेवनायं
 सदाबुधैः ॥ १२९ ॥ श्वेतोञ्जनश्रुणाः सर्वे सौवी
 रेपि मता बुधैः ॥ किन्तु द्वयोरञ्जनयोः श्रे-
 ष्ठं श्वेतोऽञ्जनं स्मृतम् ॥ १३० ॥

भा० अन्तरसुरमा ॥ अञ्जनं यामुनं कापोतञ्जनं येहभीसुरमेंकेनाम
 हैं ॥ उमेंकालेसुरमेको श्वेतोञ्जन और सफ़ेदको सौवीर कहाहै ॥
 ॥ १२६ ॥ बमई से शिरवराकार भिन्नकाजलके समानहोताहै और
 घिसनेसेगेरुके आकारहोताहै इसको श्वेतोञ्जन कहाहै ॥ १२७ ॥
 श्वेतोञ्जनके समानसौवीरको जानना चाहिये येह सफ़ेदहोताहै ॥
 कालासुरमामधुरनेत्रकेहिनकफपित्तकानाशक ॥ १२८ ॥ कसेला
 लेखनचिकनाक्वाविजचमनविषकानाशकहोताहै ॥ और सिध्म
 क्षय रक्तको दूर करनेवाला शीतलहोताहै और विद्वानोंके द्वारा स
 दासेवनकरनेके योग्यहै ॥ १२९ ॥ कालेसुरमेंके सबश्रुणा सफ़ेदसु
 रमेंमेंभी पंडितोंने मानिहैं ॥ परन्तु दोनों अंजनोंमें काला अंजन श्रेष्ठ
 कहाहै ॥ १३० ॥

[अथ सोहागा ।] दङ्कुरोऽग्निं करो रूतः कफ

घ्नो वातपित्तकृत् ॥ अथ मुपस्सत्वात् पुनरुक्तः ।

अथ फिटिकरी । स्फटी च स्फटिका प्रोक्ता श्वेता

शुभ्राच रङ्गदा ॥ दृढरङ्गा रङ्गदा च दृढारङ्गापि क-
थ्यते ॥ १३१ ॥ स्फटिका तु कषायार्थणा वातपित्त क-
फत्रणान् ॥ निहन्ति शिवत्रयीसर्पान् योनि सङ्केच
कारिणी ॥ १३२ ॥

भा० अनन्तर सीहागा । सीहागा अग्निकी करनेवाला सूखा कफका नाशक
वात पित्तकी करनेवाला है । इसकी उपरस होनेसे फिरसे कहा ॥

अनन्तर फिटकरी । स्पटि स्फटिका श्वेता शुभ्रा रंगदा ॥ दृढरङ्गा रङ्गदा
भी और दृढा तथा रंगा भी येह करी फिटकरी के नाम कहे हैं ॥ १३१ ॥ फिट
कसेली गरम होती है और वात पित्त कफ त्रण इनकी नाश करती है ॥ तथा
शिवत्रयीसर्पको भी नाश करती हैं और योनि को सङ्केच करने वाली है ॥ १३२ ॥

[अथरेवटी ।] राजावर्तः कटुस्तिक्तः शिशिरः पित्त-
नाशनः ॥ राजावर्तः प्रमेहघ्नः छर्दि हिक्का निवा-
रणः ॥ १३३ ॥ अथ चुम्बकः । चुम्बकः कान्त
पाषाणो यः कान्तो लोह कर्षकः ॥ चुम्बको ले-
खनः शीतो मेदो विषगरा पहः ॥ १३४ ॥

[गैरु सुवर्णगैरु ।] गैरिकं रक्तं धातुश्च गैरेयं गिरिजं त-
था ॥ सुवर्णगैरिकं न्वन्य ततो रक्ततरं हितम् ॥ १३५ ॥
गैरिकं हितयं स्निग्धं मधुरं सुवरं हिमम् ॥

चक्षुष्यं दाह पित्तास्र कफ हि-
क्का विषा पहम् ॥ १३६ ॥

भा० अनन्तर रेवटी ॥ राजावर्त कडवी तिक्त शीतल पित्त नाशक है ॥
राजावर्त प्रमेह नाशक और वमन हिचकी इनकी दूर करनेवाली है ॥
१३३ ॥ [अनन्तर लोह चुम्बक ।] चुम्बक कान्त पाषाण उपः
कान्त लोह हर्षक । येह लोह चुम्बक के नाम हैं ॥ १. चुम्बक

लेखन शीतल और शीतभेद विष गर इनका नाशक है ॥ १३५ ॥
 अनन्तर गेरू और सोना गेरू ॥ गैरिक रक्तधातु गैरेय गिरिज येह गेरू
 के नाम हैं ॥ सोना गेरू उससे दूसरा होता है । और वोह बहुत लाल होता
 है ॥ १३६ ॥ दोनों गेरू चिकने मधुर कसैले शीतल ॥ नेत्रके हित और
 दाह रक्त पित्त कफ हिचकी विष इनके नाशक हैं ॥ १३६ ॥

[अथ खरी गौरखरी ।]

खटिका कटिनी चापि लेखनी च निगद्यते ॥ ख
 टिका दाह जिच्छीता मधुरा विष प्रोथ जित् १३७
 लेपादे तद्गुणा प्रोक्ता भक्षिता मृत्तिका समा ॥
 खटी गौरखटी द्वे च गुणोस्तुल्ये प्रकीर्तिते ॥ १३८ ॥

[अथ चालू ।] चालुका सिकता प्रोक्ता शर्करा रेत-
 जापि च ॥ चालुका लेखनी शीता व्रणोरः क्षत
 नाशिनी ॥ १३९ ॥

भा० अनन्तर खड़िया और सफ़ेद खड़िया । खटिका खट नीलेख
 नी येह खड़िया के नाम हैं ॥ खड़िया दाह को जीतनेवाली शीतल मधु-
 र । और विष प्रोथको जीतनेवाली है ॥ १३७ ॥ लेपसे येह कहे ऊँच गु-
 ण होते हैं । और खानेसे महीके समान होती है ॥ खड़िया और सफ़ेद ख-
 डिया दोनों गुणमें समान कहे हैं ॥ १३८ ॥

अनन्तर रेत । चालुका सिकता शर्करा रेतजा । येह चालूके नाम हैं ॥
 चालू लेखन शीतल है और व्रण उर क्षत । इनको नाश करने वा-
 ली है ॥ १३९ ॥

खपरी आतुल्यभेदः । खर्षरी तुल्यकं तुल्या
 दन्यत्त द्रसकं स्मृतम् ॥ ये गुणाः तुल्यके प्रोक्ता
 स्ते गुणाः रसके स्मृताः ॥ १४० ॥

[काशीस माङ्गफूल । काशीशं धानुकाशीशं

पांशुकाशीशमित्यपि ॥ तदेव किञ्चित्पीनन्तु
 पुष्यकाशीशमुच्यते ॥ १४१ ॥ काशीशमस्त
 सुष्याञ्च तित्तञ्च तुवरं तथा ॥ वातप्लेष्महरं
 केश्यं नेत्रकण्डू विषप्रणुत् ॥ १४२ ॥

मूत्रहृच्छाशमरी शिवत्रनाशनं परिकीर्तितम् ॥
 अथसौराष्ट्रीमाटी ।] सौराष्ट्री तुवरी कांक्षी मृताल-
 क सुराष्ट्रजे ॥ १४३ ॥ आढकी चापिसाख्याता
 मृत्स्नाच सुरमृत्तिका ॥ स्फटिकाया गुणाः स
 वै सौराष्ट्रा अपि कीर्तिताः ॥ १४४ ॥

भा० अनन्तर खपरिया यह लीला योथे का भेद है ॥ खपरिया तुल्यक
 है इसे दूसरी को रसक कहा है ॥ जो गुण लीले योथे में कहे हैं वोही
 गुण खपरिया में कहे हैं ॥ १४० ॥ [कसीस माङ्ग-फूल ।]

काशीश धानुकाशीश पांशुकाशीश । येह कसीसके नाम हैं ॥ वोही
 कुछ एक पीलीको पुष्यकासीस कहते हैं ॥ १४१ ॥ कसीस खट्टी गर
 म तित्त तथा कसैली ॥ और वात पित्त कफकी नाशक केशके हिन तथा
 नेत्र खुजली विष इनकी नाशक है ॥ १४२ ॥ और मूत्र पथरी शिवत्रकुष्ठ
 इनकी नाशक कही गई है ॥ ॥ [अनन्तर सौराष्ट्री माटी । सौराष्ट्री तुव
 री कांक्षी मृतालक सुराष्ट्रजा ॥ १४३ ॥ आढकी भी वोह कही गई है
 और मृत्स्ना तथा सुरमृत्तिका ॥ येह भी उसके नाम हैं । स्फटिकके सब
 गुण सौराष्ट्री में कहे हैं ॥ १४४ ॥ [अथ कर्दमः ।]

कर्दमो दाह पित्तार्ति शोथघ्नः शीतलः सरः ॥

१४५ ॥ [अथ बोल । बोलङ्गन्ध रसं प्राणाः

पिराड गोय रसाः समाः ॥ बोलं रक्तहरं शीतं

मेध्यन्दीपन पाचनम् ॥ मधुरङ्गुडु तित्तञ्च

दाहस्वेदत्रिदोषजित् ॥ १४६ ॥ ज्वरापस्मारकुष्ठ
घ्नं गर्भाशयविशुद्धिहृतम् ॥

भा० अनन्तर कालीमाटी । कालीमाटी क्षतदाह प्रदूरकफपित्तइन
कोनाशकहै ॥ [अनन्तर कीचड़ । कीचड़ दाहपित्तपांडासूजनइनकी
नाशकशीतलसरहै ॥ १४५ ॥ अनन्तर बोल । बोलगन्धरसप्राणा
पिंडगोप रससंमयहबोलकेनामहै ॥ बोलरक्तनाशकशीतलमेधा
कोकरनेवालादीपनपाचन ॥ मधुरकटुतिक्तऔरदाहपत्तीना तथा
त्रिदोषइनकोजीतनेवालाहै ॥ १४६ ॥ औरज्वरभिरगीकुष्ठइनकाना-
शकऔरगर्भाशयकोशुद्धकरनेवालाहोताहै ॥

[अथ कङ्कुष्ठोत्पत्तिलक्षणानामगुराणाः।

हिमवत्पादशिखरे कङ्कुष्ठमुपजायते ॥ तत्रै
करक्तकालस्यातदन्यदण्डकं स्मृतम् ॥ १४७ ॥
पीतप्रभंगुरुस्निग्धं श्रेष्ठकङ्कुष्ठमादिशेत् ॥
प्रथमं पीतं लघुत्यक्तं सत्वनेष्टन्तथाण्डकम् ॥
१४८ ॥ कङ्कुष्ठं काककुष्ठञ्च वराङ्गं कोलका
कुलम् ॥ कङ्कुष्ठं रेचनन्तिकं कटुषां वर्णकार
कम् ॥ १४९ ॥ कृमि शोथोदराध्मानगुल्मानाह
कफापहम् ॥

भा० अनन्तर कंकुष्ठ यह एक किसमकी पहाड़ीमटीहै उत्की उत्प
त्तिलक्षण नामगुरा कहनेहै ॥ हिमाचलपर कंकुष्ठहोताहै ॥ उस
में एक रक्तकालाहोताहै । औरउस्सेदूसरा अंडक कहागयाहै १४७
पीलाभारीचिकनासेसेकी श्रेष्ठ कंकुष्ठ कहनेहै ॥ और कालापीला
हलका और वेसत यह अच्छा नहीं इसको अंडक कहनेहै ॥ १४८ ॥
कंकुष्ठ काककुष्ठ वराङ्ग कोलकाकुल । यह कंकुष्ठके नामहै ॥

कंकुष्ट रेचन तिक्त कटु उष्णवर्णको करनेवाला ॥ १५० ॥ और कृमिसू-
जन उदर आध्मान वायुगोला अफारा कफ इनका नाशक है ॥

[अथ रत्नस्य निरुक्तिः ।]

धनार्थिनो जनाः सर्वे रमन्ते ऽस्मिन् अतीव यत्
ततो रत्नमिति प्रोक्तं शब्द शास्त्र विशारदैः ॥

१५१ ॥ ॥ अथ रत्नस्य नामानि स्वरूपगञ्च ।

रत्नं लीवे मणिः पुंसि स्त्रिया मपि निगद्यते ॥

तत्तु पाषाण भेदो ऽस्ति मुक्तादि च तदुच्यते ॥ १५२ ॥

तथा- [चामर सिंहः ।] रत्नं मणि द्वयो रश्म जा-
तो मुक्तादि के ऽपि च ॥

भा० अनन्तर रत्नकी निरुक्ति ॥ धनार्थि सबलोग जिसे अधिक
करके रमते हैं ॥ इसवास्ते व्याकरण के पंडितों ने रत्न ऐसा कहा है १५१
अनन्तर रत्नके नाम और लक्षण निरूपण ॥ रत्न नपुंसक में और मणि
पुल्लिंग में तथा स्त्रीलिंग में भी होता है ॥ १५२ ॥ बौह पाषाण का भेद है
और मुक्तादिक को कहनाहूँ ॥ उस प्रकार चामरसिंहने कहा है ॥ रत्न
मणि यह दोनों पथरकी जाति हैं ॥ और मुक्तादिक में भी होता है ॥

अथ रत्नानां निरूपणम् ।] रत्नं गारुत्मतं पुष्यं

रागो माणिक्यमेव च ॥ इन्द्रनीलश्च गोमेदस्त-

था वैडूर्यमित्यपि ॥ १५३ ॥ मौक्तिकं विद्रुमश्च

ति रत्नान्युक्तानि वै नव ॥

(क) रत्नं हीरा । गारुत्मतं पद्मा । माणिक्यं पद्मरा-
गः । इन्द्रनीलः लीला ।

[विष्णुधर्मोत्तरे ऽपि नव रत्न निरूपणम् ।]

मुक्ताफलं हीरकञ्च वैडूर्यं पद्मरागकम् ॥ पुष्य
रागञ्च गोमेदं नीलङ्गरुत्नं तन्तथा ॥ २५४ ॥

प्रवाल युक्ता न्येतानि महा रत्नानि वै नव ॥

तत्र हीरकं हीरा इति लोके । तस्य नाम लक्षणं गुणाश्च ।

हीरकः पुंसि वज्रोऽस्त्री चन्द्रो मणि वरश्च सः ।

सत्पुत्रेणः स्मृतो विप्रो लोहितः क्षत्रियः स्मृतः ॥

२५५ ॥ पीतो वैश्योऽसितः शूद्रश्चतुर्वर्णात्मक

श्च सः ॥ स्तायने भूतो विप्रः सर्वसिद्धिप्रदायकः

॥ २५६ ॥ क्षत्रियो व्याधि विध्यंसी जरा सृत्सु हरः

स्मृतः ॥ वैश्यो धनप्रदः प्रोक्तः नथा देहस्य दा-

र्ढ्यं कृत् ॥ २५७ ॥ शूद्रो नाशयति व्याधीन् वय

स्तम्भं करोति च ॥ पुंस्त्री न पुंसकां नीह लक्षणा

यानि लक्षणैः ॥ २५८ ॥ सुवृत्ताः फलसम्पूर्णास्ते

जो युक्ता वृहन्तराः ॥ पुरुषास्ते समाख्याता रेखा

विन्दु विवर्जिता ॥ २५९ ॥ रेखाविन्दु समायु-

क्ताः षड्रसास्ते स्त्रियः स्मृताः ॥

भा० अनन्तर रत्नादिकों का निरूपण ॥ रत्न , गारुत्मत पुष्यराग
और भागिक्व भी । नीलम गोमेद तथा वैडूर्य यह ॥ २५३ ॥ और
मोती मृंगा । इस प्रकार यह नव रत्न कहे हैं ॥

(क) रत्न हीरा । गारुत्मत पद्मा । मां नीक नीलम ॥ विष्णु धर्मे
नरमें भी नव रत्न कहे हैं ॥ मोती हीरा वैडूर्य मानीक । पुखराज गोमे
द नीलम पद्मा ॥ २५४ ॥ और मृंगा यह नव महारत्न हैं ॥ उमें हीरक
हीरा इस प्रकार लोकमें प्रसिद्ध है ॥ उस्के नाम लक्षण और गुण कहे हैं

हीरक उल्लिंगमें और वज्र नपुंसकमें होता है चन्द्रमणि वर यह हीरे के नाम हैं ॥ वोह श्वेत ब्राह्मण कहा गया है और लाल क्षत्रिय कहा गया है ॥ २५५ ॥ पीला वैश्य और काला शूद्र ऐसे हीरे चार वर्ण का होता है ॥ रसायन में ब्राह्मण और सब सिद्धियों को देने वाला है ॥ २५६ ॥ क्षत्रिय रोग नाशक और बुढ़ापा तथा मृत्यु का नाशक ॥ वैश्य धन देने वाला कहते हैं तथा शरीर को दृढ़ता करने वाला है ॥ २५७ ॥ शूद्र रोगों को नाशक रता है और वय को स्थापन करता है ॥ इसमें स्त्री पुरुष और नपुंसक इन के लक्षण होते हैं ॥ २५८ ॥ अच्छे गोल सब फल वाले तेजो युक्त बड़न बड़े और रेखा विन्दु से रहित ऐसे हीरे पुरुष कहे गये हैं ॥ २५९ ॥ और रेखा विन्दु से युक्त छ कौन वाले वे स्त्री कहे गये हैं ॥

त्रिकोणाश्च सुदीर्घास्ते विज्ञेयाश्च नपुंसकाः ॥

तेषु स्युः पुरुषाः श्रेष्ठास्तबन्धनकारिणः ॥ २६० ॥

स्त्रियः कुर्वन्ति कायस्य कान्तिं स्त्रीरणां सुखप्रदाः ॥

नपुंसकास्तवीर्यास्यु रकामाः सत्ववर्जिताः ॥

२६१ ॥ स्त्रियः स्त्रीभ्यः प्रदातव्याः स्त्रीवं स्त्रीवे प्र-

यो जयेत् ॥ सर्वेभ्यः सर्वदा देयाः पुरुषाः वीर्यव-

र्धनाः ॥ २६२ ॥ अशुद्धं कुरुते वज्रं कुष्ठं पाश्वे व्य-

थान्तथा ॥ पाण्डुता म्पङ्कुरत्वञ्च तस्मात् संशो-

ध्य मारयेत् ॥ २६३ ॥

भा० त्रिकोण और अच्छे लम्बे वे नपुंसक जानने चाहिये ॥ उनमें पुरुष श्रेष्ठ हैं और वे पारिको बान्धने वाले हैं ॥ २६० ॥ स्त्री जातिके हीरे शरीर की कान्ति को करते हैं ॥ और स्त्रियों को सुख देने वाले हैं ॥ नपुंसक अवीर्य होते हैं ॥ और अकाम सत्व से रहित होते हैं ॥ २६१ ॥ स्त्री जातिके हीरे स्त्रियों को देने चाहिये ॥ और नपुंसक को नपुंसक देवे ॥ और सबको सर्वदा वीर्य को बढ़ाने वाले पुरुष जातिके देने चाहिये ॥ २६२ ॥

विनश्रुधाद्भवाकोद्ध तथा पसुलीको पीडा ॥ पांडुता और लूलापनइनको
करनाहै इसवासे शोधकरफूँके ॥ २६३ ॥

[मारितस्य वज्रस्य गुणाः ।]

आयुःपुष्टिं बलं वीर्यं वर्णं सौख्यं करोति च ॥

सेवितं सर्वरोगघ्नं मृतं वज्रस्य संशयः ॥ २६४ ॥

[अथ हरितमणिः । पन्ना इति लोके । तस्य नामानि ।]

गारुत्मतं मरकतमश्रमगर्भं हरिन्मणिः ॥

[अथ मारिकाय इति लोके तस्य नामानि । मारिकायं

पद्मरागः स्याच्छोरा रत्नञ्च लोहितम् ॥

अथ पुष्पराग नामानि । पुष्परागो मञ्जुमणिः स्या

द्वाचस्पति बल्लभः ॥ अथ इन्द्रनील गोमेदयो

नीमानि । नीलन्तयेन्द्र नीलञ्च गोमेदः पीतरत्नकम्

भा० हीरेकी भस्मका गुण । आयु पुष्टि बल वीर्य वर्ण सौख्य इनको
करनाहै ॥ और हीरेका भस्म सेवन करने से सब रोगोंका नाशकहै इसमें
कोई संशय नहीं है ॥ २६४ ॥ अनन्तर पन्ना उसके नाम ॥ गारुत्मत
मरकत अश्रमगर्भ हरिन्मणि । येह पन्नेके नामहैं ॥

अनन्तर मारिका के नाम । मारिकाय पद्मराग शोरा रत्न लोहित । यह
मारिकाके नामहैं । [अनन्तर पुष्पराज के नाम । पुष्पराग मञ्जुमणि वाचस्प
ति बल्लभ । येह पुष्पराजके नामहैं ॥ [अनन्तर नीलम और गोमेद केना
म ॥ नील तथा इन्द्रनील । येह नीलमके नामहैं ॥ और गोमेद तथा
पीतरत्नक येह गोमेदके नामहैं ॥

अथ वैदूर्यं । वैदूर्यं दूरजरत्नं स्यात्केतु ग्रह बल्ल

भम् ॥ [अथ मौक्तिकस्य नामानि ।]

मौक्तिकं शौक्तिकं मुक्ता तथा मुक्ताफलञ्च तत् ॥

शुक्तिः शङ्खो गज क्रोडः फणी मतस्यश्च दर्दुरः ॥
 १६५ ॥ वेगुरेते समाख्याता स्तजज्ञैर्मौक्तिक योन-
 यः ॥ मौक्तिकं शीतलं वृष्यं चतुष्यं बल पुष्टिदम्
 [अथ प्रवालस्य नामानि । पुंसि क्लीबे प्रवालः
 स्यात् पुमानिव तु विद्रुमः ॥ [अथ रत्नानां गुणाः ।]
 रत्नानि भक्षितानि स्यु मधुराणि सराणि च ॥ चतु
 ष्याणि च शीतानि विषघ्नानि धृतानि च ॥ १६६ ॥
 मङ्गल्यानि मनोज्ञानि ग्रहदोषहराणि च ॥

भा० अनन्तर वैदूर्य दूरज रत्नकेतु ग्रहबल्लभ । येह वैदूर्य के नाम हैं
 ॥ ॥ अनन्तर मौक्तिके नाम ॥ मौक्तिक शौक्तिक मुक्ता तथा मुक्ताफलं
 लं । येह मोतीके नाम हैं ॥ सीप शंख हाथी शूकर सर्प मछली मेंडक
 ॥ १६५ ॥ और वांस यह उसके जाननेवालों ने मोतीके उत्पत्ति स्थान
 कहे हैं ॥ मोती शीतल शुक्रको उत्पन्न करनेवाला नेत्रके हित और ब
 ल पुष्टिको देनेवाला है ॥ १६५ ॥ अनन्तर मृगके नाम । पुल्लिंग और
 नपुंसकमे प्रवाल होता है और विद्रुम पुल्लिंगमें ही होता है ॥
 अनन्तर रत्नोंके गुण ॥ रत्न मक्षणा किये हवे मधुर और सर होते हैं ॥ त
 पानेत्रके हित शीत विषनाशक होते हैं । और धारण किये हवे ॥ ६६
 ॥ मङ्गल के करनेवाले मनोज्ञ तथा ग्रहदोषके नाशक होते हैं ॥

(क) किं रत्नं कस्य ग्रहस्य प्रीतिकारित्वेन दोष हरं भ
 वतीति प्रश्ने तदुत्तरमाह रत्नमालायां

भारिण्यन्तरणोः सुजात ममलं मुक्ताफलं शी-
 तगो मांहे वस्यतु विद्रुमो निगदितः सौम्यस्य गा
 रूतमतम् ॥ १६७ ॥ देवैज्यस्य च पुष्यराग मसुरा-

चार्यस्य वज्रं शनि । नीलं निस्मल मन्ययो निर्गदिते गो
मेद वैडूर्यके ॥ १६८ ॥

[अथोपरत्नानां निरूपणम् ।] उपरत्नानि काचश्च
कर्पूराश्मा तथा च ॥ मुक्ता शुक्ति स्तथा शङ्ख इत्या
दीनि बहुन्यपि ॥ १६९ ॥

(क) उपरत्नानि गौरा रत्नानि । कर्पूराश्मा कपनीया
कपर्णीभा । मुक्ता शुक्तिः सीप ।

गुणा यथैव रत्नाना मुपरत्नेषु ते यथा ॥ किन्तु कि-
ञ्चित्ततो हीना विशेषोऽथ मुदाहृतः ॥ १७० ॥

[अथ विषयस्य नाम लक्षण गुणाः]

भा० (क) कौनसा रत्न किस ग्रह के प्रतिकार होने से दोषनाशक होता है ।
इस प्रश्नमें उसका उत्तर कहते हैं ॥ रत्न मालामें । सूर्य का माणिक्य चन्द्रका
मोती मंगल का मूङ्ग बुध का पन्ना कहा है ॥ १६९ ॥ बृहस्पति का पुखरा
ज शुक्र का हीरा शनी का निर्मल नीलम और राहु का गोमेद केतु का वै-
डूर्य यह कहा है ॥ १६८ ॥ [अनन्तर उपरत्नों का निरूपण ॥ काच का-
पूरी पत्थर । और मोती की सीप तथा इत्यादि शंख वज्रन से उपरत्न हैं ॥ १६८
॥ उपरत्न अर्थात् गौरा रत्न । कर्पूरी पत्थर मोती की सीप रत्नों के जैसे गुण हैं
वैसे ही उपरत्नों में भी गुण रहें । परन्तु कुछ उनसे कम हैं ॥ विशेष यह कहा
है ॥ १७० ॥ [अनन्तर विषयके नाम लक्षण और गुण कहे हैं ॥

विषंतु गरलः खेड स्तस्य भेदानुदा हरे ॥ वत्सनाभः

सहारिद्रः सक्तु कश्च प्रदीपनः ॥ १७१ ॥ सौराष्ट्रिकः

शृङ्गिकश्च कालकूट स्तथैव च ॥ हालाहलो ब्र

ह्म पुत्रो विषभेदा अमीनव ॥ १७२ ॥

[तत्र वत्सनाभस्य स्वरूप निरूपणम्]

मिन्दुवार सहस्र पत्रो वत्सनाभ्या कृति स्तथा ॥
यत्यार्षेर्वन तरो वृद्धिर्वत्सनाभः स भाषितः ॥१७३॥

[अथ हारिद्रस्य स्वरूप निरूपणम्]

हरिद्रा तुल्य मूलोयो हारिद्रः स उदाहृतः ॥
अथ सक्नुकस्य स्वरूपम् ॥ यद् ग्रन्थिः सक्नुकेनैव
पूर्णा मध्यः स सक्नुकः ॥ अथ प्रदीपनस्य स्वरू-
पम् ॥ वर्णीतो लोहितो यः स्याद्दीप्तिमान् दहन प्र-
भः। महादाहकरः पूर्वैः कथितः स प्रदीपनः ॥१७४॥

भा० विष गरल श्वेड येह विषके नाम है ॥ उनके भेदोंको कहते हैं।
वत्सनाभ हारिद्र सक्नुक प्रदीपन ॥ १७१ ॥ सौराष्ट्रिक शृङ्गिक तथा का-
लकूट। हालाहल ब्रह्मपुत्र। यह नौ विषके नाम है ॥ १७२ ॥ उसमें वच-
नाकका निरूपण ॥ लाल कचनार के समान पत्ते तथा बछड़ेके नाभिके
आकार ॥ और जो एक तरफसे रुढ़की वृद्धि होती है उसको वचनाक
कहते हैं ॥ १७३ ॥ अनन्तर हारिद्रका स्वरूप निरूपण ॥ जो हरदीकी
जड़के समान होता है उसे हारिद्र कहा है ॥ अनन्तर सक्नुकका स्वरूप
॥ जो गांठ बीचमें सक्नुके भरी जड़के समान होती है वोह सक्नुक है ॥
अनन्तर प्रदीपनका स्वरूप ॥ जो रगतमें लाल होता है और अङ्गुरेके स-
मान दीप्तिमान होता है। तथा बहुत दाह करनेवाला। ऐसेको प्राचीन लो-
गोंने प्रदीपन कहा है ॥ १७४ ॥

अथ सौराष्ट्रिकस्य-

स्वरूपम् ॥ सुराष्ट्र विषये यः स्यात्स सौराष्ट्रिक
उच्यते ॥ [अथ शृङ्गिकस्य स्वरूपम्।

यस्मिन् गोशृङ्गके वद्धे दुग्धम्भवति लोहितम् ॥
स शृङ्गिक इति प्रोक्तो द्रव्यतत्त्व विशारदः ॥१७५॥

[अथ कालकूटस्य स्वरूपम् ॥ देवासुरसोदैवैर्हत
स्य षष्ठ्युमालिनः ॥ दैत्यस्य रुधिराज्जातस्वरूप-
स्य सन्निभः ॥ १७६ ॥ निर्यासः कालकूटोऽस्य मु-
निभिः परिकीर्तितः ॥ सोहि क्षेत्रे शृङ्गवरे कोङ्क-
गोमलये भवेत् ॥ १७७ ॥

[अथ हालाहलस्य स्वरूपम् ॥ गोस्तनाम फलो गु-
च्छस्तालपत्रच्छदस्तथा ॥ तेजसायस्य दहान्ते
समीपस्थाद्रुमादयः ॥ १७८ ॥ असौ हालाहलो जे-
यः किष्किन्धायां हिमालये ॥ दक्षिणाब्धि त-
टदेशे कोङ्कगोऽपि च जायते ॥ १७९ ॥

भा० अनन्तर सौराष्ट्रिक का स्वरूप ॥ सुराष्ट्र देशमें जो होता है वोह
सौराष्ट्रिक कहा है ॥ [अनन्तर सिंगिया का स्वरूप ॥ जिसको गाय
के सींगमें बांधनेसे दुग्ध लाल होता है ॥ उसको द्रव्यके तत्वोंके जानने
वालोंने शृङ्गिक कहा है ॥ ५७५ ॥

अनन्तर कालकूट का स्वरूप ॥ देवता और दानवके युद्धमें देवताओंसे
मारोगये षष्ठ्युमाली नाम दैत्यके रुधिरसे पीपलके समान वृक्ष उत्पन्न हु-
वा ॥ १७६ ॥ इसके गोन्दको कालकूट ऐसा मुनियोंने कहा है ॥ वोह शृङ्ग-
वरे क्षेत्रमें और कोङ्कणदेश नया मलयाचल में होता है ॥ १७७ ॥ ॥

अनन्तर हालाहल का स्वरूप ॥ गायके स्तनके से फलोंके गुच्छे तथा
तालपत्रके समान पत्र होते हैं ॥ और जिसके तेजसे पासके वृक्षादिक
जलजाते हैं ॥ १७८ ॥ इसके हालाहल जानना चाहिये और यह किष्कि-
न्धामें हिमालयमें दक्षिण समुद्रके किनारे परके देशोंमें और कोङ्कण
देशमें भी उत्पन्न होता है ॥ १७९ ॥

[अथ ब्रह्मपुत्रस्य स्वरूपम् ॥] वरीतः कपिलो

यः स्यात्तथा भवति सारतः ॥ ब्रह्मपुत्रः सविज्ञेयो जा-
यते मलयाचले ॥ १८० ॥ ब्राह्मणः पाण्डुरस्तेषु क्षत्रि-
यो लोहितः प्रभः ॥ वैश्यः पीतः सितः शूद्रो विष उक्त-
श्चतुर्विधः ॥ १८१ ॥ रसायने विषं त्रिप्रंक्षत्रियन्देहपु-
ष्टये ॥ वैश्यं कुष्ठं विनाशाय शूद्रन्दद्याद् वधाय
हि ॥ १८२ ॥ विषं प्राणहरं प्रोक्तं व्याधि च वि-
काशि च ॥ आग्नेयं वातकफ हृद्योग वाहि मदा-
वहम् ॥ १८३ ॥

भा० अनन्तर ब्रह्मपुत्र का स्वरूप ॥ जो रंगत से कपिल तथा सार से कपिल
होता है ॥ उसको ब्रह्मपुत्र जानना चाहिये वीह मलयाचल में होता है ॥ १८० ॥
उसमें ब्राह्मण जान का श्वेत लाल क्षत्रिय ॥ पीला वैश्य और काला शूद्र ।
ऐसे विष चार प्रकार का कहा है ॥ १८१ ॥ रसायन में सफ़ेद शरीर की पुष्टि के
अर्थ लाल पीला कुष्ठ नाशके अर्थ और काला मरण के अर्थ देवे ॥ १८२ ॥
विष प्राणहर कहा है और व्याधि तथा विकाशि ॥ और अग्नि गुणवाला
वातकफ का नाशक योगवाही तथा नशा करने वाला है ॥ १८३ ॥

(क) व्याधि सकलकाय गुणव्यापन पूर्वकं
पाक गमनशीलं ॥ विकाशि । ओजः शोषण पू-
र्वकं सन्धिबन्ध शिथिली करण शीलम् ॥
आग्नेयम् । अधिकाग्न्यं योगवाहि सङ्गि गुणग्रा-
हकं । मदावहम् । तमो गुणाधिक्येन बुद्धि वि-
वृत्तकम् ॥ तदेव युक्ति युक्तन्तु प्राणादायि रसायन-
म् ॥ योगवाहि त्रिदोषघ्नं दंहरणं वीर्य्य वर्द्धनम् ॥
॥ १८३ ॥ ये दुर्गुणा विषेऽशुद्धे तेस्युर्हीना-

विशोधनात् ॥ तस्माद्विषं प्रयोगेषु शोधयित्वा प्रयो-
जयेत् ॥ १८४ ॥

भा० (क) सम्पूर्ण शरीर गुणव्यापन पूर्वपाक होनेवाला बनायिहै। ओज का शोथरण पूर्वक जोड़ोंके बन्धन को शिथिल करनेवाला। आग्नेय अर्थात् वज्र त गरम। योगवाही अर्थात् संगवाले के गुण को ग्रहण करनेवाला। तमो गुणकी अधिकता से बुद्धिका नाशक ॥ वोही युक्ति पूर्वक योजना किया हुआ प्राण देने वाला रसायन ॥ योगवाही विदोषनाशक दृहरण वीर्यकी बढ़ानेवाला है ॥ ॥ १८३ ॥ जो सुगुण अणुद्व विषमें है वोह शोधन से हीन हो जाता है ॥ इसवास्ते शोधकर विषका प्रयोग योजनाकरे ॥ १८४ ॥

[अथोपविषाणां निरूपणम्]

अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीरं लाङ्गलीकरवीरकः ॥ गुञ्जा
हि फेना धतूरः सप्तोपविषजातयः ॥ १८५ ॥ उप-
विषाः गौराविषाः। स्याद्गुरास्तत्र तत्रद्रष्टव्याः।

इतिश्री भावप्रकाशे धातूपधातु रसोप-
रसरत्नोपरत्न विषोपविष वर्गः ॥ ❖ ॥

भा० अनन्तर उपविषका निरूपण ॥ आकका दूध शूहरका दूध करिहारी क नेर चिरमिठी अफीम धतूर यह सात जाति उपविष की है ॥ १८५ ॥ उपविष अर्थात् गौराविष। इनका गुण वहाँ १५ पर देख लेना ॥

इति भावप्रकाशे धातु उपधातु रस उपरस रत्न उपरत्न विष उपविष वर्ग समाप्ता ॥ ❖ ॥ अथधान्यवर्गः। तत्रधान्यानां भेदाः

शालिधान्यं त्रीहि धान्यं शूकधान्यं तृतीयकम् ॥

शिम्बीधान्यं क्षुद्रधान्यमित्युक्तं धान्यपञ्चकम्

॥ १ ॥ शालयो रक्तशालाद्या त्रीहयः षष्टिकादयः ॥

यवादिकं शूकधान्यं मुद्गाद्यं शिम्बि धान्यकम् ॥ २ ॥

कङ्कुनादिकं क्षुद्रधान्यं तृणाधान्यञ्च तत्स्मृतम् ॥

[तत्र शालिधान्यस्य लक्षणं गुणाश्च ।

कराडनेन विना शुक्ला हेमन्ताः शालयः स्मृताः ॥

अथ शालीनां नामानि । रक्तशालिः सकलमः पा-

ण्डुकः शकुनाहतः ॥ सुगन्धकः कर्दमाको महा

शालिश्च दूषकः ॥ ३ ॥ पुष्याण्डुकः पुराडरीकस्त

थामहिषमस्तकः ॥ दीर्घशूकः काञ्चनको हाय-

नोलोभ्रपुष्यकः ॥ ४ ॥ इत्याद्याः शालयः सन्ति

वह्वो बह्व देशजाः ॥ ग्रन्थविस्तरं भीतेस्ते सम-

स्ता नात्र भाषिताः ॥ ५ ॥

भा० अनन्तरधान्यवर्गः ॥ उसमें धान्योंके भेद । शालिधान्य व्रीहिधा-
न्य तीसरा शूकधान्य । शिम्बीधान्य क्षुद्रधान्य इस प्रकार सात धान्य क-
हे हैं ॥ १ ॥ लालधान्य शालिधान्य और साठी आदि व्रीहिधान्य ॥ जब
आदिक शूकधान्य मूंग आदि शिम्बीधान्य ॥ २ ॥ और कंगुनी आदि क्षुद्र-
धान्य तथा उसे तृणाधान्य भी कहते हैं ॥ उसमें शालिधान्य कालक्षरा और
गुण ॥ विना कूटे सुफेद और हेमन्त में होनेवाले शालिधान्य कहे गये हैं

॥ अनन्तर धान्योंके नाम ॥ लालधान्य कललमीधान्य पाण्डुक शकुनाह-
त । सुगन्धक कर्दमक महाशाली दूषक ॥ ३ ॥ पुष्याण्डुक पुराडरीक तथा
महिषमस्तक । दीर्घशूक काञ्चनक हायन लोभ्रपुष्यक ॥ ४ ॥ इतने प्रकारके
धान्य हैं । और बह्वन प्रकारके बह्वनसे देशोंमें होते हैं ॥
ग्रन्थवद्विज्ञानके भयसे सब यहाँपर नहीं कहे ॥ ५ ॥

अथ तेषां गुणाः ॥ शालयोः मधुराः स्निग्धा बल्या

बद्धाल्यवर्चसः ॥ कषाया लघयो रुच्याः स्वर्या

दृष्याश्च चंहरणाः ॥ ६ ॥ अल्पानिल कफाः शीताः ।

पित्तला मूत्रला सतया ॥ शालयो दग्ध मृज्जानाः क-
षाया लघुपाकिनः ॥ ७ ॥ सृष्टमूत्रपुरीषाश्च रू-
क्षाः श्लेष्मापकर्षणाः ॥ कैदारा वातपित्तघ्नाः गु-
रवः कफशुक्रलाः ॥ ८ ॥ कषाया अल्पवर्च्च-
स्का मध्याश्चैव बलावहाः ॥

भा० अनन्तर इनके गुण ॥ धानमधुरे चिकने बलको करनेवाले मलको
बांधनेवाले और थोड़ा करनेवाले । कसैले हलके रुचिको करनेवाले ख-
रुको अच्छा करनेवाले शुक्रको अच्छा करनेवाले पुष्ट ॥ ६ ॥ अल्पवातक
फको करनेवाले शीतल पित्तनाशक तथा मूत्रको करनेवाले होते हैं ॥ द-
ग्धभूमिमें उत्पन्न हवे धान कसैले लघुपाकवाले होते हैं ॥ ७ ॥ मूलमूत्र
को करनेवाले रूखे कफको घटानेवाले हैं ॥ खेतके वातपित्तके नाशक
भारी कफशुक्रको करनेवाले हैं ॥ ८ ॥ कसैले अल्पमलको करनेवाले
मध्यबलको करनेवाले हैं ॥

कैदाराः कृष्टक्षेत्रजाः उष्णाः ।

स्थलजाः स्वादेवः पित्तकफघ्ना वातपित्तदाः ॥ कि-
ञ्चित्किताः कषायाश्च विपाके कटुका अपि ॥ ९ ॥

स्थलजाः अकृष्टभूमिजाताः ॥ स्वयंजाताः ।

वापिता मधुरा वृष्या बल्याः पित्तप्रणाशनाः ॥ श्ले-

ष्मलाश्चाल्पवर्च्चस्काः कषायागुरवो हिमाः ॥ १० ॥

भा० कैदार अर्थात् जोतेहवे खेत में बोयेहवे । स्थलमें उत्पन्न हवे मधुर पित्तकफके
नाशक वातपित्तको करनेवाले । कुछसक तिक और कसैले विपाकमें भी कटु
होते हैं ॥ ९ ॥ स्थलज अर्थात् विना जोतेहवे जमीनमें हवे ॥ स्वयं उत्पन्न हवे ।
बोयेहवे मधुर शुक्रको करनेवाले बलको देनेवाले पित्तनाशक हैं ॥ कफको क-
रनेवाले थोड़े मलको करनेवाले कसैले भारी शीतल होते हैं ॥ १० ॥

(क) वापिताः कृष्टक्षेत्रे अकृष्टक्षेत्रे च ।

वापितेभ्यो गुणैः किञ्चित्हीनाः प्रोक्ता अवापिताः।
कृष्टत्वेन अकृष्टत्वेन वा ।

रोपितास्तु नवा वृष्याः पुराणा लघवः स्मृताः ॥

तेभ्यस्तु रोपिता भूयः शीघ्रपाका गुणाधिकाः ॥

॥ ११ ॥ छिन्नरूढाः हिमा रूक्षा बल्याः पित्तकफा

पहाः ॥ बद्धविट्काः कषायाश्च लघवश्चाल्पति

क्तकाः ॥ १२ ॥

[अथ रक्तशालेर्गुणाः]

रक्तशालि वरस्तेषु बल्यो वर्णस्त्रिदोषजित् ॥ च-

क्षुष्यो मूत्रलः स्वर्ग्यः शुक्रलस्तृट् ज्वरापहः ॥

॥ १३ ॥ विषत्रणा श्वासकास दाहनुद्बन्धि पुष्टदः ॥

तस्मादल्यान्तरगुणाः शालयो महदादयः ॥ १४ ॥

रक्तशालिः दा उदरवानी इति लोके । मगधदेशे

प्रसिद्धः ।

(क) बोयेज्जवे जीते रेतमें और बेजीते रेतमें) बोयेज्ज
धीं से कुछ गुणमें हीन वे बोयेज्जवे कहे हैं ॥ जीते ज्जवे रेतमें अथवा वे जीतेज्जवे
रेतमें । बोयेज्जवे नये शुक्रको करनेवाले हैं । और पुराने हलके कहे हैं । उनसे
वे बोयेज्जवे शीघ्रपाक वाले और गुणमें अधिक कहे हैं ॥ ११ ॥ कोमल कटाज
वे शीतल रूखे बलको करनेवाले पित्त कफके नाशक । मलको बांधनेवाले क-
सेले हलके थोड़े तिक्त होते हैं ॥ १२ ॥

[अनन्तर लालधानके गुण ।] उनमें लाल धान श्रेष्ठ है बलको वर्णको कर-
नेवाले शुक्रको करनेवाले तृपाज्वरके नाशक है ॥ १३ ॥ और विषत्रणा उखा
सकास दाह इनके नाशक अग्नि और पुष्टिको देनेवाले है ॥

उस्से अल्पान्तर गुण महाशालि आवि है ॥ १४ ॥ लाल धान इसको लोक
में दाउदरवानी इस प्रकार कहते हैं ॥ यह मगध देशमें प्रसिद्ध है

अथ व्रीहि धान्यस्य लक्षणं गुणाश्च । वार्षिकाः
 कण्डिताः शुक्ला व्रीहयश्चिरपाकिनः ॥ कृष्णा व्री
 हिः पाटलश्च कुक्कुटाण्डक इत्यपि ॥ शालासु-
 खो जतुमुख इत्याद्याः व्रीहयः स्मृताः ॥ १५ ॥ कृ-
 ष्णा व्रीहिः स विज्ञेयो यत् कृष्णानुष तराडुलः ॥
 पाटलः पाटलापुष्प वर्णको व्रीहि रुच्यते ॥ १६ ॥
 कुक्कुटाण्डा कृति व्रीहिः कुक्कुटाण्डक उच्यते ॥
 शालासुखः कृष्ण शूकः कृष्ण तराडुल उच्यते ॥
 १७ ॥ लालावर्णं मुखं यस्य ज्ञेयो जतुमुखस्तु सः ॥
 व्रीहयः कथिताः पाके मधुरा वीर्य्यतो हिताः ॥ १८
 अल्पामिष्यन्दिनी बद्ध वर्चस्काः षष्टिकैः समाः ॥
 कृष्णा व्रीहिवरस्तेषां तस्मादल्पगुणाः परे ॥ १९ ॥

भा० अत्रान्तर व्रीही धानका लक्षण और गुण कहते हैं ॥ बरसाती कुठे
 हवे शुक्ल आर देमें पकनेवाले व्रीहि धानकहे गये हैं ॥ १५ ॥ काला धान
 उसे जानना चाहिये जो काले छिलके के चावल हैं ॥ पाटलाके फूल समान
 नवर्णवाली को पाटल व्रीहि कहते हैं ॥ १६ ॥ मुरगेके अण्डके आकार
 वाली व्रीहि की कुक्कुटाण्डक कहते हैं ॥ शालासुख कृष्ण शूक
 कृष्ण तराडुल ये भी उसके नाम हैं ॥ १७ ॥ लालके समान वर्ण जिसके मुख
 काहो उसे जतुमुख कहते हैं ॥ धान पाकमें मधुर वीर्य्य से हितकहे गये हैं ॥
 १८ ॥ और अमिष्यन्दन करनेवाले मलको बान्धनेवाले सादीके समान
 होते हैं ॥ उनमें काला धान श्रेष्ठ है और बाकी सब उसे गुणमें छोड़े हैं ॥ १९ ॥
 अथ षष्टिकानां लक्षणं गुणाश्च ॥ गर्भस्था एव ये
 पाकं यान्ति ते षष्टिका मताः ॥

अथ षष्टिकानां नामानि । षष्टिकः शतपुष्पश्च प्र-
मोदक मुकुन्दकौ ॥ महाषष्टिक इत्याद्याः षष्टिकाः
समुदाहृताः ॥ २० ॥ एतेऽपि ब्रीहयः प्रोक्ता ब्रीहिल-
क्षणदर्शनात् ॥ षष्टिकाः मधुराः शीता लघ्वो बद्ध-
वर्चसः ॥ २१ ॥ वात पित्त प्रशमनाः शालिभिः सह-
शाः गुणैः ॥

भा० अनन्तर साठी का लक्षण और गुणको कहते हैं ॥ जो गरम में रहते
हुवे ही पाकको प्राप्त होते हैं वो साठी हैं ॥ अनन्तर साठीके नाम ॥
षष्टिक शतपुष्प प्रमोदक मुकुन्दक ॥ महाषष्टिक इत्यादिक षष्टि-
क कहे गये हैं ॥ २० ॥ धानके लक्षण देखनेसे यह धान कहे हैं ॥
साठी मधुर शीतल हलके मसको बान्धनेवाले ॥ २१ ॥ वातपित्तको
शमनकरनेवाले और धानोंके समान गुणमें होते हैं ॥

[तत्र षष्टिकाया गुणाः।]

षष्टिका प्रवरा तेषां लघ्वी स्निग्धा त्रिदोष जित ॥

स्वादी मृद्वी प्राहिणी च बलदा ज्वरहारिणी ॥ २२ ॥

रक्तशालि गुणैस्तुल्या ततः स्वल्पगुणा परे ॥

षष्टिकः साठी इतिलोके । [अथ शूकधान्यानि ।

तेषु यवः प्रसिद्धः ।

भा० उसमें साठीका गुण कहते हैं ॥ उनमें साठी बहुत श्रेष्ठ हलकी त्रि-
कनों त्रिदोषको जीतनेवाली ॥ मधुर मृदु क्रायिज्ञ बलको देनेवाली ।
ज्वरनाशक होती है ॥ २२ ॥ लाल धानके समान गुणमें होती है उसे
और गुणमें स्वल्प होती है ॥ उसको लोकमें साठी ऐसा कहते हैं ॥
अनन्तर शूक धान्य उनमें जव प्रसिद्ध है ॥

अतियवो अतिशूकः कृष्णारुणो वरुणी यवः ॥

तोक्वो हरितो निःशूकः स्वल्पो यवः यवेति प्रसिद्धः ।
 [तेषां नामानि गुणाश्च । यवस्तु शितशूकः स्या
 द्विः शूको ऽति यवः स्मृतः ॥ तोक्वस्तद्वत्स हरि
 तस्ततः स्वल्पश्च कीर्तितः ॥ २३ ॥ यवः कषा
 यो मधुरः शीतलो लेखनो मृदुः ॥ व्रणेषु तिल
 वत् पथ्यो रूक्षो मेधाग्निवर्द्धनः ॥ २४ ॥

भा० अतियव अतिशूक कृष्ण । और अरुणवर्णी यव । तोक्व हरित
 निःशूकस्वल्पयै येह यव इस नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ उनके नाम और व
 गुण कहते हैं ॥ जब तेज नोक चाले होने है और वे नोक चाले अतियव
 कहें गये हैं ॥ तथा तोक्व उसीके समान और हरित उसे अल्पगुण कहा
 गया है ॥ २३ ॥ जब कसैला मधुर शीतल लेखन मुलायम ॥ और व्रण
 में तिलके समान पथ्य रूक्ष मेधा और अग्निको बढ़ाने वाला है ॥ २४ ॥

कटुपाको ऽनभिष्यन्दीं स्वय्यो बलकरो गुरुः ॥
 बद्धवातमलो वर्णस्थैर्यकारी च पिच्छिलः
 ॥ २५ ॥ कण्ठत्वगामय श्लेष्मपित्तमेदप्रणाश-
 नः ॥ पीनसश्वासकासोरुस्तम्भलोहिततृट्
 प्रणुत् ॥ २६ ॥ अस्मादति यवो न्यूनस्तोक्वो न्यू
 नतरस्ततः ॥

भा० पाकमें कटु अभिष्यन्दन करने वाला स्वरको अच्छा करने वाला
 बलकारक भारी ॥ बद्धवातमलको करने वाला और वर्ण स्थिरता
 को करने वाला पिच्छिल है ॥ २५ ॥ और कंठरोग त्ववाके रोग कफ
 पित्तमेद इनका नाशक है ॥ तथा पीनस श्वास कास उरुस्तम्भरक्त
 तथा दूनका नाशक है ॥ २६ ॥ इसे अतियव गुणमें न्यून है और तो
 क्व उसे भी गुणमें न्यून है ॥

[अथ गोधूमस्य नामानि लक्षणं गुणाश्च ।

गोधूमः सुमनोऽपि स्यात्त्रिविधः स च कीर्तितः ॥

महागोधूम इत्याख्यः पश्चाद्देशात् समागतः ॥ २७ ॥

[महागोधूम ।] बड़गोधूमा इति लोके । मधूली तु
ततः किञ्चिदल्पा सा मध्य देशजा ॥ निःशूको
दीर्घगोधूमः क्वचिन्नन्दी सुखाभिधः ॥ २८ ॥ गो-
धूमो मधुरः शीतो वातं पित्त हरो गुरुः ॥ कफशु-
क्रप्रदो बल्यः स्निग्धः सन्धानकृत् सरः ॥ २९ ॥
जीवसो वृंहणो वरण्यो व्रणयो रुच्यः स्थिरत्वकृत्
कफप्रदो नवीनो नतु पुराणः ।

पुराणयवगोधूम दौद्रजाङ्गल शूलभागिति ॥

भा० श्रुनन्तर गेहूं के नाम लक्षण और गुण कहते हैं ॥ गोधूम सुम-
न भी गेहूं के नाम है ॥ वह तीन प्रकार का कहा है ॥ बड़ा गेहूं इस
नाम से पश्चिम देश में जाता है ॥ २७ ॥ महागोधूम ॥ बड़े गोधूमा इ-
स नाम से लोक में प्रसिद्ध है ॥ मधूली भी उससे कुछ अल्प गुरु में ही
ती है ॥ वह मध्य देश में होने वाली है ॥ बुनोक लंबा गेहूं कहीं पर नन्दी
मुख नाम से है ॥ २८ ॥ गेहूं मधुर शीतल वात पित्त का नाशक भारी ॥
कफ शुक्र को करनेवाला बल को करनेवाला चिकना सन्धान करनेवा-
ला सर ॥ जीवन पुष्ट वर्ण को अच्छा करनेवाला व्रण के हित रुचिको
करनेवाला और स्थिरता को करनेवाला है ॥
कफ को करनेवाला नवान नकि पुगुना ॥ पुराणा जब गेहूं मधु हरि-
रा आदियों के मांस का कवाब इनका सेवन करनेवाला होता है ॥

[वाग्भटेन वसन्ते गृहीतत्वात् ॥ मधूली शीतला

स्निग्धा पित्तघ्नी मधुरा लघुः ॥ शुक्रला व्रंहणी प

थ्या तद्वन्नन्दीमुखः स्मृतः ॥ ३० ॥

[अथ शिम्बीधान्यम् । तत्पर्यायानाह ।]

शमीजाः शिम्बिजाः शिम्बीभवाः सूर्याश्रुवैदलाः।

[तेषां गुणाः।] वैदलाः मधुरारूक्षाः कषायाः कटुपा-

किनः ॥ ३१ ॥ वातलाः कफपित्तघ्नः बद्धसूत्रम-

लाहिमाः ॥ वरुते मुद्गमसूराभ्यामन्ये त्वाध्मान

कारिणः ॥ ३२ ॥

भा० वाग्भटने वसन्तमें लिया है । इसवाले मधुली अर्थात् नबहुत बड़ा नकाएण ऐसे गेहूं शीतल पित्तनाशक मधुर होते हैं ॥

शुक्रको करने वाले शुष्ट पथ्य अर्थात् हित होते हैं और उसीके समान नन्दीमुख कहेंगे हैं ॥ ३० ॥ अनन्तर शिम्बीधान्य अर्थात् जो सेममें होता है ॥ उसके पर्यायोंको कहते हैं ॥ शमीज शिम्बिज शिम्बी भवा सूर्याश्रुवैदला यह शिम्बीधानके नाम हैं ॥

उनके गुण । शिम्बीधान्य मधुर रूखे कसैले पाकमें कटु ॥ ३१ ॥ वातको करने वाले कफ पित्तके नाशक मूलको रोकने वाले शीतल ॥ होते हैं ॥ मूंग मसूरको छोड़के बाक़ी सब पदको फुलाते हैं ॥ ३२ ॥

मुद्गमसूरयो राध्मानकारित्वमन्यवैदलापेक्षया

नतु सर्वथा एतयोरपि किञ्चिदाध्मानकारित्वा

त् ।

[नत्र मुद्गस्य गुणाः।]

रूक्षो लघुर्ग्राही कफपित्तहरो हिमः ॥ स्यादुरल्पा

निलो नेत्र्यो ज्वरघ्नो वनजस्तथा ॥ मुद्गो बहुविधः

श्यामो हरितः पीतकस्तथा ॥ ३३ ॥ श्वेतो गृक्षश्च

तेषान्तु पूर्वः पूर्वो लघुः स्मृतः ॥ सुश्रुतं न पुन

प्राक्तौ हरितः प्रवरो गुणैः ॥ ३४ ॥

चरकादिभिरप्युक्तः रघुस्य गुणाधिकः ॥

आ० मूंग मसूरोंको आध्मान कारित्व और दालोंकी अपेक्षासे है नकिस
 वंथा दूनमें भी कुछ आध्मान कारित्व होनेसे । उसमें मूंगके गुण । रूक्षा
 हलका क्विज कफ पित्तका नाशक शीतल ॥ मधुर अल्पवातकोक
 रनेवाला नचकेहित ज्वर नाशकहोताहै । वैसेही दून मूंग होताहै ॥
 मूंग अनेक प्रकारके होतहै । काले हरे पीले ॥ ३३ ॥ सुफेद लालउमें
 पहिले २ हलके कहेहैं ॥ जो सुश्रुतने कहाहै कि हरामूंग गुणमें अधि
 कहोताहै ॥ ३४ ॥ और चरकादि मुनियोंने भी कहाहै कि येही गुणमें
 अधिक होता है ॥ [अथ उडद ।]

माषो गुरुः स्वादु पाकः स्निग्धो रुच्योऽनिलापहः ।

संसनस्तर्पणो बल्यः शुक्रलो वृंहणः परः ॥ ३५ ॥

भिन्नमूत्रमलस्तन्यो मेदः पित्तकफप्रदः ॥ गुद

कीलाहितः श्वासपंक्ति शूलानि नाशयेत् ॥ ३६ ॥

कफपित्तकरा माषाः कफपित्तकरं दधि ॥

कफपित्तकरा मत्स्या वृन्ताकं कफपित्तकृत् ॥ ३७ ॥

आ० माष अर्थात् उडद भारी पाकमें मधुर चिकना रुचिको करनेवाला
 वात नाशक ॥ संसनं तर्पण बलकेहित शुक्रको करनेवाला पुष्ट होता
 है ॥ और मलमूत्रका करनेवाला रुग्णको करनेवाला मेद पित्त और
 कफको करनेवालाहै ॥ और गुद अर्दित श्वासपंक्ति शूल दूनको ना
 श करताहै ॥ ३६ ॥ उडद कफ पित्तको करनेवालाहै । और दही क
 फ पित्तको करनेवालीहै । और मछलियां कफ पित्तको करनेवालीहैं
 तथा वैङ्गन कफ पित्तको करनेवाला है ॥ ३७ ॥

[अथ बोड़ा यस्य च वेरातरा लोविश्राद्धत्यादयो भेदाः]

राजमाषो महामाषश्चपलश्चबलः स्मृतः ॥

राजमाषो गुरुः स्वादु स्तुवरस्तर्पणो सरः ॥ ३८ ॥

रूक्षो वातकारो रुच्यः स्तन्यमूरिबलप्रदः ॥

ऽश्वेतो रक्तस्तथा कृष्ण स्त्रिविधः स प्रकीर्तितः ३८ ॥

यो महांस्तेषु भवति स एवोक्तो गुणाधिकः ॥

भा० अनन्तर बोडायह नाम बनारस में प्रसिद्ध है ॥ और बेरातरा स्तोत्रि-
याइन नामोंसे भी कई शहरोंमें प्रसिद्ध है ॥ राजमाष महामाष चपल च
बल येह लोवियाके नाम कहेहैं ॥ लोविया भारी मधुर कसैला तृप्तिको
करनेवाला सर ॥ ३८ ॥ रूखा वातकारी रुचिको करनेवाला दुग्ध और द
जत बलको देनेवाला है ॥ सुफेद लाल तथा काला ऐसे बौह तीन प्रकार
का कहाहै ॥ ३९ ॥ उनमें जो बड़ाहै वोह गुणमें अधिक होताहै ॥

[अथ निष्यावः । सतु राज सिम्बीबीजं भटवासु इति
लोके ॥ ॥ निःष्यावो राजशिम्बिः स्याद् बल्लकः
ऽश्वेतशिम्बिकः ॥ निष्यावो मधुरो रूक्षो विपाके
ऽरूक्षो गुरुः सरः ॥ ४० ॥ कषायस्तन्यपित्तास्र मू-
त्रवात विबन्धकान् ॥ विदाह्युषो विषफ्लेष्मशो
थहृत्क्षुक्रनाशनः ॥ ४१ ॥

भा० निष्याव । इस्को दरवनमें पावय कहतेहैं ॥ और पूरवमें भटवांस
भी कहतेहैं ॥ यह बड़ीसेमका बीजहै । निष्याव राजशिम्बी बल्लक
ऽश्वेतं शिम्बिक यह सेमके बीजके नामहैं ॥ सेमका बीज मधुर रूखा
विपाकमें खद्य भारी सर ॥ ४० ॥ कसैला और दुग्ध रक्तपित्त मूत्रवात
विवन्ध बनको करनेवालाहै ॥ तथा विदाही गरम विष कफ रूजन इन
का नाशक और शुक्रका नाशक है ॥ ४१ ॥

[अथ मोठ । मकुष्ठो वनसुद्धः स्यान्मकुष्ठक मुकुष्ठकौ

॥ मुकुष्ठो वातलोघ्राही कफपित्तहरो लघुः ॥ ४२ ॥

वन्निजिन् मधुरः पाके कृमिकृतज्वर नाशनः ॥

[अथ मसूर] । मङ्गल्यको मसूरः स्यान् मङ्गल्या

च मसूरिका ॥ मसूरो मधुरः पाके संग्राहि शीत
लो लघुः ॥ ४३ ॥ कफपित्तास्र जिद्रूक्षो वात-
लो ज्वरनाशनः ॥ [अथ रहरी ।] श्राद्धकी तुवरी
चापि सा प्रोक्ता शणुष्यिका ॥ आढकी तुवरा
रूक्षा मधुरा शीतला लघुः ॥ ४४ ॥ ग्राहिणी वात
जननी वर्या पित्तकफास्रजित् ॥

भा० अनन्तर मोठ ॥ मकुष्ठ वनमुद्ग मुकुष्ठक मकुष्ठक । यह मोठके ना
महै ॥ मोठ वातको करनेवाला काबिज्ज कफ पित्तका नाशक हलका होता
है ॥ ४२ ॥ अग्निको जीतनेवाला पाकमें मधुर कृमिको करनेवाला ज्वर ना
शक है ॥ ॥ अनन्तर मसूर ॥ मङ्गल्यक मसूर और मङ्गल्या म
सूरिका । यह मसूरके नामहै । मसूर मधुर पाकमें और काबिज्ज हलका
शीतल होता है ॥ ४३ ॥ तथा कफरक्तपित्त इनको जीतनेवाला वातको
करनेवाला ज्वर नाशक है ॥ [अनन्तर रहरी । आढकी तुवरी और
शणुष्यिका । यह हररके नामहै ॥ रहरी कसैली रूखी मधुर शीतल
हलकी ॥ ४४ ॥ काबिज्ज वातको करनेवाली वर्याको अच्छा करने वाली
पित्तकफ रक्तकी जीतनेवाली है ॥ [अथ छोला]

क्षणाको हरिमन्थः स्यात् सकल प्रिय इत्यपि ॥ च-
णाकः शीतलो रूक्षः पित्तरक्तकफापहाः ॥ ४५ ॥
लघुः कषायो विष्टम्भी वातलो ज्वरनाशनः ॥ स चा-
ङ्गरेण सम्भृष्ट स्तैलभृष्टश्च तत्तुणः ॥ ४६ ॥ आ-
र्द्र भृष्टो बलकरो रोचनश्च प्रकीर्तितः ॥ शुष्क भृ-
ष्टोऽतिरूक्षश्च वातकुष्ठ प्रकोपणः ॥ ४७ ॥ खिन्नः
पित्तकफं हन्यात् रूढः क्षोभकरो मतः ॥ आर्द्रोऽ

ति कोमलोरुच्यः पित्तशुक्रहरो हिमः ॥ ४८ ॥ क
षायो चातलो ग्राही कफपित्तहरो लघुः ॥

भा० अनन्तर छोला ॥ चणक हरिमन्थ और सकल प्रिय । यह चने के नाम हैं ॥ चना शीतल रूखा पित्त कफ रक्त इनका नाशक है ॥ ४५ ॥ और हलका कसैला विष्टम्भी वातको करने वाला । ज्वर नाशक है । बोह अंगारे से भूना डूवा तथा तेलसे भूना डूवा वही गुण वाला है ॥ ४६ ॥ गीला भूना डूवा बल करने वाला और रुचिको करने वाला कहा है ॥ सूखा भूना डूवा वद्वत रूखा वात कुष्ठ का प्रकोप करने वाला है ॥ ४७ ॥ पकी हुई इसकी दाल पित्त कफ को नाश करती है ॥ और क्षोभको करने वाली कही है अति गीली अति कोमल रुचिको देने वाली पित्त शुक्रकी नाशक होती है ॥ ४८ ॥ और कसैली वातको करने वाली क्राविज्ञ कफ पित्तकी नाशक हलकी है

[केराव] कलायो वर्चलः प्रोक्तः सति नश्च हरेणुकः

॥ कलायो मधुरः स्वादु पाके रूक्षश्च शीतलः ॥

॥ ४९ ॥ * [अथ खेसारी ।] त्रिपुटः खण्डिकोऽ

पिस्थान् कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥ त्रिपुटी मधुर स्ति

क्तः सुवरो रूक्षरोगा भृशम् ॥ ५० ॥ कफ पित्त हरो रु

च्यो ग्राहकः शीतल स्तथा ॥ किन्तु खञ्जत्व य

ङ्गत्व कारी वाताति कोपनः ॥ ५१ ॥

भा० अथ केराव । कलाय वर्चल सति न हरेणुक । यह मटर के नाम हैं ॥

मटर मधुर और पाकमें मधुर रूखा शीतल है ॥ ४९ ॥

[अनन्तर खेसारी । त्रिपुट खंडिक यह खेसारी के नाम हैं ॥

अनन्तर उसके गुण कहने हैं ॥ खेसारी मधुर तिक्त कसैली अत्यन्त रूखी ।

॥ ५० ॥ कफ पित्तकी नाशक रुचिको करने वाली क्राविज्ञ तथा शीतल होती है ॥ किन्तु खञ्जत्वा पङ्गुला करने वाली और अधिक वात को करने वाली है ॥ ५१ ॥

[अथ कुलत्थी।] कुलत्थिका कुलत्थश्च कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥ कुलत्थः कटुकः पाके कषायः पित्तरक्तघ्न ॥ ५२ ॥ लघुर्विदाहि वीर्योष्णः श्वासकासकफानिलान् ॥ हन्ति हिक्काश्मरी शुक्रदाहानाहान् सर्पानसान् ॥ ५३ ॥ स्विदसंग्राहको मेदोज्वरकृमिहरः परः ॥

भा० अनन्तर कुरथी। कुलत्थिका कुलत्थ। यह कुरथी के नाम हैं। और अनन्तर इसके गुण कहते हैं ॥ कुलत्थी पाकमें कड़वी कसैली पित्त रक्त को करने वाली है ॥ ५२ ॥ और हलकी विदाही वीर्यमें उष्ण श्वास कास कफ वात इनको नाश करती है ॥ और हिचकी पथरी शुक्र दाह अफारा पथरी। इनको नाश करती है ॥ ५३ ॥ पसीनों को रोकने वाली मेद ज्वर कृमि इनकी नाशक है ॥

[अथ तिलः।] तिलः कृष्णः सितो रक्तः सवर्ण्योऽल्पतिलः स्मृतः ॥ तिलोरसे कटुस्तिक्तो मधुरस्त्वरोगुरुः ॥ ५४ ॥ विपाके कटुकः स्वादुः स्त्रिधोष्णः कफपित्तनुत् ॥ बल्यः केश्यो हिमस्पर्शस्त्वच्यस्तन्योन्नरोगहितः ॥ ५५ ॥ दन्त्योऽल्पमूत्रकृद्ग्राही वातघ्नोऽग्निमतिप्रदः ॥ कृष्णः श्रेष्ठतमस्तेषु शुक्रलोमध्यमः सितः ॥ ५६ ॥ अन्ये हीनतराः प्रोक्तास्तज्ज्ञैरक्तादयस्तिलाः ॥

भा० अनन्तर तिल ॥ तिल काला सफ़ेद लाल सवर्ण्य और अल्पतिल। ऐसा कहा है ॥ तिल रसमें कटु तिक्त मधुर कसैला भारी ॥ ५४ ॥ विपाक में कटु मधुर चिकना गरम कफ पित्तका नाशक है ॥ और बलके हिन केशको अच्छा करनेवाला शीतल स्पर्शवाला त्वचाके हिन दुग्धको करनेवाला

अरामे हित ॥ ५५ ॥ हांतोंके हित अल्प मूत्रको करनेवाला काबिज वातनाशक अग्नि और मतिकी देनेवाला है ॥ उनमें काला बद्धत श्रेष्ठ है और शुक्रको करनेवाला मध्य श्रेष्ठ है ॥ ५६ ॥ और लाल आदिक तिल उनके जाननेवालों ने अत्यन्तही गुण कहे हैं ॥

[अथातिसि।]

अतसी नीलपुष्पी च पार्वती स्यादुमा क्षमा ॥ अ-
तसी मधुरा तिक्ता स्निग्धा पाके कटुर्गुरुः ॥ ५७ ॥
उष्णा दृक् शुक्र वातघ्नी कफपित्त विनाशिनी ॥

[अथ नेरी तोड़ि सेति लोके।] तुवरी ग्राहिणी प्रोक्ता ल-
घ्नी कफ विषासृजित् ॥ तीक्ष्णोष्णा बन्ध्या क-
ण्डू कुष्ठ कौष्ठ कृमि प्रणुत् ॥ ५८ ॥

[अथ रक्तसरीसो पिअरी सरीसो।] सर्षपः कटुकः
स्नेह स्तुन्तुभश्च कदम्बकः ॥ गोरस्तु सर्षपः प्राज्ञैः
सिद्धार्थः इतिकथ्यते ॥ ५९ ॥ सार्षपस्तु रसे पाके
कटु स्निग्धः सतिक्तकः ॥ तीक्ष्णोष्णाः कफ वा-
तघ्नी रक्तपित्ताग्नि वर्द्धनः ॥ ६० ॥

भा० अनन्तर अलसी। अतसी नीलपुष्पी पार्वती उमा क्षमा ॥ यह अलसी के नाम हैं ॥ अलसी मधुर चिकनी तिक्त पाकमें कटु भारी ॥ ५७ ॥ गरम होती है और दृष्टि शुक्र वात इनकी नाशक और कफ पित्त इनकी नाशक है ॥

अनन्तर नेरी इसको तोड़िस इस प्रकार कहते हैं ॥ नेरी काबिज हल का कफ विष रक्त इनको जीतने वाला है ॥ तीखा उष्ण अग्निको करनेवाला है और खुजली कुष्ठ कौष्ठ कृमि इनका नाशक है ॥ ५८ ॥

[अनन्तर लाल मरती और पीली सरसो]

सर्षप कटुक स्नेह तुंगभ कदम्बक यह लाल सरसोंके नाम हैं ॥ पीली मरती को बुद्धिवाती ने सिद्धार्थसे कहा है ॥ ५९ ॥ सरसों रस और पाक

में कटु चिकना कुछ तिक्त ॥ तीखा उष्ण कफ वातका नाशक और रक्त पित्त अग्नि इनका बढ़ानेवाला है ॥

रत्नो हरो जयेत् कण्डू कुष्ठ कोष्ठ कृमिग्रहान् ॥ यथा
रक्तस्तथा गौरः किन्तु गौरो वरो मतः ॥ ६१ ॥

[अथ राई कृष्णा राई । रजीतु राजिका तीक्ष्ण गन्धा कु
ज्जनिका सुरी ॥ क्षवक्षताभिजनकः कृमिकृत् कृ-
ष्ण सर्षपः ॥ ६२ ॥ राजिका कफ पित्तघ्नी तीक्ष्णाष्णा
रक्तपित्तकृत् ॥ किञ्चिद्रूक्षाग्निदा कण्डू कुष्ठ कोष्ठ कृ-
मीन् हरेत् ॥ ६३ ॥ अति तीक्ष्णा विशेषेण तद्वत् कृष्णा
पि राजिका ॥

भा० रातसों का नाशक है कण्डू कोष्ठ कृमि ग्रह इनको जीतता है ॥ जैसे चाल
वैसे पीला किन्तु पीला श्रेष्ठ कहा है ॥ ६१ ॥ [अनन्तर राई काली राई]
राजि राजिका तीक्ष्णगन्धा कुज्जनिका सुरी ॥ यह राईके नाम हैं । छींक औ
र घावको करने वाला कृमिको करनेवाला काला सरसों हीना है ॥ ६२ ॥ राई क
फ पित्तको नाशक तीखी गरम रक्त पित्त को करनेवाली । कुछेक सूखी अग्नि दी
पन खुजली कुष्ठ कोष्ठ कृमि इनको नाश करती है ॥ ६३ ॥ बहुत तीखी इस वि-
शेषण से उसीके सदृश काली राई होती है ॥

[अथ क्षुद्र धान्यम् ।] क्षुद्र धान्यं कुधान्यं च तृणधा-
न्यं गितिस्मृतम् ॥ क्षुद्र धान्यं मनुष्यां स्यात् कषायं
लघु लैखनम् ॥ ६४ ॥ मधुरं कटुकं पाके रूक्षञ्च
क्लेदं षोषकम् ॥ वानकत् वद्ध विट्कञ्च पित्त रक्त
कफा पहम् ॥ ६५ ॥ [तत्र कडुनी ।]

स्त्रियां कडु प्रियङ्गु द्वे कृष्णा रक्ता सिता तथा ॥

पीता चतुर्विधा कङ्कुः स्नासाम्पीना वरास्मृता ॥ ६६ ॥
 कङ्कुःस्तु भग्नसन्धान वातकृत् वृंहणी गुरुः ॥ रूक्षा
 म्लेष्म हरा तीव्र वाजिनां गुणकृद् भृशम् ॥ ६७ ॥
 [अथ चीनां] चीनांकः कङ्कुः भेदोऽस्ति संश्लेषः क
 ङ्कुः वदुरोः ॥ [अथ श्यामा] श्यामांकः शोषणो
 रूक्षो वातलः कफपित्तहृत् ॥

भा० अनन्तर क्षुद्रधान्य । क्षुद्रधान्य कुधान्य नृण धान्य येह छोटे ना
 ज के नामहैं ॥ क्षुद्रधान्य शीतल कत्तैला हलका लेखन ॥ ६४ ॥ मधुर
 पाकमें कटु रूखा कफको सुखानेवाला ॥ वातको करनेवाला और मलको
 वान्धनेवाला पित्त रक्त और कफका नाशक है ॥ ६५ ॥
 उनमें कंगुनी । खी लिङ्गमें कङ्कुः प्रियङ्गु ये दोनों होते हैं । काली लाल सुफेद
 तथा पाली ऐसी चार प्रकार की कंगुनी होती हैं ॥ उनमें पीली श्रेष्ठ कही है ॥
 ॥ ६६ ॥ कंगुनी दूटे हाड़को जोड़नेवाली वातकृत पुष्ट भारी ॥ रूखी कफकी
 अत्यन्त नाशक है और घोंघोंको असन्तुष्टी गुण करनेवाली है ॥ ६७ ॥
 अनन्तर चीना ॥ चीना कंगुनी का भेद है उसके गुणमें कंगुनीके समान जा
 नना चाहिये ॥ [अनन्तर सांवा । सांवा शोषण रूखा
 वात को करनेवाला कफ पित्तका नाशक है ॥

[अथ कोद्रवः]

कोद्रवः कोर दूषः स्यादुद्दाली वनको द्रवः ॥ कोद्र
 वो वातलो ग्राही हिमपित्तकफापहः ॥ ६८ ॥ उद्द
 लस्तु भवेदुष्णो ग्राही वातकरो भृशम् ॥

[अथ चारुकः सरबीजः । चारुकः सरबीजः स्यात्
 कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥ चारुको मधुरोरूक्षोरक्त
 पित्त कफापहः ॥ ६९ ॥ शीतलो लघु वृष्य श्रुत-

कषायो वातकोपनः ॥ [अथ वंशबीजः ।]

यवा वंश भवा रूक्षाः कषायाः कटु पाकिनः ॥ व

द्वमूत्राः कफघ्नाश्च वातपित्तकराः सराः ॥ ७० ॥

[अथ वरेसुम्भबीजः ।] कुसुम्भ बीजं वरदा सैव प्रोक्ता

वरटिका ॥ वरदा मधुरा स्निग्धा रक्त पित्त कफापहा ।

॥ ७१ ॥ कषाया शीतला गुर्वी स्यादवृष्या निलापहा ॥

भा० [अनन्तर कीदों ।] कीद्व व कीरद्व यह कीदों के नाम हैं और वन कीद्व व उद्दाल यह वन कीदों के नाम हैं ॥ कीदों वात को करनेवाला काकिज शीतल क फ का नाशक है ॥ ६५ ॥ वन कीदों उष्ण काकिज और अत्यन्त वात को कर नेवाला है ॥ [अनन्तर चारुक सरबीज का नाम हैं ।] अनन्तर उस्का गुण कहने हैं ॥ सरबीज मधुर रूखा रक्तपित्त कफ इनका नाशक है ॥ ६६ ॥ और शीतल हलका शुक्रको उत्पन्न करनेवाला कसेला वातको करनेवाला है ॥

[अनन्तर वांसके बीज ॥ वांसके बीज रूखे कसेले और कटु पाकवों ले हैं ॥ मूत्रको रोकनेवाले कफ नाशक वात पित्त को करनेवाले सर होते हैं ॥ ७० ॥

[अनन्तर वरे कुसुम्भबीजः ।] कुसुम्भबीज वरदा और वही वरटिका भी कहा है । वरदा मधुर चिकना और रक्त पित्त कफ का नाशक है ॥ ७१ ॥ और कसेला शीत ल मारी शुक्रको करनेवाला वात नाशक होता है ॥

[अथ गरहेडु आ । गवेधुका तु विद्वद्भिर्गवेधुः कथि

तास्त्रियाम् ॥ गवेधुः कटुका स्वाही कार्पण्यकृत् कफ

नाशिनी ॥ ७२ ॥ [अथ तीनी । प्रसाधिकानु

नीवार स्तरान्त मितिच स्मृतम् ॥ नीवारः शीत-

लोग्राही पित्तघ्नः कफवातहृत् ॥ ७३ ॥

[अथ पुनेरा ।]

पवनाः स्तोहितः स्वादु क्षौहितः श्लेष्मपित्तजित् ।

अवृष्य स्तुवरो रूक्षः क्षौद्रकृत् कथितो लघुः ॥७४॥
 धान्यं सर्व्वं नवं स्वादु गुरु श्लेष्म करं स्मृतम् ॥ नत्तु
 वर्षोषितं पथ्यं यतो लघुतरं हितम् ॥७५॥ वर्षोषि-
 तं सर्व्वधान्यं गौरवं परिमुञ्चति ॥ नत्तु त्यजति वीर्य्यं
 स्वं क्रमान् मुञ्चत्यंतः परम् ॥७६॥ एतेषु यव गोधू-
 म तिलमाषा नवा हिताः ॥ पुराणा विरसा रूक्षा न-
 तथा गुणकारिणः ॥ ७७ ॥

भा० अनन्तर गरहेडुआ। गवेधुका को तो विद्वानों ने गवेधु ऐसा स्त्रीलिंग में कहा है ॥ इसको देवधान कहते हैं। देवधान कड़वा मधुर कृष्णता को करने वाला कफ पित्तका नाशक है ॥ ७२ ॥

[अनन्तर तिन्त्री ॥ प्रसाधिका नीवार और तृणान्त। यह तिन्त्री के नाम हैं। तिन्त्री शीतल काविज्ञ पित्त नाशक कफ वातको करने वाला है ॥ ७३ ॥

[अनन्तर पुनेरा] घवना लोहिम यह पुनेरा के नाम हैं ॥ पुनेरा लालमधुर कफ पित्तको जीतने वाला है ॥ और शुक्र का नाशक कसीला ग्लानि को करने वाला हलका कहा है ॥ ७४ ॥

सब नया धान मधुर भारी और कफ को करने वाला कहा है ॥ वोह ऊपर से वरसान निकला ऊँचा हिन होता है क्यों कि वोह बड़न हिनका होता है ॥ ७५ ॥ ऊपर से वरसान गुजर जाने पर सब धान भारीपनकी छोड़ देने हैं ॥ परन्तु अपने वीर्य्यको नहीं छोड़ते इसके उपरान्त क्रमसे छोड़ देते हैं ॥ ७६ ॥

हनेमें जब गेहूँ तिल उदद ये नये हिन हैं ॥ पुराने वेरस रूखे और वेसे गुणकारी भी नहीं हैं ॥ ७७ ॥

(क) पुराणा वर्ष द्वया दुपरि स्थिता। यवादयो नवाः
 स्वास्थ्यान् प्रतिहिताः। पथ्याणि नान्तु पुराणा हिताः
 । पुराणा यव गोधूम क्षौद्र जाङ्गल शूल्य भुगिति
 चासन्ते वाग्भटे नोक्तवान् ॥

इति श्री भावप्रकाशे धान्यवर्गः ॥ ❀ ॥

भा० (क) पुराने अर्थात् दो वरस से ऊपर के जब आदिक नये निरोगियों के हित है ॥ और पथ्य भोजन करने वालों को तो पुराने हित है ॥

पुराने जव गेहूं मधु हरिण आदियों के मांस का कवाब इनको भोजन करने वा ला ॥ इस प्रकार वसन् ऋतुमें वाग्भट ने कहा है इससे ॥

इति श्री भावप्रकाश में धान्यवर्गः ॥ ❀ ॥

अथ शाकवर्गः । तत्र शाक निरूपणम् ।]

पत्रं पुष्पं फलं नालं कन्दं संस्वेदजं तथा ॥ शाकं

षड्विधमुद्दिष्टं गुरुविद्याद्यथोत्तरम् ॥ ७८ ॥

[अथ शाकानां गुणाः । प्रायः शाकानि सर्वाणि

विष्टम्भीनि गुरूणि च ॥ रूक्षाणि बद्धवर्चीसिस्तु

ष्टविण् मारुतानि च ॥ ७९ ॥ शाकं भिन्नति वपुर

स्थिनिहन्ति नेत्रम् ॥ वर्णं विनाशयति रक्तमथा

पिशुकम् ॥ ८० ॥ प्रज्ञाक्षयश्च कुरुते पलितञ्च

नूनम् ॥ हन्ति स्मृतिं गतिमिति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ८१

भा० अनन्तर शाकवर्ग उमें शाक निरूपण ॥ पत्र फूल फल नाल कन्द तथा संस्वेदज ॥ इस प्रकार छः प्रकार का साग कहा है ॥ उनमें यथोत्तर भारी जाने ॥ ७८ ॥ [अनन्तर शाकों के गुण] प्रायः सब शाक विष्टम्भी और भारी हैं ।

तथा रूखे बद्ध मल को करने वाले और मल वात को करने वाले हैं ॥

॥ ७९ ॥ साग शरीर की अस्थि को भेदन करता है और नेत्र को नाश करती है

॥ तथा वर्ण को नाश करता है और रक्त तथा शुक को भी नाश करता है ॥

॥ ८० ॥ बुद्धि का क्षय भी करता है । सिर के बाल धीले भी होते हैं ॥ और स्मृति तथा मति को भी नाश करता है ऐसा उसके जानने वालों ने कहा है ॥ ८१

॥ ८१ ॥ शाकानि सर्वाणि विष्टम्भीनि गुरूणि च ॥ रूक्षाणि बद्धवर्चीसिस्तु

शाकैषु सर्वेषु वसन्ति रोगास्ते हेनवा देह विनाश-

नाय ॥ तस्मात् बुधः शाक विवर्जनन्तु कुर्व्यात्त
 धाक्लेषु सखदोषः ॥ ८२ ॥ सन्तानि शाक निन्द
 कानि वचनानि सामान्यानि ॥

अथ शाकेषु विशिष्टानि वचनानि । [तत्र पत्रशाका
 नि] [तत्रापि वास्तूक द्वयस्य नामानि गुणाश्च ।]

वास्तुकं वास्तुकञ्च स्यात् क्षार पत्रञ्च शाकराट् ॥

तदेव तु वृहत्पत्रं रक्त स्याद्गौडं वास्तुकम् ॥ ८३ ॥

प्रायशो यव मध्ये स्याद्यवशोकं मतः स्मृतम् ॥

वास्तू कद्वितयं स्वादु क्षारं पाके कटुदितम् ॥ ८४ ॥

दीपनं पाचनं रुच्यं लघु शुक्रबल प्रदम् ॥ सरं

स्तीहास्य पित्रार्शः कृमिदोष त्वयापहम् ॥ ८५ ॥

भा० सब सागों में रोग बसते हैं वही देह नाशके कारण हैं ॥ इस वास्ते बु
 द्विवान् साग न सेवन करे वैसेही अस्त्रमें भी वही दोष है ॥ ८२ ॥ यह साग की
 निन्दके सामान्य वचन हैं ॥ अनन्तर शाकमें विशेष वचन

की कहते हैं ॥ [उत्तमें पत्रशाक । उत्तमें भी दोनों वधुवों के नाम और

गुण कहते हैं ॥ वास्तूक और वास्तुक भी होता है ॥ क्षारपत्र प्रकराट् ।

यह बधुवे के नाम हैं । वही बड़े पत्तोंका लाल होता है । उसको गौड वास्तुक

कहते हैं ॥ ८३ ॥ प्रायः जवके बीचमें होता है इसवास्ते जवशाक कहा है ॥

दोनों वधुवे मधुर क्षार पाकमें कटुवे कहे हैं ॥ ८४ ॥ और दीपन पाचन रुचि

को करनेवाले हलका शुक्रबल को देनेवाले हैं । सर पिलही रक्त पित्त ववासीर

कृमी नीनों दोष इनके नाशक हैं ॥ ८५ ॥

[अथ पोतकी] पोतक्यु पोदिका सा तु मालवा मृत व-
 ल्लरी ॥ पोतकी शीतला स्निग्धा श्लेष्मला चान-

पित्तनुत् ॥ ८६ ॥ अकराद्या पिच्छला निद्रा शु-
क्रदारक्त पित्तजित् ॥ बलदा रुचिकृत् पथ्या वृ-
हणी नृप्तिकारिणी ॥ ८७ ॥

[अथ श्वेतमरुसा ।] लोहितमरुसा नवडा इति च ।
मारिषो वाय्व्यको मार्षः श्वेतो रक्तश्च संस्मृतः ॥
मारिषो मधुरः शीतो विष्टम्भी पित्तनुत गुरुः ॥ ८८
वातश्लेष्मकरो रक्त पित्तनुत विषमाग्नि जित् ॥
रक्तमार्षो गुरुर्नानि सक्षारो मधुरः सरः ॥ ८९ ॥
श्लेष्मलः कटुकः पाके स्वल्पदोष उदीरितः ॥

भा० अनन्तर पोईकी साग ॥ पोतकी उपादिका मालवा अमृतवत्तर
येह पोईके नाम हैं ॥ पोई शीतल चिकनी कफको करने वाली वात
पित्तकी नाशक है ॥ ८६ ॥ कंठके अहित पिच्छल निद्रा और शुक्र
को करने वाली तथा रक्त पित्तको जीतने वाली है ॥ और बल को देने वा-
ली रुचिकी करने वाली पथ्य शुष्ट तथा नृप्तिकी करने वाली है ॥ ८७
॥ अनन्तर सुफेद मरसा ॥ और लाल मरसा नवडा इस प्रकार भी
कहत है ॥ मारिष वृष्यक मार्ष येह मरसेके नाम हैं ॥ वोह लाल औ
र सुफेद कहा है ॥ मरसा मधुर शीतल विष्टम करने वाला पित्तका ना-
शक मारी है ॥ ८८ ॥ वातकफको करने वाला रक्त पित्तका नाशक
विषम अग्निको जीतने वाला है ॥ लाल मरसा बहुत भारी नहीं होता ।
और क्षीरके सहित मधुर सर होता है ॥ ८९ ॥ और कफको करने वा-
ला पाकमें कटु और अल्पदोष करने वाला कहा है ॥

[अथ चवराई । अल्पमरुसा इति च । तराडुलीयो
मेघनादः काराडे रस्तगडुलेरकः ॥ भराडीरस्त
राडुलीबीजो विष म्रश्चाल्पमारिषः ॥ ९० ॥ त-

एडुलीयो लघुः शीतो रूक्षः पित्तकफास्रजित् ॥

सृष्टमूत्रमलो रुच्यो दीपनो विषहारकः ॥ ६१ ॥

[अथ चवराई भेदः। जलतराडुलीयं शास्त्रे कचटमिति।

प्रसिद्धम् ॥ पानीयं तराडुलीयन्तु कचटं समुदाहृत-

म् ॥ कचटं तिक्तं रक्तपित्तानिलहरं लघु ॥ ६२ ॥

[अथ पलकी। पलक्या चास्तुका काना च्छुरिका चीरि

तच्छुदा ॥ पलक्या चातला शीता श्लेष्मला भेदिनी

गुरुः ॥ ६३ ॥ विष्टम्भिनी मदश्वासपित्तरक्तकफापहाः।

भा० अनन्तर चवराई। छोट्टा मरसा इस प्रकार कहने हैं। तराडुलीय मेघनाद काण्डेर तंडुलैरक ॥ मंडीर तंडुली बीज विषघ्न अल्पमारिष। ये ह चवराई के नाम हैं ॥ ६० ॥ चवराई हलकी शीतल रूखी पित्त कफ रक्त इनको जीतने वाली है ॥ और मल मूत्रको करने वाली रुचिकी करने वाली दीपन। विषनाशक है ॥ ६१ ॥

अनन्तर दूसरे किसमकी चवराई ॥ यनिया चवराई शास्त्रमें कचट इस नामसे प्रसिद्ध है। पानीय तंडुलीयक कचट। इस प्रकार कहा है ॥ यनिया चवराई तिक्त रक्तपित्त और वात इनकी नाशक हलकी होती है ॥ ६२ ॥ [अनन्तर पालक। पलक्या वाम्बुका कारा अर्थीत् वयुवेकीसी च्छुरिका चीरी तच्छुदा यह पालक के नाम हैं ॥ पालक वातको करनेवाला शीतल कफको करनेवाला भेदनभारी है ॥ ६३ ॥

और विष्टम्भको करनेवाला तथा मदश्वासपित्तरक्तकफ इनकानाशक

[अथ नरिचा कालशाकमिति च। नाडिकं काल

शाकञ्च श्राद्धशाकञ्च कालकम् ॥ कालशाकं

सरं रुच्यं वातघ्नं कफशोथहन् ॥ ६४ ॥ अत्यं

रुचिकरं मेध्यं रक्तपित्तहरं हिमम् ॥

[अथ पटुआ । यह शाकस्त नाड़ीको नाड़ीशाकश्च सः
स्मृतः ॥ नाड़ीको रक्त पित्तघ्नो विष्टम्भी वातको
पनः ॥ ६५ ॥ [अथ कलम्बी । कलम्बी शत
पर्वी च कथ्यन्ते तद्गुण अथ ॥ कलम्बी स्तन्यदा
प्रोक्ता मधुरा शुक्र कारिणा ॥ ६६ ॥

भा० अनन्तर नरेवा । इसको कालासागभी कहते हैं ॥ नाड़ीक कालशाक
श्राद्ध शाक कालक । यह कार्ल साग के नाम हैं । कालासाग रुचिको करने वा
ला सर वायुको करनेवाला और कफ रोगका नाशक है ॥ ६५ ॥ तथा बलको क
रनेवाला रुचिकर कान्तिकी करनेवाला रक्त पित्त का नाशक शीतल है ॥

[अनन्तर पटुवा ।]

पटुशाक नाड़ीक नाड़ीशाक । यह पटुवा के नाम हैं ॥ पटुवा रक्तपित्त का ना
शक विष्टम्भ करनेवाला वातका कोपन है ॥ ६५ ॥

अनन्तर कलम्बी साग । कलम्बी शतपर्वी । यह कलगी सागके नाम हैं ॥
अनन्तर उसके गुण कहते हैं । कलगी दुग्धको करनेवाली कही है ॥ और म
धुर शुक्रको करनेवाली है ॥ ६६ ॥

[अथ लोणी । वह लोणी । लोणा लोणी च कथिता ।
वह लोणी तु घोटिका ॥ लोणी रूक्षा स्मृता गुर्वी वा
तश्लेष्म हरी पटुः ॥ ६७ ॥ अशोद्धी दीपनी चाम्ला
मन्दाग्नि विषनाशिनी ॥ घोटिका म्लासरा चोष्णा
वातकृत् कफ पित्त हृत् ॥ ६८ ॥ वाग्दोष ब्रण गु
ल्मघ्नी श्वास कास प्रमेह नुन् ॥ शोथ लोचन रोगे
च हिता तज्जै रुदाहता ॥ ६९ ॥

भा० अनन्तर नोनिया छोटी और बड़ी ॥ लोणा लोणी यह नोनिया के ना
म हैं ॥ और बड़ी नोनिया को घोटिका कहते हैं ॥ नोनिया रूखी कही है ।
और भारी वात कफकी नाशक ममकीन होती है ॥ ६७ ॥

और बवासीर की नाशक दीपन खट्टी होती है ॥ तथा मन्दाग्नि विष इनकी नाशक है ॥ बड़ी नोनिया खट्टी सर गरम वातको करने वाली कफ पित्तकी नाशक है ॥ ६८ ॥ बारागी का दोष व्रण वायुगोला इनकी नाशक है ॥ तथा श्वास कास प्रमेह इनकी नाशक ॥ तथा सूजन और नेत्र रोगमें भी हित है । ऐसा उसके जानने वालोंने कहा है ॥

[अथ चाङ्गेरी अम्बिली नारति च ।]

चाङ्गेरी चुक्रिका दन्त शठाम्बुष्टास्त्र लोणिका ॥ अ
स्मन्तकस्तु शफरी पिसली चास्त्रपत्रकः ॥ १०० ॥ चा
ङ्गेरी दीपनी रुच्या रूक्षोष्णा कफ वात नुत् ॥ पित्तला
म्बला ग्रहरथर्षाः कुष्ठाती सारनाशिनी ॥ १०१ ॥

[अथ चूक । चुक्रिका स्यात् तुपत्राम्बुष्टा रोचनी शतवेधि
नी ॥ चुक्रा त्वम्बुष्टा स्वादी वातघ्नी कफ पित्त हन्
॥ १ ॥ रुच्या लघुतरा पाके घृन्ताके नाति रोचनी ॥

भा० अनन्तर चाङ्गेरी यह चूकका भेद है ॥ चांगेरी चुक्रिका दन्त शठ अम्बुष्टा अम्बुष्टा लोणिका । यह चाङ्गेरी के नाम हैं ॥ और अस्मन्तक शफरी पिसली अम्बुष्टा पत्रक यह भी उसके नाम हैं ॥ १०० ॥ चांगेरी दीपनी रुचिको करनेवाली रूक्षी उष्ण कफ वातकी नाशक ॥ पित्तको करनेवाली है । खट्टी होती है । और संग्रहणी बवासीर कुष्ठ अतीसार इनकी नाशक है ॥ १०१ ॥ [अनन्तर चूक] चुक्रिका पत्राम्बुष्टा रोचनी शतवेधिनी ॥ यह चूक के नाम हैं ॥ चूक बद्धत खट्टी मधुर वातनाशक कफ पित्तको करनेवाली ॥ १०१ ॥ रुचिको करनेवाली पाकमें बद्धत हलकी वैगनमें बद्धत रुचिको करनेवाली नहीं होती ॥

[अथ चेषुना । नाडीच वत् ।]

चिञ्चा चञ्चु श्रञ्चु की च दीर्घ पत्रा सतिज्ञका ॥

चुञ्चुः शीता सरा रुच्या स्वाही दोषत्रया पहा ॥ १०३

धातु पुष्टि करी बल्या मेध्य पिच्छिलका स्मृता ॥

[अथ हिलमोचिका । हर हर इति लोके ॥

ब्राह्मी शङ्ख धरा चारी ब्राह्मी च हिल मोचिका ॥

शोथं कुष्ठं कफं पित्तं हरते हिल मोचिका ॥ १०४ ॥

[अथ शिरीयारी । शितिवारः शितिवरः स्वस्तिकः

सुनिषणाकः ॥ श्रीवारकः सूचिपत्रः परीकः

कुक्कुटः शिखी ॥ १०५ ॥ चाङ्गेरी सदृशः पत्रं श्र-

तुर्द्वल इतीक्षितः ॥ शाको जलान्विते देशे चतुः

पत्नीति चोच्यते ॥ १०६ ॥ सुनिषणो हिमो याही ।

मोह दोष त्वयापहः ॥ अविदाही लघुः स्वादुः

कषायो रूक्ष दीपनः ॥ १०७ ॥ वृथो रुच्यो ज्वर

त्रवास मेहकुष्ठ भ्रम प्रणुत् ॥

भा० अनन्तरचेवुना । विञ्चा चुञ्चु । चुञ्चुकी दीर्घपत्रा सतिरुका ये ह चावुना के नाम हैं ॥ चावुना शीतल सर रुचिको करनेवाला मधुर तीनों दोषोंका नाशक है ॥ १०३ ॥ धातु पुष्ट करनेवाला बलको करनेवाला कान्तिको करनेवाला पिच्छिलकहा है ॥

[अनन्तर हर हर । ब्राह्मी शंखधरा चारी ब्राह्मी हिलमोचिका ये हर हर के नाम हैं ॥ हर हर सूजन कुष्ठ कफ पित्त इनको हरता है ॥

१०४ ॥ [अनन्तर शिरीयारी ॥ शितिवार शितिवर स्वस्तिक सुनिषणाक ॥ श्रीवारक सूचिपत्र परीक कुक्कुट शिखी यह शिरीयारी के नाम हैं ॥ १०५ ॥ ये चाङ्गेरी के समान पत्र वैपत्ती कहा गया है ॥ यह साग जलान्वित देश में वैपत्ती रोसा कहते हैं ॥ १०६ ॥ शिरीयारी शीतल का विज्ञ हीती है और मोह तथा तीनों दोष इनकी

नशोकं है ॥ और अविदाही हलकी मधुरं कसेली रूसी दीपन है ॥
 ॥ १०७ ॥ और पत्रको करनेवाली और रुचिको करनेवाली है । और
 चर श्वास प्रमेह कृष भ्रम इनकी नाशक है ॥

[अथ मुरई पत्रम् ॥ पाचनं लघु रुच्योष्णं पत्रं मूल
 कजं नवम् ॥ स्नेह सिद्धं त्रिदोषघ्नं मसिद्धं कफपि-
 त्तकृत् ॥ १०८ ॥ [अथ गुम्मा । दोगा पुष्पी दलं स्वा-
 दु रूक्षं गुरु च पित्त कृत् ॥ भेदनं कामला शोथ
 मेह ज्वर हरं कटु ॥ १०९ ॥

अनन्तर मूलीके पत्ते ॥ नये मूलीके पत्ते पाचन हलके रुचिको करने
 वाले उष्ण होते हैं ॥ और चिकनाई में सिद्ध किये जावे त्रिदोष नाशक
 और कचे कफ पित्तको करने वाले हैं ॥ १०८ ॥ [अनन्तर गुम्मा ।
 गुम्माका पत्र मधुर रूखा भारी पित्तको करनेवाला है ॥ और भेदन
 कामला सूजन प्रमेह ज्वर इनका नाशक कटु है ॥ १०९ ॥

[अथ जवाइन ।]

यवानी शाक माग्नेयं रुच्यं वात कफ प्रणुत् ॥

उष्णं कटु च तिक्तं च पित्तलं लघु शूलहृत् ॥ ११० ॥

[अथ चकबड । दद्रुघ्नपत्रं दोषघ्नं मूलं वात कफा

पहम् ॥ कण्डूकास कृमि श्वास दद्रू कुष्ठ प्रणुत् लघु

॥ १११ ॥ [अथ सेहराड । सेहराडस्य दलं तीक्ष्णं दीपनं रोच-

नं हरेत् ॥ आध्मानाष्ठीलिका गुल्म शूल शोथो

हराणि च ॥ ११२ ॥

भा० अनन्तर अजवाइन का साग ।] अजवाइन का साग गरम रुचि
 को करनेवाला वात कफ का नाशक है । और उष्ण कटु तिक्त पित्तको
 करनेवाला है ॥ हलका और शूल को हरनेवाला है ॥ ११० ॥

[चकवड् । चकवड् के पत्र दौष नाशक खट्टे और वात कफ के नाशक हैं ॥
और बुजली कास कमि श्वास दाद कौढ इनका नाशक है ॥ १११ ॥
[अनन्तर थूहर के पत्ते। सेहंड के पत्ते नीखे दीपन रोचन होते हैं ॥ और आ
ध्मान अर्थात् वायगोला भूल सूजन और उदर रोग इनका नाश करता
है ॥ ११२ ॥

[अथ दवन पापरा ।]

पर्यटो हन्ति पित्तास्र ज्वर तृष्णा कफ भ्रमान् ॥ सं
ग्राही शीतलस्तिक्तो दाहनुद्वातलो लघुः ॥ ११३ ॥

[अथ गोभी] गोजिह्वा कुष्ठमेहास्र कृच्छ्र ज्वरहरो ल
घुः ॥ [अथ पटोल पत्र । पटोल पत्रं पित्तघ्नं दीपन
म्पाचनं लघु ॥ स्निग्धं दृष्यं तयोष्णाञ्च ज्वर कास
कृमि प्रणुन ॥ ११४ ॥

भा० अनन्तर पित्त पापडा । पित्तपापडा रक्तपित्तज्वर तथा कफ भ्रम इन
का नाश करता है । और काविज्ञ शीतल निक्त दाह इनकी नाशक वातको क
रनेवाला हलका होता है ॥ ११३ ॥

अनन्तर गोभी । गोभी कौढ प्रमेह रक्त सूत्र कृच्छ्र ज्वर इनकी नाशक हलकी
। चिकनी शुकको करनेवाली तथा उष्ण ज्वर कास कमि इनकी नाशक है
॥ ११४ ॥

[अथ गुडूची । गुडूची पत्र माग्नेयं सर्वं ज्वर हरं लघु
॥ कषायं कटु तिक्तञ्च स्वादुपाकं रसायनम् ॥ ११५ ॥
॥ बल्यमुष्णाञ्च संग्राहि हन्यात् दौष त्रयं तृषाम् ॥
दाह प्रमेह वातासृक् कामला कुष्ठ पाण्डुताम् ॥
॥ ११६ ॥ [अथ कसौदी ।

काम मर्द्दी और मर्दम्ब कासारिः कर्कषास्तथा ॥

कासमहदं दलं रुच्यं चर्ष्यं कासविषाखनुत् ॥ ११३ ॥ मधुरं
कफवातघ्नं पाचनं कराहशोधनम् ॥ विशेषतः कास
हरं पित्तघ्नं ग्राहकं लघु ॥ ११८ ॥

भा० अनन्तर गिलोयके पत्रे ॥ गिलोयके पत्र गरम सब ज्वरके नाशक हलके ॥ कसैले कड़वे तिक्त पाकमें मधुर रसायन ॥ ११५ ॥ बलको करने वाले उष्ण काबिज होते हैं । और तीनों दोष तथा तृषा इनका नाश करते हैं ॥ और दाह प्रमेह वातरक्त कामला कुछ पाराडुरोग इनका भी नाश करता है ॥ ११६ ॥ अनन्तर कसौंदी । कासमहदं अरिमहदं कासारि तथा कर्कश यह कसौन्दीके नाम हैं ॥ कसौन्दीके पत्र रुचिको करनेवाले शुक्रको करनेवाले और कास विषरक्त इनके नाशक हैं ॥ ११७ ॥ और मधुर कफवातके नाशक पाचनकराहके शोधन है ॥ विशेषकरके कास नाशक पित्तनाशक हैं और काबिज हलके हैं ॥ ११८ ॥

[अथ चराक ।

रुच्यञ्चरां कशाकं स्यात् दुर्जरं कफवातघ्नम् ॥ अम्लं
विष्टम्भजनकं म्पित्तनुत् दन्तशोधकम् ॥ ११९ ॥

[अथ केराव । कलायशाकम्भेदि स्यात्त्रयु तित्तन्त्रिदोषजित् ॥

[अथ सरिसो ।] कदुकं सार्षपं शाकं बृहमूत्रमलं गुरु ॥

अम्लपाकं विदाहि स्यादुष्णं रूक्षं त्रिदोषजित् ॥ १२० ॥

भा० अनन्तर चनेका साग । चनेका साग रुचिको करनेवाला है । और दुर्जर कफवातको करनेवाला ॥ और बृहदा विष्टम्भ करनेवाला पित्तनाशक और दंतोंकी सूजनको दूर करनेवाला है ॥ ११९ ॥ [अनन्तर मटरका साग । मटरकी साग भेदन करनेवाला हलका तित्त त्रिदोषको जीतनेवाला है ॥ [अनन्तर सरिसोका साग । सरिसोका साग कड़वा बद्धत मूत्रमलको करनेवाला भारी ॥ पाकमें अम्ल विदाही उष्ण रूखा त्रिदोषको जीतनेवाला है ॥ १२० ॥

सुक्षारं लवणान्तादाणं स्वादुशाकेषु निन्दितम् ॥

[अथ पुष्यशाकानि । तत्रागस्ति पुष्यस्य गुणाः ॥

अगस्ति कुसुमं शीतं चातुर्थक निवारणम् ॥ नक्तास्थ
नाशनन्तिकं कषायं कटु पाकिच ॥ १२१ ॥ पीनस प्ले-
ष्म पित्तघ्नं वातघ्नं मुनिभिर्मतम् ॥

[अथ कदली पुष्पम् ।] कदल्याः कुसुमं स्निग्धं मधुरं तु-
वरं गुरु ॥ वात पित्तहरं शीतं रक्तपित्तक्षयप्रणुत् १२२
शोभाञ्जन ।] शिग्रोः पुष्पन्तु कटुकन्ताक्षणां स्नायु
शोथकृत् ॥ कृमिहृत् कफवातघ्नं विद्रधि स्नीह गुल्म
जित् ॥ १२३ ॥ मधुशिग्रो स्त्वक्षिहितं रक्तपित्तप्रसादनं

भा० क्षार के सहित नमकीन तीखी मधुर और सागोंमे निन्दित है ॥
अनन्तर पुष्प झाकोंको कहते हैं ॥ उनमें अगस्ति के फूलका गुण कहते हैं
॥ अगस्तिका फूल शीतल और शैथेया को दूर करने वाला है ॥ और रतीन्धीका
नाशक तिक कसेला पाकमें कटु होता है ॥ १२१ ॥ और पीनस कफ पित्तका ना-
शक वातनाशक होता है । ऐसा मुनियोंने कहा है ॥

[अनन्तर केलेका फूल । केलेका फूल चिकना मधुर कसेला भारी ॥ वात पित्तका
नाशक शीतल और रक्त पित्त क्षय इनका नाशक है ॥ १२२ ॥ सहिंजता ।
सहिंजनेका फूल कड़वा तीखा उष्ण स्नायु शोथको करने वाला ॥ कृमिका ना-
शक कफ वातका नाशक और विद्रधि पिलाहि वायगोला इनको जीतने वाला है
॥ १२३ ॥ लाल सहिंजता नेत्रके हित रक्त पित्तकी अच्छा करनेवाला है ॥

अथ शाल्मली पुष्पम् । शो ल्मली पुष्पं शकन्तु घृतसैन्ध-
वसाधितम् ॥ प्रदरं नाशयत्येव दुःसाध्यञ्च न शंसयः
॥ १२४ ॥ रसे पाकेच मधुरं कषायं शीतलं गुरु ॥ कफ पित्ता
सृजिहृ ग्राहि वातलञ्च प्रकीर्तितम् ॥

[अथ फल शकानि ।] तत्र कुष्माण्डस्य नामानि गुणाश्च ।

कूष्माण्डं स्यात्पुष्प फलमपीत पुष्पं घृत फलम् ॥

कूष्माण्डं वृंहणं वृष्यं गुरु-पित्तास्रवाननुत् ॥ १२६ ॥
 वालं पित्तापहं शीतं मध्यमं कफकारकम् ॥ वृहं ना-
 नि हिंसं स्वादु सक्षारन्दीपनं लघु ॥ १२७ ॥ वस्ति शुद्धि-
 करं चेतो रोगहन् सर्व्वं दोष जित् ॥

भा० अनन्तर सेमलका फूल ॥ सेमल के फूलका साग घृत सेन्धव सेसिद्ध किया हुआ कष्टसाध्य प्रदरको भी नाश करता है इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ १२४ ॥ रस शीत और प्राकर्म कटु मधुर कसेना शीतल भारी होता है ॥ और कफ रक्त पित्त इनको जीतने वाला है काविज्ज वातको करने वाला कहा है ॥ १२५ ॥ अनन्तर फूल श्राक । उनमें पेठेके नाम और गुण । कूष्माण्ड पुष्य फल पीत पुष्य वृहन फल यह पेठेके नाम हैं ॥ पेठा पुष्ट शुक्रको करने वाला भारी रक्त पित्त और वात इनका नाशक है ॥ १२६ ॥ छोटा पित्तनाशक और शीतल होता है और मध्यम कफ करने वाला ॥ तथा बड़ा बहून शीतल नहीं होता और मधुर क्षारके सहित दीपन हलका ॥ १२७ ॥ वस्तिको शुद्ध करने वाला मानसिक रोगोंका नाशक और सब दोषों को जीतने वाला है ॥

[अथ कोहडी ।] कूष्माण्डी तु भृशं लघ्वी कर्कासुरपिकीर्ण-
 तम् ॥ कर्कासुरग्रीहिराणी शीता रक्त पित्तहरा गुरुः ॥ १२८
 पक्वा तिल्लग्नि जननी सक्षार कफवातनुत् ॥

[अथ लवलौआ । गृहलौआ ।] अलाचूः कथिता तुम्बी द्विधा
 दीर्घी च वर्तुला ॥ मिष्टतुम्बी दलं हृद्यं पित्तप्लेष्मापहं
 गुरु ॥ १२९ ॥ वृष्यं रुचिकरं प्रोक्तं धातुपुष्टि विवर्द्धनम्

भा० अनन्तर छोटा पेठा ॥ छोटा पेठा बहून हलका होता है । और इसको कर्कासुरी कहते हैं ॥ छोटा पेठा काविज्ज शीतल रक्त पित्तका नाशक और भारी होता है ॥ १२८ ॥ पक्वा तिल्ल आग्निको करने वाला क्षारके सहित कफ वात का नाशक है ॥ अनन्तर लांका । अलाचू तुम्बी यह लौकी के नाम हैं ॥ यह दो प्रकारकी होती है लंबी और गोल ॥ भीठी तुम्बी के पत्र दृद्य पित्त कफके ना-

शक भारी होते हैं ॥ १२८ ॥ और जुंक्र को करनेवाला रुचिकर धातु पुष्टि को ब
दाने वाला है ॥ [अथ तीतलोकी ।]

इक्ष्वाकुः कटु तुम्बी स्यात् सा तुम्बी च महाफला ॥ कटु
तुम्बी हिमाहृद्या पित्तकासविषापहाः ॥ १३० ॥ तिक्ता क
टुर्विपाके च वातपित्तज्वरान्तकत् ॥

[अथ ककड़ी ।] एर्वीरुः कर्कटी प्रोक्ता कथ्यन्ते तद्गुणा अ-
थ ॥ कर्कटी शीतला रूक्षा ग्राहिणी मधुरा गुरुः ॥ १३१ ॥
रुच्या पित्तहरा सामापेक्षा नृणाग्निपित्तकत् ॥

भा० अनन्तर तीतिलोकी ॥ इक्ष्वाकु कटु तुम्बी यह तीतिलोकी के नाम हैं बंगह
बड़े फलवाली होती है ॥ कटु तुम्बी शीतल हृद्य पित्तकास विष इनको ना-
शक है ॥ १३० ॥ तिक्त विपाक में कटु होती है और वात पित्त ज्वर इनकी नाश
कहै ॥ अनन्तर ककड़ी । एर्वीरु कर्कटी येह ककड़ी के नाम हैं ॥ अनन्त
र उसके गुण कहते हैं ॥ ककड़ी शीतल रुखी का विज्ञ मधुर भारी ॥ १३१ ॥ रुचिकी
करनेवाली पित्तनाशक कच्ची होती है ॥ और पकी हुई नृणा अग्नि पित्त इनकी करे

[अथ चिचिण्डा ।] चिचिण्डा श्वेतराजिः स्यात्सुदीर्घा गृह
कूलकः ॥ चिचिण्डो वातपित्तघ्नो वल्यः पथ्यो रुचिप्रदः
॥ शोषिणोऽतिहितः किञ्चिद्गुरोर्न्यूनः पटोलतः ॥
१३२ ॥ अथ करेला करेली । कारवेल्लं कटिल्लं
स्यात् कारवेल्ली ततो लघुः ॥ कारवेल्लं हिमं भेदि लघु
तिक्तमवातलम् ॥ १३३ ॥ ज्वरपित्तकफास्रघ्नं पाराडु मेह
कुमीन् हरेत् ॥ तद्गुणा कारवेल्ली स्याद्विशेषा दीपनी ल-
घुः ॥ १३४ ॥

भा० अनन्तर चिचेंडा ॥ चिचेंडा श्वेतराजि सुदीर्घ गृहकूलक । यह चिचि

डेकेनामहै ॥ चिचिंटा वात पित्तकानाशक बलकेहित पथ्य रुचिको देनेवा-
लाहै ॥ सुकनेवाले अतिहित और परबलसे कुछ एक गुणमें न्यूनहीताहै ।
१३२ ॥ अनन्तर करेला और करेली ॥ कारवेस्र कठिल यह करलेकेनामहै
और करेली उसे छोटीहीतीहै ॥ करेला शीतल भेदनकरनेवाला हलका मि-
क्तवातको नकरनेवालाहै ॥ १३३ ॥ और ज्वर पित्तकफ रक्त दूनकीनाशक
है ॥ और पांडुरोग प्रमेह कृमिइनकीहरताहै । करेली उसीके समान गुणमें
होतीहै विशेषकरके दीपन हलकीहै ॥ १३४ ॥ [अथनेत्रुआ।]

महाकोशातकी प्रोक्ता हस्तिघोषा महाफला ॥ धामा
र्गवो घोषकश्च हस्तिपर्णाश्च सस्मृतः ॥ १३५ ॥ महा-
कोशातकी स्निग्धा रक्तपित्ता निलापहा ॥

[अथ तोरई ।] धामार्गवः पीतपुष्पो जालिनी कृतवेधना

। राजकोशातकी चेतितथोक्ता राजिमत्तफला ॥ १३६ ॥

राजकोशातकी शीता मधुरा कफवातना ॥ पित्तघ्नी

दीपनी श्वासज्वरकास कृमिप्रणान् ॥ १३७ ॥

भा० अनन्तर घीयातुरई ॥ महाकोशातकी हस्ति घोषा महाफला धामार्ग
व घोष हस्तिपर्णा यह घियातुरई के नाम कहैहैं ॥ १३५ ॥ घियातुरई विक-
नो रक्त पित्त वातइनकीनाशकहै ॥ [अनन्तर तुरई ॥ धामार्गव
पीतपुष्पा जालिनी कृतवेधना ॥ राजकोशातकी यह तोरई के नामहैं तथा ल-
कीरोंसे युक्त फलहोताहै ॥ १३६ ॥ तुरई शीतल मधुर कफ वातकीकरनेवाली
पित्तनाशक दीपनहीतीहै और श्वासज्वरकास कृमि इनकीनाशकहै ॥ १३७ ॥

अथपटोर । पटोलः कूलकस्तिक्तः पाराडुकः कर्कश

च्छदः ॥ राजीफलः पाराडुफलो राजेयश्चामृता फ-

लः ॥ १३८ ॥ चीजगर्मः प्रतीकश्च कुष्ठहा कासभञ्जनः

॥ पटोलं पाचनं हृद्यं तृष्यं लघ्वग्निदीपनम् ॥ १३९ ॥

स्निग्धोष्णं हन्ति कासांश्च ज्वरदोषत्रयकृसीन् ॥ पटो
लस्य भविन्मूलं विरेचन करं सुखात् ॥ १४० ॥ नालं
श्लेष्महरं पत्रं पित्तहारि फलं पुनः ॥ दोषत्रय हरं प्रो-
क्तं तद्वृत्तिका पटोलिका ॥ १४१ ॥

[अथकुन्दुरी ।] विस्वी रक्तफला तुराडी तुराडकेरी च वि-
म्बिका ॥ ओष्ठोपम फला प्रोक्ता पीलुपर्णी च कथ्यते ॥
॥ १४२ ॥ विम्बिफलं स्वादु शीतं गुरु पित्तास्य वातजित् ॥
स्तम्भनं लेखनं रुच्यं विबन्धाध्मान कारकम् ॥ १४३ ॥

सा० अनन्तर परवेल ॥ पटोल कुलक निक पाण्डुक कर्कशच्छद ॥ राजीफल
पाण्डुफल । राजेय अमृताफल ॥ १३८ ॥ बीजगर्भ प्रतीक कुष्ठहा कास भंजन यह पर
बल के नाम है ॥ परवल पाचन हृद्य शुक्रको उत्पन्न करनेवाला हलका अग्निदीपन
॥ १३९ ॥ चिकना उष्ण है और कास श्वास ज्वर नौनोंदोष कृमि इनको नाश करता है
॥ परवल को जड़ सुखसे विरेचन करनेवाली है ॥ १४० ॥ नाल कफ नाशक पत्र
पित्त नाशक और फल ॥ त्रिदोषनाशक कहा है उसी प्रकार निक पटोलिका है ॥
१४१ ॥ [अनन्तर कुन्दरू ॥ विस्वी रक्तफला तुराडी केरी विम्बिका ॥ ओष्ठोपम
फला पीलुपर्णी यह कुन्दरू के नाम कहे हैं ॥ १४२ ॥ कुन्दरू फल मधुर शीतल
भारी रक्त पित्त वात इनको जीतने वाले हैं ॥ स्तम्भन लेखन रुचिको करनेवाला
विबन्ध और आध्मान करने वाला है ॥ १४३ ॥

[शैम्बिशेवा ।] शिम्बिः शिम्बी पुस्तशिम्बीस्तथा पुस्त-
क शिम्बिका ॥ शिम्बी हृद्यञ्च मधुरं रसेपाके हिंसं गुरु
॥ १४४ ॥ त्रल्यं दाहकरं प्रोक्तं श्लेष्मलं चातपित्तजित् ॥
[अथ सुवराशैम्बि । कोलशिम्बिः कृष्णफला तथा प
र्यङ्गु पटिका ॥ कोलशिम्बिः समीरञ्जी गुख्युष्णा क-

फ पित्तकृत् ॥ १४५ ॥ शुक्राग्नि सादकृत् वृष्या रुचिकृत्
 वद्धविड्गुरुः ॥ [अथ सौहिजना फल।]
 सौभाजनफलं स्वादु कषायं कफ पित्तनुत् ॥ शूलकु
 ष्ट क्षयं श्वास गुल्महृद्दीपनं परम् ॥ १४६ ॥

भा० अनन्तर सेम सेमा । शिम्बि शिम्बी पुस्तशिम्बी तथा पुस्तक शिम्बिका
 यह सेमके नाम हैं ॥ दोनों सेम मधुर रस और फलमें और शीतल भारी होती
 हैं ॥ १४५ ॥ वनके हिन दाह कर कफको करनेवाले और वात पित्तकी जीतने
 वाले हैं । (अनन्तर सुवरासेम इसको आलकुशीभी कहते हैं । कालशिम्बी
 कृष्णफला तथा पर्यङ्क पट्टिका यह आलकुशीके नाम हैं ॥ आलकुशी
 वातनाशक भारी उष्ण कफ पित्तको करनेवाली है ॥ १४५ ॥ और शुक्र
 अग्निमान्द्य इनकी करनेवाली शुक्रकी करनेवाली रुचिकी करनेवाली म
 लको वान्धनेवाली भारी है ॥ अथ सौहिजना । सहिजनका फल जं.
 मधुर कसैला कफ पित्तका नाशक है ॥ और शूल कुष्ठ क्षय श्वास वायुगोला
 इनका नाशक और अत्यन्त दीपन है ॥ १४६ ॥

[अथ भण्डा।] वृन्ताकं स्त्री तु वार्ताकु भण्डाकी भागिका
 कापि च ॥ वृन्ताकं स्वादु शीतलौघां कटुपाक मपित्तल-
 म् ॥ १४७ ॥ ज्वर वात वलासंघं दीपनं शुक्रलं लघु ॥ तद्वा-
 लं वाफ पित्तं वृद्धं पित्तकरं लघु ॥ १४८ ॥ वृन्ताकं पित्त-
 लं किञ्चित् अङ्गार परिपाचितम् ॥ कफ मेदो निलाभ-
 ह्य मत्यर्थं लघुदीपनम् ॥ १४९ ॥ तदेवहि गुरु स्निग्धं स-
 तैलं लवणात्नितम् ॥ अपरं श्वेतवृन्ताकं कुक्कुटासद स
 न भवेत् ॥ १५० ॥ तदर्शः सुविशेषेण हितं हीनञ्च पूर्व
 वत् ॥

भा० अनन्तर वैंगन । वृन्ताक वार्ताकु भण्डाकी भागिका ।
 यह वैंगन के नाम हैं ॥ वैंगन मधुर तीखा उष्ण पाकमें कटु और पित्तको न करने

वालाहै ॥ १४७ ॥ और ज्वर वात कफ इनका नाशक है । दीपन शुक्रको करनेवाला हलका है ॥ वैसेही कच्चा कफ पित्तका नाशक और बड़ा पित्त करनेवाला हलका होताहै ॥ १४८ ॥ अंगारे पर पकायाहुवा कुळ्एक पित्तको करनेवाला है ॥ और कफ मेद वात आम इनकानाशक अत्यन्त दीपन हलकाहै ॥ १४९ ॥ बोही भारी विकना ते ल और लवणके युक्त होताहै ॥ दूसरा सफ़ेद वैंगन मुरगेके अरुहे समान होताहै ॥ १५० ॥ बोह ववासीर में विशेषकरके हितहै और पूर्ववत् हीनभी है ॥

अथ डिण्डिश । डिण्डिशो रोमशफलो मुनिनिर्मित इत्य

पि ॥ डिण्डिशो रुचिकृद्देदी पित्तश्लेष्मा यहः स्मृतः ॥

॥ १५१ ॥ सुशीतो वातलो रूक्षो मूत्रलश्चाशमरी हरः ॥

अथ पिराडारः ॥ पिराडारं शीतलं बल्यं पित्तघ्नं रुचिकार-

कम् ॥ पाके लघु विशेषण विषशान्तिकरं स्मृतम् ॥ १५२ ॥

[अथ खैरवसा ।] कर्कोटकी पीतपुष्पा महाजालीति चोच्यते ॥ क-

र्कोटी मलहत कुष्ठहृल्लासा रुचिनाशनी ॥ १५३ ॥

ः श्वास कास ज्वरान् हन्ति कटु पाकाच्च दीपनी ॥

भा० अनन्तर टिंडा ॥ डिण्डिश रोमशफल मुनिनिर्मित येह टिंडेके नाम हैं ॥ टिंडा रुचिके करनेवाला भेदन पित्त कफका नाशक कहाहै ॥ १५१ ॥

और सुशीतल वातको करनेवाला रूखा मूत्रको करनेवाला अशमरी नाशकहै

॥ अनन्तर पिराडार ॥ पिराडार शीतल बलको करनेवाला पित्तनाशक रुचिको करनेवाला ॥ पाकमें हलका और विशेषकरके विषकीशान्ती को करनेवाला कहाहै ॥ १५२ ॥

अनन्तर खैरवसा ॥ कर्कोटकी पीतपुष्पा महाजाली । यह खैरवसेके नामहैं ॥ खैरवसा मलनाशक और कुष्ठ हृल्लास अरुचि इनका नाशकहै ॥ १५३ ॥ और श्वास कास ज्वर इनको नाश करता है तथा पाकमें कटु दीपनहै ॥

अथ करेरुआ । डोडिका विषमुष्टिश्च डोडीत्यपि सुमुष्टि

का ॥ डोडिका पुष्टिदा वृष्या रुच्या वह्निप्रदा लघुः ॥ १५४

हन्ति पित्त कफार्शोसि कृमि गुल्म विषामयान् ॥

[अथ करटकारी फलम् । करटकारी फलं तिक्तं कटुकं
दीपनं लघुः ॥ कृष्णीषां श्वास कासघ्नं ज्वरानिल कफा
पहम् ॥ १५५ ॥ [अथ नालशाकानि ।]

तत्र सर्षप नालम् । तीक्ष्णोष्णं सार्षपं नालं वातश्लेष्म
घ्नणायहम् ॥ करडू वमिहरं दद्रू कुष्ठघ्नं रुचिकारकम्
॥ १५६ ॥

भा० अनन्तर करेरुआ । डोडिका विषमुष्टि डोडि सुमुष्टिका । यह करे
रुआ के नाम है ॥ करेरुआ उष्टिकानेवाली अग्निदीपन हलकी होती है ॥
॥ १५४ ॥ और पित्तकफ बवासीर छमि वायगोला विषरोग इनको नाशक
रती है ॥ अनन्तर कटेलीका फल ॥ कटेलीका फल तिक्तकटु दीपन
हलका ॥ रूखा उष्ण है और श्वास कास इनका नाशक तथा ज्वर वात क-
फ इनका नाशक है ॥ १५५ ॥ [अनन्तर नालशाक ॥ उनमें सरसोका
नाल ॥ सरसों का नाल तीखा गरम होता है और वात कफ द्रष्टा इनका नाशक
है और खुजली वमन इनका नाशक तथा दादकुष्ठ खुजली इनका नाशक त-
था रुचिको करनेवाला है ॥ १५६ ॥ [अथ कन्द शाकानि ।

[तत्र सूरणस्य नामानि गुणाश्च । सूरणः कन्द ओलश्च
कन्दलोऽर्शोघ्न इत्यपि ॥ सूरणो दीपनो रूक्षः कषायः क
ण्डू क्त कटुः ॥ १५७ ॥ विष्टम्भी विशदो रूच्यः कफार्शः
कृन्तनो लघुः ॥ विशेषादर्शसे पथ्यः स्नीहा गुल्म विना
शनः ॥ १५८ ॥ सर्वेषां कन्दशाकानां सूरणः श्रेष्ठ उच्यते
॥ दद्रुणां रक्तपित्तिनां कुष्ठिनां न हितो हि सः ॥ १६० ॥ स-
न्धानयोगं सम्प्राप्तः सूरणो गुणवत्तरः ॥

भा० अनन्तर कन्दशाक ॥ उनमें सूरणके नाम ॥ और गुण । सूरणकन्द ओल

कन्द भर्षाद्य यह सूत्रन के नाम हैं ॥ सूत्रन दीपन रूखा कसेला राज करनेवाला कटु होता है ॥ १५७ ॥ और विष्टम्भ करनेवाला विशद रुचिको करनेवाला कफ बवासीर का नाशक हलका है ॥ विषोषकरके बवासीर में पथ्य है और पित्तही बायगोला इनका नाशक है ॥ १५८ ॥ सब कन्द शाकोंमें सूत्रण श्रेष्ठ कहा है ॥ दाद वाले और रक्तपित्त वाले तथा कुष्ठ वाले इनको बोह हित है ॥ १६० ॥ संधान योग में प्राप्त रूखा सूत्रण अधिक गुणवाला होता है ॥

[अथ आरु।] आरुकमप्यालूकं तत् कथितम् ॥

[वीरसेनश्च ।] काष्ठालुकं शङ्खलुकं हस्त्यालुकानि कथ्यन्ते ॥ पिण्डालुकं सप्तालुकं रक्तालुकानि चोक्तानि । काष्ठालुकं काठिन्ययुक्तं कठारु । शङ्खलुकं श्वेततायुक्तम् । शङ्खरु । हस्त्यालुकं दीर्घतायुक्तं महाशरीरम् । पिण्डालुकं वर्तुलम् । सुथनी । सप्तालुकं मधुरतायुक्तं रोमान्वितं दीर्घसुथनी । रक्तालूरक्तारुरतडा इति च । आलुकं शीतलं सर्वं विष्टम्भि मधुरं गुरु ॥ सृष्टमूत्रमलं रूक्षं दुर्जरं रक्तपित्तनुत् ॥ १६१ ॥ कफानिलकरं बल्यं चृष्यं स्वल्पाग्निवर्द्धनम् ॥

भा० अनन्तर आलू ॥ आरुक आलूक यह आलूके नाम हैं । वीरसेनने भी । कठियां आलू संरवालू हस्त्यालू कहे हैं ॥ पिण्डालु सप्तालुक रक्तालु यह कहा है ॥ काष्ठालुक काठिन्ययुक्त कठारु । शङ्खलुक श्वेतता युक्त । शङ्खरु । हस्त्यालुक दीर्घता के युक्त बड़ा । पिण्डालु गोल । सुथनी । सप्तालुक मधुरता संयुक्त रोमोंकरके युक्त लंबी सुथनी होती है । रक्तालू अर्थात् शकरकन्द । सब आलू शीतल विष्टम्भ करने वाले मधुर भारी ॥ मल मूत्रको करनेवाले रूखे दुर्जर रक्त पित्तके नाशक हैं ॥ १६१ ॥ कफ वात को करनेवाले बलके हित शुक्रको करने वाले अल्प अग्निको बढ़ानेवाले हैं ॥

[अथ अरुई ।] रक्तालुभेदे पाटिया तन्वीच पृथितालुकी ॥

आलुकी बलकृत स्निग्धा गुर्वी हृत्कफ नाशिनी ॥१६२॥

विष्टम्भकारिणी तैले ललिताति रुचिप्रदा ॥

[अथ वोची मुरईनेवार मुरई ।] मूलकं द्विविधं प्रोक्तं

तत्रैकं लघुमूलकं ॥ शालमर्कटकं विस्त्रं शालेयं मरु

सम्भवम् ॥ १६३ ॥ चारणक्यमूलकं तीक्ष्णं तथा मूलक-

पोतिका ॥ नेपालमूलकं चान्यत् तद्भवेद्गजदन्तवत् ॥

॥ १६४ ॥ लघुमूलकं कटूपां स्याद्द्रुच्यं लघुच पाचनम् ॥

दोषत्रय हर स्वयं ज्वर श्वासं विनाशनम् ॥ १६५ ॥

नासिका कण्ठ रोगघ्नं नयनामय नाशनम् ॥ महत्तदे-

व रूक्षोष्णं गुरुदोषत्रय प्रदम् ॥ १६६ ॥ स्नेह सिद्धं त-

देवं स्यात् दोषत्रय विनाशनम् ॥

भा० अनन्तर अरवी ॥ रत्नालु का भेद छीलनेमें पतलाछिलका होता है वोह अरवी है ॥ अरवी बलको करनेवाली चिकनी और भारी हृदय के कफकी नाशक है ॥ १६२ ॥ तैलेमें भुनी हुई विष्टम्भ करनेवाली और रुचिको देनेवाली है ॥

अनन्तर मूली ॥ मूली दो प्रकारकी कही है । उसमें एक छोटी मूली । शालमर्कटक विस्त्र शालेय मरुसंभव ॥ १६३ ॥ चारणक्य मूलक तीक्ष्ण तथा मूलकपोतिका ॥ येह मूलीके नाम हैं । और दूसरी नेपाली मूली तथा उक्ता भेद हाथीके दांतके समान होती है ॥ १६४ ॥ छोटी मूली कड़वी गरम होती है ॥ और रुचिको करनेवाली हलकी पाचन होती है ॥ और तीनों दोषोंकी नाशक स्वरको अच्छा करनेवाली और ज्वर श्वासकी नाशक है ॥ १६५ ॥ और नासिका रोग तथा कंठरोग इनके नाशक और नेत्र रोगकी नाशक है ॥ वोही बड़ी रूक्षी गरम भारी तीनों दोषोंकी छेदनेवाली है ॥ १६६ ॥ स्नेह स्निग्ध सिद्धि वोही है तीनों दोषोंकी नाशक है ॥ -

[अथ गाजर । गाजरं गृज्जनं प्रोक्तं तथा नारङ्गवर्णकम् ॥

गाजरं मधुरं तीक्ष्णं तिक्तोष्णं दीपनं लघु ॥ १६७ ॥ संघा-

हि रक्तपित्ताशी ग्रहणी कफ वात जित् ॥

[अथ केराकन्द । शीतलः कदली कन्दे वल्यः केष्योऽस्य

पित्तजित् ॥ वृद्धि कदाह हारीच मधुरो रुचिकारकः ॥

॥ १६८ ॥ [अथ मानकन्द । मानकः स्यात् महापत्रः क-

थ्यन्ते तदुणा अथ ॥ मानकः शोथहृच्छीतः पित्त रक्त

हरो लघुः ॥ १६९ ॥ अथ वाराहीकन्दः । गेठी इति लोके ।]

वाराही पित्तला वल्या कद्दीतिका रसायनी ॥ आयु शुक्रा

ग्निघ्नम् मेह कफ कुष्ठा निला पहा ॥ १७० ॥

भा० अनन्तर गाजर । गाजर गुंजन नांगवर्णक यह गाजर के नाम हैं ॥ गा
जर मधुर तीखा उष्ण दीपन हलका होता है ॥ १६७ ॥ और काविज रक्त पित्त ब-
वासीर संग्रहणी कफ वात इनको जीतने वाला है ॥

अनन्तर केलाकन्द । केलाकन्द शीतल बलको देने वाला केशके अम्लपित्तको
जीतने वाला है ॥ अग्निदीपन दाहका नाशक मधुर रुचिको करने वाला है ॥

॥ १६८ ॥ अनन्तर मानकेचू । मानक महापत्र होने है । अनन्तर इसके गु-
ण कहते हैं ॥ मानकेचू शोथका नाशक शीतल पित्त रक्तका नाशक हलका

होता है ॥ १६९ ॥ अनन्तर वाराहीकन्द ॥ इसको गेठी इस प्रकार लोकमें क-
हते हैं ॥ वाराहीकन्द पित्तको करने वाली बलकेहित कडवी तिक्त रसायनी ॥

और आयु शुक्र अग्निकी करने वाली और प्रमेह कफ कुष्ठ वात इनकी नाशक
है ॥ १७० ॥

[अथ हस्तिकर्णा । गजकर्णात् तिक्तोष्णा तथा वान

कफाञ्जयेत् ॥ शीतज्वर हरी स्वादुः पाके तस्यास्तु कन्द

कः ॥ १७१ ॥ पारडु शोथ कृमि स्त्रीह गुल्मानाहो दरा पहः ॥

ग्रहरायत्री विकारघ्नो वनसूरग कन्दवत् ॥ १७२ ॥

[अथ केमुक । केमुआ इति लोके ।]

केमुक कडक पाके तिक्तं ग्राहि हिमं लघुः ॥ दीपनं पाचनं
 हृद्यं कफ पित्तज्वरापहम् ॥ १९३ ॥ कुष्ठ कास प्रमेहासना
 शनं वातलं कटु ॥ [अथ कसेरु चिचोद ।] कसेरु द्वि-
 विधन्तु महद्राजकसेरुकम् ॥ सुस्ताकृतिर्लघु स्याद्य-
 त्चिचोद मिति स्मृतम् ॥ १९४ ॥ कसेरुक द्वयं शीतं
 मधुरं तुवरं गुरु ॥ पित्त शोणित दाहघ्नं नयनासय नाश-
 नम् ॥ १९५ ॥ ग्राहि शुक्रानिल श्लेष्मारुचि स्तन्यकरं
 स्मृतम् ॥

भा० अनन्तर हस्तिकरी । हस्तिकरी तिक्त उष्ण तथा वात कफ इनको जी-
 तती है और शीत ज्वर की नाशक पाकमें मधुर होती है उसका कन्द ॥ १९१ ॥
 पांडुरोग सूजन कृमि पिलही बायगोला आनाह उदररोग इनको नाशक है ॥
 और संग्रहणी ववासीर विकारका नाशक है यह वनस्पति के समान होता है
 ॥ १९२ ॥ अनन्तर केमुआ । केमुक कडवा पाकमें तिक्त काविज शीतल
 हलका होता है ॥ दीपन पाकमें हृद्य कफ पित्त ज्वर इनका नाशक है ॥ १९३ ॥
 और कुष्ठ कास प्रमेह रक्त इनका नाशक वातको करनेवाला कटु होता है ॥
 अनन्तर कसेरु और चिचोद ॥ कसेरु दो प्रकारका होता है उसमें बड़ा राजक
 सेरुक ॥ और माथेके आकार छोटा जो होता है उसको चिचोद ऐसा कहा है ।
 ॥ १९४ ॥ दोनों कसेरु शीतल मधुर कसेले भारी ॥ पित्त रक्त दाह इनके ना-
 शक और नेत्ररोगों का नाशक है ॥ १९५ ॥ काविज शुक्र वात कफ अरुचि
 दुग्ध इनको करनेवाला कहा है ॥

[अथ कसेरुभिः सीडा ।] पद्मादिकन्दः शालूकङ्कुरहाट

श्च कथ्यते ॥ मृणालं मूलम्भिस्माराडं लजाशुकञ्च

कथ्यते ॥ १९६ ॥ शालूकं शीतलं वृथ्य पित्तदाहासनुद्

गुरु ॥ दुर्जरं स्वादु पाकञ्च स्तन्यानिल कफप्रदम् ॥ १९७ ॥

संग्राहि मधुरं रूक्षमभिसारणं मपि तद्गुणम् ॥ बालं ह्यना-
 त्वं जीर्णं व्याधितः क्रिमिभलितम् ॥ १७८ ॥ कन्दं वि-
 चर्जयेत् सर्वं यद्वाऽग्न्यादि विदूषितम् ॥ अति जीर्णम-
 कालोत्थं रूक्षं सिद्धमदेशजम् ॥ १७९ ॥ कर्कशं को-
 मलं चाति शीतव्यालादि दूषितम् ॥ संशुष्कं संक-
 लं शाकं नाश्लीयान्मूलकं विना ॥ १८० ॥

भा० अनन्तर कसेरु मिस्रीडा ॥ पदम आदियों के कन्दों को शलूक और कर
 हाट कहते हैं ॥ मृगाल मूल भिस्माराड लजाशूक यह भी कवल ककड़ीके
 नाम हैं ॥ १७६ ॥ कवलककड़ी शीतल सुक्रको करनेवाली पित्तदाह रक्त दू-
 नकी नाशक भारी है ॥ और दुर्जर पाकमें मधुर दुग्ध वान कफ इनको कर-
 नेवाली है ॥ १७७ ॥ तथा काबिज मधुर रूखी भित्तराड भी उसीके समान गुण
 में है ॥ कच्चा वेमौसम का जीर्ण व्याधित कीड़ोंने खाया हुआ ॥ १७८ ॥ सेता
 मव कन्द व्यागदेवे अथवा जो अग्नि आदि से दूषित ॥ बहुत जीर्ण वे मौसम का
 रूखा सिद्धकिया अदेशज ॥ १७९ ॥ अति कर्कश अतिकोमल और शीतल स-
 र्व आदिसे दूषित ॥ बहुत सूखा हुआ सब शाक मूलीके विना नसेवन करे ॥ १८०
 (क) अतैलादि सिद्धं रूक्षं अदेशजम शुभस्थानजम् ॥

[अथ स्वदेशज शाकानि तेषां नामानि गुणाश्च ।]

उक्तं संस्वेदजं शाकं म्भूमिच्छन्नं शिलीन्द्रकम् ॥ क्षिति
 गोमय काष्ठेषु वृक्षादिषु तदुद्भवेत् ॥ १८१ ॥ सर्वं संस्वेद-
 जाः शीताः दोषलाः पिच्छलाश्च ते ॥ गुरवश्छर्द्यती-
 सार ज्वरश्लेष्मा मय प्रदाः ॥ श्वेत शुभस्थली काष्ठवं-
 शगो व्रण सम्भवाः ॥ नातिदोषं करास्ते स्युः शेषास्ते भ्यो-
 विगर्हिताः ॥ १८३ ॥ संस्वेदजा च्छाता इतिलोके ।

इति श्री भावप्रकाशे शाकवर्गः ॥ ❀ ॥

तेल आदि से नसिद्ध हवा रूक्ष शुभस्थान में हवा ॥ अनन्तर संस्वेदन शाक वृन्को नाम और गुण ॥ संस्वेदन शाक उसे कहते हैं जो दवीपट्टी हई जमीन से होता है ॥ उसे शिलीन्द्रक कहते हैं ॥ पृथ्वी गोबर काष्ठ वृक्ष आदिमें वो उत्पन्न होता है उसे कुकुरमुत्ता कहते हैं ॥ १८१ ॥ सबसे स्वेदन शीतल दीपकी उत्पन्न करनेवाले पिच्छिल जो होते हैं । वे भारी होते हैं । और वमन अतिसार ज्वर कफ के रोग इनको करनेवाले हैं ॥ १८२ ॥ श्वेत और शुभ्र देवनी हई जमीन काष्ठ वास गोव्रण इन से उत्पन्न । अतिक्षीय करनेवाले नहीं हैं ॥ वाकी उनसे निन्दित हैं ॥ १८३ ॥ संस्वेदन इसको ज्ञाता इस प्रकार लोकमें कहते हैं ॥
इति भावप्रकाशे शाकवर्गः समाप्तः ॥ ॐ ॥

इति भावप्रकाशे शाकवर्गः
समाप्तः ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

भाव प्रकाशः

अथ मांसवर्गः

तत्र मांसस्य नामानि

मांसं तु पिशितं क्रव्यं आमियं पलं लम्पं लम् ॥ मांसं
वातहरं सर्वं वृंहणं बलपुष्टिस्तु ॥ १ ॥ प्रीणनं गुरु
हृद्यञ्च मधुरं रसपाकयोः ॥ अथ तद्भेदाः ॥
मांसवर्गो द्विधा ज्ञेयो जाङ्गलोऽनुपभेदतः ॥ ॥

तत्र जाङ्गलस्य लक्षणं गुरुराश्रयः ।

मांसवर्गोऽत्र जङ्गला विलस्थाश्च गुहाश्रयाः ॥ त-
था परा मृगा ज्ञेया विष्किरा प्रतुदौऽपि च ॥ २ ॥

प्रसहाः । अथ ग्राम्या अश्लो जाङ्गलजातयः ।

भा० भाव प्रकाशः । अनन्तर मांसवर्गः । उसमें मांस के नाम । मांस पि-
शित क्रव्य आमिय पलल पल ॥ यह मांसके नाम हैं ॥ सब मांस वात नाश
क वृंहण बल पुष्टि को करने वाले हैं ॥ १ ॥ और प्रीणन भारी हृद्य मधुर रस
और पाक में भी ॥ अनन्तर उनके भेद । मांसवर्ग दो प्रकार का जानना चाहि-
ये जाङ्गल और अनुप वन भेदोंसे ॥ उनमें जंगल का लक्षण और गुण ।
यहां पर मांसवर्ग जंगल में रहने वाले विलमें रहने वाले गुहामें रहने वाले
॥ तथा परा मृग विष्किर और प्रतुद भी ॥ २ ॥ प्रसह । और ग्राम्य यह आठ
मांस की जाती हैं ॥

जाङ्गला मधुरा रूक्षा स्तुवराः लघवस्तथा ॥

वल्यास्ते वृंहणं वृष्या दीपना दीयहारिणः ॥ ३ ॥

मूकतां मिन्मिनत्वं च गङ्ग दत्त्वा र्दिति तथा ॥ वाधिर्यं
मरुचि च्छर्दि प्रमेहं मुखजान् गदान् ॥ ४ ॥ प्लीपदं
गल गरुडञ्च नाशयत्य निलामयान् ॥

अथा नूपस्य लक्षणं गुणाश्च ।

कृले चराः प्लवा श्रापि कौशस्थाः पादि नस्तथा ॥ म-
त्स्या एते समाख्याताः पञ्चधाऽनुप जातयः ॥ ५ ॥

अनूपा मधुराः स्निग्धा गुरवो वह्नि सादनाः, प्लेक्म-
ला पिच्छला श्रापि मांस पुष्टि प्रदा भृशम् ॥ ६ ॥

तथा भिष्यन्दि नस्ते हि प्रायः पथ्य तमाः स्मृताः ॥

अथ जाङ्गलानां गरानां विप्रियु गुणाश्च ॥

भा० जाङ्गल मधुर रूखे कसेले तथा हलके ॥ बलको देने वाले पुष्ट शुक्रको
उत्पन्न करने वाले दीपन दोष नाशक ॥ ३ ॥ गुडग यन मिन मिना यन गद गदना
तथा अर्द्धित ॥ वह्नि रापन अरुचिव मन प्रमेह मुखके रोग ॥ ४ ॥ प्ली पद गल गं
ड और वात के रोग इनको नाश करते हैं ॥ अनन्तर आहूप मांस का लक्षण और गुण
कहेते हैं ॥ कृले चर प्लव को उस्थ पा दिन तथा ॥ मत्स्य येह पांच प्रकार की
अनूप जाति कहींहे ॥ ५ ॥ अनुप मधुर चिकने भारी अग्नि मान्य करने वाले ॥
कफकारी पिच्छल और अत्यन्त मांस पुष्टि को करने वाले है ॥ ६ ॥ तथा अ-
भिष्यन्दि और प्रायः पथ्य तम कहे है ॥ अनन्तर जाङ्गलों की गराना और वि-
शेष गुण ॥

हरिरौन कुरङ्गर्यं पथ्यतन्यं दुःसम्बराः ॥ राजीवोऽ-
पि च मुण्डी चेत्याद्याः जङ्गल संज्ञकाः ॥ ७ ॥ हरिणा
स्ताम्बराः स्यादेनः कृशाः प्रकीर्तितः ॥

भा० हरिणा एण कुरङ्ग-कृष्य पथ्यतन्यं कुसम्बरा ॥ राजीव मुंडी इत्यादि
येह जाङ्गलनाम हरिणा के भेद है ॥ ७ ॥ लालरंग का हरिणा

कहा है ॥
 कुरङ्ग इयताम्रः स्यादेन तुल्या कृति महान् ॥ ५ ॥
 यो नीलाङ्गः को लोके सरोस्य इति कीर्तितः ॥ एयत
 अन्द्र विन्दुः स्याद्दरिणात् किञ्चि दल्प कः ॥ ४ ॥
 न्यङ्कः बहु विद्यारोगः ष्य सम्बरो गवयो महान् ॥ राजी
 वस्तु मृगो ज्ञेयो राजभिः परितो वृतः ॥ १० ॥ यो मृगः
 शृङ्ग हीनः स्यात् स मुण्डी ति निगद्यते ॥ जङ्गलाः
 प्रायश्चः सर्वे पित्त - फ्लेष्म - हराः स्मृताः ॥ ११ ॥
 किञ्चि ह्यत करश्चापि लघ्वो बलवर्द्धनाः ॥

भा० कुच्छ एक लाल कुंग होता है रंग के समान अकृति बड़ा होता है ॥
 ० ॥ नीलाङ्गः क इस को लोक में सरोहि इस प्रकार कहा है ॥ एयत सफेद बु
 न्द की वाला हरिण से कुच्छ एक छोटा होता है ॥ ६ ॥ बहुत सीङ्ग वाला न्य-
 कु सावर महान गवय होता है ॥ जो मृग बहुत सी लकीरों से युक्त हो इस को
 राजीव मृग जानना चाहिये ॥ १० ॥ जो मृग बेसीङ्ग का होता है उसको मुंडी
 ऐसा कहते हैं ॥ सब जाङ्गल प्रायः पित्त कफ के नाशक कहे हैं ॥ ११ ॥
 अल्प वात को करने वाले हलके और बलको बढ़ाने वाले हैं ॥

अथ विलेशयानां गरानां गुणाश्च

गोधा - शशा - भुजङ्गरवु शल्ल क्वा छा विले शयाः ॥

विलेशया वात हरा मधुरा रस पाक योः ॥ १२ ॥

हं हरणा वद्ध विट मूत्रो वीर्यो छाश्च प्रकीर्तिताः ॥

अथ गुहा शयानां गरानां गुणाश्च

भा० अनन्तर विलमें रहने वालों की गराना और गुणा कहते हैं ॥ गोह खर
 गोश साप चूहा साहि आदि येह विलेशय हैं ॥ विलेशय वात नाशक और
 रस पाक में मधुर है ॥ १२ ॥ तथा एह मल मूत्र को बान्धने वाले और वीर्य में

उष्ण कहेहैं ॥ अनन्तर गुहाशयों की गणना और गुण ॥

मिंह व्याघ्र वृका वृक्षतरक्षु द्वीपि नस्तथा ॥ वभू-
जम्बूक माज्जीरा इत्याद्याः स्युर्गुहा शयाः ॥ १३ ॥ तर-
क्षुः हउहा इति लोके । द्वीपी चिता व्याघ्र इति लोके
। स्थूल पुच्छो रक्त नेत्रो वभूः देहः सना कुलः ॥ गु-
हा शयो वात हरा गुरुय्या मधुराश्रतं ॥ १४ ॥ स्निग्धा
वल्या हिता नित्यं नत्र गुह्य विकारिणाम् ॥

अथ पर्यामृगानां गणना गुणाश्च ॥

भा० शेर भेड़ि या रीछ नेन्दुवा वाद्य चीता तथा ॥ नउला गीदड विलाव इत्या-
दि येह गुहाशय है ॥ १३ ॥ तरक्षु हउहा इस प्रकार लोक में कहेते हैं ॥ चीता
व्याघ्र इस प्रकार लोक में कहेते हैं । मोठी दुमलाल आखें पिंगल शरीर वो
हनेवला है ॥ गुहाशय वात नाशक भारी उष्ण मधुर ॥ १४ ॥ चिकने बलको क-
रनेवाले और सदा नेत्र लिंग रोग वालों को हित है ॥ ॥ अनन्तर पर्यामृगोंकी
गणना और गुण ॥ ॥

वनौको वृक्ष माज्जीरो वृक्ष मर्कटि कादयः ॥ रते य-
र्यामृगाः प्रोक्ताः सुश्रुता चैर्महर्षिभिः ॥ १५ ॥ वनौका
वानरः वृक्ष माज्जीरो वृक्ष विडालः ॥

वृक्ष मर्कटि का रूयी इति लोके ।

स्मृताः पर्यामृगाः वृथा श्रक्षुय्याः शोचिरो हिताः ॥
त्रासार्थाः कास शमनाः सृष्ट मूत्र पुरी यिकाः ॥ १६ ॥

अथ विष्किराणां गणना गुणाश्च ॥

भा० वन्दर वृक्ष माज्जीर वृक्ष मर्कटि का आदिक ॥ येह पर्यामृग सुश्रुतादि ॥

महर्षियोंनें कहेहैं ॥ १५ ॥ वानर । वृक्ष विडाल । रूयी । इस प्रकार लोकमें कहेते हैं । परा मृगशुक्र को करनें वाले नैत्रके शीथ वाले को हित ॥ और वरा स वामोर कास इनके नाशक मलमूत्र को करनें वालेहैं ॥ १६ ॥

अनन्तर विष्किरा की गणना और गुण ॥

वर्तिका लाव वर्त्तरि कपिञ्जल क तिन्तिराः ॥ कुलि

ङ्ग कुक्कुटाद्याम्बु विष्किराः समुदाहृताः ॥ १७ ॥ विकी

र्य भक्षयन्त्येते यस्मात्तस्माद्वि विष्किराः ॥ कपिञ्ज

ल इति प्राज्ञैः कथितो गौर तिन्तिरिः ॥ १८ ॥

कुलिङ्गः गवरे आ इति लोके ।

विष्किराः मधुराः शीताः कषायाः कटुपाकिनः ॥

बल्यादृष्यास्त्रिदोयघ्नाः पथ्यास्ते लघवः स्मृताः १९

भा० जंगली चिड़ालवा वटेर सकेद तीतर तीतर चिड़े मुरगा आदिक येह विष्किर कहेहैं ॥ १७ ॥ जो कितरा केखाते हैं इस वास्ते वे विष्किर है ॥ सफेद तीतर को बुद्धि वानोंनें कपिञ्जल ऐसा कहाहै ॥ १८ ॥ गवरे आ इस प्रकार लोकमें कहेते हैं । विष्किर मधुर शीतल कसेले पाकमें कटु ॥ बलकोक रनेंवाले शुक्र को उत्पन्न करने वाले त्रिदोय नाशक पथ्य और ये हलकेहैं ॥

१९ ॥

अथ प्रतुदानाङ्गणनागुणाश्च ॥

हरीतो धवलः पाण्डु श्वित्र यक्षो वृहच्छुकः ॥ पारा

वतः खञ्जरीठः पिकाद्याः प्रतुदाः स्मृताः ॥ २० ॥

प्रतुद्य भक्षयन्त्येते तुण्डेन प्रतुदास्ततः ॥

हारीतः हारिल इति लोके ॥

भा० अनन्तर प्रतुदों की गणना और गुण । हरील कठफोर वाजंगली ती तरपहाड़ी मोता ॥ परे वा खंजन कोडल इत्यादिक येह प्रतुद कहेहैं ॥ २० ॥

जो अपनी चोंचसे तोड़ कर खाते हैं इस वास्ते प्रतुद है। हरील इस प्रकार लोकमें कहते हैं।

कपोतोः धवल पाण्डुः शतपत्रो वृहच्छुकः ॥ दार्वी

घाट इत्यमरः। कठ फोरवा इति लोके।

प्रतुदा मधुराः पित्त कफघ्नास्तु वरहिमाः ॥ लघवो

वृद्धवर्चस्का किञ्चिद्घातकराः स्मृताः ॥ २१ ॥

अथ प्रसहानाङ्गानां गुराणां च ॥

काको गृध्र उल्लूकश्च चिल्लश्च शशघातकः ॥ चायो

भासश्च कुरर इत्याद्याः प्रसहाः स्मृताः ॥ २२ ॥

भा० कपोत धवल पाण्डु शतपत्र वृहच्छुक ॥ दार्वी घाट इस प्रकार अनरमें कहा है ॥ कठ फोरवा इस प्रकार लोकमें कहते हैं ॥ प्रतुद मधुर पित्त कफ के नाशक कसेले शीतल ॥ हलके मलको बान्धनें वाले और कुंठ एकवानको करनें वाले कहते हैं ॥ २१ ॥ अनन्तर प्रसहों की गणना और गुराणों की व्या गिद्ध उल्लू चील वाज नील कंठ भास येह गिद्धका भेद है कुरीर इत्यादि येह पक्षी प्रसह कहते हैं ॥ २२ ॥

(क) शशघातकः। वाज इति लोके। चायं नीलक

मू इति लोके। 'भासो गृध्र विशेष स्यात्' कुररः

करा कुर इति लोके। 'प्रसहाः कीर्तिताः रणे प्रस

ह्याच्छिद्य भक्षणात्।' प्रसहाः खलु वीर्यीष्यास्तन्मां

संभक्षयन्ति ये ॥ २३ ॥ ते शोथ-भस्मकोन्माद-शुक्र

क्षीराण भवन्ति हि ॥ अथ ग्राम्याणां गुराणां च

। छाग-मेघ-द्ववाश्चाश्वाः ग्राम्याः प्रोक्ता महर्विभिः

। ग्राम्याः वातहराः सर्वे दीपनाः कफपित्तलाः ॥ २४ ॥

मधुरारस पाकाभ्यां चंद्राणां बल वर्द्धनाः ॥ इत्यनूपाज
न्तवः ॥ अथ कूले चराणां गणानां गुणाश्च ॥

भा० (क) वाज इस प्रकार लोक में कहते हैं । यह गिद्ध के किसम में है ।
करा कुर इस प्रकार लोक में कहते हैं ॥ यह जवर दस्ती काटके खाते है इस बा
स्ते प्रसह है ॥ प्रसह दीर्घ्य में उष्या है उनके मांस को जो भक्षण करते है ॥ २३ ॥
वे शोथ भस्मक उन्नाट युक्त और शुक्र क्षीण हो जाते हैं ॥ अनन्तर ग्राम्यों की
गणाना और गुणा । वकरी भेडा बिल घोडा इनको महर्षि योनिं ग्राम्य कहा है
॥ सब ग्राम्य बात के नाशक दीपन कफ पित्र को करने वाले है ॥ २४ ॥ और
रस याक से मधुर पुष्ट बल को बढ़ाने वाले है ॥ इस प्रकार अनूप जीव है ।
अनन्तर कूले चरों की गणाना और गुणा ।

लुलाप गण्ड चण्ड चमरी वारणा दयः ॥ एते कूल

चराः प्रोक्ताः यतः कूले चरन्त्य पाम् ॥ २५ ॥ (क)

लुलापो, महिय गण्डः, खड्गः, (चमरी चमर पुच्छ
गौ) कूले चरा मरुत्पित्त हरा वृष्या बला बहाः ॥

मधुराः शीतलाः स्निग्धा मूत्रलाः श्लेष्म वर्द्धनाः ॥

२६ ॥ प्लवानां गणानां गुणाश्च । हंस सार सदा

रण्ड वक क्रौञ्च सर रि काः ॥ नन्दी मुखी सका द

म्बा बला काद्याः प्लवाः स्मृताः ॥ २७ ॥ प्लवन्ति स-

लिले यस्म देते तस्मात् प्लवाः स्मृताः ॥

भा० भैंस गण्डा सूवर चवर गाय हाथी आदिक ॥ यह कूले चर हैं क्योंकि
येह जल के किनारे विवरते है ॥ २५ ॥ (क) भैंस । गण्डा । चवर पुच्छ गौ
। कूले चर वात पित्त के नाशक शुक्र को करने वाले बल कारी ॥ मधुर शी
तल चिकने मूत्र को करने वाले और कफ को बढ़ाने वाले है ॥ २६ ॥ अनन्तर
प्लवों की गणाना और गुणा । हंस, सारस, कुरंडु वा, बगला दीक भाडी ॥ नन्दी

मुरवी येह बोह जान वरहैं जिसके चोंच पर जामनके सम गुठली होतीहैं औ
र वत्तक सा होताहै करवा वगुला आदि ये प्लव कहे हैं ॥ २७॥ येह जल
में रहतेहै इस वासे इनको प्लव कहाहै ॥

कारण्डः कपर्दि कारव्यो वृहद वकाश " क्रीञ्चः र
ह विहङ्गः स्यात् " देङ्क इति लोके । शरा रिका सिन्धु
इति । स्थूला कठोर वृत्ताच यस्याश्च ञ्चू परि स्थि
ता ॥ गुटि का जम्बु सदृशी प्रोक्ता नन्दी मुरवी तिसा
॥ २८॥ कादम्बः कर वा इति लोके । वलाका वगु
ली इति लोके । पूवाः पित्त हर स्निग्धाः मधुरा गु
रवो हिमाः ॥ वात प्लेख प्रदाश्चापि बल शुक्र करः
सरः ॥ २९॥ अथ कोशस्थानां गराना गुराणां च ॥
शङ्खः शङ्ख नख आपि शुक्ति शम्बूक- कर्कटाः ॥ जीवा
रवं विधाश्चान्ये कोशस्थाः परि कीर्त्तिताः ॥ ३०॥
शङ्ख नखः क्षुद्र शङ्खः ।

भा० कुरडुवा हीक । आडी । इति । स्थूल कठोर गोल जिसके चोंच परर
हैताहै ॥ जामुन की गुठली के समान वो नन्दी मुरवी कहाहै ॥ २८॥ करवा इ-
स प्रकार लोकमेकहैते हैं । वगुली इस प्रकार लोक में कहैते है । प्लव पित्त
नाशक चिकने मधुर भारी, शीतल ॥ वात कफ को करने वाले और शुक्र को कर
ने वाले सरहै ॥ २९॥ अनन्तर कोशस्थों की गराना और गुराण कहैते है ॥ शंख छो
टा शंख सीप घोंगा केकड़ा ॥ इस प्रकार के जीव और को शस्थ कहे है ॥ ३०॥
छोटा शंख ।

कोशस्था मधुराः स्निग्धाः वात पित्त हर हिमाः ॥ बृंह
णा बहु वर्चस्का वृष्याश्च बल वर्द्धनाः ॥ ३१॥

अथ पादिनां गणना गुणाश्च ॥

कुम्भीर-कूर्म-नक्राश्च गोधा-मकर-शङ्खवः ॥ घण्टिकः
त्रिशु मारश्चेत्यादयः पादिनः स्मृताः ॥ ३१ ॥

(क) कुम्भीरी मारको जलजन्तुः । कूर्मः कच्छपः । नक्रः
नाक इति लोके । गोधा गोहि जलजन्तुः । मकरमगर इति लोके ।
शङ्खः साकुच इति लोके । घण्टिकः घरी आल इति लोके ।
त्रिशु मारः सूस इति लोके ।

पादिनोऽपि च येन तु कोशास्था नाङ्गुरोः समाः ।

भा० कोशास्थ मधुर चिकने वात पित्त के नाशक शीतल ॥ पुष्ट बहुमूलको करने वाले शुक्रको करने वाले और बलको बढ़ाने वाले हैं ॥ ३१ ॥ अनन्तर पादियोंकी गणना और गुणा । यह मगर का भेद है । कछुवा नाका गोहि मगर साकुच । घण्टियाल सूस इत्यादि येह पादिक है हैं ॥ ३१ ॥ (क) येह मारक जल जीव हैं । कछुवा । नाका । गोहि । मगर । साकुच । घण्टि आल । सूस । जो पादि हैं वेभी कोशास्थाके समान गुण भे हैं ॥

अथ मत्स्य नामानि गुणाश्च ॥

मत्स्यो मीनो विकारश्च उयो वैशारिणोऽण्डजः ॥ ३२ ॥

कुलो पृथु रोमाच स सुदर्शन इत्यपि ॥ ३२ ॥ रोहिताद्यास्तु ये जीवास्ते मत्स्याः परि कीर्तिताः ॥ मत्स्याः स्निग्धो

य्या मधुरा गुरवः कफ पित्त लाः ॥ ३३ ॥

भा० मछलियों के नाम और गुण । मत्स्य मीन विकार उय वैशारिण अण्डज शकुल पृथु रोमां और सुदर्शन येह मछलियों के नाम हैं ॥ ३२ ॥ रोहू भादिक जो जीव हैं वे मत्स्य कहे हैं । मत्स्य चिकने उया मधुर भारी कफ पित्तको करने वाले हैं ॥ ३३ ॥

वातघ्ना बृंहणा वृथ्या रोचका बल वर्द्धनाः ॥ मध्वय वा
य सक्तानां दीप्राग्नी नाञ्च पूजिताः ॥ ३४ ॥ (क)

अथ जङ्घ ला दीनां नामानि गुणाप्त्र । तत्र जङ्घ
लेषु हरिणस्य गुणाः । हरिणः शीतलो वद्ध विरामूत्रो
दीपनो लघुः ॥ रसे पाके च मधुरः सुगन्धिः सन्नि पात
हाः ॥ ३५ ॥ करीसा इल हरिणः । रणाः कषायो म-
धुरः पित्रासृक्क वात हृत् ॥ संग्राही रोचनो बल्यो
ज्वर प्रशमनः स्मृतः ॥ ३६ ॥

भा० और वात नाशक पुष्ट शुक्र को करने वाले रोचक कबल को बढ़ाने वाले हैं
तथा मद्य मैथुन में आसक्तों को और दीप्राग्नि यों की भी हित है ॥ ३४ ॥ (क)
अनन्तर जांगल आदियों के नाम गुण । उनमें हरिण के गुण । हरिण शी
तल मल मूत्र को बान्धने वाला दीपन हलका ॥ रस और पाक में मधुर सुगन्धि
सन्नि पात के नाशक है ॥ ३५ ॥ अनन्तर काला हरिण । रण कसेला मधु
र रक्त पित्र कफ वात इनका नाशक है ॥ और काविज रोचन बलके हित ज्व
र को शमन करने वाला कहा है ॥ ३६ ॥

अथ कुरङ्गः । कुरङ्गो बृंहणो बल्यः शीतलः पित्र
हृद् गुरुः ॥ मधुरो वात हृत् ग्राही किञ्चित् कफ करः
स्मृतः ॥ ३७ ॥ अथ रोक । ऋष्यो नीलाण्ड कम्प्रापि
गवयो रोक इत्यपि ॥ गवयो मधुरो बल्यः स्निग्धो या
कफ पित्र लः ॥ ३८ ॥ अथ चित्ररि । एय तस्तु
भवेत् स्वादु ग्रीहकः शीतलो लघुः ॥ दीपनो रोचनः
श्वास ज्वर दोष त्रयास्त जित् ॥ ३९ ॥

भा० अनन्तर कुरङ्गः । कुरंग वृंहण बलके हित शीतल पित्त नाशक भारी
 ॥ मधुर वात नाशक का विज और कुछ कफ करने वाला कहते हैं ॥ ३७ ॥
 अनन्तर रोक । अय्य नीला रङ्क गवय रोक यह नील गाय के नाम हैं ॥ नी
 ल गाय मधुर बलके हित चिकनी उष्ण कफपित्तको करने वाली है ॥ ३८ ॥
 अनन्तर चित्तरि । चित्तरि मधुरका विज शीतल हलका ॥ दीर्घन रोचन है और
 श्वासज्वर तीनों दोष रक्त इनको नीतने वाला है ॥ ३९ ॥

अथ वारह सिङ्ग । न्यङ्कुः स्वादु लघु वर्ण्यो दृष्यो दो
 चत्तया पहः ॥ अथ सावर । सावरं पल्लवं स्निग्धं शी
 तलं गुरु च स्मृतम् । रसे पाके च मधुरं कफदं रक्त ।
 पित्त हृत् ॥ ४० ॥ राजि वस्तु गुरो ज्ञेयः पृथगेन समोज
 नैः ॥ अथ पीठी । मुण्डी तु ज्वर का साम्ल क्षय श्वा
 सां पद्मो हिमः ॥ अथ विले श्येषु तत्र शशः स्यात् ।
 लम्ब कार्णः शशः शूली लोम कार्णो विलशयः ॥ श
 शः शीतो लघु ग्रीही रूक्ष स्वादुः सदा हितः ॥ ४१ ॥
 बन्धि कृत्कफ वातघ्नो वात साधारणः स्मृतः ॥ ज्वरा
 ती सार शोधा स्वश्वासा मय हरश्च सः ॥ ४२ ॥
 अथ साही । सेधातु शल्यकः श्वावित कथ्यन्ते तद्गु
 णा अथ । शल्यकः श्वास् काष्ठास्व शीय दोषत्रया
 पहः ॥ ४३ ॥ अथ पक्षिणां नामानि गुराणाश्च ॥

भा० अनन्तर वारह सिङ्ग । वारह सिङ्ग मधुर हलका बलकहित शुक्रको कर
 ने वाला तीनों दोषों का नाशक है ॥ अनन्तर सावर । सावर का मांस चिकना शी
 तल भारी कहते हैं ॥ रसे पाके में मधुर कफ को करने वाला रक्त पित्त का नाशक
 है ॥ ४० ॥ राजा चित्तरि के समान गुरा में लोग जानें ॥ अनन्तर पीठी । पीठी ज्वर

कास रक्त क्षय श्वास इनका नाशक शीतल होता है ॥ अनन्तर विले श्यों में शत्रु होता है ॥ लम्ब करी शत्रु शूली लोम करी विले येह स्वर गोशके नाम है स्वर गोश शीतल हलका काविज रूखा मधुर सदा शीतल ॥ ४१ ॥ अग्नि दीपन कफ वात कानाशक साधारण वात को करने वाला कहा है ॥ और ज्वर अती चार शोथ रक्त श्वास रोग इनका नाशक वोह है ॥ ४२ ॥ अनन्तर साही । सघा तु श्लेष्म क श्वाविन येह साही के नाम है । अनन्तर गुण कहते हैं । साही श्वास कास रक्त शोथ और विदोष इनका नाशक है ॥ ४३ ॥ अनन्तर यक्षियों के नाम और गुण ॥

पक्षी रवगो विहङ्गश्च विहगश्च विहङ्गमः ॥ शकुनिर्विः
षतत्रिंश विष्किरो विकिरो ऽण्डजः ॥ ४४ ॥ धान्याः कु
रचरा येऽत्र तेषां मांसं लघुत्तमम् ॥ आनूपं बलक
न्मांसं स्निग्धं गुरुतरं स्मृतम् ४५ ॥ तेषु विष्किरे सुव
टेरवट इ । वर्तिको वर्तिकश्चित्रस्ततो ऽन्या वर्तिकाः
स्मृताः ॥ वर्तिको ऽग्नि करः शीतो ज्वरदोय त्रयापहः
४६ ॥ सुरुच्यः शुक्रदो वल्यो वर्तिकाल्य गुणास्ततः ॥

भा० पक्षी खेग हिङ्ग विहंग विहङ्गम् ॥ शकुनी विपत त्री विष्किर विकिर अंडज येह पक्षी यों के नाम है ॥ ४४ ॥ धान्य और कुरचरा जो इस्में है उनके मांस हल के और अच्छे है ॥ आनूप मांस बलकारी चिकना गुरु तर कहा है ॥ ४५ ॥ उन विष्किरोमें वटेर वटई । वर्तिक वर्तिक चित्र येह वटेर के नाम है । और उस्से दूसरा वर्तिक कहा है ॥ वटेर अग्नि दीपन शीतल ज्वर और तीनों दोष इनका नाशक है ॥ ४६ ॥ और अच्छा रुचि को करने वाला शुक्र को करने वाला बलके हित होता है और वटई उस्से गुणमें अल्प है ॥

अथ लावा । लावा विष्किर वर्गेषु ते चतुर्धाम
ता बुधैः ॥ पांशु लो गौर को ऽन्यस्तु पौण्डरीकोद
रस्तथा ॥ ४७ ॥ लावा वह्नि कराः स्निग्धा गरमा ग्रा-

हिका हिताः ॥ पांशुलः प्लेय्य लसेयु वीर्योश्च निल
नाशनः ॥ ४८ ॥ गौरे लघुतरो रूक्षो वह्निकारी त्रिदोष
जित् ॥ पौण्ड्रकः पित्तकृत् किञ्चिद्गु वात कफाय
हः ॥ ४९ ॥ दर्मरोरक्तपित्तघ्नो हृदामय हरो हिमः ॥

भा० अनन्तरलवा । विष्कर वर्ग में वोह चार प्रकार, पंडितोंने मानाहै ॥ पांशु
ल गौरक और दूसरा पौण्डरी क उदर येह लावाके भेद हैं ४७ ॥ लवा अग्नि की
करने वाला चिकना विषनाशक का विज और यध्यहै ॥ और उनमें पांशुल क
फकारि शुक्र को करने वाला वातनाशक है ॥ ४८ ॥ गौर बहुत हलका रूखा दीपन
और त्रिदोष को जीतने वाला है ॥ पौण्ड्रक पित्त को करने वाला कुछ हलका वात क
फका नाशक है ॥ ४९ ॥ दर्मर रक्त पित्तका नाशक और हृदय रोग कानाशक श्री
मलहै ॥

अथ वगेरा । वालीको वर्ति चटकौ वार्ती कश्चै व स
स्मृतः ॥ वालीको मधुरः शीतो रूक्षश्च कफपित्तनुत्
॥ ५० ॥ अथ कृष्या तित्तिरि गौरति त्तिरी ॥ तित्तिरिः
कृष्या वर्णः स्या चित्तो ऽन्यो गौरतित्तिरिः ॥ तित्तिरीर्वल
दो ग्राही हिका दोष त्रया पहः ॥ ५१ ॥ उवास कास ज्वर
हरस्तस्माद्गो राधिको गुणोः ॥ अथ गवरै आ ॥
चटकः कलविद्धः स्यात् कुलिङ्गः काल कराठ कः ।
कुलिङ्गः शीतलः स्निग्धः स्वादुः शुक्र कफ प्रदः ॥ ५२ ॥
सन्निपात हरो वेत्रमचटकश्चाति शुक्लः ॥

भा० अनन्तर वगेरा । वालीक वर्ति चटक वार्तीक येह वगेरा के नामहै ॥ व-
गेरा मधुर शीतल रूखा कफपित्त का नाशक है ॥ ५० ॥ अनन्तर और सुफेद ती
तर ॥ काला तीतर चित्र और दूसरा सफेद तीतर होताहै ॥ तीतर चलको देने वा-
ला काविज है और हिचकिजा तीनों दोष ज्वर इनका नाशक है उन्से सफेद तीतर

गुरामें अधिक हैं ॥ अनन्तर गवरैआ ॥ चटक कलविद्ध कुलिङ्ग कालकंठ ।
क ॥ येह गव रैआ के नाम है ॥ गवरैआ त्रितल चिकना मधुर शुक्र और कफको
करने वाला ॥ ५२ ॥ तथा सन्निपातका नाशक और घरकी गवरैआ बहुत शुक्र
को करने वाला है ॥

कुक्कुटो वन कुक्कुटाः । कुक्कुटः ककवाकुः

स्यात् कल यश्चरणा युधः ॥ ताम्र चूड स्या दक्षी पा
तरा दी त्रिख रिडकः ॥ ५३ ॥ कुक्कुटो वृंहणः स्नि
ग्धो वीर्येशो निल हत गुरुः ॥ चक्षुष्यः शुक्र कफ
हत् वल्यो वृष्य कषायकः ॥ ५४ ॥ आरण्य कुक्कुटः ।
स्निग्धो वृंहणः श्लेष्म लो गुरुः ॥ वात पित्त क्षय वमि
विषम ज्वर नाशनः ॥ ५५ ॥ प्रतु दैयु हारी तस्य ॥

भा० अनन्तर मुरगा और वन मुरगा । कुक्कुट ककवा कुकलय चरणा युध ॥ ता-
म्र चूड तथा दक्ष पातरा दी त्रिख रिड क येह मुर गेके नाम हैं ॥ ५३ ॥ मुरगा पुष्ट
चिकना वीर्य में उष्ण वात नाशक भारी है ॥ और नेत्रके हित शुक्र कफ को करने
वाला बलके हित शुक्र को करने वाला कसेला है ॥ ५४ ॥ वन मुरगा चिकना पुष्ट क
फको करने वाला भारी है ॥ और वात पित्त क्षय वमन विषम ज्वर इनका नाशक है
॥ ५५ ॥ प्रतुद में हारील का ॥

हारीतो रक्त पीतः स्याद् हरितो ऽपि सकृद्यते हारीतो हा
रील इति लोके ॥ हारीतो रूक्ष उष्णं च रक्त पित्त क
फा पहः ॥ स्वेदस्वर करः प्रोक्तः ईय हत करश्च सः ॥
पारुडु धवल पारुडु । पारुडुस्तु द्विविधो ज्ञेय श्चित्र य
क्षः कल ध्वनिः ॥ द्वितीयो धवलः प्रोक्तो स कपीतः ।
स्फुट स्वनः ॥ ५७ ॥ चित्र पक्षः पित्तरोया इति लोके ।

भा० हारीत रक्त पीत होता है और हरित भी येह उसका नाम है । इसको हरील

इस प्रकार लोक में कहते हैं ॥ हारील रूखा गरम रक्त पित्त और कफका नाशक है । और स्वेदस्वर को करने वाला कहा है ॥ तथा अल्प ज्ञान को करने वाला है ॥ ५६ ॥ पारदु और धवल पारदु । पित्तका दो प्रकार का होता है चित्र पक्ष और कल ध्वनि ॥ दूसरा धवल कहा है कपोत स्फुट नये पेड़ कीके नाम है ॥ ५७ ॥ चित्रे पक्ष पित्त रोधा इस प्रकार लोक में कहते हैं ॥

चित्र पक्षः कफ हरो वातघ्नो ग्रहिराणी प्रराणुत् ॥ धवलः पारदु रुद्धियो रक्त पित्त हरो हिमः ॥ ५८ ॥ अथ मयूरः । मयूर चन्द्र की केकी मेघरावो भुजङ्ग भुक् ॥ शिखी त्रिखा वली वर्हि शिखराडी नील करण कः ॥ ५९ ॥ शुक्लो पाङ्गः कलापी च मेघनादः कलाप्यपि ॥ रसे पाके च मधुरः संग्राही वात शान्ति कृत् ॥ ६० ॥ कवृत्तर परे वा ॥ पारावतः कलरवः कपोतो रक्त वर्द्धनः ॥ पारावतो गुः रुः स्निग्धो रक्त पित्तानि ला पहः ॥ ६१ ॥ संग्राही शीत लसज्जैः कथितो वीर्य वर्द्धनः ॥

भा० चित्र पक्ष कफ नाशक वात नाशक और संग्रहणी का नाशक है ॥ धवल और पारदु रक्त पित्त का नाशक शीतल कहा है ॥ ५८ ॥ अनन्तर मोर ॥ मोर चन्द्र की केकी मेघराव भुजङ्ग भुक् ॥ शिखी त्रिखा वली वर्हि शिखराडी नील करण क ॥ ५९ ॥ शुक्लो पाङ्गः कलापी मेघनाद कलापियेह मोरके नाम है ॥ मोर रस पाक में मधुर काविज वात शमन करने वाला है ॥ ६० ॥ अनन्तर कवृत्तर परे वा । पारावत कलरव कपोत रक्त वर्द्धन येह कयूत्तर के नाम है कवृत्तर भारी चिकना रक्त पित्त वात का नाशक है ॥ ६१ ॥ और काविज शीतल उसको जानने वालोंने वीर्य का वर्द्धन वाला कहा है ॥

अथ पक्ष्यरुडस्य गुणाः ॥

नाति स्निग्धा नि वृथ्यारिा स्वादु पाकर सा निच ॥ ॥

वातघ्ना न्यपिशुक्राणि गुरुण्य रडानि पक्षिणासु ॥

६३॥ ग्राम्येषु छागस्य । छागलो वर्कर छागो वस्तो

जः क्षेलकः स्तुभः ॥ अजा छागी स्तुभा चापि छेलिका

च गलस्तनी ॥ ६३॥ छागमांसं लघु स्निग्धं स्वादु पा

कं विदोष नुत् ॥ नाति शीत मदा हिस्यात् स्वादु पीन

सनाशनम् ॥ ६४ ॥ परं बल करं रुच्यं वृंहणं वीर्यं

वर्द्धनम् ॥ अजाया अग्रसूताया मांसं पीत सनाशनम् ॥

६५ ॥ शुष्कासेऽरुचौ शोथे हित मग्ने अ दीपनम् ॥

भा० अनन्तर पक्षियोंके अंडों का गुण । न बहुत चिकनें शुक्रको करने वाले रस और पाकमें मधुर ॥ वात नाशक अति शुक्र को करने वाले भारी ऐसे पक्षीयोंके अंडे होते हैं ॥ ६३॥ ग्राम्य में बकरी का ॥ छागल वर्कर छाग वस्त ओज क्षेल कस्तुभ येह बकरे के नाम हैं ॥ और अजा छागी स्तुभा छेलिका गलस्तनी येह बकरीके नाम हैं ॥ ६३॥ छाग मांस हलका चिकना पाकमें मधुर विदोष नाशक ॥ न बहुत शीतल अवि दाही मधुर होता है और पीनस का नाशक है ॥ ६४॥ अत्यन्त बलको करने वाला रुचिको करने वाला पुष्ट वीर्य को बढ़ाने वाला है ॥ वित वच्चों को डीहूर्ड बकरी का मांस पीनस नाशक है ॥ ६५॥ सूकी खांसी में अरुचि में शोथ में हित है और अग्नि दीपन ॥

अजा सुतस्य बालस्य मांसं लघुतरं स्मृतम् ॥ ६६ ॥

हृद्यं ज्वर हरं श्रेष्ठं सुखदं बलदं भृशम् ॥ मांसं निः

का सिता रडस्य छागस्य कफ कृद्गुरु ॥ ६७ ॥ स्वातः

शुद्ध करं बल्यं मांसदं वात पित्त नुत् ॥ रुद्धस्य वा

तलं रूक्षं तथा व्याधि मृतस्य च ॥ ६८ ॥ र्द्धं जन्तु वि

कारणं छाग सरदं रुचि प्रदम् ॥

भा० वकरी के वज्र का मांस लघुत्रंर कहा है ॥ ६६ ॥ हृद्य ज्वर नाशक श्रेष्ठ सुख को देने वाला और अत्यन्त बलको देने वाला है ॥ अंड निकाले हुये वकरी का मांस कफ को करने वाला भारी है ॥ ६७ ॥ और सोता को शुद्ध करने वाला वनके द्वितमां सको करने वाला वात पित्त का नाशक होता है ॥ वृद्ध छाग का मांस वातलक्षणा तथा रोगसे मरे हुये का मांस भी वैसेही होता है ॥ ६८ ॥ वकरी का सिर जवु के ऊपर होने वाले रोगका नाशक और रुचिको करने वाला है ॥

अथ मेढा । मेढो मेढो हुडो मेय उररगोऽप्ये डकोऽपिच ॥

‘अवि वृष्टिस्तयो र्णा युष्क’ कथ्यन्ते तदुराणा अथ ॥ ६९ ॥

‘मेयस्य मांसं पुष्टौ स्यात्पित्तं प्लेक्ष्य करं गुरु ।’ तस्यै वारण्ड विहीनस्य मांसं किञ्चि लघुस्मृतम् ॥ ७० ॥

अथ गडिका दुम्बिका इति लोके ।

दुम्बा । गडकः पृथु शृङ्गः स्यान्मेदः पुच्छस्तु दुम्ब-

कः ॥ गंड कस्य पलं ज्ञेयं मेघा मियसमं गुरोः ॥ ७१ ॥

मेदः पूच्छो द्वेवं मांसं हृद्यं वृथ्यं अमा पहम् ॥ पित्तं

प्लेक्ष्य करं किञ्चि ह्यात व्याधि विना अ नम् ॥ ७२ ॥

भा० अनन्तर मेढा । मेढो मेढो हुडो मेय उररगो गडकभी ॥ अवि वृष्टि तथा उरणा युष्क येह मेडके नाम है, अनन्तर उसके गुरा कहते हैं ॥ ६९ ॥ मेढे का मांस पुष्ट होता है और पित्त कफ वा करने वाला भारी है ॥ अंड रहित उसका मांस किञ्चित्त हलका कहा है ॥ ७० ॥ अनन्तर दुम्बिका । दुम्बा । गडक पृथु शृङ्गः । मेदः पुच्छ दुम्ब कस्येह दुम्बेके नाम है ॥ दुम्बे का मांस मेढेके मांस के समान गुणमें जानना चाहिये ॥ ७१ ॥ अंके दुम्बका मांस हृद्य शुकुको अत्यन्त करने वाला अमनाशक है ॥ और पित्त कफ को करने वाला तथा कुछ एक वात के रोग का नाशक है ॥ ७२ ॥

अथ वर्दगावः । वली वर्दस्तु वृथभ त्रय

सश्व तथा वृथः ॥ अनङ्गुन सौर भेयल्प गौरूक्षामद्र

इत्यापि ॥ ७३ ॥ सुरभिः सौरभेयी च माहेयी गौ
 रुदाहता । गोमांसन्तु गुरुस्निग्धं पित्तप्लेक्मविकर्द्ध
 नम् ॥ ७४ ॥ वृंहणं वातहृद्दल्यमपथ्यं पीनसप्रणुत् ॥
 अथ घोड़ा । घोटेके पीजिं तुरंगा तुरङ्गमश्च तुरङ्गमाः
 वाजिवाहार्वागन्धर्व-हयसैन्धवसप्रयः ॥ ७५ ॥
 अप्रवमांसन्तुक्षुवरं वह्निक्लृक्कफपित्तलम् ॥ वात
 हृदवृंहणं वल्यं चक्षुष्यं मधुरं लघु ॥ ७६ ॥
 अथ कूले चरेषु महिषस्य ।

भा० अनन्तरवर्दगाववलीवर्दवृषभऋषभतयावृष ॥ अनङ्गनसौरभेय
 ल्यगौ उक्षाभद्रयेहवैलके नाम है ॥ ७३ ॥ सुरमी सौरभेयी हाहेयी गौ येह
 गायके नाम कहे है ॥ गौमांस भारी चिकना पित्तकफका वदानेवाला है ॥
 ७४ ॥ और पुष्टवातनाशक बलको करनेवाला अहित और पीनसकानाशक
 है ॥ अनन्तर घोड़ा ॥ घोटेक पीजिं तुरंग तुरङ्गम ॥ वाजिवाहार्वागंध
 र्वहयसैन्धसप्रय येह घोडेके नाम है ॥ घोडेका मांस कसेला दीपन कफ
 पित्तको करनेवाला है ॥ वातनाशक वृंहण बलके हित नेत्रके हित मधुर
 हलका है ॥ ७६ ॥ अनन्तर कूले चरों में भैसका ॥

महियो घोटेकारिः स्यात्कासरश्च रजस्वलः ॥ पी
 नस्कन्धः कृष्णकायो लुलापो यमवाहनः ॥ ७७ ॥
 महिषस्यामिवं स्वादुस्निग्धोष्णं वातनाशनम् ॥
 निद्राशुक्रप्रदं वल्यं तनुदाढ्यं करङ्गुरु ॥ ७८ ॥ वृष्य
 च्चसृष्टविन्मूत्रं वातपित्तासनाशनम् ॥

भा० महिषघोटेकारिकासार रजस्वल ॥ पीनस्कन्ध कृष्णकाय लुलाप यम
 वाहन ॥ ७७ ॥ येह भैसके नाम है भैसका मांस मधुर चिकना गरम वातनाशक

हे ॥ और निम्न शुक्र को करने वाला बलके हित शरीर को दृढ करने वाला भारी
॥ ७० ॥ शुक्रको करने वाला और मल मूत्र को करने वाला वात रक्त पित्त इन
का नाशक है ॥

अथ मण्डूकः । मण्डूकः प्लव गोभेको वर्याभू
र्दुर्दुरो हरिः ॥ मण्डूकः प्लेखलो नाति पित्त लो बल का
रकः ॥ ७४ ॥ अथ पादियु कच्छु आ । कच्छु पो गूह पात्कू
र्मः कमठो दृढ पृथुकः । कच्छुपो बल दो वातपित्तनुत्पु
स्त्व कारकः ॥ ७० ॥ अथ विशेषाः । अथ सद्यो ह तस्य मां
सस्य गुणाः । सद्यो ह तस्य मांसं स्यात् व्याधि घातियथा ऽमृ
तम् । वयस्यं वृंहणं सान्त्व मन्यथा तद्वि वर्जयेत् ॥ ७१ ॥

भा० अनन्तर मंडक । मण्डूक प्लव गोभेक वर्याभू दुर्दुर हरि येह मंडक के नाम हैं ।
मंडक कफ करने वाला और बहुत पित्त को करने वाला नहीं है तथा बल करने वा-
ला है ॥ ७४ ॥ अनन्तर पादियोंमें कच्छु वा । कच्छुपो गूह पात कूर्म कमठ दृढ पृ
थक येह कच्छु वे के नाम हैं । कच्छुवा बलको देने वाला वात पित्त का नाशक
पुरुषत्वको करने वाला है । ७० । और विशेष । अनन्तर तत् कालके मारे हुवे
के मांसका गुण । तत् कालके मारे हुवे का मांस रोग नाशक जैसे अमृत ॥ बयके
हित पुष्टं सान्त्व होता है ॥ और इस्से विरुद्ध उसको त्याग देवे ॥ ७१ ॥

स्वयं मृतस्य मांसम् । स्वयं मृतस्य चावल्य मती सारक
रंगुरु ॥ वृद्ध बाल मांसम् ॥ वृद्धा नां दोषलं मांसं ।
वालानां बल्लहं लघु ॥ सर्प दृश्य मांसञ्च शुष्क मां
सं विदोष कृत् ॥ ७२ ॥ व्याल दृश्य च्च दुष्टञ्च शुष्कं ।
शूल करम्परम् ॥ अथ वियादि मृतस्य मांसम् ॥

भा० आपही मरे हुवेके मांस । आपही मरे हुवेका मांस बल नाशक अतीसार
को करने वाला भारी होता है ॥ वृद्ध और बाल का मांस । वृद्धों का मांस दोषका

य कारक और वृक्षों का मांस बलको देने वाला हलका होता है ॥ साँप के काटे का मांस और सूका मांस विदोष कारक है ॥ ८२ ॥ साँपके काटे हुबे का मांस और दुग्ध तथा सूका मांस परम शूलकारक है ॥ अनन्तर वियादि से मरे हुबे का मांस ॥

विशाम्बु रुङ्मृतस्यैतन् मृत्यु दोष रुजा करम् ॥ क्लिन्न
मुत् क्लेश जनकं कंश वात प्रकोप नम् ॥ ८३ ॥ तोय पू-
र्यां त्रिरा जालं मृतमप्यु विदोष क्तम् ॥ विहङ्गेषु पुमान्
श्रेष्ठः स्त्री चतुर्व्यद जातियु ॥ ८४ ॥ परर्द्धे लघु पुंसां ।
स्यात् स्त्रीणां पूर्वाह्णं मादि शेत् ॥ देह मध्यं गुरु प्रायं ।
सर्वेषां प्राणिनां स्मृतम् ॥ ८५ ॥ पक्ष क्षेयां द्वि हङ्गा
नां तदेव लघु कथ्यते ॥

भा० विय जल और रोग इनसे मरे हुबे का मांस मृत्यु दोष रोग इनको करने वाला है ॥ और सड़ा उल्केश को करने वाला रुजा वात के प्रकोप को करने वाला है ॥ ८३ ॥ जल में मरा हुवा जलसे भरा त्रिरा जालवाला ऐसा मांस विदोष को करने वाला है ॥ पक्षियों में नर श्रेष्ठ और वीषाणों में स्त्री श्रेष्ठ है ॥ ८४ ॥ नरों का पिच्छला हिस्सा हलका होता है । और स्त्रियों का अगला हिस्सा हलका ॥ सब जीवों का मध्य देह प्रायः भारी कहा है ॥ ८५ ॥ पक्ष क्षेप से परिन्दों का वीही हलका कहा है ॥

गुरू रायगडानि सर्वेषां गुर्वी ग्रीवा च पक्षिणाम् ॥
८६ ॥ उरःस्कन्धो दरं कुक्षी पादौ पारणी कटी तथा ॥
ष्टष्ट त्वगू यकृ दन्वाशि गुरू रगीह यथो त्तरम् ॥ ८७ ॥
लघु वात करं मांसं खगानां धान्य चारिणाम् ॥ म-
त्स्या शिनां पित्र करं वातघ्नं गुरू कीर्तितम् ॥ ८८ ॥

भा० सब पक्षियों के अंडे भारी और गरदन भी भारी होती है ॥ ८६ ॥ और कृतीक
न्धा उर कृत्वा पाव हाथ तथा कमर ॥ पीठ त्वचा यकृत भात येह अथोत्तर मण्डि

॥३८॥ घान करने वाले पक्षियों का मांस हलका और वात करने वाला है ॥ और म
छली खाने वालों का पित्त वात नाशक भारी कहा है ॥ ८८ ॥

पलाशिनं प्लेय्यं करं लघु रूक्ष मुदी रितम् ॥ वृंहणं
गुरु वातघ्नं तथा मेवं पलाशिनम् ॥ ८९ ॥ तुल्य जाति
ष्वल्प देहा महा देहेषु पूजिताः ॥ अल्प देहेषु वास्यन्ते
तथैव स्थूल देहिनः ॥ ९० ॥ मत्स्येषु रोहि तस्य ॥
रक्तो दरो रक्त मुरवो रक्ता क्षो रक्त पक्षतिः ॥ कृष्ण पू
च्छो मय श्रेष्ठो रोहितः कथितो बुधैः ॥ ९१ ॥ रोहितः ॥
सर्व मत्स्यानां वरो वृष्यो र्दिता त्रिजित् ॥ कथाया नुरसः
खादु वीतघ्नो नांति पित्त क्त ॥ ९२ ॥ ऊर्द्धं जवु ग-
ता न्त्रोगान् हन्या द्रोहित सुरण्ड कम ॥

भा० मांस खाने वालों का कफ करने वाला हलका रूखा कहा है ॥ उन्हींके ॥
मांस को खाने वालों का मांस युष्ट भारी वात नाशक होता है ॥ ८८ ॥ समान ॥
जाति वाले बड़े देह वालों में अल्प देह वाले श्रेष्ठ है ॥ उसी प्रकार अल्प शरीर
वालों में स्थूल देह वाले प्रशस्त है ॥ ९० ॥ मछलियों में रोहू का मांस ॥
नाल उदर लाल मुख लाल पर ॥ काली पूंछ मछलियों में श्रेष्ठ रोहू पंडितों
में कहा है ॥ ९१ ॥ रोहू सब मछलियों में श्रेष्ठ शुक्र को करने वाली अर्द्ध
रोग को जीतने वाली ॥ पीछे से कसेली मधुर वात नाशक नवहुत पित्त को कर
ने वाली है ॥ ९२ ॥ रोहू का सिर गले के ऊपर के रोगों को नाश करता है ॥

सिलन्धा । सिलन्धः प्लेय्य लो वल्यो वियाके म-
धुरो गुरुः ॥ वात पित्त हरो दृघं आम वात करश्च ।
सः ॥ ९३ ॥ अथ भाकुर । भक्षुरो मधुरः शीतो वृ-
ष्यः प्लेय्य करो गुरुः ॥ विशम्भ जन कश्चापि रक्त ।

पित्त हरः स्मृतः ॥ ४४ ॥ मोमा चिका ॥

मोचिका वात हृद्वा ल्या वृंहणी मधुरा गुरुः ॥ पित्त
हत कफ कुट्टु च्या वृथ्या दीप्ता ग्नये हिता ॥ ४५ ॥ म
ठना चूआरी इति च पोठिया वोरी इति च ॥ पाठिनः
श्लेष्म लो वन्यो निद्रालुः पित्रिता शनः ॥ दूषये द्रु-
धिरं पित्त कुष्ट रोगं करोति च ॥ ४६ ॥

भा० सिलन्धा मछली । सिलन्ध कफ को करने वाली बलके हित विपाक में
मधुर भारी ॥ वात पित्त की नाशक हृद्य और वैह आम वात को करने वाली है ॥
४३ ॥ अनन्तर भाकुर । भाकुर मधुर शीतल शुक्र को करने वाली कफ कारक भा
री होती है । और चिहंम जनक तथा रक्त पित्त की नाशक भी कही है ॥ ४४ ॥ अनन्त
र मोचिका । मोचिका वात नाशक बलको करने वाली पुष्ट मधुर भारी ॥ पित्त नाश
क कफ को करने वाली और दीप्ताग्नि वाले को हित है ॥ ४५ ॥ मठना चूआरी ॥
पोठिया वोरी । मठना कफ को करने वाली बलके हित निद्रा को करने वाली है ॥ औ
र मोसरवाने वाले के रुधिर को बिगाड़ ती है तथा पित्त और कुष्ट रोग को भी कर
ती है ॥ ४६ ॥

अथ सीङ्गी । शृङ्गी तु वात शमनी स्निग्धा श्ले
ष्म प्रकोपनी ॥ रसे तिक्ता कथा याच लघ्वी रुच्या ।
स्मृता बुधेः ॥ ४७ ॥ अथ हीलसा ॥ इल्ल सो
मधुरः स्निग्धो रोचनो वह्नि वर्द्धनः ॥ पित्त हृत्कफ
कान्तिञ्च हृद्यु वृथ्योऽनिला पदः ॥ ४८ ॥

भा० अनन्तर सीङ्गी ॥ सीङ्गी वात को शमन करने वाली चिकनी कफ
प्रकोप करने वाली ॥ रस में तिक्त कसेली रुचिको करने वाली पंडितों
ने कही है ॥ ४७ ॥ अनन्तर हीलसा ॥ हीलसा मधुर चिकनी रुचि
को करने वाली दीपन ॥ पित्त नाशक कफ को करने वाली कुच्छ हलकी शु
क्र को करने वाली वात नाशक है ॥ ४८ ॥

अथ सौरी । श्कुली ग्राहिणी हृद्या मधुरा तु वरा
 स्मृता । अथ गर्गरा । गर्गरः पित्तलः किञ्चिद्वातजि
 त्कफकोपनः । अथ कवड । कविका मधुरा स्निग्धा
 कफघ्ना रुचिकारिणी ॥ किञ्चिद्पित्तकरी वातना
 शिनी वीन्हवर्द्धिनी ॥ ६४ ॥ अथ चाम्बी ॥ चर्मि
 त्त्यो हरेद्वातं पित्तं रुचिकरो लघुः ॥

भा० अनन्तर सौरि । सौरी का विज हृद्य मधुर कसेली कसीहे ॥ अनन्तर गर्ग
 र । गर्गरा पित्त को करने वाली कुछ एक वात को जीतने वाली कफ को कुपित्त
 करने वाली है । अनन्तर कवड । कवई मधुर चिकती कफ नात्राकरुचिको
 करने वाली ॥ कुछ एक पित्त को करने वाली वातनाशक अग्नि को बढ़ाने वा
 ली है ॥ ६४ ॥ अनन्तर चाम्बी ॥ चाम्बी मछली वात पित्त को हरती है
 और रुचि को करने वाली हलकी है ॥

अथ दण्डारी । दण्ड मत्स्यो रसे तिक्तः पित्त रक्तं क
 फं हरेत् । वातसाधारणः शोक्तः शुक्लो चल वर्द्धनः ॥
 १०० ॥ अथ अरङ्गी । अरङ्गी मधुरः स्निग्धो विद्य
 म्भीशीतलो लघुः ॥ अथ पपता ॥ महा सफर ।
 संजस्तु तिक्तः पित्त कफा पहः ॥ शिशिगे मधुरो रु
 च्यो वातसाधारणः स्मृतः ॥ १०१ ॥ अथ गरई ॥
 गरघ्नी मधुरा तिक्ता तुवरा वात पित्त हृत् ॥ कफघ्नी ।
 रुचिकृद्घ्नी दीपनी चल वीर्य्य कृत् ॥ १०२ ॥ अथ
 मङ्गुरी । मङ्गुरी वात हृत्त्यो वृष्यः कफकोरो लघुः ॥

भा० अनन्तर दण्डारी । दण्डारी मछली रसें तिक्त और पित्त रक्त कफ इनको

हरती है ॥ तथा साधारण वात को करने वाली शुक्र को करने वाली और बल को बढ़ाने वाली है ॥ १०० ॥ अनन्तर अरुंगी । अरुङ्गी । मधुर चिकनी विष्टम्भ को करने वाली शीतल हलकी होती है ॥ अनन्तर पापता । पापता तिक्त पित्त कफ की नाशक ॥ शीतल मधुर रुचि को करने वाली साधारण वात को करने वाली कही है ॥ १०१ ॥ अनन्तर गरई । गरई मधुर तिक्त कसेनी वात पित्त की नाशक ॥ कफ नाशक रुचि को करने वाली दीपन बल वीर्य को करने वाली है ॥ १०२ ॥ अनन्तर मङ्गुरी । मङ्गुरी वात नाशक बलके हित शुक्र को करने वाली कफकारक हलकी है ॥

अथ वेङ्गरा । सपाद् मत्स्यो भेधा कृत्मेह क्षय करश्चसः

॥ वात पित्त करश्चापि रुचिकृत्परमो मतः ॥ १०३ ॥

अथ सफरी पोठी इति च ।

पौष्ठी तिक्ता कटुः स्वादुः शुक्रघ्नी कफ वातजित् ॥ स्त्रि

ग्धास्य करगठ रोगघ्नी रोचनी च लघुः स्मृतः ॥ १०४ ॥

अथ क्षुद्र मत्स्याः । क्षुद्रा मत्स्याः स्वादुरसाः दोष
त्रयविनाशनाः ॥ लघु पाका रुचिकरा बलदा स्ते हिता
मताः ॥ १०५ ॥ अथातिक्षुद्र मत्स्याः ॥ अतिसू-

क्ष्माः युंस्त्व हरा रुच्याः कासा निला यहाः ॥

भा० अनन्तर वेङ्गरा । वेङ्गरा कान्ति को करने वाली और प्रमेह नाशक वो
ह है तथा वात पित्त कर और परम रुचिको करने वाली कही है ॥ १०३ ॥ अनन्त
र सफरी और पोठी भी कहते हैं । पोठी तिक्त कडवी मधुर शुक्र को करने वाली है
और कफ वात को जीतने वाली है ॥ चिकनी सुख कंठ इनके रोगों की नाशकरु
चिको करने वाली हलकी कही है ॥ १०४ ॥ अनन्तर छोटी मङ्गुरी ॥ छोटी म
ङ्गुरी रसमें मधुर तीनों दोषों की नाशक ॥ पाक में हलकी रुचि को करने
वाली बलको देने वाली वे हित है ॥ १०५ ॥ अनन्तर बहुत छोटी मङ्गुरी ।
बहुत छोटी पुरुषत्व की नाशक रुचिको करने वाली कास वात की नाशक
है ॥

अथ मत्स्यारहा ।

मत्स्य गर्भो भृशं वृथ्यः स्निग्ध पुष्टि कारो लघुः ॥ कफ मे
हः प्रदो बल्यो ग्लानि कृन्मेह नाशनः ॥ १०६ ॥

अथ सूखदी । शुष्क मत्स्या नवा बल्याः दुर्जराः विड् वि
वन्धिनः । अथ दग्ध मत्स्याः । दग्ध मत्स्यो गुणोः श्रे
ष्टः पुष्टि कृद् ल बर्द्धनः । अथ कूप जादि मत्स्य गुणाः

॥ कौप मत्स्याः शुक्र मूत्र कुष्ठ प्लेक्म विवर्द्धनाः ॥ स
रो जा मधुराः स्निग्धा बल्या वात विना शनाः ॥ १०७

॥ नादेया वृंहणा मत्स्या गुरवो ऽनिल नाशनाः ॥ र-
क्त पित्र करा वृथ्याः स्निग्धो ष्याः स्वल्प वर्चसः ॥ १०८

धौञ्जाः पित्त कराः स्निग्धा मधुरा लघवो हिमाः ॥

भा० अनन्तर मछलियों के अंडे । मछलिके अंडे अत्यन्त शुक्रको करने वाले
चिकनें पुष्टि को करने वाले हलके है ॥ और कफ प्रमेह को करने वाले बलके
द्विग्लानि को करने वाले प्रमेह नाशक है ॥ १०६ ॥ अनन्तर सूखी । सूखी म
छली नई बलको देने वाली दुर्जर मलको वान्धनें वाली है ॥ अनन्तर दग्ध मत्स्य
। दग्ध मछली गुणमें श्रेष्ठ पुष्टि को करने वाली बलको बढ़ाने वाली है । अनन्तर
कूपें आदि में की मछलियों के गुण ॥ कूपेंकी मछलियां शुक्र मूत्र कुष्ठ कफ इन
को बढ़ाने वाली है ॥ सरो वरकी मछलियां मधुर चिकनी बलको करने वाली ।
वातकी नाशक है ॥ १०७ ॥ नदी की मछलियां पुष्ट भारी वात नाशक है ॥ और रक्त
पित्त को करने वाली शुक्रको करने वाली चिकनी उष्ण अल्प मलको करने वाली
है ॥ १०८ ॥ गहड़की मछलियां पित्त को करने वाली चिकनी मधुर हलकी शीत
रहती है ॥

ताडागा गुरवो वृथ्याः शीतलाः बल सूत्रदाः ॥ १०९

॥ ताडागा वक्षिप्र जाताः बला युर्मति हकराः ॥

अथर्तु विशेषे मत्स्य विशेषः ।

हेमन्ते कूपजा मत्स्याः शिशिरे सारसा हिताः ॥ वसन्ते
 ते तु नादेया ग्रीष्मे चैञ्ज समुद्र वाः ॥ ११० ॥ तडाम जा
 ना वर्षासु तास्व पथ्या नदी भवाः ॥ नैर्भराः शरदि ।
 श्रेष्ठा विप्रियो ऽय मुदा हृतः ॥ १११ ॥

इति श्री भाव प्रकाशे मांस वर्गः ।

मा० तालाव की मछलियां भारी शुक्रको करने वाली झील बल मूत्र को देने
 वाली है ॥ १०४ ॥ तालाव और वावली की मछलियां बल आयु मति दृष्टि व्रन
 को करने वाली है ॥ अनन्तर ऋतु विशेष में मत्स्य विशेष । हेमन्त में कुर्वे की
 मछली शिशिर में सरो वर की हित है ॥ वसन्त में नदी की ग्रीष्म में गह्वर की हि
 त है ॥ ११० ॥ तालाव की वर ज्ञात में हित होती है और वरसात में नदी की अहित
 होती है ॥ मरने की शर्द में श्रेष्ठ होती है । यह विशेष कहा है ॥ १११ ॥

इति भाव प्रकाशे मांस वर्गः ।

अथ कृतान्न वर्गः ॥

तत्रान्नां साधन प्रकारः सिद्धानां गुराणां च ॥

तत्र परि भाषिता ।

समवा यिनि हेतोये मुनि भिर्गणिता गुराणाः ॥ कार्थ्ये ऽ
 पिते ऽखिला ज्ञेयाः परि भाषेति भाषिता ॥ ११२ ॥ क्वचि
 त्संस्कार भेदेन गुरा भेदो भवे द्यतः ॥ भक्तं लघु पुरा-
 णस्य शालेस्त च्चिपिठो गुरुः ॥ ११३ ॥ क्वचि द्योग प्रभा
 वेन गुणान्तर मये क्ष्यते ॥ कदन्नं गुरु सर्पिश्च लघुक्तं
 सुहितं भवेत् ॥ अथ सक्तस्य नामानि साधनं गुराणां च

भा० अनन्तर कीये हुवे अन्न का वर्गः । उसमें अन्नो के बनाने का प्रकार । और वनेहुवोंका गुण । उसमें परिभाषा । समवाई कारण में जो गुण गुणियोंने माने हैं ॥ वे सब कार्य में भी जानने चाहिये इस प्रकार परि भाषा कही है ॥११२॥ कही पर संस्कार भेदसे गुण भेद होता है ॥ जैसे पुराने चावलों का भात हलका और उस का चिडवा भारी होता है ॥ ११३ ॥ कही पर योग के प्रभावसे गुणान्तर होजाता है ॥ कदन्न भारी घृत हलका कहा है वोह हित होता है ॥ अनन्तर भात के नाम साधन और गुण ॥ ॥

भक्तं मन्त्रं तथान्धश्च क्वचित्कूरञ्च कीर्त्ति तम् ॥ ओ
दनाः स्त्री स्त्रियां मित्साही दिविदः पुंसि भाषितः ॥ ११४
सुधौतास्त एदुलाः स्फीता स्तोये पञ्च गुरो पचेत् ॥ त-
द्भक्तं प्रस्तुतं चोष्णं विशदं गुण वन मत्तम् ॥ ११५ ॥
मक्तं बन्धि करं पथ्यं तर्पणं रोचनं लघुः ॥ अधो तम
श्रुतं शीतं गुर्व रुच्यं कफ प्रदम् ॥ ११६ ॥
अथ पहिति । दलितन्तुशिवी धान्यं दालि दाली क्षि
या मुभे ॥ दाली तु सलिले सिद्धा लवणा द्रक हिङ्गुभिः
॥ ११७ ॥ संयुक्ता सूप नाम्नी स्यात्कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥
सूपो विष्टम्भको रूक्षः शीतस्तु सविशेषतः ॥ ११८ ॥
निस्तुषो मृष्टसंसिद्धः लाघवं सुतरा ब्रजेत् ॥

भा० भक्त अन्न अन्ध और कही पर कूर कहा है ॥ नपुंसक में ओदन स्त्री लिंग
गमें मित्सादि विद पुद्भिद्गुमें कहा है ॥ ११४ ॥ अच्छी तरह धोये हुवे चावल व
हाये हुवे चांच गुने पानी में पकावे वोह पसेया हुवा गरम विशद गुण युक्त भात
कहा है ॥ ११५ ॥ भात दीपन पथ्य तर्पण रोचन हलका होता है ॥ और विन धो
या तथा विनय मे या शीतल भारी अरुचि को देने वाला और कफ कारी होता है
॥ ११६ ॥ अनन्तर दाल । धुली हुई शिवी धान्य दालिः दाली येह देना सगरी

लिंग में होतेहै ॥ दाल जलमें सिद्ध और लवण अद्रक हीङ्ग ॥११७॥ इनसे युक्त कासपनामहै अनन्तर उसके गुरा कहते है ॥ दाल विष्टंभ करने वाली रूसदी शीतल होती है विशेष से ॥ ११८॥ वे छिलके का भूनके सिद्ध की हुई बहुत हलकी हो जाती है ॥

अथ खिचिरी । तरुडु ला दालि संमिश्रा लवणा ई ।

कहिङ्गुभिः ॥ संयुक्ता सलिले सिद्धा कृशरा कथिता

बुधैः ॥ ११९ ॥ कृशरा शुक्रला बल्या गुरुः पित्त कफ

प्रदा ॥ दुर्जरा बुद्धि विष्टम्भ मल मूत्र करी स्मृता ॥ १२० ॥

अथ तापहारी ताता हरी तिलोके ।

घृते हरिद्रा संयुक्ते माष जाम्भर्ज्ये च वीम् ॥ तरुडु

लां श्रापि निर्धोतान् सहैव परिभर्जयेत् ॥ १२१ ॥ सि

द्ध योग्यं जलं तत्र प्रक्षिप्य कुशलः पचेत् ॥ लवणा ई

कहिङ्गुनि मात्वायां तत्र निःक्षिपेत् ॥ १२२ ॥

भा० अनन्तर खिचड़ी । दाल मिले हुवे चावल लवण अद्रक हीङ्ग-से युक्त ॥ जलमें सिद्ध को पंडितों ने कृशरा कहा है ॥ ११९ ॥ खिचड़ी शुक्र को करने वाली वलके हित भारी पित्त कफ को देने वाली ॥ और दुर्जर बुद्धि विष्टंभ मल मूत्र को करने वाली कही है ॥ १२० ॥ अनन्तर तारी । हरदी के साथ घृतमें उडद की बडियों को भूने विन धोये हुवे चावलों को भी साथ ही भूने ॥ १२१ ॥ उसमें पकनेके अन्दाज से जल डाल कर चतुर पकावे ॥ लवण अद्रक हीङ्ग उसमें हि-सावसे डाले ॥ १२२ ॥

एषा सिद्धिः समानज्ञा प्रोक्ता तापहरी बुधैः ॥ भवेत्ताप

हरी बल्या वृष्या श्लेष्मानमाचरेत् ॥ १२३ ॥ वृंहणी

तर्पणी रुच्या गुर्वी पित्त हरि स्मृता ॥

भा० इस सिद्धि हुई को पंडितों ने तायरी कहा है ॥ तायरी बलको देने वाली शुक्र

को करने वाली है और कफ को करती है ॥ १२३ ॥ वृंहरातर्पण रुचि को करने वाली भारी पित्त नाशक कही है ॥

अथ रवी र । पायसं परमान्नं स्यात् क्षीरि कापि त-
दुच्यते ॥ शुद्धे र्द्ध पक्के दुग्धे तु घृताक्तां स्तरडु लान् य-
चेत् ॥ १२४ ॥ ते सिद्धा क्षीरिका ख्याता ससिताज्य युतो-
त्तमाः ॥ क्षीरि का दुर्जरा प्रोक्ता वृंहणी बल वर्द्धिनी ॥
१२५ ॥ नालि के रन्तनु कृत्य च्छि न्नं पयसि गोः क्षिपेत्
॥ सितागव्याज्य संयुक्ते तत्पचैन्मृदु नाऽग्निना ॥ १२६ ॥
नारी केरो द्रवा क्षीरं स्निग्धा शीताति पुष्टि दा ॥ गुर्वी सु-
मधुरा दृष्या रक्त पित्ता निला पहा ॥ १२७ ॥ अथ सेवई ॥

भा० अनन्तर खीर । पायस पर मान्नं क्षीरि का येह खीर के नाम है ॥ शु-
द्ध अथ और दूधमें घृत युक्त चाव लोंको पकावे ॥ १२४ ॥ वो सिद्ध क्षीरि का
जीनी घृतसे युक्त उन्नम कही है ॥ दुर्जर खीर पुष्ट च्लको बढाने वाली है ॥ १२५
नारियल को कीलके गायके दूधमें डाले ॥ चीनी गायको घृत से युक्त उसको
मन्दी भाँचसे पकावे ॥ १२६ ॥ नारियल की खीर चिकनी शीत अति पुष्टि
को करने वाली ॥ भारी मधुर शुक्र को करने वाली और रक्त पित्त वात इनकी
नाशक है ॥ १२७ ॥ ॥ अनन्तर सेवई ॥ ॥

समितां वर्ति कां कृत्वा सूक्ष्मां तु यव सन्निभाम् ॥ शु-
क्काक्षीरिणां संसाध्यां भोज्या घृतसिता न्विता ॥ १२८ ॥
सेविका तर्पणी बल्या गुर्वी पित्ता निला पहा ॥ ग्राहे णी-
सन्धि ऊद्गु च्या तां खावे न्नाति मात्रया ॥ १२९ ॥
अथ मण्डा । गोधूमा धवला धौताः कुट्टिताः शोधि-
तस्ततः ॥ प्रोक्षिता यन्त्र निष्यथा श्वालिताः समिताः

स्मृताः ॥१३०॥ वारिणा कोमलां कृत्वा समिता साधु म-
ईयेत् ॥ हस्त लाल नया तस्या लोपचीं सम्यक् प्रसार-
येत् ॥ १३१॥ अधो मुख घटस्यै तत् विस्तृतं प्राक्षियेद्
हिः ॥ मृदुना वह्निना साध्यः सिद्धो मण्डक उच्यते ॥

१३२॥ लोपची लीड इति लोके ।

दुग्धेन साज्य खण्डेन मण्डकं भक्षयेन्नरः ॥ अथ वा
सिद्ध मांसेन सप्त क्रवट के नवा ॥ १३३॥ मण्ड को
वृंहणो वृष्यो वल्यो रुचि करो मृशम् ॥ पाके ऽपि म
धुरो ग्राही लघु दीय त्रया पहः ॥ १३४॥

अथ पोरी कुत्रापि दुनौरी इति च ॥

भा० सूक्ष्म जबके समान बराबर बत्ती को करके ॥ सुका कर दूधसे पकावे और
रघत चीनीके साथ खावे ॥ १२८॥ सेवई तपरगी बलको देने वाली भारी पित्त
बातकी नाशक ॥ काविज संश्लि करने वाली रुचिको करने वाली होती है उस
को बहुत नखावे ॥ १२९॥ अनन्तर मंडा ॥ सुफेद धोये कुटे हुवे और सु
काये हुवे गेहूं को प्रोक्षित चक्की से पीसे हुवे तथा चलनी से छाने हुवे को समि
ता अर्थात् मैदा कहा है ॥ १३०॥ मैदे को पानीमें घोल करके अच्छी तरह मर्द
न करे ॥ हाथकी लालना से उसकी लोई अच्छी तरह करे ॥ १३१॥ नीचे सु
ख घडे पर येह फेली हुई को डाले ॥ मन्द अग्नि से सिद्ध हुई को मंडक हे
ते है ॥ १३२॥ लोई इस प्रकार कहते है ॥ दूध घत खांड इनसे मनुष्य मंडे
को खावे ॥ अथवा सिद्ध मांस से वादही के बडे से खावे ॥ १३३॥ मंडा शुक्रको
करने वाला और बलकेहित अत्यन्त रुचिको करने वाला है ॥ पादमें भी मधु
ए काविज हलका दीय त्रय का नाशक है ॥ १३४॥
अनन्तर पूरी और कही पर दुनौरी भी कहते हैं ॥

कुर्यात्समितया ऽतीव तन्वी यर्ष्यति का तनः ॥ स्वेद

येत्र प्रके तान्तु पौलि का जग दुर्बुधाः ॥ १३५ ॥ तां खा
 देह्लप्सिका युक्तां तस्या मण्डक वद्गुणाः ॥
 तप्त कन्त वा इति लोके ॥ अथ प्रसङ्ग लप्सी ॥
 समितां सर्पिया भृष्टां शर्करां पयसि क्षिपेत् ॥ तस्मिन्
 घनी कृत्ते न्यस्ये ह्लवङ्गं मरिचादिकम् ॥ १३६ ॥ सिद्धे
 याल्लप्सिका ख्याता गुणास्तस्या वदाम्यहम् ॥ लप्सि
 का वृंहणी वृष्या वल्या पित्रा निला पहा ॥ १३७ ॥ स्त्रि
 ग्धा प्ले व्य करी गुर्वी रोचनी तर्पणी परम् ॥

भा० मैदेसे अतीव सूक्ष्म पपड़ी करे उसके अनन्तर ॥ उसको तवे पर से के उस
 को पौलिका विह्वनों में कहा है ॥ १३५ ॥ उसको लप्सी के साथ खावे उसका
 गुण मंडे के समान है ॥ तप्त कन्त वा इस प्रकार लोक में कहते हैं ॥
 अनन्तर प्रसङ्ग से लप्सी । मैदे को घृत से घृत के शर्करा के साथ दूध में डाले
 ॥ वोह गाढ़ा हो जाने पर लोड़ मिरव आदिक डाले ॥ १३६ ॥ येह सिद्ध
 हुई लप्सी कही है उसके गुणों को कहते हैं ॥ लप्सी पुष्ट शुक्र को करने
 वाली बल को करने वाली पित्र वात की नाशक ॥ १३७ ॥ चिकनी कफ कारी
 नारी रोचनी तर्पणी है ॥

अथ रोटी । शुष्क गोधूम चूर्णेन किञ्चित्पुष्टाञ्च पो
 लिकाम् ॥ तप्तके स्वेद येत्कृत्वा भूर्यङ्गरेऽपितां पचे
 त् ॥ १३८ ॥ सिद्धेया रोटिका प्रोक्ता गुणां तस्याः प्रचक्ष्महे
 रोटिका बल कृद्गुच्या वृंहणी धातु वर्द्धनी ॥ १३९ ॥ त्रात
 म्नी कफ कृद्गुर्वी दीप्राग्नीनां प्रपूजिता ॥

भा० अनन्तर रोटी । सूके गेहूं के आदे से कुछ मोटी रोटी को ॥ तवे पर से
 के और से के उसको वहन से अंगारों पर पकावे ॥ १३८ ॥ इसको सिद्ध ।

रोटिका कहाँ है उसके गुरा कहते हैं ॥ रोटी बल को करने वाली रुचिकेहित ।
पुष्ट धातु को बढ़ाने वाली ॥ १३६ ॥ वात नाशक कफ को करने वाली भारी दीपना
ग्नि वालों को श्रेय है ॥

अथ लीड्री । शुष्क गोधूम चूर्णां नु साम्बु गाढं विमर्दये
त् ॥ विधाय वट का कारं निर्धूमैः श्नोः श्नैः पचेत् ॥ १४० ॥

अङ्गार कर्कटी खेया वृंहणी शुक्रला लघुः ॥ दीपनी क
फ कद् बल्या पीन स्रवास कास जिंत ॥ १४१ ॥

अथ यव रोटी । यवजा रोटिकारुच्या मधुरा विशदालघुः
मल शुक्रा निल करी बल्या हन्ति कफा मयान् ॥ १४२ ॥

अथ माष रोटिका । माषानां दाल यस्तोये स्थापिता स्यक्त
कञ्चुकाः ॥ आतपे शोषिता यन्त्रे पिष्टास्ता धूमसी स्मृ
ता ॥ १४३ ॥ धूमसी रचिता चैव प्रोक्ता भर्भरिका बुधैः ॥

भर्भरी कफ पित्तघ्नी किञ्चिद्वात करी स्मृता ॥ १४४ ॥

भा० अनन्तर लीड्री । सूके गेहूं के आटे को जलके साथ गाढा ओसने ॥ वट का ।
कार करके निर्धूम अग्नि में धीरे २ पकावे ॥ १४० ॥ यह अंगा रुडी पुष्ट शुक्रको क
रने वाली हलकी है ॥ और दीपनी कफको करने वाली बल के हित और पीनस ।
शवास कास इन को जीतने वाली है ॥ १४१ ॥ अनन्तर जवकी रोटी ॥ जवकी
रोटी रुचि को करने वाली मधुर विशद हलकी मल शुक्र वात को करने वाली बल
के हित होती है ॥ और कफ के रोगों को नाश करती है ॥ १४२ ॥ अनन्तर उड
दकी रोटी ॥ उडद की दाल को पानी में भिगोय के छिलके निकाली हुई को धूप
में सुकावे बकी में पीसे उसको धूमसी कहाँ है ॥ १४३ ॥ धूम सीसे बनी हुई बोही
भर्भरिका कहाँ है ॥ भर्भरी कफ पित्त की नाशक कुछ एक वात को करने वाली
कही है ॥ १४४ ॥

[अथ चनक रोटिका]

चनत्रया रोटिका रूक्षा प्लेय्य पिता सनु हुरुः ॥

विद्युम्भिनी न चक्षुष्या तद्गुणा चाति शङ्कुली ॥ १४५ ॥
 अथ पिष्टिका । दालिः संस्था पिता तोये ततोऽपहृत
 कञ्चुका ॥ शिलायां साधु सम्पिष्टा पिष्टिका कथिता ।
 बुधैः ॥ १४६ ॥ अथ वेढड ॥ मास पिष्टि कया
 पूर्णा गर्भा गोधूम चूर्णितः ॥ रचिता रोटिका सेव प्रो-
 क्ता वेढ मिका बुधैः ॥ १४७ ॥ भवे द्वेढ मिका बल्या
 रुध्या रुध्याऽनिला पहा ॥ उष्ण सन्न पर्यागी गुर्वी वृ-
 हणी शुक्रला परम् ॥ १४८ ॥ भिन्न मूत्र मला स्त-
 न्य मेदः पित्र कफ प्रदा ॥ गुदकी लाहृतः श्वासं य-
 ङ्किः शूलानि नाशयेत् ॥ १४९ ॥ अथ पापर ॥

भा० अनन्तर चनें की रोटी, जनेकी रोटी रूखी और कफ रक्तपित्त इनकी नाशक
 भारी ॥ विद्युम्भ करने वाली नेत्रके हित और उसी के गुण अति शुष्क लीहै
 ॥ १४५ ॥ अनन्तर पिष्टी ॥ दाल को पानीमें भिजीय के और उसका छिलका नि
 काल कर ॥ सिल पर अच्छी तरह पीसी हुई को पिष्टी पंडितोंने कहीहै ॥
 १४६ ॥ अनन्तर वेढड ॥ उदक की पिष्टी को आटे के भीतर भरके ॥ बनाई हुई
 को वेढड पंडितोंने कहाहै ॥ १४७ ॥ वेढमी बलकी करने वाली शुक्र की उष्ण
 न करने वाली रुचिको करने वाली वात नाशक । गरम सन्न पर्यागी भारी पुष्ट ।
 शुक्रको करने वाली है ॥ १४८ ॥ मल मूत्र को करने वाली दुग्ध मेद पित्र कफ
 इनको देने वाली है ॥ और गुद की ल लाहृत श्वास पङ्किः शूल इनको नाशक
 रती है ॥ १४९ ॥ अनन्तर पापर ॥

धूमरी रचिता हिङ्गु हरिद्रा लवणै र्युता ॥ जीर क
 स्वर्जिका म्याञ्च तनू कृत्य च वेह्लिता ॥ १५० ॥ पर्य
 टासे सदाङ्गर मृष्टाः परम श्रेष्ठ काः ॥

दीपनाः पाचना रूक्षा गुरवः किञ्च दीरिताः ॥ १५१
 भोज्याश्च तद्गुणाः शोक्ता विशेषा लघवो हिताः ॥ चन
 कस्य गुरो युक्ताः पर्यटाश्रणाकोद्भवाः ॥ १५२ ॥ स्ने-
 हभृष्टास्तु ते सर्वे भवेयुर्मध्यमा गुरोः ॥

भा० पूर्वीक्त धूमसी से हीङ्ग-हलदी लवण को मिलाके बनाया हुआ ॥ और
 जीरा सज्जी इत्र को मिलाके वारीक करके बेला हुआ पापड है ॥ १५० ॥ वे पाप
 ड अङ्गरे से भूने हुवे परम रोचक ॥ दीपन पाचन रूखे कुछ भारी कहेहे ॥
 १५१ ॥ और मूङ्ग के उसी के समान गुण में कहे हैं विशेष करके हलके हित हो
 तेहे ॥ चनेके पापड चनेके गुण के समान होतेहे ॥ १५२ ॥ वे सब तेलके भू-
 ने हुवे गुणसे मध्यम हैं ॥

अथ पूरी । माथाराणां पिष्टिकां पूज्या लवणाद्रक हि-
 दुभिः ॥ तथा पिष्टिकाया पूरणां समिता कृत पोलिका ॥
 १५३ ॥ ततस्तेलेन पक्वासा पूरीका कथिता बुधैः ॥ रुच्या
 स्वाही गुरुः स्निग्धा वल्या पिप्तास्त्रूयिका ॥ १५४ ॥
 चक्षुस्ते जो हरी चीय्या याके वातविनाशिनी ॥ तथैव
 घृत पक्वापि चक्षुष्या रक्त पित्त हत ॥ १५५ ॥

अथ वरा । माथाराणां पिष्टिका युक्ता लवणाद्रक हिङ्गु-
 मिः ॥ कृत्वा विदध्या दृढका स्नास्ते लेयु पचे च्छनैः ॥
 १५६ ॥ विशुष्का दृढका वल्या वृंहणा वीर्यवर्द्धनी ॥ वा
 ता मय हरीरुच्या विशेषा दर्दितापहा ॥ १५७ ॥

भा० अनन्तर पूरी । उबड़ की पिष्टी लवण अद्रक हीङ्ग से युक्त करके ॥ उस
 पिष्टी से पूरी मैदा की कीहुई पोलिका ॥ १५३ ॥ वो तेलसे पकी को पूरीका
 पडितेने कहीहे ॥ रुचि को करने वाली मधुर भारी चिकनी बल के हितरक्त

पित्तको विगाडने वाली कहीं है ॥१५४॥ नेत्र की नेत्री को हरने वाली गरम पाक में वातको नाश करने वाली ॥ वैसेही बीकी पकी हुई भी नेत्र के हिनरक्त पित्तको नाशक है ॥१५५॥ अनन्तर बड़ा ॥ उड़दों की पिष्टी लवण अन्नक हीड़ु इनसे युक्त ॥ करके बड़े बनावे उनको तैलमें धरे २ पकावे ॥१५६॥ सूके हुवे बड़े ॥ दलको करने वाले पुष्ट धातु को बढ़ाने वाले ॥ वात रोगोंके नाशक रुचिको करने वाले विशेष करके अर्दित रोगके नाशक है ॥१५७॥

विवन्ध भेदिना प्रलेष्म कारिणी ऽ त्यग्नि पूजिता ॥ सं-
चूर्य निक्षि पेत्त के सृष्टं जीरक हिङ्गु मिः ॥ १५८ ॥ लवणं
तत्र दत्तान् सकला नापि मज्जयेत् ॥ शुक्रलस्तत्र व
क्को वल रुद्रो चनो गुरुः ॥ १५९ ॥ विवन्ध हृदि दाही
च प्रलेष्म लः पवना पहः ॥ राज्यक्त पातिना वान्यान्
पाचनां स्तास्तु मक्षयेत् ॥ १६० ॥

राज्यक्ता रडता इति लोके । अथ काञ्ची वर ।

भा० विवन्धको भेदन करने वाली कफ को न करने वाली अति अग्नि में पूजित है ॥ चूर करके जीरा हीड़ु के साथ मठे में डाले ॥१५८॥ और लवण ॥ उसमें सबतड़ोंको डुबोवे ॥ उसमें का चड़ा शुक्रको करने वाला दलको करने वाला रोचन भारी है ॥ १५९ ॥ विवन्ध का नाशक विदाही कफको करने वाला ॥ वातनाशक ॥ रडता घौला हुआ वा और कुछ पाचन उनको खावे ॥ १६० ॥ रडता इस प्रकार लोकमें कहते हैं ॥ अनन्तर कांजी बड़ा ॥

मन्थनी नूतना धार्या कटु तैलेन लेपिता ॥ निर्मले नास्तु
नायूर्य तस्यां चूरा विनिः क्षियेत् ॥ १६१ ॥ राजि का
ञ्ची रल वरा हिङ्गु शुण्ठी तिशा कतम् ॥

भा० नवीन मन्थनी कटु तैलसे लेपित रखवे ॥ उसमें निर्मल जल भरके यह चूरा डाले ॥ १६१ ॥ राई जीरा लवण हीड़ु सोंठ हलदी इनसे किया हुआ ॥

निःक्षिपे हृदकां स्तत्र भाण्ड स्या स्यञ्च मुद्रयेत् ॥ १६२ ॥
 ततो दिन तया दूर्द्ध मन्लाः स्यु र्वटका ध्रुवम् ॥ काञ्जिको
 वटको रुच्यो वातघ्नः प्र्लेष्म कारकः ॥ १६३ ॥ शीतो दाहं
 शूल मजीरीं हरते हृगा मयेष्व हितः ॥

भा० वस्सें बड़े डाले और इस वरतन का मुख ढक देवे ॥ १६२ ॥ उससे तीन दिन के बाद
 बड़े निश्चय स्वप्ने होते हैं ॥ कांजी बड़ा रुचिको करने वाला वातका नाशक कफकार
 क ॥ १६३ ॥ शीत दाह शूल अजीरी इनकी हरता है और दृष्टि रोग में अहित है ॥

ऊरी वडारा । अम्लिकां स्वेद यित्वा तु जलेन सह मर्दये
 त् ॥ तचीरे कृत संस्कारे वटका न्मज्जये ज्जनः ॥ १६४
 अम्लिका वट कास्ते तु रुच्या वह्नि प्रदीपनाः ॥ वटक
 स्य गुणैः पूर्वै रेयो ऽपि च समन्वितः ॥ १६५ ॥

अथ मूगवरा । मुद्गानां वट कास्तक्रे भर्जिता लघवो हि
 माः ॥ संस्कार ज प्रभावेन त्रिदोष शमना हिताः ॥ १६६ ॥
 अथ मायवटी । मायाराणां विष्टिका हिङ्गु लवणार्द्र क संस्क्र
 ताः ॥ तथा विर चिता वस्त्रे वटिकाः साधु शोयिताः १६७
 भर्जिता स्तप्न तैलेस्ता अथ वाम्बु प्रयोगतः ॥ वटकस्य
 गुणै र्युक्ता ज्ञात व्या रुचि दा भृशम् ॥ १६८ ॥

अथ कोह डौरी । कुष्माण्ड क वटी त्रीया पूर्वोक्त व
 टिका गुणाः ॥ विशेषा त्पित्त रक्त म्ली लक्ष्मी च कथिता बु
 धैः ॥ १६९ ॥ अथ मुद्ग वटी ॥

भा० अनन्तर ऊरी बड़ा । इमली को गरम करके जलके साथ मले ॥ मसाला

१६४

डाले हुवे उस जल में वहाँको डाल देवे ॥ वे डमली के बड़े रुचिको करने वाले ।
 अग्नि दीपन है ॥ पहिले बड़ों के गुण के समान है ॥ १६५ ॥ अनन्तर मुद्ग बड़ा
 मूंगकी बडियां मूनी हुई हलकी शीतल है ॥ और संस्कार के प्रभावसे त्रिदोष
 शमन तथा हित होती है ॥ १६६ ॥ अनन्तर उडद की बडिया ॥ उडद की पिष्टी
 हीङ्ग लवण अन्नक इनसे संस्कार की हुई ॥ उससे बनी हुई कपड़े पर अच्छी
 तरह सूका ॥ १६७ ॥ के गरम तेल से भूनें अथवा जलमें पकावे । इसको बड़े
 के गुण के समान जानना चाहिये । और अत्यन्त रुचिको करने वाली है ॥ १६८
 अनन्तर कोहड़ारी । कोहड़ारी पूर्वोक्त वटिका के गुण के समान है ॥ विशेष कर
 के पित्त रक्त की नाशक हलकी पंडितोंनें कही है ॥ १६९ ॥ अनन्तर मुद्ग की ब-
 डी ॥

मुद्गानां वटिका तच्च व्रचि ता साधिता तथा ॥ पथ्यारुच्या
 तथा लघ्नी मुद्ग सूपः गुणा स्मृता ॥ २७० ॥

क्षरिकवच्छ । माय पिष्टि कया लिपं नाग वल्ली द
 लं महत् ॥ तत्तु संस्वे दयेत् सुत्तया स्थाल्या मास्तार ।
 को परि ॥ २७१ ॥ ततो निष्का त्रय तं शरड्भ न्तसै
 लेन भर्जयेत् ॥ शरड्भं शरडे न योग्य मिति याचत् ॥

अलीक मत्स्य उक्ती ऽयं प्रकारः पाक परिडतैः ॥ तं
 वृन्ता क मटि त्रेण वास्तू केन च मक्षयेत् ॥ १७२ ॥

अथ कथं । स्थाल्यां घृते वा तैले वा हरिद्रा हिङ्गु भर्ज
 येत् ॥ अवले दन संयुक्तं तक्र न्तत्रै व निक्षियेत् ॥ १७३
 रया सिद्धा समरी चा क्थिता कथिता बुधैः ॥

भा० मूंगकी बटिका वनाई हुई और साधित ॥ पथ्यरुचिको करने वाली
 तथा हलकी मूंगकी दालके समान गुणमें कही है ॥ १७० ॥ अनन्तर क्षरिक
 वच्छ । उडदकी पिष्टीसे लिप बड़ा नागवेल का पान ॥ उसको तसलेमें कपड़ेके
 उपर युक्ति के साथ पकावे ॥ १७१ ॥ उससे निकाल कर उसके डुकड़े कारके तेलके

साथ भूने ॥ टुकड़ा अर्थात् टुकड़े करके युक्त ॥ अली कमत्स्य का यह प्रकार क-
हा है पाक पंडितोंने ॥ उसको भटेके भरते के साथ अथवा वधुवेके साथ खावे ॥
१७२॥ अनन्तर कढ़ी ॥ तसले में घृत अथवा तेलमें हलदी हीङ्ग को भूने ॥ अ-
वलेहनके साथ भठे को उसीमें डाले ॥ १७३॥ ये सिद्ध मरिच के साथ औद्यई हुई
को पंडितोंने कही कही है ॥

अव लेहन मू । अरि हन इति लोके ।

क्वथिता पाचनी रुच्या लघ्वी बन्धि प्रदीपनी ॥ कफा
निल विबन्धघ्नी किञ्चि त्पित्त प्रकोपिणी ॥ १७४ ॥ अ-
ली कमत्स्याः शुष्का वा किं वा क्वथितया पुनः ॥ वृ-
हणा रोचना वृष्या बल्या वात गदा पहाः ॥ १७५ ॥

कोष्ठ शुद्धि कारः शुक्त्या किञ्चि त्पित्त प्रकोप नाः ॥

भा० हरि हन इस प्रकार लोकमें कहेते हैं । कढ़ी पाचन रुचिको करने वा
ली हलकी दीपन ॥ कफ वात विबन्धकी नाशक कुछ एक पित्त के प्रकोप को क-
रने वाली है ॥ १७४ ॥ अली कमत्स्य ^{अर्थात्} सूके, फिरसे औटाने से होते हैं । पुष्ट रोचना
शुक्रको करने वाले बलके हिन वात रोग के नाशक है ॥ १७५ ॥ कोष्ठ शुद्धि
को करने वाले शुक्ति के साथ कुछ पित्त प्रकोप करनेवाले है ॥

अर्हिते सह नुस्त म्पे विशेषेणा हिताः स्मृताः ॥ १७६ ॥

अथ अद वरा । मुद्ग पिष्टा विर चितान् वटांस्ते लेनया
चितान् ॥ हस्ते न चूर्णा ये त्सम्यक् तस्मिं श्रूरो विनिः
क्षियेत् ॥ १७७ ॥ भृशं हिङ्ग्वार्द्रकं सूक्ष्मं मरिचं जीरकं त-
था ॥ निम्बूरसंजवा नीच युक्त्वा सर्वं विमिश्रयेत् ॥ १७८ ॥

भा० अर्हित सह नुस्तं म में विशेष करके हित कहे हैं ॥ १७६ ॥ अनन्तर अद
वरा मुद्ग की पिठी से वनी वडी को तेलसे पकावे उसको हातसे अच्छी तरह चूर
करे उस चूरे में इनको डाले ॥ १७७ ॥ मूनी हीङ्ग अदक मिरच तथा जीरा इनको

पीतके डाले ॥ और नीम्बू का रस अंज वाइन इनको युक्ति से सबको मिलावे ॥ १७८

॥ सुद्ध पिष्टिं पचे त्सम्यक् स्थाल्या भास्तार को परि ॥ त-
स्यान्तु गोलकं कुर्यात् तन्मध्ये पूरणां क्षिपेत् ॥ १७९ ॥
तेले तान् गोलकान् पक्त्वा क्षथितायां निमज्जयेत् ॥
गोलकाः पाचकाः प्रोक्ता स्ते त्वार्द्रं कवटा अपि ॥ १८०
मुद्गार्द्रं कवटा रुच्या लघवो बल कारकाः ॥ दीपना स्त-
पर्णाः पथ्या स्त्रियु दोषेषु पूजिताः ॥ १८१ ॥

भा० तसले में कपडे के ऊपर मूद्ग की पिष्टी को अच्छी तरह पकावे ॥ उसका १
गोलक करके उसके बीचमें पूरणा भरे ॥ १७९ ॥ इन गोलकों को तेलमें पकाके
कडीमें डुवा देवे ॥ गोलक पाचक हैं और आर्द्रक वटभी उसको कहते हैं ॥
१८० ॥ मूंगके आर्द्रक रुचिको करने वाले हलके बल कारक हैं ॥ और दीपना
नर्पणा पथ्य और तीनों दोषोंको अच्छे हैं ॥ १८१ ॥

अथ पकोरी । दाल यश्च न कानान्तु निस्तुया यन्त्र
पेयिताः ॥ तच्चूर्णां वैशनं प्रोक्तं पाक शास्त्र विशारदैः ॥
१८२ ॥ वटिका वैशनस्यापि क्षथितायां निभर्जिताः ॥ रुच्या
विष्टम्भ जननी बल्या पुष्टि करी स्मृता ॥ १८३ ॥

(क) एव मन्थे ऽपि वैशन भवाः प्रकाराः यण्डेन यण्ड
प्रभृतयो वैद्व्याः । अथ मांसस्य प्रकाराः ॥

भा० अनन्तर पकोरी । चने आदि योंकी दालों को वेकिल के करके चक्कीमें पीसे
॥ उस चूर्णाको वैसन पाक शास्त्र के जानने वालोंने कहा है ॥ १८२ ॥ वैसन की व-
टिका धुनके कडीमें पकी हुई रुचिको करने वाली विष्टम्भकी करने वाली बलके
हित पुष्टि को करने वाली कही है ॥ १८३ ॥ (क) ऐसे और भी वैसन के प्रकार रं-
ड आदि जानना चाहिये ॥ अनन्तर मांसका प्रकार ॥

हरिद्रा मारुतकं शुराठी लवणां मरिचा निच ॥ तराडु लां
 श्रापि गोधूमान् जम्बीराणां रसान् बहून् ॥ १५४ ॥
 यथा सर्वाणि वस्तूनि सुपक्वानि भवन्ति हि ॥ तथा पचे-
 त् तु निपुराणो बहु मांसं क्षितिर्यथा ॥ १५५ ॥ एषा हरीसा
 बल क्तत् वात्त पित्रा पहा गुरुः ॥ शीतोय्याः शुक्रदाःस्त्रि
 ग्धाः सरा सन्धान कारिणी ॥ १५६ ॥ अथ तलित मांसम्

भा० पकाने के बरतन में बड़े मांस के टुकड़े डाले ॥ पानी बहुत सा घृत बहुत ही
 डू-जीरा ॥ १५३ ॥ अद्रक हलदी सोंठ लवणा मिरच ॥ चावल और गेहूँ जंजीरीका
 बहुत रस ॥ १५४ ॥ जिसमें सब मांस अच्छी तरह पका जावे ॥ वैसे सब वस्तु वों
 को निपुराण पकावे जैसे बहुत मांस को क्षिति ॥ १५५ ॥ येह हरी सा बलको करने
 वाला वात पित्र का नाशक भारी ॥ शीत उष्ण शुक्र को करने वाला चिकना सरस
 न्धान करने वाला है ॥ १५६ ॥ तलाहुवा मांस ॥

शुद्ध मांस विधानेन मांसं सम्यक् प्रसाधितम् ॥ पुनस्त
 दाज्ये सम्भृष्टं तलितं प्रोच्यते बुधैः ॥ १५७ ॥ तलितं बल
 मेधाग्नि मांसौ जः शुक्र वृद्धि क्तत् ॥ तर्पणं लघु सुस्त्रि
 ग्धरोचनं दृढ ताकरम् ॥ १५८ ॥ अथ सीरव ॥
 काल खराडा दि मांसानि ग्रन्थितानि श्लाकया ॥ घ-
 तं सलवणां दत्त्वा निर्धूमे दहने पचेत् ॥ १५९ ॥ तन्तुशू-
 ल्यमिदं प्रोक्तं याक कर्म विच क्षरौः ॥ शूल्यं पलं सु
 धा तुल्यं रुच्यं वह्नि करं लघुः ॥ २०० ॥ कफ वात हरं
 दल्यं किञ्चि त्पित्त करं हि तत् ॥ मांस शृंगाट कम् ॥

भा० शुद्ध मांस की विधिसे मांस को अच्छी तरह पका करके ॥ फिरसे उस की

घृतमें भूने उसको तलित मांस कहते हैं ॥ १६७ ॥ तला हुआ मांस बल कान्ति ।
मांस ओज शुक्र इनको बढ़ाने वाला ॥ तर्षा हलका बहुत स्निग्ध रोचन दृढता
करने वाला है ॥ १६८ ॥ अनन्तर सीख ॥ काल खंडादि मांसों को सीक में
लगा कर ॥ नमक घी दे कर निर्धूस अग्नि में पकावे ॥ १६९ ॥ उसको शूल्य रो
सा कहते पाक कर्म में चतुर्षुयौने ॥ शूल्य मांस अमृत के समान रुचि
को करने वाला दीपन हलका ॥ १७० ॥ कफ वात का नाशक बलको करने
वाला कुष्ठ पित्त को करने वाला वोह होता है ॥
अनन्तर मांस के सिंघाडे ।

शुद्ध मांसं तनू कृत्य कर्तितं खेदितं जले ॥ लवङ्गं हिङ्गुं
लवणा मरि चार्द्रिक संयुतम् ॥ २०१ ॥ गुला जिरक धा
न्या क निम्बू रस समन्वितम् ॥ घृते सुगन्धे तद्गुहं ।
मांसं शृंगाट कोच्यते ॥ २०२ ॥ मांसं शृंगाटकं रुच्यं
दंहरां बल द्द गुरु ॥ वात पित्त हरं दृष्यं कफघ्नं वी
र्यं वर्द्धनम् ॥ २०३ ॥ अथ मांस रसा ॥

भा० शुद्ध मांस वारीक करके जलमें पकावे ॥ लौंग हीङ्ग लवणा मरिच और
अद्रक इनसे युक्त ॥ २०१ ॥ तथा बुलाय वी जीरा धनियां नीम्बूका रस इनके यु
क्त ॥ अच्छे घृत में उसको भूने उसको मांस शृंगाटक कहते हैं ॥ २०२ ॥ मांस शृंगा
टक रुचि को करने वाला पुष्ट बल करने वाला भारी होता है ॥ और वात पित्त
का नाशक शुक्र को करने वाला कफ नाशक वीर्य को बढ़ाने वाला है ॥ २०३ ॥
॥ अनन्तर मांस रस ॥

सिद्ध मांस रसो रुच्यः आम त्वास क्षयापहः ॥ जीरा
नो वात पित्तघ्नः क्षीरा नाम ल्यरेत साम् ॥ २०४ ॥ वि-
प्लिष्टमग्न सन्धीनां शुद्धानां शुद्धि का द्वि-गाम् ॥ स्वृ
त्यो जो बल ही नातां ज्वर क्षीरा क्षते रसाम् ॥ २०५ ॥
शस्यते स्वरहीनानां दृष्ट्यायुः प्रव गार्थि नाम् ॥

तत्र शुद्ध मांसम् । सुधवासु इति लोके ।

पाक पात्रे घृतं दद्यात् तैलञ्च तद् भावतः ॥ तत्र हिन्दु
हरिद्रांच भर्जयेत्तदनन्तरम् ॥ १०४ ॥ छागा देरस्थिर
हितं मांसं तत्स्वरिडतं ध्रुवम् ॥ धौतं निर्गलितं तस्मि
न् घृते तद्गूर्जयेच्छनेः ॥ १०५ ॥ सिद्ध योग्यं जलं
दत्त्वा लवणान्तु पचेत्ततः ॥ सिद्धे जलेन सम्यग्व्यवे
शवारं परिक्षिपेत् ॥ १०६ ॥

वेशवारः वेगर इति लोके ।

भा० उस्से शुद्ध मांस । सुधवासु इस प्रकार लोकमें कहते हैं । पकाने के व
रतनमें घृतडाले उसके अभावमें तैल डाले ॥ उसमें हींग हलदी को भूने और
वाव ॥ १०४ ॥ बकरे आदिका वेहडू मांस टुकड़े किया हुआ ॥ और धोके साफ
किया हुआ उस घी में उसकी धीरे २ भूने ॥ १०५ ॥ उसमें पकाने के योग्य जल
देकर और लवण देकर पकावे उसके अनन्तर ॥ सिद्ध हुवे में पानी से गरम
मसाला पीस कर उसमें डाले ॥ १०६ ॥

इसकी वे गर इस प्रकार लोकमें कहते हैं ॥

द्रव्याणि वेश वारस्य नाग वल्ली दला निच ॥ तरुडुला
श्च लवङ्गनि मरि चानी समा सतः ॥ १०७ ॥ अनेन
विधिना सिद्धं शुद्धं मांस मिति स्मृतम् ॥ शुद्ध मांसं
परं वृष्यं बल्यं रुच्यञ्च वृंहणम् ॥ १०८ ॥ त्रिदोषत्र
मकं श्रेष्ठं दीपनं धातु वर्द्धनात् ॥

भा० मसाले की वस्तु पान चावल लवंग मरिच ये संक्षेप से हैं ॥ १०७ ॥ इस
विधिसे सिद्ध किया हुआ शुद्ध मांस ऐसा कहा है ॥ शुद्ध मांस परम शुक्रको करने
वाला बलकारी रुचिको करने वाला पुष्ट ॥ १०८ ॥ त्रिदोष का शमक श्रेष्ठ ।

दीपन धातुवद्धाने से है ॥

अथ सेहडक । सहवीसु इति लोके ।

छागादे मांसं भूर्वादि कुट्टितं खरिडतं पुनः ॥ शुद्ध मांसं

विधानेन पचेदे तत्सह द्रकम् ॥ १८५ ॥ सहद्रकं गु-

रीं ग्रन्थे शुद्ध मांसं गुणं स्मृतम् ॥ अथ अरवनी ॥

पाक पात्रे घृतं दत्त्वा हरिद्रा हिङ्गु भर्जयेत् ॥ छागा ।

दे सकल स्यापि खरिडा न्यपि च भर्जयेत् ॥ १८६ ॥

सिद्ध योग्यं जलं दत्त्वा पचेन्मृदुतरं यथा ॥ जीरका

दियुते तत्रे मांसं खरिडा नि तारयेत् ॥ १८७ ॥ तत्र मां-

सन्तु वातघ्नं लघु रुच्यं बल प्रदम् ॥ कफघ्नो पित्तलः

किञ्चि त्सर्वा हारस्य पाचनम् ॥ १८८ ॥ (क)

तत्र मांसम् अरवनी इति लोके ॥ अथ आस ॥

भा० अनन्तर सेहडक । सहवीसु रोसा लोक में कहते हैं । बकरे आदिके ।

गांध आदिका मांस कुचालुवा और अलग-अलग टुकड़े किये हुवे ॥ इसको शुद्ध मांस

सकी विधिसे पकावे यह सहद्रक है ॥ १८५ ॥ सहद्रक निघंटु में शुद्ध मांस

के समान गुणों में कहा है ॥ अनन्तर अरवनी ॥ पकाने के पात्र में घृत डाल कर

हलदी और हीङ्गु को भूने ॥ और बकरे आदि सबके मांसके टुकड़ों को भी भूने ॥

१८६ ॥ पकाने के योग्य जल देकर मन्द आँव से पकावे ॥ जीरा आदिक से युक्त

मट्टे में मांसके टुकड़ोंको डाले ॥ १८७ ॥ यह तत्र मांस वागनाशक हलका ।

रुचि को करने वाला बल को देने वाला ॥ कफ नाशक पित्त को करने वाला कु

छ सब अहार का पाचक है ॥ १८८ ॥ (क)

तत्र मांसं अरवनी इस प्रकार लोक में कहते हैं ॥ अनन्तर आस ॥

पाक पात्रे तु वृहती मांसं खरिडानि निःक्षेपेत् ॥ पानी

यं प्रचुरं सर्पिः प्रभूतं हिङ्गु जीरकम् ॥ १८९ ॥

हरिद्रा भार्द्रकं शुराठी लवणां मरिचा निच ॥ तरण्डुलां
 श्यापि गोधूमान् जम्बीराणां रसान् बहून् ॥ १६४ ॥
 यथा सर्वाणि वस्तूनि सुपक्वानि भवन्ति हि ॥ तथा यचे-
 त् तु निपुणा बहु मांसं क्षिति र्यथा ॥ १६५ ॥ यथा हरीसा
 बल क्तत् वात्त पित्रा पहा गुरुः ॥ शीतोय्याः शुक्रदाःस्ति
 ग्धाः सरा सन्धान कारिणी ॥ १६६ ॥ अथ तलित मांसम्

भा० पकाने के वरतनमें चंडे मांस के टुकड़े डाले ॥ पाती बहुत सा घृत बहुत ही
 डू-जीरा ॥ १६३ ॥ अद्रक हलदी सोंठ लवणा मिरच ॥ चावल और गेहूं जंजीरीका
 बहुत रस ॥ १६४ ॥ जिसमें सब मांस अच्छी तरह पका जावे ॥ वैसे सब वस्तु वों
 को निपुणा पकावे जैसे बहुत मांस को क्षिति ॥ १६५ ॥ यह ही सा बलको करने
 वाला वात पित्र का नाशक भारी ॥ शीत उष्ण शुक्र को करने वाला चिकना सरस
 न्धान करने वाला है ॥ १६६ ॥ तलाहुवा मांस ॥

शुद्ध मांस विधानेन मांसं सम्यक् प्रसाधितम् ॥ पुनस्त
 दाज्येसम्भृष्टं तलितं प्रोच्यते बुधैः ॥ १६७ ॥ तलितं बल
 मेधाग्नि मांसी जः शुक्र वृद्धि क्तत् ॥ तर्पणं लघु सुस्ति
 ग्धरोचनं दृढ ताकरम् ॥ १६८ ॥ अथ सीरव ॥
 काल खराडा दि मांसानि ग्रन्थितानि श्लाकया ॥ घृ-
 तं सलवणां दत्त्वा निर्धूमं दहने पचेत् ॥ १६९ ॥ तन्नुशू-
 ल्यमिदं प्रोक्तं याक कर्म विच क्षरौः ॥ शूल्यं पलं सु
 धा तुल्यं रुच्यं वह्नि करं लघुः ॥ २०० ॥ कफ वात हरं
 वल्यं किञ्चिद्विपिन्न करं हि तत् ॥ मांस शृंगाटकम् ॥

भा० शुद्ध मांस की विधिसे मांस को अच्छी तरह पका करके ॥ फिरसे उस को

घृतमें भूने उसको तलित मांस कहते हैं ॥१९७॥ तला हुआ मांस वन्द कान्ति ।
मांस ओज शुक्र इनको बढ़ाने वाला ॥ तर्पण हलका बहुत स्निग्ध रोचन दृढता ।
करने वाला है ॥१९८॥ अनन्तर सीख ॥ काल खंडादि मांसों को सीक में
लगा कर ॥ नमक घी दे कर निर्धूस अग्नि में पकावे ॥१९९॥ उसको शूल्य रे
सा कहा है पाक कर्म में चतुर्गुणोत्तम ॥ शूल्य मांस अमृत के समान रुचि ।
को करने वाला दीपन हलका ॥ २०० ॥ कफ वात का नाशक बलको करने
वाला कुक्षु पित्त को करने वाला वोह होता है ॥

अनन्तर मांस के सिंघाडे ।

शुद्ध मांसं तनू कृत्य कर्तितं स्वेदितं जले ॥ लवङ्ग हिङ्गु
लवणा मरि चार्द्रिक संयुतम् ॥ २०१ ॥ ग्ला जिरक धा
न्याक निम्बू रस समन्वितम् ॥ घृते सुगन्धे तद्गुणं ।
मांसं शृंगाट कोच्यते ॥ २०२ ॥ मांसं शृंगाटकं रुच्यं
वृंहणं बल छद् गुरु ॥ वात पित्त हरं वृष्यं कफघ्नं वी
र्यं वर्द्धनम् ॥ २०३ ॥ अथ मांस रसा ॥

भा० शुद्ध मांस वारीक करके जलमें पकावे ॥ लौंग हीङ्ग लवणा मरिच और
अद्रक इनसे युक्त ॥२०१॥ तथा इलायची जीरा धनियां नीम्बूका रस इनके यु
क्त ॥ अच्छे घृत में उसको भूने उसको मांस शृंगाटक कहते हैं ॥२०२॥ मांस शृंगा
टक रुचि को करने वाला पुष्ट बल करने वाला भारी होता है ॥ और वात पित्त
का नाशक शुक्र को करने वाला कफ नाशक वीर्य को बढ़ाने वाला है ॥२०३॥

॥ अनन्तर मांस रस ॥

सिद्ध मांस रसो रुच्यः आम त्वास्त क्षयापहः ॥ श्रीरा
नो वात पित्तघ्नः क्षीणा नाम ल्यरेत साम् ॥ २०४ ॥ वि-
श्लिष्टभग्न सन्धीनां शुद्धानां शुद्धिका द्वि-राम् ॥ स्थ
त्यो जो बल ही नानां ज्वर क्षीण क्षले रसाम् ॥ २०५ ॥
अस्थते स्वरहीनानां दृष्टपायुः श्रवणाधिनाम् ॥

प्रकाराः कथिताः सन्ति वहवो मांस सस्रवाः ॥ ग्रन्थवि
स्तारभीतेस्ते मया नात्र प्रकीर्त्तितः ॥ शाक पाक विधिः

भा० सिद्ध मांस का रसा रुचि को करने वाला अम त्रवास क्षय इनका नाशक है
॥ और प्रीणन वात पित्र का नाशक और क्षीण तथा अल्प शुक्र वाले इनको ॥
२०४॥ और विप्लव भग्न संधी वाले शुद्ध और शुद्धि चाहने वाले ॥ स्मृति आज
कल इनसे हीन ज्वर क्षीण क्षत उर वाले इनको ॥ २०५॥ हित है और हीन स्वर्
वाले तथा दृष्टि आयु अवरणा र्थि यों को भी हित हैं ॥ मांस की बहुत सी किस
म बनाने की है ॥ परन्तु ग्रन्थ बद्ध जाने के डरसे उनको मैंने यहां पर नहीं कहा
है ॥ अनन्तर शाक पाक विधि ॥ ॥

हिङ्गु जीर युते तैले क्षिपे च्छाकं सुखरिड तम् ॥ लवणां
चाम्ल चूणां दि सिद्धे हिङ्गु दकं क्षिपेत् ॥ २०७ ॥ इत्ये
वं सर्व शाकानां साधनोऽभिहितो विधिः ॥

तत्र मण्डकं माठ इति लोके ।

समिता मर्दये दन्य जले नापि च सन्न येत् ॥ तस्यास्तु ।
वटिका कृत्वा यचेत्सर्पिथि नीर समू ॥ २०८ ॥ शला
लवङ्ग कर्पूर मरी चाद्यै रलङ्कते ॥ मज्ज यित्वा सिता
पाके ततस्तच्च समुद्धरेत् ॥ २०९ ॥ अयं प्रकारः सं
सिद्धौ मठ इत्यभिधीयते ॥ सन्न येत् मर्दयेत् ॥

भा० हीङ्गु जीर के सहित तेलमें अच्छी तरह बनाई हुई शाक को डालें ॥ लव
ण आम चूर आदि सिद्ध हुवे में हीङ्गु का पानी डालें ॥ २०७॥ इस प्रकार सब
शाकों के बनाने की विधि इसी है ॥ अनन्तर मण्डकी ॥ मँदे को मले और पानी से
साने उसकी वटिका करके घृतमें नीर स पकावे ॥ २०८॥ इलायची लवंग कर्पूर
मरिच आदि से युक्त ॥ इसको चीनी में पागे उस के अनन्तर उसको निकालें ॥ २०९॥
इस तरह पर सिद्ध हुवे को मण्डकी रोसा कहते हैं ॥ मर्दन करे ॥

मठस्तु वृंहणो वृष्यो वल्यः सुमधुरो गुरुः ॥ पित्रानिल
हरो रुच्यो दीप्राग्नीनां सुपूजितः ॥ २९० ॥ समिताः ॥
शर्करा सर्पिर्निर्मिता अयरेऽपिये ॥ प्रकारा अमुना तु
ल्यास्तेऽपि च तद्गुणाः स्मृताः ॥ २९१ ॥

अथ सप्तावपेरक ॥ यर्ष्यत्यः साज्यसमिता निर्मिता
घृतमर्जिताः ॥ कुट्टिताम्बालिताः शुद्धशर्कराभिर्वि
मर्हिताः ॥ २९२ ॥ तत्र चूर्णाक्षिपे देला लवङ्गमरिचा
निच ॥ नालिकैरं सकर्पूरञ्चारवीजान्यनेकधा ॥ २९३ ॥

भा० मठदीपुष्टगुणको करने वाली बलके हित अच्छी मधुर भारी ॥ पित्त
वातकी नाशकरुचिकी कूरने वाली दीप्राग्नि बलोंको अच्छी है ॥ २९० ॥ और
भी जो मैदा शर्करा धी हुने बनाये हुवे पदार्थ ॥ इसीके समान गुण में है केभी उ
सीके समान गुण वाले कहें ॥ २९१ ॥ अनन्तर सप्तावपेरक ॥ घृतके सहित
मैदे से बनाये हुवे रोटा धी में भूने हुवे ॥ तथा कूटके चालनी से चाले हुवे
अच्छी चीनीको मिलाके मले हुवे ॥ २९२ ॥ उस चूर्णमें इलायची लवंग मरिच
॥ नारियल कर्पूर चिरोंजी और अनेक प्रकार ॥ २९३ ॥

घृताक्तसमिता पुष्टरोटिकारचिता ततः ॥ तस्थान्तः पूर
रां तस्य कुर्यान्मुद्रां हवां सुधीः ॥ २९४ ॥ सर्पिषि प्रचुरे
तान्तु सुपचे त्रिपुरागोजनः ॥ प्रकारज्ञैः प्रकारोऽयं स
प्ताव इति कीर्तितम् ॥ २९५ ॥ अथ कर्पूरनालि ॥
घृताढ्यया समितया लम्बं कृत्वा पुटं ततः ॥ लवङ्गे
ल्वणकर्पूरयुतया सितयाऽन्वितम् ॥ २९६ ॥ पचे-
दाज्येन सिद्धेया ज्ञेया कर्पूरनालिका ॥

सम्पाव सदृशी ज्ञेया दुरौः कर्पूर नालिका ॥ २१७ ॥

[फेनिका फेनी ॥]

भा० डाले अनन्तर मैदे में घी मिला कर मोटी रोटी बनावे उस के अनन्तर ॥
उसके बीचमें उसका पूरण देवे और दृढ सुद्रा बुद्धि वान करे ॥ २१४ ॥ बुद्धि
वान उसको बहुत से घृत में पकावे ॥ तर कीबके जान नें वालों नें इसको सं
पाव रोसा कहा है ॥ २१५ ॥ अनन्तर कर्पूर नालिका ॥ बहुत घृत डाल कर मैदे
से लम्बा पुट करके अनन्तर ॥ लवंग अधिक कर्पूर के युक्त चीनी से युक्त को
॥ २१६ ॥ घृतमें पकावे यह सिद्ध कर्पूर नालिका जाननी चाहिये ॥ संपाव के स
मान गुणमें कर्पूर नालिका जाननी चाहिये ॥ २१७ ॥ अनन्तर फेनी ॥

समिताया घृताद्याया वर्ति दीर्घा समाचरेत् ॥ तास्तु
सन्निहिता दीर्घाः पीठस्यो परिधारयेत् ॥ २१८ ॥
वेल्लये द्वे लूनेनेता यथेका यर्पटी भवेत् ॥ ततश्चु
रिकया तान्नु सलग्ना मेव कर्तयेत् ॥ २१९ ॥ ततस्तु
वेल्लयद्रूप सद्रूपे च लेपयेत् ॥
जालि चूर्णं घृतं नोयं मिश्रितं दशकं वदेत् ॥ ततः
संहृत्य तल्लोपूतीं विदधीत पृथक् पृथक् ॥ २२० ॥

भा० घृतके सहित मैदे से लंबी बन्नी करे ॥ चोह सन्निहित दीर्घ पीठे के ऊपर
रखवे ॥ २१८ ॥ इनको वेलने से वले जिस्में एक रोटी हो जावे ॥ उसके अनन्त
र उनको लूरीसे लगी हुई की ही काटे ॥ २१९ ॥ फिरसे वले और सद्रूप अर्थात्
चावल का आटा उससे लेपन करे ॥ चावल का चूर्ण घृतजल इन सब मिले हुवे को
दशक कहने है ॥ उससे लोई गोल करके अलग रखवे ॥ २२० ॥

पुनस्तां वेल्लये ल्लोपूतीं यथा स्थान्मण्डलाकृतिः ॥
ततस्तां सुपचे दाज्ये भवे युष्मत् पुठाः स्युताः ॥ २२१ ॥

सुगन्धया शर्करया तद्गुडं लनगा चरेत् ॥ सिद्धे या फे-
निका नाल्नी मण्ड केन समागुरोः ॥ २२२ ॥ ततः कि-
ञ्चिद्गुडु रियं विशेषो ऽयमुदाहृतः ॥

(क) वेल्हयेत् प्रसारयेत् वेल्हनः । वेल्हन इति लोके
। पर्ययी रोटी । लोपृतीं लो इति लोके ।

अथ शङ्कुली सोहाली इति लोके ।

समितया घृताक्ताया लोपृतीं कृत्वा च वेल्हयेत् ॥ अ-
ज्ये तां भर्जयेत्सिद्धं शङ्कुली फेनिका गुरा ॥ २२३ ॥

भा० फिर उस लोई को वेले जिस्में मंडला कृति हो जावे ॥ उसके अनन्तर उस
को घृतमें पकावे उसके पुड़न खिल जाते हैं ॥ २२२ ॥ सुगन्ध चीनी को उसके ऊपर
रवुरकावे ॥ सिद्ध यह फेनि नाम मंडक के समान गुण में होती है ॥ २२२ ॥
उसमें कुछ हल की यह होती है यह विशेष कहा है ॥

(क) वेले । वेल्हन । रोटी । लोई । अनन्तर सोहारी । घृत के सहित मैदा की
लोई बना कर वेले ॥ उसको घृत में पकावे वोह सिद्ध हुई फेनि के समान गुण
में होती है ॥ २२३ ॥

॥ अथ सेवीका मोदक सेवका लाडू ।

घृताढ्यया समितया कृत्वा सूत्राणि तानि तु ॥ निपुरा
भर्जये द्वाज्ये स्वण्ड पाकेन योजयेत् ॥ २२४ ॥ युक्ते
न मोदकान् कुर्व्यात्ते गुरौ मण्ड का यथा ॥

अथ मुक्ता मोदका मोरति लाडू ।

भा० अनन्तर सेवका लाडू । घृत के सहित मैदा से सूत्र करके उनको ॥ निपुरा
घृत में पकावे अनन्तर खोड़ के पाक में उसको डाले ॥ २२४ ॥ उनके लड्डू करे वे
गुण में मंडक के समान होते हैं ॥ अनन्तर मोती चूर के लाडू ॥

मुद्गानां धूमसी सम्यक् घोलाये निर्मलाऽस्युना ॥ कटाह
 स्य हृते रुद्धे भर्भरं स्थापये ततः ॥ २२५ ॥ धूमसीनु
 द्रवीभूतां प्रक्षिपेत् भर्भरो परि ॥ षपन्ति विन्द व-
 स्तस्मान् तान् सुपक्वान् समुद्धरेत् ॥ २२६ ॥
 सिता पाकेन संयोज्य कुर्व्या हस्तेन मोदकान् ॥
 भर्भरं भर्भरा इति लोके ।

भा० मूङ्गके आटेको निर्मल जलमें घोले ॥ कटाई के किनारे परभारे को र
 खवे ॥ २२५ ॥ अनन्तर उस घोले हुवे मूङ्गके आटेको भारेके ऊपर डाले ॥ उ
 से बून्द गिरते है उन पके हुवोंको निकाल लेवे ॥ २२६ ॥ चीनीके पाकमें मि
 लाकर हाथसे लड्डु बनावे ॥ भारा) इस प्रकार लोकमें कहते हैं ॥

लघु ग्रीही त्रिदोषघ्नः स्वादुः शीतो रुचिप्रदः ॥ चक्षु
 स्यो ज्वरहृद्ध्यल्पपर्णा मुद्गमोदकः ॥ २२७ ॥

अथ सेवनमोदकः । सेवकालडुञ्जा ।

एवमेव प्रकारेण कार्याः सेवनमोदकाः ॥ तैव-
 ल्या लघवः शीता किञ्चिद्वातकरस्तथा ॥ २२८ ॥

विद्यम्बिनो ज्वरघ्नाश्च पित्तरक्तकफापहाः ॥

[दुग्धं कूपिका ॥]

भा० यह हलका काविज त्रिदोषनाशक मधुर शीतल रुचिको करने वाला ॥
 नेत्रके हित ज्वर नाशक वलकारी तर्पणा मूङ्गके लड्डु होते है ॥ २२७ ॥

अनन्तर सेवका लड्डु । ऐसे ही सेवके भी लड्डु बनावे ॥ वेवलके हित हल
 के शीतल कुक एक बातको करने वाले है ॥ २२८ ॥

और विद्यम्ब करने वाले ज्वर नाशक तथा रक्त पित्त कफ इसका नाशक है ॥
 अनन्तर दुग्ध कूपिका ॥

तरुडुल चूर्णा विमिश्रित नष्ट क्षीरिणासान्द्र पिष्टेन ॥ दृढ
 कूपिका विदध्या ताञ्च पचे त्सर्पिया सम्यक् ॥ २२६ ॥
 अथ तां कोरि तमध्वा घनपयसा पूर्णा गर्मान्च ॥ शङ्ख
 कमुद्रित वदनां सर्पियि सपक्व वद नाञ्च ॥ २३० ॥ अथ
 पाराडुरवण्ड याके स्नाययेत् कर्पूर वासिते कुशलः ॥ अ
 थदुग्ध कूपी सा बल्या पित्रा नित्ता पद्मा ॥ २३१ ॥ वृष्या
 शीता गुर्वी शुक्र करी वृंहणी रुच्या ॥ विदधाति कायपु
 ष्ठिं हृष्टिं दूर प्रसारिणी सुचिरम् ॥ २३२ ॥

भा० चावल के आटेको गिलाके फटे दूधको लैम सा करके उसी दृढ कूपी करे
 उसको घीमें पकावे ॥ २२६ ॥ अनन्तर उसको बीचमें से खाली करके उसमें खोया
 भरे ॥ और उसका मुख चावल के आटे से बन्द करके घीमें पकावे ॥ २३० ॥ अन
 न्तर सुफेद खांड के पाक में डुबोवे कर्पूर के वासित में कुशल ॥ अनन्तर दुग्ध कू
 पी वो बलके हित पित्र वात की नाशक है ॥ २३१ ॥ शुक्रको करने वाली शीतलभा
 री शुक्रको करने वाली युयु रुचिको करने वाली है ॥ और शरीर की पुष्टिको
 करता है तथाव हुतकाल तक अच्छी दृष्टी को करती है ॥ २३२ ॥

कुण्डलिनी जलेवा । नूतनं घट मानीय तस्थान्तः कु-
 ष्ण लोजनः ॥ प्रस्थाञ्छै परि मारोन दध्नाऽम्लेन प्रलेपये
 त् ॥ २३३ ॥ द्वि प्रस्था समितां तत्र दध्यम्लं प्रस्थसम्नि
 तम् ॥ घृत मर्द्धं सरावञ्च घोल यित्वा घृते क्षिपेत् ॥
 २३४ ॥ आतपे स्थापये ज्ञावद्या वद्याति दन्मूलात् ॥
 ततस्तत्प्रक्षिपे त्पात्रे सच्छिद्रे भाजने तु तन ॥ २३५ ॥
 परिभ्राम्य परिभ्राम्य तन्मनप्रे घृते क्षिपेत् ॥

पुनः पुनस्तदा वृत्त्या विदध्या त्मराडला कृतिम् ॥ २३६ ॥
 तां सुपक्वां घृताद्वीत्वा सिता पाके तनु द्रवे ॥ कर्पूरादि
 सुगन्धञ्च स्नापयित्वा हरेत्ततः ॥ २३७ ॥ एवा कुण्ड
 लिनी नाम्ना पुष्टि कान्ति वल प्रदा ॥ धातु वृद्धिकरी
 वृत्त्या रुच्या च क्षिप्र तर्पणी ॥ २३८ ॥

अथ पश्चात्परि वेद्याणि । सिरवरिणी ।

भा० अनन्तर जले वी । कुत्राल मनुष्य नया घड़ा लाकर उसके भीतर ॥ जाध
 सेर खड़ी दही से लेप करावे ॥ २३३ ॥ उसमें दोसेर मैदा और एक सेर खट्टा
 दही ॥ पाव भर घृत इन को घोलकर घृतमें डाले ॥ २३४ ॥ इसको धूपमें र-
 खवे तब तक् जवतक् खट्टा पन इसमें न आवे ॥ अनन्तर छेक वाले वरतन में
 उसको डालें ॥ २३५ ॥ उसको घुमा २ कर जलते हुवे घी में डाले ॥ फिर २ उ-
 सकी फेरसे मंडला कृति करे ॥ २३६ ॥ उस पकी हुईको घृत से निकाल करची
 नीके पतले पाकमें ॥ कपूर आदि से युक्त में डाल कर निकाल लेवे ॥ २३७ ॥
 यह जलेवी पुष्टि कान्ति वल को देने वाली है ॥ और धातु को बढ़ाने वाली शुक्रको
 करने वाली रुचि को करने वाली नेत्रकी तर्पण है ॥ २३८ ॥

अनन्तर पश्चात्परि वेद्यनि सिरवरिणी ।

आदौ माहिय मम्ल मम्बु रहितं दध्या ढकं शर्कराम् ॥
 शुभा प्रस्थ युगो न्मितां शुचि पदे किञ्चिच्च किञ्चित् ।
 क्षिपेत् ॥ २३९ ॥ दुग्धे नाद्धं घटेन मृगम यनवस्थः
 ल्यां दृढं स्नावयेत् ॥ एला बीज लवङ्गः चन्द्र मरिचै
 योग्यैश्च तद्यो जयेत् ॥ २४० ॥ भीमेन प्रिय भोजनेन
 रचिता नाम्ना रसाला स्वयम् ॥ श्रीकृष्णो न पुरा पु
 नः पुनरियं प्रीत्या समा खादिता ॥ २४१ ॥

भा० पहिले भैसंकी जल रहित चार सेर दही को सफेद दो सेर शर्करा के सहित सुफेद कपड़े पर थोड़ा रूढ़ाले ॥ २३६ ॥ अर्द्ध घट दुग्ध से नई मिट्टी की स्थालीमें छन चावे ॥ इलाय ची लिंग चन्दन मरिच और उचित उस्ने डाले ॥ अच्छे भोजन करने वाले भीम सेन ने रसाला नाम स्वयं बनाई है ॥ पहिले श्री कृष्णाने बार बार इसको प्रीति से आखादन किया था ॥ २४१ ॥

यथा येन वसन्त वर्जित दिने संसेव्यते नित्यशः ॥ तस्य स्यादति वीर्यं वृद्धि रनिशं सर्वेन्द्रियाणां बलम् ॥ २४२ ॥ ग्रीष्मे तथा शरदिये रविशोयिताङ्गः ये च प्रमत्त वनिता सुरताति रिवन्ताः ॥ ये चापि मार्ग परिस्पर्शा शीर्षा गात्रा स्तेषां भियं वपुषि पोषणमाशु कुर्यात् ॥ २४३ ॥ रसाला शुक्रलाबल्या रोचिनी वातपित्त जित् ॥ दीपिनी वृंहणी स्निग्धामधुराप्रिप्रिरा सरा ॥ २४४ ॥ रक्त पित्तं त्वया दाह प्रति श्यायं विनाशयेत् ॥ शर्क रोदक सर वत ॥

भा० इसको जो वसन्त से रहित दिनों में नित्य सेवन करते हैं ॥ उसके अति वीर्य वृद्धि और सब इन्द्रियों का बल होता है ॥ २४२ ॥ ग्रीष्म में तथा शरद में जो सूर्य से शीघ्रतः अंग चाले हैं और जो प्रमत्त स्त्री के भैयुन से अति स्थिम्ब ॥ तथा जो मार्ग चलने से शीर्षा गात्र है उनके शरीर में यह पोषण वीघ्र करता है ॥ २४३ ॥ रसाला शुक्र को करने वाली बलके हित रोचन वात पित्त को जीतने वाली है ॥ और दीपन पुष्टिकरिनी मधुर प्रीतिल सर है ॥ २४४ ॥ रक्त पित्त त्वया दाह प्रति श्याय इनको नाश करती है ॥

अनन्तर सर वत । ॥

जलेन पीतले नैच घोलिता शुभ्र शर्करा ॥ यला लवङ्ग कपूर मरिचैश्च समन्विता ॥ २४५ ॥

शर्क रोदक नाम्ना तत् प्रसिद्धं विदुषां मुखे ॥ शर्क रो-
दक मारव्यातं शुक्लं शिशिरं सरम् ॥ २४६ ॥ वल्यं
रुच्यं लघु स्वादु वात पित्त प्रणाशनम् ॥ मूर्च्छा क
र्दि तृषा दाह ज्वर प्राग्नि कर म्परम् ॥ २४७ ॥

भा० शीतल जल से घोली हुई चुकेट चीनी ॥ और इलाय चीत्तवङ्ग कपूर म
रिच इनसे युक्त ॥ २४५ ॥ शर्क रोदक नाम से प्रसिद्ध पंडितों के मुख में है ॥
शर्क रोदक प्रसिद्ध है शुक को करने वाला शीतल सर है ॥ २४६ ॥ और बल के
हित रुचि करने वाला हलका मधुर वात पित्त का नाशक है ॥ और मूर्च्छा
दमन तथा दाह ज्वर की प्राग्नि को परम करने वाला है ॥ २४७ ॥

अथ प्रपान कं पन्ना । तत्र आम्र फल प्रपान कम्
आम्र मामं जले स्विन्नं मर्दितं दृढ परिणा ॥ सिता
शीताम्बु संयुक्तं कपूर मरिचा न्वितम् ॥ २४८ ॥ प्रपा
न कामिदं श्रेष्ठं भीम सेनेन निर्मितम् ॥ सद्यो रुचि
करं वल्यं शीघ्र मिन्द्रिय तपणा म् ॥ २४९ ॥

भा० अनन्तर पन्ना । उसमें आम का पन्ना । कच्चे आम को पानी में उबाल के
हाथ से खूब मले ॥ चीनी और शीतल जलसे युक्त और कपूर मरिच के साथ ।
॥ २४८ ॥ यह प्रपान क श्रेष्ठ भीम सेन का बनाया हुआ है ॥ तत्काल रुचि
को करने वाला बलके हित शीघ्र इन्द्रिय का तपणा है ॥ २४९ ॥

अथा म्लि का फल पान कम् । अम्लि कायाः
फलं पक्वं मर्दितं वारिणा दृढ म् ॥ शर्करा मरिचै
मिश्रं लवङ्गेन्दु सुवासितम् ॥ २५० ॥

भा० अनन्तर इमली का पन्ना ॥ यकी इमली को पानी के साथ खूब मले ॥ श
कर और मरिच से युक्त और लवङ्ग कपूर से सुवासित ॥ २५० ॥

अश्लि का फल सम्भूतं पानकं वात नाशकं नमः ॥ पित्र
 श्लेष्म करं किञ्चित् सुरुच्यं वान्ह बोधनम् ॥ २५१
 निम्बूक फल पानकम् । भागे कं निम्बुजं तोयं यद्
 भागं शर्करा रोदकम् ॥ लवङ्ग मरिचैर्मिश्रं पानं पानक
 युतमम् ॥ २५२ ॥ निम्बू फल भवं पान मत्यम्लं वात ना
 शनम् ॥ वन्हि दीप्ति करं रुच्यं समस्ता हार याचकम् ॥
 २५३ ॥ धान्याक पानकं ॥ शिलार्या साधु सम्यष्टं
 धान्यकं दस्त गालितम् ॥ शर्करो दक संयुक्तं कर्पूरा
 दिसु संरक्तम् ॥ २५४ ॥ नूतने मृगमये पात्रे स्थितं
 पित्त हरं परम् ॥ अथ काञ्जी ॥

भा० यह इमली का पत्रा वात का नाशक है ॥ और पित्त कफ को करने वाला
 किचित् तथा रुचि कर दीपन है ॥ २५१ ॥ नीम्बूका पत्रा ॥ एक भाग नीम्बू
 का रस छः भाग सरवत ॥ लोड्ड मिश्र से युक्त पत्रा पत्रा में श्रेष्ठ है ॥ २५२
 नीम्बूका पत्रा बहुतरवदा वात नाशक ॥ अग्नि दीपन रुचि कर संपूर्ण आहार
 को पकाने वाला है ॥ २५३ ॥ धनिया का पत्रा ॥ सिल पर अच्छी तरह पीसा हु
 वा धनिया कपड काव करके ॥ सर्वात के सहित कपूर आदिसे युक्त ॥ २५४ ॥ न
 वीन मिट्टी के बरतन में रखवा हुई परम पित्त का नाशक है ॥ अनन्त काञ्जी

काञ्जी विधि बटका बसरे लिखितः । काञ्जी कं
 रोचनं रुच्यं पाचनं वह्नि दीपनम् ॥ शूल जीर्ण विव
 न्धघ्नं कोष्ठ शुद्धि करं परम् ॥ २५५ ॥ न भवेत् का
 ङ्जिकं यत्र तत्र कालिः प्रदीयते ॥ अथ जारी ॥
 आम मात्र फलं पित्तं राजिका लवणं न्वितम् ॥

भा० कांजी की विधि वटक के अवसर में कही है ॥ कांजी रोचन रुचि को करने वाली पाचन अग्नि दीपन है ॥ और त्रूल जीर्ण विबन्ध का नाशक तथा परमा कोष्ट शुद्धि को करने वाला है ॥ २५५ ॥ जहां पर कांजी नहीं वहां पर कालिः दी जाती है । अनन्तर जारी । कच्चे आम के फल को पीस कर राई और लवण से युक्त ॥-

भृष्ट हिङ्गु युतं पूतं घोलितं जालि रुच्यते ॥ २५६ ॥

जालि हरति जिह्वायाः कुराठत्वं कण्ठ शोधनी ॥ मन्द मन्दन्तु पीतासा रोचिनी वन्धि बोधिनी ॥ २५७ ॥

अथ तक्रं । तूय्यां श्रेण जलेन संयुत मति स्थूलं सदम्हं दधि ॥ प्रायो माहिय मस्बुकेन विमले मुद्गाजने मालयेत् ॥ २५८ ॥ भृष्टं हिङ्गु च जीर कञ्च लवणां राजीञ्च किञ्चि न्निताम् ॥ पिष्टान्नात्र विभिष्यये द्धुचति तत्र क्रंन कस्य प्रियम् ॥ २५९ ॥ तक्रं रुचि कारं वन्धि दीपनं पाचनं परम् ॥ उदरे ये गदासेयां नाशानं । तृप्ति कारकम् ॥ २६० ॥ अथ दुग्धम् ॥

भा० भृती हीङ्गु के सहित घोली हुई को जालि कहते हैं ॥ २५६ ॥ जीभ की कुंठता को जालि नाश करती है और कंठ की शोधन है ॥ मन्द मन्द पी हुई बोह रोचन अग्नि को जगाने वाली है ॥ २५७ ॥ अनन्तर मठा ॥ चौथाई जल से युक्त अति स्थूल अच्छा खट्टा दही ॥ प्रायः भैंस का जल से विमल मिट्टी के बरतन में रखवे । ॥ २५८ ॥ भूना हुआ हीङ्गु जीरा लवण राई भी कुछ युक्त ॥ पीसके उसमें मिलावे । वोह मठा किसके प्रिय नहीं होता ॥ २५९ ॥ मठा रुचि कर दीपन पाचन ॥ और उदरके जो रोग है उनका नाशक तृप्ति कारक है ॥ २६० ॥ अनन्तर दुग्ध ॥

विदाहि न्यन्न पानानि यानि बुद्धे हि भावतः ॥ तद्धि दाह प्रशान्त्यर्थं भोजनान्ते पयः पिबेत् ॥ २६१ ॥

दुग्धस्या परे गुणा उक्ता एव दुग्ध वर्गे ॥ अथ शक्तवः

धान्यानि भ्रातृ भृष्टानि यन्त्र पिष्टानि शक्त वः ॥

तत्र यव शक्तवः । यवजाः शक्तवः शीता दीपना लघ

वः सराः ॥ कफ पित्र हरा रूक्षा लेखनाश्च प्रकीर्ति

ताः ॥ २६२ ॥ ते पीता बलदा वृष्या हंहरा भेदनास्तथा

॥ तर्पणामधुरारुच्याः परिणामे बला यहाः ॥ २६३ ॥

कफ पित्र प्रम क्षु च्छुद् वृद्धि नेत्रा मया यहाः ॥ प्रणसा

धर्मदाहाह्य व्याया मार्त शरी रिरागम् ॥ २६४ ॥

भा० मनुष्यजिन विदाहि अन्न पानों को भोजन करता है ॥ उसके विदाह प्रशा-
न्ति के अर्थ भोजन के अन्नमें दुग्ध पीवे ॥ २६१ ॥ दुग्ध वर्गमें दुग्ध के और गुण
कहे हैं । अनन्तर सन्न । भांड में धान्य भूने चक्कीसे पीसे हुवे सन्न है ॥ उसमें ज
वके सन्न ॥ जवका सन्न शीतल दीपन हलका सर ॥ कफ पित्र का नात्रक रूखा
लेखन कहा है ॥ २६२ ॥ वे पीये हुवे बलको देने वाले शुक्र कारक पुष्ट भेदन
॥ तर्पणामधुरारुचिको करने वाले और परिणाम में बलके नात्रक हैं ॥ २६३
कफ पित्र प्रम क्षु घातया वृद्धि नेत्र रोग इनके नात्रक है ॥ धर्म दाहाह्य कसर
नसे पीड़ित शरीरवालो को हित है ॥ २६४ ॥

चराक यव शक्तवः । निस्तुयै श्वराकै भृष्टै स्तुय्यां ।

शैश्व यदैः कृताः ॥ शक्तवः शर्करा सर्पि र्युक्ता शीघ्रै

ति पूजिता ॥ २६५ ॥ शालि शक्तवः ॥

शक्तवः शालि सम्भूता बन्दि दा लघवो हिमाः ॥ स-

धुरा ग्राहिरागी रुच्या पथ्या श्व बल शुक्र दाः ॥ २६६

भा० अनन्तर चने जव का सन्न । छिल के से रहित चनों को भून कर और
चौघाई जव से बनाया हुवा ॥ सन्न शर्करा घृत से युक्त शीघ्र में अति पूजित

हे ॥ २६५ ॥ अनन्तर धानका सन्नू ॥ धानका सन्नू अग्नि दीपन हलका शी
तल ॥ मधुर काविज रुचि करने वाला पथ्य बल शुक्र को देने वाला है ॥ २६६ ॥

न भुक्त्वा न रदे ष्छि त्वा न निशायां नवा बहून् ॥ न
जलान्तरि तानू तद्धि शक्नु नाद्या न्न केव लान् ॥

२६७ ॥ पृथक् पानं पुनर्दानं आमिषं पयसा निशि
॥ दन्त च्छे दन मुख्या न्च सप्त शक्नु यु वर्जयेत् ॥ २६८

अथ बहुरी । यवास्तु निस्तुषा भृष्टाः स्मृता धाना इति
स्त्रियां ॥ धानाः स्यु दुर्जरा रूक्षा स्तृट् प्रदा गुरवश्च ।

ताः ॥ २६४ ॥ तथा मेह कफ च्छर्दि नाशिन्यः सम्प्र की
र्तिताः ॥ अथ लाजा ॥ येषां स्यु स्तृण्डु लास्तानि धा

न्यानि सतु वारिण च ॥ भृष्टानि स्फुटिता न्याहु ली
जा नीति मनी धिराः ॥ २७० ॥ लाजाः स्यु मधुराः

शीता लघवो दीपना श्र ते ॥

भा० न भोजन करके न दातों से काट कर न रात में न बहुत ॥ न जल से अनारि
त और उस सन्नू को के बल नखावे ॥ २६७ ॥ अलग पान फिरसे देना न सं
जल रात दन्त च्छेदन और गरम येह सात सन्नू में त्याग देवे ॥ २६८ ॥

अनन्तर बहुरी । वे छिल के के मूत्र जब स्त्री लिंग में धाना इस प्रकार कहा
है ॥ धाना दुर्जर रूखे न्या दाह को देने वाले भारी है ॥ २६६ ॥ तथा प्रमेह क
फ वमन इनको नाश करने वाले कहे हैं ॥ अनन्तर खीला ॥ जिनके चाव
ल होते हैं ॥ बोह छिलके के सहित धान ॥ मुने — हुवाको विद्वानों ला
जा इस प्रकार कहा है ॥ २७० ॥ खीला मधुर शीतल हलकी दीपन होत हं ॥

स्वल्प मूत्र मला रूक्षा वत्या पित्त कफ च्छिदः ॥

२७१ ॥ छर्दी तीसार दाहास मेह मेद स्तृवा पहाः ॥

अथ चिडवा । शालयः सतुषा आर्द्रा भृश्या अस्फुटि ता
 अतत् ॥ कुट्टिताश्चि पिटाः प्रोक्तास्ते स्मृताः पृथुका
 अपि ॥ २७२ ॥ पृथुका गुरघो वात नाशनाः प्रलेख
 ला अपि ॥ सक्षीरा चंद्राणा चंद्र्या बल्या भिन्न म-
 ला अतत् ॥ २७३ ॥ अथ हीरहा ॥

अर्द्ध पक्केः शमी धान्ये स्तुगा भृश्या होलकः ॥ हो
 लकोः ल्या निलो मेदः कफ दोष त्रया पहः ॥ २७४
 भवे द्यो होलका यस्य सच तत्र द् गुरागो भवेत् ॥

भा० वे अल्पमल मूल को करने वाले होते बलको करने वाले हैं और पित्र क
 फको काटने वाले हैं ॥ २७१ ॥ तथा वमन अतीसार दाह रक्त मेह मेद तृया इ-
 नका नाशक है ॥ अनन्तर चिडवा ॥ खिलके वाले धान भी ले और भूने हुवे
 अस्फुटित ॥ सूरे हुवे चिपिटक है है वे पृथुक भी कहें हैं ॥ २७२ ॥ चिडवा भारी
 वात नाशक भी है ॥ और दुधके सहित पुष्ट शुक्रको करने वाले बल करने वाले ॥
 मलको अलग करने वाले हैं ॥ २७३ ॥ अनन्तर हीरहा ॥ आधे पके हुवे
 शिमी धान्य तृया से भूने हुवाको होलक कहा है ॥ होलक अल्प वात मद्
 कफ विदोष इनके नाशक है ॥ २७४ ॥ जिसका जो दोला होता है वह उ-
 सके गुण वाला होता है ॥

अथ ऊची । मज्ज री त्वर्द्ध पक्काया यव गो धूमयो
 मेवेत् ॥ तृणा नलेन संभृश्या बुधै रुचीति सा स्मृता ॥
 २७५ ॥ उमिया इति लोके ॥ ऊची कफ प्रदा बल्या
 लघ्वी पित्रा निला पह ॥ अथ घुघुनी ॥

अर्द्धस्विन्नास्तु गीधूमा अन्येऽपि तृणा का द्यः ॥ कु
 र्माया इति कथ्यन्ते शब्द शास्त्रे यु पण्डितैः ॥ २७६ ॥

कुल्माया गुर वो रूक्षा वातला भिन्न वर्चसः ॥

[अथ तिल कुट]

भा० अनन्तर ऊची । जव गेहूं की जो अध पकी वालें होतीहैं ॥ तृणाग्नि से मूनी हुई उसको विद्वानों ने ऊची ऐसा कहाहै ॥ २७५ ॥ लोक में उमि या कहने हैं ॥ ऊची कफ को करने वाली बलके हितहलकी पित्त वातकी नाशक है ॥ अनन्तर घुघुनी ॥ आधे पकाये हुवे गेहूं और चने आदि क ॥ व्याकरणा के पंडितोंने इसको कुल्माय ऐसा कहाहै ॥ २७६ ॥ कुलमा य भारी रूखे वात को करने वाले मलको अलग करने वाले हैं ॥ अनन्तर तिल कुट ॥

पल लन्तु समारव्याप्तं सैक्ष वनितल पिष्टकम् ॥ पललं
मल कृद्द्वयं वातघ्नं कफ पित्त क्षत् ॥ २७७ ॥ चंहरा
ञ्च गुरु स्निग्धं मूत्राधिक्य निवर्तकम् ॥ अथ पीना ।
निल किट्टन्तु पिन्याकं तथा तिल खलिः स्मृता ॥
पिण्याको लेखनी रूक्षो विष्टम्भी दृष्टि दूयराः ॥ २७८
अथ चाउर । तराडु लो मेह जन्तुघ्नः स नव स्वनिडु
जैरः ॥ इति श्रीभावप्रकाशे कृतान्नवर्गः

भा० गुडके सहित तिलकी पिष्टीको पलल कहाहै ॥ पलल मल कारी शुक्रको करने वाला वात नाशक कफ पित्त को करने वाला है ॥ २७७ ॥ पुष्ट भारी ति- कना और मूत्राधिक्य को दूर करने वाला है ॥ अनन्तर खली ॥ तिल किट्ट को पिन्याक तथा तिल खलि कहाहै ॥ खली लेखन रूक्ष विष्ट भी दृष्टि दूय गातीहै ॥ २७८ ॥ चावल प्रमेह कृमि का नाशक और नया अति दुर्जर हो ताहै ॥

इति भाव प्रकाशे कृतान्न वर्गः ॥

अथ वारिवर्गः

तत्र पानीयनामानि गुराणां च ॥

पानीयं सलिलं नीरं कीला लज्जल मम्बु च ॥ आपो
वाञ्छारि कन्तोयं पयः पाथस्त घोदकम् ॥ १ ॥ जीवंतं
वनमम्भोऽर्णोऽमृतं घनरसोऽपि च ॥

भा० अनन्तर जल वर्गः ॥ उम्मेंजल के नाम और गुराणां ॥ पानीयसलिलनीर की लाल जल अम्बु ॥ आप वार वारि के तोय पय पाथ तथा उदक ॥ १ ॥ जीवन अम्भ अर्णो अमृत घन रस यह पानी के नाम हैं ॥

पानीयं श्रमनाशनं क्लमहर मूर्च्छा पिपासा पहम् ॥ तन्द्रा
कृदि विवन्ध हृद्बल करं निद्रा हरं तर्पणाम् ॥ २ ॥ हृद्यं गु
प्ररसं ह्यजीर्ण शमकं नित्यं हितं शीतलम् ॥ लघ्वच्छं
स्तकारणं तु निगते पीयूय वज्जी वितम् ॥ ३ ॥ तस्य भेदाः
पानीयं मुनिभिः प्रोक्तं दिव्यं भौममिति द्विधा ॥ दिव्यं च
तु विधं प्रैक्तं धाराजं करका भवम् ॥ ४ ॥ तेषां च
तथा हैमन्तेषु धारं गुराणां धिकम् ॥

तत्र धारस्य लक्षणं गुराणां च ॥

भा० जल श्रम नाशक क्लम हर मूर्च्छा पिपासा का नाशक ॥ तन्द्रा वमन वि
वन्ध इनका नाशक दल कर निद्रा नाशक तर्पणाम् ॥ २ ॥ हृद्यं गुप्ररस अजीर्ण
शमक नित्य हित शीतल हितोद्दे ॥ दलका लघ्वच्छरस कारणा अमृत कैसनान जी
वनकहो ॥ ३ ॥ उसके भेद । मुनियों ने जल दो प्रकार का कहा है दिव्य भौम

म ॥ दिव्य चार प्रकार का कहाँ है धारका ओलों का ॥ ४ ॥ तुषार का तथा
है मन्त में चार का गुण में अधिक होता है ॥

उसमें धार के लक्षण और गुण ।

धाराभिः पतितं तोयं गृहीतं स्फीतवाससा ॥ शिला
यां वासुधायां वा धौतायां पतितञ्च तत् ॥ ५ ॥ सौवर्णे
राजते ताम्रे स्फाटिके काचनिर्मिते ॥ भाजने मृगमये
वापि स्थापितं धारमुच्यते ॥ ६ ॥ धारं नीरं त्रिदोषम
मनिर्देय्य रसं लघु ॥

भा० यास से गिरा हुआ साफ कपड़े से लिया हुआ ॥ शिला पर सुधापरधो
तर पर गिरा हुआ योह ॥ ५ ॥ सोने के चान्दी के ताम्बे के स्फटिक के काच के व-
ने हुवे वरतन में ॥ अथवा भिड़ी के में रखवा हुआ जल धार कहाँ है ॥ ६ ॥
धारजल त्रिदोष नाशक अनिर्देय्य रस हलका ॥

सौम्यं रसायनं बल्यं तर्पणं ह्लादिजीवनम् ॥ ७ ॥ पा
चनं मति कृन्मूर्च्छा तन्द्रा दाह श्रमकुमान् ॥ तृ-
ष्णां हरति नात्यर्थं विशेषात्त्रा वृथे स्थितम् ॥

अथ धारजलस्य भेदाः

धारजलञ्च द्विविधं गङ्गासामुद्रभेदतः ॥

तत्र गङ्गासामुद्रयोर्लक्षणगुणाश्च ।

आकाशगङ्गासम्बन्धिजलमादाय दिग्गजाः ॥ मे

धेरन्तरिता वृष्टिं कुर्वन्तीति वचः सताम् ॥ ८ ॥

गङ्गाभाठवयुजेभाभिप्रायोर्व्यतिवारिदः ॥ सर्वथा

तज्जलेन्देयं तर्धैवचरकेवचः ॥ ९ ॥

भा० सोम्य रसायन बल के हित नर्पराह्लादि जीवन ॥७॥ वाचन मति को
 करने वाला मूर्च्छा तन्त्रा दाह प्रथम क्रम ॥ वृथा इनको नाश करना है न अ-
 त्यन्त विशेष करके प्रा दृष्ट काल में स्थित है ॥ अनन्तर धारा जनका भेद ।
 धारा जल दो प्रकार का होता है गंगा और समुद्र से ॥ उसमें गंगा सामुद्रों
 का लक्षणा ॥ और गुणा कहते हैं ॥ विग्न भ्राकाण गंगा सम्वन्धि जल ले
 कर ॥ मेघों से अन्तरित दृष्टि को करते हैं इस प्रकार सत पुरुषों का वचन है ॥
 ८ ॥ मेघ गंगा जल का प्रायः आश्विन के महीने में दर साते है ॥ सर्व धा वौह
 जल देने योग्य है वैसे ही चरक का वचन है ॥ ४० ॥

स्था पितं हेमजे पात्रे राजते मुरामये ऽ पि वा ॥ शा
 ल्यन्नं येन संसिक्तं भवं दक्षे दि वर्णवत् ॥ १० ॥ तद्वा
 गं सर्व दोषघ्नं ज्ञेयं सामुद्र मन्यथा ॥ तत्र सक्षार लव
 णं शुक्र दृष्टि बला यहम् ॥ ११ ॥ विश्वञ्च दोष लन्ती
 क्ष्णां सर्व कर्म समाहितम् ॥ सामुद्र त्वा शिवने मासि
 गुरोर्गाङ्ग वदा दिशेत् ॥ १२ ॥ यतो ऽगस्यस्य दिव्य
 र्ये रुद यात्सकलं जलम् ॥ निर्मलं निर्वियं स्वादु
 शुक्लं स्याद दोष लम् ॥ १३ ॥ अत एवाह ॥
 फूत्कार विषवा तेन नागानां व्योम चारिणां ॥ घर्षा
 सु सावियं नोयं दिव्य मय्या शिवनं विना ॥ १४ ॥
 अथा नार्त्त वारणा हुन्गाः ।

भा० सोने का या चान्दी के अथवा मिट्टी के पात्र में रखे हुवे में ॥ घान
 भिजोये हुवे क्लृप्त रहित वर्णा धाता होवे ॥ १० ॥ वौह गंगा जल सब दोषों का
 नाशक जानना चाहिये इससे विषयित सामुद्र ॥ वौह धार के मन्त्रित शुक्र दृष्टि ।
 बल इनका नाशक है ॥ ११ ॥ दुर्गन्धि युक्त दोष को करने वाला तीव्रता भव कर्म नमा
 दित है और सामुद्र आश्विन के महीने में गुणा में गंगा जनक ममान होता है ॥ १२ ॥

क्योंकि अगस्त ऋषि के उदय से संपूर्ण जल ॥ निर्मल और निर्विष मधुर शुद्ध
को करने वाला अदोष ल है ॥१३॥ इसी वास्ते कहा है ॥ व्योम चारि सापों के
फूत कार विष वातसे ॥ वर्षा में सविय जलदिव्य भी आप्स्विन के विना नहीं होता
है ॥१४॥ अनन्तर वे रूत के जल के गुण ॥

अनार्त्तवं प्रमुञ्चन्ति वारि वारि धरास्तु सत् ॥ नत् त्रि
दोषाय सर्वेषां देहिनां परि कीर्त्ति तम् ॥ १५॥ अना
र्त्त वस्यो यदि मास चतुष्टय विषयम् ॥

अथ करका जलस्य लक्षणां गुणां च ।

दिव्य वाय्वग्नि संयोगात् संहताः स्वात्पितृन्ति याः ॥

यायागा खण्ड वच्चा पस्ताः कारि कपोऽमृतो यमाः ॥१६॥

करका जञ्जलं रूक्षं विशदं गुरु च स्थिरम् ॥ दारु

रां शीतलं सान्द्रं पित्त हृत्कफ वात हार ॥ १७॥

तौ यार लक्षणां गुणां च ।

भा० वे रूत का जल मेघ जो छोड़ते हैं ॥ वोह सब देहियों के त्रिदोष
के अर्थ कहा है ॥ १५॥ वे रूत का अर्थात् पौषादि मास चतुष्टय विषय है ॥ अनं
तर ओलों के जल का लक्षणा और गुण । अन्न रिक्ष वायु अग्नि के संयोग से सं
हत पथ्यरके टुकड़े के समान जल आकाश से जो गिरते हैं ॥ वोह ओले अमृत के
समान होते हैं ॥ १६॥ ओलों का पानी रूखा विशद भारी स्थिर है ॥ दारुण शीत
ल सान्द्र पित्त नाशक कफ वात को करने वाला है ॥ १७॥ तौ यार अर्थात् पाला
का लक्षणा और गुण ।

अपि नद्याः समुद्रान्ते वह्निरपस्तदुद्भवाः ॥ धूमाव

यदनिर्मुक्तास्तुषां सरत्वास्तुताः स्मृताः ॥ १८॥

भा० नदी से लेकर समुद्र पर्यन्त अग्नि होती है उससे उत्पन्न धूमांश रहित
॥ वोह जल नद्यार नाम कहा है ॥ १८॥

(क) अपिनद्याः समुद्रान्ते वह्नि नदी मारभ्य समुद्र
पर्यन्ते वह्नि रास्ते तदुद्भवाः । वह्नि भवाधू माव यव
निर्मुक्ताः धूमां शरहिताः । आपस्तु या सरख्याः । तुय इ
ति लोके । तुयार इति च ।

अपय्याः प्राणिनां प्रायः भूरु हारान्तु नाहिताः ॥ तु
यारास्वुहिर्मं रूक्षं स्याद्वा तल मपित्त लम् ॥ १५ ॥

कफो रुस्तम्भ कण्ठ ग्नि मेह गरुडादि रोगानुत् ॥

अथ हि मजलस्य लक्षणां गुणांश्च ।

भा० (क) नदीसे लेकर समुद्र पर्यन्त अग्नि होती है ॥ उस अग्नि से उत्पन्न
धूमांश शरहित जल तुयार नाम है । तुय इस प्रकार लोकमें कहेंते हैं । और
तुयार इस प्रकार भी । यह प्रायः प्राणियों को अहित है और वृक्षादियों को
हित नहीं है ॥ तुयारजल शीतल रूखा होता है और वात को करने वाला तथा
पित्त को न करने वाला है ॥ १५ ॥ और कफ उस्तम्भ कंठ रोग अग्नि मान्द्य प्रमे
ह कण्ठादि रोग का नाशक है ॥ अनन्तर वरफ के पानी का लक्षणा और गुणा ।

हिमवच्छिखरादिभ्यो द्रवी भूया भिवर्यति ॥ यत्तदेवं
हिमं हैमं जल माहुर्मनीषियाः ॥ २० ॥ हिमास्वू शीतं
पित्तघ्नं गुरुवात विवर्द्धनम् ॥ (क) हैमं जलम्
। कुहे सजलम् । अन्ये तु । और्वानिल धूमे रित म-
स्वु समुद्रस्य यत् घनी भूतम् । पचनानी त मुदीच्या
न्तहि ममिति कथ्यते सद्भिः । हिमं कुहे स इति लोके ।
हिमन्तु शीतलं रूक्षं दारुणं सूक्ष्म मित्यपि । न
तद्व्ययते वातं न च पित्तं न वा कफम् ॥ २१ ॥

भा० हिमालय के शिखरदियों से विघल के जो बर सता है वोह हिमहै उ-
 स्के जलको हैमजल मुनियोंने कहाहै ॥२०॥ वर्षका पानी शीतल पित्तका ना
 शक मारी वायुको बढ़ाने वालाहै ॥ (क) चडवानल के धूम से प्रेरित समु-
 द्र का जल जो गाढ़ा हुवा वायु से लाया हुवा उत्तर में उसको हिम रंसा विद्वानों
 ने कहाहै । लोकमें कुहेस रंसा कहेतेहै ॥ वरुण शीतल रूखी दाकरा सूक्ष्म
 भीहै ॥ वोह न वात को न पित्त को न कफ को विगाड़ताहै ॥२१॥

[भौमं जलं तद्दे दाश्र ॥]

भौम मम्भो निग दितं प्रथमं त्रिविधं बुधैः ॥ जाङ्गल प
 रमानू पन्ततः साधारणं क्रमात् ॥ २२ ॥

तथा लक्षणानि गुराणां च ।

अल्यो दकोऽल्य वृक्षश्च पित्त रक्ता मया न्वितः ॥ जा
 तव्या जाङ्गलो देशस्तत्र त्यज्जाङ्गलं जलम् ॥ २३ ॥

बहुन्तु बहु वृक्षश्च वात श्लेष्मा मया न्वितः ॥ देशोऽ
 नूप इति ख्यात आनूपं तद्भवं जलम् ॥ २४ ॥

भा० भूमिका जल और उसके भेद ॥ पंडि तोने भूमि का जल तीन प्रकार
 का प्रथम कहाहै ॥ क्रमसे जाङ्गल दूसरा आनूप और साधारण ॥२२॥
 उनके लक्षणा और गुरा । थोडा जल थोडे वृक्ष पित्त रक्त रोग युक्त ॥ रोसा
 देश जङ्गल जानना चाहिये उसी का जाङ्गल जानना चाहिये ॥ २३॥ बहुत ज
 न बहुत वृक्ष वात कफ रोगसे युक्त ॥ रोसा अनूप देश प्रसिद्ध है वहां का ज
 ल आनूप है ॥ २४ ॥

मिश्र चिन्हस्तु यो देशः सहि साधारणः स्मृतः ॥ ज-
 स्मिन्देशे यद्दु दकं तद्बु साधारणं स्मृतम् ॥ २५ ॥ जा-
 ङ्गलं सलिलं रूक्षं लवणं लघु पित्तनुत् ॥ बन्दि क
 त्क फ कृत्पथ्यं विकारान् हरते बहून् ॥ २६ ॥

भा० और मिले हुंवे नक्षरग वान्ना जो देश है वोह साधारण कहाँ है ॥ उस देश में जो जल होता है वोह साधारण कहाँ है ॥ २५ ॥ जाङ्गल जल रूखा नमकीन ॥ हलका पित्त नाशक ॥ अग्नि को करने वाला कफ को करने वाला हृद्य और बहुत से विकारों को हरता है ॥ २६ ॥

अनूपं वार्यं मिथ्यन्दि स्वादु स्निग्धं घनं गुरु ॥ वह्निकृ
त्कफं कृत् हृद्यं विकारान् हरते बहून् ॥ २७ ॥ सांधा
रणान्तु मधुरं दीपनं शीतलं लघु ॥ तर्पणं रोचनं नृष्या
दाह दीपयत्यप्रगुत् ॥ २८ ॥

अथ भौमानामेव नादे यादीनां लक्षणानि गुराणां च ॥

भा० अनूप जल अभिवन्दि होता है और मधुर चिकना घन भारी होता है ॥ अग्नि को करने वाला कफ को हृद्य तथा बहुत से रोगों को हरता है ॥ २७ ॥ साधारण जल मधुर दीपन शीतल हलका ॥ तर्पण रोचन होता है और नृष्या दाह नीनों दीपय इतका नाशक है ॥ २८ ॥ अनन्तर भूमि के हीनदियों के जलों का लक्षण और गुरा ॥

तत्र ना देयस्य लक्षणां गुराणां च ॥

नद्या नदस्य वा नीरं नादेय मिति कीर्त्ति नम् ॥ नादेय
मुदकं रूक्षं वातलं लघु दीपय नम् ॥ २९ ॥ अन मिथ्य
न्दि विशदं कटुकं कफ पित्त नुत् ॥ नद्यः शीघ्र बहाः
लघ्व्याः सर्वा याश्चामलो दकाः ॥ ३० ॥ गुर्व्यः शैवल
सञ्छन्ना मन्दगाः कलु षाश्च याः ॥

भा० नदका अथवा नदी का जो जल है उसको ना देय ऐसा कहाँ है ॥ नादेय जल रूखा वात को करने वाला हलका दीपय ॥ २९ ॥ अन मिथ्यत्वि विशद कटुक कफ पित्त का नाशक होता है ॥ शीघ्र बहने वाली और स्वच्छ उदक वाली सर्वा नदिया हलकी होता है ॥ ३० ॥ मेघार मेढकी मन्द चलने वाली और जो काली हो-

तीहै वोह भारीहै ॥

हिमवत्प्रभवाः पृथ्वी नद्योऽश्माह तपायसः ३१

॥ गङ्गा शत दुसरयू यमुनाद्या गुराणोत्तमाः ॥ सह्यः शैल
भवानद्यो वेणा गोदावरी मुरवाः ॥ ३२ ॥ कुर्वन्ति प्रायः
प्राः कुष्ठमीष द्वात कफा वहाः ॥ नदी सरस्तडा गस्थे कू
प प्रस्वव रा दिजे ॥ ३३ ॥ उदके देश भेदेन गुराणान्
दोषाश्च लक्षयेत् ॥ अथौ द्विदस्य लक्षणां गुराणां च
विदार्य भूमिं निम्नाय महत्या धारया स्रवेत् ॥ ततोऽ
व मौद्गिदं नाम बदन्तीति महर्षयः ॥ ३४ ॥ औद्गि
दं वारि पित्तं घ्नम विदाह्यति शीतलम् ॥ प्रीणानं म
धुरं वल्यमीष द्वात करं लघु ॥ ३५ ॥

नैर्भरस्य लक्षणां गुराणां च ।

श्री० हिमालय से निकली और पायाण से हत जल वाली नदिया हित है ॥ ३१
गङ्गा शत दुज सरयू यमुना आदि गुराण में उत्तम है ॥ सह्य पहाड़ से निकली वे
णा गोदावरी गुराण है ॥ ३२ ॥ प्रायः कुष्ठ को करती है और कुष्ठ वात क
फ को भी करती है ॥ नदी सरा वर तालाव इनका और कूवा भरना आदि के
॥ ३३ ॥ जलो में देश भेद से गुराण दोषों को जानें । अनन्तर औ द्विद कालक्ष
ण और गुराण । भूमि को दाल बां रवन के वड़ी धार से जो जल गिरता है ॥ उस
जल को औद्गिद ऐसा महर्षि योने कहा है ॥ ३४ ॥ औ द्विद जल ज पित्त नाश
क अविदाहि अति शीतल होता है ॥ और प्रीणान मधुर वलके हित थोड़ा
वात को करने वाला हलका होता है ॥ ३५ ॥

अनन्तर भरने के जलका लक्षणा और गुराण कहते हैं ॥

शैल सानु स्ववारि प्रवाहे निर्भरो भरः ॥ सतु प्रस्व
वरा प्राये तत्रैत्यं नैर्भरं जलम् ॥ ३६ ॥

नेर्भरं रुचि कृत्रीरं कफघ्नं दीपनं लघुः ॥ मधुरं कटुपा-
कञ्च वातं स्यादपि पित्त लम् ॥ ३७ ॥

अथ सारसरस्य लक्षणं गुराणम् ।

नद्याः शैलादि रुद्धाया यत्र संश्रुत्य तिष्ठति ॥ तत्सरो
जलसञ्चनं तदम्भः सारसं स्मृतम् ॥ ३८ ॥ सारसं
सलिलं वल्यं तृणा मं मधुरं लघुः ॥ रोच नन्तु वरं
रूक्षं बहु मूत्र मलं स्मृतम् ॥ ३९ ॥

अथ ताडा गस्य लक्षणं गुराणम् ।

भा० पहाडी तराई से फिरने वाला जल प्रवाह से जो आता है उसको निर्भर
॥ और प्रसवरा भी कहते हैं । उसमें का पानी नेर्भर है ॥ ३६ ॥ भरने का पा-
नी रुचि को करने वाला कफ नाशक दीपन हलका ॥ मधुर पाक में कटु वात
तथा पित्त को करने वाला है ॥ ३७ ॥ अनन्तर सारस का लक्षण और गुराण ।
पहाड़ आदि से रुकी हुई नदी का जल जहाँ पर बहे कर उहरता है ॥ वीह आ-
च्छा दित सरो जल है उसका पानी सारस कहते हैं ॥ ३८ ॥ सारस जल बलदे-
हित तृणा नाशक मधुर हलका ॥ रोच नक सेला रूखा मल मूत्र को रो कने वा-
ला कहा है ॥ ३९ ॥ अनन्तर तालाव के जल का लक्षण और गुराण ।

प्रशस्त भूमि भागस्थो बहु संवत्सरो यितः ॥ जला शय
स्तडागः स्यात्ताडागं तज्जलं स्मृतम् ॥ ४० ॥ ताडागमु-
दकं स्वादु कषायं कटु पाकि च ॥ वातलं बहु विरा मूत्र
मचृक् पित्त कफा पहम् ॥ ४१ ॥

वाप्य लक्षणं गुराणम् ॥

भा० प्रशस्त भूमि भाग का बहुत बरस का पुराना जला शय ॥ तालाव होता
है उसका पानी ताडा कहते हैं ॥ ४० ॥ तालाव का पानी मधुर कसेला पाक में

कटु ॥ वातल मल मूत्र को वान्धनें वाला ॥ और रक्तपित्तकफ इन का नाशक है ॥ ४१ ॥ अनन्तर वावडी का लक्षणा और गुणा ॥

पाथारौ रिष्टु का भिर्वा बद्धः कूपो वृहत्तरः ॥ ससो पा
ना भवे द्यापी तज्जलं वाप्य मुच्यते ॥ ४२ ॥ वाप्यं वारि
यदि क्षारं पित्त कृत् कफ वात हृत् ॥ तदेव मिष्टं क
फ कृत् वात पित्त हरं भवेत् ॥ ४३ ॥

अथ कौपस्य लक्षणां गुणां च ॥

भूमौ खातो ऽल्पविस्तारे गम्भीरो मण्डलाकृतिः ॥
वहो ऽबद्धः स कूपं स्यात्त दम्भः कौप मुच्यते ॥ ४४ ॥
कौपं पयो यदि स्वादु विदोषघ्नं हितं लघु ॥ तत् क्षारं
कफ वातघ्नं दीपनं पित्त कृत्परम् ॥ ४५ ॥

भा० पथ्यर अथवा इयेंसे बहुत बड़ा बनाया हुआ कूवा ॥ सीढियोंके सहित बौद्ध
वावडी है और उसके जलको वाप्य कहते हैं ॥ ४२ ॥ वावडी का पानी यदि खारी हो
वे तो बौद्ध पित्त करने वाला कफ वात का नाशक होता है ॥ घीही मीठा कफ करने वा-
ला वात पित्त का नाशक होता है ॥ ४३ ॥ अनन्तर कुबेके जलका लक्षणा और गु-
णा । भूमि में छोड़ा चौड़ा गहरे रा गोल खोदा हुआ ॥ वन्धा वा वे वन्धा हुआ वो
कूप है वस्का जल कौप कहा है ॥ ४४ ॥ कूबे का पानी यदि मधुर होतो विदोष
नाशक हलका हित होता है ॥ और बौद्ध खारी कफ वात का नाशक दीपन अ-
न्यन्त पित्त करने वाला है ॥ ४५ ॥

अथ चोञ्जस्य लक्षणां गुणां च ॥

शिन्वा कीर्णं स्वयं एवमं नीलाञ्जन समोदकम् ॥ ल-
ता वितान मं कृन् चोञ्ज्या मित्य मिधी यते ॥ ४६ ॥
अशमादि भिर बद्धं यत्त चोञ्ज्य मिति वा परे ॥

तत्रत्य मुद्गकं चोच्चं मुनिभिस्तु दुदाहृतम् ॥ ४७ ॥

चोच्चं बन्धुकरं नीरं रूक्षं कफहरं लघु ॥ मधुरं पित्त
नुद्गुच्यं पाचनं विशदं स्मृतम् ॥ ४८ ॥

अथ पल्लवस्य लक्षणां गुराणां च

अल्पं सरः पल्लवं स्याद्यत्र चन्द्रक्षणे रचौ ॥ (क)

रचौ सूर्यं चन्द्रक्षणे कर्कराशिस्ये प्रावरोभासि इति

यावत् ११। चन्द्रक्षे मृगशिरस्तत्र गेमुख्यपाठः ।

न तिष्ठन्ति जलं किञ्चिन्नतन्यं वारिपाल्वलम् ॥ पा

ल्लवं वार्याभिव्यन्दि गुरुस्वादुविदोषकत् ॥ ४९ ॥

अथ चिकिरस्य जलस्य लक्षणां गुराणां च ।

भा० अनन्तरचोच्चका लक्षणा और गुरा । शिवा आँसे आकीर्ण खुद गहा
हुवा नीला सुरमें के समान उदक ॥ लताओं के फैलाव से ढका हुआ चोच्च्य ।
ऐसा कहा है ॥ ४६ ॥ और भाचार्य पण्यर आदि से बन्धे हुवे को चोच्च्य
ऐसा कहते हैं ॥ उसमें के जल को चोच्च्य ऐसा मुनियों ने कहा है ॥ ४७ ॥

चोच्च्य जल अग्नि को करने वाला रूखा कफ नाशक हलका ॥ मधुर पित्तनाश
करुचिको करने वाला पाचन विशद कहा है ॥ ४८ ॥ अनन्तर पल्लव लका ।
लक्षणा और गुरा ॥ प्रावरोभासमें छोटी गडई ॥ जो होती है उसमें पल्लव लक
हते हैं ॥ (क) कर्क राशि स्थसूर्य में अर्थात् प्रावरोभासमें । चन्द्रक्षे अ
र्थात् मृगशिर उमें हुवा यह मुख्य पाठ है । नहीं रहे तब जल कुछ भासों
का जल पाल्वल है ॥ गडई का जल अभिव्यन्दि भारी मधुर विदोष करने वा
ला है ॥ ४९ ॥ अनन्तर चिकिरके जल का लक्षणा और गुरा ॥

नद्यादि निकटे भूमिर्या भवे ह्यलु कामयी ॥ उद्भाव्यते

ततो यन्नुत्तज्जलं चिकिरं विदुः ॥ ५० ॥

चिकिरं शीतलं स्वच्छं निर्दीयं लघु च स्मृतम् ॥ तुवरं
स्वादु पित्तघ्नं क्षारं तप्य तलं मनाक् ॥ ५१ ॥

अथ कैदारस्य लक्षणां गुणां च ॥

कैदारं क्षौत्रमुद्दिष्टं कैदारं तज्जलं स्मृतम् ॥ कैदारं
वार्यं भिष्यन्दि मधुरं गुरु दीय कृत् ॥ ५२ ॥

अथ वृष्टिजलस्य लक्षणां गुणां च ॥

भा० नदी आदि के निकट जोरेत की जमीन होती है ॥ उससे जो जल निकल
ता है उस जलको चिकिर कहते हैं ॥ ५० ॥ चिकिर शीतलं स्वच्छ निर्दीय हलका
कहा है ॥ कसेला मधुर पित्त नाशक खारी और वोह थोड़ा पित्त को करने वाला
है ॥ ५१ ॥ अनन्तर कैदार का लक्षणा और गुणा । कैदार खेत को कहते हैं
और उसमें के जलको कैदार कहा है ॥ कैदार जल अभिष्यन्दि मधुर भारी दीय
को करने वाला है ॥ ५२ ॥ अनन्तर वारिश के जल का लक्षणा और गुणा ॥

वार्षिकं तद ह वृष्टं भूमिस्थ महितं जलम् ॥ त्रिशतमु
यितं तत्र प्रसन्न ममृ तो य ममृ ॥ ५३ ॥

अथ हे मन्नादि काल विरोधे विहित जल विशेषः ॥

हे मन्ने सार सन्नोयं ताड़ागं वा हितं स्मृतम् ॥ हे मन्ने
विहितं तोयं शिशिरेऽपि प्रशस्यते ॥ ५४ ॥ वसन्त
ग्रीष्मयोः कौषं वाप्यं वा नैर्भरं जलम् ॥ नादीयं वारि ना
दीयं वसन्त ग्रीष्मयोर्बुधैः ॥ ५५ ॥

भा० दिनका वरसा हुआ जमीन का जो जल है वोह वार्षिक है वोह अहित होता
है ॥ और तीन दिन का रखवा हुआ वोह स्वच्छ अमृत के समान होता है ॥ ५३ ॥
अनन्तर हे मन्नादि काल विरोध में विहित जल विशेष को कहते हैं ॥ हे मन्
न में सारस जल अथवा तालाब का हित कहा है ॥ हे मन्त में कहा हुआ जन

शिशिरमेंभी प्रशस्त है ॥ ५४ ॥ वसन्त ग्रीष्म में कुर्वे का वावड़ी का भरने का जल ॥ वसन्त और ग्रीष्म काल में नदी का जल न देवे ॥ ५५ ॥

विष्वक् नष्ट क्षाराणां पत्न्या द्वै दूयितं यतः ॥ औद्भिदं वा
नरीक्षं वा कौषं वा प्राच्येयि स्मृतम् ॥ ५६ ॥ शस्तं शरदि
नदियं नीरमं शूद्रकं परम् ॥ दिवारवि करै जुष्टं निशी
शीत करं शुधिः ॥ ५७ ॥ ज्ञेयं शूद्र कन्नाम स्निग्धं
दोय त्रया पहम् ॥ अन भिव्यन्दि निर्दोय आन्तरी
क्षं जलोपमम् ॥ ५८ ॥ वल्यं रसायनं मेध्यं शीतं त
द्यु सुधा समम् ॥ (क)

भा० कौषिक विष वाले वन वृक्षों के पत्र आदि से दूयित होता है ॥ औद्भिद आन्तरीक्ष कौष येह जल प्राच्य काल में कहे हैं ॥ ५६ ॥ शरद में नदी का और अंशुद्रक जल परम प्रशस्त है । दिन में सूर्य की किरणों से जुष्ट और रात में चन्द्र की किरणों से सेवित ॥ ५७ ॥ को अंशुद्रक नाम जानना चाहिये वोह चिकना दोयत्रय का नाशक है ॥ और अन भिव्यन्दि दोय रहित आन्तरीक्ष जल के समान होता है ॥ ५८ ॥ वल के हित रसायन मेध्य शीतल हल का अमृत के समान हो ता है ॥ (क)

रवि करै जुष्ट मित्युक्ते दिवापदं समस्त दिवसप्राप्त
र्थं शीत करं शुभिर्जुष्ट मित्युक्ते निशीथिपदं समस्त रा
त्रि प्राप्त र्थम् अन्यच्च शरदि, स्वच्छ मुदयाद ग
स्त्य स्याखिलं हितम् ॥ वृद्ध सुश्रुतस्तु ॥
पौषे वारि सरो जातं माघे ननु नडा गजम् ॥ फाल्गुने
कृप सम्भूतं दैवे चोद्भा हितं मतम् ॥ ५९ ॥

भा० सूर्य की किरणों से जुष्ट इस प्रकार के कहने से दिवा पद समस्त दिवस

की

प्राप्ति के अर्थ है ॥ चन्द्र किरणों से जुष्ट इस प्रकार के कहनें से रात्रि पद समस्त रात्रि प्राप्त्यर्थ है और भी । शरद में, स्वच्छ अगस्तिके उदय से संपूर्ण जल हित है ॥ दृढ सुश्रुतनें कहा है । चैत्र में सरो वर का पानी माघ में तालाव का पानी । ॥ फाल्गुण में कुंवे का पानी चैत्र में जौहड़ का पानी हित कहा है ॥ ५५ ॥

वैशाखे नैर्ऋतं नीरं ज्येष्ठे शास्तन्तथो द्विदम् ॥ आया
ढे शास्यते कौपं आवरणे दिव्य मेव च ॥ ६० ॥ भाद्रे कौ-
प्यं पयः शास्तम् आश्विने चौड्य मेव च ॥ कार्तिके
मार्गं शीर्ये च जलमात्रं प्रशास्यते ॥ ६१ ॥

जल ग्रहण कालः । भौमा नामम्भ साम्नायो ग्रहणं प्रा-
तरिष्यते ॥ शीतत्वं निर्मल त्वञ्च यतस्ते यां मनो गु-
णाः ॥ ६२ ॥ अथ जलस्य पान विधिः ॥

भा० वैशाख में ऋतनें का जल और ज्येष्ठ में औ द्विद प्रशास्त है ॥ आयाढ में कुंवे का और आवरण में आन्तरिक्ष प्रशास्त है ॥ ६० ॥ भाद्र पद में कुंवे का जल प्रशास्त होता है आश्विन में चौड्य ॥ और कार्तिक मार्ग शीर्ये में जल मात्र प्रशास्त है ॥ ६१ ॥ जल ग्रहण का काल ॥ प्रायः भूमि के जल का ग्रहण प्रातः काल प्रशास्त है ॥ क्योंकि शीतलता और निर्मलता उनका गुण है इस वास्ते ॥ ६२ ॥ अनन्तर जल पान की विधि ॥

अत्यस्तु पानान्न विपच्यते ऽन्नं निरस्तु पानाच्च स एव दो-
षः ॥ तस्मान्नरो वह्नि विवर्द्धनाय मुहुर्मुहुर्वीरि पिषेदभू-
रि ॥ ६३ ॥ अथ शीतल जल पानस्य विषयाः ॥

भूर्च्छां पित्तौष्णा दाहेषु विये रक्ते मदा त्यये ॥ अमे-
भ्रमे विदग्धे ऽन्ने तमके वमथो तथा ॥ ६४ ॥ उर्द्धगे र-
क्तपत्र च शीतमस्तु प्रशास्यते ॥

भा० अधिक जलके पीने से अन्न परि पाक नहीं होता और जलके पीने से बौ-
ही दोष होता है ॥ इस वास्ते मनुष्य अग्नि रुद्धि के अर्थ जल को बार बार पी-
वे ॥ ६३ ॥ अनन्तर शीतल जल पानका विषय : मूच्छी पित्त उष्णा दाह में ॥
और विषरक्त मदान्त्यय ॥ अमभ्रम विदग्ध अन्नत्रमक में तथा वमन में ॥
६४ ॥ ऊर्ध्वरक्त पित्त में भी शीतल जल प्रशस्त है ॥

अथ तन्निषेधः । पार्श्व शूले प्रति श्याये वातरोगे ग-
लग्रहे ॥ आधाने स्तिमिते कोष्ठे सद्यः शुद्धौ नवज्वरे
॥ ६५ ॥ अरुचि - ग्रहणी - गुल्म श्वास - कासेद्यु विद्रा-
धौ ॥ हिक्कायां स्नेह पाने च शीताम्बु परि वर्जयेत् ॥ ६६ ॥

अथा ल्यजल पानस्य विषयः

भा० अनन्तर उसका निषेध । पार्श्व शूल में प्रति उपाय में वातरोग में गन्त-
ग्रह में ॥ आधान मेस्तिमित कोष्ठ में सद्यः शुद्धि में नवज्वर में ॥ ६५ ॥ और ॥
अरुचिसंग्रह^म वायुगोला श्वास कास इनमें विद्राधि में हिचकी में स्नेह पान में,
भी शीतल जल त्याग देवे ॥ ६६ ॥ अनन्तर अल्पजल पानका विषय ॥

अरोचके प्रति श्याये मन्दे ऽग्नेौ श्वयथौ क्षये ॥ सुख
प्रसेके जठरे कुष्ठे नेत्रा मये ज्वरे ॥ ६७ ॥ व्रणोच मधु ।
मेहे च पिवेत्पानी य मल्प कम् ॥

जल पानस्यां वश्यक ता ॥

जीवनं जीविनां जीवो जगत्सर्वं न्तु तन्मयम् ॥ अतो ऽन्य
न्न निषेधेन कदा चिद्द्वारि वार्यते ॥ ६८ ॥ हारी तश्र ॥
हृद्या गरी यसी घोरा सद्यः प्राणा विना शिनी ॥

भा० अरुचि प्रति उपाय मन्दाग्नि सूजन क्षय ॥ सुख प्रसेक उदर रोग कुष्ठ नेत्र
रोग ज्वर ॥ ६७ ॥ व्रण में मधु प्रमेह में भी थोड़ा जल पीवे ॥ जल पानकी अवश्यक

ता ॥ जल प्राणियोंका प्राण है और संपूर्ण जगत तन्मय है ॥ इस वासे अत्यन्त नियेध में भी जल कदाचित भी विलकुल मना नहीं है ॥ ६८ ॥ हारीतने कहा है ॥ वड़ी तृषा घोर सद्यः प्राणको नाश करने वाली है ॥

तस्माद्देयं तृषा त्रयि पानीयं प्राणा धारणम् ॥ ६९ ॥

तृषितो मोहमायानि मोहात्प्राणान् विमुञ्चति ॥ अ

तः सर्वा स्ववस्था मुनक्चि द्वारि वर्जयेत् ॥ ७० ॥

अथ प्रदस्तं जलम् । अगन्धमव्यक्त रसं सुशीतं

तर्यनाशनम् ॥ अर्द्धं लघु च हृद्यञ्च तोयं गुणवत्

दुच्यते ॥ ७१ ॥ अथ निन्दितजलम् ॥

पिच्छिलं कृमिलं क्लिन्नं परां शैवालकर्मैः ॥ विव

र्णं विरसं सान्द्रं दुर्गन्धं निर्हितं जलम् ॥ ७२ ॥ कलु

यं क्लृप्तं मम्मोजपरां नीली तृणादिभिः ॥

भा० इस वासे तृषा के पीड़ित के अर्थ जल प्राण धारण है ॥ ६९ ॥ घासामोहको प्राप्त होता है मोहसे प्राणोंको छोड़ देता है ॥ इस वासे सब अवस्था में कहीं पर जलको न त्याग देवे ॥ ७० ॥ अनन्तर प्रदस्त जल ॥ गन्ध रहित अव्यक्त रस अच्छा शीतल तृषाका नाशक ॥ स्वच्छ हलका और हृद्य ऐसा जल अच्छा कहा है ॥ ७१ ॥ अनन्तर निन्दित जल ॥ पिच्छिल कृमि युक्त और पत्रा से बालकी चड़ इनसे सड़ा हुआ ॥ विवर्ण विरस गदला दुर्गन्ध युक्त रखा हुआ जल ॥ ७२ ॥ काला और कमल पत्ते नील तृणा आदियोंसे ढका हुआ ॥

दुःस्पर्शनमसंस्पृष्टं सौरचान्द्रमरीचिभिः ॥ ७३ ॥

अनार्त्तवैवार्यिकन्तु प्रथमं तच्च भूमिगम् ॥ व्यापन्नं प

रिहर्त्तव्यं सर्वदोषप्रकोपराम् ॥ ७४ ॥ तत्कुर्यात्

स्नानपानाभ्यां तृषणाध्मानचिरज्वरान् ॥

भा० दुःस्पर्श और सूर्य तथा चान्द की किरणों में स्पर्श किया गया ॥७३॥ दे
श्वतु का वारिश का पहिला और वोह जमीन परका ॥ व्यापन्न जल त्यागनें ।
योग्य सब दोषों को प्रकोप करनें वाला है ॥७४॥ वोह स्नान और पान से नृषा ।
आध्मान पुराना ज्वर इन को करता है ॥

कासाग्नि मान्द्या भिष्यन्दक एडु गरडा दिकं तथा ॥७५॥

अथ दुग्ध जलस्य निर्दोषी करणो पायः ॥ ॥

निन्दि तन्वापि पानीयं क्वथितं सूर्यतापितम् ॥ सुव

र्ण रजतं लौहं पाषाणं सिकता मयि ॥ ७६ ॥ मृशं स

न्नाय्य निर्वाप्य सप्तधा साधितं तथा ॥ कर्पूर जाति पु

न्नाग पाटलादि सुवा सितम् ॥ ७७ ॥ शुचि सान्द्र यट

आदि शुद्ध जन्तु विवर्जितम् ॥

भा० और कास अग्नि मान्द्य भिष्यन्द कंडू तथा गंडाटिक इनको करता है ॥
७५ ॥ अनंतर दुग्ध जल को निर्दोष करनें का उपाय ॥ निन्दि तभी जल और पाटु
वा और सूर्य के द्वारा गरम हुवा ॥ तथा सोना चान्दि लोहा यथ्यर और सिकता ।
मी इनको ॥७६॥ खूब गरम करके सात बार बुझा कर तथा सिद्ध किया हुवा और
कर्पूर चमेली सुफेद कमल और पाटला आदि से सुवासित ॥७७॥ पवित्र सा
न्द छनाहुवा क्षुद्र जन्तु से रहित ॥

स्वच्छं कनक मुक्ता चैः शुद्धं स्यादोष वर्जितम् ॥ ७८ ॥

पर्णमूल इविय ग्रन्थि मुक्ता कनक धौवलैः ॥ गोमे देन च

वस्त्रेण कुर्ष्या वम्बु प्रसादनम् ॥७९॥

अथ पीतस्य जलस्य पाक विधिः ।

पीतं जलं जीर्यति यामयुग्मा त्रयामै क मात्वात् शृत शी

तल्लज्ज ॥ तद्दूर्द्ध मात्रेण शृतं कद्रुया पयः प्रपाके त्र

य एव कालाः ॥ ८० ॥

इति श्री भावप्रकाशे वारिवर्गः।

भा० स्वच्छ सोना मोती आदिसे शुद्ध दौब वर्जित होताहै ॥ पत्ते मूल वियगोठ मोती सोना से बाल इनसे ॥ और गोमेद तथा वस्त्र से जलको स्वच्छ करे ॥ ७५ ॥ अनन्तर पीये हुवे जल की पाक विधि । पीया हुवा जल दो पहर में पकताहै और औटाके शीतल किया हुवा एक पहर में पचताहै ॥ उसके ऊपर आँटे मात्र से जल कटु उष्ण होताहै जल के पाक में तीन ही कालहै ॥ ८० ॥

इति भावप्रकाशे जल वर्गः ॥ ॥

अथ दुग्धवर्गः।

दुग्धस्य नामगुणाः।

दुग्धं क्षीरं पयः स्तन्यं बालजीवनमित्यपि ॥ दुग्धं सुमधुरं स्निग्धं वातपित्तहरं सरम् ॥ १ ॥ सद्यः शुक्रकरं शीतं सात्न्यं सर्वशरीरिणाम् ॥ जीवनं वृंहणं बल्यं मेधं वाजिकरं परम् ॥ २ ॥

भा० अनन्तर दुग्धवर्गः ॥ दुग्धके नाम और गुणा ॥ दुग्ध क्षीर पयः स्तन्य बालजीवन येह दूधके नाम है ॥ दूध मधुर चिकना वात पित्त का नाशक । सर ॥ १ ॥ तत्काल शुक्र को करने वाला शीतल सब प्राणियोंको सात्न्य होताहै ॥ जीवन पुष्ट बलको करने वाला परम वाजि कर ॥ २ ॥

वयः स्थापनमायुष्यं सन्धिकारि रसायनम् ॥ विरेकवान्तिवस्तीनां तुल्यमोजोविवर्द्धनम् ॥ ३ ॥ जीर्णज्वरे मनो रोगे शोथमूर्च्छान्त्रमेधुच ॥

ग्रहरायां पाण्डु रोगे च दाहे नृयि हृदा मये ॥४॥ शूलो
दावर्त्त गुल्मे यु वस्ति रोगे गुदाङ्कुरे ॥ रक्त पित्तेऽति
सारि च योनि रोगे श्रमे क्लमे ॥५॥ गर्भ स्त्रावे च सततं
हितं मुनि वरैः स्मृतम् ॥ बाल वृद्ध क्षत क्षीणाः क्षुब्ध
व्यवाय कृशाश्च ये ॥६॥ तेभ्यः सदा ति प्रायितं हित
मेत दुहा हृतम् ॥ अथ गोदुग्धस्य गुणाः ॥

भा० वयः स्थापन आयुको करने वाला सन्धिकारि स्थापन है ॥ और विरेक
वमन वस्ति इनको तुल्य ओजको बहाने वाला ॥३॥ जीर्ण ज्वर मान सिकरे
ग शोथ मूर्च्छा श्रम इनमें भी ॥ और ग्रहणी पाण्डु रोग दाह और तृषा इनमें त
था हृद रोगमें ॥४॥ शूल वदावर्त्त गुल्म इनमें वस्ति रोगमें गुदाङ्कुरमें रक्त
पित्त में अति सार में योनि रोगमें श्रममें क्लम में ॥५॥ गर्भ स्त्राव में भी हित है
सा मुनि वरों ने कहा है ॥ बाल वृद्ध क्षत क्षीणा क्षुब्धा मेषुन इनसे जो कृशा है
॥६॥ उनको सदा अति प्राय करके यह हित कहा है ॥ अनन्तर गो दुग्ध का गुणा ॥

गव्यं दुग्धं विशेषेण मधुरं रस पाकयोः ॥ शीतलं स्तन्य कृ
न् स्निग्धं वात पित्तासनाशनम् ॥७॥ दोष धातु मलसो
तः किञ्चित् क्लेद करं गुरु ॥ ज्वरा समस्त रोगाणां प्रा
न्ति कृत् सैवि नां सदा ॥८॥ श्वर्या विशेषेण गुणा विशेषाः ॥
कृष्या वा गोर्भवदुग्धं वात हारि गुणाधिकम् ॥ पीता
या हरते पित्तं तथा वात हरं भवेत् ॥९॥ प्रलेखनं गुरु ॥
शुक्लाया रक्त चित्रा च वात हृत ॥

भा० गाय का दूध विशेष करके रस पाक में मधुर कहा है ॥ और शीतल दुग्ध
को करने वाला चिकना वात रक्त पित्त इनका नाशक है ॥७॥ दोष धातु मलसो
त किञ्चित् क्लेद को करने वाला भारी ॥ सदा सेवन करने वालों के ज्वर और रस-

स्त रोगों की शान्ति करने वाला है ॥ ८ ॥ अनन्तर वर्ण विशेष में गुण विशेष को कहते हैं ॥ काली गाय का दूध वात नाशक गुण में अधिक है ॥ पीली का दूध पित्त को नाश करता है तथा वात हर भी है ॥ ९ ॥ सुफेद गाय का दूध कफ कारि भारी और लाल चित कबरी का भी वात नाशक होता है ॥

अथ धेनो विवत्सा याश्च गुणाः।

बालवत्स विवत्सानां गवां दुग्धं त्रिदोष कृत् ॥

वके नीगो गुणाः। वक्क पिण्या स्त्रि दो यंघ्नं तर्पणं व-

ल कृत् पयः ॥ अथ देश विशेषेण गुण विशेषः ॥

जाङ्गलो नू पशौलेषु चरन्तीनां यथो त्तरम् ॥ यथो गुरु

तरं स्रैहो यथा हारं प्रवर्तते ॥ १० ॥

अथा हार विशेषे गुण विशेषः ॥

भा० वेवच्चे वाली गायके दूध का गुण ॥ छोटे वच्चे वाली और वे वच्चे वाली गायों का दूध त्रिदोष को करने वाला है ॥ वके नी गायके दूध का गुण ॥ वके नी का त्रिदोष नाशक तर्पण बल को करने वाला दूध होता है ॥ अनन्तर देश विशेष करके गुण विशेष को कहते हैं ॥ जाङ्गल आनूप पहाड़ इनमें चरने वालीयों का दूध यथो त्तर ॥ बहुत भारी होता है और छत आहार के अनुसार निकलता है ॥ १० ॥ अनन्तर आहार विशेष में गुण विशेष ॥

खल्पान्न मक्षणा ज्ञानं क्षीरं गुरु कफ प्रदम् ॥ तत्तु ब

ल्यं परं वृष्यं स्वस्थानां गुणा दाय कम् ॥ ११ ॥ पला-

ल नृणा कापसि बीज जातं गुरौ हितम् ॥

अथ माहिषी दुग्धस्य गुणाः।

माहियं मधुरङ्गं व्यात् स्निग्धं शुक्र करं गुरु ॥ निद्रा

करम् भिव्यन्दि क्षुधा धिक्य करं हिमम् ॥ १२ ॥

भा० स्वल्प अन्न भक्षण से हुवा क्षीर भारी कफ को करने वाला होता है ॥ वीह
 वल के हित अत्यन्त शुक्र को करने वाला और स्वस्थों को गुण देने वाला है ॥ ११ ॥
 खल घास कपास के बीज इनके खाने से हुवा दूध गुण करके हित होता है ॥
 अनन्तर भैंस के दूध का गुण । भैंस का दूध मधुर गायके से चिकना शुक्र को
 करने वाला भारी ॥ निद्रा को करने वाला अभिव्यन्दि अधिक शुधाको करने
 वाला शीतल ॥ १२ ॥

छागी दुग्धस्य गुणाः ।

छागं कषायं मधुरं पीतं ग्रहि तथा लघु ॥ रक्त पित्ताति
 सारङ्ग क्षय कास ज्वरा पहमू ॥ १३ ॥ अजाना मल्प
 काय त्वान् कटु तिक्त निवे वरान् ॥ स्तीकाम्बु पाना
 द्या मान् सर्व रोगा पहं पयः ॥ १४ ॥

मृगादि दुग्धस्य गुणाः

मृगीनां जाङ्ग लोत्थ्या नाम् अजा क्षीर गुणं पयः ॥
 भेडी दुग्ध गुणाः । आविकं लवणं स्वादु रिन्मधो घ्ना
 ज्वा प्रसरी प्ररगुत् ॥ १५ ॥ अहृद्यं तर्पणं वृथ्यं शुक्र
 पित्र कफ प्रदम् ॥ गुरु कासेऽ निलोद् भूते केवले चा
 निले वरम् ॥ १६ ॥ अथ घोड़ी दुग्धं ॥

भा० अनन्तर बकरी के दूध का गुण ॥ बकरी का दूध कसेला मधुर शीतल &
 काविज तथा हलका होता है ॥ और रक्त पित्त अतीसार इनका नाशक क्षय
 कास ज्वर इनका नाशक है ॥ १३ ॥ बकरियों का छोटा शरीर होने से और क
 टु तिक्त के सेवन से ॥ थोडा जल पीने से कसरत से उसका दूध सर्वरोग का
 नाशक है ॥ १४ ॥ अनन्तर मृग आदियों के दुग्ध का गुण ॥ जंगल के मृगो
 का दूध बकरी के दूध के समान गुणमें होता है ॥ अनन्तर भेडी के दूध का
 गुण ॥ भेडी का दूध नमकीन मधुर चिकना गरम और पथरी का नाशक है ॥ १५
 अहृद्य तर्पणं वृथ्यं शुक्र पित्र कफ इनको करने वाला ॥ भारी होता है और खान

के कास में ^{और} केवल वात में श्रेष्ठ है ॥ १६ ॥ अनन्तर घोड़ी का दूध ॥
 रूक्षो व्यां वड वा क्षीरं बल्यं शीथो निला यहम् ॥
 अस्लं पटु लघु स्वादु सर्व मेक शफं तथा ॥ १७ ॥
 अथ उष्ट्री दुग्धं । औष्ट्रं दुग्धं लघु स्वादु लवणं दीप
 नं तथा ॥ कृमि कुष्ठ कफा नाह शीथो दर हरं सरम् ॥
 १८ ॥ हस्तिनी दुग्धं ॥ वृंहणं हस्तिनी दुग्धं मधुरन्तुव
 रं गुरु ॥ वृष्यं बल्यं हिमं स्निग्धं चक्षुष्यं स्थिरता क
 रम् ॥ १९ ॥ अथ नारी दुग्धं ॥

भा० घोड़ी का दूध रूखा गरम बलके हित शीथ वात का नाशक ॥ खट्टा ल
 वण हलका मधुर वैसे ही सब एक शफ वालों का होता है ॥ १७ ॥ अनन्तर ऊँ
 टनी का दूध ॥ ऊँटनी का दूध हलका मधुर लवण तथा दीपन ॥ और कृ
 मिकुष्ठ कफ अफारा सूजन उदर रोग इनका नाशक सर होता है ॥ १८ ॥
 अनन्तर हथनी का दूध ॥ हथनी का दूध मधुर कसेला भारी ॥ शुक्र को क
 रने वाला बलके हित शीतल चिकना नेत्र के हित स्थिरता को करने वाला हो
 ता है ॥ १९ ॥ अनन्तर स्त्री दुग्ध ॥

नार्थ्या लघु पयः शीतं दीपनं वात पित्त जित् ॥ चक्षुः
 शूलाभि घातघ्नं नस्या श्रयोतन यो वरम् ॥ २० ॥

अथा धारो व्यादिगुराः

धारो व्यां गोपयो बल्यं लघु शीतं सुधा समम् ॥ दी
 पनञ्च त्रिदोषघ्नं तद्धार शिशिरं त्यजेत् ॥ २१ ॥

भा० स्त्री का दूध हलका शीतल दीपन वात पित्त को जीतने वाला ॥ नेत्र शूल
 अभिघात इनका नाशक और नस्य आश्रयोतन में श्रेष्ठ है ॥ २० ॥ अनन्तर धा
 रो व्या आदिका गुरा ॥ धारो व्या गायका दूध बलके हित हलका शीतल

अमृत के समान होताहै ॥ और दीपन त्रिदोष नाशको होताहै ॥ और वो
हृद्भाग शिशिर न सेवन करे ॥ २१ ॥

धागेयं शास्यते गव्यं धारा शीतन्तु माहि वमू ॥ शृतो
शा माविकं पथ्यं शृत शीत मजा पयः ॥ २२ ॥ आ
मं क्षीरं मभि व्यन्दि गुरु प्लेष्मा म वर्द्ध नमू ॥ ज्ञेयं
सर्व नपथ्यन्तु गव्य माहिय वर्जितम् ॥ २३ ॥ नारी क्षी
रन्त्राम नैव हितं न तु शृतं हितम् ॥ शृतोप्यां कफ
वातघ्नं शृतं शीतन्तु पित्तनुत् ॥ २४ ॥ अर्द्धे दकं ।
क्षीर शिशु मा मा ल्लघु तरं पयः ॥

भा० धारोष्ण गव्यका हित होताहै और धारा शीत भैंस का अच्छा होताहै ॥
औरया हुवा गरम भेड़ी का और औरया हुवा शीतल बकरी का दूध हित हो
ताहै ॥ २२ ॥ कच्चा दूध अभि व्यन्दि मारी कफ आग को बढ़ाने वाला होताहै ॥ गा
य और भैंस का दूध छोडके सब अहित है ॥ २३ ॥ रबी का दूध कच्चा ही हितहै
नकि औरया हुवा हितहै ॥ और गरम कफ वात का नाशक और और शीतल
पित्त नाशक है ॥ २४ ॥ आधा पानी मिला के बाकी बचा हुवा दूध कच्चे से बहुरा
हलका होताहै ॥

जलेन रहितं दुग्धमति पक्वं यथा यथा ॥ २५ ॥

तथातथा गुरु स्निग्धं दृष्यं वल विवर्द्ध नमू ॥

अथ पीयूष किलाट क्षीर शाकः तक्र पिरड मोर
दानां लक्षणाणि गुराणां च ॥

क्षीरं तत्काल सूताया घनषे यूय मुच्यते ॥

पेयूयं पेवस इति लोके ।

नष्ट दुग्धस्य पक्वस्य पिरडः प्रोक्तः किलाट कः ।

किलाटकः गिजिरी इति लोके ।

अपक्वमेव यन्नष्टं क्षीरशाकं हि तत्पयः ।

क्षीरशाकं तुषिभरा इति लोके ।

दध्ना तक्रेणा वा नष्टं दुग्धं बद्धं सुवा ससा ॥ द्रवभा

वेन सहितं तक्रपिण्डः सु उच्यते ॥ २६ ॥ नष्टदु-

ग्धं भवन्तीरं मोरदञ्जे ज्जटो ऽत्र वीत् ॥

भा० जलसे रहित दूध जैसे २ बहुत औंटाया हुआ ॥ २५ ॥ वैसे २ भारी चिकना पुक्रको करने वाला बलको बढ़ाने वाला होता है ॥ अनन्तर पीयूष किलाट क्षीरशाक तक्र पिण्ड मोरद इनके लक्षण और गुण ॥ तत् काल वच्चा दी हुई गाय के दूधको पीयूष कहते हैं ॥ लोकमें पेवसकहते हैं ॥ दूधके पिंडको किलाटक कहा है ॥ किलाट गिजरी इस प्रकार लोकमें कहते हैं ॥ कच्चा ही जो फटा हुआ दूध है उसको क्षीरशाक कहते हैं ॥ इसको लोकमें तुषिभरा कहते हैं ॥ दही अथवा मठे से फटे हुवे दूधको अच्छे कपडे से बान्ध कर ॥ उस द्रव भावके सहितको तक्रपिंड कहते हैं ॥ २६ ॥ फटे हुवे दूधके पानीको मोरद जेज्जट नें कहा है ॥

पेयूषञ्च किलाटश्च क्षीरशाकं तथैव च ॥ २७ ॥

तक्रपिण्ड इमे वृष्या वृंहणा बलवर्द्धनाः ॥ गुरवः

प्लेखला हृद्या वातपित्तविनाशनाः ॥ २८ ॥ दीप्या

ग्नीनां विनिद्राणां विद्रधो चाभिपूजिताः ॥ सुखशो

षवृष्या दाहरक्तपित्तज्वरप्रणुत् ॥ २९ ॥

भा० पेयूष किलाट क्षीरशाक ॥ २७ ॥ और तक्रपिण्ड येह वृष्य पुष्ट बलको बढ़ाने वाले ॥ भारी कफको करने वाले हृद्य वातपित्तके नाशक हैं ॥ २८ ॥ और दीप्या गिनियोंको वे नीन्द वालोंको और विद्रधिमें प्रेष्ट है ॥ और सुखशोष वृष्या दाहरक्तपित्तज्वर इनका नाशक है ॥ २९ ॥

लघुर्वलकरो रुच्यो मोरटः स्यात्सिता युतः ॥ सन्ता
निकागुणाः । सन्ता निकासाठी ।

सन्तानिकागुरुः शीता वृष्या पित्त स्ववात तुत् ॥ तर्प
णी वृंहणी मिग्धा बला सवल शुक्रला ॥ ३० ॥

अथ खण्डादि युक्तदुग्धगुणाः ॥ ॥

खण्डेन सहितं दुग्धं कफ छेत् पक्व पद्म ॥ सिता
सितो पला युक्तं शुक्रलं विमला पद्म ॥ ३१ ॥ रघु
ढं मूत्र कृच्छ्रं पित्तं प्लेखं करं परम ॥

भा० चीनी के सहित मोरट हलका वल कर रुचि को करने वाला है ॥ मला
ई के गुणा । मलाई भारी शीतल शुक्रको करने वाली रक्त पित्त वात इनको
नाश करने वाली ॥ तर्पणा पुष्ट चिकनी और कफ कवल युक्त इनको करने वा
ली है ॥ ३० ॥ अनन्तर खण्ड आदि से युक्त दुग्धका गुणा ॥ खण्ड के सहित दु
ग्धकफको करने वाला वातनाशक होता है ॥ चीनी और मिर्ची के युक्त शुक्र को
करने वाला विदोष का नाशक है ॥ ३१ ॥ गुडके सहित मूत्र कृच्छ्रका नाश
क और परम पित्त कफ को करने वाला है ॥

अथ प्रभातादि भव दुग्धगुणाः ॥

रात्रौ चन्द्रगुणा धिक्वाद् व्यायामा करणा त्रया ॥
प्रभातिकं तदा प्रायः प्रादोषाद् गुरु शीतलम् ॥ ३२ ॥
दिवाकरकरा घाताद् व्यायामानल सेवनात् ॥ प्रभा
तिकात्तु प्रादोषं लघु वात कफा पद्म ॥ ३३ ॥

भा० अनन्तर प्रभातादि भव दुग्ध के गुणा ॥ रात्रि में चन्द्र गुण की अधिकता
से तथा व्यायाम करने से ॥ सवेर का दूध प्रायः सार्ध काल के से भारी शी
तल होता है ॥ ३२ ॥ सूर्य की किरणों के आघात से और व्यायाम आदि ।

इनके सेवन से ॥ सवेरे कैसे त्रयाम का हलका वात कफ का नाशक होता है ॥

३३॥

अथ दुग्ध सेवन समय विशेष्ये गुणा आह ॥

दृष्यं वृंहणमग्नि दीपन करं पूर्वाह्न काले पयो ॥ म-

ध्याह्नं तु बला वहं कफ हरं पित्रा पहं दीपनम् ॥ ३४॥

वाले वृद्धि करं क्षये क्षय करं वृद्धेयु रेतो वहम् ॥ रात्रौ

पथ्य मनेक दोय शमनं क्षीरं सदा सेव्यते ॥ ३५॥

भा० अनन्तर दुग्ध सेवन समय में गुण विशेष्य को कहते हैं ॥ पहिले पहर में पीया हुआ दूध शुक्र को करने वाला पुष्ट अग्नि को दीपन करने वाला ॥ और मध्याह्न में बल करने वाला कफ नाशक पित्त नाशक दीपन होता है ॥ ३४॥ बाल अवस्था में वृद्धि करने वाला क्षय गं क्षय कर वृद्ध अवस्थामें शुक्र को करने वाला और रातमें हित अनेक दोयों को शमन करने वाला । दूध है इस बातें सदा सेवन किया जाता है ॥ ३५॥

वदन्ति पयं निशि केवलं पयो भोज्यं न तेनेह सहो दना

दिकम् ॥ मवन्य जीर्णो निशि पीत शर्करा क्षीरात्यपानस्य

तु शेष मत्सृजेत् ॥ ३६॥ विदाही न्यन्य पानानि दिवा ।

मुद्धे हि यन्नरः ॥ तद्वि दाह प्रशान्त्यर्थं रात्रौ क्षीरं सदा

पिवेत् ॥ ३७॥ दीप्तानले कृशे पुंसि वात वृद्धे पयः प्रि

ये ॥ मतं हित तमं पथ्यं सद्यः शुक्र करं यतः ॥ ३८॥

अथ मथि तस्य दुग्धस्य गुणाः ।

भा० कहते हैं कि रातमें केवल दूध पीना चाहिये उसके साथ चावल आदि कनखाने चाहिये ॥ अजीर्ण के होने में रातमें छोड़ा दूध शर्करा पीने वाले के । चोफी सब निकल जाता है ॥ ३६॥ जिस से मनुष्य विदाहि अन्न पानदिन में भोजन करता है ॥ उस कारण विदाह प्रशान्ति के अर्थ रातमें दूध को सदा पी

वे ॥ ३७ ॥ दीप्राग्नि कृश वात वृद्धि और दुग्ध म्रिय रोसे पुरुष की ॥ बहुत हि
त और पच्य है क्योंकि तत् काल शुक्र को करता है ॥ ३८ ॥

अनन्तर मधे हुवे दूधका गुण ॥

क्षीरं गव्य मघा जम्वा कोयं दग्डा हतं पिबेत् ॥ ल
घु वृष्यं ज्वर हरं वात पित्त कफा पहसू ॥ ३९ ॥

अथ गोज गुणा ॥

गो दुग्ध प्रभवं किंवा छागी दुग्ध समुद्भवम् ॥ भवे दे
तत् विदो यष्टं रोचनं बल वर्द्धनम् ॥ ४० ॥

भा० गायका अथवा बकरी का कुच्छ गरम मधे हुवे को पीवे ॥ और हलका
शुक्र को करने वाला ज्वर नाशक वात पित्त कफ का नाशक है ॥ ३९ ॥

गो दुग्ध से उत्पन्न हुवा अथवा बकरी के दूधसे हुवा ॥ विदोय नाशक रोचन
बल को बढ़ाने वाला ॥ ४० ॥

बन्धि वृद्धि करं वृष्यं सद्य स्तुप्ति करं लघुः ॥ अती
सारः गिन मान्द्ये च ज्वरे जीर्णे प्रणस्यते ॥ ४१ ॥ निन्दि
तं दुग्धं । विवर्णं विरसं चाम्लं दुर्गन्धं ग्रथितं पयः ॥ व
र्जये दम्ल लवणा युक्तं बुद्ध्यादि हृद्यतः ॥ ४२ ॥

इति श्री भाव प्रकाशे दुग्ध वर्गः ॥

भा० अग्नि को करने वाला शुक्र को करने वाला तत्काल वृद्धि को करने वाला
हलका होता है ॥ और अतीसार अग्नि मान्द्य तथा जीर्ण ज्वर इनमें प्रणाल है ॥

॥ ४१ ॥ निन्दित दुग्ध ॥ विवर्ण विरस खट्टा दुर्गन्ध और गहील रोसा दूध ॥ त्या
ग देवे क्योंकि अम्ल लवणा युक्त बुद्धि आदि का नाशक कहा है ॥ ४२ ॥

इति भाव प्रकाश में दुग्ध वर्गः ॥

तत्र दध्नी गुणाः

दध्नुषां दीपनं स्निग्धं कषयाया नुरसं गुरु ॥ पाकेऽम्लं
 त्वास्त्रं पित्रा स्व शोथ भेदः कफ मन्दम् ॥ १ ॥ सूत्र कृ
 च्छे प्रति प्रयाये शीतगे वियम ज्वरे ॥ अती सारिः अरुचौ
 कार्पेय्ये प्रस्यते बल शुक्र कृत् ॥ २ ॥

भा० उस्मे दही के गुण ॥ दही उष्ण दीपन चिकना पीछे से कसेला भारी ॥
 पाकमें अम्ल त्वास्त्र रक्त पित्त शोथ भेद कफ इनको करने वाला है ॥ १ ॥
 सूत्र कृच्छ्रे में प्रति प्रयाय में शीत वाले वियम ज्वर में ॥ अती सार में अरुचि
 में कृशता में प्रशस्त है बल शुक्र को करने वाला है ॥ २ ॥

अथ दधि भेदः । आदौ मन्दं ततः स्वादु स्वादु म्लज्व
 ततः परम् ॥ अम्ल ज्व तुर्य मत्यम्लं पञ्चमं दधि पञ्च
 धा ॥ ३ ॥ अथ मन्दादीनामूलक्षणां गुणाश्च ॥
 मन्दं दुग्धं यद्व्यक्तं रसं किञ्चि ह्वनं भवेत् ॥ मन्दं
 स्यात् सृष्ट विरमूत्र दोष तय विदाह कृत् ॥ ४ ॥ य-
 त्सम्यग् घनतां यातं व्यक्तस्वादु रसं भवेत् ॥ अव्यक्ता
 म्ल रसं तत्रु स्वादु विज्ञै रुदा हृतम् ॥ ५ ॥

भा० अनन्तर दही का भेद ॥ पहिले मन्द उसके अनन्तर मधुर और उसके
 बाद खट मीठा ॥ चौथा खट तथा पांच वा बहुत खट्टा रोसे दही पांच प्रकार
 का होता है ॥ ३ ॥ अनन्तर मन्दादियों के लक्षणा और गुण ॥ मन्द दुग्ध जो अ
 व्यक्त रस और कुरु गाढ़ा होता है ॥ मन्द म्ल सूत्र को करने वाला विदोष तथा
 विदाह इनको करने वाला है ॥ ४ ॥ जो अच्छी तरह गाढ़ी हो जाती है और व्यक्त
 स्वादुरस जिसमें होता है उसको बुधि वानों ने मधुर कहा है ॥ ५ ॥

स्वादु स्या दत्य भिव्यन्दि वृथ्यं मेदः कफा वहसू ॥ वा
 तं मधुरं पाके रक्त पित्त प्रसा द नसू ॥ ६ ॥ स्वा ह
 म्ल सान्द्रं मधुरं कयाया नु रसं भवेत् ॥ स्वाह म्लस्य
 गुणा ज्ञेया सामान्य दधि वर्जनैः ॥ ७ ॥ यत्ति रोहि त
 माधुर्यं व्यक्ता म्लत्वं तद म्लकसू ॥ अम्लनु दीपनं
 पित्त रक्त श्लेष्म विवर्द्धनसू ॥ ८ ॥

भा० मधुर अति अभिव्यन्दि होताहै शुक्र को करने वाला और मेदकफ को ।
 करने वाला ॥ वात नाशक पाक में मधुर रक्त पित्त को अच्छा करने वाला हो
 ताहै ॥ ६ ॥ मीठा खट्टा सान्द्र मधुर पीछेसे कसेला होताहै ॥ सामान्य दही
 के त्याग करके मीठे खट्टे का गुण जानना चाहिये ॥ ७ ॥ जो मधुर ता दकी
 है और जिसमें क्षम्ल ता व्यक्त है वोह खट्टा है ॥ खट्टा दीपन रक्त पित्त कफ इ
 नको बढ़ाने वाला ॥ ८ ॥

तद त्यम्लं दन्त रोम हर्यं कण्ठ आदि दाह क्तू ॥ अन्य
 म्लं दीपनं रक्त वात पित्त करं परसू ॥ ९ ॥ गो दधि गु-
 णाः । गव्यं दधि विशेषेण स्वाहम्लञ्च रुचि प्रदसू ॥
 पवित्रं दीपनं हृद्यं पुष्टि क्तू पवना पहसू ॥ १० ॥ उक्तं
 दध्ना मशो याराणां मध्ये गव्यं गुणा अधिकसू ॥

भा० वोह बहुत खट्टा दांत रोम हर्यं कंठ आदि का दाह करने वाला है
 ॥ बहुत खट्टा दीपन रक्त वात पित्त इनको करने वाला है ॥ ९ ॥ गायके दही
 का गुण ॥ गायका दही विशेष करके मधुर अम्ल रुचि को करने वाला
 ॥ पवित्र दीपन हृद्य पुष्टि को करने वाला वातका नाशक होताहै ॥ १० ॥ स
 व दही थों के बीचमें गायका दही गुण में अधिक कहा है ॥

माहिय दधिगुणाः ।

माहिं दधि सुस्निग्धं प्लेख्यं लं वात पित्तदुग्ध ॥ स्वा-

दुपाकमभिव्यन्दि वृष्यं गुर्वं च दूयकम् ॥ ११ ॥

छापी दधि गुणाः । आजन्द् द्युत्तमं ग्राहिलघु दोष-

त्रया पहसू ॥ शस्यते श्वास का सा र्शः क्षय कार्शेषु

दीपनम् ॥ १२ ॥ पक्व दुग्ध दधि गुणाः ॥

पक्वं दुग्ध भवं रुच्यं दधि स्निग्ध गुणोत्तमं ॥ पित्ता-

निला यहं सर्व धात्वग्नि बल वर्द्धनम् ॥ १३ ॥

निःसार दुग्ध दधि गुणाः ।

भा० भैंस की दही का गुण ॥ भैंसकी दही बहुत चिकनी कफ को करने वाली वात पित्त की नाशक ॥ पाकमें मधुर अभिव्यन्दि शुक्र को करने वाली भारी रक्त दूयक होती है ॥ ११ ॥ चकरीके दही का गुण ॥ चकरी का दही बहुत उत्तम का- विज हलका तीनों दोषों का नाशक है ॥ और श्वास कास बवासीर क्षय कार्श इ- नमें प्रशस्त है तथा दीपन होता है ॥ १२ ॥ औदाय्य हवे दूध के दही का गुण पके हुवे दूध की वही रुचि को करने वाली चिकनी गुण में अच्छी ॥ पित्त वा त की नाशक और सब धातु अग्नि बल इनको बढाने वाली है ॥ १३ ॥

निःसार दूधके दही का गुणः ॥

असारं दधि सङ् ग्राहि शीतलं वातलं लघु ॥ विष्ट

भि दीपनं रुच्यं ग्रहणी रोग नाशनम् ॥ १४ ॥

वायी दधि गुणाः । गालितं दधि सुस्निग्धं वातघ्नं

कफ हृद् गुरु ॥ बल पुष्टि करं रुच्यं मधुरं नाति पि

त्रहत् ॥ १५ ॥ शर्करादि सहित दधि गुणाः ॥

भा० असार दही का विज शीतल वात को करने वाली हलकी ॥ विष्टभि दीपन रुचि को करने वाली ग्रहणी रोग की नाशक है ॥ १४ ॥

निचोड़ी हुई दही का गुण । निचोड़ी दही बहुत चिकनी वात नाशक कफ को करने वाली भारी ॥ दल पुष्टि को करने वाली रुचि कर मधुर और अति पित्र करने वाली है ॥ १५ ॥ शर्करा के सहित दही का गुण ॥

सशर्करं दधि श्रेष्ठं तृषणा पित्रा स्वदा ह जित् ॥ सगु
डं वात नुह्यं चंहरां तर्परां गुरु ॥ १६ ॥

अथ रातौ दधि भोजन निवेधः ॥

न नक्तं दधि भुञ्जीत नचाप्य घृत शर्करम् ॥ नामुद्ग
सूपं नाक्षौद्रं नोष्या नामल कै विना ॥ अथ मर्थः ॥

भा० शर्करा के सहित दही श्रेष्ठ तृषा रक्त पित्त दाह इनको जीतने वाली है ॥ और गुड के सहित वात नाशक शुक्र को करने वाली पुष्ट तर्परा भारी होती है ॥ १७ ॥ अनन्तर रात में दधि भोजन का निवेध ॥ रात में दही नखावे और विनाश कर घृत के भी नखावे ॥ तथा विना मूद्ग की दाल के और विना मधु के भी नखावे और नगरम न और लोके विना नखावे ॥ यह अर्थ है कि ।

रातौ दधिन भुञ्जीत भुञ्जीत चैत्र दा अघृत शर्कर
नामुद्ग सूपं क्षौद्र मुख्यां विना मल कै प्र दधिन भु-
ञ्जीत । तेन घृत शर्करा दि युक्तं दधि रात्रा वयि भु-
ञ्जीते त्वर्थः । तथा च । शस्यते दधिनो रातौ शस्य
चाम्बु घृता न्वितम् ॥ रक्त पित्त कफो त्वेषु विकारे
युतु नैव तत् ॥ १९ ॥ तदम्बु घृता न्वितमपि ॥

अथ ह्यं विशेषेण विधि निवेधो ।

भा० रात में दही न खावे और खावे तो वे ही अक्षर मूद्ग की दाल मधु उष्या विना और लोके के भी दही न खावे ॥ उस्से घृत शर्करा दि युक्त दही रात में भी खावे यह अर्थ है । वैसे कहा है । रात में दही प्रशस्त नहीं है और जल घृत में युक्त ।

प्रशस्त है ॥ रक्त पित्त कफ के विकारों में वोह प्रशस्त नहीं है ॥ १७ ॥ वोह जल घृत युक्त भी । अनन्तर ऋतु विशेष करके विधि नियेध ।

हेमन्ते शिशिरे चापि वर्षासु दधि शस्यते ॥ प्ररदू ग्री
ष्म वसन्तेषु प्रायः शस्त द्विग हितम् ॥ १८ ॥

अथा विधिना दधि सेवने दोष माह ॥

ज्वर सृक् पित्त वी सर्प कुष्ठ पाण्डु मय भ्रमान् ॥ प्रा-
प्सु यान् कामला ज्वोग्रां विधिं हित्वा दधि प्रियः ॥ १९ ॥

भा० हेमन्त शिशिर और वर्षा में दही प्रशस्त है ॥ और प्ररदू ग्रीष्म वसन्त में प्रायः वोह निन्दित है ॥ १८ ॥ अनन्तर विना विधि के दधि सेवन में दोष । कहते हैं ॥ ज्वर रक्त पित्त वी सर्प कुष्ठ पाण्डु रोग भ्रम ॥ और उग्र कामला रोग येह विधि छोड़ के दही सेवन करने से होते हैं ॥ १९ ॥

॥ अथ सरस्य मस्तु नञ्च लक्षणां गुणां च
दधस्तु परि यो भागो घनः स्नेह समन्वितः ॥ स
लोके सर इत्युक्तो दधो मृगडस्तु मस्त्विति ॥ २० ॥
सरः स्वादुर्गुरुर्दृयो वात वह्नि प्रणा शनः ॥ सान्त्वो
वस्ति प्रशमनः पित्त श्लेष्म विवर्द्धनः ॥ २१ ॥

भा० अनन्तर सर और मस्तु इनका लक्षणा और गुणा ॥ दही के ऊपर का जो गाढा चिकना इसे बुँहि स्ता है ॥ उसको लोक में सर रोसा कहा है और दही के पानी को मस्तु रोसा कहा है ॥ २० ॥ सर मधुर भारी शुक्ल को करने वाला वात अग्नि का नाशक ॥ और रवठाई के सहित वस्ति का शमन करने वाला पित्त कफ को बढाने वाला है ॥ २१ ॥

मस्तु क्लमहरं बल्यं लघु भक्ता भिलाय कृत् ॥ खो
तो विशो घनं ह्लादि कफ तृणा निला यहम् ॥ २२ ॥

अदृश्यं प्रीणानं शीघ्रं भिन्नानि मल सञ्चयम् ॥

इति श्री भाव प्रकाशे दधिवर्गः ।

भा० दही का यानी क्रम नाशक बलके हित हल का भोजन में रुचि को कर
ने वाला ॥ सांती का शोधन करने वाला ल्हादि कफ तथा वात इनका नाश
कहे ॥ २२ ॥ अदृश्य प्रीणान और शीघ्र मल के सचय को फोड़ता है ॥

इति भाव प्रकाशे दधिवर्गः ।

अथ तक्रवर्गः

तत्र तक्रस्य भिन्नानि नामानि लक्षणानि गुणाश्च
बोलान्तु मथितं तक्रमुद शिवच्छच्छिकायि च ॥ सस
रं निर्जलं धोलं मथितन्त्वसरो दकम् ॥ २३ ॥
तक्रं पादजलं प्रोक्तमुद शिवत्वच्छे वारिकम् ॥ छच्छि
का सारहीना स्यात् स्वच्छा प्रचुरवारिका ॥ २४ ॥
धोलं तु शर्करा युक्तं गुरौ ज्ञेयं रसालवत् ॥

भा०- अनन्तर तक्रवर्गः ॥ उसमें मूठे के अलग नाम और लक्षण तथा
गुण ॥ धोल मथित तक्र उद शिवत् छच्छिका येह मूठे के मूठके नाम है ॥
पूर्वोक्त सर के सहित निर्जल को धोल कहते हैं और मथित जिसमें सर और
जल नहो उसको कहते हैं ॥ २३ ॥ जिनमें चौघाई जल होता है उसको तक्र क
हते और तिसमें आधा जल होता है उसको उद शिवत् कहा है ॥ तथा सार
हीन स्वच्छ बहुत जल से युक्त को छच्छिका कहते हैं ॥ २४ ॥ शर्करा
युक्त धोल रसाल के समान गुण में जानता चाहिये ॥

मथितं मुहु पा इति लोके ।

छच्छिका छाच्छ इति लोके ॥

वात पित्त हरं ह्यदि मथितं कफ पित्त नुत् ॥ तक्रं ग्रा
हि कषायाम्लं स्वादु पाकर सं लघुः ॥ २५ ॥ वीर्यं
द्या दीपनं वृथ्यं प्रीरानं वात नाश नम् ॥ ग्रह रयादि
मतां पथ्यं भवेत्सङ्ग्राहि लाघ वात् ॥ २६ ॥ किञ्च
स्वादु विषा कित्वा न्नच पित्त प्रकोप गा म् ॥ कषायो
द्या दीपनं वृथ्यं प्रीरानं वात नाश नम् ॥ २७ ॥ क-
षायो ग्रा विषा कित्वा द्रोक्ष्या चापि कफा पहम् ॥

भा० महया इस प्रकार लोक में कहते हैं ॥ छाच्छ इस प्रकार लोक में कहे
ते हैं ॥ मथित वात पित्त का नाणकल्हादि कफ पित्त का नाशक है ॥ तक्र का
विज कसेला खट्टा पाकर रस में मधुर हलका ॥ २५ ॥ वीर्य में उष्ण दीपन
शुक्रको करने वाला प्रीरान वात नाशक है ॥ और संग्रहणी वाले के हित है
महा काकिन होता है हलके पनसे ॥ २६ ॥ मधुर पाक होने से पित्त प्रकोप कर
ने वाला नहीं है ॥ कसेला उष्ण दीपन वृथ्य प्रीरान वात नाशक है ॥ २७ ॥ कसेला
उष्ण विषाक नहोने से और रूक्षतासे भी कफ नाशक है ॥

न तक्र से वीर्य घटे कदाचित् न तक्र दग्धाः प्रभवन्ति
रोगाः ॥ यथा सुराणां अमृतं सुरवाय तथा नराणां भु
वितक्र माहुः ॥ २८ ॥ उदंश्चित्कफ कृद्दल्यं आमघ्नं
परमं मतम् ॥ छच्छिका शीतला लघ्वी पित्त अमृ
षा हरी ॥ २९ ॥ वात नुत्कफ कृत्सानु दीपनी ल-
व रान्विता ॥ अथो हृत घृत स्तोको हृता
तु हृत घृतानां तक्राणां सुराणाः ॥

भा० तक्र कासेदन करने वाला कदाचित् कुंपा नहीं पाता तक्रसे दग्धरोग उत्पन्न नहीं होते ॥ जैसे देवताओंको सुरव के वासे अमृत होता है वैसेही मनुष्योंको भूलोक में तक्र कहा है ॥ २८ ॥ उदश्वित् कफ को करने वाला बलके हित परम आंव का नाशक कहा है ॥ छर्चिका शीतल हलकी पित्र ग्रम तृषा की नाशक है ॥ २९ ॥ बात नाशक कफ को करने वाली है और वोइ लव से युक्त दीपन है ॥ अनन्तर घी निकाला और थोड़ा घी निकाला तथा वे घृत निकाला हुआ ऐसे तक्रा का गुण ॥

समुहृतं घृतं तक्रं पथ्यं लघु विशेषतः ॥ सौको हृ-
न घृतं तस्माद् गुरु दृष्यं कफा वहम् ॥ ३० ॥ अनु-
हृत घृतं सान्द्रं गुरु पुष्टि कफ प्रदम् ॥

अथ दोष विशेषे व्याधि विशेषे तक्र विशेषाः
वाते ऽम्लं शस्यते तक्रं शुण्ठी सैन्धव संयुतम् ॥ पि-
त्रे स्वादु सिता युक्तं सव्योष मधिके कफे ॥ ३१ ॥ हि-
डु जीर सुतं घोलं सैन्धवे नच संयुतम् ॥

भा० अच्छी तरह घी निकाला हुआ तक्र पथ्य और विशेष करके हलका होता है ॥ थोड़ा घृत निकाला हुआ उस्से मारी शुक्र को करने वाला और कफ को करने वाला है ॥ ३० ॥ घी निकाला हुआ सान्द्र मारी पुष्टि कफ को करने वाला है अनन्तर दोष विशेष में और रोग विशेष में तक्र विशेष को कहते है ॥ वात में अम्ल तक्र मोठ सैन्धव मे युक्त ॥ पित्र में मधुर चीनी के सहित और कफ में विकुट्टे सहित हित है ॥ ३१ ॥ हीङ्ग जीरे के सहित और सैन्धव के सहित ॥

भवे दती ववा तथ्य मर्षो ऽती सार हृत्य रम् ॥ ३२ ॥
रुचिदं पुष्टिदं चल्यं वस्ति शूल विनाशनम् ॥ मू-
त्र कृच्छे तु अगुडं पाण्डु रोगे स चित्र कम् ॥ ३३ ॥

अथा मपक्त तक्र गुणाः

तक्र मासं कफं कोष्ठे हन्ति करणं करोति च ॥ पीनस
प्रवास कासादौ पक्व मेव प्रयुज्यते ॥ ३४ ॥

भा० और सैन्धव के सहित घोल अतीव वात नाशक और ववासीर अतीसार का परम नाशक है ॥ ३२ ॥ तथा रुचिको करने वाला पुष्टि को देने वाला बलके हित वास्तु शूल का नाशक है ॥ मूत्र कृच्छ्र में गुड़के सहित और पांडुरोग में चित्रक के सहित हित है ॥ ३३ ॥ अनन्तर कक्षे और पक्के तक्र का गुण ॥ कच्चा मठा कोष्ठ में कफ को नाशकरता है । और कंठ में कफ को करता है ॥ पीनस प्रवास कासादिक में पकाही योजना किया जाता है ॥ ३४ ॥

अथ तक्र सेवन निमित्तानि

शीत कालेऽग्निमान्द्ये च तथा वाता मयेयु च ॥ अ.

रुचौ स्रोतसां रोधे तक्रं स्यादमृतो यमसू ॥ ३५ ॥

तद्बु हन्ति गरुडि प्रसेक वियमज्वरान् ॥ पाण्डु

मेदो ग्रहण्यर्शा मूत्रग्रह भगन्दरान् ॥ ३६ ॥ मेहं ।

गुल्ममती सारं शूलप्लीहोदरा रुचीः ॥ शिवत्रकोठ

गतव्याधीन् कुष्ठशोथतृषा कृमीन् ॥ ३७ ॥

भा० अनन्तर तक्र सेवन के कारण ॥ शीत काल अग्नि मान्द्य तथा वात रोग में भी ॥ अरुचि में स्रोतों के अवरोध में तक्र अमृत के समान होता है ॥ ३५ ॥ बौह विय वमन प्रसेक वियम ज्वर इनको ॥ और पांडुरोग मेद ग्रहणी रोग ववासीर मूत्र ग्रह भगन्दर इनको ॥ ३६ ॥ तथा प्रमेह वायु गोला अतीसार शूल प्लीहोदर अरुचि ॥ शिवत्रकोठगत रोग कुष्ठ शोथ तृषा कृमि इनको नाश करता है ॥ ३७ ॥

तक्रस्या विययाः । नैव तक्रं क्षते द-
द्यात्तनोष्णा काले न दुर्वले ॥ नमूच्छी भग वाहेयु
न रोगे रक्तपित्तजे ॥ ३८ ॥

अथ गव्यादीनां तक्राणां विशिष्टा गुणाः ॥

यान्युक्तानि दधीन्यद्यौ तद्गुणां तक्रमादिषु ॥

इति श्री भावप्रकाशे तक्रवर्गः ।

भा० तक्रका अवियथ ॥ तक्र क्षत में न देवे न उष्ण काल में न दुर्बल में ॥ न सू
च्छी भ्रम दाह में न रक्त पित्त के रोग में देवे ॥ ३९ ॥ अनन्तर गाय आदिके त
क्रों का विशेष गुण ॥ जो आठ दहीयों के गुण कहे हैं वोह गुण तक्र में जानले
वे ॥
इति भावप्रकाशे तक्रवर्गः ॥

अथ नवनीतवर्गः

तत्र नवनीतस्य नामानि गुणाश्च

सृक्षरां सरजं हे यद्ग्वीनं नवनीतकम् ॥ नवनीतं हि
तंगव्यं वृष्यं वर्णावलाग्निं कृतम् ॥ ३९ ॥ संग्राहि ।

वातपित्तासृक् क्षयाशोऽर्दितकासहृत् ॥ तद्धितं वा
लके वृद्धे विशेषात् स्मृतं शिशोः ॥ ४० ॥

[माहित्रस्य गुणाः ।]

भा० अनन्तर मारवन के वर्गः । उसमें मारवन के नाम और गुण । सृक्षरा
सरज है यद्ग्वीनं नवनीतकं येह मारवन के नाम है ॥ गायका मारवन प
थ्यशुक्र को करने वाला वर्ण बल अग्नि को करने वाला ॥ ३९ ॥ काविज वा
तपित्त रक्त क्षय ववासीर् अर्दितकास इनका नाशक है ॥ वोह बालक वृद्ध
को हित है विशेष करके बालक को अमृत के समान है ॥ ४० ॥

अनन्तर भैस के मारवन का गुण ॥

नवनीतं माहिष्यास्तु वातश्लेष्मकरंगुरु ॥ दाहपित्त
भ्रमहरं मेदःशुक्रविवर्द्धनम् ॥ ४१ ॥

अथ पयसो नवनी तस्य गुणाः ॥

दुग्धोऽत्यं नवनी तं तु चक्षुष्यं रक्तपित्तनुत् ॥ दृष्यं

बल्यमतिस्निग्धं मधुरं ग्राहिशीतलम् ॥ ४२ ॥

अथ सद्यः समुद्धृत नवनीत गुणाः

भा० गैस का मारवन वात कफ को करने वाला भारी ॥ दाह पित्त प्रमका नाशक मेद शुक्र का बढ़ाने वाला है ॥ ४१ ॥ अनन्तर दूध के मारवन का गुण ॥ दूध का मारवन नेत्र के हित रक्त पित्त का नाशक ॥ शुक्र को करने वाला बल के हित बहुत चिकना मधुर काविज शीतल है ॥ ४२ ॥ अनन्तर नाजे मारवन का गुण ॥

नवनीतनु सद्यस्कं स्वादुग्राहिहिमं लघु ॥ मेध्यं

किञ्चित्कषायाम्लं भीषत्तक्रांशसंक्रमात् ॥ ४३ ॥

अथ चिरन्तन नवनीत गुणाः ।

भा० नाजा मारवन मधुर काविज शीतल हलका ॥ कान्ति को करने वाला कुट्ट एक कसेला थोड़े मठे के अंश मिलने से ॥ ४३ ॥

अनन्तर पुराने मारवन का गुण ॥

सक्षारकटुकाम्लं त्वाच्छर्षः कुष्टकारकम् ॥

प्लेखलं गुरुमेदस्यं नवनीतं चिरन्तनम् ॥ ४४ ॥

इति श्री भावप्रकाशे नवनीतवर्गः ॥

भा० क्षार के सहित कटुक खट्ट पन होने से वमन वर्वासीर कुष्ट इनको करने वाला है ॥ कफ को करने वाला भारी मेद को करने वाला पुराना मारवन है ॥ ४४ ॥

इति भावप्रकाशे मारवनवर्गः ॥

अथ घृतवर्गः

तत्र घृतस्य नामानि गुणाश्च

घृतं माज्यं हविः सर्पिः कष्यन्ते तद्गुणा अथ ॥ घृतं
रसायनं स्वादु चक्षुष्यं वह्नि दीपनम् ॥ ४५ ॥ शीत वी
र्ये विद्या लक्ष्मी पाप पित्रा निल्ला पहम् ॥ अल्पाभि
व्यन्दि कान्त्यो जस्ते जो लावण्य बुद्धि कृत् ॥ ४६ ॥
स्वरस्मृति करं मेध्य मायुष्यं बल कृद्गुरु ॥ उदा वर्त
ज्वरोन्माद शूला नाह व्रणान् हरेत् ॥ ४७ ॥ स्निग्धं क
फकरं रक्षः क्षय वीसर्प रक्त वृत् ॥

भा० अनन्तर घृतवर्गः । उसमें घृतके नाम और गुण । घृत आज्य हविः स
र्पिः येह घृत के नाम हैं ॥ अनन्तर गुण कहते हैं ॥ घृत रसायन मधुरनेत्र के
हित अग्नि दीपन ॥ ४५ ॥ शीत वीर्य्य है और विद्य अ लक्ष्मी पाप पित्र वात इन
कानाशक है ॥ घोड़ा अभिव्यन्दि कान्ति औज तेज लावण्य बुद्धि इनको क
रनेवाला ॥ ४६ ॥ स्वरस्मृति को करने वाला मेध्य आयु के हित बल को करने
वाला भारी ॥ उदा वर्त ज्वर उन्माद शूल अफारा व्रण इनको हरता है ॥ ४७ ॥
चिकना कफ को करने वाला रक्ष क्षय वीसर्प रक्त इनका नाशक है ॥

गव्यस्य घृतस्य गु० । गव्यं घृतं विशेषेणा चक्षुष्यं दृश्य
मग्नि कृत् ॥ स्वादु पाक करं शीतं वात पित्रं कफा पहम्
॥ ४८ ॥ मेधा लावण्य कान्त्यो जस्ते जो बुद्धि करं परम् ॥
अलक्ष्मी पापरक्षौघं वयसः स्थापकं गुरु ॥ ४९ ॥ बल्य
पवित्र मायुष्यं सुमङ्गल्यं रसायनम् ॥ सुगन्धं रोचक
चारु सर्वाज्येषु गुणाधिकम् ॥ ५० ॥

भा० गाय के घृत का गुण । गायका घृत विशेष करके नेत्र के हित शुक्र को करने वाला अग्नि को करने वाला ॥ मधुर पाक को करने वाला शीतल और वातपित्त कफ इनका नाशक है ॥ ४८ ॥ और मेधा लावण्य कान्ति भोज तेज इनकी परम वृद्धि को करने वाला ॥ अलक्ष्मी पाप राक्षस इनका नाशक वयका स्थापक भारी ॥ ४९ ॥ बलके हित पवित्र आयुके हित सुमंगल्य रसायन ॥ सुगन्ध रोजन सुन्दर सब घृतो से गुण में अधिक है ॥ ५० ॥

माहिषस्य गुणाः । माहिषन्तु घृतं स्वादु पित्त रक्ता नि
लापहम् ॥ शीतलं प्लेखलं वृष्यं गुरु स्वादु विपच्यते
॥ ५१ ॥ कागस्य गुणाः । आज माज्यङ्गुरोत्यग्निं च
क्षुष्यं बलवर्द्धनम् ॥ कासे प्रवासे क्षये चापि हितं ।
पाके भवेत्कटुः ॥ ५२ ॥ अथ उष्ट्री घृतम् ॥ औ
ष्ट्रं कटु घृतं पाके शोथ क्रिमि विषापहम् ॥ दीपनं क
फ वातघ्नं कुष्ठ गुल्मोदरापहम् ॥ ५३ ॥

भा० अनन्तर भैंसके घृत का गुण ॥ भैंस का घृत मधुर पित्त रक्त वात इनका नाशक ॥ शीतल कफ को करने वाला शुक्र को करने वाला भारी और पाक में मधुर होता है ॥ ५१ ॥ अनन्तर वकरी के घृत का गुण ॥ वकरी का घृत अग्नि को करता है और नेत्र के हित बल को बढ़ाने वाला ॥ कांस प्रवास में भी हित है और पाक में भी कटु होता है ॥ ५२ ॥ अनन्तर ऊँटनी का घृत ॥ ऊँटनी का घृत पाक में कटु और शोथ क्रिमि विष इनका नाशक ॥ दीपन कफ वात का नाशक कुष्ठ वायु मोला उदर रोग इनका नाशक है ॥ ५३ ॥

अथ आदिकं घृतम् । पाके लघ्वा विर्क सर्पिः स-
र्दरोग विनाशनम् ॥ वृद्धिं करोति चास्थी नाम श्मरी
शर्करापहम् ॥ ५४ ॥ चक्षुष्य मग्नि द्युयसां वात दोष
निवारणम् ॥ अथ नारी घृतम् ॥

भा० अनन्तर भेडका घृत ॥ भेडका घृत पाकमें हलका सर्व रोग का नाशक ॥ और हड्डीयों की वृद्धि को करता है तथा पथरी शर्करा इनका नाशक है ॥ ५४ ॥ नेत्रके हित अग्नि को करने वाला और वात दोष का निवारण है ॥ अनन्तर स्त्री घृत ॥

कफे ऽ निले योनि दोये पित्ते रक्ते च तद्धित
मू ॥ च क्षुं माज्यं स्त्रीणां वा सर्पिः स्यादसृती प म
मू ॥ ५५ ॥ अथाश्वी घृतम् ॥ हृदि करोति दे
हाग्ने लघु पाके विद्या पहम् ॥ तर्पणां नेत्र रोगघ्नं दा
हनुद् वडवा घृतम् ॥ ५६ ॥ दुग्ध घृतस्य गुणाः ।
घृतं दुग्धभवं ग्राहि शीतलं नेत्र रोग हृत ॥ निहन्ति ।
पित्त दाहास्त्र मद मूर्च्छा भ्रमा नि लान् ॥ ५७ ॥

भा० कफ वात योनि दोष पित्तरक्त इनमें दोह हित है ॥ स्त्री का घृत नेत्र के हित और घृत अमृत के समान होता है ॥ ५५ ॥ अनन्तर घोड़ी का घृत ॥ देह अग्नि की वृद्धि को करता है और पाकमें हलका विषनाशक ॥ तर्पणां नेत्र रोग का नाशक दाह नाशक घोड़ी का घृत होता है ॥ ५६ ॥ दूधके घृत का गुण ॥ दूधका घृत काविज्ञ शीतल नेत्र रोग का नाशक है ॥ और पित्त दाह रक्त मद मूर्च्छा भ्रम वात इनका नाशक है ॥ ५७ ॥

अथ ह्यस्तन दधिज घृतगुणाः ।

हवि र्ह्यस्तन दुग्धो न्यं तस्या द्वै यद्ग्वीन कम् ॥
हैयद्ग्वीनं चभुख्यं दीपनं रुचि कृत्यरम् ॥ ५८ ॥
बल कृद्दं हरां वृथ्यं विशेषात् ज्वर नाश नम् ॥
। पुराण घृतस्य गुणाः ।

भा० अनन्तर हड्डीयों के दही का घृत का गुण ॥ हड्डीयों के घृतको है यद्ग्वीनं की तक कहते हैं ॥ हड्डीयों का घृत नेत्र के हित दीपन परम रुचि को करने वाला है ॥

॥५८॥ और बल को करने वाला पुष्ट शुक्र का करने वाला और विशेष करके
ज्वरनाशक होता है ॥ पुराने घीका गुण ॥

वर्या दृष्टं भवे दाज्यं पुराणां तत्रि दोष नुत् ॥ मूर्च्छा
कुष्ठ वियो न्मादा पस्मार तिमिरा यहमू ॥ ५९॥ यथा
यथा ऽखिलं सर्पिः पुराणा मधिकं भवेत् ॥ तथा
तथा गुरोः स्वैः स्वै रधिकं तद् दु दा हृतमू ॥ ६० ॥

अथ नूतनस्य घृतस्य विषयाः ॥

भा० बरस के ऊपर घी पुराना होता है वोह विदोष नाशक है ॥ और मूर्च्छा
कुष्ठ विष उन्माद अपस्मार तिमिर इनका नाशक है ॥ ५९ ॥ सब घृत जैसे
पुराना होता है ॥ वैसे २ अपने २ गुरों करके गुण में अधिक कहा है ॥ ६० ॥
अनन्तर ताजे घीका विषय ॥

योज येन्न व मे वाज्यं भोजने तर्पणे अमे ॥ बलक्षये
पाण्डु रोगे कामलानेत्र रोगयोः ॥ ६१ ॥

घृत प्रयोगस्या विषयाः

भा० नया घृत भोजन में तर्पण में अम में ॥ बल क्षय में पाण्डु रोग में कामला
और नेत्र रोग में जो जना करे ॥ ६१ ॥ अनन्तर जिसे घृत न देना चाहिये सोक
है ते हैं ॥ राज यक्ष्मणि वाले च दृष्टे प्लेथ कृते गदे ॥ रोगे

सामे विस्त्र च्याञ्च विबन्धे च मदा त्यये ॥ ६२ ॥ ज्वरे
च दहनं मन्दे न सर्पि बहु मन्यते ॥

इति श्री भाव प्रकाशे घृत वर्गः ॥

भा० राज रोग में बालक और बृद्ध को कफ के रोग में ॥ आमके रोग में विस्त्रि में
विबन्ध में मदा त्यय में ॥ ६२ ॥ और ज्वर में मन्दाग्नि में बहुत घृत अच्छा नहीं

हे ॥ इति भावप्रकाशे घृतवर्गः ॥

अथ सूत्रवर्गः

तत्र गोमूत्रगुणाः ॥

गोमूत्रं कटु तीक्ष्णं खां क्षारं तिक्त कषायकम् ॥ ल-
घ्वग्नि दीपनं मेध्यं पित्त कृत्वा कफ वात हृत् ॥ ६३ ॥ शू-
लं गुल्मी दरा नाह कण्डू क्षि मुरव रोग जित् ॥ किला-
सग दवा ताम वस्ति रुकं कुष्ठ नाशनम् ॥ ६४ ॥ कास-
प्रवासा पहं शोथ कामला पाण्डु रोग हृत् ॥

भा० अथ सूत्रवर्गः । वसं गोमूत्रं का गुणा । गोमूत्रं कटु तीक्ष्णं उष्या क्षार-
तिक्त कषायक ॥ हलका अग्नि दीपन मेध्यं पित्त को करने वाला कफ वातका
नाशक ॥ ६३ ॥ शूल वाय गोला उदर अनाह कंडू नैत्र रोग मुरव रोग इनको जीत
ने वाला है । किलास रोग आम वात वस्ति पीडा कुष्ठ इनका नाशक है ॥ ६४ ॥
कास प्रवास इनका नाशक सूजन कामला पांडू रोग इनका नाशक है ॥

कण्डू किलास गद शूल मुरवा क्षि रोगान् गुल्मा ति-
सार मरु दा मय मूत्र रोधान् कासं स कुष्ठ जठर क्रि-
मि पाण्डु रोगान् गोमूत्रं मे कषयि पीत मपा करोति
॥ ६५ ॥ सर्वेष्वपि च सूत्रे यु गोमूत्रं गुणातोः धिकम् ।
अतोः वि शोयात् कथने मूत्रं गोमूत्रं सुच्यते ॥ ६६ ॥
प्रीहो दर प्रवास कास शोथ वची प्रहा पहम् ॥ शूल गु-
ल्म रुजा नाह कामला पाण्डु रोग हृत् ॥ ६७ ॥ कषायं
तिक्त तीक्ष्णं च पूरणात् कर्ण शूल नुत् ॥

॥५८॥ और बल को करने वाला पुष्ट शुक का करने वाला और विशेष करके
ज्वरनाशक होता है ॥ पुराने घीका गुण ॥

वर्या दूर्द्ध भवे दाज्यं पुराणां तत्रि दोय नुत् ॥ मूर्च्छा
कुष्ठ वियो न्मादा पस्मार तिमिरा यहम् ॥ ५७॥ यथा
यथा : खिलं सर्पिः पुराणा मधिकं भवेत् ॥ तथा
तथा गुरोः स्वैः स्वै रधिकं तद् दा हृतम् ॥ ६० ॥

अथ नूतनस्य घृतस्य विषयाः ॥

भा० वरस के ऊपर घी पुराना होता है वोह त्रिदोष नाशक है ॥ और मूर्च्छा
कुष्ठ विष उन्माद अपस्मार तिमिर इनका नाशक है ॥ ५७ ॥ सब घृत जैसे
पुराना होता है ॥ वैसे २ अपने २ गुरों करके गुण में अधिक कहा है ॥ ६० ॥
अनन्तर ताजे घीका विषय ॥

योज येन्न व में वाज्यं भोजने तर्पणो अमे ॥ बलक्षये ।
पाण्डु रोगे कामलानंत्र रोगयोः ॥ ६१ ॥

घृत प्रयोगस्या विषयाः

भा० नया घृत भोजन में तर्पण में अममें ॥ बल क्षय में पाण्डु रोगमें कामला
और नेत्र रोगमें यो जना करे ॥ ६१ ॥ अनन्तर जिसे घृत न देना चाहिये सोक
हेते हैं ॥

राज यक्ष्मणि बाले च वृद्धे प्लेथ्य कृते गदे ॥ रोगे
सामे विस्त्र चान्द्र विवन्धे च मदा त्यये ॥ ६२ ॥ ज्वरे
च दहने मन्दे न सर्पि बहु मन्यते ॥

इति श्री भाव प्रकाशे घृत वर्गः ॥

भा० राज रोग में बालक और वृद्ध को कफ के रोगों में ॥ आमके रोग में विस्त्रिमें
विवन्धमें मदा त्यय में ॥ ६२ ॥ और ज्वरमें मन्दाग्निमें बहुत घृत अच्छा नहीं

हे ॥ इति भाव प्रकाशे घृत वर्गः ॥

अथ सूत्र वर्गः

तत्र गोमूत्र गुणाः ॥

गोमूत्रं कटु तीक्ष्णोष्णं क्षारं तिक्तं कषायकम् ॥ ल-
घ्वरिणं क्षीपनं मेध्यं पित्तकृत्कफवातहृत् ॥ ६३ ॥ शू-
ल गुल्मो द्रुमानाह कण्डूक्षि मुरव रोग जित् ॥ किला-
सग दवा ताम वस्ति रुक् कुष्ठ नाशनम् ॥ ६४ ॥ कास-
श्वासा पहं शोथ कामला पाण्डु रोग हृत् ॥

भा० अथ सूत्र वर्गः । उक्ते गोमूत्र का गुणा । गोमूत्र कटु तीखा उष्ण क्षार-
तिक्त कषायक ॥ हलका अग्नि क्षीपन मेध्य पित्त को करने वाला कफ वातका
नाशक ॥ ६३ ॥ शूल वायुगोला उदर अनाहकंठू नेत्र रोग मुरव रोग इनको जीत
ने वाला है । किलास रोग आम वात वस्ति पीडा कुष्ठ इनका नाशक है ॥ ६४ ॥
कास श्वास इनका नाशक सूजन कामला पाण्डू रोग इनका नाशक है ॥

कण्डू किलास गद शूल मुरवा क्षि रोगान् गुल्मा ति-
सार मरु दा मय मूत्र रोधान् कासं स कुष्ठ जठर क्रि-
मि पाण्डु रोगान् गोमूत्र में कमापि पीत मया करोति
॥ ६५ ॥ सर्वेष्वपि च मूत्रे सु गोमूत्रं गुणातीःधिकम् ।
अतीः वि शेषात् कथने मूत्रं गोमूत्रं मुच्यते ॥ ६६ ॥
श्रीहो द्रु श्वास कास शोथ वर्चो ग्रहा पहम् ॥ शूल गु-
ल्म रुजा नाह कामला पाण्डु रोग हृत् ॥ ६७ ॥ कषायं
तिक्त तीक्ष्ण च पूरणात् कर्ण शूल मुत् ॥

भा० खुजली किलास रोग शूल मुख नेत्र रोग ॥ गुल्म अति सार वात रोग मूत्र
रोध ॥ कास कुष्ठ के सहित उदर रोग क्रिमि पांडू रोग इनको ॥ एक गो मूत्र यि-
या हुवा नाश करता है ॥ ६५ ॥ सब मूत्रों में गो मूत्र गुण में अधिक है ॥ इस
वास्ते विशेष करके कहने में मूत्र गो मूत्र को कहते हैं ॥ ६६ ॥ प्लीहा दर उवास
कास सूजन मल ग्रह इनका नाशक है ॥ शूल वायु गोलू पीड़ा अफार कामला
पाण्डुरोग इनका नाशक ॥ ६७ ॥ कसेला तिरु तीखा डालने से कर्ण शूल कना
शक है ॥

मानुष्य मूत्र गुणाः । नर मूत्रं गरं हन्ति सेवि त-
न्तश्च सायनम् ॥ रक्त पाशा हरं तीक्ष्णं सक्षार लवणं
स्थृतम् ॥ ६८ ॥ गोजावि महिषीणां तु स्त्रीणां मूत्रं ।
प्रशस्यते ॥ खरोक्षे भनरा श्वानां पुंसां मूत्रं हितं स्थृतम्
॥ ६९ ॥ इति पशु भावे प्रकाशे मूत्र वर्गः ॥

भा० मनुष्य के मूत्र का गुण ॥ मनुष्य का मूत्र विषको नाश करता है और
सेवन किया हुआ वोह रसायन है ॥ और रक्त पामा का नाशक तीखा क्षार लवण
युक्त कड़ा है ॥ ६८ ॥ गाय बकरी गैस इन स्त्रियों का मूत्र प्रशस्त है ॥ और गधा
कंठ हाथी मनुष्य घोड़ा इन में नरों का मूत्र हित कहा है ॥ ६९ ॥

इति भाव प्रकाशे मूत्र वर्गः ॥

अथ तैल वर्गः

तत्र तैलस्य स्वरूप निरूपणम् ॥

तिलादि स्निग्ध वस्तूनां स्नेह तैलमुदाहृतम् ॥ त-
न्तु वात हरं सर्व विशेषा तिल सम्भवम् ॥ १ ॥

[अथ तिल तैल गुणाः]

भा० अन्तर तैल वर्गः । उसमें तैल का स्वरूप निरूपण । तिलादि स्निग्ध
पदार्थों को तिकनाई को तैल कहा है ॥ वोह सब वात नाशक है विशेष कर

के तिलका ॥१॥ अनन्तर तिल तेल का गुण ॥

तिल तैलं गुरु स्थैर्यं बल वर्ण करं सरम् ॥ तृच्यं वि
काशि विषदं मधुरं रस पाकयोः ॥ २ ॥ सूक्ष्म कषाया
नुरसं तिक्तं वात कफा पहम् ॥ वीर्यं शोष्णं हिमं स्पर्श
दंहरां रक्त पित्त हृत् ॥ ३ ॥ लेखनं बहु विराम सूत्रं ग-
र्भा प्राय विषोष नम् ॥ दीपनं बुद्धिदं मेध्यं व्यवायि ब्र-
ण मेहनुत् ॥ ४ ॥ श्रोत्रयोनि शिरः शूल नाशनं लघुताक
रम् । त्वच्यं केश्यञ्च चक्षुष्यं मस्यङ्गे भोजनेऽन्यथा ॥ ५ ॥

भा० तिलका तेल भारी स्थैर्यं बल वर्ण इनको करने वाला सर ॥ शुक्रको
करने वाला विकाशि विशद रस पाकमें मधुर ॥ २ ॥ सूक्ष्म पीछे से कसेला
तिक्त वात कफ का नाशक ॥ वीर्यमें उष्ण शीतल स्पर्श में पुष्ट रक्त पित्तको
करने वाला ॥ ३ ॥ लेखन मल सूत्र को बान्धनें वाला गर्भा प्राय का पोषण ॥
दीपन बुद्धि को देने वाला मेध्यके हित व्यवायि ब्रण प्रमेह का नाशक ॥ ४ ॥ कर्ण
योनि शिर इनके शूलका नाशक और हलका पन करने वाला ॥ त्वचाके हित
केशके हित नेत्र के हित अभ्यङ्ग में येह गुण हैं और भोजन में इसके विपरीत
गुण हैं ॥ ५ ॥

छिन्न भिन्न च्युतो त्रिष्ट मथित क्षत पिच्चिते ॥

भग्न स्फुटित विद्वाग्नि दग्ध विष्प्लिष्ट दारिते ॥ ६ ॥

तथाभिहत निर्भुग्न मृग व्याधादि विक्षते ॥ वलौ या

नेऽन्व संस्कारे नस्ये करार्ण क्षि पूरणे ॥ ७ ॥ सैकाभ्य-

ङ्गवगा हेयु तिल तैलं प्रशास्यते ॥

भा० छिन्न भिन्न च्युत त्रिष्ट मथित क्षत पिच्चित ॥ भग्न स्फुटित विद्वाग्नि
अग्नि दग्ध विष्प्लिष्ट दारित ॥ ६ ॥ तथा अभिहत निर्भुग्न मृग व्याघ्र आ-
दि विक्षत ॥ इनका विशेष अर्थ भग्न निदान में किया है इनमें वस्ति में १

पीने में अन्न के संस्कार में नस्यमें कर्ण नेत्र में मरने में ॥ ७ ॥ सेक अभ्यङ्ग अव
गाह इनमें तिल का तेल प्रशस्त है ॥

(क) ननु वृंहणा लेखन योः कथं सामानाधि करण्य
मित्याह । रूक्षादि दुष्टः पवनः स्रोतः सङ्को चयेद्य
दा ॥ रसो सम्यग्बहन् कार्प्यं कुर्याद्भक्ताद्यवर्द्धयन् ॥
० ॥ तेषु प्रवेद्युं सरजसौक्ष्म्यस्त्रिगन्धत्वमाद्देवैः ॥ तैलं
क्षमं रसं नेतुं कृशानां तैम वृंहणाम् ॥ ४ ॥

भा० (क) शंका । वृंहणा और लेखन कर्णों से सामानाधि करण्य सो कहे
ते हैं । रूक्षादि करके दुष्ट हुआ पवन जवसं कोच करता है ॥ रस अच्छी तरह
वहता हुआ रक्तादि को ज्वटाता हुआ कृशानाको करता है ॥ ० ॥ सौक्ष्म्य
स्त्रिगन्धता और मृदुता इनकरके रससे उनमें प्रवेष्टा करने को ॥ तैल ही समर्थ
है रसमें ले जाने को इस वास्ते कृशाना पुष्ट करने वाला है ॥ ४ ॥

व्यवायि सूक्ष्मतीक्ष्णा सरत्वे मेदसः क्षयम् ॥ शनैः
प्रकुरुते तैलं तेन लेखनमीरितम् ॥ १० ॥ द्रुतं पुरीषं
बध्नाति स्वलितं तन्न वर्त्तयेत् ॥ ग्राहकं सारकञ्चा
पि तैलं तैलमुदीरितम् ॥ ११ ॥ द्रुतमब्दात्परं पक्वं
हीनवीर्यं प्रजायते ॥ तैलपक्वमपक्वं वाचिरस्था-
यिगुणाधिकम् ॥ १२ ॥

सरिस बराई तैल गुणाः ।

भा० व्यवायि सूक्ष्म तीक्ष्णा उष्ण और सरत्वे इनसे मेदका क्षय ॥ धीरे २ कर
ताहै इस वास्ते तैल लेखन कहा है ॥ १० ॥ पतले मलको बान्धता है और उस
स्वलित को निकालता है ॥ उसे तैल का विज और सारक कहा है ॥ ११ ॥ पका
हुवा द्रुत वरस भरके ऊपर हीन वीर्य होता है ॥ और तैल कच्चा वा पका हुआ

चिरस्थायि गुणमि अधिक है ॥१२॥ सरसों और राई इनके तैलका गुणा ॥

दीपनं सार्षपं तैलं कटु पाक रसं लघु ॥ लेखनं स्पर्श

वीर्योष्णं तीक्ष्ण पित्रास्व दूयकम् ॥ १३ ॥ कफमे

दोऽनिला शोर्ध्नि शिरः कारा मया यहम् ॥ करण्डं कु

ष्टु कृमि शिवत्र कोठं दुष्ट कृमि प्रणुत् ॥ १४ ॥ तद्द्रा

जिक योस्तैलं विरोया न्मूत्रं रुच्छ्रु क्त ॥

भा० सरसों का तैल दीपने पाक और रसमें कटु हलका लेखन स्पर्शी और वीर्य में उष्ण तीव्र रक्तपित्र का दूयक ॥ १३ ॥ कफ मेद वात ववा सीर त्रिणे रोग करी । रोग इनका नाशक ॥ और कण्डू कुष्ट कृमि शिवत्र कोठं दुष्ट कृमि इनका नाशक ॥ १४ वैरुही एडरोंका तैल है विशेष करके मल मूत्र रुच्छ्रु को करने वाला है ॥

राजि कयोः कृष्ण राई आरक्त राई द्वयोः ॥ १५ ॥

तीरी तैल गुणाः ॥ तीक्ष्णोष्णं तुवरी तैलं लघु ग्राहि

कफा स्वजित् ॥ वह्नि कृद्विय हृत्करण्डू कुष्ट कोठ कृ

मि प्रणुत् ॥ १६ ॥ मेदो दोया यह च्चा पि ब्रणा शोय

हरं परम् ॥ अथ अतसी तैल गुणाः ॥

भा० राईकाली और लाल दीनोंका ॥ तुवरी तैल । तुवरी तैल तीखा उष्ण हलका कायिन कफ रक्त को जीतने वाला ॥ अग्नि को करने वाला विय नाशक और खुजली कुष्ट कोठ कृमि इनका नाशक ॥ १६ ॥ मेद दोय का नाशक और परम ब्रणा शोयका नाशक ॥ अनन्तर अतसीके तैल का गुणा ॥

अतसी तैल मानेयं स्निग्धोष्णं कफ पित्र कृत् ॥ क

टु पाक म चक्षुष्यं वल्यं वात हरं गुरु ॥ १६ ॥ मल कृ

द्र सतः स्वादु ग्राहि त्वग्दोय हृद घनम् ॥

वस्त्रो पाने तथाभ्यङ्गे नस्ये करस्य पूरगो ॥ १७ ॥ अ
नुपान विधौ चापि प्रयोज्यं वात शान्तये ॥

भा० अलसीका तेल आग्नेय चिकना उष्ण कफ पित्त को करने वाला ॥ पाक में कटु नेत्र के अहित बल के हित वात नाशक भारी होता है ॥ १६ ॥ मलको करने वाला रस में मधुर का विज त्वचा के दोषका नाशक गाढ़ा होता है ॥ वस्त्र में पीने में तथा अभ्यङ्ग में नास में कान के डालने में ॥ १७ ॥ अनुपान विधि में भी वात शान्ति के अर्थ योजना करनी चाहिये ॥

वररे तैल गुणा ॥ कुसुम्भ तैल मम्ल स्या दुष्णा गुरु
विदाहि च ॥ चतुर्भ्या महितं बल्यं रक्तपित्त कफप्र
दम् ॥ १८ ॥ अथ खारव सवीज तैलस्य गुणा ॥
तैल तु खस वीजानां बल्यं दृष्यं गुरु स्मृतम् ॥ वात
हृत्कफ हृच्छी तं स्वादु पाक रसं च तत् ॥ १९ ॥

भा० अनन्तर कुसुम्भ के तेल का गुण ॥ कुसुम्भ का तेल खट्टा होता है और उष्ण भारी विदाहि ॥ नेत्रों के अहित बल के हित रक्त पित्त कफ इनको करने वाला है ॥ १८ ॥ अनन्तर खस खस के तेल का गुण ॥ खस खस का तेल बल के हित शुक्र को करने वाला भारी कहा है ॥ वात नाशक और कफ नाशक शीतल रस पाक में मधुर बोह होता है ॥ १९ ॥

एरण्ड तैल गुणा ॥ एरण्ड तैलं तीक्ष्णोष्णं दीप
नं पिच्छिलं गुरु ॥ दृष्यं त्वच्यं वयः स्थापि मेधा का
न्ति बल प्रदम् ॥ २० ॥ कषायानुरसं सूक्ष्मं योनि शु-
क्रविशोधनम् ॥ विस्रं स्वादु रसे पाके सतिक्तं कटुकं
सरम् ॥ २१ ॥ विषमं ज्वर हृद्दोग षष्ट्युत्थादि शूल
नुत् ॥ हन्ति वातो दरा नाह गुल्मा शीला कटिग्रहान् ॥ २२

भा० अनन्तर अंडीके तैल का गुण ॥ अंडीका तैल तीखा गरम दीपन पिच्छिल भारी ॥ शुक्र को करने वाला त्वचाके हित वयको स्थापन करने वाला मेधा कान्ति बल इनको करने वाला है ॥ २० ॥ पीछेसे कसेला सूक्ष्म योनि शुक्र का शोधन ॥ दुर्गंधि युक्त रसमें मधुर और पाक में कुछ तिक्त कटुक सर ॥ २१ ॥ विषम ज्वर हृद रोग पीठ गुदा आदिके शूलका नाशक है ॥ वातो दर अफारा वायुगोला अशीला कटिग्रह ॥ २२ ॥

वात शोशित विड्वन्ध ब्रध्म शोथा मविद्र धीनु ॥ आम वात गजेन्द्रस्य शरीर वनचारिणाः ॥ २३ ॥ एक एव निहन्ताय मेरुण्ड स्नेह के प्रारी ॥ राल तैल गुणाः तैलं सर्जर सो दूतं विस्फोट व्रणा नाशानम् ॥ कुष्ठ पा मां किमि हरं वात प्लेय्या मया पहम् ॥ २४ ॥ सर्व तैल गुणाः । तैलं स्वयोनि गुणा कृद्वाग् भटे नाखिलं मतम् ॥ अतः शेषस्य तैलस्य गुणा ज्ञेया स्वयोनिवत् ॥ २५ ॥ इति श्री भाव प्रकाशे तैल वर्गः ॥

भा० वात रक्त वह्न मल वद सूजन आम विद्रधि इनको नाश करता है ॥ शरीर रूपी वन में विचरने वाले आम वात रूपी गजेन्द्र को ॥ २३ ॥ एक ही नाश करने वाला अंडी रूप सिद्ध है ॥ अनन्तर राल के तैल का गुण ॥ राल का तैल विस्फोट व्रणा इन का नाशक है ॥ और कुष्ठ पामा कृमि इन का नाशक तथा वात कफ के रोग का नाशक है ॥ २४ ॥ सब तैल के गुण ॥ जिसका तैल होता है उसीके समान गुण में होता है ऐसा वाग भटने सब तैलों का गुण माना है ॥ इस वाक्ये वाकी तैल के गुण अपने कारण के समान जानना चाहिये ॥ २५ ॥

इति भाव प्रकाशे तैल वर्गः ॥

अथ सन्धानवर्गः

तत्र काञ्जिकस्य लक्षणं गुराणांश्च ।

सन्धितं धान्यमण्डादि काञ्जिकं कथ्यते जनैः ॥ का
ञ्जिकं भेदि तीक्ष्णोष्णं रोचनं पाचनं लघु ॥ २६ ॥ दा
हज्वरहरं स्पर्शात्यानां ह्रातकफापहम् ॥ मायादि
वदकैर्यत्र क्रियते तद्गुराणाधि कम् ॥ २७ ॥ लघुवा
तहरन्तु रोचनं पाचनं परम् ॥

भा० अनन्तर सन्धान वर्गः ॥ उसमें कांजी का लक्षण और गुरा ॥ सन्धान कि
या हुआ धान्य मंडादि का को जन कांजी कहते हैं ॥ कांजी भेदन करने वाली तीखी
उष्ण रोचन पाचन हलकी होती है ॥ २६ ॥ स्पर्श से दाह ज्वर की नाशक और पी
ने से वात कफ की नाशक है ॥ उड़द आविके बड़े डालके जो की जाती है वोह गु
रामें अधिक होती है ॥ २७ ॥ हलकी बात नाशक रोचन परम पाचन होती है ॥

शूला अतीगी विवन्धाम नाशनं वस्ति शोधनम् ॥ २८ ॥

शोथमूर्च्छाभ्रमात्रिणां मदकरुणु विशोथिणाम् । कु

ष्ठिना रक्तपित्तीना काञ्जिकं न प्रशस्यते ॥ २९ ॥

पाण्डुरोगे यक्ष्मणि च तथा शोथा तु रेखु च ॥ क्ष

तक्षीणेतथा श्रान्तं मन्दज्वरनिपीडितं ॥ ३० ॥ रा

ते यान्तु हितं प्रोक्तं काञ्जिकं दोषकारकम् ॥

अथ नृत्योदकस्य लक्षणं गुराणांश्च

भा० शूल अतीगी विवन्ध आम इनका नाशक वस्ति शोधन ॥ २८ ॥ शोथ मूर्च्छा
भ्रम इनसे पीडित को और मद करुणु विषोथ वालोंको ॥ कुष्ठ वालोंको रक्त पि
त वालोंको कांजी अच्छी नहीं है ॥ २९ ॥ पाण्डु रोग राज यक्ष्मा तथा शोथ से

पीडित ॥ क्षत क्षीण तथा श्रान्त मन्द ज्वर से पीडित ॥ ३० ॥ इनको कांजी और दो
य कारक कहें ॥ अनन्तर तुयो दक का लक्षण और गुरा ॥

तुयो दकं यवै रामैः सनुयैः शकली कृतैः । यवैः उद
के संहितैः सन्धान वर्गीकृत्वात् ॥ तुयाम्बु दीपनं ह
द्यं पाण्डु कृमि गदा पतम् । तीक्ष्णो घां पाचनं पित्त
रक्त कृच्छ्रस्ति शूल वृत् ॥ ३१ ॥

अथ सौ वीरस्य लक्षणा गुराश्च

सौ वी रन्तु यवै रामैः पक्कै र्वा निस्तु यैः कृतम् ॥ गो
धूमै रपि सौ वीर माचार्याः केचि दू चिरे ॥ ३२ ॥ सौ वी
रन्तु ग्रह रयर्थाः कफ घ्नं भेदि दीपनम् ॥ उदा वत्ती
द्ग मदीस्थि शूलाना हेद्यु शस्य ते ॥ ३३ ॥

भा० मैं छिल के तक कच्चे टुकड़े किये हुवे जवों से तुयो दक होता है ॥ उदक
में संहित यवों से क्योंकि सन्धान वर्ग में कहते से ॥ तुयो दक दीपन हृद्य पाण्डु
रोग कृमि रोग इनका नाशक ॥ तीखा उष्ण पाचन पित्त रक्त को करने वाला वसि
शूलका नाशक है ॥ ३१ ॥ अनन्तर सौ वीर का लक्षणा और गुरा ॥

कच्चे जब अथवा पके हुवे वो छिल को के से किया हुवा सौ वीर है ॥ कोई आ
चार्य गेहू से भी सौ वीर होता है ऐसा कहते हैं ॥ ३२ ॥ सौ वीर संग्रहणी ववा
सीर कफ इनका नाशक भेदि दीपन है ॥ उदा वत्ती अद्ग मदी अस्थि शूल अ
फारा इनमें प्रशस्त है ॥ ३३ ॥

अथा रना लस्य लक्षणा गुराश्च ।

आरना लन्तु गोधूमै रामैः स्यान्नि सुयी कृतैः ॥ पक्कै
र्वा सन्धि तेस्तु सौ वीर सदृशं गुराः ॥ ३४ ॥

अथ धान्यान्लस्य लक्षणा गुराश्च ।

भा० अनन्तर आरनालका लक्षणा और गुणा । देखिल के के कच्चे गेहूं वैसे आरनाल होता है ॥ अथ वा पके सन्धान किये उनसे वोह सो वीर के सदृश गुणमें होता है ॥ ३५ ॥ अनन्तर धान्याम्ल का लक्षणा और गुणा ॥

धान्याम्ल शालि चूर्णाञ्च कोद्रवादि कृतं भवेत् ॥

धान्याम्लं धान्य योनि त्वाग्नीरागं लघु दीपनम् ॥ ३५ ॥

अरुची वात रोगेषु सर्वेष्व्वास्थापने हितम् ॥

अथ शिराडा क्या लक्षणां गुणाश्च

शिराडा की राजि का युक्तैः स्यान्मूलकदलद्रवैः ॥ -

सर्षपस्वरसे त्रीपि शालि पिष्ट क संयुतैः ॥ ३६ ॥

सन्धितै रिति शेषः ।

भा० चावल का चूर्ण और कोद्रे आदि से बनाया हुआ धान्याम्ल होता है ॥ धान्य से होने से धान्याम्ल होता है वोह प्रीराग हलका दीपन है ॥ ३५ ॥ अरुचि में वात रोग में और सब आस्थापन में हित है ॥ अनन्तर शिराडा की लक्षणा और गुणा ॥ राई से युक्त मूलीके पत्रों का रस ॥ और सरसों के स्वरस से भी चावलकी पिष्टी में युक्त इनसे शिराडा की होती है ॥ ३६ ॥ सन्धितै रिति शेषः

शिराडा की रोचनी गुर्वी पित्र श्लेष्म करी स्मृता ॥

अथ शुक्तस्य लक्षणां गुणाश्च

कल्द मूल फलादीनि सस्नेह लवणा नि च ॥ यत्र

द्रव्ये ऽभि स्यूयन्ते तच्छु क्त मभि धी यते ॥ ३७ ॥

शुक्तं कफ घ्नं तीक्ष्णोष्णं रोचनं पाचनं लघु ॥ यां

खडु क्रिमि हरं रूक्षं भेदनं रक्त पित्र कृतम् ॥ ३८ ॥

अथ सन्धानस्य लक्षणां गुणाश्च ।

भा० शिरडा की रोचन भारी पित्त कफ को करने वाली कही है ॥ अनन्तर शु-
क्र का लक्षणा और गुण । कन्द मूल फल आदि और चिकनाई लवण ॥
येह जिस द्रव्य में पड़ते हैं उसको शुक्र कहते हैं ॥ ३७ ॥

शुक्र कफ नाशक तीखा उष्ण रोचन पाचन हलका ॥ पाण्डु क्रिमि काना-
शक रूखा भेदन रक्त पित्त का करने वाला है ॥ ३८ ॥

अनन्तर सन्धान का लक्षणा और गुण ॥

कन्द मूल फलाढ्यं यत् तन्नु विज्ञेय मा सुतम् । त-
द्रुच्यं पाचनं वात हरं लघु विशेषतः ॥ ३९ ॥

अथ मद्यस्य नामानि लक्षणां गुणाश्च ।

मद्यन्तु सी धुमे रेय मिराच मदिरा सुरा ॥ क्वादम्ब
री वासुणी च हालापि बल बल्लभा ॥ ४० ॥ येयं
यन्मादकं लोके स्तन्मद्यमभिधीयते ॥ यथारि-
ष्टं सुरा सीधु रास वाद्य मने कथा ॥ ४१ ॥ मद्यं स-
र्वं भवेदुष्यं पित्त कृद्वात नाशनम् ॥ भेदनं शीघ्र
पाकञ्च रूक्षं कफ हरं परम् ॥ ४२ ॥ अम्लञ्च
दीपनं रुच्यं पाचनं चाणु करि च ॥ तीक्ष्णं सूक्ष्म-
ञ्च विषादं व्यायिच विकाशि च ॥ ४३ ॥

भा० कंद मूल फल से युक्त जो होता है उसको आसुत जानना चाहिये ॥ वोह
रूचिको करने वाला पाचन वात नाशक विशेष करके हलका होता है ॥ ३९ ॥
अनन्तर मद्यके नाम लक्षणा और गुण । मद्य सीधू में रेय इर मदिरा सु-
रा ॥ क्वादं वरी वासुणी हाला बल बल्लभा ॥ येह मीदरा के नाम है ॥ ४० ॥
जो पानी नष्ट करने वाला है उसको लोग मद्य कहते हैं ॥ जैसे अरिष्ट सुरा सी-
धु और सब आदि अनेक प्रकार के हैं ॥ ४१ ॥ सब मद्य उष्ण पित्त करने वा-
ले वात नाशक ॥ भेदन शीघ्र पाक रूखे परम कफ नाशक है ॥ ४२ ॥

और खट्टे दीपन रुचि को करने वाले पाचन आभुकारी ॥ तीक्ष्ण सूक्ष्म विशद व्यवायि और विकाशि होते हैं ॥ ४३ ॥

अथारिष्टस्य लक्षणं गुणाश्च ।

पक्षौष्य घाम्बु सिद्धं यन्मद्यं तत्र स्वाद रिष्टं कम् ॥

(क) अरिष्टं मद्य मिति लोके । यथा द्राक्षा रिष्टम् । दश मूला रिष्टम् । ववूला रिष्ट मिति ।

अरिष्टं लघु याकेन सर्वं तत्र गुणाधिकम् ॥ अरिष्टस्य गुणा ज्ञेया वीज द्रव्यं गुणैः समाः ॥ ४४ ॥

भा० अनन्तर अरिष्ट के लक्षण और गुण ॥ पक्क भौषध का जो सिद्धजल है उसको मद्य कहते हैं और वो अरिष्टक है ॥ (क) लोक में मद्य कहते हैं । जैसे द्राक्षा रिष्ट । दश मूला रिष्ट । ववूला रिष्ट इस प्रकार । अष्ट पाक करके हलका और सबसे गुण में अधिक होता है ॥ वीज द्रव्य गुण के समान अरिष्ट का गुण जानना चाहिये ॥ ४४ ॥

अथ सुरापान लक्षणं गुणाश्च ॥

शालि यष्टि कपि यष्टि कृतं मद्यं सुरा स्मृता ॥ सुरागुर्वीबलस्तन्य पुष्टि मेदः कफ प्रदा ॥ ४५ ॥ ग्राहि शोथञ्च गुल्माशौ ग्रहणी मूत्र कृच्छ्रं नुत् ॥ अथ सुराभे दो वारुणी तस्या लक्षणं गुणाश्च ॥ ४६ ॥

भा० अनन्तर सुरापान का लक्षण और गुण ॥ सांठी चांवल की पिठ्ठी आदि से बनाया हुआ मद्य को सुरा कहा है ॥ सुरा भारी बल दुग्ध पुष्टि मेद कफ को करने वाली ॥ ४५ ॥ काविज सृजन वाय गौला ववासीर संग्रहणी मूत्र कृच्छ्र इनका नाशक है ॥ अनन्तर सुरा का मेद वारुणी उसका लक्षण और गुण ॥ ४६ ॥

पुनर्नवा शिला पिष्टे वारुणी विहिता स्मृता ॥ -

संहितै स्नाल खजूर रसे र्या सापि वारुणी ॥४७॥

सुरा वद्धारुणी लघ्वी पीनसा ध्यान शूलनुत् ॥

सुरा तो भेदार्य लघ्वी ति ।

अथ सीधु ह्यस्य लक्षणं गुणांश्च ।

भा० पुनर्नवा शिला पिस से विहित वारुणी कही है ॥ और ताड खजूर इनके र सके संधान से जो होती है वोभी वारुणी है ॥४७॥ सुराके समान वारुणी हलकी और पीनस आध्यान शूल इनकी नाशक है ॥ सुरासे भेदार्य हलकी ऐसा क है ॥ अनन्तर दोनों सीधू का लक्षण और गुण ॥

इक्षोः पक्षैः रसैः सिद्धः सीधुः पक्करसश्च सः ॥ आ

मै सै रे वयः सीधुः सच शीत रसः स्मृतः ॥ ४८ ॥

सीधुः पक्करसैः श्रेष्ठः स्वराग्नि बल वर्णा कृत् ॥ वा

त पित्त करः सद्यः स्नेह तो रोचनो हरेत् ॥ ४९ ॥

बिबन्ध मेदः शोफाशः शोफो दर कफा मयान् ॥ त

स्मा दल्प गुणः शीतः रसः संले खनः स्मृतः ॥ ५० ॥

अथा सवस्य लक्षणं गुणांश्च ।

भा० इक्षुके पक्करससे सिद्ध सीधु और पक्करस बोहै ॥ तथा उसी कच्चे रससे जो सीधू होता है उसको शीत रस कहा है ॥ ४८ ॥ पक्करस सीधू श्रेष्ठ है वोह स्वर अग्नि बल वर्ण इनको करने वाला ॥ और वात पित्त को करने वाला तत्काल । स्नेह न रोचन होता है ॥ ४९ ॥ और बिबन्ध मेद शोफ ववासीर शोफो दर कफ के रोग इनको नाश करता है ॥ वृस्से अल्प गुण शीत रस कहा है ॥ और लेख न कहा है ॥ ५० ॥ अनन्तर आसव का लक्षण और गुण ॥

यद् यक्ष्णीय घाम्बुन्यां सिद्धं मद्यं स आसवः ॥

यथा लोहास वादिः ।

आसवस्य गुणा ज्ञेया वीज द्रव्य गुरोः समाः ॥

अथ नव पुराणा मद्य गुणाः ॥

मद्यं नव माभिव्यन्दि त्रिदोष जनकं सरम् ॥ अहृद्यं

बृंहणं न्दाहि दुर्गन्धं विषादं गुरु ॥ ५१ ॥ जीरीन्तटे

व रोचिष्णं कृमि प्लेक्षा निला पहम् ॥ इद्यं सुग

न्धि गुणा वल्लघु स्रोतो विशोध नम् ॥ ५२ ॥

भा० जो अपक्व औषधके जलसे सिद्ध मद्य बोह आसव है ॥ जैसे लोहा सब आदि । आसव के गुण वीज द्रव्य के गुणके समान जानना चाहिये ॥ अनन्तर नया और पुराने मद्य का गुण । नवीन मद्य अभिव्यन्दि त्रिदोष को करने वाला सर ॥ अहृद्य पुष्ट दाह को करने वाला दुर्गन्ध विषाद भारी ॥ ५१ ॥ और बोही जीरी पुराना रुचिका करने वाला कृमि कफ वात इनका नाशक ॥ इद्यं सुगन्धि गुणा युक्त हलका स्रोतों का शोधन करने वाला है ॥ ५२ ॥

अथ सात्विकानां मद्यं पिवतां चेष्टा विशेषाः ॥ ५३ ॥

सात्विके गीतं हास्यादि राजसे साहसा दिकम् ॥ ता

मसे निन्द्य कर्माणि निद्राञ्च मदिरा चरेत् ॥ ५३ ॥

आचरेत् कुर्वन् । विधिना मात्र या काले हितैर

त्रैर्यथा वलम् ॥ प्रहृष्टो यः पिवेन्मद्यं तस्य स्याद

मृतं यथा ॥ ५४ ॥ ५४ ॥ ५४ ॥

भा० मद्य पीने वाले सात्विकादि योंके चेष्टा विशेष । सात्विकके गीत हास्य आदि राजसमें साहसा दिक ॥ ५३ ॥ तामसमें निन्द्य कर्म और निद्रा इनको मदिरा करती है ॥ विधि और मात्रासे मद्य पर हित अन्नके साथ वला बुसार ॥ हर्ष युक्त हुवा जो पीताहे उसको मद्य अमृतके समान जानना चाहिये ॥ ५४ ॥

किन्तु मद्यं स्वभावेन यथै वान्नं तथा स्मृतम् ॥ अ

युक्ति युक्तं रोगाय युक्तियुक्तं यथा स्मृतम् ॥ ५५ ॥

अथ मद्यानां गन्धनाशनोपायः॥

मुसैल वाल गद जीर कधान्य कैल । यश्चर्व यत्स
दसि वाचं मभिव्य नक्ति ॥ स्वाभाविकं मुखज भुज्क
तिपूति गन्धं गन्धञ्च मद्यल सुतादि भवञ्च नूनम् ॥
५६ ॥ इति श्री भाव प्रकाशे सन्धान वर्गः ॥

भा० मद्य स्वभाव से जैसे अन्न वैसे कहा है ॥ लेकिन देतर कीव से पीया हुआ रोग
को करता है और तरकीव के साथ पीया हुआ अमृत के समान होता है ॥ ५५ ॥

अनन्तर मद्यों का गन्ध नाशन उपाय ॥ ॥ नागर मोथा लालुका कुट जीरा घनियां
इलायची इनकी चयाकर जो मभामें बोले उसकी स्वाभाविक मुखकी गन्धि होती है
और दुर्गन्ध तथा मद्यल सुन आदिकी गन्ध निश्चय दूर होती है ॥ ५६ ॥

इति भाव प्रकाशे सन्धान वर्गः ॥ + ॥

अथ मधु वर्गः

तत्र मधुनो नामानि गुणाश्च ।

मधु माक्षी कमाधीक क्षौद्रं सारघ्य मी रितम् ॥ मक्षि-
का वरती भृङ्गवान्त पुष्यर सोड भवम् ॥ ५७ ॥ मधु
शीतं लघु स्वादु रूक्षं ग्राहि विले र्व नम ॥ चक्षुष्यं
न्दीयनं स्वर्ग्यं व्रण शोधन रोपणम् ॥ ५८ ॥ सौकुमा-
र्यं करं सूक्ष्मं परं श्रोत्रो विशोधनम् ॥ कयाथा नुरं
सं ह्लादि प्रसाद जनकं परम् ॥ ५९ ॥

भा० अनन्तर मधु वर्गः । उसमें मधुके नाम और गुण । मधु माक्षी कमाधीक क्षौ-
द्रं सारघ्य येह मधुके नाम है ॥ मखवी वरं भुंवर इनका गेरा हुआ पुष्यरस से उ-
पय है ॥ ५७ ॥ मधु शीतल हलका मधुर रूखा काविज नैरवन ॥ नेत्रके हित दीप-
न स्वर्गको अच्छ करन वाला व्रण शोधन रोपण ॥ ५८ ॥ सुकु मारता को करने

वाला सूक्ष्म अत्यन्त स्रोतों का प्रोधान ॥ पीके से कसेला हर्षको देने वाला और य
रम स्वच्छता को करने वाला ॥ ५६ ॥

वरुण्य मेधा करं वृष्यं विशदं रोचनं हरेत् ॥ कुष्ठार्णः
कास पित्रास्र कफ मेह क्लम कृमीन् ॥ ६० ॥ मेदश्च
षण वमि प्रवास हिक्कातीसार विडू ग्राहान् ॥ दाह
क्षत क्षयांस्तनु योग वाह्य ल्य वात लम् ॥ ६१ ॥

अथ मधु भेदाः । माक्षिकं भ्रामरं क्षौद्रं पैत्रिकं छात्र
मित्यपि ॥ आर्ष्य मौद्गलकं दाल मित्यथौ मधु जातयः
॥ ६२ ॥ अथ तेषां लक्षणां गुराण अथ ॥

भा० वर्णके हित कान्ति को करने वाला शुक्र को करने वाला विशद रोचन है और
र ॥ कुष्ठ ववा सीर कास रक्त पित्त कफ प्रमेह क्लम क्रमि इनको ॥ ६० ॥ और मेद
वृषा वमन प्रवास हिक्की, अतीसार मल ग्रह इनको तथा ॥ दाह क्षत क्षय इनको
भी दूर करता है और योग वाही अल्प वात को करने वाला है ॥ ६१ ॥ अनन्तर मधु
के भेद । माक्षिक भ्रामर क्षौद्र पैत्रिक छात्र ॥ आर्ष्य औद्गलक और दाल इस प्र
कार आठ मधुकी जाती है ॥ ६२ ॥ अनन्तर उनके लक्षणा और गुराण ।

तत्र माक्षिकस्य लक्षणा म् ।

माक्षिकाः पिङ्गवर्णास्तु महन्त्यो मधु माक्षिका ॥ ता
भिः कृतं तैलवर्गं माक्षिकं परिकीर्तितम् ॥ ६३ ॥
माक्षिकं मधुयु श्रेष्ठं नेत्रा मय हरं लघु ॥ कामलार्णः
क्षत प्रवास कास क्षय विनाशनम् ॥ ६४ ॥

अथ भ्रामरस्य लक्षणां गुराण अथ ॥

किञ्चित्सूक्ष्मैः प्रसिद्धेभ्यः यदृप देभ्योऽलिभिश्चितम्
निर्मलं स्फटिकाभं यत्तन्मधुभ्रामरं स्मृतम् ॥ ६५ ॥

भा० उक्ते माक्षिक का लक्षणा । माक्षिक पिङ्गु वर्णा वड्डी मधु भरवती होती है ॥ उनसे किया हुआ तेल के समान वर्णा ऐसे को माक्षिक कहते हैं ॥ ६३ ॥ माक्षिक मधु श्रेष्ठ नेत्ररोगका नाशक हलका होता है और कामला ववासीर क्षत श्वस्तकास्त क्षय इनका नाशक है ॥ ६४ ॥ अनन्तर भ्रामर का लक्षण और गुण ॥ किंविद सूक्ष्म प्रसिद्ध वर पद भव ऐसे संय किया हुआ ॥ निर्मल स्फटिक के समान जो होता है । उसको भ्रामर कहते हैं ॥ ६५ ॥

भ्रामरं रक्त पित्तं मूत्र जाड्य करं गुरु ॥ स्वादु याक म
मिथ्यन्दि विशेषा त्पिच्छिलं हिमम् ॥ ६६ ॥

अथ क्षौद्रस्य लक्षणां गुणांश्च ॥

माक्षिकाः कपिलाः सूक्ष्माः क्षुद्रा रव्यास्तत्कृतं मधु ॥
मुनिभिः क्षौद्रं मित्युक्तं तद्गुणात् कपिलं भवेत् ॥ ६७
गुरो माक्षिकवत् क्षौद्रं विशेषान्मेहनाशनम् ॥

अथ पौति कस्य लक्षणां गुणाः ॥

भा० भ्रामर रक्त पित्त का नाशक सूत्र जड़तर इनको करने वाला भारी ॥ पाकमें मधुर अभिष्यन्दि विशेष करके पिच्छिल शीतल होता है ॥ ६६ ॥

अनन्तर क्षौद्र का लक्षण और गुण ॥ ॥

सूक्ष्म कपिल क्षुद्र नाम जो माक्षिका होती है उनका किया हुआ जो मधु है ॥ उसको मुनियों ने क्षौद्र ऐसा कहा है और दोह वर्ण में कपिल होता है ॥ ६७ ॥ गुणाने माक्षिक के समान क्षौद्र होता है विशेष करके प्रमेह नाशक है ॥

अनन्तर पौतिक का लक्षण और गुण ॥ ॥

कृष्णा या मश्र कोपमा लघुतरा प्रायो महा पीडिका ॥
वृहानान्तरु कीट रान्तर गताः पुष्या सर्वं कुर्वते ॥ ६८
तास्तज्जैरिह पूतिका निगदिता स्ताभिः कृतं सपिषा
तुल्यं यत् मधु तदने चरजनैः संकीर्तितं पौतिकम् ६९

पौनिकं मधु रूक्षो घ्नं पित्त दाहास्त्र वात कृत् ॥ विदा
हि मेह रुच्छ्र घ्नं ग्रन्थ्यादि क्षत शोथि च ॥ ७० ॥

भा० जो काली मच्छर के समान बहुत छोटी प्रायः बड़ी पीड़िका ॥ पुराने
दृक्ष के खोड़ में रहने वाली युष्के आसव को करती है ॥ ६८ ॥ उन को
उनके जानने वाले मनुष्यों ने यहां पर पुत्रिका ऐसा कहा है ॥ उनका बनाया
हुवा घृत के समान ॥ जो मधु होता है उसको बन के विचरने वाले जनों ने पौ-
निक कहा है ॥ ६९ ॥ पौनिक मधु रूखा उष्ण पित्त दाह रक्त वात इनकी करनेवा
ला ॥ विदाहि और प्रमेह मूत्र रुच्छ्र इनका नाशक तथा गाढ आदि क्षत शोथि ।
भी है ॥ ७० ॥

छात्रस्य लक्षणां गुराणाः ॥

वरटाः कपिलाः पीताः प्रायो हिम वतो वने ॥ कुर्व
न्ति छत्र का कारं तज्जं छात्रं मधु स्मृतम् ॥ ७१ ॥
छात्रं कपिल पीतं स्यात् पिच्छिलं शीतलं गुरु ॥ स्वादु
पाकं कृमि श्रित्त रक्त पित्त प्रमेह जित् ॥ ७२ ॥
अम तृणमोह विष हृत्त तर्पणा च्च गुराणाधिकम् ॥

अथार्धस्य लक्षणां गुराणां ।

मधुक वृक्षनिर्यासं जरत्कार्वा अमोद्भवम् ॥ स्वव
न्या र्धं नदा ख्यातं श्वेतकं मालवे पुनः ॥ ७३ ॥
तीक्ष्णां तुरण्डां सु या पीता मक्षिकाः षट् पदे माः ।
आर्ध्यास्तास्तत्कृतं यत्र दार्ध्यं मित्य परे जगुः ॥ ७४ ॥
आर्ध्यं मध्वति चक्षुष्यं कफ पित्त हरं परम् ॥ कथा
यं कटुकं पाके तिलान्ध वल पुष्टि कृत् ॥ ७५ ॥

भा० ॥ ॥ छात्र का लक्षण और गुराणां ॥ ॥ वरं कपिल पीली प्रायः हि

मानस्यके बनमें होतीहै ॥ वोह छातेके आकार को बनाती है । उसका मधु ।
 छात्रक हो ना है ॥ छात्रकपिल पीला होताहै और पिच्छिल शीतल भारी ॥
 पाकमें मधुर होतीहै ॥ और कृमि शिवत्र रक्त पित्त प्रमेह इनको जीतने वाला
 ॥ ७२ ॥ तथा भ्रम तृया मोह विय इनका नाशक तर्पण गुणमें अधिक होता
 है ॥ ॥ ॥ अनन्तर अर्घ्यका लक्षणा और गुण ॥ ॥ ॥
 महुवे के वृक्षका गोन्द जन्कार्वा भ्रम में उत्पन्न ॥ भिरते है सफेद उसको आ
 र्घ्य ऐसा कहाहै और मालवे में भी होताहै ॥ ७३ ॥ जो भीरे के समान मक्खिया ती
 क्षा मुख वाली पीली होतीहै ॥ वोह आर्घ्य है उनका किया डुवा जो मधुहें जस
 का और आचार्य अर्घ्य कहते है ॥ ७४ ॥ आर्घ्य मधु अति नेत्रके हित और अ
 त्यन्त कफ पित्त का नाशक है ॥ और कसेला पाक में कटु तिक्त वलपुष्टिके
 करने वाला है ॥ ७५ ॥

अथो दालकस्य लक्षणां गुणाः ।

प्रायो वल्ली कम ध्यस्थाः कपिलाः स्वल्प कीट काः ।
 कुर्वन्ति कपिलं स्वल्पं तस्या दौ दालकं मधु ॥ ७६ ॥
 औदालकं रुचिकरं स्वयं कृष्ट विषा पहम् ॥ क
 थाय मुष्ण मस्लञ्च कटु पाकञ्च पित्त कृत् ॥ ७७

अथ दालस्य लक्षणां गुणाः ॥

भा० अनन्तर औदालका लक्षणा और गुण । प्राय लताओंके बीच रहनेवा
 ली कपिल छोटे कीड़े होतेहैं ॥ वोह थोडा कपिल वर्ण मधु करती है उसको औदा-
 लक मधु कहते है ॥ ७६ ॥ औदालक रुचिके करने वाला स्वरके हित कृष्ट विष
 का नाशक ॥ कसेला उष्ण स्वदा पाक में कटु पित्तको करने वाला होताहै ॥ ७७ ॥
 अनन्तर दाल का लक्षणा और गुण ॥

मं स्तुत्य पतितं पुष्या द्यनु पत्रां परि स्थितम् ॥ मधु
 रस्ल कथा यञ्च तद्दालं मधु कीर्त्तितम् ॥ ७८ ॥ दा
 लं मधु लघु प्रोक्तं दीपनीयं कफा पहम् ॥

कषाया नुरसं रूक्षं रुच्यं कृदि प्रमेह जित् ॥ ७९ ॥ अ

धिकं मधुरं स्निग्धं चंहरां गुरु भारिकम् ॥

[लघु पाके गुरु भारिकं तुलितम् । अथ नव पु
रारा मधु गुणाः ॥]

भा० जो पुष्यसे चूकर पत्रे पर गिरा ठहरा रहता है ॥ मीठा खट्टा कसेला उस
को दाल मधु कहते हैं ॥ ७९ ॥ दाल मधु हलका दीपन कफ नाशक कहा है ॥
और पीछे से कसेला रूखा रुचि को करने वाला और वमन तथा प्रमेह को
जीतने वाला है ॥ ७९ ॥ बहुत मीठा चिकना पुष्ट तोल में भारी ॥
पाकमें हलका और तोलमें भारी होती है । अनन्तर नये और पुराने मधु
के गुण ॥

नवं मधु भवेत् पुष्टै नाति प्लेख्यं हरं सरम् ॥ पु

रारां ग्राहकं रूक्षं मेदोश्च मति लेखनम् ॥ ८० ॥

मधुनः शर्करां याश्च गुड स्यापि विशेषतः ॥ एक स

स्वत्सरे त्वर्त्ति पुरारात्वं स्मृतं बुधैः ॥ ८१ ॥

अथ मधुनः शीतस्य गुणाधिव्यमुष्णातायां निषेधः

भा० नया मधु पुष्ट होता है बहुत कफ नाशक नहीं होता तथा सर होता है
॥ पुराना काविज रूखा मेद नाशक अति लेखन होता है ॥ ८० ॥ मधु की शर्करा
और विशेष करके गुड़की भी शर्करा ॥ एक वरस के बाद पुरानी पंडि तोंने
कही है ॥ ८१ ॥ अनन्तर शीत मधुका गुणाधिव्य और उष्णातामें निषेध कहे
ते हैं ॥

विष पुष्या दपि रसं सविया भ्रमरा दयः ॥ गृही ।

त्वा मधु कुर्वन्ति तच्छीतं गुणा वन्मधु ॥ ८२ ॥

वियान्वयात्त दुग्दन्तु द्रव्ये रणियो नवा सह ॥ उष्णा

त्स्योष्णा काले च स्मृतं वियसमं मधु ॥ ८३ ॥

भा० विषयुष्य सेमी रस को विष वाले भ्रमरादि क ॥ लेकर मधु करते हैं ति-
से शीतगुरा वाला मधु होता है ॥ ८२ ॥ विषसे उत्पन्न होने से वोह मधु उष्ण
द्रव्य के साथ ॥ उष्ण से पीड़ित को उष्ण कालमें विषके समान मधु कहा है ॥

८३ ॥ अथ मयनम् । मयनन्तु मधुच्छिष्टं मधुशेषञ्च ।
सिक्थकम् ॥ मध्वा धारो मदनं कं मधूषितमपि सृ-
तम् ॥ ८४ ॥ मदनं मृदु सुस्निग्धं भूतञ्चं ब्रणरोपणम्
भग्नसन्धाने कृद्वातकुष्ठवीसर्प रक्तजित् ॥ ८५ ॥

इति श्री भाव प्रकाशे मधुवर्गः ।

भा० अनन्तर मोम ॥ मयन मधुच्छिष्ट मधुशेष सिक्थक ॥ मध्वा धार म-
दनक मधूषित येह मोम के नाम कहे हैं ॥ ८४ ॥ मोम मृदु चिकना भूतका ना-
शक ब्रणरोपण ॥ दूटे हाड को जोड़ने वाला वात कुष्ठ वीसर्प रक्त इनको जीत-
ने वाला है ॥ ८५ ॥ ॥ इति भाव प्रकाशे मधुवर्गः ॥ ॥

अथेक्षुवर्गः

तत्रादौ इक्षोर्नामानि गुराणश्च ॥

इक्षुर्दीर्घच्छदः प्रोक्तस्तथा भूमिरसोऽपि च ॥ गुड-
मूलोऽसिपत्रश्च तथा मधुतृणाः स्मृतः ॥ १ ॥ इक्ष-
वोरक्तपित्तघ्नावल्या वृष्या कफप्रदाः ॥ स्वादुपा-
करताः स्निग्धा गुरवो मूत्रलाहिमाः ॥ २ ॥

अथ क्षुभेदाः

पौण्ड्र को भीरु कम्प्रापि वंशकः शत पोरकः ॥ का

नारस्तापसे क्षुम्प्र काण्डे क्षुः सूचि पत्रकः ॥ ३ ॥

नैपालो दीर्घ पत्रश्च नील योगोऽथ कोशकः इत्ये

ता जानयस्ते यां कथयामि गुणानपि ॥ ४ ॥

अथ श्वेत पौण्ड्राभौर री गुणाः ॥

भा० अनन्तर ईख के भेद । पौण्ड्रक भीरुक वंशक शत पोरक ॥ कान्तारता
पसे क्षु काण्डे क्षु सूचि पत्रक ॥ ३ ॥ नैपाल दीर्घ पत्र नील पोर और कोशक ॥
इस प्रकार ये जानि उनकी है और गुणों को कहेंगे है ॥ ४ ॥

अनन्तर सुफेद पौण्ड्रा भौर री उनके गुण ॥

वात पित्त प्रशमनो मधुरो रस पाकयोः ॥ सुशीतो वृ-

हणो बल्यः पौण्ड्र को भीरु कस्तथा ॥ ५ ॥

अथ कारिया कुशि आर गुणाः ॥

कोश कारो गुरुः शीतो रक्त पित्त क्षयक पहः ॥ ॥

कान्ता रेक्षु गुणाः ॥ कान्ता रेक्षु गुर वृष्यः श्लेष्म

लो वृहणाः सरः ॥ वडौषा गुणाः ॥ दीर्घ पोरः सु

कठिनः सक्षारो वंशकः स्मृतः ॥ शत पोरक गुणाः ॥

शत पर्वा भवं किञ्चित्कोश कार गुणा न्वितः ॥ विशेष

यात्किञ्चिदुष्णाश्च सक्षारः पचना पहः ॥ ६ ॥

भा० वात पित्त का शमन मधुर रस और पाक में ॥ सुशीत पुष्ट बल के हिंग के
ठा और भौर री होते हैं ॥ ५ ॥ अनन्तर वाले गन्ने के गुण ॥ ॥

काला गन्ना भारी शीतल रक्त पित्त क्षय इनका नाशक है ॥ कान्तार ईख
के गुण ॥ कान्तार ईख भारी शुक्र को करने वाला कफ को करने वाला -

सुष्ट सर होता है ॥ अनन्तर लंबी पोर का ईरव ॥ बहून कठिन क्षार के सहित वंशक कहा गया है ॥ अनन्तर प्रात पोर का गुण ॥ प्रात पोर कुछ कोषाकारके समान गुणमें होता है ॥ विशेष करके कुछ गरम क्षार के सहित वात नाशक है ॥ ६ ॥ तापसे क्षु गुणाः ॥

तापसे क्षु भवेन्मृद्धी मधुरा प्लेख कोयनी ॥ तर्पणी रुचि कृञ्चापि वृथ्याच बल कारिणी ॥ ७ ॥

कारण्डे क्षु गुणाः । एवं गुरोस्तु कारण्डे क्षुः स तु वात प्रकोपणाः ॥ [अथ सूची पत्र नैपाली दीर्घ पत्र नील पोरगां गुणाः ॥] सूची पत्रो नील पोरो नैपालो दीर्घ पत्रकः ॥ ८ ॥ वातलाः कफ पित्त घ्राः सकयाया विदाहिनः ॥ [मनो गुप्ता गुणाः] मनो गुप्ता वात हरी तृषणा मय विनाशिनी ॥ सुशीता मधुरा तीव रक्त पित्त प्रणा शिनी ॥ ९ ॥

अथ बाल युव वृद्धे क्षु गुणाः ।

भा० अनन्तर तापसे क्षुके गुण । तापसे क्षु मुलायम मधुर कोप को करने वाला ॥ तर्पणा रुचि को करने वाला शुक्र को करने वाला बल को करने वाला है ॥ ७ ॥ काण्डे क्षुका गुण । ऐसे ही गुण वाला कारण्डे क्षु होता है और वोह वात को करने वाला है ॥ अनन्तर सूची पत्र नैपाली दीर्घ पत्र नील पोर इनके गुण ॥ सूची पत्र नील पोर नैपाल दीर्घ पत्रक ॥ ये वात को करने वाले कफ पित्त के नाशक कषाय के सहित विदाहि होते हैं ॥ मनो गुप्तके गुण ॥ मनो गुप्ता वातनाशक तृषारीगका नाशक ॥ शीतल मधुर अतीव रक्त पित्त की नाशक है ॥ ९ ॥ अनन्तर बाल युवा वृद्ध ऐसे ईरवके गुण ॥

वाल इक्षुः कफ कुप्यी न्नेदो मेह कर श्र सः ॥ ५ ॥

युवानु वात इत् स्वदु रीष तीक्ष्ण श्र पित्तनुत् ॥१०॥

रक्त पित्त हरो वृद्धः क्षत हृद्बल वीर्य्यं कृत् ॥

भा० बाल ईश्व कफ को करता है और भेद भेद को करने वाला वोह है ॥ यु-
वा वात नाशक मधुर थोड़ा तीखा पित्त नाश होता है ॥१०॥ वृद्ध रक्त पित्त का
नाशक क्षत नाशक और बल वीर्य्य को करने वाला है ॥

अथाङ्ग भेदेन भेदः ॥

मूले तु मधुरो अत्यर्थं मध्येऽपि मधुरः स्मृतः ॥ अग्रे
ग्रन्थियु विज्ञेय इक्षुः पटु रसो जनेः ॥११॥

अथ दन्त पीडिते क्षु रसस्य गुणाः ॥

दन्त निथी डित स्थेक्षो रसः पित्ता स्त्र नाशानः ॥ श-
र्करा सम वीर्य्यः स्या दवि दाही कफ प्रदः ॥१२॥

अथ यन्त्र पीडिते क्षु रसस्य गुणाः ॥

भा० अनन्तर अंग भेद से भेद । मूल में अत्यन्त मधुर मध्य में भी मधुर कहा
है ॥ अग्र में और ग्रन्थि में ईश्व लवण रस जन जानते है ॥ ११ ॥ अनन्तर दन्त
पीडित ईश्व के रस का गुण । दन्त पीडित ईश्व का रस रक्त पित्त का नाशक है ॥
शर्करा के सम वीर्य्य होता है और अवि दाही कफ को करने वाला है ॥ १२ ॥

अनन्तर कौल्लू में परे हुवे ईश्व के रस का गुण ॥ * ॥

मूला ग्रजन्तु ग्रन्थ्यादि पीड नान्मल सङ्क रान् ॥ किं
ञ्चि त्काल विधृत्या च विच्छन्तिं याति यान्त्रिकः ॥
१३ ॥ तस्मा द्विदाही विद्यम्भी गुरुः स्याद् यान्त्रिको र
सः ॥ अथ पर्यु पिते क्षु रसस्य गुणाः ॥

रसः पर्यु पिते नेष्टो ह्य स्त्रो वाता पहो गुरुः ॥ कफ पि-

नकरः शोथी भेद नप्राति मूलतः ॥ १५ ॥

अथ पक्वस्य क्षुरसस्य गुणाः ॥ १६ ॥

भा० मूल अथ गांठ आदिके पीडन से मल संकर से ॥ कुक्षु देर रखने से को
लूकाविगड जाता है ॥ १३ ॥ इस वासे बिदाही विस्मृभी भारी को लूका रस होला
है ॥ अनन्तर वासी इखके रस का गुण ॥ वासी रस अच्छा नहीं होता और
खट्टा वात नाशक भारी ॥ कफ पित्त को करने वाला शोथ को करने वाला है ॥ १५ ॥

अनन्तर पके हुवे ईखके रस का गुण ॥

पक्वो रसो गुरुः स्निग्धः सुतीक्ष्णः कफ वात शुद्ध ॥ गु

ल्मानाह प्रशमनः किञ्चि पित्त करः स्मृतः ॥ १५ ॥

अथे क्षुरसस्य विकाराणां गुणाः ॥

इक्षो विकारा स्तृङ् दाह मूर्च्छा पित्तास्र नाशनाः ॥

गुरवो मधुरा बल्याः स्निग्धा वात हराः सराः ॥ १६ ॥

वृष्या मोह हराः शीता वृंहणा वियहारिणाः ॥

अथ फारिगत । हरकारा वच्छो वा इति लोके ।

भा० पके का रस भारी चिकना तीखा कफ वात का नाशक ॥ और वायु गोल
अफारा इनका शमन करने वाला कुक्षु पित्त को करने वाला कहा है ॥ १५ ॥

॥ ॥ अनन्तर ईखके रसके विकारों का गुण ॥ ॥ ईखके वि-
कार वृष्या दाह मूर्च्छा रक्त पित्त इनके नाशक हैं ॥ भारी मधुर बलके हित
चिकने वात नाशक सर हैं ॥ १६ ॥ शुककी करने वाला मोह नाशक अतिल
पुष्ट विय नाशक हैं ॥

तस्य लक्षणां गुणां च ॥

इक्षोः रसस्तु यः पक्वः किञ्चिद्दाहो बहु द्रवः ॥ सरा

वे क्षुचि कारेषु ख्यातः फारिगतसंज्ञया ॥ १७ ॥

फारिणं गुर्वभिष्यन्दि वृंहरां कफ शुक्र कृत् ॥ वात ॥
 पित्त श्रमान हन्ति सूत्र वस्ति विशोधनम् ॥ १८ ॥
 अथ मत्स्य रडी । राव काकव खण्ड राव इ
 ति लोके । तस्यं लक्षणां गुणां च ॥

भा० अनन्तर राव । उसका लक्षणा और गुणा । ईख का रस पका हुआ कुछ गाढा
 बहुत पतला ॥ वही ईख के विकारों में फारिण नामसे प्रसिद्ध है ॥ १७ ॥ राव
 भारी अभिष्यन्दि पुष्ट कफ शुक्रको करने वाली ॥ वात पित्त श्रमों की नाश कर
 है और मूत्र वस्ति शोधन है ॥ १८ ॥ अनन्तर खण्ड राव । उसका लक्षणा और
 गुणा ॥

इक्षो रसोयः सम्यक्को धनः किञ्चिद्द्रवा न्वितः
 मन्दं यत्स्यन्दते तस्मात्तन्मत्स्य रडी निगद्यते ॥
 १९ ॥ मत्स्य रडी मेदिनी बल्या लक्ष्मी पित्ता निलाप
 हा ॥ मधुरा वृंहणी वृथ्या रक्त दोषा पहरास्मृता ॥ २०

अथ गुडस्य लक्षणां गुणां च ॥

भा० ईख का रस जो पका हुआ गाढा कुछ पतला ॥ जो थोड़ा ठि घलता है ।
 इस वस्ति उसको मत्स्य डी कहते हैं ॥ १९ ॥ मत्स्य डी मेदन बलके हित हल
 की पित्त वात की नाशक ॥ मधुर पुष्ट शुक्रको करने वाली रक्त दोष की नाशक
 कर्ही है २० ॥ अनन्तर गुड का लक्षणा और गुणा ॥

इक्षो रसो यः सम्यक्को जायते लोष्ट वृद्धः ॥ सगु
 डो गौड देशे तु मत्स्य रडये व गुडो मतः २१ गुडो ह
 यो गुरुः स्निग्धो वातघ्नो मूत्र शोधनः ॥ नास्ति पि
 त्त हरो मेदः कफ कृमि बल प्रदः ॥ २२ ॥

अथ पुराणा गुडस्य गुणाः ॥

भा० ईखका रस जो पका हुआ टैले के मानिन्द दृढ होताहै ॥ वोह गुड गौड देश में गत्स्यं डी को गुड कहते है ॥ २३ ॥ गुड शुक्र को करने वाला भारी चिकना वात नाशक मूत्रका शोधन करने वाला ॥ नभति पित्त का नाशक मेद कफ कृमि बल इनको करने वाला है ॥ २३ ॥ अनन्तर पुरनें गुडका गुण ॥

गुडो जीर्णो लघुः पथ्यो ऽन भिव्यन्ध्य ग्नि पुष्टि क्तत्

पित्तघ्नो मधुरो वृष्यो वातघ्नो ऽसृक् प्रसादनः ॥ २३ ॥

नवीन गुडस्य गुणाः । गुडो नवः कफ श्वासकास कृमि
करो ऽग्नि क्तत् ॥ श्लेष्मा रा माशु विनि हन्ति स-

दाद्र्र कैरा पित्तं निहन्ति च न देव हरीत कीभिः ॥ शु

रुह्या समं हरति वात मशेष मित्थं दीयत्रय क्षयक

राय नमो गुडाय ॥ २४ ॥ अथ र्वांड गुणाः ॥

भा० पुराना गुड हलका पथ्य अन भिव्यन्दि भग्नि पुष्टि को करने वाला ॥ पित्त नाशक मधुर शुक्रको करने वाला वात नाशक रुधिर को स्वच्छ करने वाला है ॥ २३ ॥ अनन्तर नये गुड का गुण ॥ नया गुड कफ ^{कास} श्वास कृमि को करने वाला भग्नि दीघन है ॥ गुड अद्रक के साथ शीघ्र कफ को नाश करता है हृड के साथ पित्त को नाश करता है स्रोत के साथ अशेष वात को नाश करता है रो-से विदीय नाशक गुड को नमस्कार ॥ २४ ॥ अनन्तर र्वांड का गुण ॥

खण्डन्तु मधुरं वृष्यं चक्षुष्यं वृंहणं हिम् ॥ वात पित्त

हं स्निग्धं बल्यं वान्ति हं परम् ॥ २५ ॥

खण्ड मति प्रसिद्धम् । अथ सिता । चीनी इति लो

कं प्रमिद्धा । तस्य लक्षणां गुणाः । खण्डन्तु सि

कता रूपं सुश्वेतं शर्करा सिता ॥ सितासु मधुरा

रुच्या वात पित्ता स्व दाह हृत् ॥ २६ ॥

भा० खांड मधुर शुक्रको करने वाली नेत्र के हित पुष्ट शीतल ॥ वात पित्त की नाशक चिकनी बलके हित परम वमन की नाशक है ॥ २५ ॥ खांड अति प्रसिद्ध है । अनन्तर चीनी । इस प्रकार लोक में प्रसिद्ध है ॥ उसका लक्षण और गुण ॥ खांड तो वायु सरीखी होती है और बहुत सुफेद शर्कराको चीनी कहते हैं चीनी बहुत मधुर रुचिको करने वाली और वात रक्त पित्त दाह इनको नाश करने वाली है ॥ २६ ॥

मूच्छी कूर्दि ज्वरान् हन्ति सुशीता शुक्र कारिणी ॥

अथ गुड शर्करा मिश्री द्वयो गुणाः ॥

भवेत्युष्य सिता शीतारक्त पित्त हरी लघुः ॥ सितो पला सरा लघ्वी वात पित्त हरी हिमा ॥ २७ ॥

मधु खण्ड गुणाः । मधुजा शर्करा रूक्षा कफ पित्त हरी गुरुः ॥ छर्चतीसार तृड् दाह रक्त हृत्तु वराहि माः ॥ २८ ॥ यथा यथैया नैर्मल्यं मधुरत्वं तथा तथा ॥ स्निह लाघव शीत्यादि सरत्त्वञ्च तथा तथा ॥ २९ ॥

॥ इति श्री भाव प्रकाशे इक्षु वर्गः

समाप्नो द्वव वर्गः ॥

भा० और मूच्छी वमन ज्वर इनको नाश करती है बहुत शीतल शुक्र को करने वाली है ॥ अनन्तर गुड शर्करा मिश्री दोनों के गुण । गुड शर्करा शीतल रक्त पित्त की नाशक हल्की होती है ॥ और मिश्री सरहलकी वात पित्त की नाशक शीतल है ॥ २७ ॥ अनन्तर मधु खंडके गुण । मधुकी शर्करा रूखी कफ पित्त की नाशक भारी ॥ वमन अतीसार तथा दाह रक्त इनकी नाशक कसेली शीतल होती है ॥ २८ ॥ जैसी जैसी सफाई होती है वैसी मधुरता और चिकनाई हल्का पत शीत आदि और सरत्त्व होता है ॥ २९ ॥

इति भाव प्रकाशे इक्षु वर्गः ॥

अथानेकार्थनामवर्गः

(क) तत्र च्छर्थानि नामानि । यथा । अश्मन्तकः ।
 अस्त्रलोणाकाकी विदारश्वक ठिल्लकः कारवेल्ली
 रक्त पुनर्नवा च कुलकः । पटोलः कुपी लुश्वकु
 चिला इतिलोके प्रसिद्धः । कोशातकी । महाको
 शातकी राजकोशातकी च दीप्यकः । यवान्यज
 मोदाच । मरुचकः फराज्जकः पिराडीतकः । मरु
 वकः । मरुषा इतिलोके पिराडीतकः मयन फर
 इति लोके मधूलिकः । सूर्वा जल यष्टीच । रुचकम्

भा० - अनन्तर अनेकार्थनामवर्गः । (क) उस्में दो अर्थके नाम
 जेमे । अश्मन्तक । लोनिया साग और लाल कचनार दोनो का येह
 एक नाम है कि ठिल्लक । लाल गदह पूरना और करेला । कुलक
 । पटोल कुचिला । कोशातकी दोनो तुरई । दीप्यक । अजमोदा । अ
 जवाइन । (मरुचक) मरसा मयन फल (मधूलिक) मरीड फ
 ली जल यष्टी । (रुचक)

सौ वर्चलं बीज पूरकञ्च । लोणाका । लोणा शा
 कञ्चाङ्गे रीशाकञ्च वसुकः क्षारत्वराश्व वा
 ल्हीकम् । कुङ्कुमं हिङ्गुच । वित्तुनकम् । धान्य
 कं तृथुञ्च । स्वादुकगटकः । गोक्षुरे विकङ्क
 तश्व । अग्निमुखी । भल्लातकी लाडुलीच । अग्नि

शिखम् । कुङ्कुमं कुसुम्भश्च । अजशृङ्गी । मेघ
 शृङ्गीच । प्रियङ्गुः । फलिनीकङ्कुश्च । भृङ्गः
 भृङ्गराजस्वकच । समङ्गा । मञ्जिष्ठा लज्जालूश्च ।
 अमोघा । विडङ्गपाटलाच । मोचा । कदली

भा० - सोचने विजोरा (लोशािका) लोनियाचूक । (वसुक) ला
 ल आंक खारिनमक । (बाल्हीक) । केसरहीङ्ग । वितुनक । धनि
 या लीलायोथा । स्वादुकंटक । गोरखरू विककत । अग्निमुखी
 भिलावा करिद्वारी (अग्निशिख) केसर कुसुम । अजशृङ्गी ।
 मेडा सीङ्गी काकडा सीङ्गी । प्रियङ्गु । कङ्गनी फूलप्रियंगू ।
 भृङ्ग । भाङ्गरादारचीनी । समङ्गा । मजीठ । कुङ्कुमुईका दरख
 त । अमोघा । बायविडंग पाटला । (मोचा) केला ।

शाल्मलिश्च । कुटन्नटः । श्योनाकः कैवर्तीसुस्त
 ज्च । कुनटी । धनिकामनः शिलाच । घोरटा ।
 पूगो वदरीच । त्रिपुटा । त्रिवृत्सूक्ष्मेलाच । श
 टी । कर्चुरोगन्धपलाशी च । दन्तशठः । जन्वीरः
 कपित्थश्च । दन्तशटा । अम्लिकाचाङ्गेरीच । अरु
 राम् । मञ्जिष्ठा अतिविषाच । करणा । पिप्पली जी
 रकञ्च । तालपर्णी । सुशलीसुराच । पीलुपर्णी ।

भा० - सेसल । कुटन्नट । सोना पाठा । जलमोथा (कुनटी)
 धनिया मैनसिल । घोरटा । सुपारी वैर । त्रिपुटा । निसीथ ।
 छोटी हलायची । शटी । कर्चूर गन्धपलाशी । दन्तशठ । ज
 वीरी कैथ । (दन्तशठा) । दसलीचूक । अरुणा । मजीठ । अती
 सु । (करणा) पीपल जीरा । तालपर्णी सुशलीसुरा । पीलुपर्णी
 मूर्वाविन्चीच । ब्राह्मणी । भाङ्गीसृकाच । अपरा

जिता । विष्णुक्रान्ता शालिपर्याचि । आस्फी ता ।
 अपराजिता सारिवाच । पारावत्पदी । ज्योतिष्म
 ता काकजङ्घाच । शारदी । सारिवा जलपिप्यली
 च । उग्रगन्धा । वचा यवानीच । परिव्याधः । करिणी
 कारो जलवेतसश्च । अञ्जनम् । स्रोतोऽञ्जनं सौवी
 रञ्च । अग्निचित्रको भल्लानश्च । कृमिघ्नः । विडङ्गो
 हरिद्राच । तेजनः । शरो वेणुश्च । तेजनो । तेजवती
 सूर्वाच । रोचनः । कम्पिल्युः रोचनाच । रोचना । गो
 रोचना । राजादनम् । क्षीरिका प्रियालश्च । शकु
 लादनी । कुटुका जलपिप्यली च । गोलोमी । श्वे
 तदूर्वा वचा । पद्मा । पद्मचारिणी भाङ्गीच । श्यामा

भा० - मरोडफली कुन्दरु । (ब्राह्मणी) भारंगी स्टुका । अपराजि
 ता) विष्णुक्रान्ता शालिपर्याचि । आस्फीता । करुण्ड सारिवा । पारावत्प
 दी । मालकङ्गनीकाकजङ्घा । शारदी । सारिवा जलपिप्यली । उ
 ग्रगन्धा । वचा अजवायन । परिव्याध । असलतास जलवेत । अंज
 न । रसांत सुरमा । अग्नि । चित्रक । भिलावा । कृमिघ्न । वायचिङ्ग
 हलदी । (तेजन) शरपनवास । (तेजनी) मरोडफली । मालक
 गनी । (रोचन) खूपकला गोरोचन । रोचना । गोरोचन । (राजाद
 न । खिरनी चिरोजी । शकुलादनी । कुटुकी जलपिप्यली । गोलोमी
 । सफेद दूव वचा । पद्मा । कमलिनी भारंगी । श्यामा ।

सारिवा प्रियङ्गुश्च । धान्यम् । धान्याक शाल्या
 दिच । सहयोर्या नीलदूर्वा महाशतावरीच ।
 सेव्यम् । उशीरं लामञ्जकञ्च । उदुन्वरः । जन्तु

फलं ताम्रञ्च । ऐन्द्री । इन्द्रवारुणी इन्द्राणीच ।
 कटम्भरा । कटुका प्रथेना कञ्च । क्षारः । यवक्षा
 रः स्वर्जिकाच । गरडीरः शाकविशे योगरुडी नीति
 लोके गरुडारी मञ्जिष्ठाच । गन्धारी । दुरान्नाभा ।
 गन्धयत्नाशीच । चित्रा । इन्द्रवारुणी वृहदन्तीच
 तुरिण्डकेरी । कार्यासी विन्वीच । धारा । गुडूची क्षी
 रका कोली च । बालपत्रः । खदिरो यवासश्च ।
 वारि । बालकमुदकञ्च । अङ्गारवल्ली । भार्गीसु
 ज्ञाच । असृणालम् । लामञ्जकम् उशीरञ्च । कु
 रुडनी गुडूचीकोविदारश्च । गन्धफली । प्रिय
 ङ्गुश्चम्यककलिकाच । दीर्घमूलः । यवासः

भा० = सारिवा प्रियंगु । (धान्य) धनिया धान । सहवीर्य । नीली दू
 व बड़ीसनावर । सेव्य । खसुपीली ख । उडुंवर । गूलर ताम्बा । ऐन्द्री
 । इन्द्रायन इन्द्राणी । कटम्भरा । कुटकीसेना पाठा । (क्षार) जवाखार
 सञ्जीखार । (गरडीर) गाडर मजीठ । (गन्धारी) जवासा गन्धय
 त्नाशी (चित्रा) इन्द्रायन वडी दन्ती । तुंडिकेरी । कपासी कुन्दरू
 (धारा) गिलो क्षीरका कोली । बालपत्र । खेर जवासा । वारि ।
 सुगन्धवाला जन्न । (अङ्गारवल्ली) । भार्गी मूज । असृणाल
 पीली खसु । (कुरुडनी) गिलोय लालकचनार । गन्धक
 ली । प्रियंगु चंपक कलिका । (दीर्घमूल) जवासा ।

शालिपर्णीच । पिच्छ्रिता शाल्मली शिंशिपाच ।
 पुष्यफलः । कपित्थः कूष्माण्डश्च । पोटगलः । न
 लः काशश्च यवफलः । कुटजोवंशश्च । देवी । मूर्वा

स्पृका च विष्वा । शुण्ठनृतिविषाच । शीतशिवम्
 । सैन्धवं मिश्रेया च । कर्कशः । काम्पिल्यः कास
 मर्द्दश्च । चर्मकषा । श्रातला मांस रोहिणी च ।
 नन्दिबृक्षः । अश्वत्थभेदोगो सुखयत्नशारवः ।
 वेलिपापीपर इति लोके । तुरिणाश्च । पयः क्षीर
 सुदकश्च । रुहा । दूर्वा मांस रोहिणी च । सिंही ।
 बृहती वासा च ॥ अथ त्वर्थानि नामानि । क्रसुकः ।
 स्रगस्तूदः पट्टिका लोधश्च । स्रुकः । कोकिलाक्षो
 गोसुरस्तिलक नाम पुष्पविशेषश्च । प्रियकः ।

भा०-सालपर्णाः । पिच्छला । सेमलसीसम । पुष्पफल । कैय
 पैठा । पोदगल । नलकास । यवफल । कुरैया वांस (देवी) म
 रोडफली स्पृका । विष्वा । सेठ अतीस । शीतशिव । सैन्धा मिश्रे
 या । (कर्कश) कवीला कसौन्दी । (चर्मकषा) सीका कार्ड मां
 स रोहिणी । (नन्दीबृक्ष) - यीपलका मेद नून । (पयः) दुधपा
 नी । रुहा । दूर्वा मांस रोहिणी । (सिंही) कटेली वासा । अनंतर
 तीन अर्थयाने नाम । क्रसुक । सुपारी ब्रह्मदारु पठानीलोध ।
 (स्रुक) मखाना गोखरू तिलक नाम पुष्पविशेष । (प्रियक)

प्रियङ्गुकदन्त्वाऽसनश्च । पृथ्वीका । कालाजाजी
 बृहदेलाहिङ्गुपत्नी च । भूतीकम् । भूनिम्बक
 तृणभूरुणश्च । सोमवल्कः । कहलः श्रेत
 खदिरो घृतपूर्णाकञ्जश्च । सौगन्धिकं कल्
 हारं कृत्वा गन्धकञ्च । भृङ्गः । भृङ्गरस्त्वर्
 भ्रमरश्च । अरिष्टः निम्ब्वारसोमं मद्यञ्च । ५

मर्कटी कथिक छुरपामार्गः क रञ्जी च । अम्बष्ठा
 पाठा चाङ्गरी माचिका च । कृष्णा । पिप्ली काला
 नाजी नीली च । क्षीरिणी । दुग्धिका क्षीरका को
 ली श्वेत सारि वाच । मधुपर्णी । गुडुची गम्भारी
 नीला च । मण्डकपर्णीः स्योनाकः सः स्त्रियां तु
 मञ्जिष्ठा । ब्रह्ममण्डूकी च । श्रीपर्णी । गम्भारी
 गणिका रिका कटफलञ्च । अमृता । गुडुची ।
 हरीतकी धान्ती च । अनन्ता । दुरालभा नीलदूर्वा
 लाङ्गुली च । ऋष्यप्रोक्ता । अतिबला महाशता
 वरी कथिकच्छुञ्च कृष्णा वृन्ता । पाटली गम्भा
 री माषपर्णी च । जीवन्ती । गुडुची शाकविशेषो
 वन्दा च । लता । सारिवा प्रियङ्गु ज्योतिष्मती च ।

भा०— प्रियङ्गु कदंब आसन (एर्ष्विका) स्याद् जीरा बड़ी डू
 लायची । हिङ्गु पत्री । (भूतिक) चिरायता कटुरा भूतुरा (सो
 मबल्क) कुह्लल सफेद कट्या घृत पूर्णकरज । सौगन्धिक
) कल्हार कटुरा गन्धक । (रुद्रङ्ग) भाङ्गरात्वक भौरा । अरिष्ट)
 । नीम लहसन मधु । मर्कटि । के वाच अपामार्गकरजी । अ
 म्बष्ठा । पाटल । चैक किमाच । कृष्णा पीपल काला जीरा नील ।
 क्षीरिणी । दुग्धी क्षीरका कोली श्वेत सारिवा । मधुपर्णी । गिन्ने
 य । कुह्लेर नील । (मण्डकपर्णी) सोना पाठा मञ्जीठ । ब्रह्मी । श्री
 पर्णी । कुह्लेर अरनी काय फल । अमृता । गिलोय हड आवला ।
 अनन्ता । जवासा नील दुर्वा लाङ्गुली । ऋष्यप्रोक्ता । अतिबला । व
 डी सतावर । किवाच । कृष्णा वृन्ता । पाटली । कुह्लेर माषपर्णी
 । जीवन्ती । गिलोय शाक विशेषवन्दा । लता । सारिवा प्रियङ्गु माल

कंगनी । समुद्रान्ता । दुरालभा कार्पासी स्पृक्षा च । हेम
वती । हरीतकी श्वेतवचा पीतदुग्धः सेहुरगडः च
स्य सूलञ्चोक इति प्रसिद्धम् । अव्यथा । हरीतकी
महाश्रावणी पद्मचारिणी च । षड्गन्ध्या । वच ग
न्धः पलाशी करञ्जीश्च । वरदा । सुवर्चला हरहर
इति लोके अश्वगन्धा चारुही गेठीति लोके । इसु
गन्धाः काशः कौकिला स्त्री गोसुर क्षीरविदारी च ।
कालस्कन्धः तमाल स्निन्दुकं कालखदिरश्च ।
महोषधम् । शुण्ठी रसो नो विषञ्च । मधु । क्षौद्रं
पुष्परसो मद्यञ्च । कपीतनः । अम्वातकः शिरी
षी गर्हभारगडश्च । मदनः । पिराडीतकी धत्तूरः
सिक्थकञ्च । शतपर्वा । वंशो दूर्वा वचा च

भा० - समुद्रान्ता । जवासा कार्पासी स्पृक्षा । हेमवती । हरीतकी
श्वेतवच । पीतदुग्ध । सेहुरगड । (अव्यथा) हरीतकी । चडी सुन्डी पद्म
चारिणी । षट्गन्ध्या । वच गन्धपलाशी करज । (वरदा) हरहर
अस गन्धं सुथनी । (इसु गन्धा) काशाताल मखाना गोस्वरू क्षी
रविदारी । कालस्कन्ध । तमाल तेन्दु कालखदिर । महोषध । सो
ठ लहसन । विष । मधु । क्षौद्र । पुष्परस मद्य । कपीतन । अम्वा
डी । सिक्थक यिलखन । मदन मैनफल धत्तूर मोम । (शतपर्वा)
वासं दूधवच ।

सहस्रवेधी अम्लवेतसो मृगमदा हिङ्गु च तास्यपुष्पी
यातकी पाटला श्यामा त्रिवृच्च सदा पुष्पाः । श्रेयता
की रक्तार्कः कुन्दश्च । सुरभी मल्लकी सुरैलवान्नु

कम् । लक्ष्मीः । ऋद्धिर्दृद्धिः शमी च । कालानुसा
 र्यम् । कालीयकं तगरं शैलेयञ्च । चाम्पेयः । च
 म्यको नागकेसरः पद्मकेसरश्च । नादेयी । गणि
 कारिका जलजम्बूजलवेतसी च । पाक्यम् । विडं
 सौवर्चलं यवक्षारश्च । विशल्या । लाङ्गुली गुडू
 ची लघुदन्ती च । इन्द्रद्वुः । ककुभो देवदारुः कूट
 जश्च । काश्मीरम् कुङ्कुमं पुष्करमूलं काश्मीरी
 गम्भारी च । गुन्द्रः पटेरकः शरश्च । गुन्द्रा । प्रि
 यङ्गुर्भद्रमुस्तकश्च । चुक्रम् । चुक्रमस्तवेतसं
 वृक्षान्तश्च पारिभद्राः । निम्बः पारिजातो देव
 दारुश्च । पीतदारु । हरिद्रा देवदारुसरलश्च ।
 वीरः । ककुभो वीरगां काकोली च वीरतरुः । ककु
 भो वीरगां शरश्च । मयूरः । अपा मार्गी । जमोदा
 तुत्यञ्च । रक्तसारः । रक्तचन्दनपत्रङ्गं खदिरश्च ।

भा० - (मद्रस्रवेधी) अमलवेत । कस्तूरी हीङ्ग । नासपुष्पी । धवपा
 दन्ता काली निसोय । सदापुष्प । सफेद आंक लाल आंक कुन्द । सुर
 मी) सलई मरोड फली लालुका । लक्ष्मी । ऋद्धि दृद्धि शमी । का
 नानुमार्य्य) पीतचन्दन तगर शिलारस । (चाम्पेय चम्या) नाग
 केसर पद्मकेसर । नादेयी । अरनीजल । जासुनजलवेत । पाक्य । वि
 ड सौचल नवा खार । विशल्या । करिहारी गिलोय छोटी दन्ती
 इन्द्रद्वु । अर्जुन देवदारु कुरैय्या । काश्मीर । केसर पुष्करमूल
 कुह्लेर । गुन्द्र । पटेरक शर । गुन्द्रा । प्रियंगु बहामोथा । चुक्रम । अमल
 वेत चूक वृक्षान्त । पारिभद्र । नीम पारिजा देवदारु । पीतदारु । हन्दी

देवदारु सरई । वीर । अर्जन वीर एका कोली (वीर तरु) अर्जन वीर
रसा सरपत । (मयूर) अपा मार्ग अजमोद नूतिया । रक्तसार । र
क्तचन्दन प्रतगरैर । (

वदरा । सुवर्चला अश्वगन्धा वाराही च । वसिरः ।
रक्तापा मार्गो गजपिप्पली समुद्रत्वशाञ्च । सौ
वीरम् । अञ्जनभेदो वदरसन्धानभेदश्च । वञ्जु
लः । अशोको वेतसस्ति निशाम्ब । शिला । मनः
शिला जंतु गैरिकञ्च सोमवल्ली । वाकुची गुडूची
ब्राह्मी च । अक्षीवः । शोभाञ्जनो महानिम्बः समु
द्रत्वशाञ्च । कारवी । कालाजाजी प्राताह्वाजमोदा
च । धामार्गवः । रक्तापा मार्गो राजको प्रातकी म
हाको प्रातकी च । दुःस्पर्शः । यवासः कपिकच्छूः

भा०- वदरा । सुवर्चला अश्वगन्ध वाराही । वसिर । लाल अपामार्ग
गज पीपल खारो नमक । (सौवीर) अजनभेद वेर सन्धानभेद ।
वञ्जुल । अशोकवेत । निनिस । (शिला) मे नसिल शिला जीत गे
रु । सोमवल्ली । वावची गिलोय ब्रह्मी । अक्षीव । सहिंजन महानि
म्ब समुद्रत्वशा । कारवी कालाजीरा सौफ अजमोदा (धामार्ग
व) लाल अपामार्ग दोनो नुई । दुःस्पर्शः । जवासा किमाव ।

करटकारी च । यलाशः किंशुको गन्धपत्ता श्री प
त्रञ्च । कालशेषी । मञ्जिष्ठा वाकुची प्रयामा वि
हृच्च पलंकषा गुग्गुलु गोक्षुरे लाक्षा च । मधुरसा
द्राक्षा मूर्वा गन्मासी च । रसा रक्ता शल्लकी पाठा
चाश्रेयसी । हरिनकीलसना गजपिप्पली च ।

लोहम् । अयः कांस्य मगरुच । सहा । सुद्रपर्णी व
त्नाभेदः ककही इतिलोके । शतपत्नी सेवती गुलाव
इतिलोके । रास्त्रा नाकुली नीलपुष्पः । सिन्दुवारः ।

भा० - कटेली । पलाशा । गन्धपलाशी पत्रज । कालमेयी ।
मजीठ बावुचीकाली निसोथ । पलंकषा । मूगल गोरवरू लाक्षा
मीचरसा । दारुव मरोड फली कुस्मेर । रसा । रासना सलई पाठा ।
श्रेयसी । हड्ड रास्त्रा गंज पीपल । लोह । लोहाकासा अगर । सहा
सुद्रपर्णी कही सेवती । रास्त्रा कुली नीलपुष्पसिन्दुवार ।

अथवह्वर्थानि नामानि । अक्ष शब्दः स्मृतोऽष्ट
सु सौवर्चलविभीतके । कर्षपञ्चाक्ष शकटेन्द्रि
य पाशके । ककारव्यः काक माची च काकोली का
क राग्निका ॥ काकजङ्घ काक नासा काको दुम्ब
रिकापिच । सप्तस्वर्थेषु कथितः काक शब्दाविच
करोः ॥ सर्पद्विरद भेषुषु सीसके नागके सर ॥
नागवल्या नागद न्यानाग शब्दः प्रयुज्यते ॥
मांसे द्रवे च स्रुरसे पारदे मधुरादिषु । बाल रोगे
विये नीरे रसो नवसुवर्तते ॥ इति श्रीभावप्रका
शे हरीतकादिद्रव्याणां नामानि गुणाश्च ॥

भा० - अनंतर वहुत अर्थवाले नाम । अक्ष शब्द आठमें कहा है
सौचल वहेडा इन्द्रिय पासा और ककास काक माची का कोली
गुञ्जा ॥ काक जंघा कोव्या ठोठी कठिया गूलर सात अर्थोंमें कांश
शब्द बुद्धि वानी ने कहे है । साय गज में डा सीसा नाग के सर । नाग
वला नाग दन्ती इनमें नाग शब्द कहा है ॥ मांस में द्रव वसु ईरक के

रसमे पारसे मधुश्चदिकर्मे ॥ बाल रोगमें विषमें जलमें इन तर्कों में
रस शब्द है ॥ इति श्री भाव प्रकाशे हरीत क्वादि द्रव्या के नाम और
गुण ॥

अथ मान परिभाषा

न मानेन विना युक्ति द्रव्याणां जायते क्व चित् ।
अतः प्रयोग क्वा र्था र्थ मान सन्नोच्यते मया ॥ १ ॥
चरकस्य मतं वैद्यै र्द्यै र्यस्मान्मतं नतः । विद्वा य
स सर्वनामानि सागधं मान भुच्यते ॥ २ ॥ त्सरे
णु बुधैः प्रोक्तं सिंशता परमाणुभिः । त्सरे
णु स्तु पर्यायैर्नाम्ना वंशी निगद्यते ॥ ३ ॥ जाला
न्तरगतैः सूर्य्य करै र्वंशी विलोक्यते । षड्वंशी
भिमरीचिः स्यात्ताभिः षड्भिश्च राजिका ॥ ४ ॥

भा० - अनंतर परिभाषा ॥ तोलके विना द्रव्यांकि युक्ति कहीं नहीं
होती । इस वाले प्रयोग करनेके अर्थ यहापर मान कह ताहू ॥ १ ॥
चरक कामत और जिस्से प्राचीन वैद्यों ने माना है उससे ॥ सब मानों
को छोड़ कर सागध मानको कहे ताहू ॥ २ ॥ विद्वा नों ने तीसपर
माणुको त्सरेणु कहा है ॥ त्सरेणु पर्याय नामसे वंशी कहा है
॥ ३ ॥ ऊरुके की सूर्य्य की किरणों से वंशी देखा जाता है ॥ छः
वंशीकी मरीचि होती है और छः मरीचियोंके रद्द ॥ ४ ॥

निस्रभी राजिकाभिश्चः सर्षपः प्रोच्यते बुधैः । य
वोष्टसर्षपैः प्रोक्तो गुञ्जास्य । तच्च तुष्टयम् ॥ ५ ॥
षड्मिस्तु रत्तिकाभिः स्यान्माषको हेमधानको ।
मायैश्चतुर्भिः शाराः स्याद्दरगाः सनिगद्यते ॥ ६ ॥

रुद्रः स एव कथितस्तद्द्वयं कोल उच्यते । सु
 द्रको वटकश्चैव द्रङ्गः राः सनिगद्यते ॥ ७ ॥ को
 ल द्वयन्तु कर्षः स्यात् स प्रोक्तः पारिमानिका ।
 अक्षः पिचुः पारिगतलं किञ्चित्पारि श्व-तिन्दुक
 म् ॥ ८ ॥ विडालपदकं चैव तथा योडशिका मता ।
 करमध्ये हंसपदं सुवर्णं कवलमहः ॥ ८ ॥

भा० - तीन राई का सरसों पंडितों ने कहा है ॥ आठ सरसों का जवका
 हाई और चार जवकी गुञ्जा होती है ॥ ५ ॥ छरती का मासा और उस
 को हेमधान कभी कहते हैं ॥ चार मासे का शारा उसको धररा भी
 कहते हैं ॥ ६ ॥ दो ही टंक कहा गया है दो टंक को कोल कहते हैं ॥ उ
 सको सुद्रक वटक द्रङ्ग-रा कहते हैं ॥ ७ ॥ दो कोल को कर्ष होता है
 उसको पारि मानिका भी कहा है ॥ अक्षपिचु पारिगतल किञ्चित् पारि
 तिन्दुक ॥ ८ ॥ विडालपदक तथा योडशिका ये ह भी उसके नाम कहे
 हैं ॥ करमध्ये हंसपद सुवर्ण कवलमह ॥ ८ ॥

उदुम्बरञ्च पर्यायैः कर्षमेव निगद्यते । स्यात्कर्षा
 भ्यामर्द्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा ॥ १० ॥ शुक्तिभ्या
 ञ्च पलं त्रेयं मुष्टि रम्रञ्चतुर्थिका । प्रकुञ्चः योड
 शी विल्वं पलमेवान् कीर्त्यते ॥ ११ ॥ पलाभ्यां
 प्रसृतिर्जेया प्रसृतञ्च निगद्यते । प्रसृतिभ्याम
 ञ्जलिः स्यात्कुडबोर्डशरावकः ॥ १२ ॥

भा० - उदुम्बर यह पर्याय से कर्षको ही कहा है ॥ दो कर्षसे अर्द्ध
 पल होता है उसको शुक्ति अष्टमिका कहते हैं ॥ १० ॥ दो शुक्ति यो
 से पल जानना चाहिये उसको मुष्टि आमचतुर्थिका । प्रकुचशोड

तिविल्व येह यहां पर कहाहे ॥ ११ ॥ दो पलां से प्रसूति जाननी
 चाहिये उसको प्रसूत भी कहते हैं ॥ दो प्रसूति की अंजलि होती है
 उसको कुडव अर्द्धशरवक ॥ १२ ॥

अष्टमानञ्च सत्त्रेयः कुडवाभ्याञ्च मानिका । श
 रावो ऽष्टपलं तद्वज्त्रेयमत्र विचक्षरोः ॥ १३ ॥
 शरावाभ्यां भवेत् प्रस्थः चतुः प्रस्थे स्तथा ढकः ।
 भाजनं कांस्यपात्रं च चतुः षष्टिपलश्रवसः ॥ १४ ॥ च
 तुर्भिराढकैर्द्रोणाः कलशो नल्वरणा अर्भराः । उन्ना
 नश्च घटो राशिद्रोणा पर्याय सन्नितः ॥ १५ ॥ द्रो
 णाभ्यां सूर्य्यकम्भौ च चतुः षष्टि शरावकः । सूर्य्या
 भ्याञ्च भवेद्दो रणी वाहो गोरणी च सा स्मृता ॥ १६ ॥

भा० - अष्टमान जानना चाहिये दो कुडवों की मानिका होती है ॥
 उसको शराव अष्टपल वैसे ही यहां पर जानना चाहिये ॥ १३ ॥ दो श
 रावों से प्रस्थ होता है वैसे ही चार प्रस्थ से आढक होता है ॥ उसको
 भाजन कांस्यपात्र चतुषष्टिपल कहा है ॥ १४ ॥ चार आढक का द्रो
 ण होता है कलशा नल्वरणा अर्भरा ॥ उन्नान घटराशि येह द्रोणा प
 र्याय की सेवा कही है ॥ १५ ॥ दो द्रोणा से सूर्य्यकुम्भ और चतुषष्टि
 शरावक होता है ॥ दो सूर्यस द्रोणी होती है उसको वाह गोरणी क
 हेते है ॥ १६ ॥

द्रोणी चतुष्टयं स्वर्णकश्चित्ता सूक्ष्मबुद्धिभिः । च
 तुः सहस्रपलिका षष्टवत्यधिकान्वसा ॥ १७ ॥
 पलानां द्विसहस्रञ्चभारणकप्रकीर्तितः । तुला
 पलानां त्रेयं सर्वत्र वैषनिश्चय ॥ १८ ॥ यावत्
 द्वाविल्वानिकुडवप्रस्थमाढकम् । राशिर्ग

रागी खारिकेति यथोत्तर चतुर्गुणम् ॥ १६ ॥

भा० - चार द्रोणी की खारी सूक्ष्म बुद्धियों ने कही है ॥ वोह चार हजार छानवे पल्लिका की होती है ॥ १७ ॥ और दो हजार पल्लिका का एक भार कहा है ॥ सौ पल की तुला जाननी चाहिये यह सब गह निश्चय है ॥ १८ ॥ मासा टंक अक्षवित्त्वकुडव प्रत्यजा क ॥ राशिगोरागी खारी यह यथोत्तरचौगुनी है ॥ १६ ॥

(क) मागधपरिभाषाया षड् रत्तिको माघश्चतुर्विंशतिरत्तिकष्टङ्कः यरावतिरत्तिकः कर्षः । आयञ्चरकसम्मतः । सुश्रुतमते । यञ्चरत्तिको माघो विंशतिरत्तिकष्टङ्कः । शीतिरत्तिकः कर्षः । अयमेव कालिङ्गपरिभाषाया मपि । यतस्तत्राष्टरत्तिको माघो द्वात्रिंशद्रत्तिकष्टङ्कः सार्द्धष्टङ्कश्च यमितः कर्षः ॥

भा० - मागधपरिभाषामें छ रत्तिका मासा चौबीस रत्तिका टंक वे रत्तिका कर्ष । यह चरक के सम्मत है । सुश्रुतके मतमें का मासा बीस रत्तिका टंक अस्सी रत्तिका कर्ष है ॥ यही कालिङ्ग परिभाषामें भी कहा है जैसे आठ रत्तिका मासा पचास टंक का कर्ष ॥

गुञ्जादिमानमारभ्य यावत्स्यात्कुडवस्थितिः ।
द्रवाद्रे शुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम् ॥ २० ॥
प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं नद्रवाद्रेयोः । मा
नन्तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचित् स्मृतम् ॥ २१ ॥
सृष्टृक्षवेगुलोहादेर्भीण्डं यञ्चतुरङ्गलम् । विसी

अतिमात्रं च दोषाय शस्थो सस्थे बहू टकम् ॥
इति स्नान परि भाषा ॥

भा० - आठ गुंजा का अथवा कहीं पर सात गुंजा का मासा होना है चार मासे का शारा उसकी निष्क और टंक भी कहने हैं ॥ २५ ॥ और छः मासे का गद्यान तथा दस मासे का कर्ष होता है ॥ चार कर्ष का पल कहते हैं दवा शारा के बराबर होता है ॥ २६ ॥ चार पल का कुडव ॥ और प्रस्थादि क पहिले जैसे माने हैं ॥ मात्रा की तो कुछ स्थिति हीन है है क्योंकि काल अग्नि व य बल ॥ २७ ॥ प्रकृति दोष और देश इनको देखकर मात्रा को कल्पना करे ॥ क्योंकि घोड़ी औषध रोगको दूर नही करती जैसे घोड़ा पानी बहुत आगकी ॥ २८ ॥ बहुत मात्रा दोषों को करती है जैसे खार हान से रवेहे नाजमें बहुत जल ॥ अनंतर औषधियों का विधान ॥

अथ भेषजानां विधानानि ॥

स्वरसश्च तथा कल्कः काथश्च हिम फाराट कौ ।

ज्ञेयाः कषायाः पञ्चेते लघुवः स्युर्यथोत्तरम् ॥ २९ ॥

तत्रादौ स्वरस विधिः ॥

आहतात् तत् क्षरणकृष्णद्रव्यात् सुखात् समुद्र
वेत् । वस्त्रनिष्पीडितो यश्च स्वरसोरस उच्यते ॥ ३० ॥

(क) आहतात् शीताग्नि कीटादिभिरनुपहतात् ।

भा० - अनंतर औषधियों का विधान । स्वरस तथा कल्क काथ हिम फाराटक ॥ यह पांच प्रकार के कषाय उत्तरात्तर हलके जानने चाहिए ॥ २९ ॥ उसमें पहिले स्वरस की विधि । उसी क्षण का ठके लाई हुई को कूटकर कपडे से छानके जो निकलता है उसको स्वरस कहते हैं ॥ ३० ॥ (क) पाला आग की ट गादि से खरब नहई ॥

- सुखात् । संपिष्टान् । कुडवच्युर्गितं द्रव्यं हिमञ्च

द्विगुणो जले । अहोरात्रं स्थितं तस्माद्भवेत्तारस
 उत्तमः ॥ ३१ ॥ चूर्णात्तच्चूर्णात्कृतं । आदायशुष्कं
 द्रव्यं वा स्वरसा नाम सम्भवे । जले ऽष्टगुर्याते सा
 ध्यं पादशिशुं च गृह्यते ॥ ३२ ॥ स्वरसस्य गुरुत्वा
 च पलमर्द्धं प्रयोजयेत् । निशोधितञ्चारिणसिद्धं
 पलमात्रं रसं यिवेत् ॥ ३३ ॥ निशोधितं निशाया मुषितं

भा० - पीसी हुई मे । अथवा चूरा किये कुवे पाव भर द्रव्यको दुगने जल
 में ॥ एक दिन रखे वस्से उत्तम रस होता है ॥ ३१ ॥ चूर्ण किया हुआ । स्व
 रसके अंश भवसे सूके द्रव्यको लेकर ॥ आठ गुने जलमें सिद्ध करके चौथाई
 वाकी रहै तब निकाल ले ॥ ३२ ॥ स्वरसको गुरुत्व होनेसे अर्द्ध पल देवे
 रातके वासी और अग्नि सिद्ध रसकी पल भर पीवे ॥ ३३ ॥ रातको रखवा
 हुआ ॥

शिला मधुगुड क्षारान् जीरकं लवणं तथा । घृतं तैल
 च्च चूर्णादीन् कोलमात्रात्वात् रसे क्षिपेत् ॥ ३४ ॥
 कोलष्टङ्कं द्वयं च । तराडुलजलविधिः ।
 करिडतं तराडुलपलञ्च ले ऽष्टगुर्याते क्षिपेत् ।
 भावयित्वा जलं ग्राह्यं देयं सर्वत्र कर्मसु ॥ ३५ ॥
 भावयित्वा कोमलीकृत्य । अथ हिमविधिः
 क्षुरां द्रव्यं पलं सम्यक् षड्विंशतिरपलैः सुतम् । नि
 शोधितं हिमः सस्यात् तथा शीतकषायकः ॥ ३६ ॥

भा० - चीनी मधुगुड क्षारजीरा तथा लवणा ॥ घृत तैल और चूर्णा
 आदियोंको दो टंक रसमें डाले ॥ ३४ ॥ दो टंक । चावल के धावन की
 विधि । कूटे हुए पाव भर चावलोंको आठ गुने पानीमें डाले ॥ धोके जल
 लेना चाहिये सब कामोंमें देना चाहिये ॥ ३५ ॥ अनंतर हिमकी विधि ॥

जवकुट किये हुवे पल भर द्रव्य को छ पल यानी में भिजोवे ॥ वोह रात
भर का भिजोया हुवा हिम रहे तथा शीत कषाय कहेते हैं ॥ ३६ ॥

तस्य मानं सतं याने पल द्वयमितं बुधैः । सुसंचूर्णा
कृतं ॥ अथसंघविधिः ॥ जलेचतुःपलेशीते सु
सं द्रव्यपल द्विपेत् । मृत्पात्रे मन्थयेत् सम्यक्
तस्माच्च द्विपलपिवेत् ॥ ३७ ॥ सुसंचूर्णाकृतं सु
मन्थयेत् मथनीयान् । अथफारटविधिः ।
सुसो द्रव्यपले सम्यक् जलमुष्णं विनिःक्षिपेत् ।
मृत्पात्रे कुडोन्मानं ततस्तु स्त्रावयेत्प्रदात् ॥ ३८ ॥

भा० - उसकी तोल पीनेने दोपल कही है ॥ चूर्णकिया हुवा । अनंतर म
न्थविधि । शीतल चार पल जलमें जवकुट किया हुवा पल भर द्रव्य डाले
मिट्टीके बरतनमें अच्छी तरह मले उसमें से दोपल ले कर पीवे ॥ ३७ ॥
चूर्णकिया हुवा । मथे । अनंतर फारटकी विधि । जवकुट किये हुवे
पल भर द्रव्य में पाव भर गरम जल मिट्टीके बरतन में ले उसके अनंतर
उसे कपडे से छनवा लेवे ॥ ३८ ॥

सस्याच्चूर्णाद्रवः फारटस्तन्मानं द्विपलोन्मितम् । क्षी
द्रंसितागुडादींस्तु कर्षमात्रान्विनिःक्षिपेत् ॥ ३९ ॥
सुसो चूर्णाकृते सचूर्णाद्रवः फारटः स्यादित्यन्वयः
(अथकल्कविधिः) द्रव्यमाद्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा स
जलं भवेत् । प्रक्षिप्य गालयेद्दस्त्रे तन्मानं कर्षसंमितम्

भा० - वोह चूर्ण द्रव है और उसको फांट भी कहते हैं । उसकी तोल दोप
ल है ॥ मधुचीनी गुड आदि उसमें कर्ष भर डाले ॥ ३९ ॥ चूर्णकिये हुवे में
वोह चूर्ण द्रव फांट होता है इस प्रकार अन्वय है ॥ अनंतर कल्क की ।

विधि । गोली दवाको सिलपर पीसे अथवा सूकीको जलके साथ पीसे
उसको कपडे में डालकर निचोड़े उसकी तोल तोला भरहे ॥ ४० ॥

कल्के मधु घृत तैलं देयं द्विगुणमात्रया । सितागुड
समन्दद्या द्रवो देयश्चतुर्गुणः ॥ ४१ ॥ अथ चूर्णाविधिः

॥ अत्यन्नशुष्कं यद्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम् । न
त्स्याच्चूर्णरजः क्षौदस्तन्मात्रा कर्षसंमिता ॥ ४२ ॥

चूर्णागुडः समो देयः शर्करा द्विगुणामता । चूर्णेषु भ
र्जितं हिङ्गु देयं तोल्लेदकृद्भवेत् ॥ ४३ ॥ लिहैच्चू
र्णद्रवैः सर्वैर्घृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः । पिवेच्चतुर्गुणो
रेवं चूर्णमालोडितं द्रवैः ॥ ४४ ॥

भा० - कल्के में मधु घृत तैल मात्रासे दुगना देना चाहिये ॥ चीनी गुड स
म भाग देवे और द्रव चैगुना देना चाहिये ॥ ४१ ॥ अनंतर चूर्णाविधि ॥
बहुत सूके द्रव द्रव्यको अच्छी तरह पीसकर कपड छानकर ॥ वोह चू
र्ण है उसको रज क्षौदक हेतु है ॥ उसकी मात्रा तोला भरहे ॥ ४२ ॥ चूर्ण
में गुड सम भाग देना चाहिये और शर्करा दुगनी फली है ॥ चूर्ण में भूनके
हीङ्गु देना चाहिये वोह उल्लेदकारी नहीं होता ॥ ४३ ॥ चूर्णको सब घृ
तादिक द्रव दुगने लेकर घोटि ॥ और चैगुने मिलाकर थोले करीवे ॥ ४४ ॥

चूर्णावलेह गुटिका कल्कानामनुपानकम् । पित्त
वात कफातङ्गैः त्रिदोषैः पलमाहरेत् ॥ ४५ ॥ यथा
तैलं जले प्राप्तं क्षणेनैव विसर्पति । अनुपानबला
दङ्गैः तथा सर्पति भेषजम् ॥ ४६ ॥ भावनाविधिः ॥
द्रवेण यावता सम्यक् चूर्णं सर्वं क्षुतं भवेत् । भाव
नायाः प्रमाणात्तु चूर्णं प्रोक्तं भिषग्वरैः ॥ ४७ ॥

जवकुट किये हुवे पल भर द्रव्य को छ पल पानी में भिजोवे ॥ वोह रात भर का भिजोया हुआ हिम रहे तथा शीत कषाय कहेते हैं ॥ ३६ ॥

तस्य मानं सतं पाने पलद्वयमितं सुधैः । सुशं चूर्णा कृतं ॥ अथसंघविधिः ॥ जलेचतुःपले शीते सुशं द्रव्यपलद्विपेत् । सृत्पात्रे मन्थयेत् सम्यक् तस्माच्च द्विपलपिवेत् ॥ ३७ ॥ सुशं चूर्णा कृतं मन्थयेत् मथनीयात् । अथफारटविधिः । सुशे द्रव्यपले सम्यक् जलमुष्णं विनिःक्षिपेत् । सृत्पात्रे कुडयोन्मानं ततस्तु स्वावयेत्प्रातः ॥ ३८ ॥

भा० - उसकी तोल पीने में दो पल कही है ॥ चूरा किया हुआ । अनंतर मन्थविधि । शीतल चार पल जल में जवकुट किया हुआ पल भर द्रव्य डाले मिट्टी के बरतन में अच्छी तरह मले उसमें से दो पल ले कर पीवे ॥ ३७ ॥ चूर्ण किया हुआ । मथे । अनंतर फारट की विधि । जवकुट किये हुवे पल भर द्रव्य में पाव भर गरम जल मिट्टी के बरतन में ले उसके अनंतर उसे कपडे से छनवा लेवे ॥ ३८ ॥

सस्याच्चूर्णा द्रवः फारटस्तन्मानं द्विपलोन्मितम् । क्षी द्रंसिता गुडादीस्तु कर्षमात्रान्विनिःक्षिपेत् ॥ ३९ ॥ सुशे चूर्णा कृते स चूर्णा द्रवः फारटः स्यादित्यन्वयः (अथ कल्कविधिः) द्रव्यमा र्द्रशिल्नापिष्टं शुष्कं वा स जलं भवेत् । प्रक्षिप्य गालयेद् स्वेतन्मानं कर्षसंमितम्

भा० - वोह चूर्ण द्रव है और उसको फांट भी कहते हैं । उसकी तोल दीय ल है ॥ मधुचीनी गुड आदि उसमें कर्ष भर डाले ॥ ३९ ॥ चूर्ण किये हुवे में वोह चूर्ण द्रव फांट होता है इस प्रकार अन्वय है ॥ अनंतर कल्क की ।

विधि । गीली दवाको सिलपर पीसे अथवा सूकीको जलके साथ पीसे
उसको कपड़े में डालकर निचोड़े उसकी तोल तोला भरहे ॥ ४० ॥

कल्के मधु घृत तैलं देयं द्विगुणा मात्रया । सितागुड
समन्द द्या द्रवो देयश्चतुर्गुणाः ॥ ४१ ॥ अथ चूर्णविधिः

॥ अत्यन्त शुष्कं यद्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम् । त
न्याञ्चूर्णरजः क्षौद्रस्तन्मात्रा कर्षसंमिता ॥ ४२ ॥

चूर्णगुडः समो देयः शर्करा द्विगुणा मता । चूर्णेषु भ
र्जितं हिङ्गु देयं नोत्क्लेदकृद्भवेत् ॥ ४३ ॥ लिहै चू
र्णद्रवैः सर्वैर्घृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः । पिवेच्चतुर्गुणो
रवं चूर्णमालोडितं द्रवैः ॥ ४४ ॥

भा० - कल्के में मधु घृत तैल मात्रासे दुगना देना चाहिये ॥ चीनी गुड स
म भाग देवे और द्रव चीगुना देना चाहिये ॥ ४१ ॥ अनंतर चूर्णविधि ॥
बहुत सूके द्रव्यको अच्छी तरह पीसकर कपड़े छानकरे ॥ वीह चू
र्ण है उसको रज क्षौद्रक हेत है ॥ उसकी मात्रा तोला भरहे ॥ ४२ ॥ चूर्ण
में गुड सम भाग देना चाहिये और शर्करा दुगनी कही है ॥ चूर्ण में भूनके
हीङ्गु देना चाहिये योह उत्क्लेदकारी नहीं होता ॥ ४३ ॥ चूर्णको सब घृ
तादिक द्रव दुगने लेकर घोटि ॥ और चूर्णमें मिलाकर योतके पीवे ॥ ४४ ॥

चूर्णावलेह गुटिका कल्कानामनुपानकम् । पित्त
वातकफातङ्गैः त्रिदोषैः पलमाहरेत् ॥ ४५ ॥ यथा
तैलं जले प्राप्तं क्षणेनैव विसर्पति । अनुपानबला
दङ्गैः तथा सर्पति भेषजम् ॥ ४६ ॥ भावनाविधिः ॥
द्रवेण यावता सम्यक् चूर्णं सर्वं क्षुतम्भवेत् । भाव
नायाः प्रमारांतु चूर्णं प्रोक्तं भिषग्वरैः ॥ ४७ ॥

॥ अथ पुटपाकविधिः ॥ पुटपाकस्य कल्कस्य स्वरसो
 गृह्यते यतः । अतस्तु पुटपाकानां युक्तिरत्रोच्यते
 मया ॥ ४८ ॥ पुटपाकस्य प्राकोऽयं लेपस्याङ्गारवर्णा
 ता । लेपञ्च द्वाङ्गुलं स्थूलं कुर्याद्द्व्यङ्गुलमात्रकम् ।

भा० - चूर्णा अवलेह गोली कल्क इनका अनुपान ॥ पित्तवान् कफके
 रोगमें क्रमसे तीन दौरकपल लेवे ॥ ४५ ॥ जैसे तेल जलमें डाला हुआ
 क्षरणमें फैल जाता है ॥ वैसे ही अनुपान केवल से शरीरमें औषध फैल
 ता है ॥ ४६ ॥ अनंतर भावनाविधि ॥ जितने द्रवसे अच्छी तरह परसव
 चूर्णा तर हो जाता है ॥ वोह भावनाका प्रसारा चूर्णा में वैद्योने कहा है ॥
 ४७ ॥ अनंतर पुटपाकविधि ॥ पुटपाक कल्क का स्वरस जिस कारणा
 लिया जाता है ॥ इसवास्ते पुटपाककी युक्ति यहां पर कहता हूं ॥ ४८ ॥
 पुटपाक का पाक यह है कि लेपका अंगारके समान वर्णा होना ॥ लेप
 दो अंगुल मोटा दो अंगुल भरकरे ॥ ४९ ॥

काशमरीचटजम्बूवादिपत्रैर्वेष्टनसुत्तमम् । पलमा
 त्वोरसो ग्राह्यः कर्षमात्रं मधुक्षिपेत् ॥ ५० ॥ क
 ल्कचूर्णा द्रवाद्यास्तु देयाः कौलमिनाबुधैः ॥ उष्णो
 दकविधिः ॥ अष्टमेनांशशेषेणाचतुर्थेनार्द्धकेन वा
 अथवा कथनेनेव सिद्धमुष्णोदकं भवेत् ॥ ५१ ॥
 श्लेष्मासवातमेदोघ्नवस्तिशोधनदीपनम् । कास
 श्वासज्वरान् हन्ति पीतमुष्णोदकं निशि ॥ ५२ ॥

भा० - कुक्षेरचटजामन आदिके पत्रोंसे लपेटना उत्तम है ॥ पलभ
 र रस लेवे और तीला भर मधु डाले ॥ ५० ॥ कल्क चूर्णा द्रव आदिक
 आठ नामे देवे ॥ गरम पानीकी विधि ॥ आठवा हिस्सा वाकी रहने
 से अथवा उवाले आनेसे ही सिद्ध उष्णोदक होता है ॥ ५१ ॥ कफ आ

न वातमेद दूनकानाशक वस्ति शीथन दीपन । है जीर कास प्रवास ज्वर
इनको नाश करता है रातमें पीया हुआ गरम जल ॥ ५२ ॥

उष्योगदकं सु ह्व वटा इतिलोके । क्षीरपाकविधिः ।

क्षीरमष्टगुणं द्रव्यात् क्षीराक्षीरं चतुर्गुणम् । क्षीरव
शेषं तत्पीतं शूलसामोद्भवं जयेत् ॥ ५३ ॥ काथविधिः ॥

पानीयं षोडशगुणं क्षुरीणो द्रव्यपलेक्षिपेत् । सृत्यात्रे
काथयेद् ग्राह्यमष्टसंशयशेषितम् ॥ ५४ ॥ कर्षी
दोतुपलं यावद्दद्यात् षोडशकं जलम् । ततस्तुकुड
वं यावत्तोयमष्टगुणं भवेत् ॥ ५५ ॥ चतुर्गुणमतश्चै
र्द्वं यावत्प्रस्थादिकं जलम् । (षोडशिकं षोडशगुणम्)

भा० - क्षीरपाकविधि ॥ दूध द्रव्यसे अठ गुना और दूधसे पानी चौर गुना
चाकी रहे हवे उस दूधके पीनेसे चोह आमके शूलको जीतता है ॥ ५३ ॥
काथकीविधि ॥ सो लह गुने पानीमें पल भर द्रव्यको डाले ॥ मिट्टीकेवर
तनमें आँठ यावे और आठवां हिस्सावाकीरहे तवनिकाललेवे ॥ ५४ ॥
कर्षादिकमें पल भर जवतक दवा होतवतक सोलह गुना जलदेवे ॥ उ
सके अनंतर पाव भर जवतक हो अठ गुना जल होना चाहिये ॥ ५५ ॥ इस
के ऊपर चौर गुना जल जवतक सेर भर हो ॥ सोलह गुना ॥

तज्जलं पाययेद्धीमान् कोषां मृद्भग्निसाधितम् । मृ
तः काथः कषायश्च निर्यूहः सनिगद्यते ॥ ५६ ॥

(काथयानमात्रमाह ।)

मात्रोत्तमापलेतत् स्यात् त्विभिरक्षैस्तु मध्यमा । न
घृत्या च पलाई नस्नेहकाथोषधेषु च ॥ ५७ ॥

तन्ना न्तरे । काथ्यद्रव्यपलेवारिद्विरष्टगुणामिष्यन्ते

चतुर्भागावशिष्टन्तुपेयं पलंचतुष्टयम् ॥ ५८ ॥ दी
 प्रानलं महाकायं पाययेदञ्जलिं जलम् । अन्ये
 त्वह्वं परित्यज्य प्रसिन्तुचिक्किसकाः ॥ ५८ ॥

भा० - उस मन्द आंच से पकाया हुआ जल को सील गरम बुद्धिवान पी
 वे । श्वेत काष्ठ कषाय निर्यूह उस को कहते हैं ॥ ५६ ॥ काढ़े के पीनेकी
 मात्रा की कहते हैं । एक पल की उत्तम मात्रा है और तीन तोलेकी मध्य
 मात्रा ॥ निरूह देतेलीकी स्नेह काष्ठ औषधोंमें भी ॥ ५७ ॥ तन्वा
 न्न रसें । पल भर काष्ठ करने योग्य द्रव्यमें जल दूगना वा अठगुना कहा
 है ॥ चौथाई वाकी रहे हुवे चार पल जलको पीना चाहिये ॥ ५८ ॥ दीप्ता
 ग्नि और बड़े शरीर वालेको अंजली भर काढ़ा पिलावे ॥ वाकीयोंको
 आधा छोड़के पैसे भर वैद्यपिलावे ॥ ५९ ॥

काष्ठत्यागमनिच्छन्तस्त्वष्टभागावशेषितम् । पार
 स्पर्योपदेशेन वृहवैद्याः पलद्वयम् ॥ ६० ॥ (क)
 अष्टभागावशेषितस्य चतुर्भागावशिष्टापेक्षया गु
 रुत्वान् दीप्रानलं महाकायं पलद्वयं पाययेन्मध्य
 साग्निमल्पकायं पलमात्रं पाययेत् मात्रोत्तमा प
 लेन स्यादित्यादिवचनात् ॥

भा० - काढ़ेका छोड़ना न चाहनें वालेको अष्ट भाग वाकी रहे हुवे दो
 पलको वृहवैद्य परंपराके उपदेश से देवे ॥ ६० ॥ (क) अष्ट भाग वा
 की वचेको चौथाई वाकी वचेकी अपेक्षासे भारी होनेसे दीप्ताग्नि और
 बड़ी काया वालेको दोपल पिलावे । मध्य अग्नि और अल्प काया वाले
 को पल भर पिलावे उत्तम मात्रा एक पल से होती है इत्यादिवचन से ॥

काथेक्षिपेत् सिन्नामंशेष्वनुर्थाष्टमषोडशैः । वान
 पित्तकफानङ्कैः विपरीतं मधुस्मृतम् ॥ ६१ ॥

जीरकं गुग्गुलुं क्षारं लवणं च शिलाजतु । हिङ्गु-
 त्रिकटुकं चैव क्वथि शारोन्मितं क्षिपेत् ॥ ६२ ॥ क्षी-
 रं घृतं गुडं तैलं मूत्रं चान्यत् द्रवं तथा । कल्कं चूर्णा-
 दिकं क्वाथे निक्षिपेत् कर्षसंमितम् ॥ ६३ ॥ तत्रोप वि-
 प्रय विप्रान्नः प्रसन्नवदने क्षणः । औषधं हेम र-
 जतं मृज्जाजनपरिस्थितम् ॥ ६४ ॥ पिबेत् प्रसन्न-
 हृदयः पीत्वा पात्रयथोत्तुखम् । विधाया च्छस्य स-
 लिलं ताम्बूलाद्युपयोजयेत् ॥ ६५ ॥ अवलेहविधिः ॥
 क्वाथादेर्यत् पुनः पाकाद्भ्रान्तं सो रस क्रिया । सो-
 ऽवलेहश्च लेहश्च तन्सात्वा स्यात् पलोन्मिता ॥ ६६ ॥

भा० - काढेमें चीनी चतुर्थ अष्टम और बीड श्र भागों से क्रमके साथ-
 वातपित्तकफके रोगमें डाले और मधुइस्से विपरितकहादे ॥ ६१ ॥
 जीरा गुग्गुलु खार लवण शिलाजीत ॥ हीङ्गु त्रिकुटाइनको काढे में मार
 मासे डाले ॥ ६२ ॥ दूध घृत गुड तैल मूत्र और द्रव तथा । कल्क चूर्णा
 आदिक काढे में तोला भर डाले ॥ ६३ ॥ वहां पर बैठ कर दमलेके प्रस-
 न्न सुख हृष्टि होके सोने चान्दी वा माटीके बरतन में रखी हुई दवाकी ।
 ६४ ॥ प्रसन्न हृदय होके पीवे पीकर बरतनकी औन्धा करके कुत्ता क-
 र पान आदि देवे ॥ ६५ ॥ अनंतर अवलेह । काढा आदि योंका जोफि-
 रसे पकाकर गाढा करना उसको रस क्रिया कहते हैं ॥ वोह अवलेह
 और लेह है उसकी मात्रापल भरकी है ॥ ६६ ॥

सिताचतुर्गुणाकार्या चूर्णाच्च हि गुरो गुडः ॥ द्रवं
 चतुर्गुणं दद्यादिति सर्वत्र निश्चयः ॥ ६७ ॥
 सुपक्वे तन्तु सत्त्वं स्यादवलेहे ऽप्सु मज्जनम् ॥

स्थिरत्व पीडिते मुद्गां गन्धवर्गा रसोद्भवः ॥ ६८ ॥
 दुग्धमिक्षुरसं यूषं पञ्चमूलकया यजम् । वासाङ्का
 थं यथा योग्यमनुपानं प्रशस्यते ॥ ६९ ॥ वटकाविधिः
 ॥ वटका अथ कथ्यन्ते तन्नाम गुटिकावटी । मोदको
 वटिकापिण्डी गुडो वर्त्तिस्तथोच्यते ॥ ७० ॥ लेह
 वत्साध्यते वद्भौ गुडो वा शर्कराथवा । गुग्गुलुर्वा
 क्षिपेत्तत्र चूर्णां तन्निर्मितावटी ॥ ७१ ॥ तत्र बन्धि सिद्धे
 गुडादौ ॥ कुर्याद्वन्धि सिद्धे न क्वचिद्गुग्गुलुनावटी
 द्रवेण मधुना वापि गुटिकाकारयेद्बुधः ॥ ७२ ॥

भा० - चूर्णसेचीनी चोगुनी और गुड दुग्ना ॥ द्रवचोगुना देवे इसप्र
 कार सब जगह निश्चय है ॥ ६७ ॥ अच्छी तरह पकी हुई में तारक
 दते है और जलमें डवता है ॥ और दवानिसे स्थिरताहोती है तथा गंध
 वर्गा रस सालूम होता है ॥ ६८ ॥ बुध ईश्वकारस पंचमूलके काटेका
 जूस ॥ और वासाका काटा यथा योग्य अनुपान प्रशस्त है ॥ ६९ ॥ अनंत
 र वटकाविधि । अनंतर वटका कहते है उस कानाम गुटिका वटि है ॥ मोद
 क वटिकापिंडी गुड तथा वर्त्तिकदते है ॥ ७० ॥ गुड अथवा शर्कर लेह
 के समान अग्निपरसिद्धकी जाती है ॥ अथवा उसमे गुग्गुलु डाले उससे
 वनाई हुई गोली है ॥ ७१ ॥ उसमे अग्नि सिद्ध गुड आदि में । कही पर
 यिन अग्नि सिद्ध गुग्गुलुसे गोली होती है ॥ जलसे वा मधुसे पंडित गोली व
 नवावे ॥ ७२ ॥

सिता चतुर्गुणा देयावटी बुद्धिगुरो गुडः । चूर्णां चूर्णा
 समः काय्या गुग्गुलुः मधु तत्ससम् ॥ ७३ ॥

(तत्रममम् । चूर्णां समम् ।)

द्रवंतु द्विगुरां देयं मोदकेषु भिषग्वरैः ॥ द्रवं द्रवरूप

द्रव्यं, कर्ष प्रमाणं तन्मात्रा वलं दृष्ट्वा प्रयुज्यते । वल
मिति कालादेरप्यु पत्वक्षरासु । घृतनेलयोर्विधिः ।
कल्काच्चतुर्गुणी कृत्य घृतवानेलमेव च । चतुर्गुणा
द्वे साध्यं तस्य मात्रा पलो न्मिता ॥ ७४ ॥

(मात्रा पलो न्मिता । भक्षराय ।)

निक्षिप्य क्वाथये तोय क्वाथ्य द्रव्याच्चतुर्गुणीम् । याद
शिष्टं गृहीत्वा तु स्नेहस्तेनैव साधयेत् ॥ ७५ ॥ चतुर्गु
णां सृद्द्रव्ये कठिनेऽष्टगुणां जलम् । मृदादिक्वाथ्य सं
घातं दद्यादष्टगुणां पयः ॥ ७६ ॥ अत्यन्तं कठिनं
द्रव्यं नीरं षोडशिकं मतम् ॥

भा० - गोलीमें चीनी दुगनी देनी चाहिये और गुड़ दुगना देना चाहिये ॥
चूरां चूरां के सम करना चाहिये गूगल मधु उसके बराबर ॥ ७३ ॥ चूरां
के समान । घेद्य मोदक में द्रव दुगना देवे ॥ पतली वस्तु । उसकी मात्रा एक
क तोला । देखकर देवे ॥ काल आदि योंका उपक्षरा है । घृतनेलकी वि
धि । घृतवानेल कल्क से चोशुना करके ॥ चोशुने द्रवमें सिद्ध करे उसकी
मात्रा पल भरकी है ॥ ७४ ॥ भक्षरा के अर्थ । चोशुने जलने औपध डाल
कर ओटवावे ॥ चोथाइ बादी को लेकर तेल उसीसे सिद्ध करे ॥ ७५ ॥
चोशुना मुलायम दवा में और सखं का दवा में अठगुना जल ॥ सृद्द्रव्य आ
दि क्वाथ्य संघातमें अठगुना पय देवे ॥ ७६ ॥ अत्यन्त कठिन द्रव्य में ज
ज सोलह गुना कहा है ॥

ल

(क) सृद्द्रव्य आर्द्रद्रव्ये गुड्यादौ । कठिनं शुष्क
द्रव्ये शु रज्यादौ अत्यन्तं कठिनं । चिरशुष्के देवदा
र्यादौ ॥ कर्षादितः पलं यावत् क्षिपेत् षोडशिकं
जलम् । तद्दूर्द्धं कुडवं यावत् भवेदष्टगुणां पयः ॥ ७७ ॥

प्रस्थादितः क्षिपेत्तीरं स्वारी यावच्चतुर्गुणम् । (क)
 पूर्वं चतुर्गुणमृदुद्रव्य इत्यादिनाक्वाथ्यद्रव्यतन्मृदु
 त्वादिगुणाभेदेन जलगतपरिसारासुक्तम् । इ
 दानीं केचिदाचार्याः कर्षादितः पलं यावदित्यादि
 वचने क्वाथ्यद्रव्यगतपरिसाराभेदेन जलगतपरि
 सारां मन्यन्ते ।

भा० - मुन्नायमगीली गिलोय आदिमें । कठिनसूकी सोंठ आदि
 अत्यन्तकठिनमें । बहुतदिनके सूके हुवेदेवदार आदिमें । कर्षसे पलत
 कमें सोलहगुनाजलडाले । उसके ऊपर कुडवतकमें अठगुनाजल
 डाले ॥ ७७ ॥ सेरभरसे लेकर ग्वारीतकमें चौगुनाजलडाले (क)
 पहिले चौगुना मृदुद्रव्य इत्यादि करके क्वाथ्यद्रव्य उसमृदुत्वादिगुणा
 भेदसे जलका तोलकहाहै । अवकोई आचार्य कर्षसे लेकर पलतक इ
 त्यादि वचनसे क्वाथ्यद्रव्यके परिसाराभेदसे जलका तोलमानतेहैं ॥

अम्बुक्वाथरसे यत्र पृथक् स्नेहस्य साधनम् । क
 ल्कस्यांशन्तत्र दद्याच्चतुर्थषष्ठमष्टमम् ॥ ७८ ॥
 (क) अस्यायमर्थः । अम्बुनास्नेहसाधने कल्क
 स्नेहस्य चतुर्थमंशदद्यात् । क्वाथेन स्नेहसाधने
 स्नेहस्य षष्ठभागकल्कदद्यात् । स्वरसेः स्नेह
 साधने स्नेहस्याष्टमभागकल्कदद्यात् ।

भा० - जलक्वाथरसे जहापर अलगस्नेहसाधनकहाहै ॥ वहां
 पर कल्कका चतुर्थषष्ठ अष्टम अंश देवे ॥ ७८ ॥ (क) यह अर्थ
 है कि जलसे स्नेहसाधनमें स्नेहका छटा भाग कल्क देवे । स्वरसे
 स्नेहसिद्धिकरनेमें स्नेहका आठवाभाग कल्क देवे । पुनः विशेषकहें
 (पुनर्विशेषमाह ।)

दुग्धे दधिरसे तन्ने कल्को देवो ऽष्टमांशिकः । कल्कां -
 च सम्यक् पाकार्थं तोय सत्त चतुर्गुणम् ॥ ७६ ॥
 कल्कात् । कल्कद्रव्यात् । चतुर्गुणं तोयं पेषणार्थम् ।
 द्रव्याणि यत्र स्नेहेषु पञ्चादीनि भवन्ति हि । तत्र
 स्नेहसमान्या ह्यर्थथा पूर्वञ्चतुर्गुणम् ॥ ८० ॥
 (क) अस्यायमर्थः । यत्र स्नेहेषु आदीनि पञ्च
 द्रव्याणि दुग्ध दधि स्वरसतक्र कल्कोपयुक्त ज
 नानि प्रत्येकं स्नेहसमानि बोद्धव्यानि यथा पूर्वम् ॥
 दुग्धदधि स्वरसतक्रं समुदितं स्नेहाच्चतुर्गुणं भवति ।
 द्रव्येण केवलेनैव स्नेहपाको भवेद्यदि । तत्रा
 म्बुषिष्टः कल्कः स्याज्जलञ्चात्तचतुर्गुणम् ८१ ॥

भा० - पुनः विशेष कहते हैं ॥ दूध दही रस मठा इनमें कल्क अ
 ष्ट मांश देवे ॥ कल्क से अच्छी तरह पकाने के अर्थ यहां पर जल चो
 गुना देवे ॥ ७६ ॥ कल्क द्रव्य से चो गुना जल पीसने के वास्ते जिस स्नेह
 में द्रव्यादि पांच होते हैं ॥ उसमें स्नेह सम कड़ा है जैसे पहिले चो गु
 ना ॥ ८० ॥ (क) इसका यह अर्थ है कि जिस स्नेह में आदि पांच
 दूध दही स्वरस मठा कल्क इनमें उपयुक्त जल प्रत्येक स्नेह सम
 जानने चाहिये जैसे पहिले । दूध दही मठा स्वरस ये कहते हैं वे स्ने
 ह से चो गुने है ॥ यदि केवल द्रव्य से ही स्नेह पाक होता ॥ उस ज
 ल से पीसके कल्क देवे और जल इसमें चो गुना देवे ॥ ८१ ॥

अत्र कल्कद्रव्ये ॥ क्राथेन केवलनेव पाको यत्नोदितः
 क्वचित् । क्राथ्यद्रव्यस्य कल्काऽपितत्र स्नेहं नयुज्यते
 ॥ ८२ ॥ कल्क हीनम्बुयः स्नेहः स साध्यः केवले द्रवे ।

कवले द्वये । काथेतरस्मिन्स्वरसादिरूपे ॥

पुष्पकल्कस्तु यः स्नेहस्तत्रतोयं चतुर्गुणम् । स्नेहा

त्स्नेहाष्टमांशश्च पुष्पकल्कः प्रयुज्यते ॥ ८३ ॥

वर्त्तवत्स्नेहकल्कः स्याद्यदाङ्गुल्याविवर्त्तितः ।

शब्दहीनोऽग्निनिक्षिप्तः स्नेहः सिद्धो भवेत्तदा ॥ ८४ ॥

यदा फेनोद्गमेतैले फेनं शान्तिश्च सर्पिषि । वर्गागन्ध

रसोत्पत्तिः स्नेहः सिद्धो भवेत्तदा ॥ ८५ ॥ ॥

भा० - अनंतरकल्कद्रव्यमें । जहां कहीं पर केवल काठिसे ही पाक कहा है ॥ उस स्नेहमें काठिकी दवा काही कल्क दिया जाता है ॥ ८२ ॥ कल्कहीन जो स्नेह है वोह केवल द्रवमें सिद्ध करता चाहिये ॥ केवल द्रवमें अर्थात् काठिसे इतर स्वरसादिरूप द्रवमें ॥ पुष्पकल्क का जो स्नेह है उसमें जलचौगुना डालना चाहिये ॥ स्नेह से स्नेह का अष्टमांश पुष्पकल्क डाला जाता है ॥ ८३ ॥ जब अंगुलीसे चलानेसे वत्तीसी हो वोह स्नेह कल्क है ॥ जब भागिमें डालनेसे स्नेह शब्दहीन होवे तब सिद्ध हुआ जाने ॥ ८४ ॥ जब भागतेलमें उठे और छतमें भाग जाते रहें ॥ और वर्गागन्धरस हीन हैं तब स्नेह सिद्ध होता है ॥ ८५ ॥

स्नेहपाकस्त्रिधा प्रोक्तो मृदुमध्यस्वरस्तथा । ईषत्

सरसकल्कस्तु स्नेहपाको मृदु भवेत् ॥ ८६ ॥ मध्यपाक

स्य सिद्धिश्च कल्के नीरसकौमले । ईषत् कठिनकल्क

श्च स्नेहपाको भवेत् वरः ॥ ८७ ॥ तदूर्ध्वं दग्धपा

कः स्याद्वाहकृत्तिः प्रयोजनः । आमपक्वश्च निर्वाच्यो

वन्निमान्धकरो गुरुः ॥ ८८ ॥

भा० - स्नेहपाक तीन प्रकार का कहा है मृदु मध्य और स्वर ॥ घोड़ारसके सहित कल्क वाला स्नेहपाक मृदु है ॥ ८६ ॥ और रससे रहित कौमल

कल्क में मध्यपाक का सिद्ध स्नेह जानना चाहिये ॥ थोड़ा कठिन कल्क
वाला स्नेह पाक स्वरहोता है ॥ ८७ ॥ इसके ऊपर दग्धपाक होता है वोह
दाहका दि वे प्रयोजन है ॥ और कच्चा पाका हुवा निर्वीर्य्य अग्निमान्ध को
करने वाला भारी होता है ॥ ८८ ॥

नस्यार्थं स्यान्मृदुः पाको मध्यमः सर्वकर्षसु । अस्य

ङ्गार्थः खरः प्रोक्षी युञ्ज्या देवं यथोचितम् ॥ ८९ ॥

घृत तैल गुड़ादींश्च साधयेत्तेन वासरे । प्रकुर्वन्पु
पितास्त्वेते विशेषाङ्गुणा सञ्चयम् ॥ ९० ॥

[अथ सन्धानविधिः] द्रवेषु चिरकालस्थं द्रव्यं य

त्सन्धितमभवेत् । आसवारिष्टभेदे स्तु भोज्यते भेष

जोचितम् ॥ ९१ ॥ भेषजेषु यदुचितं तद्भेषजोचि

तम् । [तत्र आसवारिष्टयोर्लक्षणा माह ।]

यदपक्वोपधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः । अरिष्टः

क्वाथसाध्यः स्यात्तयोर्मानं पलोन्मितम् ॥ ९२ ॥

भा० नासके अर्थ मृदु पाक और मध्यपाक स्वका में से ॥ तथा अस्यङ्ग-
के अर्थ खर पाक कहा है इस प्रकार यथोचित योजना करे ॥ ८९ ॥ घृत
तैल गुड़ा आदि योंका एकदिन जेबनावे ॥ विशेष करके वाली हुवे चेह गु-
रा संचयको करते हैं ॥ ९० ॥ अनंतर सन्धान विधि । द्रवमें बहूतकाल
का जो द्रव्य सन्धित होता है ॥ और सव अरिष्ट इनभेदोंसे औषधोचित
उसको कहता हूँ ॥ ९१ ॥ औषधियोंमें जो उचित वोह भेष जोचित है
। उसमें आसव अरिष्टो कालक्षरा कहते हैं ॥ जो कच्चे औषधके जल
से सिद्ध मद्य होता है वोह आसव है ॥ अरिष्ट काटेसे बनता है उनका
तैल पल भर है ॥ ९२ ॥ (सामान्यतोऽरिष्टविधिः ।) ॥

अवृक्तमानारिष्टेषु द्रवाद्द्रोणा गुडानुलम् । क्षौद्रं क्षि

पेद्गुडादहं प्रक्षेपं दशमांशिकम् ॥ ८३ ॥ दश
मांशिकम् । गुडस्यैव दशमांशं । द्विविधं सीधुमाह ।
त्रेयः शीत रसः सीधुरपक्वमधुरद्रवैः (मधुरद्रवै
इक्षुरसादिभिः) सिद्धः पक्वरसः सीधुः सम्पक्वम
धुरद्रवैः । परिपक्वान्नसन्धानात् ससुत्यन्ना सुराञ्ज
गुः ॥ ८४ ॥ सुरामण्डः प्रसन्नास्यात्ततः कादम्बरी
घना । तदधोजगलो त्रेयो मेदको जगला ह्वनः ॥ ८५ ॥

भा० सामान्यसे भरिष्टकीविधि । जिस भरिष्टमें तो नही कही है उस
में दोरा जल और गुडतुला भर ॥ गुडके आधामधु और प्रक्षेप गुडका
दशावा भाग डाले ॥ ८३ ॥ गुडका दशमांश । दो प्रकारके सीधुको क
हते है ॥ अपक्वमधुरद्रवोंसे जो होता है उसकी शीतरस सीधु जानना चा
हिये । अर्थात् इख आदिकेरससे । पक्वद्रवमधुरद्रवसे जो सिद्ध होता
है उसको पक्वरस सीधु कहते है ॥ परिपक्व अन्नके सन्धान से उत्पन्न
हुईको सुरा कहते है ॥ ८४ ॥ सुरामण्ड प्रसन्नाहै उससे कादवरी
गाढी होती है ॥ उसके नीचेका अजगल जानना चाहिये और अजगलसे
मेदक गाढा होता है ॥ ८५ ॥

पक्वासीहतसारः स्यात् सुरा बीजं च किरणवकम् ।
सुरा बीजम् । यव गोधूम तराडूलादि ॥ यत्ता
ल खर्जूरैः सन्धिता साहि वारुणी । कन्दमूल
फलादीनि सस्नेह लवरगानि च ॥ ८६ ॥ विनष्टं स
न्धितोस्तु तच्छुक्तमभिधीयते । अभिधीयन्ते ॥
द्रवेणाप्लाव्य सन्धीयन्ते । विनष्टं मस्ततांयातं म
द्यं वा मधुरद्रवः । विनष्टं सन्धितो यस्तु तच्छुक्त

सभिधीयते ॥ ८७ ॥ गुडाम्बुजासनेलेनकन्दशाक
फलैस्तथा ॥ सन्धितञ्चाम्लतांयातंगुडचुक्रं प्रचक्षते ॥
॥ ८८ ॥ एवमेवहिशुक्तस्यान्मृद्धीकासम्भवंतथा ।
तुषाम्बुसन्धितंश्रेयसामैर्विदलितैर्यवैः ॥ ८९ ॥

भा० पकावोहसाररहितहोताहै उसकोसुगर्वाजकिण्वककहतेहै ॥ सूरावी
ज ॥ जवगेहूतडुलादि ॥ जोलाडुखजूरकेरसोंसेसन्धानकीजातीहै वोहवा
रुसीहै ॥ कन्दमूलफलआदिकस्नेहस्नेहकेसहितऔरलवणा ॥ ८६ ॥
सन्धानकियाइवाजोगलजानाहै उसकोशुक्तकहतेहै ॥ द्रवसेआश्रवणहो
करसन्धानहोताहै ॥ विनष्टअथवाखट्टाइवाजोमधुरद्रवहै ॥ विनष्टस
न्धानकियाजोहै उसकोशुक्तकहतेहै ॥ ८७ ॥ गुडजलकानेलकेसहितत
याकन्दशाकफलकेसाथ ॥ सन्धानअर्थात्थानडाल्नाइवाजोखट्टाहो
जाताहै उसकोगुडचुक्रकहतेहै ॥ ८८ ॥ एमेहीदारुकाशुक्तहोताहै ॥ क
च्चाविदतिलजवोंसेसन्धानकियाइवातुषाम्बुजाननाचाहिये ॥ ८९ ॥

यवैस्तु निस्तुपैः पक्वैः सोवीरं साधितं भवेत् ॥ आ
रनालन्तु गोधूमे रामैः स्यान्निस्तुषीकृतैः ॥ १०० ॥
पक्वैर्वासंहितैस्तत्तुसोवीरसदृशंगुरौः । कल्मा
षधान्यं मण्डादि संहितं काञ्जिकं विदुः ॥ १०१ ॥
शिराडाकि सहिता श्रेया मूलकैः सर्षपादिभिः ॥

भा० निल्लुपकेइवेजवोंसेसिद्धकियाइवासोवीरहोताहै ॥ वेछिल्लके
केकसेगेहूवोंनेआरनालहोताहै ॥ १०० ॥ औरपकेइवेउनसेसन्धानकिया
इवाजोवीरकेसमानगुरामेंहोताहै ॥ तुगन्धिद्रुक्कधान्यकेमंडादिसेसंहि
तकोकाञ्जिककहतेहैं ॥ १०१ ॥ मूनीसरसोंसेसहितकोशिराडाकीजानना
चाहिये ॥ (अयधानूनांशोधनमारणाविधिः)।

॥ तत्र मारणाय योग्यं सुवर्णं माह ॥

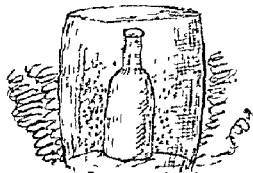
दाहेरत्नं सितच्छेदे निकषे कुङ्कुमप्रभम् । तार
 सुल्योच्चैः तन्निर्गम्यं कौमलं गुरुं हेमसत् ॥ १०२ ॥
 (सत् । उत्तमम्) । तच्छेदे कठिनं रूक्षं विवर्णं सम
 लं हलम् । दाहेच्छेदे सितं श्वेतं कषे स्फुटं लघुस्य
 जैत् ॥ १०३ ॥ [शोधनविधिः] पतलीकृतं प
 त्नाशिं हेम्ना बद्धौ प्रत्नायेत् । निषिञ्चेत् तप्ततप्तानि
 तैले तप्रेच काञ्जिके ॥ १०४ ॥ गौसूत्रेच कुलत्था
 नां कषयेत्तु त्रिधा त्रिधा । एवं हेम्नः परेषाञ्च धा
 तूनां शोधनं भवेत् ॥ १०५ ॥

भा० अनंतरधातु शोधन मारणा की विधिः । उसमें मस्मके योग्य सुवर्ण
 को कहते हैं ॥ दाहमें लाल काटनेमें सफेद कसौदी पर केसरके समान ॥
 चान्दी तारसे रहित चिकना कोमल भारी ऐसा सोना उत्तम है ॥ १०२ ॥
 और वोह काटनेमें कठिन रूखा विवर्ण समल पत्र ॥ दाह और काटने
 में सफेद कसमें स्फुट हलका ऐसे को नलेवे ॥ १०३ ॥ अनंतर शोधन वि
 धि । पतले सोनेके वरक करके आगेमें तपावे ॥ तपा २ कर तेल मठा का
 नी ॥ १०४ ॥ गौसूत्र करण्ठी का काढा इनमें तीन २ वार बुभावे देवे ॥
 इस प्रकार सोनेका और धातुवांका भी शोधन होता है ॥ १०५ ॥

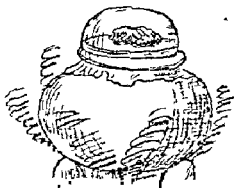
अथा शुद्धस्य सुवर्णस्य दोषमाह ।

बलं सवीर्यं हरते नराणां रोगव्रजं पोषयतीह काये ।
 असौख्यकार्ये च सदा सुवर्णस्य शुद्धमेतन्मरणाञ्च कु
 र्यात् ॥ १०६ ॥ [स्वर्णस्य मारणाविधिः ।]
 स्वर्णस्य द्विगुणं सूतं मस्मिनसह मर्दयेत् । तद्
 गोलकसमं गन्धं निदध्यादधरोत्तरम् ॥ १०७ ॥

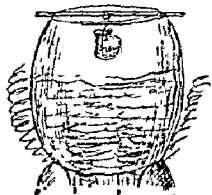
वानू का यंत्र



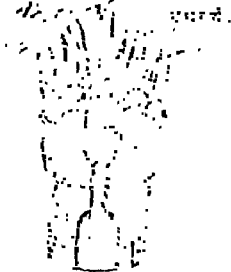
सेदन यंत्र



डोल का यंत्र



विद्याधर यंत्र



स्वर्गास्य अतितनू कृतपत्रस्य गन्धम् । गन्धकचूर्णम्
 गोलकञ्च ततो रुध्वा शरा व दृढसंपुटे । त्रिंशद्वनो
 पलैर्दद्यात्पुठान्येव चतुर्दश ॥ १०८ ॥ निरुत्थं
 जायते भस्म गन्धो देयः पुनः पुनः ॥ ॥

भा० ॥ अनंतरं अंशुद्ध सोनेका दोष कहे ते हैं ॥ सनुष्यों का बल वीर्य के सहि
 त हरता है ॥ और बहुत से रोगों को शरीर में करता है ॥ सदा असौख्य करता
 है और अंशुद्ध यह सोना मरणा भी करता है ॥ १०६ ॥ अनन्तर सोनेको मा
 रणविधि । सोनेका दुगना यारा खटाई के साथ घोटे ॥ उस गोलक के समा
 न ऊपर नीचे गन्धक देवे ॥ १०७ ॥ सोनेका ॥ बहुत पतले किये पत्रका । ग
 न्धकचूर्ण । उसके अनंतर गोलककी सकोरेके दृढ संपुटमें बन्द करके ॥
 तीस अरते उपलोंसे चौदह पुट देवे ॥ १०८ ॥ निरुत्थ भस्म होता है गन्धक
 वार २ देना चाहिये ॥

(क) रुध्वा सवस्त्रकुट्टितं चिकरा सृत्तिकया वनो
 पत्नः । गोड्ठा इति लोके निरुत्थं यत्पुनर्न जीवति ।
 अथान्य प्रकारः । काञ्चने गलितेनाङ्गुषोडशांशेन
 निःक्षिपेत् । चूर्णयित्वा तथा म्लेन धृष्ट्वा कृत्वा तु गो
 लकम् ॥ १०६ ॥ गोलकेन समं गन्धं दत्त्वा चैवा ध
 रेत्यरम् । शराव सन्पुटे धृत्वा पुटे द्विंशद्वनोपलैः
 ॥ ११० ॥ एवं सप्त पुटेर्हे म निरुत्थं भस्म जायते । अ
 त्वापि पूर्ववद्गन्धः प्रदातव्या । [अन्यञ्च]

भा० स वस्त्र कूटी इर्द्ध चिकनी माटीसे । गोड्ठा । निरुत्थ अर्थात् जी
 फिर से नही जीता । अनंतर दूसरा प्रकार । गलाए हुवे सोनेमें सोलह
 वां भाग सीसा डाले ॥ उसको पीसकर तथा खट्टे से घोटकर गोली
 करके ॥ १०६ ॥ गोलक के समान गन्धक नीचे ऊपर देकर ॥ शराव

सम्पुट में धरके घीस भरने उपलोकसे पुट देवे ॥ ११० ॥ ऐसी सात पुटों से सोना
निरुत्थ भस्म होता है ॥ इसमें भी पहिले जैसा गन्धक देना चाहिये ॥ और भी ॥

काञ्च नाररसे घृष्ट्वा समस्तक गन्धयोः । कञ्जलीहे
म यत्राणि लेपयेत् समया तथा ॥ १११ ॥ हेमपत्र
समया ॥ काञ्च नारत्वचः कल्के मूषा युग्मं प्रकल्प
येत् । धृत्वा तत्सम्पुटे गोलं सन्मूषा सम्पुटे च तत् ॥
॥ ११२ ॥ निधाय सन्धिरोधञ्च कृत्वा संशोष्य गोलकम्
वङ्गिखरतरं कुर्या देवं दत्त्वा पुटत्रयम् ॥ ११३ ॥

भा० - समभाग पारा गन्धक की कचनारके रससे घोट करके जलीकरे ॥
उस कजलीको उसीके समान सुवर्ण के पत्रोंको लेपकरे ॥ १११ ॥ सुव
र्णपत्रके समान । कचनारकी छालके कल्कसे दो घरियावनादे ॥ उससे
पुटमें गोलीको धरके और उसको मिट्टीके सम्पुटमें ॥ ११२ ॥ रत्नकर
कपडमिट्टीकरके गोलेको सुकाके ॥ बड़ततेज आंचदेवे ऐसे तीन पुट
देनेसे ॥ ११३ ॥

निरुत्थं जायते भस्म सर्वकर्मसु योजयेत् । काञ्च नार
प्रकारेण लाङ्गुली हन्ति काञ्चनम् ॥ (लाङ्गुली करि
हारी) ॥ ज्वालामुखी तथा हन्यात् तथा हन्ति मनः
शिला । शिला सिन्दूरयोश्चूर्णं समयो र्क दुग्धकैः
॥ ११४ ॥ सप्तधा भावनान्दं घाच्छोषयेच्च पुनः पुनः ।
ततस्तु गलिते हेमनि कल्को ऽयं दीयते समः ॥ ११५ ॥

भा० निरुत्थ भस्म होता है उसको सब कामोंमें लावे ॥ कचनारकी तोर
पर करि हारी सो नेकी मारती है ॥ करि हारी ॥ वैसेही अगिपारखर सीने
को मारता है और भैनासिल सोनेकी मारता है । समभाग भैनासिल और सिन्दूर
इनके चूर्णको आंक के दूधसे ॥ ११४ ॥ सातवार भावनादेवे और फिर

२ सुकावे ॥ उसके अनंतर सोनेको गलाकर यह सम भाग कल्क देवे ॥

११५॥

पुनर्द्ध मेदति तं यथा कल्को विलीयते । एवं वेत्ता
त्रयं दद्यात्कल्कं हेम मृतिर्भवेत् ॥ ११६ ॥

। एवं मारि तस्य सुवर्णस्य गुणाः ॥

सुवर्णं शीतलं वृष्यं वल्यं गुरुरसायनम् । स्वादु
तिक्तं चतुर्वर्णं पाके च खादुपिच्छिलम् ॥ ११७ ॥ प
वित्तं वृंहणं नेत्र्यं मेधास्मृति मति प्रदम् । हृद्य
मायुष्करं कान्ति वाग्बि शुद्धि स्थिरत्वकृत् ॥ ११८ ॥

भा० - फिर धोके खूब जोरसे जिस्मे कल्क जल जावे ॥ इस प्रकार तीन
बार कल्क देवे इससे सोना मरजाता है ॥ ११६ ॥ ऐसे मारि हवे सोनेका
गुणा ॥ सोना शीतल शुक्र को करनेवाला बलकारी भारी रसायन ॥ म
धुर तिक्त कसेला पाकमें मधुर पिच्छिल ॥ ११७ ॥ पवित्र पुष्टनेत्रके हित
में धास्मृति इनको देनेवाला ॥ हृद्य आयु को करनेवाला कान्ति वागी की ॥
शुद्धता स्थिरता को करनेवाला ॥ ११८ ॥

विषद्वयक्षयोन्माद त्रिदोषज्वर शोषजित् । वृष्य
स्वर्णवलयवीर्यञ्च नाशयेत् । करोति रोगान्मृत्युञ्च
तद्व्याघ्रतस्ततः ॥ ११९ ॥ धात्वादि माररोगाय
युक्तान् पुष्ट प्रकारा नाह रस प्रदीपे ॥

भा० दोनों विष उन्माद सन्निपात ज्वर और शोष इनको जीतनेवाला है
। कामुकके हित । अच्छी तरह भस्म न किया हुआ सोना बल वीर्यको
नाश करता है ॥ और रोगोंको तथा मृत्युको करता है इसवासे ठस्की
यत्नसे मारे ॥ ११९ ॥ रस प्रदीपमें धात्वादिके मारणोपयोगी पुष्ट प्रकारों

को कहति ॥

लोहादेर पुनर्भावस्तन्नुराण्वगुराण्व्यता । सलि
लेतरणाञ्चापितत्सिद्धिः पुटनाद् भवेत् ॥ १२० ॥
गम्भीरे विस्तृते कुण्डे द्विहस्ते चतुरस्रके । वनो
पल सहस्रेण पूरितं पुनरौषधम् ॥ १२१ ॥ कोष्ठे
रुद्धे प्रयत्नेन गोविष्टोपरि धारयेत् । वनोपल स
हस्राङ्गं कोष्ठिकोपरि निःक्षिपेत् ॥ १२२ ॥ वङ्गि
विनिःक्षिपेत्तत्र महापुटमिति स्मृतम् । कोष्ठं सृणु
सूषागोविष्टागोइटा । [महापुटम् ।]

भा० धातु आदियों का फिर से नजीना उनका गुणान्व और गुणादयता
है ॥ जलके ऊपर तैरना भी उसकी सिद्धि पुटसे होती है ॥ १२० ॥ गहरे और
बड़े दो हाथके चौकोर कुंडमें ॥ हजार अरने उपले भरि फिर औषधकी
॥ १२१ ॥ कोष्ठ में पलके साथ बन्द करके गोइटाके ऊपर रखवे ॥ या
न्सी अरने उपले कोष्ठिकके ऊपर डाले ॥ १२२ ॥ उसमें आचलगावे
इसकी महापुटकहा है मट्टीकी धरिया । गोइटा । महापुट ॥

सपाद हस्तमानेन कुण्डे निम्ने तथा यते । वनोपल
सहस्रेण पूरितं मध्ये विधारयेत् ॥ १२३ ॥ पुटन
द्रव्यसंयुक्तां कोष्ठिकां सुद्रितां मुखे । अथाङ्गानि
करण्डानि अङ्गान्युपरि निक्षिपेत् ॥ १२४ ॥
एतन्नजपुटं प्रोक्तं स्थातं सर्वपुटोत्तमम् ॥

भा० - सवाहायके मानसे गहरे तथा चौड़े कुंडसे ॥ हजार अरने उपले
से भरि डूबेमें ॥ १२३ ॥ पुटनद्रव्यसे युक्त माटीकी धरियाको बन्द करके र
खवे ॥ आधे कंठे नीचे और आधेको ऊपर डाले ॥ १२४ ॥ यह गज ।

पुट कहाँ है सब पुटोंमें उक्तमै है ॥

(क) हस्तश्चतुर्विंशत्यङ्गुलप्रमाणाः स सपादः
तेन त्रिंशदङ्गुलप्रमाणेनेत्यर्थः अतएवोक्तम् ।

साधारण नराङ्गुल्या त्रिंशदङ्गुलको गजः ।

| इति गजपुटम् | अरन्निमात्रके कुण्डे पुटं वा
राह मुच्यते ॥ वितस्तिमात्रके खाते कथितं कौकुटं

पुटम् ॥ १२५ ॥ अरन्निस्तुकनिष्ठेन मुष्टिनेत्यमरः ॥

निःसृतकनिष्ठया मुष्ट्योपलक्षितो हस्तोऽरन्निरित्यर्थः

भा० - (क) चौबीस अंगुल प्रमाणा हाथ सपाद उससे तीस अंगुल प्रमाणा करके यह अर्थ है । इ सीवास्ती कहाँ है । साधारण मनुष्यकी तीस अंगुल । का गज होता है ॥ इति गजपुट ॥ कौह नीसे चिटली उंगली तक के कुंड में जो पुट होता है उसको वाराह पुट कहते हैं ॥ विलस्त भरके गढ़े में कौकुट पुट कहाँ है ॥ १२५ ॥ कनिष्ठाके साथ मुष्टि से इस प्रकार अमर में कहाँ है । निःकली हुई चिटली उंगली उसकरके उपलक्षित ॥ हस्त अरन्नि है ॥

षोडशङ्गुलके खाते कस्य चित्को कुटं पुटम् ॥ य

त्पुटं दीयते खाते अष्टसंख्यैर्वनोपलैः ॥ १२६ ॥

कपोत पुटमेतन्तु कथितं पुट परिड नैः । गोष्ठा

न्तर्गोखुर क्षुरां शुष्कं चूर्णित गो मयम् ॥ १२७ ॥

गोवरं तत्समाख्यातं वरिष्ठं रस साधने । वहङ्गा

गडस्थितैर्यत्र गोवरं दीयते पुटम् ॥ १२८ ॥

भा० किसीके सोलह अंगुलके गढ़े में ० कौकुट पुट होता है ॥ जो गढ़े में आठ भरने उपलोसे पुट दिया जाता है ॥ १२६ ॥ उसको पुट पंडितोंने कपोत पुट कहाँ है ॥ गो शाला में गायके खुरसे खुदा सूका चूर्णित गोव

र होताहै ॥ १२७ ॥ उसको गोवर कहाहै वोहर रस धानमें श्रेष्ठहै ॥ बड़े
वरतन में रखवे डूबे गोवर से जहां पर पुट दिया जाताहै ॥ १२८ ॥

तद्गोवर पुटं प्रोक्तं भिषग्भिः सूतं भस्मनि । वह द्वा
एडे तुषैः पूर्णो मध्ये सूषां विधारयेत् ॥ क्षित्वाग्निं
मुद्रयेत् भारुडं तद्भारुडं पुटमुच्यते ॥ १२९ ॥

[अथ यन्त्र प्रकारानाह तत्रैव ।]

भारुडे वितस्तिगम्भीरे मध्ये निहितकूपिका । कूपि
का कण्ठपर्यन्तं वालुकाभिश्च पूरिते ॥ १३० ॥ भेष
जं कूपिका संस्थं वह्निना यज्ञपच्यते । वालुकायन्त्रमे
तद्वियन्तं तत्र बुधैः स्मृतम् ॥ १३१ ॥ वालुकायन्त्रम् ॥

भा० उसको वैधोनें पारेके भस्ममें गोवर पुट कहाहै ॥ धानके छि
लकोंसे पूर्ण बड़े वरतनके बीचमें घरियाको रखवे ॥ आगडालकर व
रतनको बन्दकरदे उसको भारुड पुटकहेतेहैं ॥ १२९ ॥ अनंतर ७
सीमें यन्त्र प्रकारको कहाहै
शीको रखवे ॥ शीशीको रेतसे कंठ तक भरे जिसमें ॥ १३० ॥ शीशी
की ववा आगसे पकाई जातीहै ॥ तैने ७ यन्त्रका है
॥ १३१ ॥ वालुकायन्त्र ॥

निबद्धमौषधं सूतं भूर्जेतत् त्रिगुणं वरे । रसपोट
लिका काष्ठे हृदं बध्वागुरो नहि ॥ १३२ ॥ सन्धा
न पूर्णा कुम्भान्तः खावलं वनसंस्थितम् । अध
स्तान् ज्वालयेदग्निं तत्तदुक्तं क्रमेण हि ॥ १३३ ॥

भा० औषध और पारेको भोज पत्रमें बान्धे और उसको नीचे परदकिये डू
ये कपडेमें बांधे ॥ अनंतर उस रस पोटलीको काष्ठमें मजबूत डो
रीसे बान्धकर ॥ १३२ ॥ कांजीसे भरे डूबे घडेके भीतर बीचमें लटका

कर ररखे ॥ नीचे उसमें फहे डूबे क्रमसे आगवाले ॥ १३३ ॥

दोलायन्त्रमिदं प्रोक्तं स्वेदनारथं तदेव हि । [दोलाय
न्त्रम्] सन्धानं (काञ्चीकादि) सांस्तुस्थालीमुखे व
द्वे वस्त्रे स्वेद्यं निधाय च । पिधाय पच्यंते यन्त्रं तद्यन्त्रं
स्वेदनं स्मृतम् ॥ १३४ ॥ [स्वेदनं यन्त्रं] अथ स्था
ल्यारसं क्षिप्तानि दध्यात्तन्मुखोपरि । स्थालीमूर्द्ध
सूखीं सम्यङ् निरुध्य मृदु मृत्स्नया ॥ १३५ ॥ ऊ
र्द्धस्था ल्यां जलं क्षिप्त्वा चुल्यांमारोप्य यत्नतः । अ
धस्ताज्ज्वालयेदग्निं यावत्प्रहरपञ्चकम् ॥ १३६ ॥

भा० - इसको दोलायन्त्र कहा है और स्वेदनारथं भी वही है ॥ दोलाय
न्त्र । काञ्ची आदि । जल सहित तसले के मुख पर कपडे को बांध कर स्वेद
वस्तु को रखके बन्द करके प काया जाता है । जिस यन्त्र में उसको स्वेदन
यन्त्र कहा है ॥ १३४ ॥ स्वेदन यन्त्र ॥ नीचेके तसले में पारेको डालकर
उसके मुख पर ऊपर मुख करके तसला रखे । उसको अच्छी तरह चिक
नी मिट्टी से बन्द करके ॥ १३५ ॥ ऊपरके तसले में जल डालकर चल्हे के ऊ
पर यन्त्र से रखे ॥ और नीचे पांच पहर आगवाले ॥ १३६ ॥

स्वाङ्गः शीतं ततो यन्त्राद् गृह्णीयाद्रसमुत्तमम् । वि
द्याधरमिधं यन्त्रमनन्तज्जेरुदाहृतम् ॥ १३७ ॥

[विद्याधर यन्त्रम्] । वालुकाभिः समस्ताङ्गर्तं
मूत्रां रसान्विताम् । दीप्तोपलेः संचरुणया घ्नन्तं भूधर
नासकम् ॥ १३८ ॥ [भूधर यन्त्रम्] यन्त्रं डमरु
संज्ञं स्यात्तत्स्थाल्यामुद्रिते मुखे । डमरु यन्त्रम्

भा० - स्वाङ्गः शीत होने पर उसमें से यन्त्रके साथ उत्तम रसको लेवे ॥

उसको जानने वालोंने इसको विद्याधर नाम यन्त्र कहा है ॥ १३७ ॥
 विद्याधर यन्त्र ॥ रसयुक्त घरियाको गढ़में रेतसे और जलने उपलोंसे
 सम्पूर्णा अंगको बन्द कर उसको भूधर नामक यन्त्र कहते हैं ॥ १३८ ॥
 भूधर यन्त्रम् । दोनोतसलों के मुख जोड़ देवे उसको डमरु यन्त्र क-
 हते हैं ॥ डमरु यन्त्र ॥

[अथ मारगाय योग्यरूप्यमाह ।]

गुरुस्निग्धं मृदु श्वेतं दाहच्छेदघनक्षमम् । स्व
 र्णादिरहितं स्वच्छं तारं नवगुणं शुभम् ॥ १३९ ॥

[अथायोग्यम्] कठिनं कृत्विमं रूक्षं रक्तं पीतद
 लं लघु । दाहच्छेदघनैर्नष्टं रूप्यं दुष्टं प्रकीर्तितम् ।

॥ १४० ॥ [अथशोधनविधिः] पत्तलीकृतपत्रा
 र्णां तारस्याग्नेौ प्रतापयेत् । निधिञ्चेत्तप्ततप्तानि
 नैलेतक्रेचकाञ्जिके ॥ १४१ ॥ गोमूत्रे चकुलत्या
 नां कषायेच त्रिधा त्रिधा । एवं रजतपत्राणां विशु
 द्धिः सम्प्रजायते ॥ १४२ ॥

भा० अनन्तर मारगाके योग्य चान्दीको कहते हैं ॥ भारी चिकनी मुलायम
 सुफेद तपाने और काटनेमें चोट सहनेवाली ॥ स्वर्ण आदि से रहित स्वच्छ
 यह चान्दीके नव अच्छे गुण हैं ॥ १३९ ॥ अनन्तर योग्य । कठिन कृत्वि
 म रूखी लाल पीले पत्रवाली हलकी । दाहच्छेद और घनमें नष्ट ऐसी
 चान्दीको खराब कहा है ॥ १४० ॥ अनन्तर शोधनविधि । चान्दीके प
 तने पत्रकरके आगमें तपावे ॥ तपा २ करते त मठाकाजी ॥ १४१ ॥
 गोमूत्र और कुरथीके काटिमें तीन २ बार चुम्कावे ॥ इस प्रकार चान्दीके
 पत्रोंकी शुद्धि होती है ॥ १४२ ॥

(अथाशुद्धस्य रूप्यस्य दोषमाह)

रूप्यं त्वशुद्धं प्रकरोति नापं विवन्धकं वीर्य्यवतक्षयञ्च ।

देहस्यपुष्टिं हरते तन्नोति रोगं मृतः शोधनसस्य कृ-

यात् ॥ १४३ ॥ [अथरूप्यसारणाविधिः] ॥

भागैकं तालकं मर्द्यं यामसस्त्रेण केनचित् । तेन भा-

गत्वयं तारपत्राणि परिलेपयेत् ॥ १४४ ॥ धृत्वा

मूषाः पुटे रुध्वा पुटेत् त्रिंशद्द्वयोपलेः । समुद्धृ-

त्य चुनस्तानं दत्त्वा रुध्वा पुटे पचेत् ॥ १४५ ॥

भा० - अनंतर अशुद्ध चान्दी के दोष कहते हैं ॥ अशुद्ध चान्दी तापविबन्ध और वीर्यबलका क्षय करती है ॥ शरीरकी पुष्टी हरती है और रोगों को करती है इसवास्ते इसका शोधन करें ॥ १४३ ॥ अनंतर चान्दीकी मारणा विधि एक भाग हरतालको किभी स्वर्णके साथ एकपहर घोंटकर ॥ उसैतीन भाग चान्दीके पत्रोको लेप करावे ॥ १४४ ॥ उनको घरिये में रख कर बन्दकाल के तीस अने उपलो से पुटदेवे ॥ उसको निकालकर फिर से हरताल दे कर बन्दकर पुटमें पकावे ॥ १४५ ॥

एवं चतुर्दशपुटे स्तारम्भस्म प्रजायते । अथान्य प्रकारः

। स्नुहीक्षीरेणा संपिष्टं साक्षिकं तेन लेपयेत् । ताल-

कस्य प्रकारेण तारपत्रस्य बुद्धिमान् ॥ १४६ ॥

पुटे चतुर्दशपुटे स्तारम्भस्म प्रजायते ॥

[एवं सारितस्य रूप्यस्य गुणाः]

रूप्यं शीतं कषायञ्च स्वादुपाकरसं सरम । वय-

सः स्थापनं स्निग्धं लेखनं वातपित्तजित् ॥ १४७ ॥

प्रमेहादिकरो गांश्च नाशयत्य चिराद्भुवम् ॥

भा० ऐसे चौदह पुटमें चान्दी का भस्म होता है ॥ अनंतर दूसरा प्रकार ॥ रूप्या मारखीको घूवरके दूधमें पीसे उससे ॥ हरताल के तरह चान्दी

के पत्रों को लेप करे ॥ १४ ॥ चौदह पुंठ देवे इससे चान्दी भस्म होती है ।
इस प्रकार चान्दी के भस्म का गुण है ॥ चान्दी शीतल क सेली पाकर म
में मधुर ॥ वपको स्थापन चिकनी लेखन वान पिचको जीनने वाली है ॥
१४७ ॥ और प्रमेह आदिक रोगों को निश्चय नाश करती है ॥

[अथ मारणा योग्य ताम्रमाह]

जवा कुसुम सङ्काशस्त्रिगंधगुरुधनक्षमम् । लोह
नागोज्झितं ताम्रं मारणाय प्रशस्यते ॥ १४८ ॥

[अथा योग्य ताम्रमाह]

रुषां रूक्षं मतिस्वच्छं श्वेतं चापि घना सहम् । लोह
नागयुतं चेति शुल्वदुष्टं प्रकीर्तितम् ॥ १४९ ॥

अथ शोधनविधिः पतलीकृतपत्राणि ताम्रस्याग्ने
प्रतापयेत् । निविञ्चेत्तप्तानि तैले तक्रे च काञ्जिके
॥ १५० ॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये च त्रिधा त्रिधा ।
एवं ताम्रस्य पत्राणां विशुद्धिः सं प्रजायते ॥ १५१ ॥

भा० - अनन्तर मारणा योग्य ताम्र को कहते हैं ॥ अड्डुल के फूल
के सदृश लाल चिकना भारी घन सहने वाला ॥ लोहा और सीसा इनसे
रहित ताम्र मारणा के अर्थ अच्छा है ॥ १४८ ॥ अनन्तर अयोग्य ताम्र
को कहते हैं । काला रूखा अति स्वच्छ श्वेत घन को न सहने वाला ॥
लोह नाग से युक्त ऐसा ताम्र दृष्ट कर्हा है ॥ १४९ ॥ अनन्तर शोधन
की विधि ॥ ताम्र के पतले पत्र करके आग में नपावे ॥ उनको तपा २ करके तेल
मटा काजी ॥ १५० ॥ गोमूत्र कुरथी का काढ़ा इनमें तीन २ बार चुभावे
ऐसे ताम्र के पत्रों की शुद्धि होती है ॥ १५१ ॥

शको दोषो विये ताम्रे त्व शुद्धे ऽष्टौ भ्रमो वमिः । विरे

कः स्वद उत्क्ले दो मूर्च्छा दाहो ऽरुचिस्तथा ॥ १५२ ॥

नविषं विषमित्याहुः स्तामन्तु विषमुच्यते । एकी दो
यो वियेताम्बे त्वष्टी दोषाः प्रकीर्तिताः ॥ १५३ ॥

अथ ताम्रस्य मारणा विधिः ॥

सूक्ष्माणि ताम्र पत्राणि कृत्वा संस्वेदयेद्बुधः।
वासरत्रयमस्त्रेण ततः खल्ये विनिःक्षिपेत् ॥ १५४ ॥
प्रादांशं सूतकं दत्त्वा याम मस्त्रेण मर्दयेत् । तत उ
द्धृत्य पत्राणि लेपयेद्दिगुरीण च ॥ १५५ ॥

भा० विषमें एक दोष अशुद्ध ताम्बे में आठ दोष है ॥ अंभं व मन विरेक
त्वेद उक्कंद मूर्च्छा दाह अरुचि येह है ॥ १५३ ॥ विषको वियनही कहते
हैं ताम्बेको विषकहेतेहैं ॥ एक दोष विषमें कहाँ है और आठ दोष ताम्बे
में कहाँ है ॥ १५३ ॥ अनन्तर ताम्बेके मारणा की विधि । सूक्ष्मताम्बेके
पत्र करके बुद्धिवान् उनकी संस्वेदन करे ॥ तीन दिन खटाईके साथ
उसके अनन्तर खरतनमें डाले ॥ १५४ ॥ उसमें चौथाई पारादेकर ए
क पहर खटाईके साथ घोटे ॥ उससे लेकर दुंगने से उनपत्रोंको लेप
करे ॥ १५५ ॥

गन्धके नाम्बे घृष्टेन तम्यकुर्याच्च गोलकम् । ततः पि

ष्ट्वा च मीनाक्षीचाङ्गेरीवापुनर्नवाम् ॥ १५६ ॥

(चाङ्गेरी चतुष्पत्नास्त्रालोनि का भेदः ।)

तत्कल्केन बहिर्गोलं लेपयेद्बुधुल्लोन्सितम् । भृत्या
तद्गोलकं भग्डे सरावेण चरो धयेत् ॥ १५७ ॥

भा० - खटाईसे घोटे हुए गन्धक से उसकी गोली करे ॥ उसके अनन्तर
मछे की चाङ्गेरी अथवा पुनर्नवा इसकी पीसकर ॥ १५६ ॥ उसक
ल्कसे दो अंगुल मोटा गोलकके बाहर लेप करे ॥ उसे गोलक की बरतनमें
रावकर सकोरेसे बन्द करदे ॥ १५७ ॥

वाल्मुकाभिः प्रपूर्वाथ विभूति लवणास्युभिः ॥ दन्त्वा
 भाण्ड मुखे सुद्रां ततश्चुल्यां त्रिपाचयेत् ॥ १५८ ॥
 क्रमवृद्धाग्निना सम्यग्वावधामंचनुष्टयम् । स्वाङ्ग-
 शीतं समुहृत्यमर्दयेच्छूरणाद्रवैः ॥ १५९ ॥ यामे-
 कं गोलकं तच्च निःक्षिपेच्छूरणोदरे ॥ मृदालेपस्तु
 कर्तव्यः सर्वतोऽङ्गुष्ठमात्रकः ॥ १६० ॥ पाच्यं गज-
 पुटे क्षिप्तं मृतं भवति निश्चितम् । वमनं च विरेकं च
 धमं क्लममथा रुचिम् ॥ १६१ ॥ विदाहं स्वेदमुत्क्रे-
 दं न करोति कदाचन ॥

भा० वाल्मुके भस्के और विभूतलवणा जल दूसे भाण्ड मुख में सुद्रां दे
 कर उसके अनंतर चूल्हे पर पकवावे ॥ १५८ ॥ क्रमवृद्ध अग्नि से अच्छी
 तरह परदार पहर आंच देवे ॥ स्वाङ्ग शीत होने पर निकाल कर सूरणा
 के रस से घीटे ॥ १५९ ॥ एक पहर उस गोलक को सूरणा के भीतर र-
 खवे ॥ मिट्टी से सब तरफ अंगुष्ठ मात्र लेप कर ना चाहिये ॥ १६० ॥ पा-
 च्यको गजपुट में डालने से अवश्य मरता है ॥ वमन विरेक धमं क्लम और
 अरुचि ॥ १६१ ॥ विदाह स्वेद उत्क्रे दहन को कभी नही करता ॥
 एवं भारितस्य ताम्रस्य गुणाः ।

तासं कषायं मधुरं सतिक्तं मस्रं च पाके कटुं सारकञ्च ॥

पित्तापहं श्लेष्महरञ्च शीतं तद्रोयणं स्यान्नृत्तुनिखन-
 ञ्च ॥ १६२ ॥ पाण्डूदरा शो ज्वर कुष्ठ कास प्रवास क्ष-

थान् पीनस मस्रपित्तम् । शोथं कृमिं शूलनम् पाकरो-
 ति आहर्बुधा रंहणा मल्यमेतत् ॥ १६३ ॥ एको दो-

षो विद्येतामे त्वसम्यग्भारिते पुनः । दाहः स्वेदोऽरुविर्मु-

कां लो दोरेको चमि भ्रमः ॥ १६४ ॥ रेको विरेकः ॥

भा० - रोगे मारितं तांशु कागुरा ॥ तांशु कासेना मथुर तिल स्वद्वयापाक मे
कटुसारक ॥ पित्तनाशक कफनाशक शीतल और रोपरा हलकालेख
नहोताहे ॥ १६२ ॥ पाद रोग उदर रोग ज्वर कुष्ठ कासे र्श्वाम संव यीनस
अम्लपित्त ॥ सूजन रुमि शूल इनको दूर करताहे और पंडितोने कहाहे
कियेह घोडा पुष्ट भी हे ॥ १६३ ॥ एक दोष विषम और अच्छीतरह न
सुरे तांशुम ॥ दाह खिद अरुचि मूर्च्छा ज्के द विरेचन भयंहरहोतेहे ॥
१६४ ॥ विरेक ॥

[अथ वङ्गस्य रूप निरूपणम् ॥]

वङ्ग च गिरिजं तच्च खुरकं मिश्रकं द्विधा । तयोस्तु
खुरकं श्रेष्ठं मिश्रकं त्वहितं मनुम् ॥ १६५ ॥

॥ तस्या शुद्धस्य दोषमाह ॥

वङ्गं विधत्ते खलु शुद्धिहीनं माक्षिकं म्योच किनास
शुल्भो । कुष्ठानि शूलं क्लिप्तं वात शोथं पाण्डु प्रमेह
ज्व भगदरञ्च ॥ १६६ ॥ विषोपसरक्त विकारश्चन्द
शयञ्च रुच्छाणि कफज्वरञ्च । मेहाश्मरीविद्र
धिमुष्क रोगान्नागीऽपि कुर्यात्कथितान् विकारान् ॥ १६७ ॥

भा० - अनंतर राङ्गे कास्वरूप तिरु परा ॥ पहा हो राङ्गा दो प्रकार का दोताहे
खुरक और मिश्रक ॥ उन्मे खुरक श्रेष्ठ है । और मिश्रक अहित कहाहे ॥
॥ १६५ ॥ उसके अशुद्ध का दोष कहतेहे ॥ अशुद्ध राङ्गा माक्षिक कय किना
स कुष्ठ वायगोला ॥ कुष्ठ शूल वात शोथ पाण्डु रोग प्रमेह भगदर ॥ १६६ ॥ उ
नको करताहे और विषके समान रक्त विकार काश्चन्द शय मूत्र रुच्छ कफ ज्वर
इन
मी

तस्य शोधनमभिधीयते वङ्गं नागी प्रतभोच गति

नौ नौनियेचयेत् । त्रिधा त्रिधा विशुद्धिः स्याद्द्वि
दुग्धेऽपि च त्रिधा ॥ १६८ ॥ (क) नियेचयेत् तै
ल तक्र काञ्जिक गोमूत्र कुलत्थ काथेषु प्रत्येक
त्रिधा त्रिधा ततो ऽर्कदुग्धे ऽपि त्रिधा ।

भा० उसकी शोधनविधि कहते हैं । राइन और सीसा इनको गलायके ॥ तीन २
वार तेल मदाकाजी गोमूत्र कुरथीका काटा इनमें बुझावे और आकके दुग्धमें
भी तीन वार बुझावे । इससे शुद्ध होता है ॥ १६८ ॥ (क) तेल मने काजी गोमू
त्र कुरथीका काटा इनमें हर एकमें तीन २ वार अनंतर मदारके दुग्धमें भी ती
न वार बुझावे ।

॥ अथ वङ्गस्य मारणविधिः ॥

मृतपात्रे द्राविते वङ्गे चिञ्चा उवत्यत्वचोरजः । क्षि
त्त्वा वङ्गचतुर्थी शमयोदर्या प्रचालयेत् ॥ १६९ ॥
चिञ्चा अमिली । रजश्वृगाम् अयोदवीकरछुली ।
ततो द्वियाममात्रेण वङ्गभस्म प्रजायते ॥ अथ भ
स्म समंतालं क्षित्त्वा स्लेन विमर्दयेत् ॥ ततो गज
पुटे पक्त्वा पुनरस्लेन मर्दयेत् ॥ १७० ॥ तालेन
दशमांशेन याममेकं ततः पुटेत् ॥ एवं दशपुटेः
पक्वं वङ्गं भवति मारितम् ॥ १७१ ॥

भा० अनंतर राङ्गेकी मारणविधि ॥ मिट्टीके चरतनमें पिघलाये दूधे राङ्ग
में इमली पीपल इनकी छालका चूर्ण ॥ राङ्गकी चौथाई डालकर लोह
की कड़खीसे चलावे ॥ १६९ ॥ इमली । करछी उससे दो पहरमें राङ्ग भस्म
होता है ॥ अनंतर भस्मके समान हरताल को डालकर खटाईसे घोटे ॥
१७० ॥ दशमांशे हरतालसे एक पहर भर फिरसे पुटे देवे ॥ ऐसी दस
पुटे देनेसे राङ्गका भस्म होता है ॥ १७१ ॥

एवं मारितस्य चङ्गस्य गुणाः

वङ्गं लघु सरं रूक्षं कुष्ठं मेह कफ रुमीन ॥ तिहन्ति
 पाण्डुं सश्यासं नेत्र्य मीषत् तुपित्तलं ॥ १७२ ॥
 सिहो गजो घृतु यथा तिहन्ति तथैव वङ्गेऽखिलमे
 ह वर्गम् । देहस्य सौरव्यं प्रवलेन्द्रियत्वं नरस्य पुष्टिं
 विदधाति नूनम् ॥ १७३ ॥ अथ यशस्य स्वरूपं ॥
 यशसि रज्जि रज्जं तस्य दोषाः शोधन मारणौ । चङ्गस्ये
 वहि वौद्धव्या गुणां स्तु गणा याम्यथ ॥ १७४ ॥

भा० - इस प्रकार अस्मकिये हवे रङ्गे का गुण ॥ रङ्गा हलका सर रूखा हो
 ता है और कुष्ठ प्रमेह कफ रुमि इनको नाश करता है और पाण्डु रोग इवास इ
 नको भी नाश करता है तथा नेत्रके हित थोड़े पित्तको करने वाला हो ॥ १७२ ॥
 जैसे सिंह गजके गिरोह को नाश करता है वैसे ही रङ्ग संपूर्ण प्रमेह वर्गको
 नाश करता है ॥ मनुष्यके देहका सौरव्य प्रवलेन्द्रियत्व इनको अवश्य करता
 है ॥ १७३ ॥ अनंतर जसदका स्वरूप ॥ पहाडी जसद उमके दोष शोधन मा
 रणमें । रङ्गके ही समान गुण जानने चाहिये और कहता हूँ ॥ १७४ ॥

यशसि रज्जि रज्जं तस्य दोषाः शोधन मारणौ । चङ्गस्ये
 वहि वौद्धव्या गुणां स्तु गणा याम्यथ ॥ १७५ ॥

[अथ सीसकस्य शोधनम् ॥]

तस्य साहजिका दोषा रङ्गस्येव निदर्शिता । शोध
 ने च्चापि तस्येव भिद्यग्भिर्गदितं पुरा ॥ १७६ ॥

भा० जैसे दसेरति, क शीतल कफ पित्तका नाशक । परमनेत्रके हित और
 प्रमेह पाण्डु रोग इवास इनको नाश करता है ॥ १७५ ॥ अनंतर सीसे का शो
 धन । उगुके सहजिक दोष रङ्गके से ही कहते हैं ॥ और शोधन भी वही ने

उसीके समान कहा है ॥१७७॥
 [अथ सीसस्य मारणविधिः]
 ताम्बूलारससंपिष्टं शिलालेपात्पुनः पुनः। चक्षि-
 शद्धिः पुंटेर्नागांतिरुत्थं भस्म जायते ॥१७७॥ शि-
 लोमनः शिलाः। अन्यच्च ॥ अश्वत्थचिञ्चात्वक्
 चूर्णाञ्चतुर्थोश्नेन निक्षिपेत्। मृतप्राज्ञे विदुतो नागो-
 लोहद्व्यां प्रचालितः ॥१७८॥ यामैकेन भवेद्भस्म
 तत्तुल्यास्यात्मनः शिला। काञ्जिकेन द्वयं पिष्ट्वापचेद्-
 गजपुटेन च ॥ १७९॥ स्वाङ्गशीतं पुनः पिष्ट्वा शिलया
 काञ्जिकेन च। पुनः पचेत्सरायाभ्यामेवायष्टिपुटे मृतिः

॥ और सीस ॥ पीपल इमली इनके छाल का चूर्ण चतुर्थी जाकर का ॥ मट्टिके पर
 तन में गलाये हुवे नाग पर डाले और लोहेकी करछी से चलाता जाय ॥ १७८
 गक पहर में भस्म होता है उसके समान में सिलले कर ॥ दोनोंको कांजी
 में पीसकर गजपुटमें पकावे ॥ १७९॥ स्वाङ्गशीत होनेपर फिर रसे में सिल-
 ले और कांजीके साथ फिर उसके ऐसे पकावे ऐसे साठपुटमें मरता है १८०

रावं मारितस्य सीसस्य गुणाः ॥ सीसं उद्गुणां श्रेयं
 विश्वान्मिह नोशनम् ॥ नागस्तु नागं शतं तुल्यबलं
 ददाति। व्याधिञ्च नागं शयति जीवत मातनोति। व-
 ह्निं प्रदीपयति कामबलं करोति। मृत्युञ्च नाशयति
 सन्ततं सेवितः सः ॥ १८१॥

भा० ऐसे नाग भस्मके गुरा । सीसा रङ्ग के गुरा जानना चादिये वि शोधक
रके प्रमेह नाशक है । नाग सेहाथी के समान बलको देता है ॥ रोगोंको नाश
करता है । जीवनको करता है । अग्निको दीपन करता है काम बलको करता है
और मृत्युको नाश करता है निरन्तर सेवन करनेसे ॥ १८३ ॥

अथ लोहस्या शुद्धस्य दीयमाह ॥ खराड त्वकुष्ठा मयसृ

त्युकारी हृद्दोग इल्लो कुरुतेऽत्रमरीच्य । नानारुजा

नांच तथा प्रकोपं कुर्याच्च हृत्त्वासमशुद्धलोहम् ॥

॥ ८२ ॥ अतस्तस्य दीयशान्तये शोधनमभिधीयते ।

पतन्ती कृतपत्राणि लोहस्याग्नेो प्रतापयेत् । निषि

ञ्चेत्तप्तमानि तैले तत्रैचकाञ्जिके ॥ ८३ ॥ गोसू

त्रेचकुलन्त्यानां कषांचत्विधात्रिधा । एवं लोहस्य प

त्राणां विशुद्धिः संप्रभायते ॥ १८४ ॥

भा० अनन्तर अशुद्ध लोहेके दीयकहेते है ॥ नपुंसकता कुष्ठ मृत्यु इन
को करनेवाला और हृद्दोग इल्ल इनको करता है और अत्रमरीकोभी । अने
करेंगोका प्रकोप करता है तथा हृत्त्वास इनकोभी अशुद्ध लोहा करता है
इस वास्ते उसकी दीयशान्तिके अर्थ शोधनकहे ताहूँ ॥ लोहेके पतलेप
त्र करके अग्निमें तपावे ॥ और तपानपा करतैल मठाकाजी ॥ १८३ ॥ गो
सूत्र कुरथीका काटा इनमें नीन, खार बुभावे । ऐसे लोह पत्रोंकी शुद्धि
होती है ॥ १८४ ॥

अथ लोहस्य सारशावधिः

शुद्धे लोहभवे चूर्णापाताल गरुडीरसेः । मर्दयित्वा

पुटे वन्देो दद्या देवं पुटत्रयम् ॥ १८५ ॥ पुटत्रयं

कुमार्याश्च कुठारच्छिन्नि कारसेः । पुटषट्कं ततो

दद्या देवं तीक्ष्णानृतिभवेत् ॥ १८६ ॥ अन्यच्च ।

क्षिपेद्वा दशमांशेन दरदंती क्षणचूर्णतः । मर्द्दयेत्क
 न्यकाद्रावैर्यामयुग्मं ततः पुटेत् ॥ १८७ ॥ एवं सप्तपु
 टैर्मृत्युं लोहचूर्णमवाप्नुयात् । सत्योऽनुभूतो योगेन्द्रैः
 क्रमोऽन्यो लोहमारणो ॥ १८८ ॥ कथ्यंते रामराजेन
 कौतूहलधियाऽधुना । सूतकान् द्विगुणं गन्धं दत्त्वा
 कुर्याच्च कञ्जलीम् ॥ १८९ ॥ ॥ ॥ ॥

भा०-अनंतर लोह की मारणाविधि ॥ शुद्धलोहेके चूर्णको पत्तालसूलीके रस
 से घोटकर अग्निमें देवे ऐसे तीनपुट देवे ॥ १८५ ॥ तीनपुट घीकुवारके कुरिया
 के रससे ॥ छपुट देवे रोसे लोह भस्म होता है ॥ १८६ ॥ औरभी । लोहेसे
 बारह अंशकरके सिंगरिफले ॥ उसकी घीकुवारसे दीपहर घोटवावे । उस
 के अनंतर पुट देवे ॥ १८७ ॥ रोसे सान पुट देनेसे लोह भस्म होता है ॥ सत्य
 अनुभूत योगि राजासे क्रम दूसरा लोह भस्ममें ॥ १८८ ॥ अवरामराजनेकी
 कौतूहलबुद्धिसे । पारसेदुगना गन्धक देकर कजलीकरके ॥ १८९ ॥

द्वयोः समं लोहचूर्णं मर्द्दयेत्कन्यकाद्रवैः । यामयु
 ग्मं ततः पिण्डं कृत्वा ताम्रस्य पत्रके ॥ १९० ॥ धर्मै
 धृत्वा रुवूकस्य पत्रैराच्छादयेद्बुधः ॥ यामद्वया
 द्वेदुष्णां धान्यराशौ न्यसेत्ततः ॥ १९१ ॥ दत्त्वो
 परि सरावंतु त्विदिनान्ते समुद्धरेत् ॥ पिष्ट्वा च गा
 लये द्वस्त्रा देवं वारितरं भवेत् ॥ १९२ ॥

भा० दोनोके समान लोहचूर्णकी घीकुवारके रससे ॥ दीपहरघोट
 उसके अनंतर पिंडकरके ताम्रके पात्रमें ॥ १९० ॥ धरकर धूपमें अ
 डीके पत्रसे ढककर पिंडित दीपहर । रखे उसी गरम होता है उसके
 अनंतर धानकी राशीमें रखवे ॥ १९१ ॥ सकीरेके ऊपर देकर तीन
 दिनके अनंतर निकाले ॥ पीसकर कपडेमें छाने तब यह पानीमें तैर

नाहे ॥ १८२ ॥ दाडि मस्य दलं पिष्ट्वा तच्च तुर्गुणाचारिणा ।
 तद्र सेनाय सञ्चूणां सन्धीय भ्रावयेदिति ॥ १८३ ॥
 आतये शोयये तच्च पुटे देवपुनः पुनः । एकविंश
 ति वारैस्तन्त्रियते नात्र संशयः ॥ १८४ ॥ एवं स
 र्वारिणा लोहानि स्वर्गा दीन्यपि मारयेत् ।

एवं मारि तस्य लोहस्य गुणाः ॥

लोहं तिक्तं सरं शीतं कषायं मधुरं गुरु । रूक्षं वय
 स्यं चक्षुष्यं लेखनं वातलं जयेत् ॥ १८५ ॥ क
 फं पित्तद्वारं शूलं शोफार्शः स्नीहपाण्डुताः । मेदो
 मेह क्रिमीन् कुष्ठं तत्किं च तद्देवहि ॥ १८६ ॥

भा० - अनारके पत्तोंको उससे चौगुनें पानीके साथ पीसकर ॥ उसरस
 से लोहचूरको सानकर भिजीदेवे ॥ १८३ ॥ इसको धूपमें सुकावे इसप्रका
 र वार २ पुटे देवे ॥ इक्कीस दफेमें घोह मर जाता है इसमें कोई संशय
 नहीं ॥ १८४ ॥ ऐसे सब लोह स्वर्गादि कोंको मारे ॥ इसप्रकार मारेहवे
 लोहका गुण ॥ लोह तिक्त सर शीतल कसेला मधुर भारी ॥ रूखा वयके
 हितनेत्रके हित लेखन वातको करनेवाला है ॥ १८५ ॥ और कफ पित्त
 विष शूल शोफ ववासीर पिलही पाण्डुता ॥ मेदमें ह क्रिमिकुष्ठ इनको
 नाश करता है और उसका कीट उसीके समान गुणमें होता है ॥ १८६ ॥

गुञ्जामेकां समारभ्य यावत् स्थुर्नवरक्तिकाः । ताव
 ल्लोहं समस्नीयाद्यथा द्रोयानलं नरः ॥ १८७ ॥

कुष्माण्डं तिलं तैलं च मायां च राजिकां तथा । मघ
 मस्तरसञ्चैव वैजयेल्लोहसेवकः ॥ १८८ ॥ शिला
 गन्धार्कं दुग्धाक्ताः स्वर्गाद्याः सर्वधातवः । त्रियन्ते

द्वादश पुटैः सत्यं गुरु वचो यथा ॥ १८६ ॥

अथोपधानूनां मारणा प्रकार माह ॥

तत्र स्वर्गा माक्षिक स्या शुद्धस्य दोष माह ॥ ॥

मन्दान्तलत्वं बलहानि सुग्मा विष्टम्भितानेत्र ग
दां शकुष्टान् । मालां तथैव प्रणा पूर्विकाञ्च कुर्या
द शुद्धं खलु माक्षिकञ्च ॥ २०० ॥

भा० एक रत्नी से शुरू करके नीरत्नी तक । अनुष्य दोष और अग्निबल के अनुसार सेवन करे ॥ १८७ ॥ पेटातिलकातेल उड़द राई । तथा मधु अक्षरसद्मनको लोहका सेवन करनेवाला नसेवन करे ॥ १८८ ॥ सैनसिल गन्धक आकका दूध इनके साथ सुवर्गादि स्वधातु ॥ चारह पुट से मरते हैं सत्य गुरुके वचनानुसार ॥ १८९ ॥ अनंतर उपधानुवाके मारणाका प्रकार कहते हैं । उसमें सोना मारवी अशुद्ध का दोष कहते हैं ॥ अग्नि मन्धवलहानि उग्मविष्टम्भितानेत्र रोगां शकुष्ट ॥ गंडमाला इनको विन सोधी सोना मारवी करती है ॥ २०० ॥

अतस्तस्य दोष शान्तये शोधनमभिधीयते । माक्षिकस्य त्रयोभागा भागैकं सैन्धवस्य च । मातुलुङ्गद्वैर्वाथ जम्बीरस्य द्वैः पचेत् ॥ २०१ ॥ चालयेत्सौहजे पात्रे यावत् पात्रं सुलोहितम् । भवेत्ततस्तु संशुद्धिः स्वर्गा माक्षिक मृच्छति ॥ २०२ ॥

भा० इसवासे उसकी दोष शान्ति के अर्थ शोधन कहते हैं । सोना मारवीके तीन भाग एक भाग सैन्धव ॥ इनको नीम्बुके रससे अथवा जंजीरी के रससे पकवि ॥ २०१ ॥ नोहेके पात्रमें चलावे जबतक पात्रलाल हो ॥ उससे सोना मारवी शुद्ध होती है ॥ २०२ ॥

अथ मारणा विधि ॥

कुलत्थस्य कषायेण घृष्ट्वा तैलेन वापुटेत् । तत्रे
ण वाजमूत्रेण धियते स्वर्णमाक्षिकम् ॥ २०३ ॥

[अथ तारमाक्षिकस्य शोधनमाह ।]

सुवर्णमाक्षिकवद्दोषाविज्ञेयास्तारमाक्षिके । अत
स्तद्विषयज्ञान्यर्थं शोधनं तस्य कथ्यते ॥ २०४ ॥ क
र्कोटीमेव शृङ्गुत्थेद्रवैजस्वीरजैर्दिनम् । भावये
दातपे तीव्रे विमला शुद्ध्यति ध्रुवम् ॥ २०५ ॥

(क) विमला तारमाक्षिकम् । कर्कोटी खैरवसा ।
मेव शृङ्गीमेडा शृङ्गी । [अथ मारगाम् ।]

कुलत्थस्य कषायेण घृष्ट्वा तैलेन वापुटेत् । तत्रे
ण वाजमूत्रेण तारमाक्षिकमृच्छति ॥ २०६ ॥

भा० - ३ अनंतर मारगाविधि ॥ कुरथीके काढेसे अथवा तेलसे घोट
कर पुट देवे ॥ अथवा मठसे, यावकरी सूत्रसे सोना मारवी मरती है ॥ २०३ ॥
अनंतर रूपा मारवीका शोधन कहते हैं ॥ सोना मारवीके समान दीय रू
पा मारवीमें जानने चाहिये । इस वास्ते उस दीयकी ज्ञानीके अर्थ उस
का शोधन कहते हैं ॥ २०४ ॥ खैरवसा मेडा साङ्गी इनके रससे और जंभी
रीके रससे दिनभर ॥ तीक्ष्ण धूपमें भावना देवे । इस्से रूपा मारवी अवश्य
शुद्ध होती है ॥ २०५ ॥ (क) रूपा मारवी । खैरवसा । मेडा साङ्गी । अनंतर
मारगा । कुरथीके काढेसे अथवा तेलसे पुट देवे ॥ मठसे अथवा यकरीके
सूत्रसे रूपा मारवी मरती है ॥ २०६ ॥ - अथ तयोर्विशिष्टा गुणाः

न केवलं स्वर्णरूप्यगुणास्तापीजयोर्मता । द्रव्या
। न्तरस्य संसर्गात्सन्नयन्येऽपि गुणास्तयोः ॥ २०७ ॥
माक्षिकं मधुरं तिक्तं स्वर्णं दृष्यं रसायनम् । चक्षुष्यं

वस्ति रुक कुष्ठं पाण्डु मेह वियो दरम् ॥ २०८ ॥ अ
र्शः शोफं क्षयं कराडू त्रिदोषञ्च नियच्छति ।

[अथ तुत्थस्य शोधनमाह ।]

विषया मर्दयेत्तुत्थ मार्जारक कपोतयोः । दशांशं
दङ्कुरां दत्त्वा पचे लघुपुटेततः ॥ २०९ ॥ पुटं
दघ्ना पुटं क्षौद्रेर्देयं तुत्थविशुद्धये ॥

भा० अनंतर उनके विशेष गुण । केवल सोना चान्दी के ही गुण सोना
मारखी और रूपा मारखी में नहीं हैं ॥ किन्तु द्रव्यान्तरके संसर्ग से उनमें औ
र भी गुण हैं ॥ २०७ ॥ सोना रूपा मारखी मधुर तिक्त स्वरके हित कामु
क के हित रसायन ॥ नेत्रके हित वस्ति पीडा कुष्ठ पाण्डु रोग प्रमेह विष
उदर ॥ २०८ ॥ ववा सीर सूजन क्षय खुजली और त्रिदोष इनको नाश
करती है ॥ अनंतर लीला थोथेका शोधन कहते हैं ॥ कबूतर और
वाल्ली इनकी विष्टा से खरल करे ॥ दशांश भाग सोहागा देकर लघु
पुटमें पकावे उसके अनंतर ॥ २०९ ॥ लीला थोथेकी शुद्धि के अर्थ दही
से और मधुसे पुट देना चाहिये ॥

[एवं शुद्धस्य तुत्थस्य गुणाः] तुत्थकं कटुकं क्षा
रं कषायं वामकं लघु । लेखनं भेदनं शीतञ्च क्षुष्यं
कफपित्तहृत् ॥ २१० ॥ वियाश्रमकुष्ठकराडू घृतं द
शांशं स्वर्परमतम् । अथ कांस्यस्य रीतेष्वशोधनन्व
भिधीयते ॥ पत्तली कृतपत्रारिण कांस्यस्याग्ने प्र
त्नापयेत् । निविञ्चेत्तप्तानि तैले तक्रैचकाञ्जिके
॥ २११ ॥ गोनूत्रे च कुलत्थानां कषायेऽत्र त्रिधा त्रिधा ।
एवं कांस्यस्य रीतेष्वविशुद्धिः संप्रजायति ॥ २१२ ॥

भा० इस प्रकार शुद्ध लीला थोथे के गुण ॥ लीला थोथा कटक पार क
सेला वमन कराने वाला हलका ॥ लेखन भेदन शीतल नेत्र के हित कफ पि
त का नाशक ॥ २९१ ॥ २९२ ॥ और विषपथरी कुष्ठ खुजली इनका नाशक है
उसका गुण खपरिया में माना है ॥ अनंतर कांसा और पीतल का शोध
नकहने है ॥ कांसे के पतले पत्र करके आग में तपावे ॥ तप्त तप्तों को तिल
मद्य कांजी ॥ २९१ ॥ और गोमूत्र तथा कुरथी के काढ़ा इनमें तीन २ वा
र बुभावे ॥ ऐसा कांसा और पीतल की शुद्धि होती है ॥ २९२ ॥

[अथ मारणाविधिः] अर्क क्षीरेण संपिष्टो गन्धक

स्तेनलोपयेत् । समेन कांस्य पत्राणि शुद्धान्यस्त्र
द्रवैर्मुहुः ॥ २९३ ॥ ततो मूया पुटे धृत्वा पचेद्गजपुटे
नच । एवं पुट इयात्कांस्य रीति श्वम्भियते ध्रुवम् ॥

॥ २९४ ॥ एवं मारितयोः कांस्यस्य रीते श्वगुणाः ।

कांस्यं कषायं तीक्ष्णोष्णं लेखनं विशदं सरम् ॥

॥ २९५ ॥ रीति कानु भवेद्द्रक्षा सतिक्ता लवणारसे ।

शोधिनी पाराडु रोगघ्नी रुमिहृत्नाति लेखनी ॥ २९६ ॥

भा० अनंतर मारणाविधि ॥ आक के दूध से पीसे द्रवै समभाग गन्धक से ॥
कांसे के शुद्ध पत्र लीप करे ॥ और खट्टे के रस से वाद ॥ २९३ ॥ उसके अनंतर
मूया पुट में रख कर गजपुट में पकावे ॥ इस प्रकार के दो पुट से फाना और पी
तल अवश्य मरता है ॥ २९४ ॥ इस प्रकार मारे द्रवै कांसा और पीतल के
गुण । कांसा कसेला तीखा गरम लेखन विशद सर ॥ मारी नेत्र हित रू
खा यरस कफ पित्त का नाशक है ॥ २९५ ॥ पीतल रूखा तिक्त रस में लवण
शोधन पाण्डु रोगका नाशक रुमि नाशक नवद्वत लेखन है ॥ २९६ ॥

(अथ सिन्दूरस्य शोधनमाह ।)

- दुग्धास्त्र योगतस्तस्य विशुद्धिर्गदिता बुधैः । अथ
गुणाः । सिन्दूर उष्णो वी सर्प कुष्ठ कण्डू वियापहः ।

भग्नसन्धानजननी व्रणाशोधनरोपणम् ॥ २१७ ॥

अथशिलाजतुनःशोधनम् ॥ तत्रशोधनायोग्य
शिलाजतुमाह ॥ गोमूत्रगन्धवत्कृष्णस्त्रिगंधमृदु
तथागुरुं । तिक्तं कषायंशीतञ्चसर्वश्रेष्ठं तदायसम्
॥ २१८ ॥ (आयसम्अयसुपधानुः)

विन्ध्यादौबहुन्नंतन्तुतत्रलोहंयतोऽधिकम् । तच्छो
धनसृतेव्यर्थमनेकमलमेलनात् ॥ २१९ ॥

भा० अनन्तरसिन्दूरकाशोधनकहतेहै । दूधऔरखटाईकेयोगसेशुद्धि
इसकीपंडितोंनेकहीहै ॥ अनन्तरगुणा ॥ सिन्दूरउष्णहैऔरवीसर्पकुष्ठखु
जलीबिपद्मनकानाशक ॥ दूटेकोजीइनेवालाव्रणाशोधनरोपणहै ॥ २१७
अनन्तरशिलाजीतकाशोधनकहतेहैं ॥ उसमेंशोधनयोग्यशिलाजीत
कोकहतेहैं ॥ गोमूत्रकीसीगन्धवालाकालाचिकनामृदुतथाभारी ॥ ति
क्तकसेलाजीतसर्वमेंउत्तमरेसावोहलोहेकाहोताहै ॥ २१८ ॥ (लोहेका
उपधानु) विन्ध्याचलमेवोहबहुतहोताहै । क्योंकिउसमेंलोहाअधिकहै
वोहशोधनकेबिनाव्यर्थहै । अनेकमलकेमिलनेरहनेसे ॥ २१९ ॥

शिलाजतुसमानीयसूक्ष्मंखराडंविधायच । निक्षि
प्यात्युष्णापानीयेयामैकंस्थापयेत्सुधीः ॥ २२० ॥
मर्दयित्वाततोनीरं गृह्णीयाद्वस्त्रगालितम् । स्थाप
यित्वाचमृसात्रेधारयेदानपेबुधः ॥ २२१ ॥ उपरिस्थं
घनंयन्स्यात्तत्रक्षिपेदन्यपात्रके । एवंपुनःपुनर्नीतं
द्विसासाभ्यांशिलाजतु ॥ २२२ ॥ भवेत्कार्यक्षमं
वद्भौक्षिमंलिङ्गोपमम्भवेत् । निर्द्भूमञ्चततःशु
द्धं सर्वकर्मसुयोजयेत् ॥ २२३ ॥ ॥ ॥

ना० शिलाजीतकोलाकर वारीक करके । बहुत गरम पानीमें डालके एक
पहर रख छोड़े ॥ २२० ॥ उसको मलकर उसके अनंतर कपड़े से छानकर
पानी लेंलेवे ॥ उसको मिट्टीके घरतनमें रखकर धूपमें रखवावे ॥ २२१ ॥
अथर जो गाढा निकले उसको और वरतनमें डाले ॥ दोमहिनेमें इस प्रकार
फिर २ सेलिया हुआ शिलाजीत ॥ २२२ ॥ काम करनेमें समर्थ होता है औ
र आगमें डालनेसे लिंगके समान होता है ॥ तथा निर्धूम भी होता है उ
सके अनंतर उसको सब काममें योजना करे ॥ २२३ ॥

(क) अधान्य प्रकारः । तत्र प्रथमतस्तस्य वह्निर्मल
म पाकर्तुं केवल अलेन प्रक्षालनं कर्तव्यं । ततस्त
दन्तर्गत मृत्तिकासिकतादि दोष दूरीकरणाय
वक्ष्य माराग क्वाथेन तत्र भावना देया ।] तदाह -
वाग्भटः [व्याधिव्याधित सान्ध्य समनु सरन् भा
वयेद यः पात्रे । प्राक्केवल जलधौतं शुष्कं क्वाथे
स्ततो भाव्यम् ॥ २२४ ॥ तुल्यगिरिजेन जले वसु
गुरिगते भाव नो बध क्वाथ्यम् ॥ तत्क्वाथे पादां शेष
तोष्णो प्रक्षियेद्गिरिजम् ॥ २२५ ॥ तत्स सरसता
ञ्जातं सशुष्कं प्रक्षियेद्रसे ॥ सूयः स्वेः स्वे रेवं क्वा
थे भाव्यं वारान् भवेत्सप्त ॥ २२६ ॥

भा० (फ) अनंतर इस प्रकार । उसमें पहिले उसका बाहरका मेल दूर
करनेके वास्ते केवल जलसे धोना चाहिये । उसके अनंतर उसके अंतर्ग
त मृत्तिकारत आदिदोष दूर करनेको इसका देसे उसमें भावना देनी चा
हिये ॥ उसको वाग्भटने कहा है । रोग रोगीके सान्ध्यको अच्छीतरह अनु
सरण करना हुआ लोहके पात्रमें ॥ पहिलेकेवल जलसे धोके सुकाकर
उसके अनंतर कादोंसे भावना देना चाहिये ॥ २२४ ॥ अठगुने जलमें शि
लाजीतके समान भावनाके औषधोंका काढ़ा करना चाहिये ॥ चौथाई ।

वाकी छने हुवे गरम उसका छेमें शिला जीतको डालने ॥ २२५ ॥ उसके समान पतले हुवेको सुकाके फिरसे रसमें डाले ॥ ऐसे अपने २ काढोंसे सातवार भावना देना चाहिये ॥ २२६ ॥

अथ स्निग्धस्य शुद्धस्य घृतं तिक्तकसाधितम् । त्वं
हं युञ्जीत गिरिजमेकैकेन तथा त्वहम् ॥ २२७ ॥

फलत्रयस्य यूषेणापटोल्यामंधुकस्य च । शिला
जमेवं देहस्य भवत्युपकारकम् ॥ २२८ ॥

[क्वाथं द्रव्याणि भावनापलञ्चाह हारीतः ॥]

लोहस्थितं निम्बगुडूचिसर्पिर्यवेर्यथावत्परिभाव
येत्तत् । सन्तानिका कीटपतङ्गदंशदुष्टोषधीदोष
निवारणाय ॥ २२९ ॥ (क) सन्तानिका तद्वह्निः
सुलग्नमृत्तिकादिमयी । एवं भावनां दत्त्वा संशो
ष्य केवलेन जलेन शोधनं कर्तव्यम् ॥

भा० - अनंतर पटोलसे सिद्ध किया घृत स्निग्ध और शुद्धमें तीन दिन डाले ॥ वैसही तीन दिन एक २ के काढेसे शिला जीत शुद्ध करे ॥ २२७ विफलाके पटोलके और महुवेके काढेमें योजना करे ॥ ऐसा शिला जीत शरीर का अति उपकार कहता है ॥ २२८ ॥ क्वाथ औषध भावना फल कहा है । हारीतने ॥ लोहेका मेल कीट पतंग इनका फाटना और दुष्ट औषधिके दोष दूर करनेके अर्थ नीम गिलोय घृतजव इनसे उसको भावना देवे ॥ २२९ ॥ उसके बाहर लगी हुई मृत्तिका आदि वाले । ऐसी भावना देकर सुकाके केवल जलसे शोधन करना चाहिये ॥

तत्प्रकारमाह अग्निवेशः

उषो च काले रवितापयुक्ते व्यधे नियाते समभूमिभागे

चत्वारि पात्राण्यतितामसानि न्यस्यातये तत्र कृता

वधानः ॥ २३० ॥ शिलाजतु श्रेष्ठमवाप्य पात्रे प्रक्षि
प्य तस्माद्द्विगुणाञ्च तोयम् । उष्णां तदूर्ध्वं कथित
ञ्च दत्त्वा विशीघ्रयेत्तं सृदितं यथावत् ॥ २३१ ॥

भा० उस प्रकार को कहा है अग्निवेत्तने ॥ उष्णकाल में अभ्ररहित सु-
र्य तापयुक्त निवात समभूमि पर ॥ अतितामस चार पात्रों को उनमें फरक
करके धूपमें रखकर ॥ २३० ॥ पात्रमें उत्तमशिलाजीत को डालकर उ-
स्से दुगुना जल उसमें डालके ॥ उससे आधा औंठ गरम देकर उसको शोध
नकरे ॥ च्छीं तरह मलकर ॥ २३१ ॥

ततस्तु यत्कृष्णामुपैति चोर्ध्वं संन्तानि कावद्रवि
रश्मितसम् । पात्रे तदन्यत्त्वततोनि दध्यात्तत्रा
परं कोष्णाजलं क्षियेच्च ॥ २३२ ॥ पुनश्च तस्माद्
परं पात्रे पश्चाच्च पात्राद् परं भूयः । यदाविशुद्धं
जलमेवसूर्ध्वं कृष्णं समस्तं मलमेत्यर्धस्तात् ॥ २३३ ॥
तदान्यजेत्तत्सत्तिलं मलञ्च शिलाजतुस्याञ्जल
शुद्धमेवम् ।

भा० उसके अनन्तर ऊपर की सूर्यकी किरणों से सन्तान्द्रवो भलाई के स-
मान काला ऊपर का जो होता है उसको दूसरे पात्रमें डाले उसमें और प्रीलग
रम् जलभी डाले ॥ २३२ ॥ फिर उससे और पात्रमें डाले और पिछले वरतन
से दूसरे में फिरसे डाले ॥ जब शुद्ध जलही ऊपर रहे काला सबमें नीचे रह जावे
॥ २३३ ॥ तब उस जलमल को त्याग देवे वोह शुद्ध जलही शिला जीत है ॥

एवं शोधितस्य शिलाजतुनो गुणा नाह ।
शिलाजतु स्मृतं तिक्तं कटूष्णं कटुपाकिच । रसा
यनं योगवाहिं श्लेष्ममेहाशमशर्करा ॥ २३४ ॥

मूत्रकृच्छ्रं क्षयं श्वासं शोथमंशोसि पाण्डुताम् । वा
तरक्तं तथा कुष्ठमपस्मारोदरं हरेत् ॥ २३५ ॥

[अथ रसस्य शोधनविधिः ।] तत्र स्वेदनम् ।
नानाधान्यै र्यथा प्राप्तेः सुषुष्वर्जे जलान्वितैः । मृ
द्गाण्डं पूरितं रक्षेद्यथावदस्त्वन्वमाप्नुयात् ॥ २३६ ॥

भा० इस प्रकार शोधेद्वे शिलाजीत का गुसा कहें तहें ॥ शिलाजीत तिक्त क
हुवा उष्ण पाकमें कहु ॥ रसायन योग बाहि है और कफ प्रमिह पथरी शर्करा
॥ २३४ ॥ मूत्र कृच्छ्र क्षय श्वास मूजन बवासीर पाण्डुता ॥ वातरक्त तथा कुष्ठ
अपस्मार उदर रोग इनको नाश कर ताहें ॥ २३५ ॥ अनन्तर पारेकी शोधन वि
धि ॥ उत्सं स्वेदन । वे छिलके के अनेक प्रकार के धान्य जो मिले जावे उनको
जलके युक्त । इनको मिट्टीके बरतनमें भरके रखवे जवतक खट्टा होवे ॥ २३६ ॥

तन्मध्ये भृङ्गं मृगडी विष्णुक्रान्ता पुनर्नवा । मीना
क्षी चैव सर्पाक्षी सहदेवी शतावरी ॥ २३७ ॥ त्रिफला
गिरिकर्णी च हंसपादी च चित्रकम् । समूलं कुट्ट
यित्वा तु यथात्नाभं विनिःक्षिपेत् ॥ २३८ ॥ पूर्वास्त्र
माण्डमध्ये तु धान्यास्त्रकमिदं स्मृतम् । स्वेदनादि
षु सर्वत्र रसराजस्य योजयेत् ॥ २३९ ॥ विष्णुक्रान्ता
गिरिकर्णी च अपराजितेव प्रवेत नील पुष्यभेदात् ।
अत्यस्त्रं सारनालं वा तदरावे प्रयोजयेत् ॥

भा० उत्सं भाङ्ग मृगडी विष्णुक्रान्त गदह पूरणा मच्छ छी नाग फेनी सहदेई
शतावर ॥ २३७ ॥ त्रिफला नीलोफूल की कुरद हंसपादी चित्रक ॥ मूलके सहित कु
ट कर जो मिले उमको डाले ॥ २३८ ॥ पाहेल बरतनमें के खट्टे में ये धान्यास्त्र
कहा है ॥ पारेके स्वेदनादिक सब जगह में खोजनाकरे ॥ २३९ ॥ विष्णुक्रान्ता ।

और गिरि कर्णी येह दोनो अपराजिताहि हे नीला और इवेत पुष्पकंभेद से ॥ उ
सके अभावमें वद्धत खटे आरना लकी योजना करे ॥

(तदभावे धान्यास्त्राभावे)

त्वूषणां लवणां जाजीर जनी त्रिफलार्द्रकम् । महाव
ला नागधत्तामेघनादः पुनर्नवा ॥ २४० ॥ मेघशृङ्गी
चित्रकञ्च नवसारं समंसमम् । एतन्समस्तं वा पूर्वोक्त्वा
नैव पेययेत् ॥ २४१ ॥ प्रालम्प्येतेन कल्केन वस्त्रमङ्गु-
लमात्रकम् । तन्मध्येनिःक्षिपेत्सूतं बद्ध्वा तत्त्रिदिनं
पचेत् ॥ २४२ ॥ दोलायन्त्रेः सूतसंयुक्ते जायते स्वेदिनो
रसः । (क) मेघनादः चवराई शाक विशेषः । मेघशृङ्गी
मेडा शृङ्गी । तदन्ताभे कर्कट शृङ्गी ग्राह्या । नवसारं ।
नवसादरं ।

भा० - धान्योच्चके अभावसे ॥ त्रिकुटा लवणार्द्रहलदी त्रिफला अद्र
क ॥ गरियाग गुलमकरी चवराई गदह पूरना ॥ २४० ॥ मेडा शृङ्गी चित्र
क नवसादर येह सब समभाग ॥ इन सब को अलग २ अथवा एक सा
थ ही पहिली खटाई से पिसवावे ॥ २४१ ॥ उस कल्कमे अंगुन बराबर मो
टालेप कपडे पर करावे ॥ उस कपडे में पारेको डाल कर बांध कर उसको तीन दि
न पकावे ॥ २४२ ॥ असूत युक्त दोलायन्त्र में पारा स्वेदिन दोता है ॥ (क) चव
राई । मेडा शृङ्गी । इसके अभावमें काकडा शृङ्गी नेनी चाहिये ॥ नवसादर ।

अन्यच्च । मूलकानल सिन्धुत्थ त्वूषणां द्रक राजिका

रसस्य योड शोशेन द्रव्यं युज्यात् पृथक् पृथक् २४३

द्रवेष्वनुक्त मानेषु सतंभान मितं युधैः ॥ पट्टा दुनेषु

चैतेषु सूतं प्रक्षिप्य कान्ति के ॥ २४४ ॥ स्वेदयेद्दि

न संकञ्च दोलायन्त्रेण युद्धिमान । स्वेदात्तां भ्रामये

न्मूतो मर्द्दनाच्च सुनिर्मलः ॥ २४५ ॥ (क) मूलक सु
 र्द्वं अनलश्चित्तकम् । त्व्यूषणां त्रिकटु राजिका र्द्वं
 अथ मर्द्दनम् । इष्टिका चूर्णा चूर्णाभ्यामादौ मर्द्धारस्त
 तः । दध्ना गुडेन सिन्धुत्थ राजिका गृहधूमकैः ॥ अन्यच्च ।
 कुमारिका चित्रक रक्त सूर्यपैः कृतेः कषायैः वृहती विमि
 श्रितैः । फलत्रिकेणापि विमर्द्दितो रसो दिनत्वयं सर्व
 मलैर्विसुच्यते । [अथ मूर्च्छनम् ।] त्व्यूषणां त्रि
 फला बन्ध्या कन्दैः क्षुद्रा ह्यान्वितैः ॥ २४६ ॥

भा० औरभी । मूलीचित्रक सैन्धव त्रिकुटु अद्रक र्द्वं ॥ पारेके सोलवे भाग
 से सबको अलग २ लेवे ॥ २४३ ॥ जिसमें दवाकी तेल नही कही है उनमें यह
 तेल पंडितोंने कही है ॥ कपडेमें लेकर इनमें पारा डालके काजीमें ॥ २४४ ॥
 एक दिन स्वेदन करे दोला यन्त्रसे विद्धि वान् ॥ स्वेदसे पारा तीव्र होता है औ
 र मर्द्दनेसे निर्मल होता है ॥ २४५ ॥ (क) मूलीचित्रक त्रिकुटु र्द्वं अन
 तर मर्दन । ईटका चूर्णा और चूना इनसे पहिले पारेको मर्दन करना चाहिये
 उसके अनंतर ॥ दही गुड सैन्धव र्द्वं घरका धूवां इनसे मर्दन करे ॥ औरभी
 धीक वार चित्रक लाल सरसों कटेली इनको मिलाके इनके कोंडेसे ॥ त्रिफ
 लासेभी मर्दन किया हुवा पारा तीन दिनमें सब मलोंसे छूट जाता है ॥ अनंतर
 मूर्च्छन । त्रिकुटा त्रिफला वां भरवेखसा दोना कटेली इनसे युक्त ॥ २४६ ॥

चित्रकोर्णा निशा क्षार कन्यार्क कनक द्रवैः । सूतं
 कृतेन यूषणा वारान् सप्ताभिर्मर्दयेत् ॥ २४७ ॥ इ
 न्द्यं समूर्च्छितः सूतस्त्यजत्सप्तापि कञ्चुकात् ।

भा० चित्रक पवाड हलदी क्षार धीकुवार आकधतूरा इनके रससे
 और किये हुवेजू खसे सात वार मर्दन करे ॥ २४७ ॥ इस प्रकार स
 मूर्च्छित पाग सागों कांचली को छोड़ता है ॥

(क) वन्ध्याकन्दः चांभस्वेखसाकन्दः क्षुद्रा द्वयं
छोटी कटाई बड़ी कटाई । उर्गा । उर्गा मेयका । नि
शा हरिद्रा क्षारः यवक्षारः । कन्या । कुमारिका अ
र्कपत्ररसः । कनक धनूर पत्ररसः । [अथोर्द्धपा
तनम्] मयूर ग्नीवताप्याभ्यान्नष्टपिष्टी कृतस्य च ।
यन्त्रे विद्याधरे कुर्याद्द्रसेन्द्रस्योर्द्धपातनम् ॥ २४८ ॥

भा० चांभस्वेखसा दोनो कटेली । उर्गा मेयका । हल्दी । जवाखार । घी
कुवार । आंभके पत्तेको रस धनुरके पत्तेको रस । अनंतर ऊर्द्धपातन ।
लीला योथा सोना मारवी इनसे नष्ट और पीस गये पारेका ॥ विद्याध
र यन्त्र में ऊर्द्धपातन करे ॥ २४८ ॥

नाप्यंशु सुवर्णा मारवी । नष्टपिष्टी कृतस्य । कुमारिका
द्रवयोगेन तावन्सर्दनं कर्तव्यं यावन्पारदः पृथक् न
दृश्यत इत्यर्थः । विद्याधर यन्त्रे डमरु यन्त्रे । अथा
धः पातनम् । त्रिफला शिम्बु शिखिभिर्नवराणां सु
रिसंयुतेः । नष्टपिष्टी संकृत्वा लेपयेद्दूर्द्धभाजनम्
॥ २४९ ॥ ततो दीप्तैरधः पात सुपलैस्तस्य कारयेत् ।
यन्त्रे भूधर संज्ञेत्ततः सूतो विशुध्यति ॥ २५० ॥

भा० - सोना मारवी । घीकुवार के रस से तवतक मर्दन करना चाहिये ।
जवतक पारा अलग नदिखाई देवे ॥ डमरु यन्त्र में ॥ अनंतर अधः
पातन । त्रिफला सहिजना चित्रक निमक राई रसके सहित नष्टपारेको
करके ऊपरके बरतन में लेपकरे ॥ २४९ ॥ उसके अनंतर बलते ड्रवे
उपलोसे उसका अधपातन करावे ॥ भूधर नाम यन्त्र में उसमें पारा
शुद्ध होता है ॥ २५० ॥

स्वेदनादिक्रियाभिस्तु शोधिताः सौ यदाभवेत् । त
दा कार्याणि कुरुते प्रयोज्यः सर्वकर्मसु ॥ २५१ ॥

अथ मुख्यदोषहरः शोधनविधिः

गृह कन्या हरति मलन्त्रि फलाग्निञ्चित्रकोविष
हन्ति । तस्माद्देभिर्मिश्रे वारान् समूर्च्छयेत् सप्त ॥

[अथ सर्वदोषहरः संक्षिप्त शोधनविधिः ॥]

कुमारिकां चित्रकरक सर्यपैः कृतः कषायैर्वृहती
विमिश्रितैः । फलत्रिकेणापि विमर्दिता रसो दिन
त्रयं सर्वमलैर्विमुच्यते ॥ २५३ ॥

भा० जव स्वेदनादिक्रियाओंसे येह शुद्ध होताहै ॥ तब कामोंकोकरता
है तब सबकामोंमें योजनाकरना चाहिये ॥ २५१ ॥ अनन्तर मुख्यदो
य नाशक शोधन विधि । घीकुवार मलको नाशकरताहै त्रिफला अग्नि
कोचित्रकोविषको नाशकरताहै ॥ इसवास्ते इनकोमिलाके सानवारसं
मूर्च्छनकरावे ॥ २५२ ॥ अनन्तरसर्वदोषनाशक संक्षिप्त शोधनविधि ॥ घीकु
वार चित्रक लाल सरसो दोनोंकटेलीकोमिलाके कियेद्वेकादेसे ॥ और
त्रिफलेसे भी महन किया हुवा पाया तीनदिनमें सबमलोंसे छूट जाता है ॥

कुमार्यां च निशा चूर्णो दिनं सूतं विमर्दयेत् । एवं कद
र्धितः सूतो षण्णो भवति निश्चितम् ॥ २४४ ॥ वह्नौ
यथी कषायेणा स्वेदितः सवली भवेत् । सर्पाक्षीचि
ञ्चिकावन्ध्याभृङ्गवन्देः स्वेदितो वली ॥ २५५ ॥ त
तः स पावकद्रवैः स्विन्नः स्यादति दीप्तिमान् । सर्पा
क्षी । नाराफराणि चिञ्चिका अम्बिली चन्ध्यावांभु खे
खसा भृङ्गः भृङ्गगजः । अज्दीभुस्ता पावकः चित्रकम्

भा० धीकुं वार मे और हलदी के चूर्ण से दिन भर पारेकी राखे ॥ ऐसा दूधित पाग निश्चित गड होता है ॥ २५४ ॥ बहुत औषधियों के कषाय से स्वेदित घोह पारा बनी जाती है ॥ २५५ ॥ और नागफन दूमली खेरवसा भाङ्गरा नागर मोथा ॥ उस्से चित्रक के रस से स्वेदन किया हुआ अति दामिमान हो ता है ॥ नागफनी । दूमली । खेरवसा । भागरा । मोथा चित्रक ।

अथ रसस्य मारणाविधिः ।

धूमसारं रसं तोरी गन्धकं नवसादरम् । यामैकं मर्दये दस्त्रे भागं कृत्वा समं समम् ॥ २५६ ॥ काचकूप्यां विनिक्षिप्य ताञ्च मृद्वस्तु मुद्रया । विलिप्य परितो वक्त्रे मुद्रान्दञ्चा विशोषयेत् ॥ २५७ ॥ अधः सच्छिद्रपिठरीमध्ये कूपीं निवेशयेत् । पिठरीं बालुका पूरे भृत्वा चाकूपि कागलम् ॥ २५८ ॥ निवेशय चुल्यां तदधो वक्त्रिं कुर्याच्छनैः शनैः । तस्मा दप्यधिकं किञ्चिन्पावकं ज्वालयेत् क्रमात् ॥ २५९ ॥

भा०- अनंतर पारेकी । मारणाविधि ॥ धूमसार पारा तोरी गन्धक नवसादर इनको समभाग लेकर खटाई से एक पहर छोटे ॥ २५६ ॥ काचकी कूपी में डाल कर उसको मृदुवस्त्र की गुद्रा से लीप कर मुख के आस पास और मुद्रा दे कर सुका देवे ॥ २५७ ॥ नीचे छिद्र सहित हाडी में कूपी को डाले ॥ हाडी की रेत से कूपी के गले तक भरके ॥ २५८ ॥ चल्हे पर रखके उस्के नीचे अग्नि धीरे २ बाले ॥ क्रम से उस्से भी कुछ अधिक अग्नि की बाले ॥ २५९ ॥

एवं द्वादशभिर्यामैर्त्रियते रस उत्तमः । स्फोटयेत् स्वाङ्गं शीतं तमूर्द्धगङ्गन्धकं त्यजेत् ॥ २६० ॥ अधस्थञ्चमृतं सूतं गृह्णीयात्तन्तु मानया ॥ यथोचितानु पानेन सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ २६१ ॥

अथान्यप्रकारः] अपामार्गस्य बीजानां मूषा युग्मं प्रकल्पयेत् । तत्संपुटे क्षिपेत्सूतं मल्लयू दुग्धमिश्रितम् ॥ २६२ ॥ (मल्लयू काष्ठो दुग्धरिका) ॥ द्रोणा पुष्यो प्रसूनानि विडङ्ग मरिभेदकः । एतच्चूर्णा मधश्चोद्धं दत्त्वा मुद्गां प्रदीयते ॥ २६३ ॥ तद्गोलस्थो पयेत् सम्यक् सृन्मूषा संपुटे पचेत् । एवमेव पुटे नैव सूतकम्भस्म जायते ॥ २६४ ॥ तत्र योज्यं यथा स्थाने यथा मात्रं यथा विधि ॥ ॥ ॥

भा० - ऐसे वारं यद्दरमें उत्तम पारा मर्ता है ॥ स्वाङ्ग शीत होने पर उन्को तोड़े ऊपर का गलेमें लगा हुआ त्याग देवे ॥ २६० ॥ नीचे का मरा हुआ पारा लेवे ॥ उसको मात्रासे ॥ यथाचित अनुपानके द्वारा सब कामोंमें योजना करावे ॥ २६१ ॥ अनंतर दूसरा प्रकार ॥ अपामार्ग के बीजोंको दोघरि या वनावे ॥ उस संपुटमें पारेको कठिया गूलर के दूधके साथ डाले ॥ २६२ ॥ कठिया गूलर ॥ गुम्मा के फूल वायबिडंग दुग्ध स्वदिर ॥ इनका चूर्ण नीचे ऊपर देकर मुद्गा देवे ॥ २६३ ॥ उस गोलका को अच्छी तरह स्थापन करे सिद्धीकी घरियांके संपुट पकावे ॥ इस प्रकारके पुटसे पारा रस होता है ॥ २६४ ॥ उन्को यथास्थानमें यथा मात्र यथा विधि योजना करना चाहिये ॥

[अथान्यप्रकारः ॥]

काष्ठो दुग्धरिका दुग्धे रसं किञ्चिद्भिर्नर्दयेत् । तद्दुग्ध घृष्टं हिङ्गे प्रथं मूषा युग्मं प्रकल्पयेत् ॥ २६५ ॥ क्षित्वा तत्संपुटे सूतं तत्र मुद्गां प्रदायेत् ॥ घृत्वा तद्गोलकं प्राज्ञो मूषा संपुटे ऽधिके ॥ २६६ ॥ अन्यप्रकारः] नागवल्ली रसे घृष्टः कर्कोटीकन्द ग

गर्भितः । मृन्मूषा संपुटे पक्वः सूतो यात्येव भस्मताम्
 ॥ २६७ ॥ [अथ कपूररसस्य विधिः] तत्र पारदस्य
 संक्षिप्तं शोधनं कर्तव्यं । शुद्धं सूतसमं कुर्यात्प्रत्येकं
 गैरिकं सुधीः । दृष्टिकां खटिकां तद्वत् स्फटिकां सि
 न्धुजन्मव ॥ २६८ ॥ वल्मीकं क्षारलवणं भाराडर
 ज्जकसृत्तिकाम् । सर्वानये तानि सञ्चूर्य वाससा
 चापि शोधयेत् ॥ २६९ ॥

भा० अनंतर दूसरा प्रकार ॥ कठिया गूलर के दूध से पारेको थोड़ा मर्दन करे ।
 हीङ्गको उस दूध से पीसकर दो घरियावनावे ॥ २६५ ॥ उस संपुट में पारेको
 डाल कर उसका मूखन्द करे ॥ उस गोलकको मिट्टीके मूषा संपुट में डाले
 ॥ २६६ ॥ गजपुटमें ही पकावे पारा भस्म होता है ॥ दूसरा प्रकार ॥ पान करस
 से घोटालुवा खेखसे के कन्दसे गर्भित ॥ मिट्टीके संपुटमें पक्व पारा भस्म हो
 जाता है ॥ २६७ ॥ अनंतर कपूररसकी विधि ॥ उसमें पारेका संक्षिप्त शोधन
 करना चाहिये । शुद्ध पारेके समान हरणक को लेवे गेरू ॥ इट खडी फिटकरी
 सेन्धव ॥ २६८ ॥ वसई खार लवण खपरा । इन सबको चूर्ण करके कपडे
 से छाने ॥ २६९ ॥

खटिका खरी । स्फटिका फट करी सिन्धुजन्म । से
 न्धवम् । वल्मीकम् ववडर क्षारलवणम् । खारीनो
 न भाराडरज्जक सृत्तिका । काविसा ।
 गभिञ्चूरी युतं सूतं यावद्यामं विसर्दयेत् । तञ्चूर्णा
 सहितं सूतं स्थालीमध्ये परिक्षियेत् ॥ २७० ॥

भा० खडी । फटकरी । सेन्धव । वसई । खारीनिमक । खपरिया । इन
 चूर्ण से युक्त पारा एक पहर तक मर्दन करावे ॥ उस चूर्णके सहित पारा
 तमलेके बीचमें डाले ॥ २७० ॥

तस्या स्थान्यामुखे स्थाली मपरां धारयेत्समाम् ॥ स ब
 स्त्र कुटित मृदा मुद्रयेदनयो मुखम् ॥ २७१ ॥ संशोष्य मु-
 द्रयेद्भूयो भूयः संशोष्य मुद्रयेत् ॥ सम्यग्विशोष्य मु-
 द्रांतां स्थालीञ्चुल्यां विधारयेत् ॥ २७२ ॥ अग्निं निर-
 न्तरं दद्याद्यावद्दिन चतुष्टयम् ॥ अङ्गोपरि तद्यन्त्रं
 रक्षेद्यत्ना दहर्निशम् ॥ २७३ ॥ शंनेरुदद्या टयेद्यन्त्र ।
 मूर्द्धस्थाली गतं रसम् ॥ कर्पूरवत् सुविमलं गृह्णीया-
 द्गुरावन्तरम् ॥ २७४ ॥ तदेव कुसुम चन्दन कस्तूरी कु-
 ङ्कमैर्युतम् ॥ खादन् हरति फिरङ्गं व्याधिं सौपद्रवं स-
 पदि ॥ २७५ ॥ विन्दति बन्हेदीप्तिं पुष्टिं वीर्यबलं वि-
 पुलम् ॥ रमयति रमणीशतकं रसकर्पूरस्य सेवकः स-
 नतम् ॥ २७६ ॥ इतिकर्पूररसः ॥

भा० बस स्थालीके मुखपर दूसरी स्थालीको जोड़े । इनका मुख बस्त्रके स-
 हित कूटकर मिट्टीसे जोड़े ॥ २७१ ॥ सुकाके फिरसे कपड मिट्टी करे और फिर
 से सुकावे ॥ अच्छीतरह मुद्राको सुकाकर स्थालीको चूल्हे पर रखे ॥ २७२ ॥
 और चारदिन तक अग्नि निरन्तर देवे ॥ अङ्गोरे के ऊपर उस यन्त्रको रखे यत्न
 से रातदिन ॥ २७३ ॥ धीरेसे यन्त्रको खोले ऊपरकी स्थाली में लगा रस ॥ क-
 पूर के समान विमल कोले वें बोह बड़त अच्छा गुरामें होताहै ॥ २७४ ॥
 उसीको लवङ्ग चन्दन कस्तूरी केसर इनसे युक्त ॥ को खाने से तत्काल उपद्रव
 से सहित फिरंगोको नाश करताहै ॥ २७५ ॥ अग्निदीपन होताहै और पुष्ट वी-
 र्य बल वड़त होताहै ॥ निरन्तर रसकपूर का सेवन करने वाला सौ स्त्रियोंको भोग
 करताहै ॥ २७६ ॥ इतिकर्पूररसः ॥

[अथ सिन्दूररसः ॥ शुद्धसूतस्य गृह्णीया द्विधरभाग च

तुष्टयम् ॥ शुद्धगन्धस्य भागैकं तावत्कृत्रिम गन्धकम् ॥
 अथवा पारदस्यार्द्धं शुद्धगन्धकमेवहि ॥ तयोः कज्ज
 लिकां कुर्याद्विना मेकं विमर्शयेत् ॥ २७० ॥ मृत्तिकां वा
 ससा सार्द्धं कुट्टयेदति यत्नतः ॥ तथा वारत्रयं सम्यक्
 चकूपीं प्रलेपयेत् ॥ २७१ ॥ मृत्तिकां शोषयित्वा तु
 कूप्यां कज्जलिकां लिपेत् ॥ तां कूपीं बालुकां यन्त्रे स्था
 पयित्वा रसं पचेत् ॥ २७० ॥ अग्निं निरन्तरं दद्याद् या
 वह्नित्तुष्टयम् ॥ गृह्णीयाद्दूर्ध्वं सं लग्नं सिन्दूरसदृशं
 रसम् ॥ ॥ इति सिन्दूररसः ॥

एवं मारितस्य मूर्च्छितस्य पारदस्य गुणाः ॥

भा० अनन्तर सिन्दूर रसः ॥ वैद्य शुद्ध पारे के चार भाग लेवे ॥ और शुद्ध ग
 न्धक का एक भाग उतनाही कृत्रिम गन्धक ॥ २७१ ॥ अथवा पारेके आधा
 शुद्ध गन्धक ॥ उनका कजली करके एकदिन घोंटे ॥ २७० ॥ मिट्टीको कपडे
 के साथ अतियत्न से कूटे ॥ उसे तीनवार अच्छीतरह कांचकूपी को लेपकरे
 ॥ २७१ ॥ मिट्टीको सुकाके कजलीको कुर्यामें डाले ॥ उस कुर्याको बालु
 का यन्त्रमें स्थापनकरके पारेको पकावे ॥ २७० ॥ अग्नि निरन्तर चारदिन
 तक देवे ॥ ऊपर लगाइवा सिन्दूर के समान रसको लेवे ॥ इति सिन्दूर रसः ॥

पारदः कृमिकुष्ठघ्नो जयदो वृष्टि कृन्तरः ॥ मृत्युहृच्च म
 हावीर्यो योगवाही ज्वरापहः ॥ २७१ ॥ स्मृत्योर्जी रूप
 दो वृष्यो वृद्धि कृद्धानुवर्द्धनः ॥ घ्राडत्वनाशनः शूलः
 खेचरः सिद्धिदः परः ॥ २७२ ॥ पारदः सकलरोगहा स्मृ
 त्तवृद्धसो निरिवलयोगवाहकः ॥ पञ्चभूतमय एष की
 र्तिनस्तेन तदुणं गणैर्विराजते ॥ २७३ ॥

भा० इस प्रकार मोरेङ्गेव मूर्च्छित पारे का गुण ॥ पारा कमि कुष्ठनाशक जय
को करनेवाला वृष्टि करनेवाला सर ॥ मृत्युनाशक महावीर्य योगवाही ज्वरना
शक ॥ २८१ ॥ मृत्युको जतनेवाला रूयको देनेवाला युक्तको करनेवाला वृष्टि
करनेवाला धातु बढ़ानेवाला ॥ नपुंसकता का नाशक ३३० खचर सिद्धिको देने
वाला है ॥ २८२ ॥ पारा सब रोगोंका नाशक कहा है परस से युक्त संपूर्ण योग वा
हक ॥ पंचभूत मय यह कहा है इसवास्ते उसके गुण गणों से विराजता है ॥ २८३ ॥

[रसामृते] यस्य रोगस्य यो योगस्तै नैव सह योजितः ॥

रसेन्द्रो हन्ति तं रोगं नरकुञ्जर वाजिनाम् ॥ २८४ ॥

[अथोपरसानां शोधनविधिः।] तत्र हिङ्गुलस्य शोध
न विधिः।] मेघी क्षीरणा द्रव मूत्र वर्गेश्च भावितम्।

सप्त वारान् प्रयत्नेन शुद्धिमायानि निश्चितम् ॥ २८५ ॥

भा० रसामृत में कहा है। जिस रोगका जो योग है उसीके साथ योज
ना किया जवा। पारा मनुष्य गज घोड़ा इनके उस रोगको नाश करता है ॥
२८४ ॥ [अनन्तर उपरसों की शोधन विधिः। उसमें सिंगरिफ का शोधन।
मेढीके दूधसे और मूत्रवर्ग से मानवार भावना दिया जवा सिंगरिफ निश्च
य शुद्धिको प्राप्त होता है ॥ २८५ ॥

[एवं शोधितस्य हिङ्गुलस्य गुणाः।] तिक्तं कषायं कटु
हिङ्गुलं स्यान्नैत्रामयङ्गं कफपित्त हरि। हृत्प्रास कण्डु
ज्वर कामलांश्च शीहा मवातौ च गरं निहन्ति ॥ २८६ ॥

[अथ हिङ्गुलाद्रसा कर्षण विधिः।] निम्बू रसे निम्बपत्र
रसेर्वा याममात्रकम् ॥ घृष्ट्वा द्रव मूर्द्धन्तु पातयेत्सू
त युक्तिवत् ॥ २८७ ॥ तत्रोद्ध पिठरीलग्नं गृह्णीया द्रसमु
त्तमम् ॥ शुद्धमेव हितं सूतं सर्व कर्मसु योजयेत् ॥ २८८

भा० ऐसे शोधने सिंगरफ का पुरा । निकल कसेला केट्टु हिंसुलं होना है और
नेत्र रोगका नाशक कफ पित्तका नाशक ॥ हल्लास खुजली ज्वरका मला इन
को नाश करता है तथा पित्तही आमवात और दिष इनको नाश करता है ॥
२८६ ॥ अनन्तर सिंगरफ से पारा निकालने की विधि ॥ निम्बूके रस से अथवा
निम्बपत्र के रससे एक पहर ॥ सिंगरफ को घोटकर डमरू येतसे निकाले
॥ २८७ ॥ उसमें ऊपरकी हांडीमें लगाइवा उत्तम रसको निकाले ॥ शोध पारा
सब कामोंमें योजना करे वोह हित होता है ॥ २८८ ॥

[अथ गन्धकस्या शुद्धस्य दोषमाह ।] अशुद्धो गन्धकः
कुर्यात्कुष्ठं पित्तरुजां भ्रमम् ॥ हन्ति वीर्यं बलं रूपं तस्मा
च्छुद्धः प्रयुज्यते ॥ २८६ ॥

[अथ शोधनविधिः ।] लोहपात्रे विनिःक्षिप्यः घृतमनौ
प्रतापयेत् ॥ तत्र घृते तत्समानं क्षिपेद्गन्धकजं रजः ॥ २८७ ॥
विद्रुतं गन्धकं दृष्ट्वा तनुवस्त्रे विनिःक्षिपेत् ॥ यथा वस्त्रा
द्विनिःस्वृत्य दुग्धमध्ये ऽरिवलं पतेत् ॥ २८९ ॥ एवं स
गन्धकः शुद्धो सर्वकर्माचितो भवेत् ॥

भा० अनन्तर अशुद्ध गन्धक के दोषोंको कहते हैं ॥ अशुद्ध गन्धक कुष्ठ
पित्तके रोगभ्रम ॥ इनको करता है और वीर्य बल रूप घृतको नाश कर
ता है इसवासे शुद्ध प्रयोग करना चाहिये ॥ २८६ ॥ अनन्तर शोधन विधि ॥
लोहे के पात्रमें घृत डालकर आगपर तथावे ॥ तत्र घृतमें उसके समान गन्ध
क का चूरा डाले ॥ २८७ ॥ गन्धक के गलनपर उसको बारीक वस्त्रपर डाले ॥
जैसे कपड़े से निकालकर सम्पूर्ण दूधमें गिरावे ॥ २८९ ॥ इस प्रकार वोह शु
द्ध गन्धक सबकाम के योग्य होता है ॥

[एवं शुद्धस्य गन्धकस्य गुणाः ।] गन्धकः कटुकस्तिक्तो
वीर्योष्ण स्तुवरः सरः ॥ पित्तलः कटुकः पाके करडू

वीसर्पजन्तुजित् ॥ २६२ ॥ हन्ति कुष्ठक्षय स्नीह कफवाता
 न् रसायनम् ॥ [अथाभ्रकस्या शुद्धस्य दोषमाह ।]
 पीडां विधत्ते विविधान्नरारणां कुष्ठं क्षयं पाण्डु गदञ्च
 कुर्यात् ॥ हनुपार्श्व पीडाञ्च करोत्यसह्या मशुद्धमभ्र
 दुरु बन्धि हत्स्यात् ॥ २६३ ॥

[अथाभ्रकस्य शोधन विधिमाह ।] कृष्णाभ्रकं धमे
 इन्हो ततः क्षीरे विनिःक्षिपेत् ॥ भिन्नपत्रं तु तद्धत्वा त
 राडुलीयास्त्र योर्द्रवैः ॥ २६४ ॥

भावयेदष्टयामं तदेव मभ्रं विशुद्धानि ॥

भा० रोसे शुद्ध गन्धक के गुण । गन्धक कटुक तिक्त वीर्य उष्ण कसैला सर
 ॥ पित्तको करनेवाला पाकमें कड़ु होता है और खुजली वीसर्प कृमि इन
 को जीतनेवाला है ॥ २६२ ॥ और कुष्ठ क्षय पिलही कफ वातके रोगों को नाश क
 रता है तथा रसायन है ॥ [अनन्तर अशुद्ध अभ्रक का दोष कहते हैं ।]
 मनुष्योंके अनेक प्रकारकी पीडीओंको करता है और कुष्ठ क्षय पाण्डुरोग इन
 को भी करता है ॥ तथा हृदय पसली इनकी असह्य पीडाको करना है अशुद्ध अ
 भ्रक भारी अग्निनाशक है ॥ २६३ ॥

[अनन्तर अभ्रकके शोधनकी विधि कहते हैं ।] काले अभ्रक को आगमें त
 पाकर उसके अनन्तर दूधमें डाले ॥ उसकी अलग पत्र करके चब राई नीम्बू
 दूधके रससे ॥ २६४ ॥ आठपहर भावनादेवे वोह अभ्रक इसप्रकार शुद्ध होता है

[अथ तस्य मारगाम् ।] कृत्वा धान्याभ्रकं तत्र शोषयित्वा
 य मर्दयेत् ॥ अर्क क्षीरे र्दिनं ख त्वे चक्राकारं च कारयेत्
 ॥ २६५ ॥ वेष्टये र्दकं पत्रैश्च सम्यग्गज पुटे पचेत् ॥ पुनर्म
 र्द्यं पुनः पाच्यं सप्तवारान् पुनः पुनः ॥ २६६ ॥ ततो वट

जटा क्वाथे स्तद्वद्देयं पुटत्रयम् ॥ म्रियते नात्र सन्देहः प्रथो
 ज्यं सर्वकर्मसु ॥ तुल्यं घृतं मृनाम्ब्रेणा लोहपात्रे विपाच
 येत् ॥ घृतेजीरो नदम्ब्रन्तु सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ २६८ ॥
 [अथ धान्याभ्रकस्य विधिः ॥] पादांशशालि संयुक्त म-
 भ्रं वद्धाय कम्बले ॥ त्रिरात्रं स्थापयेत्त्रारे नत् क्लिन्नं म
 र्दयेत्कौः ॥ २६९ ॥ कम्बलाङ्गलितं सूक्ष्मं बालुकारहि
 नञ्च यत् ॥ तद्धान्या भ्रमिति प्रोक्त मभ्रमाराण सि
 द्वये ॥ ३०० ॥ [एवंमारितस्याभ्रकस्य गुणाः ।]

भा० अनन्तर उस्का मारण । धान्याभ्रककरके उस्को सुरवाकर अनन्तर मले ।
 आकके दूधमें एकदिन चक्राकार करे ॥ २६५ ॥ आकके पत्तोंसे लपेटकर अ
 च्छीतरह गजपुट में फूकरेवे ॥ फिरसे घोटै फिरसे पकावे बार २ सान बार ॥
 २६६ ॥ उस्के अनन्तर बटकी जटाके कटि से बैसेही तीन पुट देना चाहिये ॥
 मरजाना है इसमें कीर्ई सन्देह नहीं उस्को सब कर्ममें योजना करना चाहिये
 ॥ २६७ ॥ मरंहेवे अभ्रक के समान घृत कढाई में पकावे ॥ घृतके जीरो
 हीनेमें वोह अभ्रक सर्वयोग में योजना करे ॥ २६८ ॥
 अनन्तर धान्याभ्रक की विधि ॥] चौथाई धानसेयुक्त अभ्रक को कंबनमें
 बान्धकर अनन्तर ॥ तीनदिन जलमें रक्वे उस गलेहवे को हाथोंसे मर्दन
 करे ॥ २६९ ॥ कम्बल से गलित सूक्ष्म औरजो बालूसे रहिन है ॥ उस्को
 धान्याभ्रक कहाहे अभ्रक मारण सिद्धिके अर्थ ॥ ३०० ॥

इस प्रकार मरंहेवे अभ्रक का गुण ॥

अभ्रं कषायं मधुरं सुशीतमायुष्करन्धानु विवर्द्ध न
 च्च ॥ हन्यात्त्रिदोषं व्रणमेह कुष्ठं स्त्रीहोदरं ग्रन्थि
 विषकृमींश्च ॥ ३०१ ॥ रोगान् हन्ति दृढयति वपुर्वी-
 र्य्यं वृद्धिं विधत्ते ॥ तारुगयाढ्यं रमयति शतं योषितां
 नित्यमेव ॥ ३०२ ॥ दीर्घायुष्कान् जनयति सुतान् सिंह

तुल्य प्रभावान् ॥ मृत्योर्भीतिं हरति सुतरां सेव्यमानं
 मृताभ्रम् ॥ ३०३ ॥ [अथ तालकस्याशुद्धस्य दोषमाह]
 अशुद्धं तालमायु हृत्कफ मारुतमेह कृत् ॥ तापस्फो
 टाङ्ग सङ्कोचं कुरुते तेन शोधयेत् ॥ ३०४ ॥
 [अथ तालस्य शोधनमाह] तालकं त्राशः कृत्वा त-
 चूर्णां काञ्चिके पचेत् ॥ दोलायंत्रेण यामेकं ततः कूष्मा
 ण्डजद्रवैः ॥ ३०५ ॥ तिलतेले पचेद्यामं यामञ्च विफला
 जले ॥ एवं यंत्रे चतुर्यामं पक्वं शुद्ध्यति तालकम् ॥ ३०६ ॥

भा० अशुद्ध कसैला मधुर सुशीत आयुको करनेवाला और धातु बढ़ानेवाला है
 ॥ और ज्वरप्रमेह कुष्ठ सीहोदर गांठ विषकृमि इनको नाश करता है ॥ ३०१ ॥
 रोगों को नाश करता है शरीरको दृढ़ करता है और वीर्य वृद्धि करी करता है ॥
 तारुण्य से भरझवा नित्यही सौ स्त्रियों से भोग करता है ॥ ३०२ ॥ सिंहके स-
 मान प्रभाव वाले पुत्रोंको उत्पन्न करता है । और मृत्युके भयको हरता है सेवन
 कियाझवा अम्रकभस्म ॥ ३०३ ॥

[अनन्तर अशुद्ध हरताल का दोष कहते हैं] अशुद्ध हरताल आयु नाशक
 कफ वात प्रमेह इनको करनेवाली ॥ ताप कोड़े शरीर संकोच इनको करती है ॥
 इसवास्ति इसे शोधन करे ॥ ३०४ ॥

[अनन्तर हरताल का शोधन कहते हैं] हरताल को बारीक पीसकर उस
 चूर्णको कांजी में दोलायंत्रसे पकावे ॥ एक पहर उसके अनन्तर पेटके रस से
 पकावे ॥ ३०५ ॥ तिलके तेलमें एक पहर पकावे और एक पहर विफलाके पा
 नी में पकावे ॥ इस प्रकार यंत्रमें चार पहर पकीझई हरताल शुद्ध होती है ॥ ३०६ ॥

[अथ तालस्य मारण विधिः] सदलं तालकं शुद्धं यौन
 उर्नव रसेन तु ॥ खल्वे विमर्दयेदेकं दिनं पञ्चाद्विशोषयेत्
 ॥ ३०७ ॥ ततः पुनर्नवादारैः स्थाल्यामर्द्धं प्रपूरयेत् ॥
 तत्र तद्दौलकं धृत्वा पुनस्तेनैव पूरयेत् ॥ ३०८ ॥

आकारं पितरं नस्य पिधानं धारयेन्मुखे ॥ स्थालीचुल्यां
समारोप्य क्रमाद्धन्तिं विवर्द्धयेत् ॥ ३०६ ॥ दिनान्यन्तर
शून्यानि पञ्च वन्तिं प्रदापयेत् ॥ एवं तन्मित्रियने तालं
मात्रा नस्यैक रक्तिका ॥ ३१० ॥ अनुपाना न्यनेकानि य-
था योग्यं प्रयोजयेत् ॥

भा० अनन्तर हरताल की मारणां विधि ॥ तबकी शुद्ध हरताल की गदह पूर
ना कीरेस से एकदिन घोटे घीछे सुकादेवे ॥ ३०७ ॥ उसके अनन्तर पुनर्नवाके
खार से आधीहांडी को भरदेवे उसमें उस गोले को धरके फिरसे उसी से भर
देवे ॥ ३०८ ॥ गलेतक उसके मूं पर ढकनां रखे ॥ हांडी को चूल्हे पर रखके क्रम
से आंच बढ़ावे ॥ ३०९ ॥ ढाई दिन आगदेवे इस प्रकार हरताल मरती है ॥ उस
को मात्रा सकरती है ॥ ३१० ॥ यथोचित अनेक अनुपानों को योजना करे ॥

[एवं शोधितस्य मारितस्य तालकस्य गुणाः ।] हरितालं

कदस्निग्धं कषायोष्णं हरे द्विषम् ॥ कराडू कुष्ठास्र रोगा

स्रं कफपित्तक च व्रणान् ॥ ३११ ॥ [अन्यच्च]

तालकं हरते रोगान् कुष्ठ मृत्यु ज्वरापहम् ॥ शोधितं कु-

रुते कान्तिं वीर्यवृद्धिं तथा युषम् ॥ ३१२ ॥

भा० इस प्रकार शोधके मारी हुई हड़तालका गुण ॥ हड़ताल कड़वी चिकनी
कसेली गरम होती है ॥ और कफ खुजली विष कुष्ठ मुखरोग रक्त कफ पित्त
कच व्रण इनको दूर करती है ॥ ३११ ॥ [औरभी ।] हरताल रोगोंको
हरती है और कुष्ठ मृत्यु ज्वर इनकी नाशक ॥ शोधी हुई कान्ती को करती
है और वीर्यवृद्धि तथा आयुषको करती है ॥ ३१२ ॥

[अथ मनःशिलाया अशुद्धाया दोषमाह ।] तालकस्यैव

भेदोऽस्ति मनोगुप्ते स्तदन्तरम् ॥ तालकं त्वतिपीतं स्या-

द्वेद्वक्त्रा मनःशिलाः ॥ मनःशिलामन्द बलं करोति ।

जन्तुं ध्रुवं शोधन मन्तरेण । मलस्य बन्धं किल मूत्ररोधं
सशर्करं कृच्छ्र गदञ्च कुर्यात् ॥ ३१४ ॥

[अथ तच्छोधनविधिः।] पंचेत् त्यहमजामूत्रे दोला य-
न्त्रे मनः शिलाम् ॥ भावयेत्सप्तधा पित्ते रजायाः सा
विशुद्धानि ॥ ३१५ ॥ [एवं शोधिताया मनः शिलाया गु-
णा नाह ।] मनः शिला गुरुवैर्या सरोषा लेश्वनी कटुः ॥
तिक्ता स्निग्धा विषश्वासकास भूत विषास्रनुत् ॥ १६ ॥
[अथ खर्परस्तु त्यभेदस्तस्य शोधनविधिः।] नरमूत्रे च
गोमूत्रे सप्ताहं रसंकम्पचेत् ॥ दोलायंत्रेण शुद्धः स्या
त्ततः कार्येषु योजयेत् ॥ ३१७ ॥

भा० अनन्तर अशुद्ध मनसिलके दोष कहते हैं ।] हरताल का ही भेद है । मैन
सिल का और उसका अन्तर यह है कि हरताल बड़हन पीली होती है और मैन
सिल लाल होता है ॥ ३१३ ॥ विना शोधे मैनसिल मनुष्य को कमजोर करती है
मलबन्ध मूत्रका अवरोध और शर्कराके सहित मूत्र कृच्छ्र को करती है ॥ १४
॥ [अनन्तर उसकी शोधन विधि ॥ मैनसिल बकरीके मूत्र से दोलायंत्र में प
कावे ॥ और बकरीके पित्तेसे सात भावनादेवे इस प्रकार बौह शुद्ध होती है ॥
३१५ ॥ इस प्रकार शोध्योर्द्ध्व मैनसिल का गुण कहते हैं ॥ मैनसिल भारी
रंगत को अच्छा करने वाली सर उष्ण लेश्वनी कटु ॥ तिक्त विकनी होती है ।
और विष श्वासकास भूत विष रक्त इनकी नाशक है ॥ ३१६ ॥
अनन्तर खपरिया लीला थोड़े का भेद है ॥ उसकी शोधन विधि ॥ नरमूत्र में
और गोमूत्र में खपरिये को सातदिन ॥ दोलायन्त्र से पकावे ऐसे शुद्ध होती
है उसके अनन्तर काममें लावे ॥ ३१७ ॥

[अथ तस्यगुणाः] खपरं कटुकं क्षारं कषायं वामकं लघु ।
लेश्वनं भेदनं शीतं चक्षुष्यं कफपित्तहृत् ॥ ३१७ ॥

विषाश्रम कुष्ठकरुण्ड नां नाषानं परमं मतम् ॥

[अथ सर्वोपरसानां साधारण शोधनविधिः] सूर्या
वर्तो वज्रकन्दः कदलीदेव दालिका ॥ शिग्रुः कोशात
की बन्धा काकमाची च चालकम् ॥ ३१८ ॥ एषामेक
रसेनैव त्रिद्वारैर्लवणैः सह ॥ भावयेदम्ल वर्गेश्च दि-
नमेकं प्रयत्नतः ॥ ३१९ ॥ ततः पचेच्च नद्वाविर्दालायन्ते
द्विनं सुधीः ॥ एवं शुद्धान्ति ते सर्वे प्रोक्ता उपरसा हि ये ॥
॥ ३२० ॥ [विशेषश्च] कडुकुष्ठं गौरिकं शङ्खः कासी-
सं टङ्कुरां तथा ॥ नीलाञ्जनं शुक्तिभेदाः क्षुल्लकाः सव-
राटकाः ॥ ३२१ ॥ जम्बीरवारिणा स्वित्नाः दालिताः को-
यणवारिणा ॥ शुद्धिमायान्त्यमी योज्या भिर्वाग्भर्यागसि
द्वये ॥ ३२२ ॥

भा० अनन्तरउस्का गुण । स्वपरिया कडुक चार कसेला वमन करनिवाला
क्षुल्लका ॥ लेखन भेदन उगतल नेत्रहितकफ पित्तकानाशक ॥ ३१७ ॥ और
विध यथरी कुष्ठ खुजली इनका परमनाशक कहा है ॥

[अनन्तर सब उपरसों की साधारण शोधन विधि ॥] सूर्यावर्त वज्रकन्द
कदली घघरवेल ॥ सहिंजना तोरी खेखसा किमाच सुगन्धवाला ॥ ३१८ ॥
इनके एकही रससे नीनों क्षार लवणके साथ ॥ अम्लवर्ग से एकदिन यत्नके
साथ भावना देवे ॥ ३१९ ॥ उसके अनन्तर उसके रसमें बोला यंत्र से एक दिन
पकावे ॥ चौह कहेंहवे सब उपरस इस प्रकार शुद्ध होते हैं ॥ ३२० ॥

[विशेष] कडुकुष्ठ गेरू शंख कसीस सीहागा ॥ तथा कान्ना सुरमा सीपके
भेद कौहियों के सहित ॥ ३२१ ॥ जम्बीरी के रससे स्वित्त-सीलगरम बलसे धो
ये जवे ॥ यह शुद्ध होते हैं वैद्य योग सिद्धि के अर्थ इनकी योजना करे ॥ ३२२ ॥

[एवं शोधितानामुपरसानां पृथग्गुणा गुणान्धे द्रष्टव्याः।]

[अथ रत्नानां शोधनमाराणविधिः] तत्राशुद्धस्य वज्रस्य दोषमाह । अशुद्धं कुरुते वज्रं कुष्ठं पार्श्वं व्यथां तथा ॥ धारादुता पङ्कुरत्वञ्च तस्मात् संशोध्य मारयेत् ॥ ३२३ ॥

[अथ वज्रस्य शोधनविधिः] कुलत्थकोद्भवकाये दोला यन्त्रे विपाचयेत् ॥ व्याघ्री कन्दगतं वज्रं त्रिदिनं तद्विशुद्धति ॥ ३२४ ॥ - व्याघ्री करटककारिका । अन्यः शोधनविधिः । गृहीत्वान्हि शुभे वज्रं व्याघ्री कन्दोदरे क्षिपेत् ॥ माहिषी विष्टया लिप्ता कारीषान्नौ विपाचयेत् ॥ ३२५ ॥ त्रियामार्या चतुर्यामं यामिन्यन्ते ऽश्वसूत्रके ॥ सेचयेत्याचये देवं सप्तरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ३२६ ॥

इसवास्ते शोधकर मारे ॥ ३२३ ॥

अनन्तर हीरकी शोधन विधिः ॥ कुरथी कोदोंके काठमें दोला यंत्रसे पकावे ॥ कटेली के कंद गत हीरा तीन दिन में सुद्ध होता है ॥ ३२४ ॥ कटेली ।

[दूसरी शोधन विधिः । अच्छे दिन हीरा लाकर कटेली कंद के उदर में डाले ॥ भैंसके गोबर से लीपकर करसीकी जागमें पकावे ॥ ३२५ ॥ तीन पहरमें और रातके अन्तमें चौथे पहार में घोड़ेके सूत्रसे पकावे । इस प्रकार सातदिन में हीरा शुद्ध होता है ॥ ३२६ ॥

[अथ वज्रस्य मारणविधिः] हिङ्गुसैन्धवसंयुक्ते क्षिपेत्कार्ये कुलत्थजे ॥ नप्तं नप्तं पुनर्वज्रम्भवेद्भस्म त्रिसप्तधा ॥ ३२७ ॥ [अन्य मारण प्रकारः] ।

मेषशृङ्ग भुजङ्गास्थि कूर्म पृष्ठास्त्रावेनसम् ॥ शशदन्तं
समम्पिष्ट्वा वज्र्जीहीरेण गोलकम् ॥ ३२८ ॥ कृत्वा तन्म
ध्यगं वज्रं त्रियते ध्मातमेवहि ॥

[मारितस्य वज्रस्य गुणाः]

आयुः पुष्टिं बलं वीर्यं वर्णं सौख्यं करोति च ॥ सेवितं स-
र्वं रोगघ्नं मृतं वज्रं न शंसयः ॥ ३२९ ॥

[अथ शेषरत्नानां शोधनमारणा विधिः] वज्रवत्सर्वरत्ना
नि शोधयेन्मारये तथा ॥ शुद्धानां मारितानाञ्च तेषां
शृणु गुणानपि ॥ ३३० ॥ मणयो वीर्यतः शीता मधुरा स्तु
वरा रसात् ॥ चक्षुष्या लैरेवनाश्चापि सारका विषहार
काः ॥ ३३१ ॥ धारणात्ते तु मङ्गल्या ग्रह दृष्टिहरा अपि ।

[उपरत्नानां शोधनमारणा विधिश्चिन्त्यः ॥

भा० अनन्तर हीरेकी मारणा विधि ॥ हीरे सन्धा इनसेयुक्त कुरथीके काढि में न
पा तथा कर ॥ इल्लीसवाराले ॥ ३२७ ॥ [दूसरा मारणा प्रकार । मंढे का
सींग सांपकी हड्डी कछवेकी पीठ अमलवेत खरगोश का चांत इनकी संम भाग
लेकर चूहर के चूधसे पीसकर गोलाकरे ॥ ३२८ ॥ उसके बीचका हीरा घोंक
नेसेही मरजाता है ॥ [मारे जवे हीरेके गुण]

आयु पुष्टि बल वीर्य वर्ण सौख्य इनको करता है ॥ और सेवन किया जवा हीरे
का भस्म सब रोगों का नाशक है इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ३२९ ॥

[अनन्तर राजकी रत्नोंका शोधन मारणा विधि ।] हीरेके सदृश सब रत्नोंको शोध
न करे और मारे ॥ शुद्ध मोरेजवे उनका गुण सुनें ॥ ३३० ॥ मणि वीर्यसे उती
त मधुर कसैले रससे ॥ नेत्रके हिन देखन भी और सारक विष नाशक है ॥ ३३१
॥ वे धारणा से मंगल को देनेवाले और ग्रह दृष्टि के नाशक भी हैं ॥

उपरत्नोंकी शोधन मारणा विधि चिन्तन योग्य है ॥

[अथ विषाणां शोधन विधिः]

[तत्र वत्सनामस्य स्वरूप निरूपणम् ॥] सिन्दुवार सहक
पत्रो वत्सनाभ्या कृतिस्तथा ॥ यत् पार्श्वेन तरोर्द्विर्व-
त्सनामः स भाषितः ॥ ३३२ ॥

[विषस्य शोधन विधिः] गोमूत्रे त्रिदिनं स्थाप्यं विषं
तेन विशुध्यति ॥ रक्त सर्षपतेलाक्ते तथा धास्यञ्च वा-
ससि ॥ ३३३ ॥ ये गुणा गरले प्रोक्ता स्तेस्य हीना विशेष-
धनात् ॥ तस्माद्विषं प्रयोगे तु शोधयित्वा प्रयोजयेत्
॥ ३३४ ॥ [अथ विषस्य गुणाः ।]

विषं प्राणहरं प्रोक्तं व्याधि च विकाशि च ॥ आग्ने-
यं वात कफ हृत् योगवाहि भेहावहम् ॥ ३३५ ॥

भा० अनन्तर विषोकी शोधन विधि ॥ इसमें वचनाम का स्वरूप कथन । सि-
न्दुवार के समानपत्र और वत्सनाभि का सा जो वृक्ष के बगल बढ़ता है वोह
वत्सनाम कहा है ॥ ३३२ ॥ [विषकी शोधन विधिः] गोमूत्र में तीन दिन
रक्ते उरसे विष शुद्ध होता है ॥ वैसेही लाल सरसों के तेलसे डूबे डूबे कपड़े
पर रक्ते ॥ जो गुण विषमें कहे हैं वोह शोधन करने से हीन हो जाते हैं ॥
वसवास्ते विषके प्रयोग में शोधन करके डाले ॥ ३३४ ॥

[अनन्तर विषके गुण] विष प्राण नाशक कहा है और व्याधि तथा विका-
शि भी कहा है ॥ आग्नेय वात कफ का नाशक योगवाही मोह करनेवाला है
॥ ३३५ ॥

(क) व्याधि सकल काय गुणव्यापन पूर्वक पाक गमन
शीलं । विकाशि ओजः शोषणपूर्वक सन्धिवन्ध शिथली
करणा शीलम् । आग्नेयम् अधिकाग्न्यंशं । योगवाहि स-
द्भिः गुणग्राहकम् । मोहावहं तमोगुण प्राधान्येन बुद्धि
विध्वंसकम् ॥

तदेव युक्तियुक्तन्तु प्राणदायि रसायनम् ॥ योगवाहि
परं वात श्लेष्मजित् सचिपात हृत् ॥ ३३६ ॥

भा० (क) संपूर्ण शरीर गुणव्यापन पूर्वक पाक होनेवाला । जीवको शोषण पूर्वक सन्धिवन्धकी छीला करनेवाला । अधिक अग्निअंशुसाथीके गुणको लेनेवाला । तमोगुणकी प्रधानतासे बुद्धिनाशक । वाहि युक्ति युक्त प्राणको देनेवाला रसायन है ॥ योगवाहि परमवात कफको नीतनेवाला सचिपात का नाशक है ॥ ३३६ ॥

[अथोपविषाणां निरूपणम् ।]

अर्कक्षीरं स्त्रुही क्षीरं लाङ्गलीकरवीरकः ॥ गुञ्जाहि
फेनोधनूरः सप्तोप विषजातयः ॥ ३३७ ॥ एतेषां
शोधनं चिन्त्यं गुणास्तत्र तत्र द्रष्टव्याः ।

[अथ द्रव्याणां गुणवता मवधिः] गुणहीन भवेद्द-
र्या दूर्ध्वं तद्रूपमौषधम् ॥ मास द्वयात् तथा चूर्णं लभते
हीनवीर्यताम् ॥ ३३८ ॥ हीनत्वं गुदिका लेहो लभते व-
त्सरं यदि ॥ हीनास्य घृत तैलाद्या चतुर्मासाधिका स्त-
था ॥ ३३९ ॥

भा० अनन्तर उपविषो का निरूपण ॥ आकका दूध गृहरका दूध करि-
हारी कनेर ॥ गुंजा अफीम धनूर यह सात जातके उपविष हैं ॥ ३३७ ॥
घनका शोधन चिन्तन करना चाहिये गुणवर्ती ३ पर देखने चाहिये ॥
[अनन्तर गुणवाले द्रव्यों की अवधि ॥ जैसे कि वैसीही दवा वरसके ऊपर
गुणहीन होजाती है ॥ तथा दो महीने में चूर्ण वीर्य हीन होता है ॥ ३३८ ॥
और एक वरस में गुदिका अवलेह हीनवीर्य होते हैं ॥ घृत तैल आदि
वैसीही चार महीने अधिकमें हीन होते हैं ॥ ३३९ ॥

(क) घृत तैलाद्या इति योगविशेषणम् । चतुर्मासाधिकः
वत्सरादुपरि चत्वारो मासा अधिकायेषु से । घृत तैल यो विशेषे

षमाह । [तन्त्रान्तरे] घृतमब्दात्परं पक्कं हीनवीर्यं
त्वमामुयात् ॥ तैलं पक्कमपक्कञ्च चिरस्थायि गुणा
धिकम् ॥ ३४० ॥ (क) तदपि शीघ्रमासाः स्यन्त
रिणं पक्कं तैलं गुणाधिकं बोद्धव्यम् ।

औषध्यो लघुपाकाः स्युर्निर्वीर्या वत्सरात्परम् ॥

औषध्यो धान्यादयः लघुपाकाः शीघ्रपाकाः निर्वीर्याः स्युः

पुराणाः स्युर्गुरौ युक्ता आसवा धातवो रसाः ॥

[अथ स्नेहपानं विधिः।]

भा० (क) घृततैल आदि इस प्रकार योग विशेषण है । वरसके ऊपर चार मही
ने । घृत तैल में विशेष कहते हैं । तन्त्रान्तरमें । पका घृत वरसके ऊपर हीन
वीर्य होता है ॥ तैल पक्क और अपक्क बड़नदिन रहता है । और गुणाधिक है ।
॥ ३४० ॥ (क) दोहरी सोलह महीने भीतर का पका तैल गुणाधिक जानना
चाहिये ॥ वरसके ऊपर लघुपाक और निर्वीर्य होता है ॥ आसव धातु रस ये
पुराने गुण युक्त होते हैं ॥ [अनन्तर स्नेहपान की विधि।]

स्नेहश्चतुर्विधः प्रोक्तो घृततैलं वसा तथा ॥ मज्जा च तं

पिवेन्मर्त्यः किञ्चिदभ्युदिने रवौ ॥ ३४१ ॥ स्थावरौ ज-

ङ्गमश्चैव द्वियोनिः स्नेह उच्यते ॥ तिलतैलं स्थावरेषु-

जङ्गमेषु घृतवरम् ॥ ३४२ ॥ द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिर्वा

यमकं स्त्रिदृशो महान् ॥

भा० स्नेह चार प्रकार का कहा है घृत तैल चरबी तथा गृदा ॥ उनका अनुष्युक्त
छ बिना निकलने पर ॥ ३४१ ॥ स्थावर और जंगम रसा दो योनि स्नेह कहा है
॥ स्थावर में तिल तैल और जंगम में घृत श्रेष्ठ है ॥ ३४२ ॥ घृत तैल इन दो
के मिलाने से यमक संतक स्नेह होता है ॥ और घृत तैल चरबी इनसे त्रिदृश
तथा घृत तैल चरबी गृदा इनसे महान् होता है ॥

(क) [अस्या यमर्थाः] द्वाभ्यां स्नेहाभ्यां घृततैलाभ्यां

यमकारव्यः स्निहः स्यात् । त्रिभिः स्नेहैः घृततैल
 वसासूपे स्त्रिरुत्तारव्यः स्यात् । चतुर्भिः घृततैलवसा-
 मज्जाभिर्महान्महास्नेहः स्यादित्यर्थः । धिवेत त्यहं
 चतुर्हं पञ्चाहं षडहानि चेति ॥ [यदुक्तम्]
 मृदुकोष्ठ स्त्रिरात्रेण स्निग्धस्नेहोप सेवया ॥ मध्यको-
 ष्टश्चतुर्भिश्च दिवसेः स्निह्यति ध्रुवम् ॥ ३४३ ॥ पञ्च
 भिर्वाप्य षड्भिर्वा दिनेः क्रूरो विशुद्ध्यति ॥ सप्तरात्रा-
 त्यरं स्नेहः सात्मी भवति सेविनः ॥ ३४४ ॥

भा० इसका यह अर्थ है कि । दोसे यमकारव्यस्नेह । तीनोंसे त्रिरुत्तारव्य
 चारोंसे महान् होता है ॥ इनको तीनदिन चारदिन पांचदिन अथवा छ दिन
 पीवे ॥ मृदु मध्य क्रूर कोष्ठकी अपेक्षासे तीनदिन चारदिन पांचदिन अथ-
 वा छ दिन पीवे । जैसे कि कहा है । मृदुकोष्ठ तीन दिनमें स्नेहके सेवनसे
 स्निग्ध होता है ॥ मध्यकोष्ठ चारदिनमें अथवा स्निग्ध होता है ॥ ३४३ ॥
 क्रूरकोष्ठ पांच अथवा छदिनमें शुद्ध होता है ॥ सात दिनके परे सेवन कि-
 याज्जवा स्नेह सात्म्य होजाता है ॥ ३४४ ॥

(क) मृदु मध्य क्रूर कोष्ठानां सर्वेषां सप्तरात्रात्यरं सात्मी
 भवति । वातानुलोम्य बन्धिदीप्ति कोष्ठ शुद्धि मृदुस्नि-
 ग्धाङ्गता स्वरवचनाङ्गलाघव धातु पुष्टि द्विज दाहं नि-
 र्जता बलवर्णकारी भवति ॥

ननु मक्रद्वये वातानुलोम्यादीन् करोति ।

दोषकालवयो बन्धि बलान्यालोक्य योजयेत् ॥

हीनास्त्र मध्यमां ज्येष्ठां मानां स्नेहस्य बुद्धिमान् ॥

३४५ ॥ असात्रया तथाऽकाले मिथ्याहारविहार

तः ॥ स्नेहः करोति शोथार्शस्तन्द्रा निद्रा विसंज्ञिताः ॥
 ॥ ३४६ ॥ देया दीप्ताग्नये मात्रा स्नेहस्यैकपलोन्मिता ॥
 मध्यमाय त्रिकर्षा स्याज्जघन्याय द्विकार्षिकी ॥ ३४७ ॥
 (मध्यमाय मध्यमाग्नये जघन्याय हीनाग्नये)

अथवा स्नेहमात्राः स्युस्तिस्त्रीन्याः सर्वसम्भताः ॥ अ-
 होरात्रेण महती जीर्यत्यन्हि तु मध्यमा ॥ ३४८ ॥
 जीर्यत्यल्पां दिनार्द्धेन सा विज्ञेया सुखावहा ॥

[अयमर्थः] याहोरात्रेण जीर्यति सा मात्रा महती ।

एवं मध्यमा कनिष्ठा च ज्ञेया ।

अल्पा स्याद्दीपनी वृष्या स्वल्पदोषे प्रपूजिता ॥ मध्य-
 मा स्नेहनी ज्ञेया वृंहणी अमहारिणी ॥ ३४९ ॥ ज्येष्ठा

कुष्ठविषोन्मादग्रहापस्मारनाशिनी ॥

भा० (क) सब मृदु मध्यम और कोष्ठ वालों के सातदिन के परे साम्य होना है
 वातकी अनुलोम करके अग्निदीपन कोष्ठ शुद्धि मृदु स्निग्ध अङ्गुता स्वर
 वचन शरीर लाघ वलवर्णकी करनेवाला होता है ॥ नकि भक्त हृयमें वातानु
 लोम्यादिकों को करता है । दोषकाल वय अग्नि बल बुनकी देखकर स्नेहकी
 हीन मध्य अधिक मात्राको योजना करे ॥ ३४५ ॥ वे मात्राके तथा अकाल
 में मिथ्या आहार विहार में । स्नेह सूजन बवासीर तन्द्रा निद्रा विसंज्ञिता
 इनको करता है ॥ ३४६ ॥ दीप्ताग्नि की स्नेहकी एक पल प्रमाण मात्रा देनी
 चाहिये ॥ और मध्यम अग्निवालेको दो नोले देनी चाहिये ॥ ३४७ ॥ मध्यमा
 ग्नि की और हीन अग्निवाले की । और सबके सम्मन नौन स्नेहकी मात्रा होती
 है ॥ बड़ी मात्रा जो दिन रात में पचती है और दिनमें जो पचजाती है वोह
 मध्यम ॥ ३४८ ॥ और जो आधे दिन में पचती है उसको अल्पमात्रा जाननी
 चाहिये वोह सुखावह है ॥ (यह अर्थ है कि) जो रातदिन में पचती
 है वो बड़ी मात्रा है । ऐसे ही मध्यम कनिष्ठ जाननी चाहिये । अल्प मात्रा

शुक्रको करनेवाली है । और अल्पदीप में पूजित है ॥ मध्यम स्नेहकी मात्रा पुष्ट
 म्रम नाशक होती है ॥ ३४८ ॥ और बड़ी कुष्ठ विष उन्माद ग्रह अपस्मार इन
 की नाशक है ॥ [सुश्रुतः पुनरेवाह]

यामात्रा प्रथमे यामे गते जीर्यति वासरे ॥ सामात्रा
 दीपयत्यग्नि मल्पदोषे च पूजिता ॥ ३५० ॥ या मा-
 त्रा वासरस्यार्द्धे व्यतीते परिजीर्यति ॥ सा वृष्या वृ-
 हणी च स्यान्मध्यदोषे प्रपूजिता ॥ ३५१ ॥ या मात्रा
 चरमे यामे स्थितेऽन्हः परिजीर्यति ॥ सामात्रा स्नेह
 नी ज्ञेया बह्वदोषे षु पूजिता ॥ ३५२ ॥ केवलं पैत्तिके
 सर्पिर्वातिके लवणान्वितम् ॥ देयं बह्वकफे वल्लि-
 व्याय क्षारसमन्वितम् ॥ ३५३ ॥ रूक्षक्षत विषा-
 र्त्तानां वातपित्त विकारिणाम् ॥ हीनमेधा स्मृतीना-
 ज्च सर्पिःपानं प्रशस्यते ॥ ३५४ ॥ कृमिकोष्ठानिला
 विष्टा प्रवृद्ध कफ मेदसः ॥ पिवेषु स्तैल सात्स्यास्त्रुते-
 लं दार्ढ्यार्थिनस्तु ये ॥ ३५५ ॥ व्यायामा कर्षिताः
 शुष्क रेतोरक्ता महारुजाः ॥

भा० सुश्रुतने फिरसेही कहा है । जो मात्रा पहर भर गुजरने पर पचती है ।
 वोह मात्रा अग्निको दीपन करती है । और छोड़े दीपमें अच्छी है ॥ ३५० ॥
 जो मात्रा दो पहर गुजरने पर पचती है वोह मात्रा शुक्रको करनेवाली पुष्ट हो-
 ती है और मध्यदोष में अच्छी होती है ॥ ३५१ ॥ जो मात्रा दिनके चौथे पहर
 में पचती है उस मात्राको स्नेहनी जानना चाहिये वोह बृहन्न दोषमें पूजित हो
 ती है ॥ ३५२ ॥ पैत्तिक में खाली घृत और वातिकमें लवण के सहित ॥ देना चा-
 हिये तथा वृद्ध कफमें चित्रक त्रिकुण्ड क्षार युक्त ॥ ३५३ ॥ देना चाहिये रूक्ष

क्षत विष दूनसे पीड़ित वात पित्तके विकार वालों को ॥ और हीन मेंधा स्मृति को घृतपान अच्छा है ॥ ३५६ ॥ हाँमि को घृत वात दून करके प्रायेष्ट और बड़े हृदये कफ भेद वाले ॥ तथा रुद्धता के चाहने वाले जो हैं वे तल सामान्य रोगमें तेलको पीवें ॥ ३५५ ॥ कसरन से आकर्षित शुष्क वीर्य्य वेरक्तवाँटे वडी पीड़ावाले येहभी तेल पीवें ॥

(क्रूरशयाः क्रूरकोष्ठाः सर्वतः सर्वस्मान् स्नेहात् ।)

शीतकाले दिवास्नेह मुष्णकाले पिवेन्निशि ॥ वात

पित्ताधिके रात्रौ वातस्नेहमाधिक दिवा ॥ ३५६ ॥

नस्याभ्यञ्जनं गण्डूषं मूर्द्धं कर्णादि नर्पणे ॥ तैल-

घृतं वा युञ्जीत दृष्ट्वा दीष बलावलम् ॥ ३५७ ॥ घृ-

ते कोश जलं पेयं तैलेयूषः प्रशस्यते ॥ वसामज्जा

पिवेन्मण्डं मनुपानं सुखावहम् ॥ ३५८ ॥ स्नेह द्वि-

षः शिशून् वृद्धान् सुकुमारान् कृशानपि ॥ नृष्णा-

लुकां नृष्णकानि सह भक्तेन पाययन् ॥ ३५९ ॥

सर्पिष्मती बह्नातिला यवागू स्वल्पं तराडुला ॥

भा ५ क्रूर शयाय क्रूरकोष्ठ सब स्नेह से सब तरफ) शीतकाल में दिनमें स्नेह और उष्णकाल में रातको पीवें ॥ और वात पित्ताधिक में रातका और वात कफाधिकमें दिनमें ॥ ३५६ ॥ पीवे नास अम्यंग गण्डूष और अप्पर का न नत्र इनके नर्पणमें ॥ तेल घृतको योजना कर दीषोंके बलावल देख कर ॥ ३५७ ॥ घृतपान सालगरमजल पीना चाहिये और तेल पर नृस प्रशस ही नाहै । वसा मज्जा पर अनुपान माड पीवे येह सुखावह है ॥ ३५८ ॥ स्नेह से द्वेष करने वालों को और बालक हृद्द सुकुमार कृश दूनको भी ॥ और दयावालेको उष्णकालमें योजन के साथ पिलावे ॥ ३५९ ॥ घीकी बह्नातिलसे युक्त घोड़े चांचालवाली यवागू ॥

सुखोष्णा सेव्यमाना तु सद्यः स्नेहन कारिणी ॥ ३६० ॥

शर्करा चूर्णं संयुक्ते स्निहनस्ये घृते नु गाम् ॥ दुग्धे च क्षीरं
पिविद्रुसः सद्यः स्निहनं मुनमम् ॥ ३६१ ॥ मिथ्या चारा

वृद्धत्वाच्च यस्य स्निहो न जीर्येति ॥ विष्टम्भा वापि जी-
र्येतेन वारिणोष्णो न वामयेत् ॥ ३६२ ॥ स्निहस्याजीर्णं श-

ङ्गायां पिवेदुषोत्कं नारः ॥ तदोद्गरो भवेच्छुद्धो भ-
क्तं प्राप्ते रुचिस्तथा ॥ ३६३ ॥ स्निहेन पैतिकस्याग्निर्य-

दा तीक्ष्णतरा कृतः ॥ तदास्यो वीर्यते तृषणां विषभा-
न्तस्य पाययेत् ॥ ३६४ ॥ शोतलं पायसं तेन तृषाणत-

स्य प्रशाम्यति ॥ अजीर्णं वर्जयेत् स्निहं मुहुरी तरुण
ज्वरी ॥ ३६५ ॥

भा० गारम सील सेवन की हुई तत्काल स्निह न करने वाली है ॥ ३६० ॥ दुह-
ने के बरतन में शर्करा चूर्ण संयुक्त घृत मिलाके बसमें ॥ गायका दूध दुहक
र रुक्ष पुरुष पीवे दोह तत्काल उनमें स्निहन है ॥ ३६१ ॥ मिथ्याचार से
अथवा वृद्धता होनेसे जिसका स्निह नहीं पचता ॥ विष्टम्भ होके भी पचजाता
॥ अजीर्ण शंका में
॥ तब दूस्को
से इसकी त-
र बाला से

ह को तसेवन करे ॥ ३६५ ॥ दुर्बली शरीरकी स्थूलो मूच्छी जो मेह पीडितः ॥ दन्-
तवस्ति त्रिरक्तश्च दान्तस्तृषा ॥ श्रमान्वितः ॥ ३६६ ॥

अकाल प्रसवा नारी दुर्दिने च विवर्जयेत् ॥ स्निघः
संशोधमद्यस्त्री व्याधामासक्तं चित्तका ॥ ३६७ ॥

बृद्धबाल कृशा रूक्षाः क्षीणास्त्राः क्षीणरेतसः ॥ वाता-
 र्त्तास्तिमिरार्त्ता ये तेषां स्नेहनं मृत्तमम् ॥ ३६८ ॥ वाता
 नुलोम्यं दीप्ताग्निर्वर्चः स्निग्धमसंहतम् ॥ मृदु-
 स्निग्धाङ्गता रत्नानिः स्नेह द्वेषोऽथ लाघवम् ॥ ३६९ ॥
 विमलेन्द्रियता संम्यक् स्निग्धे रूक्षे विपर्ययः ॥ म-
 क्तद्वेषो मुग्धस्त्रावो गुदे दाहः प्रवाहिका ॥ ३७० ॥
 तन्द्रातीसारं षण्डत्वं मृशं स्निग्धस्य लक्षणम् ॥
 रूक्षस्य स्नेहनं स्नेहै रति स्निग्धस्य रूक्षणम् ॥ ३७१ ॥

भा० दुर्बल अरुचिवाला स्थूल मूर्च्छावाला प्रमेह से पीड़ित ॥ वस्ति दि-
 याङ्गवा विरेचनलियाङ्गवा वमनलिया श्रमयुक्त ॥ ३६६ ॥ और अकालमें
 प्रसृतजड़ यह त्यागदेवे और दुर्दिनमें भी त्यागदेवे ॥ स्वेदन और संशोधन
 करके मद्य स्त्री कसरत इनको बद्धत करनेवाले ॥ ३६७ ॥ बृद्ध बालक कृश
 रूखे क्षीण रक्तक्षीण धातु ॥ वातसे पीड़ित निमिर रोगवाले जो हैं उनको
 स्नेहन अच्छा है ॥ ३६८ ॥ वातका नीचे होना दीप्त अग्नि मलचिकना औ-
 र ठीला ॥ मृदु और स्निग्धता सुस्ती स्नेह द्वेष और हलकापन ॥ ३६९ ॥
 इन्द्रियोंकी स्वच्छता अच्छीतरह स्निग्ध होनेमें यह लक्षण होते हैं ॥ और
 रूक्षमें इससे विरुद्ध लक्षण होते हैं ॥ भोजनमें द्वेष मुखस्त्राव गुदमें दाह प्रवा-
 हिका ॥ ३७० ॥ तन्द्रा अतीसार नपुंसकता यह बद्धत स्निग्धका लक्षण है ॥
 रूक्षका स्नेहसे स्नेहन और स्निग्धका रूक्षण ॥ ३७१ ॥

प्रथामाकचराका चैश्च तक्रपिषयाक शक्तुभिः ॥ दी-
 साग्निः शुद्धकोष्ठश्च पुष्टधातुर्द्वेन्द्रियः ॥ ३७२ ॥
 निर्जरो बलवर्णाढ्यः स्नेहं सेवी भवेन्नरः ॥ स्नेहं ध्या-
 यामसंश्रीतिवेगाघातं प्रजागरान् ॥ ३७३ ॥ दिवास्व-
 प्रममिष्यन्दि रूक्षान्नञ्च विवर्जयेत् ॥

[अथ पञ्च कर्माणि]

प्रथमं वमनं पश्चाद्विरेक ध्यानु वासनम् ॥ रतानि

पञ्च कर्माणि निरूहो नावनं तथा ॥ ३७४ ॥

[अथ वमनविधिः] शरत्काले वसन्ते च प्रावृत्काले

च देहिनाम् ॥ वमनं रेचनञ्चैव कारयेत्कुशलो भिष-

क् ॥ ३७५ ॥ बलवन्तं कफव्याप्तं हस्त्रासादि निपी-

डितम् ॥ तथा वमन सात्म्यञ्च धीरचित्तञ्च वाम-

येत् ॥ ३७६ ॥ विषदोषे स्तन्यरोगे मन्देऽग्नौ प्लीप-

देऽर्बुदे ॥ हृद्रोगे कुष्ठवीसर्पे मेहाजीर्णे भ्रमेषु च ॥

विदारिका पचीकास श्वास पीनस वृद्धिषु ॥ अपस्मा-

रे ज्वरोन्मादे तथा रक्तातिसारिषु ॥ ३७८ ॥ नासांता-

लोष्ठ पाकेषु कर्णास्त्रावेऽधि जिह्वके ॥ गलश्रुण्ड्या

भतीसारे पित्तप्लेष्म गदे तथा ॥ ३७९ ॥ मेदोगे

देऽरुचौ चैव वमनं कारयेद् भिषक् ॥

भा० सांवा चना आदिसे और मग रवल सत्त इनसे करे ॥ दीप्त अग्नि शुद्ध कोष्ठ घातुपुष्ट दृष्टेन्द्रिय ॥ ३७२ ॥ निर्जर वल घर्षासे युक्त स्नेह सेवन करके वाला मनुष्य होता है ॥ स्नेहमें व्यायाम वद्धत प्रीति वेगोंका रोकना रतको जागना ॥ ३७३ ॥ दिनमें सोना अभिव्यन्दि रूक्षं अन्न इनको त्याग देवे ॥

[अनन्तर पंचकर्म] पहिले वमन पीछे विरेचन अनुवासन ॥ निरूह व स्ति नस्य येह पंच कर्म है ॥ ३७४ ॥ [अनन्तर वमन विधिः] शरत् कालमें वसन्तमें और प्रावृत् कालमें भी मनुष्याको ॥ वमन विरेचन कुशलवे च करावे ॥ ३७५ ॥ बलवान कफ से व्याप्त हस्त्रास आदिसे पीडित इनको ॥ तथा वमन सात्म्य और धीर चित्तवाले को वमन करावे ॥ ३७६ ॥ विषदोष स्तन्यरोग मन्दाग्नि प्लीपद अर्बुद इन्में ॥ और हृद्रोग में कुष्ठमें वीसर्प प्रमेह

अजीर्णं भ्रम-इनमें भी ॥ ३७७ ॥ तथा विदारिका अपचीकास श्वाव पीनस अपहृ
 वृद्धि इनमें ॥ अपस्मारमें ज्वर उन्माद तथा रक्तातिसार इनमें ॥ ३७८ ॥ और
 नाक तालु होठ इनके पाकमें कर्णस्त्राव में अधि जिह्वक में ॥ गल प्युंडी अती
 सार तथा पित्तकफके रोग ॥ ३७९ ॥ मेदरोग अरुचि में भी वैद्य धमन करावे ।
 (दुग्धदूध पीने से उत्पन्न हवे वालक के रोग में भी धमन करावे ।)

(स्तन्यरोगे दुष्ट दुग्ध जनिते बालस्य रोगे)

न वामनी यस्तिमिरी न गुल्मी नौद्री कृशाः ॥ नाति हृ
 दी गर्भिणी च न स्थूलो न क्षतातुरः ॥ ३८० ॥ मदानो
 बालको रूक्षः क्षुधितश्च निरूहितः ॥ उदावर्त्त्यूर्द्ध
 रक्ती च दुष्छर्द्यः केवलानिली ॥ ३८१ ॥ पाराङ्ग रोगी
 कृमीव्याप्तः पठनात् स्वरघातवान् ॥ एतेऽप्यजीर्ण
 व्यधिता वाम्या ये विषपीडिताः ॥ ३८२ ॥ कफ व्या
 ताश्च ते वाम्या मधुकक्काथ पानतः ॥

२६

भा० निमिर रोगवाला गुल्म रोगवाला उदर रोगवाला कृशा ॥ अति हृदी गर्भिणी
 स्थूल क्षतातुर ॥ ३८० ॥ मद पीडित बालक रूक्ष क्षुधित निरूहित लियाहवा
 ॥ उदावर्णवाला ऊर्द्ध रक्तवाला और केवल वातरोगवाला इनको धमन न देवे ॥
 ३८१ ॥ पाराङ्ग रोगवाला कृमिसे व्याप्त पठनेसे स्वरघात हुआ ॥ यह अजीर्णसे पी
 डित शान्ति भी धमन करानी चाहिये और जो विषसे पीडित है वे भी धमन कराने चा
 हिये ॥ ३८२ ॥ कफने व्याप्त जये मज्जके के कर्हों के पानसे धमन कराने चाहिये ॥

(क) ऊर्द्ध रक्ती यस्य नासात्तिकर्णास्य मार्गे रक्ते प्रवर्तते सः ।

भुक्त रूक्ष ककीश द्रव्यादम्ब्यार्द्यः मधुकस्थाने मधुकेति
 द्वितीयः पाठ ।

सुकुमारं कृशांस्वालं वृद्धं भीरुञ्च वामयेत् ॥ पाय
 यित्वा यवागुं वा क्षीरं नक्र दधीनि च ॥ ३८३ ॥

असात्म्यैः श्लेष्मलैर्भोज्यैर्दीवानुत्क्षेपय देहिनाम् ॥
स्निग्धस्विन्नाय वमनं दत्तं सम्यक् प्रवर्त्तते ॥ ३८४ ॥
वमनेषु च सर्वेषु सैन्धवं मधुवाहितम् ॥ वीभत्सं व
मनं दद्याद्विपरीतं विरेचनम् ॥ ३८५ ॥

(वीभत्सम् अरुच्यं विपरीतम् रुच्यम् ।)

क्वाथ्यद्रव्यस्य कुडवं स्वपयित्वा जलाढके ॥ अर्द्ध-
भागावशिष्टञ्च वमनेष्ववधारयेत् ॥ ३८६ ॥ क्वा
थपाने नवप्रस्था ज्येष्ठा मात्रा प्रकीर्तिता ॥ मध्यमा
परिमता प्रोक्ता त्रिप्रस्था च कनीयसी ॥ ३८७ ॥ वम
ने च विरेके च तथा प्रोशितमोक्षणे ॥ अर्द्धत्रयोद
शपलं प्रस्थमाहुर्मेनीषिणः ॥ ३८८ ॥

(अर्द्धत्रयोदशपलं सार्द्धं षट्कम्)

भा० (क) जिसके नाक आंख कान मुख वृत्त मार्ग से रक्त निकलता है वो
ह । खाया रूखा कर्कषण ऐसा द्रव्य दुःच्छद्य है । मधुक की जगह में मधुक
ऐसा दूसरा पाठ है । सुकुमार कृश बालक वृद्ध भीरु इनको ॥ यवायू अथ
वा दूध मठा दही इनको पिलाकर वमन करावे ॥ ३८३ ॥ गतुषों के दोषों की
असात्म्य कफकारी भोजनोंसे उखिड़कर वमन करावे ॥ स्निग्ध स्विन्न वाले
की वमन दिया जवा अच्छी तरह होता है ॥ ३८४ ॥ सब वमनों में अथवा
मधु यह हित है ॥ स्वादमें खराब वमन देवे और स्वादमें अच्छा विरेचन देवे
॥ ३८५ ॥ अरुचिकी करने वाला । और रुचिकी करने वाला । कड़ि की पाव
भर दवाकी चार सेर पानीमें भिजोयकर ॥ बीटाके आधा पानी वाकी रहे
की वमन में देवे ॥ ३८६ ॥ क्वाथ पावमें नौसेर बड़ी मात्रा कही है ॥ और
मध्यम मात्रा छ सेर की कही है तथा हीन मात्रा तीनसेर की कही है ॥ ३८७ ॥
वमनमें विरेचनमें तथा फलमें सार्द्ध छ पलका सेर मुनियों ने कहा है ॥ ३८८

(सार्द्ध छ पल)

कल्क चूर्णावलेहानां त्रिपलं मात्रयोत्तमम् ॥ मध्यमं
द्विपलं विद्यात्कनीयस्तु पलं भवेत् ॥ ३८६ ॥ वमने
चाष्टवेगास्युः पित्तान्ता उत्तमास्तु ते ॥ षड्वेगा मध्य
मा वेगा चत्वारस्त्वपरे सताः ॥ ३८७ ॥ कफं कटुक
नीलगोष्ठीः पित्तं स्वादु हिभैर्जयेत् ॥ सस्वादु लव-
णास्त्रोष्ठीः संसृष्टं वायुना कफम् ॥ ३८९ ॥

भा० कल्कचूर्ण अवलेह इनकी मात्रा उत्तम तीन पल है ॥ मध्यम दो पल और
र हीनपल भरकी होती है ॥ ३८६ ॥ वमन में पित्तान्त आठ वेग जो होते हैं
वोह उत्तम है ॥ और छ वेग मध्यम तथा चार वेग हीन हैं ॥ ३८७ ॥ कफ को कटु
नीलग इनसे पित्तको मधुर शीतलसे जीते ॥ मधुरके सहित अन्न उष्ण इन से
वात मिलेइवे कफ को जीते ॥ ३८९ ॥

कृष्णां कटुफलं सिन्धुं च कफे कोष्णाजलैः पिवेत् ॥
पटोल वासा निम्बाश्च पित्ते शीतजलैः पिवेत् ॥ ३८२ ॥
(कटुफलं मयनफलम्) सप्लेष्म वात पीडायां ।
सत्तीरं मदनं पिवेत् ॥ अजीर्णं कोष्णापानीयं सिन्धुं
पीत्वा वमेत्सुधीः ॥ ३८३ ॥ (मदनं मयनफलम्)
वमनं पाययित्वा तु जानुमात्रासने स्थितम् ॥ कराठमे-
राड नालेन स्पृशन्तं वामयेद्विषक ॥ ३८४ ॥ प्रसेको
हृद्ग्रहः कोठः कराडु दुष्छर्दिते भवेत् ॥ अतिवान्ते
भवेत्तृष्णा हिक्कोद्गरो विसंज्ञता ॥ ३८५ ॥ जिह्वा निः-
सरणं चाक्षोर्ग्या वृत्ति हनु संहितः ॥ रक्तच्छर्दिः शीव
नञ्च कराठपीडा च जायते ॥ ३८६ ॥

भा० पीपल कायफल सेन्धव दूनको कफमें सील गरम जलसे पीवे ॥ पटोल वा सा निम्ब दूनको पित्तमें शीतल जलसे पीवे ॥ ३६२ ॥ (मैत्रफल) कफ के सहित वातकी पीडामें दूधके सहित मैत्रफल को पीवे ॥ ३६३ ॥ अनीर्णमे सेन्धव सील गरम पानीसे पीकर वमन करे ॥ मयनफल । वमन द्रव्यको पिलाकर घुटनेसे बैठकर ॥ कठकों अंडीके मालमें स्पर्श कराकर वमन करावे ॥ ३६४ ॥ प्रसेक हृद् ग्रहकोड खुनली यह लक्षण दुच्छर्दिन में होनाहै ॥ अतिवान्तमे नृषा हिचकी डकार विस्रजता ॥ ३६५ ॥ जीभका निकलना नेत्र पीडा आंखोंका निकलना मुखका खुला रहना ॥ रक्त की छवि धूक कठमे पीडा । यह लक्षण होतेहैं ॥ ३६६ ॥

(हनु संहतिः हन्वो रमिलनम्) वमनस्याति योगे

लु मृदुः कुर्याद्विरेचनम् ॥ वमनेन प्रविष्टायां जिह्वा

यां कवलः ग्रहः ॥ ३६७ ॥ स्निग्धान्त लवणैर्युक्तैर्घृत

क्षीर रसेर्हि नैः ॥ (रसेर्मांसरसेः) फलान्यन्धानि

खादेयु स्तस्य चान्येऽग्रतो नराः ॥ ३६८ ॥ निःसृतान्तु

तिलद्राक्षा कल्क लिप्तां प्रवेशयेत् ॥

(निःसृतां जिह्वां) व्यावृत्तेऽक्षिण घृता भ्यक्ते पीड

नञ्च शनैः शनैः ॥ हनुमोक्षे स्मृतः स्वदो नस्यञ्च श्ले-

ष्म वातहत ॥ ३६९ ॥ रक्तपित्त विधानेन रक्तछीव मु-

पाचरेत् ॥ धात्री रसान्जनो प्रारि लाजाचन्दन वारिभिः

॥ ४०० ॥ मन्यं कृत्वा पाययेच्च सघृतं क्षौद्र शर्करम् ॥

भा० शबडि का नमिलना । वमन के भनियोगमें मृदु विरेचन करे ॥ वमन कर के प्रविष्ट जिह्वामिकवलग्रह ॥ ३६७ ॥ विकला और लवण इनकाके दूक घृत क्षीर रसहन करके देवे ॥ रस अर्थात् मांसरस । गवई फलोको खावे उस के पहलै ॥ ३६८ ॥ और निःसृतको निनद्राजा वै वत्सा से मीनिलको पीतकरी

व्यावृत्त नेत्रमें घृतसे अभ्यक्त को धीरे दवावे ॥ हनुमोक्ष में स्वेद कहा है और नास कफघानका नाशक ॥ ३६६ ॥ रक्तपित्त विधानसे रक्तघीव का उपचार करे ॥ आंवले रस वनखस खीला चन्दन सुगन्धवाला इनसे मन्थ ॥ करके घृत मधु शर्करा इनके साथ पिलावे ॥

शाम्यन्त्यनेन तृषणाद्या रोगाच्छर्दि समुद्भवाः ॥ ४०१ ॥
 हृत्कराण शिरसां शुद्धिर्दीप्ताग्नि त्वञ्च लाघवम् ॥ क
 फ पित्त विनाशश्च सम्यग्वान्तस्य लक्षणात् ॥ ४०२ ॥
 ततोऽपराह्णे दीप्ताग्निं मुद्गषष्टिकं शालिभिः ॥ हृद्यैश्च
 जाङ्गलरसैः कृत्वा यूषञ्च भोजयेत् ॥ ४०३ ॥ तन्द्रानि
 द्रास्य दौर्गन्ध्यं कराडूञ्च ग्रहणीं विषम् ॥ सुवान्तस्य
 न पीडाये भवन्त्येते कदाचन ॥ ४०४ ॥ अजीर्णं शीत
 पानीयं व्यायामं मैथुनं तथा ॥ स्नेहास्यञ्च रोषञ्च
 दिनमेकं सुधीस्त्यजेत् ॥ ४०५ ॥

[इति वमनाधि कारः]

भा० वैसे तृषा आदिक रोग वमनसे उत्पन्नहुवे शमन होते हैं ॥ ४०१ ॥
 हृदय कराण शिर इनकी शुद्धि दीप्त अग्नि हलकापन कफ पित्तका नाश
 यह अच्छी तरह वमन किये हुवेका लक्षण है ॥ ४०२ ॥ उसके अनन्तर
 अपराहण कालमें दोन अग्निबाले को भूंग साठी चावल हृद्य जांगलरस से म
 स करके भोजन करावे ॥ ४०३ ॥ तन्द्रा निद्रा मुखकी दुर्गन्धना खुजली संभ
 हणी विष ये ॥ सुवान्त के पीडाके अर्थ कदाचित् भी नहीं होते ॥ ४०४ ॥ अ
 जीर्ण शीतल नल कसरत तथा मैथुन तेलका लगाना क्रोध इनकी एक
 दिन छोड़ देवे ॥ ४०५ ॥ [इति वमनाधिकार ।]

[अथ विरेचन विधिः ।]

स्निग्धस्विन्नाय वान्ताय दद्यात्सम्यग् विरेचनम् ॥

अवान्तस्य त्वधःस्वस्तो ग्रहणीं छादयेत्कफः ॥ ४०६ ॥
 मन्दाग्निं गौरवं कुर्व्या ज्जनयेद्वा प्रवाहिकाम् ॥ अथ-
 वा पाचनै रामं बलासं परि पाचयेत् ॥ ४०७ ॥ व्रतौ
 वसन्ते शरदि देह शुद्धौ विरेचयेत् ॥ अन्यदात्ययि
 के कार्य्ये शोधनं शीलयेद्बुधः ॥ ४०८ ॥

भा० अनन्तर विरेचनकी विधि ॥ स्निग्धि स्निग्ध वान्तके अर्थ अच्छीतर
 ह विरेचन देवे ॥ अनन्तर वमन लियेकानीचे जुवाकफ ग्रहणी को दक
 देता है ॥ ४०६ ॥ मन्दाग्नि भारीपन इनको करता है ॥ और प्रवाहिका को क
 रता है अथवा पाचनोंसे आम और कफ इसको पकावे ॥ ४०७ ॥ वसन्त
 और शरदमें देह शुद्धि के अर्थ विरेचन लिवावे ॥ और अवश्यक कार्य्य में
 शोधनको करावे ॥ ४०८ ॥

(आत्ययिके प्राणसङ्कटे)

पित्ते विरेचनं युज्या दामोद्भूते गदे तथा ॥ उदरे च
 तथाध्माने कोष्ठशुद्धौ विशेषतः ॥ ४०९ ॥ दोषाः कदा
 चित्कुप्यन्ति जिता लङ्घनपाचनैः ॥ शोधनैः शोधि
 ता ये तु ननेषां पुनरुद्भवः ॥ ४१० ॥ चालो वृद्धो भृशं
 स्निग्धः क्षतक्षीणो भयान्वितः ॥ श्रान्तस्तृषार्तः स्थू
 लश्च गर्भिणी च नवज्वरी ॥ ४११ ॥ नवप्रसूता नारी
 च मन्दाग्निश्च मदात्ययी ॥ शाल्यार्हितश्च रूक्षश्च
 न विरेच्या विज्ञानता ॥ ४१२ ॥

भा० (प्राण संकट में) । पित्तमें तथा आमके रोग में विरेचन न देवे ॥ और उ
 दर में तथा आध्निमें विशेष करके कोष्ठ शुद्धिमें विरेचन देवे ॥ ४०९ ॥
 लंघन पाचन औषधिसे दूर हुवेदीय कंदाचिन् फिरसे ही भाने हैं ॥
 और जो शोधनसे शुद्ध कियेजाने हैं वे फिरसे नहीं होते ॥ ४१० ॥ चालक

वृद्ध अत्यन्त क्षिण्य क्तत क्षीण भययुक्तं ॥ श्रान्तं तृषासं पीडित स्थूल गर्भणी
नवज्वर वाला ॥ ४११ ॥ नव प्रसूत स्त्री मन्दाग्निवाला भ्रदात्ययवाला ॥
शूल्य से पीडित और रुद्ध येह जानने वालेके द्वारा विरेचन देनेके योग्य नहीं है
॥ ४१२ ॥ जीर्णज्वरी गरव्याप्तौ वातरोगी भगन्दरी ॥ अर्थाः

पाराङ्गदर ग्रन्थि हृद्भोगा रुचि पीडिताः ॥ ४१३ ॥

योनिरोग प्रमेहार्त्ता गुल्मस्त्रीह ज्रणाहितः ॥ विद्र-

धि च्छर्दि विस्फोट विसूची कुष्ठसंयुताः ॥ ४१४ ॥

कर्णा नासा शिरो वक्त्र गुद मेढ्रा मयान्विताः ॥ स्त्रीह

शोथान्ति रोगार्त्ताः कृमिद्वारा निलार्हिताः ॥ ४१५ ॥

शूलिनो मूत्रघातार्त्ता विरेकार्हा नरा मताः ॥ वृद्ध पि-

त्तो मृदुः प्रोक्तो वृद्धश्लेष्मा च मध्यमः ॥ ४१६ ॥ वृद्ध-

वात क्रूर कोष्ठो दुर्विरेच्यः स कथ्यते ॥ मृद्धीमात्रा मृ-

दो कोष्ठे मध्यकोष्ठे च मध्यमाः ॥ ४१७ ॥ क्रूर तीक्ष्णा

मता द्रव्यै मृदु मध्यम तीक्ष्णकैः ॥

भा० जीर्णज्वर वाला विषसे व्याप्त वातरोग वाला भगन्दर वाला ॥ ववासीर
पांडरोग उदरगांठ हृद्भोग अरुचि इनसे पीडित ॥ ४१३ ॥ योनिरोग प्रमेह से
पीडित वायुगोला पिलही ज्रणा मे पीडित ॥ विद्रधि वमन विस्फोट विसूचि कुष्ठ
इनसे युक्त ॥ ४१४ ॥ कान नाक शिर मुख गुदा लिंग इनके रोगोंसे युक्त ॥
पिलही स्त्रजन नेत्ररोग इनसे पीडित कृमि क्षार वात इनसे पीडित ॥ ४१५ ॥
शूल वाले मूत्रघात से पीडित ये मनुष्य विरेचन देनेके योग्य है ॥ अधिक पित्त
वाला मृदुकोष्ठ कहा है और अधिक कफ वाला मध्यकोष्ठ तथा अधिक वात
वाला क्रूर कोष्ठ होता है शोह दुर्विरेच्य कहा है ॥ मृदुकोष्ठ में मृदुमात्रा मध्य
कोष्ठ में मध्यमात्रा ॥ ४१७ ॥ क्रूर कोष्ठमें तीक्ष्णमात्रा मृदु मध्य तीक्ष्णा द्रव्यों
से कही है ॥

मृदुद्राक्षा पयश्चञ्चु तैलेरपि विरिच्यते ॥ मध्यमस्त्रि-
 वृतातिक्ता राजवृक्षैर्विरिच्यते ॥ क्रूरार्क पयसा हेमक्षी-
 री दन्ती फलादिभिः ॥ ४१६ ॥

(क) चञ्चुतैलम् ऐरराड तैलम् । राजवृक्षः । घनबहेरा ।
 हेमक्षीरी । चोक । दन्तीफलम् । वृहद्दन्तीफलम् । जय
 पालेति प्रसिद्धम् ॥

मात्रोत्तमा विरेकस्य त्रिंशद्द्वैगैः फलान्तकः ॥ वेगं
 विंशतिभिर्मध्या हीनोक्ता दशवेगिका ॥ ४२० ॥

भा० मृदुकोष्ठ वालेको दाख दूध अंडीकानेल इनसेभी दस्त होनि हैं ॥ ४१६
 मध्यकोष्ठ को निसोथ कुदकी अमलतास इनसे दस्त आनिहैं ॥ क्रूरकी औं
 कके दूधसे और चोक जमालगोटा आदिसे दस्त होनिहैं ॥ ४१६ ॥

(क) अंडीकानेल । अमलतास । चोक । वडा जमालगोटा । शुल्लान् की
 उत्तमा मात्रा तीसंदस्तोंसे होती है । (वोह कफ नाशक होती है । चीस दस्तों से
 मध्यम और दससे हीन मात्रा कही है ॥ ४२० ॥

द्विपलं श्रेष्ठमारव्या तं मध्यमं व पलं भवेत् ॥ पला
 द्वैञ्च कषायाणां कनीयस्तु विरेचनम् ॥ ४२१ ॥ क-
 ल्क मोदक चूर्णानां कर्ष मध्वाज्यलेहतः ॥ कर्ष ह
 यं पलंवापि वयो रोगाद्य पेक्षया ॥ ४२२ ॥ पित्तोत्तरे
 त्रिवृच्चूर्णां द्राक्षाक्वाथा दिभिः पिवेत् ॥ त्रिफला क्वा-
 थ गोमूत्रैः पिवेद्योषं कफार्दितः ॥ ४२३ ॥ त्रिवृत्से
 न्धव शुराठीनां चूर्णमसैः पिवेन्नरः ॥ वातादिभ्यो
 विरेकाय जाङ्गलानां रसेन वा ॥ ४२४ ॥ ऐरराड तैलं
 त्रिफला क्वाथेन द्विगुणेन वा ॥ युक्तं पीतं पयोभिर्वा

न चिरेण विरिच्यते ॥ ४२५ ॥
 (शीघ्रमेव विरिच्यत इत्यर्थः) त्रिवृता कौटजं बीजं
 पिप्यली विप्रवभेषजम् ॥ समृद्धीका रसंक्षौद्रं वर्षा
 काले विरेचनम् ॥ ४२६ ॥ त्रिवृदुरालभा मुस्तशर्क-
 रोदीच्य चन्दम् ॥ द्राक्षास्बुना सयष्ट्याह्व शीतलञ्च
 घनात्यये ॥ ४२७ ॥ (उदीच्यस्बाला घनात्यये शरदि)

भा० कषायों की मात्रा उत्तम दोपल मध्यम पलभर और ह्रीन आधापल जल
 वकी दवामें होती है ॥ ४२५ ॥ कल्क मोदक चूर्ण इनकी तोलाभर मधु घृत
 मिलाके ॥ दो तोले या चार तोले वयरेण आदिकी अपेक्षा से देवे ॥ ४२२ ॥ पित्त
 धिकमें निसीधका चूर्ण दाख के काढ़के साथ पीवे ॥ कफ से पीडित त्रिकुटाके
 चूर्ण को त्रिफला काष्ठ और गोमूत्रके साथ पीवे ॥ ४२३ ॥ वातादित मनुष्य वि-
 रेचन को निसीध सेन्धा सौठ इनका चूर्ण अम्लके साथ पीवे अथवा जाङ्गल मा-
 स इसके साथ पीवे ॥ ४२४ ॥ अथवा अरुईके तेलकी दुग्ने त्रिफलाके काढ़े
 से ॥ अथवा इधके साव पीनेसे शीघ्रदस्त होते हैं ॥ ४२५ ॥ निसीध घृन्नजव
 पीपल सौठ ॥ और मुनक्का इनका रस मधुके साथ वर्षाकाल में विरेचन देवे ॥ २६
 ॥ निसीध जवासा मागरसोथा शर्कर सुगन्धवाला चन्दन ॥ दाख के रससे मुलेह
 ठीके सहित वीरामूल इनको शरदकाल में देवे ॥ ४२७ ॥

(सुगन्धवाला शरद में ।)

पिप्यली नागरं सिन्धुं श्यामां त्रिवृतया सह ॥ लि-

ह्यात् चौद्रेण शिशिरे वसन्ते च विरेचनम् ॥ ४२८ ॥

(श्यामा कृष्णा साण्ड) त्रिवृता शर्करा तुल्या ग्रीष्मका
 ले विरेचनम् ॥ अभया मरिचं शुरठी विडङ्गमलका
 निच ॥ ४२६ ॥ पिप्यली पिप्यलामूलं त्वक्पत्रं मुस्त-
 मेवच ॥ एतानि सम भागानि दन्ती तु त्रिगुणा भवेत्
 ॥ ४३० ॥ त्रिवृताष्ट गुणा ज्ञेया षड्गुणा चात्र शर्करा ॥

भा० पीपल सोंठ सुफ़ेद सुहागा काली निसोय के साथ चूर्ण करके मधुके साथ पिशिर में और चसेतमें भी जुलाब देवे ॥ ४२७ ॥ निसोय शक्कर बरवर इनको शीष्म में देवे ॥ हड्ड मिरच सोंठ वायविडंग आवले ॥ ४२८ ॥ पीपल पीपलामूल तज पत्रज नागर मोथा ॥ इनकी समभाग और दन्ती तियुनी ॥ ४२९ ॥ निसोय अठगुनी और इसमें छ गुनी शक्कर ॥

मधुना मोदकान् कृत्वा कर्षमात्रान् प्रमाणातः ॥ ४३० ॥
 कैकं भक्षयेत्प्रातः शीतञ्चानु पिवेज्जलम् ॥ ताव-
 द्विसिच्यते जन्तु र्यावदुपां न सेवते ॥ ४३१ ॥ पानाहार
 विहारेषु भवेन्निर्यन्त्रणः सदा ॥ विषमज्वर मन्दा
 ग्नि पाराडु कास भगन्दरान् ॥ ४३२ ॥ एष्टपार्ष्वीरु
 जघन जङ्घादर रुजं जयेत् ॥ स्नेहा भ्यङ्गञ्च रोषञ्च
 दितमेकं सुधीस्त्यजेत् ॥ ४३३ ॥ सततं शीलना देव
 पलितानि प्रणाशयेत् ॥ अभया मोदकाद्येते रसाय
 नवराः स्मृताः ॥ ४३४ ॥

[इति अभयादि मोदकः]

भा० लेकर मधुकेसाद्य कर्ष प्रमाणा मोदक करके ॥ ४३० ॥ एक २ प्रातः काल खावे और पीडेसे शीतलजल पीवे ॥ तबतक दस्त आतेहैं जवतक मनुष्य उषाजल नहीं सेवन करता ॥ ४३१ ॥ खान पान विहारमें सदा पथ्यसे रहे ॥ विषमज्वर मन्दाग्नि पाराडुरोग कास भगन्दर इनकी ॥ ४३२ ॥ और पीठ पसली छाती कटिवेश जांघ उदर इनकी पीडा की नीनता है ॥ मेल लगाना और क्रोध इनको बुझवान् एकदिन न्यागदेवे ॥ ४३३ ॥ निरन्तर सेवन करने से ही बालोंकी सुफ़ेदी दूर होती है ॥ यह रसायन में श्रेष्ठ अभया मोदक कहा है ॥ ४३४ ॥ इति अभयादि मोदक ॥

पीत्वा विरेचनं शीतजलैः संसिच्य चक्षुषी ॥ सुगन्धि
 किञ्चिदाघ्राय ताम्बूलं शीलयेद्बुधः ॥ ४३५ ॥

निर्वानस्थो नवेगांश्च धारयेन्न शयीत च ॥ शीताम्बु
 न स्पृशेत्कापि कौषानीरं धिवेन्मुद्गः ॥ ४३७ ॥ बला
 सौषधपित्तानि वायुर्बान्ते यथा व्रजेत् ॥ रेकात्तथा
 मलं पित्तं भेषजञ्च कफो व्रजेत् ॥ ४३८ ॥ दुर्विक्त
 स्य नाभेस्तु स्तब्धता कुलिशूलरुक् ॥ पुरीषवातस
 इश्च कराडू मण्डल गौरवम् ॥ ४३९ ॥ विदाहोऽरु-
 चिराध्मानं श्रमश्छर्दिश्च जायते ॥ तं पुनः पाचनैः
 स्नेहैः पक्त्वा स्निग्धन्तु रेचयेत् ॥ ४४० ॥ तेनास्थोप
 द्रवा यान्ति दीप्ताग्नि लघुता भवेत् ॥ विरेकस्याति
 योगिन मूर्च्छा भ्रंशो गुदस्य च ॥ ४४१ ॥ शूलं कफा
 तियोगः स्यान्मांस धावन सन्निभम् ॥ मेदो निभञ्ज
 लाभासं रक्तञ्चापि विरिच्यते ॥ ४४२ ॥ तस्य शीता-
 म्बु मिः सिक्त्वा शरीरं तराडुलाम्बु मिः ॥ मधु मिश्रे
 स्तथा शीतैः कारयेद्दमनं मृदु ॥ ४४३ ॥

भा० जुल्लाव की दवाको पीकर ठंडेपानी से आँखोंको छपके देकर ॥ थोड़ी
 सी सुगन्ध वस्तुको सूपकर पानखावे ॥ ४३६ ॥ निर्वान स्थानमें रहै और हस्तों
 को नरीके और सोबेभी नहीं ॥ शीतल जलको कहींपर भी नछूवे गरम सील
 जलकी वार भीवे ॥ ४३७ ॥ जैसे वमनमें कफ औषध पित्त वायु निकल
 तेहैं ॥ वैसे दस्तसे मलपित्त और औषध तथा कफ येहभी निकलते हैं ॥
 ४३८ ॥ अच्छे जुल्लाव नइवैके नाभमें स्तब्धता कूरखमें शूल पीड़ा ॥ मलवात
 सङ्ग खजली चकते भारीपन ॥ ४३९ ॥ विदाह अरुचि आध्मान श्रम वम
 न येह होतेहैं ॥ उसको फिरसे पाचन स्नेह द्रव्योंसे पकाकर स्निग्धज्वेको
 दस्त करावे ॥ ४४० ॥ उस करके इसके उपद्रव दूर होते हैं और दीप्ताग्नि हल
 कापन होताहै ॥ बड़न दस्तोंके होने से मूर्च्छा गुद भ्रंश ॥ ४४१ ॥ शूल कफ

का अतियोग मांस के धोवन के समान ॥ और भस्म के समान जलसा तथा रक्तभी दस्त में निकलता है ॥ उसका शरीर शीतलजल से सींच कर शीतल चावल के जलके मधु मिलाके उससे तथा शीतलजल वस्त्रसे मृदु वमन करावे ॥ ४४३ ॥

सहकारं त्वचः कल्को दध्ना सौवीर केनच ॥ पिष्ट्वा नाभि
प्रलेपेन हन्त्यतीसार सुल्बणाम् ॥ ४४४ ॥ सौवीरं तु
यवैरामैः पक्वैर्वी निस्तुंषीःकृतैः । (सौवीरं सन्धानम्)
अजादीरं रसञ्चापि वैष्किरं हरिणं तथा ॥ प्रगालिभिः
षष्टिकैस्तुल्यै मसूरैर्वापि भोजयेत् ॥ ४४५ ॥ वर्तिका-
लाव विकर क्रपिञ्जलक तित्तिराः ॥ चकोर क्रकरा
द्याश्च विष्किराः समुदाहताः ॥ ४४६ ॥ कपिञ्जल
इति ख्यातो लोके कपिशतित्तिराः ॥

क्रकरः । कराट इति लोके । हरिणस्ताम्रवर्णः स्यान्मृगः ।

भा० आमकी छालका कल्क वही अथवा सौवीरक के साथ पीसकर नाभि पर लेपकरने से सुल्बण अनीसार नाश होता है ॥ ४४४ ॥ वैष्किरके के कच्चे वाप के जवोंसे काँजीके समान जो किया जाता है उसको सौवीर कहते हैं ॥ व-करीका दूध बटेर आदिका रस तथा हरिण आदिका रस ॥ साठी चावलों के साथ अथवा मसूरकी दालके साथ भोजन करावे ॥ ४४५ ॥ बटेर लवाविकि र भूरे रंगका नीतर नीतर ॥ चकोर कराट आदि येह विष्किर कहे हैं ॥ ४४६ ॥ भूरे रंगके नीतरको लोकमें कपिञ्जल कहते हैं) कराट । हरिण लाल रंगका होता है ।

शीतैः संग्राहिभिर्द्रव्यैः कुर्यात्सं ग्रहणं भिषक् ॥

जाघवे मनसस्तथा वसु लोमङ्गतेऽनिले ॥ ४४७ ॥

सुविरिक्तं नरं ज्ञात्वा पाचनं पायये च्छिषि ॥ इन्द्रि-

यारणां बलं बुद्धेः प्रसादी वह्नि दीप्तिता ॥ ४४८ ॥

धातु स्थैर्यं वयस्थैर्यं भवेद्दे च न सेवनात् ॥ प्रता
 पसेवां शीताम्बु स्निहाभ्यङ्ग अजीर्णाताम् ॥ ४४६ ॥
 व्यायामं मैथुनञ्चैव न सेवेत विरेचितः ॥ शालि
 षष्टि कंसुद्गाद्यै र्यवागूम्भोजयेत् कृताम् ॥ ४५० ॥
 जङ्गल विष्किरणां वा रसैः शाल्योदनं हितम् ॥
 हरिरीरा कुरङ्गर्ष्य चातायु मृगमात्रकाः ॥ ४५१ ॥

भा० हलकापन चित्रकी प्रसन्नता वातका अनुलोमन इस प्रकार के
 लक्षण होनेमें ॥ शीतल संग्राहि औषधी से वैद्य संग्रहण करे ॥ ४४७ ॥
 अच्छी तरह दस्तद्वे मनुष्य को जानकर सार्थकालमें पाचन पिलावे ॥
 ॥ बुद्धिर्योका बल बुद्धि की स्वच्छता अग्नि की दीप्तिता ॥ ४४८ ॥ धातु की
 स्थिरता वय की स्थिरता यह विरेचन के सेवन से होता है ॥ धूप सेवा शी
 तल जल चिकनाई तैल का लगाना अजीर्णाता ॥ ४४९ ॥ कसरत मैथुन
 इनकी विरेचन लियाङ्गवा न सेवन करे ॥ साठी चावल मूंग आदि से य
 वागू को बनाकर भोजन करवे ॥ ४५० ॥ हिरण अथवा बंदर अदियों
 के मांस रससे चावल हिनहै ॥ हिरण एण कुरंग वातायु मृग मातृका ५१
 राजीवः पृषतश्चैव जङ्गलाः शरभादयः ॥

[अथ स्निहवस्ति विधिः] वस्तिर्द्विधानु वासारव्यो नि
 रुहश्च ततः परम् ॥ यः स्निहो दीयते सः स्यादनु वा-
 सननामकः ॥ ४५२ ॥ कषायदीर तैले र्यो निरुहः
 स निगद्यते ॥ वस्तिभिर्दीयते यस्मात्तस्माद्द्वस्ति रि-
 तिस्मृतः ॥ ४५३ ॥

(वस्तिभिः मृगादीनां सूत्राशयैः) तत्रानु वासना
 र्व्यो हि वस्तिर्यः सोऽत्र कथ्यते ॥ अनुवासन भेद
 श्र मात्रा वस्ति रुदीरितः ॥ ४५४ ॥ पलद्वयन्तस्य

मात्रा तस्माद्धीपि वा भवेत् ॥ अनुवास्यस्तु रुक्षः
 स्यात्तीक्ष्णाग्निः, केवलानिली ॥ ४५५ ॥ नानुवास्य
 तु कुशी स्यान्मेही स्थूलस्तथोदरी ॥ नास्थाय्या ना
 नुवास्याश्च जीर्णाग्निमाद नृद्धिर्हिताः ॥ ४५६ ॥ शो-
 थ मूर्च्छीरुचि भय श्वास कास क्षयातुराः ॥ नेत्रं
 कार्थ्यं सुवर्णादि धातुभिर्दृप्त वेणुभिः ॥ ४५७ ॥

भा० राजीव पृथक् और शरभ यह मृगके भेदहैं इनका खुलासा मांस व
 र्गमें देखलेना ॥ [अनन्तर स्नेहवस्ति की विधि ।]

वस्ति याने इनका यह दो प्रकारकी होती है अनुवासन और निरूह जो
 तैलादिक दियेजाते हैं वोह अनुवासन नाम वस्ति है ॥ ४५२ ॥ काढ़ा दूध
 तेल इनसे जो दिया जाता है उसको निरूह कहते हैं ॥ जिस कारण वस्तिके
 द्वारा दिया जाता है इसवास्ते उसको वस्ति कहा है ॥ ४५३ ॥ वस्ति अर्थात्
 मूत्राशय ॥ उसमें अनुवासन नाम वस्ति उसको यहाँपर कहते हैं ॥ अनुवा-
 सनका भेद मात्रा वस्ति कही है ॥ ४५४ ॥ उसकी मात्रा दोपलकी और आ-
 धी भी होती है रुखा तीक्ष्ण अग्निवाला और केवल वातरोगवाला यह अनु-
 वासन वस्तिके योग्य है ॥ ४५५ ॥ कुछ रोगवाला प्रमेहवाला स्थूल तथा
 उदर रोगवाला ॥ यह आस्थापन वस्तिके योग्य नहीं है और न अनुवासन व-
 स्तिके योग्य है ॥ और जीर्णाग्निमाद तथा इनसे पीड़ित ॥ ४५६ ॥ तथा स्त-
 जन मूर्च्छा भरुचि भय श्वास कास क्षय इनसे पीड़ित येहभी आस्थापन औ-
 र अनुवासन के योग्य नहीं हैं ॥ नली सुवर्णादि धातुओंकी अथवा वांस
 की करनी चाहिये ॥ ४५७ ॥

नले दन्तैर्दिषारणा ग्रैर्मणिभिर्वा विधीयते ॥

(नेत्रं नाडी तथा चोक्तं विश्वप्रकाशे)

नेत्रं मन्थगुरो वस्त्रे तरुसूत्रे विलोचने ॥ नेत्रं बन्धे

च नाड्याञ्च नेत्रेनेतरि भेद्यच्च ॥ ४५८ ॥ राकव

षांतु पड् बंधांदायावन्मानं पड्कुलम् ॥ नतो हा

दशकं यावन्मानं स्यादष्टसन्निभम् ॥ ४५६ ॥ ततः
परं द्वादशभिर्ङ्गुलैर्नेत्रदीर्घता ॥ मुखच्छिद्रं कला-
यामं च्छिद्रं कोलास्थिसन्निभम् ॥ ४६० ॥ यथा स-
ङ्घां भवेत्नेत्रं श्लक्ष्णं गोपुच्छसन्निभम् ॥ गोपुच्छ
सन्निभं मूले स्थूलं तस्मात् क्रमात्कशम् ॥ ४६१ ॥

(क) मुखच्छिद्रादिप्रमाणं नेत्रं क्रमेण षड्वर्षी यद्वा द
शवर्षीय नदूर्द्ध्वं वर्षीय श्रेयम् ॥

आतुराङ्गुष्ठमानेन मूले स्थूलं विधीयते ॥ कनि-
ष्ठिका परीणाह मये च गुटिकामुखम् ॥ ४६१ ॥

(परिणाहो ऽत्र स्थौल्यम्)

तन्मूले कार्णिके द्वे च कार्ये भागाच्चतुर्थकात् ॥

(कार्णिका गवादिकर्णवत्) योजयेत्तत्र वस्तिञ्च
बन्धद्वयविधानतः ॥ मृगाजशूकरगवां महिष-
स्यापि वा भवेत् ॥ (वस्तिरिति शेषः)

भा० मर्कटं चान्तिं सींगं अथवा मणिं इनकी बनावे ॥ नेत्रं अर्थात् नली
उस प्रकार कहा है विश्व प्रकाशमें ॥ मथानीकी रस्सी वस्त्र वस्त्रकी ज-
ड आंख ॥ आंखोंकी पट्टी नली और पेशवाह इतने अर्थनेत्र शब्दके हैं ऐसा
विश्व प्रकाशमें कहा है ॥ ४५८ ॥ एक वरस से छ वरस तक छ अंगुल मलीका
प्रमाण कहा है ॥ उसके ऊपर चारह वरस तक आठ अंगुलकी कही है ॥ ४५६
उसके ऊपर चारह अंगुलकी लंबाई होनी चाहिये नलीकी ॥ मुखका छिद्र म
रकी चरावर या फरबरी के चरावर ॥ यथा संख्यं नेत्रं साफ न लगावडुम हो-
वे ॥

(क) जड़में मोटा उसक्रमसे पतला ॥ मुखके छिद्रादिक का प्र
माण नाड़ीके क्रमसे छ वरसवालेको चारह वरसवालेको और उसके ऊपर
वरसवालोंको जानना चाहिये ॥ गौकी अंगुठेके प्रमाणसे जड़में स्थूल कहा है

और चिटनी उंगली के बराबर मोटी आंग और मुद्ग गोली के समान होनी चाहिये ॥ ४६१ ॥ (परिणाह यहां पर मोटाई । उसके मूलमें शोकान चौथाई भाग से करने चाहिये । गायके कानके समान उसमें सरक फांसकी तरह से सूत्रकी धैली लगावे । हरिन वक्रो स्त्र वैल और भैंसकी भी होवे ॥ सूत्रकी धैली यह शेष है ॥

सूत्रकोशस्य वस्तिस्तु तदलाभे तु चर्मणः ॥ कषायरक्तः स मृदुर्वस्तिः स्निग्धो दृढो हितः ॥ ४६२ ॥ ब्रणवस्तेस्तु नेत्रं स्यात् श्लक्ष्णमष्टाङ्गुलोन्मितम् ॥ सुहृद्धिद्रं गृध्रपक्ष नलिका परिणाहि च ॥ ४६३ ॥ शरीरोपचयं वरुणं वलमारोग्यमायुषः ॥ कुरुते परिदृष्टिञ्च वस्तिः सम्यगुपासितः ॥ ४६४ ॥ दिवा शीते वसन्ते च स्नेहवस्तिः प्रदीयते ॥ ग्रीष्म वर्षा शरत्काले रात्रौ स्यादनुवासनम् ॥ ४६७ ॥ न चातिस्निग्धमशनं भोजयित्वा अनुवासयेत् ॥ मदं मूर्च्छाञ्च जनयेद्विधा स्नेहः प्रयोजितः ॥ ४६६ ॥

भा० सूत्रकी धैली उसके अभावमें चमड़े की धैली ॥ खाकी लाल मुलायम चिकनी मजबूत ऐसी वस्ति अच्छी होती है ॥ ४६२ ॥ ब्रण वस्ति की नली साफ आठ अंगुलकी होती है और सूत्रके बराबर छिद्र तथा गिद्धके परकी नली बराबर मोटाई कही है ॥ ४६३ ॥ अच्छी तरह वस्ति सेवन की हुई शरीरकी पुष्टता बल बर्ण आरोग्य और आयु इनकी करती है और तैय्यारी को भी करती है ॥ ४६४ ॥ दिन और शीतकाल तथा वसन्त में स्नेह वस्ति दी जाती है ॥ ग्रीष्म वर्षा और शरत् काल तथा रात इनमें अनुवासन वस्ति होती है ॥ ४६५ ॥ अनि स्निग्ध भोजन को खिलाकर अनुवासन न करावे ॥ दोवार स्नेह दियाइवा मद और मूर्च्छा को करता है ॥ ४६६ ॥

(द्विधा भोजन वस्तो च)

रूक्षं भुक्तवती त्यन्तं बलं वर्णाञ्च हापयेत् ॥ युक्त
स्नेहमतो जन्तुं भोजयित्वा अनुवासयेत् ॥ ४६७ ॥

(युक्तस्नेहं यथोचित स्नेहं भोज्यं भोजयित्वेत्यर्थः)

हीनमात्रा वुभौ वस्ती नानिकाय्यं करौ स्मृतौ ॥ अ-
तिमात्रौ तथा नाहं क्लृप्तातीसारं कारकौ ॥ ४६८ ॥

(उभौ वस्ती अनुवासन निरूहारय्यौ)

भा० भोजन में और वस्ती में । रूक्ष अत्यन्त भोजन करने वाले के बल और वर्णा की घटाता है ॥ उचित स्नेह वाले मनुष्य को भोजन कराके अनुवासन करावे ॥ ४६७ ॥ यथोचित स्नेह भोज्यको भोजन कराके । हीन मात्र देना वस्ति अनिकाय्यं करनेवाली नहीं कही है ॥ तथा अतिमात्र देनों वस्ति अफारा क्लम अतीसार इनकी करनेवाली है ॥ ४६८ ॥

(दोनों वस्ति अथोत् अनुवासन निरूह)

उत्तमा स्या त्यलैः षड्भिर्मध्यमा स्या त्यलैः त्रिभिः ।

पेलाद्यर्द्धेन हीना स्यादुक्तं मात्रानु वासने ॥ ४६९ ॥

शताह्वा सैन्धवाभ्याञ्च देयं स्नेहे च चूर्णकम् ॥

तन्मात्रौ त्तममध्यान्त्या षट् चतुर्द्वय माषकैः ॥ ४७० ॥

विरेचना त्प्ररात्रे गते जातबलाय च ॥ भुक्तान्ना

यानु वास्याय वस्तिर्देयोऽनुवासनः ॥ ४७१ ॥ अथा

नुवास्यं स्वम्यक्तमुषणाम्बु स्वेदितं शनैः ॥ भोज

यित्वा यथा शास्त्रं कृतञ्च द्भ्रमरांजनः ॥ ४७२ ॥

भा० छ पलकी उत्तम तीन पलकी मध्यम और एक पलकी हीन यह अनुवा-
सन में मात्रा कही है ॥ ४६९ ॥ सौंफ और सैन्धा द्रवसे स्नेहमें चूर्ण देना चाहिये
॥ उसकी मात्रा उत्तम मध्यम हीन छ चार और दो मासे से होती है ॥ ४७० ॥
विरेचन से मान विन चीतने पर बल हव को ॥ भोजन कराके अनुवासन के योग्य

को अनुवासन वस्ति देनी चाहिये ॥ ४७१ ॥ अनन्तर स्वभ्यक्त गरमजलसे स्नान किमे ऊंचे अनुवासनके योग्यको भोजनकरके शास्त्रके अनुसार दहलाके उसके अनन्तर ॥ ४७२ ॥

उत्सृष्टानिल विरामूत्रं योजयेत् स्नेह वस्तिना ॥

(उष्णाम्बु स्वेदितम् । उष्णाम्बुना स्नपितम्)

सुप्तस्य वामपार्श्वे न वामजङ्घा प्रसारिणः ॥ कुञ्चि

तापरजङ्घस्य नेत्रं स्निग्धे गुदे न्यसेत् ॥ ४७३ ॥ बद्धं

वस्ति मुखं सूत्रैर् वामहस्तेन धारयेत् ॥ पीडये दक्षि-

णैर्नैव मध्यवेगेन धीरधीः ॥ ४७४ ॥ जृम्भाकासक्त

वादींश्च वस्तिकाले न कारयेत् ॥ त्रिंशन्मात्रामितः

कालः प्रोक्तो वस्तेस्तु पीडने ॥ ४७५ ॥ ततः प्राणिहि

ने स्नेहे उत्तानो वाक् शानं भवेत् ॥ स्वजानुनः करा

वर्तं कुर्व्याच्छ्रोत्रिकया पुनः ॥ ४७६ ॥ एषामात्रा

भवेदेका सर्वत्रैवेष निश्चयः ॥

भा० वात मल मूत्र करदुके ऊंचेको स्नेह वस्ति वैद्य देवे ॥

(गरमजलसे स्नान करायिऊंचे को ।) वायं करवट लेंटे ऊंचे ॥

और बाँड़े जांघ परारिऊंचे ॥ तथा दहिनी जांघको सिकोडे ऊंचे को मुदामें

चिकनाई लगाकर नाडीको डाले ॥ ४७३ ॥ डोंग से बन्धे ऊंचे वस्ति मुखकी

वायं हाथ से पकडे ॥ धीर बुद्धिवाला मनुष्य मध्यवेगमें दहने हाथ से दवा

वे ॥ ४७४ ॥ वस्ति समयमें जंभाई खांसी छींक आदि न करावे ॥ तीस मात्रा

काल वस्तिके पीडनमें कहा है ॥ ४७५ ॥ उसके अनन्तर प्राणिहित स्नेहमें

उत्तान सौकी गिनती न करे ॥ अपने घुटने पर हाथ फेरके चुटकी वजावे

और फिरसे फेरे ॥ ४७६ ॥

यह एकगात्रा होनी है सब जगह यह निश्चय है ॥

निमिषोन्मेषां पुंसामङ्गुल्याच्छेदिकाथवा ॥

४७७ ॥ गुर्व्वं क्षरोच्चारणं वा स्यान्मात्रेयं स्मृता बुधैः

॥ प्रसारितैः सर्व्वं गात्रे यथा वीर्य्यं प्रसर्पति ॥ ४७८ ॥

(यथा वीर्य्यं स्नेहादि)

ताडये तलयेऽरेन न्त्रींस्त्रीन्वारान् शनैः शनैः ॥

स्फिजोश्चैव तथा श्रीराणीं शय्याञ्चैवोत्क्षिपेत्ततः ॥

४७९ ॥ स्फिजोश्चैनं स्वपाणिभ्यां पूर्व्ववत्ताडये द्रुधः ॥

शय्याञ्च पदतस्तस्य त्रीन्वारान्नुत्क्षिपेत्ततः ॥

४८० ॥ जाते विधाने तु ततः कुर्यान्निद्रां यथासुखम्

॥ सानिलः सपुरीषश्च स्नेहः प्रत्येति यस्य तु ॥ ४८१ ॥

उपद्रवं विना प्रीघ्नं स सम्यगनुवासितः ॥

(उपद्रवस्थाने तुषचौषाविति सुश्रुते पाठः)

भा० मनुष्योंके नेत्रोंका निमेष और उन्मेष अथवा अंगुलीसे चुटकी ॥ ४७७ ॥

वा गुरु अक्षर का उच्चारण इसको मात्रा पंडितों ने कही है ॥ सब गात्र फैला

नेसे वीर्य्यके अनुसार फैल जाता है ॥ ४७८ ॥ स्नेहादि । इसको तलुवे में

धीरे २ तीन २ बार चोट देवे ॥ और चूतड़नया कमर इनमें भी धीरे २ थपेड़

देवे उसके अनन्तर खाटकी पावोंकी तरफसे ऊंची करे ॥ ४७९ ॥ बुद्धीवा

न अपने हाथोंसे पूर्व्ववत् चूतड़ों में थपेड़ देवे ॥ उसके अनन्तर उसकी खाट

की पांयनेकी तरफसे तीनवार उठावे ॥ ४८० ॥ विधानके होनेपर उसके

अनन्तर यथासुख निद्राकरे ॥ जिसके वान और मलके सहित स्नेह वि

ना उपद्रवके प्रीघ्न नोट आता है वोह अच्छा अनुवासन किया हुआ है ॥

(उपद्रवकी जगहमें तुषचौष इस प्रकार सुश्रुतमें पाठ है)

जीरान्नमथ साबान्हे स्नेहे प्रत्यागते पुनः ॥ लघु

न्नं भोजयेत्कामं दीप्ताग्निंस्तु नरो यदि ॥ (४८२ ॥)

अनुवासिनाय दातव्यमितरेऽन्हि सुखोदकम् ॥ धा
न्यशुण्ठी कषायं वा स्नेह व्यापत्ति नाशनम् ॥ ४८३

(सुखोदक मुषणोदकं व्यापत्तिव्याधिः)

अनेन विधिना षड्वा सप्त वाष्टौ नवापि वा ॥ वि
धेया व स्तयस्तेषा मन्तेचैव निरूहणम् ॥ ४८४ ॥

दत्तस्तु प्रथमो वस्तिः स्नेहयेद् वस्तिवृद्धुरगौ ॥
सम्यग्दत्तो द्वितीयस्तु नृद्धं स्थ मनिलं जयेत् ॥

॥ ४८५ ॥ बलं वर्णाञ्च जनये तृतीयस्तु प्रयोजितः।

चतुर्थं पञ्चमो दत्तो स्नेहयेतां रसासृज्जी ॥ ४८६ ॥

षष्ठी मांसं स्नेहयति सप्तमो मेद एवच ॥ अष्टमो

नवमश्चापि मज्जानञ्च यथा क्रमम् ॥ ४८७ ॥

(यथा क्रममिति वचना दंष्ट्रमोऽस्थि स्नेहयेत्)

भा० अनन्तर फिरसे स्नेह लौट आने पर सायंकाल में जीर्ण । और हलके
अन्नको दीप्ताग्निवाला मनुष्य भोजन करे ॥ ४८२ ॥ अनुवासित को दस
रे दिन सीलगरम जल देना चाहिये । अथवा धनियाँ सेर दूधका काढ़ा दे
वे यह स्नेह व्याधिका नाशक है ॥ ४८३ ॥ सील गरम जल । रोग । इस
विधिसे छ सात आठ अथवा नौ ॥ वस्ति करनी चाहिये उनके अस्तीर में
निरूहण देना चाहिये ॥ ४८४ ॥ प्रथम दीर्घदं वस्ति पैड़ और वंक्षणा को
नर करती है ॥ अच्छे प्रकार दीर्घदं दूसरी वस्ति ऊपर की वान को जीतती
है ॥ ४८५ ॥ और तीसरी दीर्घदं बल वर्ण को करती है ॥ चौथी पाँचवीं दी
र्घदं रस और रक्त को नर करती है ॥ ४८६ ॥ छठी मांस को स्नेह करती है
। और सातवीं मेद को । अष्टम नवम क्रमके अनुसार नर करती है ॥
॥ ४८७ ॥ (यथा क्रम इस वचनसे आठवीं अस्थि को चिकनी करनी है

एवं शुक्रगता न्दोषान् द्विगुणाः साधु साधयेत् ॥

[अष्टादशा दीर्घक वस्तिः]

अष्टादशाष्ट दशकान् वस्तीनां यो निषेवते ॥ स कु-
 ज्जरबलो ऽश्वस्य ज्व तुल्या ऽमरप्रभः ॥ ४८८ ॥ रू-
 क्षाय बह्ववाताय स्नेहवस्तिं दिने दिने ॥ दद्याद्द्वैद्य
 स्तथान्येषा मग्न्या वाध भयात् व्यहात् ॥ ४८९ ॥
 स्नेहो ऽल्पमात्रो रूक्षाणां दीर्घकालमनत्ययः ॥
 (अनत्ययः । अवाधः) । तथा निरूहः स्निग्धाना
 मल्पमात्रः प्रशास्यते ॥ अथ वा यस्य तत्कालं स्ने-
 हो निर्याति केवलः ॥ ४९० ॥ तस्याप्यल्प तरोद्देयो
 न हि स्निग्धे ऽवतिष्ठते ॥

भा० इस प्रकार शुक्रगत दोषों को दुगना अच्छा साधन करे ॥ अठारह से
 अधिक वस्ति । जो छत्तीस वस्ति सेवन करता है । वोह गजके समान बल बा-
 ला और अश्वके तुल्य बल देवता के समान कान्ति युक्त होता है ॥ ४८८ ॥
 रूक्ष और बह्वतवान वाले को स्नेह वस्ति प्रतिदिन देवे ॥ तथा वैद्य औरों की
 अग्निवाधा भयसे तीसरे दिन देवे ॥ ४८९ ॥ रूक्षों को ऽल्पमात्र स्नेह बह्वत
 कालतक अदोष होता है ॥ वेसेहि स्निग्धोंको निरूह अल्पमात्र प्रशास्यते ॥
 अथवा जिसके केवल स्नेह तत्काल निकलता है ॥ ४९० ॥ उसको बह्वत घोड़ा
 देना चाहिये स्निग्धके न रहनेमें ॥ (अवतिष्ठते दत्तः स्नेह इति शेषः)

अशुद्धस्य मलोन्मिश्रः स्नेहो नैति यदा पुनः ॥ तदाङ्ग-
 सदनाद्दमाने शूलं श्वासश्च जायते ॥ ४९१ ॥ पक्वाण्ये
 गुरुत्वञ्च तत्र दद्यान्निरूहणम् ॥ तीक्ष्णं तीक्ष्णौषधै
 युक्तं फलवर्त्ति मथापि वा ॥ ४९२ ॥ यथानुलोमनो
 वायुमेलः स्नेहश्च जायते ॥ तथा विरेचनं दद्यात्ती

स्नां नस्यञ्च शस्यते ॥ ४६३ ॥ यस्य नोपद्रवं कुर्यात्
 स्नेह वर्तिरग्निः सृतः ॥ सर्वोऽल्पो व्यावृत्तो रौल्या
 दुपेक्ष्यः स विजानता ॥ ४६४ ॥ अनाथा तन्त्वहोरात्रे
 स्नेहं संशोधनैर्हरेत् ॥ स्नेह वस्तावनायानि नान्यः
 स्नेहो विधीयते ॥ ४६५ ॥ गुडूच्ये रसाड पूतीक भार्गी
 वृषकरो ह्रिषम् ॥ श्रणावरी सहचरं काकनासां पलो
 न्मिताम् ॥ ४६६ ॥ यवमाषातसी कोल कुलत्यान्
 प्रसृतोन्मितान् ॥ चतुर्द्वीणोऽम्भसः पन्था द्रोणा शो-
 षेण तेन च ॥ ४६७ ॥ पचेत्तेलाढकं सर्वैर्जीवनीर्यैः
 पलोन्मितैः ॥ अनुवासन मेतद्धि सर्व वात विकारनुत् ॥ ४६८

भा० दीयाइवा स्नेह यह शोष है । जब फिरसे अशुद्ध का मलसे मिलाइवा
 स्नेह नहीं निकलता ॥ तब शरीरमें पीडा आध्मान शूल और श्वास येह होते
 हैं ॥ ४६९ ॥ पकाप्रय में भारीपन होताहै उसमें निरूहण देवे ॥ नीदण औ
 पथों से युक्त नीदण फल वर्ति अर्थात् गुदामें वत्ती देवे अनुलोमन होवे अथ
 वा ॥ ४६२ ॥ जैसे वायु मल और स्नेह अनुलोमन न होवे ॥ जैसे नीदण विरेचन
 देवे और नासभो प्रशस्त है ॥ ४६३ ॥ जिसकी न निकली इर्बे स्नेह वस्ति
 उपद्रवको नहीं करती ॥ वो सर्वथा थोडा रूजना के कारण व्यावृत्त होता
 है इसवास्ति जाननेवाले के द्वारा उपेक्षा करने योग्य है ॥ ४६४ ॥ जो स्ने-
 ह दिन रात में भी निकले उसको संशोधन से निकाले ॥ स्नेह वस्ति के न नि-
 कलने में और स्नेह न विधान करे ॥ ४६५ ॥ गिलोय अंडी करंज भार्गी
 वांसा रामकपूर ॥ सनावर कटसरैया कोवाठोडी इनको एक- पल
 लेवे ॥ ४६६ ॥ और जब उडद अलसी ऊबेरी कुरथी इनको दो २ पल लेवे ॥
 चार द्रोण जलमें पकाकर चौथाई बाकी रहै तब उससे ॥ ४६७ ॥ सब जीवनी
 यणों को पल प्रमाण औपाधिके साथ चार सेर तेल पकावे ॥ यह अनुवासन
 सब वात रोगोंकी नाशक है ॥ ४६८ ॥

(क) पूतीकः । करञ्जः । रोहिषं इषमं सुगन्धतृण विशेषः ।

काक नासा । कौआ ठोठी । प्रसृतम् । पल द्वयम् । षोढा
 सप्त व्यापदस्तु जायते वस्ति कर्मणाः ॥ दूधितानुस
 मुदायेन तांश्चिकित्स्यात्तु सुश्रुतान् ॥ ४६६ ॥ समु-
 दयेन समुचित नेत्रादि सामग्र्या । पानाहार विहा
 राश्च परिहारश्च कृतस्त्रशः ॥ स्नेह पान समाः का-
 र्थ्या नान् कार्थ्या विचारणा ॥

भा० (क) कंज । रामकपूर । कौआ ठोठी । दोपल । वस्ति कर्म से छः सात
 दोष होते हैं ॥ समुदाय करके दूधिन उनकी सुश्रुत से चिकित्सा करनी चा
 हिये ॥ ४६६ ॥ समुचित नाड़ी आदि सामग्री से । पान आहार विहार औ
 र परिहार यह सम्पूर्ण स्नेह पान के समान करना चाहिये इसमें कोई विचा
 रन करना चाहिये ॥

[अथ निरुहवस्ति विधिः।]

निरुह वस्ति बहुधा भिद्यत कारणान्तरैः ॥ नैरेव
 तस्य नामानि धूनानि मुनिपुङ्गवैः ॥ ५०० ॥

(कारणान्तरैः । समवायि कारणभेदैः)

निरुहस्या परन्नाम प्रोक्त मास्थापनं बुधैः ॥ स्व-
 स्थाने स्थापना दोष धातूनां स्थापनं मतम् ॥ ५०१ ॥

निरुहस्य प्रमाणं तु प्रस्थ पादोत्तरं परम् ॥ मध्यमं
 प्रस्थ मुद्दिष्टं हीनञ्च कुड्वास्त्रयः ॥ ५०२ ॥

(परं श्रेष्ठम्) अतिस्निग्धोऽक्लिष्टदोषः क्षतः क्षीणः
 कृशास्तथा ॥ (अक्लिष्टदोषः) अदत्तोत्तु क्ले-

शन इतियावत् क्षतोरष्कः उरः क्षतवान् ॥

आध्मान छर्दि हिक्कार्शः कास एवास प्रपीडितः।

भा० अनन्तर निरूहवस्त्रकी विधि । निरूहवस्त्रकारणान्तरोंसे अनेक प्रकारकी है ॥ उन्हीं कारणोंसे उनके नाम मुनियोंने कियेहैं ॥ ५०० ॥ सम वायिकारणोंभेदसे । बुद्धिवातोंने निरूहका नाम आस्थापन कहाहै ॥ दोष धातुवाका अपने स्थानमें स्थापन होनेसे स्थापन कहाहै ॥ ५०१ ॥ निरूहका परम प्रमाण सवास्त्र कहाहै ॥ और प्रथमसेरंभर कहाहै ॥ तथा हीनतीनपाव कहाहै ॥ ५०२ ॥ अतिस्निग्ध और अक्षिप्त दोष क्षत क्षीण तथा कृश ॥ नदियाडवा उत्क्लेशन । उर क्षतवाला । आध्मान वमन हिचकी चवासीर कास रवाससे पीड़ित ।

गुद शोफातीसारतो विसृञ्जी कुष्ठ संयुतः ॥ ५०३ ॥

गर्भिणी मधुमेही च नास्थाप्यश्च जलोदरी ॥ वान

व्याधावुदावर्ते वाधासृग्विष मज्वरे ॥ ५०४ ॥ मूत्र

च्छी तृणोदरा नाह मूत्रकृच्छ्रा प्रमरीषु च ॥ वृ

द्धासृग्दरमन्दाग्नि प्रमेहेषु निरूहणाम् ॥ ५०५ ॥

शूलैः स्रपित्ते हृद्रोगे योजयेद्विधिवद् बुधः ॥ उत्सृ

ष्टानिलविणामूत्रं स्निग्धं स्विन्नमभोजनम् ॥ ५०६

मध्यान्हैर्गृहमध्ये च यथायोग्यं निरूहयेत् ॥

भा० और गुद शोफ अतीसार इनसे पीड़ित विसृञ्जी कुष्ठ से युक्त ॥ ५०३ ॥ गर्भिणी मधुमेहवाला और जलोदरी येह आस्थापन योग्य नहीं है ॥ और वानरोगमें उदावर्तेमें चद रक्त विषमज्वर इनमें ॥ ५०४ ॥ मूत्रच्छी तृणा उदर आनाह मूत्रकृच्छ्र पथरी इनमें भी ॥ अंडहृदि रक्त प्रदर मन्दाग्नि प्रमेह इनमें निरूहण देवे ॥ ५०५ ॥ शूल अस्त्र पित्त हृद्रोग । इनमें भी विधि के अनुसार योजना करे ॥ अधोवात मलमूत्र करचुके डवे स्निग्ध और स्विन्न तथा भोजन न कियेकी ॥ ५०६ ॥ मध्यान्ह में घरके बीच यथायोग्य निरूहण करे ॥

(स्निग्धम् । स्वम्यक्तम् । स्विन्नम् ।

उष्णाम्बु स्रपितम्) स्निहवस्त्रविधानेन बुधः ॥

कुर्यान्निरुहणम् ॥ जाते निरुहे च ततो भवेदुत्कट
कासनः ॥ ५०७ ॥ तिष्ठेन्मुहूर्तमात्रन्तु निरुहा गमनं
च्छया ॥ अत्र मुहूर्तमात्रशब्देनैतदपि बोधितम्
निरुहप्रत्यागमनकालो मुहूर्तमात्रः ।

अनायातं मुहूर्तं तु निरुहं शोधनैर्हरेत् ॥ निरुहै
रेव मनिमान् क्षारमूत्रास्तसैन्धवैः ॥ ५०८ ॥

भा० नेल लगाया हुआ । गरम जलसे स्नान किया हुआ । पंडित स्नेह
वस्त्रिकी विधिसे निरुहण करे ॥ निरुह होने पर उकड़ होके ॥ ५०७ ॥
दो घड़ी रहने निरुहके आनेकी इच्छासे । यहां पर मुहूर्तमात्रशब्द
से यहभी अनायात है । निरुहके लौट आनेका काल मुहूर्तमात्र है ॥
दो घड़ीमें निरुह न आवे तो शोधन से निकाले । बुद्धिवान् क्षार मू
त्र अस्तसैन्धव इनसे युक्त निरुहसे ही शोधन करे ॥ ५०८ ॥

यस्य क्रमेण गच्छन्ति विद् पित्त कफ वायवः ॥

लाघवं चोपजायेत सुनिरुहं तमादिशेत् ॥ ५०९ ॥

यस्य स्याद् वस्ति बद्धा ल्प वेगोहीनं मलानिलः ॥

मूर्च्छार्ति जाड्या रुचिमान् दुर्निरुहं तमादिशेत् ॥

॥ ५१० ॥ विविक्तता मनस्कुष्टिः स्निग्धता व्याधि निय-

हः । आस्थापने स्नेहवस्त्योः सम्यग्दाने तु लक्षणम् ॥

५११ ॥ (विविक्तता । दन्तौषधनिःसरणम्)

अनेन त्रिधिना युज्यान्निरुहं वस्तिदानवित् ॥

भा० जिसके क्रमसे मल पित्त कफ वायु निकलते हैं । और हलका प
न होता है उसको निरुह कहते हैं ॥ ५०९ ॥ बद्ध अथवा अल्प वेगही
ना है ॥ और हीन मूलवान् होता है । तथा मूर्च्छा पीडा जाड्य अरुचि
युक्त उसको दुर्निरुह जाने ॥ ५१० ॥ अलग होने मनकी प्रसन्नता

स्निग्धता व्याधि निग्रह ॥ आस्थापन और स्नेहवस्ति के अच्छे देनेमें यह लक्षण हैं ॥ ५११ ॥ दिये ज्वे औषधका निकलना । वस्तिदान की जाननेवाला इस विधिसे निरुहको योजना करे ॥

द्वितीयं वा तृतीयं वा चतुर्थं वा यथोचिनम् ॥ ५१२ ॥

स स्निह एकः पवने पित्ते द्वौ पयसा सह ॥ कषाय क

ड मूत्राद्या कफे तूष्णा स्त्रयो हिताः ॥ ५१३ ॥ पित्त

श्लेष्मा निलाविष्टं क्षीर यूष रसैः क्रमात् ॥ निरुहं

भोजयित्वा च ततस्तमनु वासयेत् ॥ ५१४ ॥ सुकुमा

रस्य वृद्धस्य बालस्य च मृदु हितः ॥ वस्ति स्तीक्ष्णाः

प्रयुक्तस्तु तेषां हन्याद्बलायुषी ॥ ५१५ ॥ दद्यादुत्क्ले

शनं पूर्वं मध्यं दोषहरन्ततः ॥ पश्चात्सं शमनीय-

ञ्च दद्यात्सिं विचक्षणाः ॥ ५१६ ॥ एसाडबीजं म-

धुकं पिप्यली सैन्धवं वचा ॥ हवुषा फल कल्कश्च

वस्तिरुत्क्लेशानः स्मृतः ॥ ५१७ ॥ इत्युत्क्लेशानवस्तिः ॥

भा० दूसरी तीसरी अथवा चौथी यथोचिन योजना करे ॥ ५१२ ॥ वोह स्नेह वातमें एक पित्तमें दो पप्रके साथ ॥ और कफमें उष्ण कषाय कडू मूत्र भादि से तीन हितहैं ॥ ५१३ ॥ पित्त कफवात इनकरके आविष्ट को दूध जूस रस इन से क्लमके साथ ॥ भोजन करा कर निरुह देवे उसके अनन्तर अनुवासन वस्ति देवे ॥ ५१४ ॥ सुकुमार बालक वृद्ध इनको मृदु वस्ति हितहैं ॥ तीक्ष्ण वस्ति देने से उनका बल आयु नाश होता है ॥ ५१५ ॥ पहिले उत्क्लेशन देवे । मध्यमें दो पहर उसके ॥ पीछे संशमनीय देवे वस्ति चतुर ॥ ५१६ ॥ अंडीकी जड़ मज्जवा पीपल सेन्धा वच ॥ हाउ बेरके फलका कल्क यह । उत्क्लेशन वस्ति कही है ॥ ५१७ ॥ इति उत्क्लेशानवस्तिः ॥

शताह्वा मधुकं विल्वं कौदजं फल मेवच ॥ स काञ्चि

कः सगोमूत्रो वस्तिदोषहरः स्मृतः ॥ ५१७ ॥

[इति दोषहर वस्तिः]

प्रियङ्गुर्मधुकं मुस्ता तथैवच रसाञ्जनम् ॥ सक्षीरः

शास्येत वस्तिदोषारणां शमनः स्मृतः ॥ ५१८ ॥

[इति शमन वस्तिः]

विफला क्वाथं गोमूत्रं दौद्रक्षीरं समायुताः ॥ ऊषका-

दि प्रतीवापै वस्तयोः लेखनाः स्मृताः ॥ ५२० ॥

(ऊषकादिं प्रतीवापाः । ऊषकादिगणा विशेष चूर्णं प्रक्षेपाः) [इति लेखनवस्तयः]

वृंहणं द्रव्यनिष्काथैः कल्कैर्मधुरैर्युताः ॥ सर्पिर्मांस

रसापेता वस्तयो वृंहणाः स्मृताः ॥ ५२१ ॥ इति वृंहणं व-

स्तयः] वदथ्यैरावती शैलु शाल्मली पुष्यजाङ्गुः ॥

भा० सोफं मज्जा बेल इन्द्रजव ॥ कांजी और गोमूत्र के माध यह वस्ति दोष हर कही है ॥ ५१७ ॥ (इति दोषहर वस्ति) ॥ प्रियंगु मज्जा नागर मोथा वैसे ही रसोत ॥ दूध के सहित वस्ति प्रशस्त है । वोह दोषोंकी शमन कही है ॥ ५१८ (इति शमन वस्ति) ॥

विफला का क्वाथ गोमूत्र मधु जवारवार इनसे युक्त ऊषकादि प्रतीवाप से लेखन वस्ति कही है ॥ ५२० ॥ ऊषकादि गणों विशेषके चूर्णोंको डालना ॥ (इति लेखन वस्ति) ॥

वृंहण द्रव्यके काढ़े में मधु करके कल्क से युक्त ॥ और घृत मांस रस से युक्त वृंहण वस्ति कही है ॥ ५२१ ॥ (इति वृंहण वस्ति ।)

वैर वदपत्री लिसोढ़ा सेमल के फलोंके अङ्गुर ॥

(ऐरावती । नारङ्गी । शैलुः । बङ्ग आर ।)

क्षीर सिद्धाः क्षौद्रयुक्ता नान्ना पिच्छिल संज्ञिताः ॥

अजोरम्ब्रेण रुधिरैर्युक्ता देया विचक्षणेः ॥ ५२२ ॥

(अजम्बुजागः । उरन्ध्रमेषः । सणः कृष्णामृगः ।)

मात्रा पिच्छिल वस्तीनां यलैर्द्वादशभिर्मता ॥

(इति पिच्छिलवस्त्वयः ।) दत्त्वादी सैन्धुवस्याह मधुनः

प्रसृति द्वयम् ॥ ५२३ ॥

भा० नारङ्गी । वहवार । दूधसे सिद्ध किये मधुके युक्त येह पिच्छिल नाम वस्ति है ॥ बकरा मेढा काला हिरन इनके रुधिर से युक्त चतुर के द्वारा देने चाहिये ॥ ५२२ ॥ (बकरा मेढा काला हिरन । पिच्छिल वस्ति की मात्रा बारह पल कही है ॥ (इति पिच्छिल वस्ति)) ॥ दो पल मधु और एक नीला मधु पहिले देकर ॥ ५२३ ॥

विनिर्मथ्य ततो दद्यात् स्नेहस्य प्रसृति त्रयम् ॥ सकी

भूने ततः स्नेहे कल्कस्य प्रसृति द्विपेतम् ॥ ५२४ ॥

संमूर्च्छिते कषायन्तु चतुः प्रसृति सम्मितम् ॥ गृ

ह्नीयाच्च तदा वाय मन्ते द्विप्रसृतोन्मितम् ॥ ५२५ ॥

क्षिप्त्या विमथ्य दद्याच्च निरुहं कुशलो भिवक् ॥

एवं प्रकल्पितो वस्तिर्द्वादश प्रसृति भवेत् ॥ ५२६ ॥

इति चतुष्पलं क्षौद्रं दद्यात् स्नेहस्य षट्पलम् ॥ पि

ते चतुष्पलं क्षौद्रं स्नेहं दद्यात्पलत्रयम् ॥ ५२७ ॥

कफे तु षट्पलं क्षौद्रं द्विपेत स्नेहं चतुष्पलम् ॥

भा० मधुकर उसके अनन्तर स्नेहको छ पल देवे ॥ उसके अनन्तर स्नेह के मिल जाने पर दो पल कल्क डाले ॥ ५२४ ॥ संमूर्च्छित होने पर कषाय आठ पल प्रमाण लेवे ॥ अथ वाकके अन्तमें इसको चार पल प्रमाण ॥ ५२५ ॥ डालकर और मधुके कुणल वैद्य निरुह को देवे ॥ इस प्रकार कल्पना की हुई वस्ति बारह प्रसृति होती है ॥ ५२६ ॥ आतमें चार पल मधु और स्नेह छ पल देवे ॥ तथा पित्तमें चार पल मधु और स्नेह तीन पल देवे ।

॥ ५२७ ॥ कफ में छे पल मधुस्नेह चार पल डाले ॥ इति निरुह वस्तिकी मात्रा

एराड काथ तुल्यांशं मधु तैलं पलाष्टकम् ॥ घृतपुष्पा

पलाद्धेन सैन्धवाद्धेन संयुतम् ॥ ५२८ ॥ मधु तैलक

संज्ञोऽयं वस्तिर्दारु विलोडितः ॥ मेढो गुल्म कृमि

स्नीह मलोदावर्त्त नाशानः ॥ ५२९ ॥ बलवर्ण करश्चै

व वृष्यो दीपन वृंहणः ॥ [मधु तैलक वस्तिः।]

क्षौद्रान्य क्षीरं तैलानां प्रसृतं प्रसृतं भवेत् ॥ हवुषा

सैन्धवा क्षांशी वस्तिः स्याद् यापनः परः ॥ ५३० ॥

[इति पाचन सारकः यापन वस्तिः]

भा० अंडी के काढ़ेके समान मधु तेल आठ पल ॥ सोंफ आधा पल सैन्धव एक

तोला इनसे युक्त ॥ ५२८ ॥ मधु तैलक नाम यह वस्ति लकड़ीसे बिलोड्ड

ई ॥ मेढ वायु गोला कृमि पिलही मल उदावर्त्त इनकी नाशक है ॥ ५२९ ॥

और बल वर्ण को करनेवाला वृष्य दीपन उष्टहे ॥ मधु तैलक वस्ति ॥

मधु घृत दूध तेल यह दो दो पल होते ॥ हाज बेर सैन्धव यह एक एक तोला

यह पाचन वस्ति है ॥ ५३० ॥ [इति पाचन सारक यापन वस्ति]

एराड मूल निष्काथो मधु तैलं स सैन्धवम् ॥ एष

युक्त रयो वस्तिः सबचा पिप्पली फलः ॥ ५३१ ॥

[युक्त रयो वस्तिः।] पञ्चमूलस्य निष्काथे स्तैलं मा

गधिका मधु ॥ ससैन्धवः सयष्टवाह्वः सिद्ध वस्ति

रिति स्मृतः ॥ ५३२ ॥ ॥ इति सिद्ध वस्तिः।]

स्नानमुष्णो दकैः कुर्याद्दिवा स्वप्न मजीरीताम् ॥

वर्जयेत्परं सर्वं माचरेत् स्नेह वस्तिवत् ॥ ५३३ ॥

भा० अंडीकी जड़का काढ़ा मधु नैल और सैन्धवके सहिन ॥ और बच पीपल
के सहिन येह युक्तरयो वस्ति है ॥ ५३१ ॥ इनि युक्तरयो वस्ति ॥]
पंच मूलके काढ़ेके साथ नैल पीपल मधु ॥ सैन्धव के सहिन और मुलहदी के
सहिन सिद्ध वस्ति बूस प्रकार कही है ॥ ५३२ ॥ सिद्धवस्ति ॥
गरम जलसे स्नान करे दिनमें सोता अजीर्णीता इनको त्याग देवे बाकी सब स्नेह
वस्ति के समान करे ॥ ५३३ ॥

[अथोत्तर वस्ति विधिः] अनः परम्यवक्ष्यामि वस्ति मुत्त
र संज्ञितम् ॥ निरुहा दुत्तरो यस्मा तस्मा दुत्तर संज्ञकः
॥ ५३४ ॥ द्वादशाङ्गुलकं नेत्रं मध्येच कृत करिणिकम्
॥ मालती पुष्प वृन्ताभं च्छिद्रं सर्षप निर्गमम् ॥ ५३५ ॥
पञ्च विंशति वर्षाणां मधो मात्रा द्विकार्षिकी ॥ न
दूर्द्ध म्यल मात्रा च स्नेहस्योक्ता भिषग्वरैः ॥ ५३६ ॥
अथ स्थापन शुद्धस्य वृत्तस्य स्नान भोजनैः ॥ स्थित
स्य जानु मात्रे च विष्टे स्निग्ध प्रालाकया ॥ ५३७ ॥
स्निग्धया मेढू मार्गे तु ततो नेत्रं त्रियोजयेत् ॥ शनैः
शनैर्घृताभ्यक्तं मेढू रन्ध्राङ्गुलानि षट् ॥ ५३८ ॥
ततोऽव पीडये द्वस्तिं शनैर्नेत्रं विनिर्हरेत् ॥

भा० अनन्तर उत्तर वस्ति की विधि ॥ इसके उपरांत उत्तर संज्ञित वस्ति की
कहता हूं ॥ जिस कारण निरुद्ध से उत्तर कही है ॥ उस कारण उत्तर संज्ञ
क येह वस्ति है ॥ ५३४ ॥ बारह अंगुल की नली के बीच में कान की डूर्द्ध चमि
ली के फूलके डंठल के समान छिद्र सरसों निकलने के माफिक हीनी
चाहिये ॥ ५३५ ॥ पच्चीस वरसके नीचे दो तोलेकी मात्रा है ॥ उसके
ऊपर पलमर मात्रा स्नेहकी कही है ॥ ५३६ ॥ अनन्तर आस्थापन से शु
द्ध और स्नान भोजन से वृत्त ॥ और घुटना ठेक कर बैठे की स्निग्ध ॥

॥ ५३७ ॥ लिंग मार्गमें चिकनी सुलाड़ी करके उसके अनन्तर नली लगा देवे ॥
धीरे २ घी लगाकर लिंग छिद्रमें छ अङ्गुल करे ॥ ५३८ ॥ उसके अनन्तर
वस्ति को दबावे और धीरे २ नली को निकाल लेवे ॥

ततः प्रत्यागते स्नेह वस्ति क्रमोहितः ॥ ५३९ ॥

स्त्रीणां कनिष्ठिका स्थूल नेत्रं कुर्यादशाङ्गुलम् ॥

सूक्ष्मप्रवेशायोज्यञ्च योन्यन्तश्चतुर्ङ्गुलम् ॥ ५४० ॥

द्व्यङ्गुलं मूत्रमार्गं च सूक्ष्मं नेत्रं वियोजयेत् ॥ मूत्र

कच्छ विकारेषु बालानां त्वेकमङ्गुलम् ॥ ५४१ ॥

शनैः निष्कम्पमाधेयं सूक्ष्मं नेत्रं विचक्षणैः ॥ माल-

नी युष्यन्तामनेत्रमित्युदितं पुनः ॥ ५४२ ॥

भा० उसके अनन्तर स्नेह लौट आनेपर स्नेह वस्ति क्रमहित है ॥ ५३९ ॥
स्त्रीयों को चिटली उंगलियों के समान मोटी और दस अंगुल लम्बी नली करे
॥ और सूक्ष्म जाने माफिक छिद्र करे तथा उस योनि के भीतर चार अंगुल करे
॥ ५४० ॥ सूक्ष्म नली दो अंगुल मूत्रमार्ग में योजना करे ॥ और मूत्र कच्छ वि-
कारमें बालकों को एक अंगुल ॥ ५४१ ॥ धीरे न कांपता हुआ सूक्ष्म नली को
चतुर भीतर करे ॥ चमेली के फूल के डंठल की समान नली इस प्रकार कहा है
५४२ ॥

सूक्ष्म शब्दाभिधाने बालानां तुतोऽपि नेत्रस्य

सूक्ष्मता बोधनार्थं ॥ योनि मार्गेषु नारीणां स्नेह मात्रा द्वि

पालिकी ॥ मूत्र मार्गं पलोन्मानं बालानां च द्विकार्षिकी

॥ ५४३ ॥ उत्ताना ये स्त्रियै दद्याद्दृष्टं जानु वै विचक्षणाः

॥ अपत्या गच्छति भिषग्वस्ता बुतर संजिते ॥ ५४४ ॥

भूयो वस्ति विदध्याच्च संयुक्तं शोधनैर्गुणैः ॥ फल व-

र्ति विदध्याद्वा योनिगर्गि दृढाम्भिवक् ॥ ५४५ ॥

सूत्रे विनिर्दिनांस्त्रिधा शोधन द्रव्य संयुनाम् ॥ दह्य-
माने तथा वस्तौ दद्याद्दस्ति विशारदः ॥ ५४६ ॥ क्षीर
वृक्ष कषायैश्च पयसा शीतलेन वा ॥

(दह्यमाने वस्तौ) अस्मिन् स्थाने वस्ति र्दत्तस्तस्मिन्
दह्यमाने ॥] वस्ति शुक्ररुजः पुसां स्त्रीणां मार्तव
जा रुजः ॥ ५४७ ॥ 'हन्यादुत्तर वस्तिस्तु नोचिनो मेह
नात् क्वचित् ॥ सम्यग्दत्तस्य लिङ्गानि व्यापदः क्रम
मेव च ॥ ५४८ ॥ वस्ते रुत्तर संज्ञस्य समानः स्नेह

वस्तिना ॥

भा० सूत्रम प्रायः के कहने से बालकों की नली उमसे भी सूक्ष्म होनी चाहिये
। स्त्रियों को योनि मार्ग में दोपलकी स्नेह मात्रा होनी चाहिये ॥ और मूत्र
मार्गमें पलभर तथा बालकों को दो तोलेकी होनी चाहिये ॥ ५४३ ॥ चतुर
ऊपर घुटने की इर्द्ध उचान स्त्रीको पिचकारी देवे ॥ उत्तर वस्ति देने पर ली
टकर न आवेती वैद्य ॥ फिर से ॥ ५४४ ॥ शोधन गुरों से युक्त वस्तिको देवे
॥ अथवा योनि मार्ग में दृढफल वस्ति अर्थात् वस्तिको देवे ॥ ५४५ ॥ सूतसे
वनाई इर्द्धचिकनी शोधन द्रव्यसे युक्त देवे ॥ तथा पेड़ पर जलन होनेमें च-
तुर ॥ ५४६ ॥ क्षीर वृक्षोंके काढ़से अथवा शीतल जलसे वस्ति देवे ॥ जहाँ
वस्ति दीहै वहाँ पर जलन होनेमें । पुरुषोंकी वस्ति शुक्रकी और स्त्रियों की
आर्तवकी पीडा ॥ ५४७ ॥ उत्तर वस्ति नाश करनी है येत मूत्र मार्गसे और
कहीं पर योग्य नहीं है ॥ अच्छी तरह विये लंबेके लक्षण दोपका क्रमभी
॥ ५४८ ॥ स्नेह वस्ति के समान उत्तर वस्ति कही है ॥

[अथ फलवर्तिविधिः ।] घृताभ्यक्ते गुदे क्षिप्त्वा म्ल-
क्षणां स्वाङ्गुष्ठ सन्निभा ॥ मलप्रवर्तिनी वर्तिः फल
वर्तिश्च सा स्मृता ॥ २ ॥

[अधनस्य ग्रहणविधिः]

नस्यं तत्कथ्यते धीरैर्नासा ग्राह्यं यदौषधम् ॥ नाचनं
नस्यं कर्मेति तस्य नाम द्वयं मतम् ॥ २ ॥

(नस्यं कर्म नासिकायां कर्म चिकित्सा येन तत् नस्यं कर्म)

नस्यं भेदो द्विधा प्रोक्तो रेचनं स्नेहनं तथा ॥ रेचनं क
र्षणं प्रोक्तं स्नेहनं वृंहणं मतम् ॥ ३ ॥ कफ पित्तानि
लघ्वंसी पूर्व मध्या पराह्ण के ॥ दिनस्य गृह्यते नस्यं
रात्रा चप्युत्कटे गदे ॥ ४ ॥

(दिनस्य । त्रिधा विभक्तस्य । पूर्व भागादौ ।)

भा० अनन्तर फलवर्ति अर्थात् बत्ती देना उसकी विधि ॥ अपने अंगुठे के
समान मोटी चिकनी बत्ती घृत लगाई हुई गुदा में डाली हुई और मलको
निकालने वालीकी फलवर्ति कहा है ॥ १ ॥ [अनन्तर नास लेनेकी विधि ॥
जो औषध नाकसे ग्रहण करने योग्य है उसको धीर नास कहते हैं ॥ नाच
न और नस्य कर्म यह उसके दो नाम कहे हैं ॥ २ ॥

नाककी चिकित्सा । जिसे बौहनस्य कर्म है ॥ नासका भेद दो प्रकार कहा
है रेचन तथा स्नेहन ॥ रेचन घबाना कहा है और स्नेहन बढ़ाना है ॥ ३ ॥
कफ पित्त वात का नाशक क्रमसे दिनके पूर्वान्ह मध्यान्ह और अपरान्ह ॥
में नास लिया जाता है और उत्कट रोगमें रातको भी लिया जाता है ॥ ४ ॥

(तीन प्रकार विभाग किये दिनके पूर्व भागादि में ।)

नस्यन्त्यजेद्भोजनान्ते दुर्दिने चोपतर्पितः ॥ तथा नव
प्रतिश्यायी गर्भिणी ज्वर दूषितः ॥ अजीर्णी दन्तवस्ति
श्च पीतस्नेहो दकासवः ॥ ५ ॥ क्रुद्धः शोकाभिभू-
तश्च तृषार्त्तो वृद्ध बालकौ ॥ वेगावरोधी श्रान्तश्च
स्नातु कामश्च वर्जयेत् ॥ ६ ॥ (नस्यं भिनिशेदः)

भा० भोजनान्तमें दुर्दिनेमें नास नलेवे । और नर्पित किया इवा । नये तु नाम ॥

ना गर्भिणी ज्वरसे दूषित ॥ अजीर्णावाला दीहई वस्तिवाला और स्नेह उद-
क आसव पिया हुआ ॥ कुछ शोक करके अभिभूत न्यासे पीड़ित बच्चा वा-
लक ॥ वेगोंको रोकनेवाला श्रान्त ज्ञान काम येहभी नाम त्याग देवे ॥ ६ ॥
(नासु येह श्रेय है)

अष्ट वर्षस्य बालस्य नस्य क.

र्म संमाचरेत् ॥ अशीति वर्षा दूर्द्धञ्च नावनं नैव दीयं
ते ॥ ७ ॥ अथ वैरेचनं नस्यं ग्राह्यं नैले सु तीक्ष्णकैः ॥
तीक्ष्णां भेषज सिद्धैर्वा स्नेहैः काथैः रसैस्तथा ॥ ८ ॥
नासिकां रन्ध्रयोरष्टौ षट् चत्वारश्च विन्दवः ॥ प्रत्ये-
कं रेचनं योग्यं मुख्यं मध्याल्प मात्रया ॥ ९ ॥ नस्य
कर्माणि दातव्यं शारीकं तीक्ष्णामौषधम् ॥ हिङ्गु-
स्था दध मात्रान्तु माषिकं सैन्धवं मतम् ॥ १० ॥ ह्री-
रञ्चै वाष्ट पारां स्या त्यानीयञ्च त्रिकार्षिकम् ॥
कार्षिकं मधुरद्रव्यं नस्य कर्माणि योजयेत् ॥ ११ ॥
अवपीडः प्रथमनं द्वौ भेदावपरौ स्मृतौ ॥

भा० आठ वरसके बालक को नस्य कर्म करावे ॥ अस्सी वरसके ऊपर नास न
ही दिया जाता ॥ ७ ॥ अनन्तर विरेचनका नास नीला नैलेसे लेना चाहिये
॥ अथवा नीला औषधसे सिद्ध स्नेह छाया तथा रस इनसे भी ॥ ८ ॥ दोनो
मध्यमों में आठ छ और चार दूरे ॥ हर एक रेचन योग्यको उत्तम मध्य अ-
ल्प मात्रासे लेना चाहिये ॥ ९ ॥ नस्य कर्म में तीक्ष्ण औषध चार मासे देना
चाहिये ॥ हीङ्गु जव बराबर और एक मासे सैन्धव कहा है ॥ १० ॥ दूध व
तीस मासे और पानी तीन नैले ॥ तथा एक नीला मधुर द्रव्य नस्य कर्म में
योजना करे ॥ ११ ॥ अवपीड और प्रथमन दो भेद और कहे हैं ॥

शिरो विरेचन स्यार्थं नो तु देयो यथा यथम् ॥ १२ ॥

कल्की कृता दौषघ्नः पीडितो निःसृतो रसः ॥ सोऽ
 वपीडः समुद्दिष्ट स्तीक्ष्णद्रव्यं समुद्भवः ॥ १३ ॥ षडङ्गु-
 ला द्विवक्त्राया नाडी चूर्णान्तया धमेत् ॥ तीक्ष्णं कोल-
 मितं वक्त्रवातैः प्रथमं हितम् ॥ १४ ॥ ऊर्द्धं जत्रु गते
 रोगे कफजे स्वर संक्षये ॥ अरोचके प्रतिश्याये शिरः
 शूले च पीतसे ॥ १५ ॥ शोफाषस्मार कुष्ठेषु नस्यं वै
 रेचनं हितम् ॥ भीरुस्त्री कृशा बालानां नस्यं स्त्रेहेन
 प्रास्यते ॥ १६ ॥ गलरोगे सन्निपाते निद्रायां विषमज्व-
 रे ॥ मनो विकारे कृमिषु यूज्यते चाव पीडितम् ॥
 अत्यन्तोत्कट दौषेषु विसंक्षेषु च हीयते ॥ चूर्णं प्रथ-
 मं धीरैः स्तद्धि तीक्ष्णतरं यतः ॥ १७ ॥ [नस्यं वैरेच-
 नं यथा] नस्यं स्याद्गुडं शुगंठीभ्यां पिप्पली सैन्धवेन वा

भा० उनको शिरो विरेचन के अर्थ देने चाहिये ॥ १३ ॥ कल्क क्रिये इके औष-
 ध के निचोड़नेसे जो निकला हुआ रस है ॥ तीक्ष्ण द्रव्य से निकला वोह अव-
 पीड कहा है ॥ १३ ॥ छ अंगुल की दो मुखवाली जो नन्नी है उसे चूर्ण डालक
 र फूके ॥ वोह चूर्णकोल प्रमाण मुखके वातसे धोंकना हित होता है ॥ १४ ॥
 जत्रुके कपर के रोग में कफके रोग में स्वर क्षय में ॥ अरुजि में जुकाम में शिर
 के शूलमें पीनस रोगमें ॥ १५ ॥ सूजन मिरगी कोठ इनमें वैरेचन नस्य हि-
 त है ॥ भीरु कृशा बालक इनको नास चिकनाई के साथ प्रशस्त है ॥ १६ ॥
 मलरोग में तान्नपातमें निद्रामें विषमज्वर में ॥ चित्त विकार में कृमिमें अ-
 व पीडक नस्य अच्छा है ॥ १७ ॥ विष संज्ञ अत्यन्त उत्कट दौष में भी दिया
 जाता है ॥ धीर के द्वारा फूकना जो है वोह सूख तीक्ष्ण का है ॥ १७ ॥
 वैरेचन नास जैसे । गुड सोंठ नास है अथवा पीपल सैन्धव ॥

॥ जलपिष्टे न करणीक्ष नासामूर्द्ध भवा गदाः ॥ १८ ॥

मन्याहनु गलाद्भूता नश्यन्ति भुजपृष्ठजाः ॥ मधुक
सार कृषाभ्यां वच मरिच सैन्धवैः ॥ २० ॥ नस्यं को
ष्यान्मसा पिष्टं दद्यात् संज्ञा प्रबोधनम् ॥ अपस्मा
रे तथोन्मादे सन्निपाते ऽपतन्त्रके ॥ २१ ॥ सैन्धवं
श्वेत मरिचं सर्षपा कुष्ठ मेवच ॥ बस्तमूत्रेण संपि-
ष्टं नस्यन्तन्द्रा निवारणाम् ॥ २२ ॥

(श्वेतमरिचं सहिजनकाबीजं)

रोहितस्य च पित्तेन भावितं मरिचं वचा ॥ कटफलं
चेति तच्चूर्णं देयं प्रथमं बुधैः ॥ २३ ॥ अथ वृंहण
नस्यस्य कल्पना कथ्यते ऽधुना ॥ मर्षाश्च प्रतिम-
र्षाश्च द्वौ भेदौ स्नेहने मतौ ॥ २४ ॥

भा० इनको जलसे पीसके नास लेनेसे कान आंख नाक इनके ऊर्ध्व भव रोग ॥ २६ ॥ और मन्याहनु गला इनमें डूबे तथा भुजा और पीठ के रोग नाश होते हैं ॥ मडूके का साल पीपल और वच मरिच सैन्धव इनको ॥ २० ॥ शील गरम जलसे पीसकर नास देवे यह संज्ञा प्रबोधन है ॥ अपस्मार तथा उन्माद सन्निपात अपतन्त्रक इनमें ॥ २१ ॥ सैन्धव सफेद मरिच सरसों कूट ॥ इनको बकरी के मूत्रसे पीसकर नास नन्दा का दूर करने वाला है ॥ २२ ॥ सहिजन का बीज । रोज मछली के पित्तेसे भावना दिया डूबा मरिच वच । कायफल इनके चूर्णको बुद्धिवान् के द्वारा प्रथमन देना चाहिये ॥ २३ ॥ अनन्तर वृंहण नासकी कल्पना कहता हूँ ॥ स्नेहनमें मर्षा और प्रतिमर्षा दो भेद कहे हैं ॥ २४ ॥

मर्षास्य नर्परी मात्रा मुख्या या

सौःस्पृता ऽष्टभिः ॥ मध्यमा तु चतुःशारौ हीना षण्णा
मिता मता ॥ २५ ॥ एकैकास्मिं स्तु मात्रेयं देया नासा
पुटे बुधैः ॥ मर्षास्य द्वि त्रिवलं वा धीद्व्यशेषवला-

बलम् ॥ २६ ॥ एकान्तरं द्यन्तरं वा नस्यं दद्याद्विचक्ष
 णः ॥ (एकान्तरंम् एकं दिनमन्तरं नस्य शून्यं यत्र
 तदेकान्तरम् ॥) त्यहं पञ्चाहमथवा सप्ताहं वा
 सुयन्त्रितः ॥ (क) अथवा त्यहम् । तीण्य
 हानि यावत् । प्रतिदिनं एवं पञ्चाहं सप्ताहञ्च ।
 सुयन्त्रितः । सावधानः । यथाऽच्छिक्कं न भवति ।
 मर्मं शिरो विरेके च व्यापदो विविधाः स्मृताः ॥ दो-
 षोत् क्लेशात् क्षया चैव विज्ञेया स्ता यथा क्रमम् ॥
 ॥ २७ ॥ दोषोत् क्लेश निमित्तासु युज्याद्दमन शो-
 धनम् ॥ (वमनरूपं शोधनम् ।)

भा० मर्षेकी नर्पणी मुख्यमात्रा आठ शाण से कही है ॥ मध्यम चार शाण
 की और हीन चार माषेकी कही है ॥ २५ ॥ एक २ नासा पुट में इस मात्राको
 देना चाहिये ॥ मर्षेकी दो तीन बार दोषके बला बलको देखकर ॥ २६ ॥
 एक दिन बीचमें देकर अथवा दो दिन बीचमें देकर बुद्धिवान नास देवे ॥
 एक दिन बीचमें देना है । जिसे । तीनदिन पांचदिन अथवा सातदिन साव-
 धान होके देवे ॥ (क) अथवा तीनदिन । प्रतिदिन ऐसेही पांच
 दिन अथवा सातदिन । सावधान । जैसे बे छींक न होवे । मर्मके शिरो
 विरेकमें विविध रोग कहेहैं ॥ दोषके उत्क्लेश से और क्षयसे बोह यथा-
 क्रम जानने चाहिये ॥ २७ ॥ दोषोत् क्लेश निमित्त में वमन शोधन योजना
 करे ॥ (वमनरूप शोधन)

अथ क्षय निमित्तासु यथास्वं वृंहणं हितम् ॥ शिरो
 नासादि रोगेषु सूर्यावर्त्तीर्द्ध भेदके ॥ २८ ॥ दन्त
 रोगेऽबले हीने मन्यावा ह्वंशसे गदे ॥ मुख शोषे
 कर्णनादे वात पित्त गदे तथा ॥ २९ ॥ अकाल प-

अकाल पलिते चैव केशशमश्रु प्रपातने ॥ पूज्यते
 वृंहणं नस्यं स्निहेवा मधुरद्रवैः ॥ ३० ॥

[वृंहणं नस्यं यथा] सर्शकर पयः पिष्टं भृष्टमाज्ये
 न कुङ्कुमम् ॥ नस्य प्रयोगति हन्या द्वातरक्त
 भवारुजः ॥ ३१ ॥ श्रुशङ्खगन्धि शिरःकर्णं सूर्या
 वर्त्ताई भेदकान् ॥ नस्यं स्यादणु तैलेन तथा ना-
 रायणो न वा ॥ ३२ ॥ माषादिना वा सर्पिर्भिस्तद्दे
 पज साधितैः ॥

भा० और तय निमित्तमें वृंहण हितहै ॥ शिर नाक नेत्र इनके रोगों में
 और सूर्यावर्त्त भई भेदक इनमें ॥ २८ ॥ दंत रोग में अवल में मन्था वा-
 लकधा इनके रोगों में ॥ मुखरोग शोष में कर्णनाद में वात पित्त के रोग में
 तथा ॥ २९ ॥ अकालमें सिरके बाल पकनेमें केश और दाढ़ी इनके गिर
 जाने में ॥ वृंहण नास हितहै ॥ अथवा मधुर द्रव और स्निहसे हितहै ॥ ३० ॥
 वृंहण नस्य जैसे । शर्करा के सहित दूध और घृतसे भृती इव केशर पीस
 के ॥ नस्य प्रयोग से वात रक्त की योद्धा दूर होती है ॥ ३१ ॥ भव शंख नेत्र शि-
 र कान सूर्यावर्त्त भई भेदक इनको भी नाश करता है ॥ अणु तैलसे अथ
 वा नारायण तैलसे नास दैवे ॥ ३२ ॥ माष आदि करके अथवा उन औषधों
 से साधित घृतसे नास दैवे ॥

भ्रमः अथ तैल सुश्रुतने कहा है] (क) जैसे तिल परने उपकरण अघात को लू आदि के उनको लाकर जिनसे बहुत दिन तक तेल पेला गया हो उनको टुकड़े २ करके ऊखलमें फूट कर कड़ाई में पानी से भिगोकर काड़ा करे उसे तेल निकलता है उस तेलको हाथ से जलमें से निकालकर वात नाशक औषध कल्क से पकावे वोह अणु तेल है वोह वातरोग का नाशक है ॥

तैल कफे स्थाहते च केचले पवने तथा ॥ दद्यान्नस्य
सदापित्तं सपिष्ये मज्जान भवे च ॥ ३३ ॥ साधात्म गु-
ह्यरात्राभिर्बला रू बुकरौ हिवैः ॥ कृनोऽश्वगन्ध
या द्वायो हिङ्गु सैन्धवसंयुतः ॥ ३४ ॥ कौष्णो न-
स्य प्रयोगेण पक्षाघातं सकम्पनम् ॥ जयेदहित
वातञ्च मन्यास्तम्भाय वाङ्गको ॥ ३५ ॥ प्रतिम
र्शस्य मात्रा तु द्वित्रिविन्दु मितामता ॥ प्रत्येकशो
वासिकया स्नेहनेऽति विनिश्चितम् ॥ स्नेह ग्रंथि
हृयं यावन्निमग्ना चोद्धृता ततः ॥ ३६ ॥ तर्जनीयं
स्वेद्विन्दुं सामात्रा विन्दु संज्ञिता ॥

भा० तैल कफमे और वातमें भी तथा केवल वातमें भी नास देवे ॥ औ
पित्तमें घृत मज्जा को भी देवे ॥ ३३ ॥ उडद के वांच एखा चरियारा अंडी
राम कपूर ॥ असर्गंध इनका बनाया कड़ा हींग सैन्धवके साथ ॥ ३४ ॥
भरम सील नासके प्रयोगसे सकम्पन पक्षाघातको जीतता है ॥ और अर्दि
त वात मन्यास्तम्भ अपवाङ्गक ॥ ३५ ॥ इनको भी नाश करता है प्रतिमर्श
की मात्रा दो विन्दु कही है ॥ हर गके से नासिका के द्वारा स्नेहनमें अति वि
निश्चित है ॥ स्नेहमें ग्रन्थि हृय तक डूबी और फिरसे निकाली जई इस्से
॥ ३६ ॥ जो टपकानी है तर्जनी की बन्द उसमात्रा की विन्दु संज्ञा है ॥

एवं विधै विन्दु संज्ञै रक्षाभिः शारा उच्यन्ते ॥ ३७ ॥

सदेया मर्षे नस्येषु प्रतिमर्शा द्विविन्दुकः ॥ समयाः
 प्रतिमर्षस्य बुधैः प्रोक्ता श्वनुर्दश ॥ ३७ ॥ प्रभाते
 दन्तकाष्ठान्ते गृहा निर्गमने तथा ॥ व्यायामाध्व
 यवायान्ते विरामूत्रान्ते ऽञ्जने ह्यते ॥ ३८ ॥ कवला
 न्ते भोजनान्ते दिवास्वप्नोत्थिते तथा ॥ वमनान्ते त
 था सायं प्रतिमर्षाः प्रयुज्यते ॥ ४० ॥ ईषदुच्छिक्क
 नात् स्नेहो यथावक्तं प्रपद्यते ॥ नस्ये निषिक्तान्तं
 विन्द्यात् प्रतिमर्षाः प्रमाणात् ॥ ४१ ॥ (आत्रायुक्तम्)

भा० इस प्रकार की आठ वृन्दों की प्रमाण कहते हैं ॥ ३७ ॥ वोह मर्षा नास
 गे देना चाहिये और प्रतिमर्षा दो वृन्दकी होती है ॥ प्रतिमर्षा के समय यंडितों
 ने चौदह कहे हैं ॥ ३७ ॥ सवेरे दानवन के बाद घरसे निर्गमनमें तथा ॥
 कसरत नार्ग चलना इनमें और मैथुनके अन्तमें मल मूत्रके अन्तमें अंजन
 करने पर ॥ ३८ ॥ कवल के अन्तमें भोजनके अन्तमें दिनमें सोके उठनेपर
 तथा ॥ वमन के अन्तमें तथा सायंकाल में प्रतिमर्ष देवे ॥ ४० ॥ घोटैसे छी
 कने से स्नेह जैसे मुखमें आजाना है ॥ नासमें दिये हुवे उसके प्रमाण से प्रतिम
 र्शजाने ॥ ४१ ॥ (आत्रायुक्त ।

उच्छिष्टन्न पिवे चैन त्रिष्टुप्ति न्मुखमागतम् ॥

(उच्छिष्टम् । नस्यावशिष्टं) क्षीणे तृष्णास्य शोषा

र्त्ते बाले वृद्धे च पूज्यते ॥ ४२ ॥ प्रतिमर्षान्न जायन्ते

रोगाश्चैवोर्द्ध जलुजाः ॥ वली पलितनाशश्च वल

मिन्द्रियजं भवेत् ॥ ४३ ॥ विर्भान्ति म्व गम्भारी

शिवा शैलुश्च काकिनी ॥ एकेक तैल नस्ये न प-

लितं नश्यति ध्रुवम् ॥ ४४ ॥ अथ नस्य विधिं वक्ष्ये

नस्य ग्रहणं हेतवे ॥ देशो वांतरजो मुक्ते कृत्तन्न निघ-
 र्वाणम् ॥ ४५ ॥ विशुद्धं धूमपानेन खिन्नमालं गलं
 तथा ॥ उत्तान प्रायिनं किञ्चित् प्रलम्ब शिरसं नरम्
 ॥ ४६ ॥ आस्तीर्णं हस्तपादञ्च वस्त्राच्छादितं लोचन-
 म् ॥ समुन्नामितं नासाग्रं वैद्यो नश्येत्तथोज्ज्वलम् ॥
 ॥ ४७ ॥ कोशेनाच्छिन्नं धारेण हेमतादि शुक्तिभिः
 ॥ शुक्त्या वा यंत्र शुक्त्या वा स्तोत्रैर्बाह्यस्य चाचरेत् ॥
 ॥ ४८ ॥ (स्तोत्रैर्वस्त्रैस्तदुपलक्षितैस्त्वलेषु)

भा० उच्छीष्ट की नपीवे और सुखमें आयेइये की थूक देवे ॥
 (नासकी बाकी) क्षीरणमें तथामें सुख शोष से पीड़ित में हृद्म की बालककी
 भी प्रशस्त है ॥ ४२ ॥ ऊर्ध्व जत्रु के रोग प्रतिमर्षा से नहीं उत्पन्न होने हैं ॥ और
 कुर्ियां बालोंकी सफ़ेदी इनका नाशक तथा इन्द्रियों की बल होता है ॥ ४३ ॥
 वहैडा भीम कुन्हेर हड़ तिसौढा कीवाढोढी ॥ इनके एक २के तैलकी वा-
 सं से बालोंकी सफ़ेदी अवश्य नाश होती है ॥ ४४ ॥
 [अनन्तर नास ग्रहण के हेतु नासकी विधि कहते हैं ॥] वायु और धूल से रहित
 देशमें दातुन कियाइवा ॥ ४५ ॥ धूम पानसे विशुद्ध ऊवा माया और गले
 में चिकानाई लगायाइवा ॥ चित्त लेगाइवा कुछ सिरकी नीचे कियेइवे ऐसे
 मनुष्य को ॥ ४६ ॥ हाथ पाव फैलाकर कपड़े से नेत्र ढक के ऊपर नाक के
 अग्रको करके वैद्य नासको डाले ॥ ४७ ॥ सील गरम वरावर धारसे सोना चां-
 दी की सुतुहीसे ॥ अथवा सीपसे अथवा जिल्ले बुक्तिके साथ कीवे से नास
 देवे ॥ ४८ ॥ (वस्त्र उसकरके उपलक्षित रुईसे भी)

नस्येष्वा सिच्यमानेषु शिरो नैव प्रकम्पयेत् ॥ नकुप्ये
 न प्रभाषेत नोच्छ्विकेजहसे तथा ॥ ४९ ॥ एते हि
 विहितः स्नेहो नैवान्तः सम्प्रपद्यते ॥ ततः कांस
 प्रतिश्याय शिरोऽक्षिं गदं सम्भवः ॥ ५० ॥ शृङ्गाट

क मभिच्याप्य स्थापयेत्त गिलेद् द्रवम् ॥ यच्च सप्त
 दशैवस्यसां त्रा स्निहस्य धारणे ॥ ५१ ॥ उपविष्या-
 य निष्ठीये त्रासा वक्त्रागतं द्रवम् ॥ वाम दक्षिण पा-
 र्श्वभ्यां निष्ठीवेत्सं मुखं न हि ॥ ५२ ॥ नीति नस्ये म-
 नस्तापं रजः क्रोधञ्च सन्यजेत् ॥ शयोन निद्रा
 न्यक्त्वा च प्रोक्तानौ वाक् शतत्रः ॥ ५३ ॥

भाव नास डालने के समयमें शिरको न हिलावे ॥ न गुस्सा करे न बोले
 न लीके न हंसे ॥ ५१ ॥ इस प्रकार किया हुआ नास स्निह भीतर नहीं जाता
 ॥ उसे खासी जुकाम शिर नेत्र इनके रोग होनेहै ॥ ५२ ॥ शृङ्गाटक में फल
 कर स्थापन करे द्रवको निगले नहीं ॥ पांच सात दश मात्रा तक स्निह धा-
 रण करे ॥ ५१ ॥ नाक से श्वासेमें आयुद्धे द्रवको बैठके श्रुते ॥ बाये रहने
 तरफ थूके और सामने नथूके ॥ ५२ ॥ नास लेनेपर मनस्ताप धूल और
 क्रोध इनको त्याग देवे लेदे तौन्द न लेवे चिन सी की गिन्ती तक रहरे ॥ ५३ ॥

तथाऽपिरो त्रिरेकान्ते धूमोवाक्कथलोहिता ॥ नस्ये-
 त्रीशयुपदिष्टानि लक्षणानि प्रयोगतः ॥ ५४ ॥ श्रु-
 द्वाहीनाति योगाहि विज्ञेयाः शास्त्र चिन्तके ॥ ५५ ॥
 लाघवं मूल संशुद्धिः स्नानसां व्याधिसंक्षयः ॥ ५६ ॥
 चिन्नेन्द्रिय प्रसादश्च शिरसः शुद्धि लक्षणम् ॥ क-
 ण्डू प्रदेहो गुरुता स्नानसां कफ संश्लवः ॥ ५७ ॥
 मूर्ध्नि हीन विशुद्धे स्तु लक्षणं परि कीर्तितम् ॥
 (हीन विशुद्धे हीन नस्ये न विशुद्धेः)
 मस्तु बुद्धेगमो वात वृद्धि रिन्द्रिय विम्रमः ॥ श्रु-
 न्यता शिरसश्चापि मूर्ध्नि गाढ विरेचिते ॥ ५८ ॥

भा० तथा शिरसे विरेचन के अन्तमें ऊँचा अथवा कबल हित है ॥ नाममें क हे ऊँचे तीन लक्षण प्रयोगसे ॥ ५४ ॥ शुद्धिहीन अतियोग शास्त्रके चिन्तक जाने ॥ हलकापन मलकी अच्छीतरह शुद्धि ॥ सोतीके रोगकानाश ॥ ५५ ॥ चित्त इन्द्रियकी प्रसन्नता यह शिरके शुद्धिका लक्षण है ॥ शरीरमें खुन ली भारीपन सोतीसे कफका स्वाव ॥ ५६ ॥ शिरकी हीन शुद्धिका यह लक्षण कहा है ॥ हीन नस्यसे विशुद्धिका । मगज का निकलना यानकी वृद्धि इन्द्रिय भ्रम ॥ शिरका सूतापन भी यह लक्षण शिरके अधिक विरेचनमें होते हैं ॥ ६७ ॥

मस्तु लुङ्गम् । मस्तकान्तः स्नेहः इन्द्रिय विभ्रमः ।

इन्द्रियाणां मन्यथा विषय ग्रहणः । हीनानि शुद्धे

शिरसि कफवातघ्न माचरेत् ॥ तत्र हीनेन नस्येन

शुद्धे वातघ्न माचरेत् ॥ ५७ ॥ सम्यक् विशुद्धे शिरसि

सर्पिर्नस्ये न दीयते ॥ कफप्रसेकः शिरसो गुरुते

न्द्रिय विभ्रमः ॥ ५८ ॥ लक्षणान्तदति स्निग्धे तत्र

रूक्षं प्रदापयेत् ॥ भोजयेच्चा नभिष्यन्दि नस्येवातिकं

मादिशेत् ॥ ६० ॥ वातिकम् । वानलमुपदिशेत् ॥

इति पञ्चकर्म्मोक्तिः ॥

भा० शिरके भीतरका गुदा । इन्द्रियोंका अन्यथा विषय ग्रहण । हीन और अतिशुद्ध शिरसे कफ वात नाशक उपाय करे ॥ उसमें हीन नस्यसे शुद्ध में वात नाशक उपाय करे ॥ ५७ ॥ अच्छी तरह शुद्ध ऊँचे शिरसे नाससे घन दिया जाता है ॥ कफ स्वाव शिरसे भारीपन इन्द्रिय भ्रम ॥ ५८ ॥ यह लक्षण स्निग्धमें होते हैं । वसमें रूक्ष औषध देवे ॥ और अनभिष्यन्दि भोजन करावे । और नासमें वानल वस्तु उपदेश करे ॥ ६० ॥ वानल उपदेश करे । इति पञ्चकर्म्म ।

[अथ धूमपानविधिः।

धूमस्तु धड्धिः प्रोक्तः शमनोदहणस्तथा ॥ रेचनः

कासहा चैव वामनो ब्रह्म धूमनः ॥ ६१ ॥ शमनस्य
 तु पर्यायी मध्यः प्रायोगिकः स्तथा ॥ वृंहणस्य
 च पर्यायी स्नेहनो मृदुरेव च ॥ ६२ ॥ रेचनस्यापि
 पर्यायी शोधनस्तीक्ष्ण एव च ॥ अधूमाहाश्च ।
 खल्वेते श्रान्तो भीतश्च दुःखितः ॥ ६३ ॥ दन्त-
 वस्ति विरिक्तश्च रात्रौ जागरितस्तथा ॥ पित्तासि
 तश्च दाहार्त स्तालु शोथी तथोदरी ॥ ६४ ॥ शिरो
 ऽभितापी तिमिरी च्छूर्द्याध्मान प्रपीडितः ॥ क्षतो
 रस्कः प्रमेहार्तः पाराडु रोगी च गर्भिणी ॥ ६५ ॥
 रूतः क्षीणो ऽभ्यवहत क्षीर क्षौद्र घृतासवः ॥ भु-
 क्तान्न दधि मत्स्यश्च बालो वृद्धः कृपास्तथा ॥ ६६ ॥
 अकाले चाति पीतश्च धूमः कुर्यादुपद्रवान् ॥

भा० अनन्तर धूमपान विधिः ॥ धूम छू प्रकारका कहाहै । शमन वृंह
 ण तथा ॥ रेचनकास नाशक वसत ब्रह्म धूमन येह है ॥ ६१ ॥ शमनका
 पर्याय मध्य तथा प्रायोगिक है ॥ और वृंहण का पर्याय स्नेहन तथा मृ
 दुहै ॥ ६२ ॥ रेचन का पर्याय शोधन और तीक्ष्ण है ॥ धूमके अयोग्य
 यहै ॥ श्रान्त भीत दुःखित ॥ ६३ ॥ वस्ति दिया जवा विरेचन लिया जवा
 रानमें जागा जवा ॥ प्यासा दाहसे पीडित ताल शोषवाला तथा उदरवाला
 ॥ ६४ ॥ शिरमें भस्मिक्तपवाला तिमिर रोगवाला और वमन आध्मान इन
 से पीडित ॥ उरकत वाला प्रमेह से पीडित पांडुरोग वाला गर्भिणी ॥
 ॥ ६५ ॥ रूत क्षीण दूध मधु घृत भासव इनको पीया जवा ॥ भन्न दही
 मछली इनको भोजन किया जवा और बाल वृद्ध दुवन्ता ॥ ६६ ॥ अका
 लमें ब्रह्म पीया जवा धूम उपद्रवों को काता है ॥

तत्रेष्टं सर्पिधः पानं नावनाञ्जन नर्पणम् ॥ सर्पि

रित्त्वरसं द्राक्षां पथे वा शर्कराम्बु वा ॥ मधुराल्ही सौ
 वापि वमनाय प्रदापयेत् ॥ ६० ॥ धूमस्तु द्वादशात्
 वर्षात् गृह्यते प्रीतकात् न च ॥ कास प्रवास प्रति-
 प्रयाया लन्त्याहनु शिरोरुजः ॥ ६१ ॥ वातप्लेष्म
 विकारांश्च हन्याद्धूमः सुयोजितः ॥ धूमोपयोगा
 त्युरुषः प्रसन्नेन्द्रिय वाङ्मनः ॥ ६२ ॥ दृढकेश
 द्विजशमश्रुः सुगन्धि वदनी भवेत् ॥ धूमनाडी भ-
 वेत्तत्र त्रिखण्डा च त्रिपर्त्तिका ॥ ६३ ॥ कनिष्ठि
 का परोणाही राजमाया गमान्तरा ॥

[राजमायागमः सुभस्ता नाडी] ॥

भा० इसमें दूधपात इष्ट है और नास अन्नन तर्पण इष्ट है ॥ ६० ॥ दूध दूध
 कारस दाख दूध अथवा शर्करा ॥ अथवा मधुर अश्वराम वमनक अर्थ देवे ॥
 ॥ ६० ॥ धूमवारह वरस से ग्रहण किया जाता है और अस्मा से नहीं ग्रह-
 ण किया जाता ॥ कास प्रवास जुकाम मन्त्याहनु शिर इतकी पीडा ॥ ६१ ॥
 वान कफ के रोग इनकी अच्छी तरह योजना किया धूम नाराकारता है ॥ ध-
 मके उपयोग से उरुष प्रसन्न इन्द्रिय त्राणी और मन होता है ॥ ६२ ॥ और
 केश बान्ना सड़ी यह दृढ होने है ॥ इसमें धूमकी नली तीन इकडे का वा ती-
 न पोर वाली ॥ ६३ ॥ चिटली उंगली के समान मोटी और बड़ा उड़द जोने में
 फिक छिद्र वाली होनी चाहिये ॥

धूम नाडी भवेद्दीर्घा शमने रोगिणी षड्भुजे ॥ ६४ ॥ च

त्वारिणान्मिने स्तद्दृढ द्वात्रिंश द्विमृदौ मता ॥

(मृदा ग्रहणा) तीक्ष्णो चतुर्विंशतिभिः कासश्च षोडशो

न्मितैः ॥ (तीक्ष्णो रेचने) दशाङ्गुलैर्वामनीये तथा

स्थान्द्वया नाडिका ॥ (तथा दशाङ्गुलैस्तमिता ॥)

जा रोगियों की श्मान में चालीस जंगल लंबी धूवेकी नली होती है ॥

वैसेही जंहण में चालीस जंगलकी कही है ॥ ७२ ॥ रेचन में रेचन न चौदीस जंगल दास न्यक में सोलह जंगलकी नली कही है ॥

(रेचन में) वामनीय में दस जंगल और दस जंगलकी द्रवकी नली होती है ॥ (तथा दशाङ्गुल ।)

कलाय भण्डलस्थूला कुलत्या गम रन्ध्रिका ॥ अथे

पिकां प्रलिप्येच्च सुम्लक्ष्णं द्वादशाङ्गुलाम् ॥

(दीपिकाम् शरकारणम् ॥) धूम द्रव्येन कल्केन-

नेपश्चाद्याङ्गुलाः स्मृतः ॥ कल्कं कर्पमितं लिप्त्वा

च्छाया शुष्कञ्च कांक्षेत् ॥ ७३ ॥ इषिका प्रपनी

याथ खेहाक्षां वर्तिभादरान् ॥ अङ्गारैर्दीपितां कृ-

त्वा घृत्वा नेत्रस्थ रन्ध्रके ॥ ७४ ॥ वदनेन पिवेद्धूमं व

दनं नैव संत्यजेत् ॥ नासिकाभ्यां ततः पीत्वा मुखेनै

व वमेषुधीः ॥ ७५ ॥ पाराव संपुटे लिप्त्वा कल्कम्

ङ्गार दीपिताम् ॥ छिद्रे नेत्रं निवेश्याथ जरांते नैव

धूपयेत् ॥ ७६ ॥ एलादि कल्कं प्रामने त्रिगंध स-

र्ज्जरसं मृदौ ॥ रेचने तौदण कल्कञ्च श्वासघ्ने तु

ह कोषणम् ॥ ७७ ॥

भा० भद्र के समान मोटी और कुरथी जाने लायक छिद्रवानी । अनन्तर वारह जंगलके भाग सरकंडे को । धूम द्रव्य के कल्कसे आठ जंगल नेप कहा है ॥ तैलेर कल्क का लेप करके छायामें सुकवावे ॥ ७३ ॥ सरकंडे को निकाल कर छिद्र पुनः चालीस जंगलकी ॥ जलाके नलीके छिद्र पर धरके ॥ ७४ ॥ मुखसे धूम पीके और मुखसेही छोड़े ॥ और उसके अनन्तर नाससे पीकर मुखसे ही निकाले ॥ ७५ ॥ पाराव संपुटमें अंगार से दीपित कल्क को डा-

ले कर नलीमें छिद्रमें लगाकर ब्रणको उसी धूवेंसे धूपदेंवे ॥ ७६ ॥ शमन में इलायची आदिका कल्क और ब्रंहरा में शल चिकनाई ॥ रेचन में दस्तावर कल्क कास नाशक में कटेली मरिच ॥ वमन में स्नायु चर्मसे युक्त धूम पान देंवे ॥ ब्रणमें नीम वच आदि सब धूपन प्रशस्त है ॥ ७७ ॥

वमने स्नायु चर्माढ्यं दद्याद्दूमस्य पानकम् ॥ ब्रणे
निम्ब वचाद्यञ्च धूपनं सं प्रशास्यते ॥ ७७ ॥ अ-
न्येऽपि धूमा गेहेषु कर्त्तव्या रोगशान्तये ॥

[सयथा] मयूर पिच्छं निम्बस्य यत्राणि बृहती फल
म् ॥ मरिचं हिङ्गुमांसी च बीजं कार्पाससम्भवम् ॥
॥ ७८ ॥ छागरोमाहि निर्मोको विष्ठा वैडालिकी त
था ॥ (अहि निर्मोकः सर्पकञ्चुकः)

गजदन्तश्च तच्चूर्णं किञ्चिद् घृत विमिश्रितम् ॥
गेहेषु धूपनं दत्तं सर्वान् बालग्रहान् हरेत् ॥ ७९ ॥
पिशाचान् राक्षसान् हत्वा सर्वज्वरहरं भवेत् ॥

[इत्यपराजितो धूमः।]

भा० रोग शान्ति के वास्ते और भी धूवें घरमें करे ॥ वोह जैसे । मोर पंख नीम के पत्ते दोनों कटेली ॥ मरिच हीङ्गु जय मासी कपास के बीज ॥ ७८ ॥ बक रे के रोवें सांपकी केचली विल्लीकी विष्ठा ॥ हाथीदन्त इनका चूर्ण थोड़े से घृतको मिलाके ॥ घरमें धूवां दियाहुवा सब बाल ग्रहोंको हरता है ॥ ७९ ॥ पिशाच और राक्षसोंको मारके सब ज्वरोंका नाशक है ॥ इति अपराजितो धूपः ॥ मनस्तापं रजः क्रोधो धूमपाने निवारयेत् ॥

नेत्राणि धातु जान्याहर्नलं वंशादि जान्यपि ॥ ८० ॥

[अथ गरुड्य कवल प्रति सारणा विधिः।]

तत्र गरुडुष कबल प्रतिसारणानां भेदकानि लक्षणानि
 न्याह ॥] [तत्र गरुडुषः] स्नेह क्षीर कषायादि द्वैः
 सम्पूर्णं माननम् ॥ अपूर्य स्थीयते तावद्विधि गरुडु
 ष धारणे ॥ ८२ ॥ कफ पूर्णस्थिता यवच्छिदो दोषस्य
 वा भवेत् ॥ नेत्र धारणं त्वुति यथा व तावद्गरुडुष धार
 णम् ॥ ८३ ॥ गरुडुषान् सुस्थितः कुर्यान् स्वन्नभा
 ल गलादिकः ॥ मनुष्यैस्तथा पञ्च संज्ञा दोष
 नांशानात् ॥ ८४ ॥

गलादिक इत्यादि शब्देन गरुडकपोलो गृह्यते संश्रु
 तोक्तत्वात् ॥ चतुर्विधः स्याद्गरुडुषः स्नेहनः शम
 नस्तथाः ॥ शोधना रीपणं चैव कबलं च्चापि ता
 दृशः ॥ ८५ ॥

भा० मनका सलाप धूल क्रोध इनकी धूम पानमें न करे ॥ नली धानुवो
 की अथवा वास आदिक की भी कहीं है ॥ ८२ ॥ अगन्तु कुम्भा कबल और
 मंजन इनकी विधि ॥
 लक्षणों को कहते हैं

संपूर्ण मुख भरके ॥ तब तक रखा जाता है गरुडुष धारण ॥ ८२ ॥
 तब तक में कफ से पूर्ण मुख होवे । और दोषको छेदन जब तक में हों ॥
 तथा और नाक को बहना जब तक में हो तब तक कुरले की धारण करना
 चाहिये ॥ ८३ ॥ स्वस्थ पार गला आदिकमें चिकनाई लगाकर कुम्भाकी
 करे ॥ मनुष्य नीन तथा पांच सात दोष नाशन नके करे ॥ ८४ ॥ गलादिक
 इत्यादि शब्दसे गरुड कपोल लिये हैं । सुश्रुत के कहने से । चार प्रकारको
 गरुडुष होता है ॥ स्नेहन तथा शमन ॥ शोध और रीपण वैसेही कवन भी ।
 ॥ ८५ ॥

स्निग्धोष्णैः स्नेहिको वाने स्वादुशीतैः प्रसादनः ॥

पित्ते कट्वस्त्र लवणौ रुषौः संशोधनङ्गफे ॥ ८६ ॥ क-
 षाय तिक्त मधुरैः कटुषो र्णियसो ब्रणो ॥ इद्याद्वे-
 षु चूर्णञ्च गरुडेषु कोलमात्रकम् ॥ ८७ ॥ कर्षम
 माराः कल्कश्च कवले दीयते बुधैः ॥ धार्यन्ते प-
 ञ्चमा द्वर्षा इराड्भाः कवलादयः ॥ ८८ ॥ व्याधेर
 पचयस्तु द्विवैशद्यं वक्त्र लाघवम् ॥ इन्द्रियाणां प्र-
 सादश्च गरुडेषु विधृते भवेत् ॥ ८९ ॥ हरे दास्यस्य
 वैरस्यं शोषपाकं ब्रणं तृषाम् ॥ दन्त चालञ्च गरुड
 पो वैशद्यं तु करोति हि ॥ ९० ॥

[अथ कवलः] वातपित्त कफघ्नस्य द्रव्यस्य कवलं
 मुखे ॥ अर्द्धं निःक्षिप्य संचर्व्य निर्घीवे त्वकवले विधिः
 ॥ ९१ ॥ कवलः कुरुते काङ्ग म्भक्ष्येषु हरते कफम् ।

भा० वातमें क्षिप्य उष्णसे स्नेहिक गरुडेषु दिया जाता है ॥ और पित्तमें
 मधुर प्रीतसे प्रसादत ॥ तथा कफमें कटु अम्ल लवण और रुक्ष इन
 से शोधन करे ॥ ८६ ॥ कषाय तिक्त मधुर से कटु उष्ण सर्पण ब्रणमें करे
 ॥ ब्रण गरुडेषुमें चूर्ण आठ मासेदेवे ॥ ८७ ॥ एक तोला कल्क कवलमें दि
 या जाता है ॥ पांच बरस से गंडुष कवलादिक लिये जाते हैं ॥ ८८ ॥ रोग
 का घटना प्रसन्नता वैशद्य मुखमें हलका पन ॥ इन्द्रियों की प्रसन्नता गरुड
 षु धारणा में यह लक्षण होते हैं ॥ ८९ ॥ मुख की विस्तता शोष पाक ब्रण
 तथा ॥ दांत का हिलना इनको दूर करता है ॥ और गरुडेषु वैशद्य को कर-
 ना है ॥ ९० ॥ [अनन्तर कवल] वात पित्त कफ नाशक द्रव्य का कव
 ल मुखमें ॥ आधा डालकर और चबाके उसको घुंके येह कवल की विधि
 ॥ ९१ ॥ कवल मौजनमें इच्छाको करता है और कफको हरता है ॥

तृषां शोषञ्च वैरस्यं दन्त चालञ्च नाशयेत् ॥ ९२ ॥

[अथ प्रतिसारणम्] दन्तजिह्वा मुखानां यच्चूर्णकल्कां
 व लेहकैः ॥ शनिघर्षणं मङ्गल्या तदुक्तं प्रतिसार-
 णम् ॥ ६३ ॥ वैरस्यं मुखदौर्गन्ध्यं मुखशोकं तथा
 नृषाम् ॥ अरुचिन्दन्त पीडाञ्च निहन्ति प्रति सा-
 रणम् ॥ ६४ ॥ हीने जाड्य कफोत् क्लेशावरस ज्ञान
 भवच ॥ अतियोगान्मुखे पाकः शोषस्तृष्णा वमिः
 क्लमः ॥ ६५ ॥ [अथ स्वेदविधिः।]
 स्वेदश्चतुर्विधः प्रोक्तस्तापोष्म स्वेद संज्ञितः ॥
 उपनाहो द्रवः स्वेदः स्वर्वेचांतार्त्ति हारिणः ॥ ६६ ॥
 तापस्वेद उष्मस्वेदश्च ताभ्यां संज्ञितः [उपनाहःस्वेदः]

भा० तथा तथा शोष विरसता दातों का हिलना इनको नाश करता है ॥
 ६२ ॥ [अनन्तर मञ्जुन ॥ दांत जीभ मुख इनको जो चूर्ण कल्क अब-
 लेह इनसे ॥ घीरे २ उंगलीसे घिसना उसको प्रतिसारण कहा है ॥ ६३ ॥
 विरसता मुखकी दुर्गन्धि मुखशोष तथा तृष्णा ॥ अरुचि दातोंकी पीडा इन
 को प्रतिसारण नाश करता है ॥ ६४ ॥ हीनमें जडता कफ का उत्क्लेश रस
 का न ज्ञानना होता है ॥ और अतियोग से मुखमें पाक शोष तृष्णा वमन
 क्लम ॥ ६५ ॥ होता है ॥ [अनन्तर स्वेद विधि।]
 स्वेद चार प्रकारका कहा है । ताप उष्म स्वेद संज्ञित । उपनाह द्रव स्वेद
 यह सब वातकी पीडाके नाशक हैं ॥ ६६ ॥ तापस्वेद उष्मस्वेद उनक
 रके संज्ञा किया गया ॥ [उपनाह स्वेद।]

स्वेदो तापोष्मजो प्रायः प्रेक्ष्यमग्नौ समुदीरितौ ॥

उपनाहस्तु वातघ्नः पित्तसङ्गे द्रवोहितः ॥ ६७ ॥

द्रवोहि द्रवस्वेदः) महावले महाब्याधी शीते स्वे
 दो महाम् स्मृतः ॥ दुर्वसे दुबेल स्वेदो मध्यमे म

ध्यमो मतः ॥ ६८ ॥ वलासे रूक्षणाः स्वेदो रूक्षस्निग्धः क-
 फानिले ॥ (रूक्षणाः रूक्षयतीति रूक्षणाः नन्धादि
 त्वाल्लु प्रत्ययः ।) कफ मैदो वृते वति कोष्णं गे-
 हं रवेः करान् ॥ नियुद्धं मार्गं गमनं डुरु प्रावरणं
 ध्रुवम् ॥ ६९ ॥ चिन्ता व्यायाम भारांश्च सेवेता
 मय मुक्तये ॥ येषां नस्यं प्रदातव्यं वस्तिश्चापि हि
 देहिनाम् ॥ १०० ॥ शोधनीयाश्च ये केचित् पूर्व
 स्वेद्याश्च ते मताः ॥ स्वेद्या ऊर्ध्वन्त्रयोऽपीह भग-
 न्दर्य्यं शीतस्तथा ॥ १०१ ॥ अशमर्या चातुरो जन्तुः
 शामयेच्छस्त्र कर्मण ॥

भा० ताप और उष्णज्वर स्वेद प्रायः कफ नाशक कहें ॥ उपनाह वातना-
 शक है पित्त सङ्गमें द्रव हित है ॥ ६७ ॥ द्रवस्वेद । महामल शीत महा
 रोग में महान् स्वेद कहा है ॥ दुर्बल को दुर्बल स्वेद और मध्यमको म-
 ध्यम कहा है ॥ ६८ ॥ कफ में रूक्षणा स्वेद और कफ वान में रूक्ष स्निग्ध
 स्वेद कहा है ॥ जो रूक्षार्तकरे, वोह रूक्षणा नन्धादिन्वसे लु प्रत्यय होता
 है । कफ मैदसे धिरे वान में गरम घर सूर्य के किरण ॥ लङ्गन्त रस्ते का
 चलना मारी ओढ़ना येह निश्चय हित है ॥ ६९ ॥ और चिन्ता कसरन
 तथा भार इनको रोग दूर होनेके वास्ते सेवन करे ॥ जिन मनुष्यों को ना
 स देना है और वस्ति भी जिनको देनी है ॥ १०० ॥ और जो कोई शोधनके
 योग्य है उनको पहिले स्वेदन करना चाहिये ॥ येह तीनों पश्चात् स्वेद
 न करने योग्य है भगंदर वाला बवासीर वाला ॥ १०१ ॥ और अशमरी
 वाला । ये रोगी मनुष्य शस्त्र कर्म से अच्छे होते हैं ॥

(शास्त्र कर्मणः ऊर्ध्वं पश्चाच्चेति सश्रुते)

पश्चात् स्वेद्या हते पाल्ये मूढ गर्भ गदे तथा ॥ का
 ले प्रजानाऽकाले वा पश्चात् स्वेद्या नितान्दिनी ॥ १०२

सर्वान् स्वेदान् निवाते च जीर्णान्तेवा विचारयेत् ॥ स्वे
दाद्यात् स्थितां दोषाः स्नेहं क्लिन्नस्य स्नेहिनः ॥ १०३ ॥

द्रवत्वं प्राप्य कोष्ठान्तर्गत्वा यान्ति विरेकताम् ॥

स्नेहाभ्यक्त शरीरस्य शीतैराच्छाद्य चक्षुषी ॥ १०४ ॥

भा० शस्त्र कर्मके पश्चात् इस प्रकार सुश्रुत में कहा है ॥ शून्य के निकाल
ने में तथा बृहत् गर्भरोगमें पीछेसे स्वेदन करना चाहिये ॥ कालमें प्रसव हुई ।
अथवा अकालमें प्रसव हुई नितम्बवाली स्त्रीको पीछेसे स्वेदन करना चाहि
ये ॥ १०२ ॥ सब स्वेदोंको निघात स्थानमें और जीर्णके अन्तमें करे ॥ स्वेदसे
स्नेह क्लिन्न वाले मनुष्य के धातुमेंके दोष ॥ १०३ ॥ पिघल कर कोष्ठ भीतर हो
के दस्त हीके निकल जाते हैं ॥ शरीरमें तैल लगाये ङ्गवे के तैलोंको शीतल से
आच्छादन करके ॥ १०४ ॥

स्वेद्यस्नान शरीरस्यः हृदयं शीतलैः स्पृशेत् ॥

(शीतैराद्रवत्त्वादिभिः।) अजीर्णा दुर्बली मेही क्षतः

क्षीणः पिपासितः ॥ अतीसारी रक्तपित्ती पाराङ्कुरो

गी तथोदरी ॥ १०५ ॥ मेदस्वी गर्भिणी चैव नहि स्वेद्या

विजानता ॥ स्वेदादेषां यान्ति देहो विनाशंति साध्यत्वं

याति चेषां विकाराः ।]

एतान्यपि मृदु स्वेदैः स्वेदसाध्यानु पाचरेत् ॥ मृदु

स्वेदं प्रयुञ्जीत तथा हन्मुष्कदृष्टिषु ॥ १०६ ॥

अतिस्वेदान्शान्धिपीडादाहसृष्ट्या लक्ष्मो अमः ॥

भा० शरीर का पसीना निकाले ङ्गवे के हृदयको शीतल वस्त्रसे स्पर्शकरे ॥

(गौले कपडे आदिसे) अजीर्णवाला दुर्बल प्रमेहवाला उरक्षतवाला क्षीण

प्यासा ॥ अतीसारवाला रक्तपित्तवाला पांडुरोगवाला तथा उदररोगवाला ॥

१०५ ॥ मेहवाला गर्भिणी इनको जानने वालेमे स्वेदन न करना चाहिये ॥ स्नेह

से इनके देहका नाश होता है और इनके रोग साध्य नहीं होते ॥ इनको भी स्वेद साध्य होवेगो मृदु स्वेद से उपचार करे ॥ तथा हृदय अण्डकोण दृष्टि इनमें मृदु स्वेद करे ॥ १०६ ॥ अति स्वेद से सन्धिमें पीड़ा दाह तथा ग्लानि भ्रम

पित्ता सूक्ष्मपिडका कोपस्तत्र शीतैरुपा चरेत् ॥ १०७ ॥

[तत्र ताप स्वेदमाह] तेषु तापामिधः स्वेदो वालुका व-
स्त्रपाणिभिः ॥ प्रतप्तै रम्लसिक्तैश्च कायेऽलक्त कवे-
ष्टिते ॥ १०८ ॥ [उष्ण स्वेदमाह] अथवा वात निर्ना

शि द्रव्यकाथ रसादिभिः ॥ उष्णोर्धटं पूरयित्वा पा-
र्श्वच्छिद्रं विधाय च ॥ १०९ ॥ विमुञ्चास्यं त्रिख-

गडाञ्च धानुजां काष्ठजा सुत ॥ षडङ्गुला स्याद्भो-
पुच्छां नाडीं युज्याद्विहस्तं काम् ॥ ११० ॥ मुखोप

विष्टं स्वभ्यक्तङ्गुरु प्रावरणा वृतम् ॥ हस्ति शुण्डि-
कया नाड्या स्वेदये द्वात रोगिरणाम् ॥ १११ ॥

भा० पित्त रक्तकी पुनसियों को होता है उसमें पीतल उपचार करे ॥ १०७ ॥ उसमें तापस्वेद को कहते हैं ॥ उसमें ताप नाम स्वेद रेत कपड़ा हा य इनको ॥ तथा कर अम्ल द्रव्य साँचके चियड़े से लपेटी हुई कायामें किया जाता है ॥ १०८ ॥ [उष्ण स्वेद को किया जाना है ॥ अथवा वात ना शक औषध का उष्ण काढ़ा रस आदिसे ॥ घड़ेको भरकर बगलमें छिद्र करके ॥ १०९ ॥ मुखको बन्द कर तीन इकड़ैवाली सुवर्णादि धानुकी अथवा लकड़ी की ॥ छ अंगुल मुखवाली गावदुम दो हाथकी नली उसमें ल गावे ॥ ११० ॥ तेल लगाकर उष्ण और भारी कपड़ेको ओढ़के अच्छी तरह बैठे हवे चानरोगे बालीको हाले शूण्डिका नाडी से स्वेदन करे ॥ ॥ १११ ॥

(क) त्रिखण्डामिति स्वेदमौकर्यार्थं मू षडङ्गुलास्या

मिति । मूले षडङ्गुलं विशालमुखं गोपुच्छमिव क्र-
मकशाम् ॥ तेनाग्रं गोपुच्छाद्य परिमाणेन कशाम्
नाडीम् अन्तः सरस्यां द्विहस्तिकाम् हस्तद्वय परि-
माणाम् । हस्तिशुण्डिकयेति हस्तिशुण्डिव क्रम-
शकत्वान्नाड्यादयं संज्ञा ।

पुरुषा याममात्रां वा भूमिं समाज्यं खादिरैः ॥ का-
ष्ठैर्दग्ध्वा तथा मुद्ग्य क्षीरधान्यान्म्ल वारिभिः ॥ ११२ ॥
वानघ्न पत्रैराच्छाद्य शयानं स्वेदयेन्नरम् ॥

भा० (क) तीन इकडे स्वेदकी आसानी के बाले । मूलमें छ अंगुले विशाल-
मुख गोपुच्छके समान क्रमसे पतली । उसे अग्रमें गोपुच्छ परिमाण से
पतली नाडी भीतर छिद्र सहित दोहाथकी हाथोकी संडके समान क्रमसे
पतली होनेसे नाडीका येह नाम है ॥ अथवा साढ़े तीन हाथ भूमिको छिद्र
कके खैरको लकड़ीसे जलकर उसीप्रकार दूध धान्यान्म्लजलसे छिद्रकक
र ॥ ११२ ॥ अंडीके पत्तोंसे ढककर लेटे ङवे मनुष्य को स्वेदन करे ॥

एवं माषादिभिः स्विन्नैः शयानं स्वेद मान्वरेन ॥ ११३ ॥

[उपनाह स्वेदः] नद्योपनाह स्वेदञ्च कुर्याद्वातहरौष-
धैः ॥ प्रदह्य देहं वानार्त्त क्षीर मांस रसादिभिः ॥ ११४ ॥
अम्लपिष्टैः सलवणैः सुरवोषणैः स्नेह संयुतैः ॥ उत
ग्राम्या नूपमोसैर्जीवनीय गणेन च ॥ ११५ ॥ दीधिसौ-
वीरकक्षीरैर्वीर तरत्रादिना तथा ॥ कुलन्थ्य माष-
गोधूमैस्तसीत्तिलसर्षपैः ॥ शतपुष्पादेवदारु रो-
फाली स्थूल जीरकैः ॥ ११६ ॥

भा० इस प्रकार माषादि स्विन्नसे लेटे ङवेका स्वेदन करे ॥ ११३ ॥

[उपनाह खेद । वैसेही वात नाशक औषधों से उपनाह खेद करे ॥ दूध भांस रस आदियोंसे वातसे पीड़ित शरीर को गरम करके ॥ ११४ ॥ कौं जी से पीसा डवा लवण के सहित नैलके सहित सील गरम से ॥ या ग्राम्य अनूप भांस तथा जी वनीय गणसे ॥ ११५ ॥ तथा दही सौवीरक दूध इन से और वीर तरादि से । तथा कुरथी उड़द गेहूं और अलसी निल सरसो इनसे ॥ सौंफ देवदारु शफालि कालीजीरी ॥ ११६ ॥

रोरांडमूल जीरेश्च रास्ना मूलक शिग्रुभिः ॥ मिसिह-
ष्णा कुठरेश्च लवणैश्च संयुतेः ॥ ११७ ॥ प्रसारण
श्च गन्धाभ्यां बलाभिर्दशमूलकैः ॥ गुडूच्या वानरी
बीजे र्यथा लाभ समाहृतैः ॥ ११८ ॥ क्षुरीः खिन्नैश्च
वस्त्रैश्च बद्धैः संस्वेदयेन्नरम् ॥ महाशाल्वरा संज्ञो
ऽयं योगः सर्वानिलार्ति हत ॥ ११९ ॥

(क) अस्यायमर्थः । उपनाह खेदञ्च कुर्यात् केन प्र-
कारेण त्याकाङ्गयां तत्रकार माह । वातहरीषधैः
कथम्भूतैः । अम्लपिष्टैः । अम्लेन काञ्जिक तक्रादि-
ना पिष्टैः सलवणैः । स्नेह संयुतैः । क्षीर भांस रसान्वितैः
। सुरवेणैः । वानार्त्त देहं प्रदह्य प्रलिप्य स्वेदयेदित्यर्थः ।

भा० अण्डो का उड़ और जीरा इनसे रासना मूलों सहिजना इनसे ॥ सौंफ पीपल । सफ़ेद तुलसी और अम्ल से युक्त लवण इनसे ॥ ११७ ॥ गंधमसारिणी असगंध इनसे बरियारा दशमूल इनसे ॥ गिलोय किवांच के बीज इन से इनमें नो मिलनावे उसको लाकर ॥ ११८ ॥ जव कूट करके स्वेदन कर के वस्त्र से बान्धकर उससे स्वेदन करे ॥ महाशाल्वण नाम यह योग सब वानकी पीड़ा को नाश करताहै ॥ ११९ ॥

(क) इसका यह अर्थहै कि उपनाह खेद करे किस प्रकार से इस आ

शंका में उस प्रकार को कहते हैं ॥ वातनाशक औषधों से । कैसी काँजी से पीसी
 हुई । काँजी मठा आदिसे पीसी हुई । सबरा के सहित । दूध मांस के रससे यु-
 क्त सील गरम । वात से पीड़ित रोगको लेप करके स्वेदन करे ॥

अथवा ख्यान संपिष्टैः कोषैः सूक्ष्म पुटस्थितैः ॥ अ-

थजैः स्वेदयेत्किं वा स्विन्नेः कोषोः पटस्थितैः ॥

॥ १३० ॥ [द्रवस्वेदमाह] द्रवस्वेदस्तु वातघ्नो

द्रव्यकाथेन पूरिते ॥ कदाहे कोष्ठके वापि सूपवि-

ष्टेन गाहयेत् ॥ १३१ ॥ सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं ।

लोहञ्च दासजम् ॥ कोष्ठकन्तत्र कुर्वीतो च्छ्राये

षड्विंशदङ्गुलम् ॥ १३२ ॥ आयामि वा तदेव स्या

चतुष्कोणान्तु चिकुरणम् ॥

भा० अथवा अण्डसे पीसे जेवें सोनगरम सूक्ष्म पुट स्थित । औषधसे स्वेदन
 करे अथवा सिन्न सील गरम रुपड़े में स्थितसे स्वेदन करे ॥ १३० ॥

[द्रवस्वेदको कहते हैं ॥ द्रवस्वेदं वातनाशक है । औषधियों के काढ़े से म-
 रो जड़ कढ़ाई में अथवा हीन में भी वावड़ी में वेठे जड़ेके ताँड़ुन्हावे ॥ १३१ ॥

सोनेका चान्दीका ताम्रिका मोहेका कोष्ठक उमें करे ऊँचाई में छबीस अंगुल
 ॥ १३२ ॥ और चौड़ाई में भी उननाही होवे चौकोन साफ बनावे ॥

[पक्षान्तरमाह । नामैः षडङ्गुलं यावन्मग्नं काथस्य

धारया ॥ कोषणयाः स्कन्धयोः सिक्तं स्तिष्ठेत् स्ति

ग्धतनुर्नरः ॥ १३३ ॥ (क) [अयमर्थः ।]

प्रथम तो चान्दम द्रव्य काथिन करठ पूरिते कोष्ठ

के कदाहे वा सूपविष्ट स्तिष्ठेत् ॥ अथवा नामैः

षडङ्गुलमूर्द्धं यावत्काथे मग्न उपविष्टः । पश्चा-

क्वाथस्य धारया स्कन्धयोः सिच्यमानस्तिष्ठेत् ॥

यावत्कोष्ठकं परिपूर्णं भवतीत्यर्थः । क्वाथपक्षे प्रथ-
तः स्नेहाभ्यक्त तनुरूप विशेषत् ॥

सुहृत्तेकं समासभ्य यावत्स्यात्त चतुष्टयम् ॥ तावत्

द्वग्राहित यावदारोग्य निश्चयः ॥ १३४ ॥ एवं तैले

न दुग्धेन सर्पिषा स्वेदयेन्नरम् ॥ एकान्तरो ह्यन्त

रो वा युक्तः स्नेहो ऽवगाहने ॥ १३५ ॥

(क) एतावता क्वाथो दुग्धञ्च नित्यमेव युज्यते स्नेहस्तु

दिनमेक न्हे वा दिने गमयित्वा युक्तः । अग्निमान्द्य

शङ्कयेति भावः ।

भा० पक्षान्तर को कहते हैं । नाभिसे छ अंगुल तक डूबा ऊँचा और गरम
सील काढ़ेकी धारसे कंधोंपर सींचाऊँचा स्निग्ध शरीर मनुष्य ठहरे ॥ १३३ ॥

(क) यह अर्थ है कि पहले शीत नाष्णक औषधके काढ़ेसे गलितक भरे
ऊँचे कोष्ठकटाह में बैठा रहै ॥ अथवा नाभिसे छ अंगुल ऊपर जबतक काढ़े
में डूबा बैठाऊँचा । पीछेसे काढ़ेकी धारसे कंधोंपर सींचाऊँचा ठहरे ॥

तब तक कोष्ठ भरजावे । क्वाथ पक्षमें पहलेसे शरीर में तेल लगायाऊँचा ठ
हरे । एक सुहृत्तेसे चार सुहृत्ते तक । तब तक न्हेवि जबतक आरोग्य निश्चय
है ॥ १३४ ॥ इस प्रकार तेल दूध और घृतसे मनुष्य को स्वेदनकरे एकदिन

बीच देकर अथवा दोदिन बीच देकर स्नेह युक्त ऊँचा स्नान करे ॥ १३५ ॥

उसे काढा दूध नित्यही योजना करे । और स्नेह एक या दोदिन बीच देकर
योजना करे । अग्निमान्द्य की शंकासे यह मतलब है ॥

शिरा मुखे लोम कूर्पे धीमनीभिश्च तर्पयेत् ॥ शरीरे

बलमाधत्ते युक्तः स्नेहो ऽवगाहने ॥ १३६ ॥ जलसि

क्तस्य वर्द्धन्ते यथा मूले ऽङ्गुरादयः ॥ तथैधातु वृद्धि

हिं स्नेह सिक्तस्य जायते ॥ १३७ ॥ नातः परतरः कश्चि
दुपायो वातनाशनः ॥ शीत शूलव्यु परमे ताम्रगो-
रव निग्रहे ॥ १३८ ॥ दीप्तिग्ग्नौ सार्द्धे जात स्वेदनाहि
रतिर्मताः ॥ (अथ मूर्द्ध तैलविधिः)

अभ्यङ्गः परिषेकञ्च पिचुर्वस्ति रिति क्रमात् ॥ मूर्द्ध
तैलञ्च तुर्द्धास्याद् बलवत्त यथोत्तरम् ॥ १३९ ॥

(क) अभ्यङ्गः तैलेन शिरसो मर्दनम् । परिषेकः । शिर
सि धारापातनं पिचुः । तैलाक्तं तूल । फाहा इति लोके
वस्ति वक्ष्यमाणः ॥

भा० शिरा मुख लोम कूप धमनीके द्वारा तृप्त करे । स्नेह युक्त स्नान करने
मे शरीर में बल होता है ॥ १३६ ॥ जैसे मूलमें जल संचि के अकुरादिक ब
ढते हैं । वैसेही स्नेह संचि की धातुवृद्धि होती है ॥ १३७ ॥ इन्से सिवाय और
र कोई उपाय वात नाशक नहीं है ॥ शीत शूल का उपरम ताम्र और
भारोपन इनका निग्रह ॥ १३८ ॥ दीप्त अग्नि भदुता येद स्वेदने से होते हैं ॥

[अनन्तर मूर्द्ध तैल विधि ॥ अभ्यंग परिषेक पिचु वस्ति इत् क्रमसे ॥
मूर्द्ध तैल चार प्रकारके हैं दोह यथोत्तर बल वाले हैं ॥ १३९ ॥

(क) तैल से शिरका मलना । शिर पर धार देनी । फाहा । वस्ति वक्ष्यमा
रा हैं ॥

त्रयोऽभ्यङ्गनदयः पूर्वे प्रसिद्धाः सर्वतः स्मृ
ताः ॥ शिरो वस्ति विधिश्चात्र प्रोच्यते सुहसम्भ
तः ॥ १४० ॥ शिरो वस्तिञ्चर्मणः स्याद्विमुखो द्वा
दशाङ्गुलः ॥ शिरः प्रमाणस्तं बद्धा मस्तके माष
पिष्टकैः ॥ १४१ ॥ सन्धिरोधं विधायाणु स्निहैः
कौर्ष्यैः प्रपूरयेत् ॥ नावहार्यं स्तु यादन्त्यानासा

करा मुख श्रुतिः ॥ १४२ ॥ वेद नोप शमो वापि मात्रा
 राणां वा सहस्रकम् ॥ स्वजानुनः करावर्त्तं कुर्याच्छे
 टिकया युतम् ॥ १४३ ॥ एषा मात्रा भवेदेका सर्व्व
 त्रैवैष निश्चयः ॥ विना भोजनमेवात्र शिरो वस्तिः
 प्रशस्यते ॥ १४४ ॥ प्रयोज्यस्तु शिरोवस्तिः पञ्च
 सप्त दिनानि वा ॥ विमोच्य शिरसा वस्तिं गृह्णीया-
 च्च समन्ततः ॥ १४५ ॥

भा० अर्धंगादिक तीन पहले सब तरफ प्रसिद्ध कहे हैं ॥ सूत्र सम्मती
 से शिरो वस्ति की विधि यहाँ पर कहुने हैं ॥ १४० ॥ शिरो वस्ति चमड़ेकी दो
 मुख वारह अङ्गुल होती है ॥ शिरके प्रमाण उसको मस्तक में बान्धकर
 उड़की पीठी से ॥ १४१ ॥ शीघ्र सन्धिको बन्द करके सील गरम जेहसे
 भर देवे । तब तक धारण करे जब तक नाक कान मुख इनमें से स्त्राव हो
 वे ॥ १४२ ॥ वेदनाका प्रामन अथवा हजार मात्रा तक धारण करे ॥ अप
 ने घुटने पर हाथ फेरे । घुटकी के साथ ॥ १४३ ॥ येह एक मात्रा होती है
 सब जगह येह निश्चय है ॥ यहाँ पर भोजनके विनाही शिरो वस्ति प्र
 शास्य है ॥ १४४ ॥ शिरो वस्ति पाँच सान दिन देनी चाहिये ॥ शिरकी व
 स्ति को विमोचन करके आस पास से शिरपर ग्रहण भी करे उसके अ
 नन्तर सील गरम जलमें स्नान करे ॥

ऊर्ध्व कायन्ततः कौषीगो नीरे स्नानं समाचरेत् ॥ अ

नेन दुर्ज्या रोगा वानजा थान्ति सङ्ख्यम् ॥ १४६ ॥

शिरः कम्पादयस्तेन सर्व्व कालेषु युज्यते ॥

पञ्च सप्त दिनानि वेत्युक्त्वा सर्व्वकाले धिति शिरः

कम्पादि रोगान् हृत्तौ नैयन् ॥

[अथ कर्त्तव्य विधिः]

स्विदये त्करीं देषान्तु किञ्चिन्नुः पार्श्व शायिनः ॥

मूत्रैः स्निहैः रसैरुषौः श्रोत्र रन्ध्रं प्रपूरयेत् ॥ १४७

कर्णाञ्च पूरितं स्निच्छृत यञ्च शतानि वा ॥ सह-

स्रं वापि सात्प्राणां श्रोत्रकराठ शिरोगुहे ॥ १४८ ॥

मूत्राद्यैः पूरणां करोणं भोजनात्याक् प्रशस्यते ॥ तै-

लाद्यैः पूरणां करोणं भास्करेऽस्त मुपागते ॥ १४९ ॥

[तद्यथा] करोणं शूलाकुले क्रीष्णां वस्तुमूत्रं ससैन्धवम्

निः क्षिपेत्तेन शाम्यन्ति शूल पाकादिका रुजः ॥

॥ १५० ॥ शृङ्गवेरञ्च मधुकं सैन्धवं तैलमेवच ॥

कटूणां कर्णयोर्देयं मेतत् स्याद् वेदनापहम् ॥ १५१ ॥

भा० इससे दुर्जय वामके रोग नाशको प्राप्त होते हैं ॥ १४६ ॥ उस्ते शिरः क
म्पादिक सब कालमें रहते हैं ॥ पांच सात दिन इस प्रकार कहकर सब का
ल में इस प्रकार शिरः कंपादि रोगकी अनुवृत्ति में जानना चाहिये ॥

[अनन्तर कर्ण विधि ॥ थोड़ेसे करवट जूवेके कर्णदेषामें स्वेदन करे ॥ मूत्र
स्निह उष्ण रस इनसे कर्ण छिद्रकी भरवे ॥ १४७ ॥ भरेहुवे कर्णकी रक्षा करे
सौ पान्सी ॥ अथवा हज्जार मात्रा कान कंद और शिरके रोगमें ॥ १४८ ॥ कर्ण
में मूत्रादिक से पूरणा भोजन से पहिले प्रशस्त है ॥ कानमें तैलादिक का डालना
सूर्यास्त होनेपर प्रशस्त है ॥ १४९ ॥ वीह जैसे] शूलसे व्याकुल कर्णमें
सील गरम बकरी का मूत्र सैन्धव के सहित ॥ डालि बस्सि शूलपाक आदि रोग
शामन होते हैं ॥ १५० ॥ अद्वक मधुवा सैन्धव तैल । कटू उष्ण इनकी कानों
में देना चाहिये ॥ येह वेदना का नाशक है ॥ १५१ ॥

पीतार्क पत्र माज्येन लिप्तौ चन्तौ प्रतापयेत् ॥ त

द्वसः श्वरो लिप्तः करोणं शूल हरः परः ॥ १५२ ॥

[अथ लेप विधिः] आलेपस्य तु नाशानि लेपो ले-

पन लिप्तकौ ॥ दोषघ्नो विषहा वार्यः स च लेपस्त्रि
धामतः ॥ १५३ ॥ त्रिप्रमारा श्रुतुर्भाग त्रिभागाद्वा
ङ्गुलीन्नतः ॥ आर्द्रो व्याधिहरः स स्याच्छुष्को दू-
षयति छविम् ॥ १५४ ॥

[चतुर्भाग त्रिभागाद्वाङ्गुलीन्नतः दोषघ्नो लेपो
यथा] शोथघ्नं दारु सिद्धार्थं शुराठी शोभाञ्जनत्वं
चाम् ॥ आरनालेल विष्टानां प्रलेपः सर्वशोथहा ॥ १
१५५ ॥ (शोथघ्नी पुनर्नवा ।)

भा० जर्द आंक के पत्तों को घृत लगाकर आग पर सेके ॥ उसका रस
कान में डालने से बौह अत्यन्त कर्णशूल का नाशक है ॥ १५२ ॥

[अनन्तर लेपविधि ।] आलेप के नाम । लेप लेपन लिप्तक । यह
नाम है ॥ वे दोषघ्न विषनाशक वर्णों को अच्छा करने वाले ऐसे तीन
प्रकार कहे हैं ॥ १५३ ॥ तीन प्रमारा कहे हैं । चतुर्भाग त्रिभाग और अर्धा
ङ्गुल ऊंचा ॥ बौह गीला रोगनाशक होता है । और सूखा छवि को विगा
ड़ता है ॥ १५४ ॥ चतुर्भाग त्रिभाग और अर्धाङ्गुल ऊंचा दोषनाशक लेप
जैसे । पुनर्नवा देवदारु सरसों सोंठ सहिजने की छाल ॥ इसको आरनाल
से पीसकर लेप सब शोथनाशक है ॥ १५५ ॥

(आरनाल कां को प्रकरण में देख लेना) (पुनर्नवा शोथनाशक)

शिरीष मधु यष्टी च तगरं रक्तचन्दनम् ॥ एला मांसी
निशायुगमं कुष्ठं बालकमेव च ॥ १५६ ॥ इति संचू-
र्यं लेपोऽयं पञ्चमांस घृतस्त्रुतः ॥ जलेन क्रियते
सुप्तैर्दशाङ्गु इति संज्ञितः ॥ १५७ ॥ वीसर्पञ्च वि-
षस्फोटान् शोथदुष्टं ब्रह्मान् जयेत् ॥

[विषहा लेपो यथा] अजादुग्ध तिलैर्लेपो नवनी

नेन संयुतः ॥ शोथ मारुष्करं हन्ति लेपो वा कृष्णं
 मार्त्तिकः ॥ १५६ ॥ (नवनीते नार्द्रि केणा ।)
 [परार्य लेपो यथा] रक्त चन्दन मञ्जिष्ठा लोध्र कु
 ष्ठ प्रियङ्गुवः ॥ वदाङ्गुरा मसूराश्च व्यङ्गुघ्नां मुख
 कान्तिदाः ॥ १५७ ॥ अथ लेप विधिश्चैव प्रोच्यते
 सुप्त सम्मतः ॥ आलेपश्च प्रदेहश्च द्वौ भेदौ तस्य
 भाषितौ ॥ १५८ ॥ चर्माद्रिं माहिषं यद्द्वयोच्यते सं-
 मित स्तयोः ॥ शीतस्तनुर्विशोषी च प्रलेपः पित्त
 हन्मतः ॥ १५९ ॥ आर्द्रो घनस्तयोष्णाः स्यात्प्रदेहः
 श्लेष्म वातहा ॥

भा० सिरीस मुलहठी नाग लालचन्दन । इलायची जटामांसी दीनों हल
 दी कूट सुगन्धवाजा ॥ १५६ ॥ इनको पीस कर यह लेप पांचवाँ भागष्टत
 से युक्त ॥ जलसे किया जाता है इसको बुद्धिवानों ने वशाङ्गु ऐसा कहा है
 ॥ १५५ ॥ यह विसर्प विषफोड़े सूजन दुष्टजरा इनको जीतता है ॥ विष
 नाशक लेप जैसे ॥ बकरीके दूधसे तिलोंको पीस कर मारवन के साथ ॥
 यह लेप भिलावेकी सूजन को नाश करता है अथवा काली मिट्टीका लेप
 नाश करता है ॥ १५६ ॥ (आधे मारवनसे) विषहा लेप जैसे ।
 लाल चन्दन मजीठ लोध्र कूट प्रियङ्गु । वदके अङ्गुर मसूर इनका लेप
 व्यङ्गु नाशक मुखकी कान्ति को देने वाला है ॥ १५७ ॥ अनन्तर बुद्धिवानों
 की सम्मतीसे लेप विधि कहते हैं ॥ आलेप और प्रदेह यह दो भेद उसके क
 हे हैं ॥ १५८ ॥ उनका प्रमाण भैंसके गीले चमड़े के समान कहते हैं ॥
 शीतल पतला सूका इवा प्रलेप पित्त नाशक कहा है ॥ १५९ ॥ गोला गा-
 दा तथा उष्ण प्रदेह होता है यह कफ वात का नाशक है ॥

न रात्रौ लेपनं कुर्व्याच्छुष्यमारां न धारयेत् ॥ १६० ॥
 शुष्यमारा सुपेक्षित प्रदेहं पीडनम्यति ॥ तमसा

पिहितो ह्यूष्मा लोमकूपमुखे स्थितः ॥ १६१ ॥ वि
ना लेपेन निर्याति रात्रौ न लेपयेदतः ॥

(तमसा रात्रन्धकारिणा) रात्रावपि प्रलेपादि व्रणो
देयो विचक्षणैः ॥ अयाकि न्यति गम्भीरे रक्तम्लेष्य
समुद्भवे ॥ १६२ ॥ [ऽलेपो यथा]

मधुकं चन्दनं मूर्वा नलमूलञ्च यर्षट्म ॥ उशीरं
बालकं पद्मं प्रलेपः पित्त शोथ हृत् ॥ १६३ ॥

भा० रात को लेपनकरे और सूके जूवे को न धारण करे ॥ १६० ॥ पीड़न के वा
स्ते सूके जूवे को भी रहने देवे ॥ रोम कूपके मुखमें रहनेवाली गरमी तमसे
ढकी रहती है ॥ १६१ ॥ वीह रातमें बिना लेपके निकलती है ह्युवास्ति लेप न
करे ॥ (रात की अन्धरी से) चतुरंजणमें रातको भी प्रलेपादि देना चाहि
ये ॥ कचे अति गम्भीर रक्तपित्त से उत्पन्न जूवे में ॥ १६२ ॥

[प्रलेप जैसे । महुवा चन्दन मरोडफली नरकटकी जड़ पित्त पापडा ॥ खस
सुगंधवाला यद्गाख बनका लेप पित्तके शोथ का नाशक है ॥ १६३ ॥

[प्रदेहो यथा । बीज यूर जटाहिंस्त्रा देवदारु महौषध
सू ॥ रास्त्रा अरणिः प्रदेहोऽयं वात शोथ विनाशनः ॥

॥ १६४ ॥ (अरणि रग्निमन्थः) कृष्णापुराणायि

रायाक शिगु त्वक् सिंकता शिवा ॥ गोमूत्र पिष्टः

कौञ्जोऽयं प्रदेहः श्लेष्म शोथहा ॥ १६५ ॥

[अथ शोशानस्रावण विधिः]

भा० प्रदेह जैसे । विजोरे की जड़ कटेली देवदारु सोंठ । रास्त्रा अरणी इनका
यह प्रदेह वात शोथ का नाशक है ॥ १६४ ॥ अग्निमन्थ । पीपल पुरानी खल
सहिंजने की छाल रेत हड़ ॥ गोमूत्र से पीसा जवा यह सील गरु प्रदेह कफ
शोथ का नाशक है ॥ १६५ ॥ [अनन्तर रक्त स्रावण विधिः ।]

शोणितं स्त्रावये ज्जनो रामयं प्रसमीक्ष्य च ॥ प्रस्थं
 प्रस्थाद्धं मयवा प्रस्थाद्धोद्धं मषापि वा ॥ १६६ ॥
 शरत्काले स्वभावेन शोणितं स्त्रावयेन्नरः ॥ त्वग्
 दोष ग्रन्थि शोषाद्या नश्यन्ति रुधिरोद्भवाः ॥ १६७ ॥
 व्यश्रे वर्षासु विद्युत्सु शीते ग्रीष्मे शरद्यपि ॥ मध्या
 न्हे शीतकाले च रुधिरं स्त्रावयेद् बुधः ॥ १६८ ॥
 मधुरं वर्णतो रक्तः मशीतोष्णं तथा गुरु ॥ शोणितं
 स्निग्धं विस्त्रज्ज्वं विदग्धं पित्तं रुद्धवेत् ॥ १६९ ॥ विस्र
 तां द्रवता रागश्चलनं विलयस्तथा ॥ भूस्यादि पञ्च
 भूतानां भेदे रक्ते गुणाः स्मृताः ॥ १७० ॥

भा० मनुष्य रोगको देख कर रुधिर निकलवावे ॥ प्रस्थमर आधाप्रस्थ अ
 थवा उत्तम भी आधा निकलवावे ॥ १६६ ॥ मनुष्य शरत्कालमें स्वभावसे ही
 रुधिर निकलवावे ॥ त्वचाके दोष गाँठ सृजन आदिक रक्तसे जड़े नाशको प्रा
 प्त होनेहैं ॥ १६७ ॥ बादल के न होनेमें विजली संयुक्त वर्षामें शीत ग्रीष्म में
 शरद में भी । मध्यारु मे शीत कालमें भी बुद्धिवान् रुधिर निकलवावे ॥ १६८
 मधुर वर्णसे रक्त अशीत उष्ण तथा भारी ॥ चिकनी दुर्गन्धि युक्त विदग्ध रु
 धिर पित्तको करने वाला होता है ॥ १६९ ॥ दुर्गन्धता पतलापन राग चन्तन
 तथा विलय ॥ भूमि आदि पांच भूतोंको यह गुण रक्तमें कहें हैं ॥ १७० ॥

रक्ते दुष्टे भवेच्छोयो रक्तमण्डलमेव च ॥ व्यथा
 दाहश्च पाकश्च करडूश्च पिङ्गकोद्भवाः ॥ १७१ ॥
 वृद्धे रक्ताङ्ग-नेत्रत्वं धिराराणं पूरिता तथा ॥ गात्रा-
 राणं गौरवं निद्रा मेहो दाहश्च जायते ॥ १७२ ॥ क्षीरो
 ऽन्ने नधुराकाङ्क्ष मूर्च्छा च त्वचि रूक्षता ॥ शोधि-

ल्यञ्च शिराणां स्या द्वाता दुन्मार्ग गाभिता ॥ १७३ ॥
 (वातात् रूक्षदौ रयज नितात्) अरुणं फेनिलं रू-
 क्षं परुषं तनु शीघ्रगम् ॥ आस्कन्दि सूचीनिस्रोदि
 रक्त स्याद्वात दूषितम् ॥ १७४ ॥ पित्तेन पीतं हरितं नी-
 लं श्यावञ्च विस्त्रकम् ॥ अस्वा दूषां माक्षिकाणां
 पिपीलिका मनिष्टकम् ॥ १७५ ॥ शीतलं बद्धलं स्नि-
 ग्धङ्गैः रिकोदक सन्निभम् ॥ मांस पेशी प्रभं स्कन्दि
 मन्दगं कफ दूषितम् ॥ १७६ ॥ द्विदोष दुष्टं संसृष्टं
 त्रिदुष्टं पूति गन्धकम् ॥ सर्व लक्षणा संयुक्तं काञ्चि
 काभञ्च जायते ॥ १७७ ॥

भा० दुष्ट रक्तमें सूजन लाल चकत्ते । पीडा दाह पाक खुजली फुनसियां
 यह होती है ॥ १७१ ॥ रक्त के बढ़ने में शरीर और नेत्र लाल शिराओंकी पूर्णता
 तथा ॥ अङ्गोंमें भारीपन निद्रा प्रमेह और दाह येह होते हैं ॥ १७२ ॥ रक्त के
 क्षीणमें मधुरकी दृच्छा मूर्च्छा त्वचामें रूक्षता । शिथिलता शिराओंकी होती
 है ॥ वातसे उन्मार्ग गमन होता है ॥ १७३ ॥ (रूक्ष और क्षीणता से)
 अरुण जागवाला रूखा कठोर सूक्ष्म शीघ्र चलनेवाला फुटकियों से युक्त सुई
 सी चुभनेवाला । ऐसा रक्त वातसे दूषित होता है ॥ १७४ ॥ पित्त से पीला हर नी-
 ला काला दुर्गन्धि युक्त ॥ अमधुर ऊषण माक्षिका और चींटी इनकी अप्रिय होता है
 ॥ १७५ ॥ कफसे बिगडा हुआ शीतल मोटा चिकना गेरू के जल सदृश ॥ मांसकी
 धैली समान गाँठोंसे युक्त मन्द चलनेवाला होता है ॥ १७६ ॥ दो दोषों से बिगडा हुआ
 वा भिले हुआ लक्षणा होता है तथा तीन दोषों से दुष्ट दुर्गन्धिवाला होता है ॥ सब
 लक्षणों से युक्त काँजी के समान होता है ॥ १७७ ॥

विषदुष्टं भवेत्श्यावं नासिकोन्मार्गं तथा ॥ विसं
 काञ्चिक संकाशं सर्वकुष्ठकरं तथा ॥ १७८ ॥ इन्द्र
 गीप प्रभं ज्ञेयं प्रकृति स्थम सहनम् ॥ शोथे दाहे

ऽङ्गपाके च रक्तवर्णोऽसृजः स्त्रुतो ॥ १७६ ॥ वातरक्ते
 तथा कुष्ठे सपीडि दुर्जये ऽनिले ॥ पाराडुरोगे श्लीपदे
 च विषदुष्टे च शोणिते ॥ १७७ ॥ ग्रन्थ्यर्बुदा पचीक्षु
 द्र रोगाधि मन्थकाभिधे ॥ विदारी स्तनरोगेषु गात्रा
 णां सादगौरवे ॥ १७८ ॥ रक्ताभिष्यन्द तन्द्रायां पूति
 त्राणस्य देहिके ॥ यद्वत् स्नीह विसर्पेषु विद्रधौ पि-
 डकोद्गमे ॥ १७९ ॥ करौघं घ्राणवक्त्रा णां पाके
 दाहे शिरो रुजि ॥ उपदंशे रक्त पित्ते रक्त स्रावे प्रश-
 स्यते ॥ १८० ॥ दोषेष्वे शु प्रक्षरौर्वा जलौका लावका
 हिभिः ॥ अथवापि शिरामोक्षैः कारयेद्रक्त पातन-
 म् ॥ १८१ ॥ नकुर्वीत शिरामोक्षं कृशस्थानि ध्यवा-
 यिनः ॥ स्त्रीवस्य भीरोगभिरायाः स्रतायाः पा-
 राडु रोगिराः ॥ १८२ ॥

भा० विषसे उष्ण काला नाक से जानेवाला । दुर्गन्धि युक्त कांजी के समान
 सब कुष्ठों को करनेवाला होता है ॥ १७६ ॥ प्रकृतस्थ पतला वीर बड़ही के
 समान जानना चाहिये ॥ सृजन दाह अंगपाक रक्तवर्ण फस्त ॥ १७६ ॥ वात
 रक्त तथा कुष्ठ पीडाके सहित दुर्जय वानमें ॥ पाराडुरोग श्लीपद विषसे दुष्ट
 रुधिर ॥ १७७ ॥ गांठ अर्बुद अपची क्षुद्ररोग औधमन्थक ॥ विदारी स्तनरो
 ग शरीरकी पीडा और भारीपन ॥ १७८ ॥ रक्ताभिष्यन्द तन्द्रा दुर्गन्धियुक्त ना
 क मुख देह वाला ॥ निर्ली पिलही विसर्प विद्रधि और फुनसियों के होने में
 ॥ १७९ ॥ कान हीठ नाक मुख इनका पाक दाह शिरकी पीडा ॥ उपदंश रक्त
 पित्त इनमें फस्त अच्छी है ॥ १८० ॥ इन दोषों में पढ़ने से अथवा जोक न
 म्बी इनसे ॥ अथवा फस्त से रुधिर निकल जावे ॥ १८१ ॥ दुर्बल को बड़त
 मेषुन करनेवाले की नपुंसक की इरपीक की गर्भिणीकी जन्माकी पाराडुरोग
 वालेकी ॥ १८२ ॥

पञ्च कर्म विशुद्धस्य पीत स्रेहस्य चार्शसाम् ॥ सर्वा

इं शोथ युक्ताना मुदरि श्वास कासिनाम् ॥ १८६ ॥
 छर्द्यतीसार कुष्ठाना मति स्विन्नतरोरपि ॥ जनषोड्
 प्रावर्षस्य गतसक्तिकस्य च ॥ १८७ ॥ आघाताद्
 स्त्रुण रक्तस्य शिरामोक्षो न प्रास्यते ॥

(तथा च स्त्रुणरक्तस्य रक्त पित्तादिना गत रक्तस्य)
 एषां चात्यधिके रोगे जलौकाभिर्विनिर्हरेत् ॥ तथा
 च विष जुष्टानां शिरामोक्षो न प्रास्यते ॥ १८८ ॥ गो
 शृङ्गे न जलौकाभिर लावूभि रपि त्रिधा ॥ वातपित्त
 कफैर्दुष्टं शोणितं स्वावयेद् बुधः ॥ १८९ ॥ द्विदोषा
 भ्यान्तु दुष्टं यत् त्रिदोषै रपि दूषितम् ॥ दूषितं स्वा
 वयेद् युक्त्या शिरामोक्षैः यदै स्तथा ॥ १९० ॥ गृह्णा
 ति शोणितं शृङ्गं दशाङ्गुल मितं स्वलात् ॥ जलौ
 का हस्त मात्रं तु तृस्वी तु द्वादशा ङ्गुलम् ॥ १९१ ॥

भा० पंच कर्मसे शृङ्ग की स्नेह पीयेकी ववासीर बालेकी ॥ सब अंगमें शोथ
 युक्त की उदरवाला प्रवास कास वाले की ॥ १८६ ॥ वमन अतीसार कुष्ठ वाले
 की अति स्विन्न शरीर वालेकी ॥ सोलह वरस से कम की और सतर वरस वा
 ले की ॥ १८७ ॥ चोट से रुधिर निकले की इनको फाल अच्छी नहीं है ॥ उस
 प्रकार रक्त पित्तादि निकले रक्तका ॥ इनके रोग बहुत बढ जानेमें जोकों से
 रुधिर निकाले ॥ वैसेही विष युक्तों की शिरामोक्ष अच्छा नहीं है ॥ १८८ ॥
 शृङ्ग से जोकों से और तृस्वी से भी तीन प्रकार ॥ वात पित्त कफ से दुष्ट रुधि
 र की बुद्धिवान निकलवावे ॥ १८९ ॥ दो दोषों से जो दुष्ट और जो तीनों दोषों से
 दूषित ॥ ऐसे विगड़े जूचे को नस्तर से युक्ति के साथ निकलवावे ॥ १९० ॥
 दशा उङ्गुल की सींगी के द्वारा दलात्कारसे निकलवावे ॥ और हाथ भरकी
 जोक तथा बारह अंगुल की तृस्वी ॥ १९१ ॥

पदमङ्गुल मात्रस्य शिरा सर्वाङ्गु शोधिनी ॥ शीते

निरन्ने मूर्च्छाति निद्राभीति मदश्रमैः ॥ १६२ ॥ यु-
 क्तेना प्रावये रक्तं तथा विण्मूल सङ्गिनाम् ॥ शो-
 णिते चा प्रवृत्तेषु कुष्ठ त्रिकटु सैन्धवैः ॥ १६३ ॥
 मर्दयेत् ब्रह्म वक्त्रञ्च तेन रक्तं प्रवर्त्तेते ॥ तस्मान्न
 प्रीति नात्युषो ना स्विन्नेनाति नापिते ॥ १६४ ॥ पी-
 त्वा यवागूं तृप्तस्य स्वावये च्छोषांतं बुधः ॥ अति
 स्विन्नस्योष्णा काले तथैवाति शिरा व्यधात् ॥ १६५ ॥
 अति प्रवर्त्तेते रक्तं तत्र कुर्व्यात्प्रति क्रियाम् ॥

भा० नस्तर एक जंगल का नुस सरोरुह ॥ शीतमें उपवास में मूर्च्छा पीड़ा नि-
 द्रा भय मद श्रम इनसे ॥ १६२ ॥ युक्त में फल न खुलवावे और मूल मूत्र सङ्गि
 योंकी ॥ रुधिर के न निकलने में कूट त्रिकुटु सैन्धव इनसे ॥ १६३ ॥ ब्रह्म का
 मुख मले । उस्से रक्त निकलना है ॥ इस वास्ते न शीतमें न अति उष्ण में
 न अति स्विन्न में न अति नापित में रुधिर निकलवावे ॥ १६४ ॥ यवागू को
 पीकर तृप्तज्वे की फलत खुलवावे ॥ अति स्विन्नकी उष्णकाल में वैसीही अ-
 ति शिरा व्यध से ॥ १६५ ॥ रक्त बहने निकलना है उसका बूझान करे ॥

को

अति प्रवृत्ते रक्तेषु लोभ्र सज्जर साञ्जनेः ॥ १६६ ॥ य-
 वगोधूम चूर्णे च धव धन्वन गैरिकैः ॥ सर्प निर्वो-
 कि का चूर्णे वामतः स्थापितं नरः ॥ १६७ ॥ मुखं
 ब्रह्मस्य दद्धा च प्रीति ज्योष चरे ब्रह्माम् ॥ विधे
 दूर्ध्व शिरान्ताव हृत्तैत जारिण वन्हिना ॥ १६८ ॥ ब्र-
 ह्म कपायं सन्धते रक्तं स्कन्दयते हिमः ॥ ब्रह्मस्यं
 भोजये त्सारो दाहः सङ्कोचये च्छिराः ॥ १६९ ॥

भा० वद्धन रक्तके निकलने लोथ रत्न रसवत इनसे ॥ २६६ ॥ और जब गेहूं के चूर्णसे और धव जवासे गेरू इनसे ॥ और सांपकी केंचली का चूर्णवारं तरफ रसके मनुष्य इनसे ॥ २६७ ॥ ब्रण का मुख बान्धकर शीतल द्रव्योंसे उपचार करे ॥ अथवा उसके ऊपर सिरको बान्धे । और चार अग्निसे जलावे ॥ २६८ ॥ ब्रण को कपाय जोड़ना है और शीतल रक्तको जमाना है ॥ ब्रणके मुखमें क्षार योजना करे और दाह सिरा का सङ्कोच करते हैं ॥ २६९ ॥

रक्ते दुष्टे ऽवशिष्टे ऽपि व्याधिनैव प्रकुप्यति ॥ अतो
रक्षेत् सावशेषं रक्ते नाति स्तुतिर्हिता ॥ २०० ॥ आ-
न्ध्य माक्षेपकं तृषणान्तिमिरं शिरसोरुजः ॥ पक्षा
घातं श्वास कासौ हिक्कादाहौ च पाण्डुताम् ॥ २०१
कुरुते ऽतिस्तुतं रक्तं मरणं वा करोति च ॥ देहस्योत्प-
त्ति रसृजो हेहस्ते नैव धार्यते ॥ २०२ ॥ रक्तं जीवस्य
चाधार स्तस्मा द्रक्षेत् सृगुबुधः ॥ शीतोप चारैः कुपि
ने स्तुत रक्तस्थ मारुते ॥ २०३ ॥ कोप्येण सर्पिषा शोथं
सव्यथं परिषेचयेत् ॥ क्षीणस्यैण शशोरभ्र हरिण
च्छाग मांसजः ॥ २०४ ॥

भा० दुष्ट रक्तके वाक्ती रहने में भी व्याधी प्रकोप को नहीं प्राप्त होती ॥ इसवास्ते अवशेष के सहित रक्षा करे रक्त का वद्धन निकलना हित नहीं है ॥ २०० ॥ अन्धा पन आक्षेपक तृषणान्तिमिर शिरकी पीड़ा ॥ पक्षाघात श्वास कास हिचकी दाह पाण्डुता ॥ २०१ ॥ इनको वद्धन निकलना रक्त करना है ॥ और मरणको भी करता है । रक्त से शरीर की उत्पत्ति है और देह उसीसे रहता है ॥ २०२ ॥ रक्त जीवका आधार है इसवास्ते बुद्धिवान् रक्त की रक्षा करे ॥ प्रसूत लिये का शीत उपचार से कुपित हुवे वानमें ॥ २०३ ॥ सौल गरुड घनसे पीड़ाके शोधको सींचे ॥ क्षीण को हरिण श्वरगोश डरभ्र लाल हिरन बकरा इनका ॥ २०४ ॥

रसः समुचिनेः पाने क्षीरं षष्टिकया हितम् ॥ पीडा

शान्ति लघुत्वं च व्याध्युपद्रव संक्षयः ॥ २०५ ॥ मनः
स्वास्थ्यम्भवे च्चिह्नं सम्यक्निःसारिनेऽसृजि ॥
व्यायाममैद्युनं क्रोधशीतस्नानप्रधानकान् ॥ २०६ ॥
एकाशनं दिवानिद्राक्षारान्मूकदृभोजनम् ॥ शोकं
वादमजीर्णञ्च त्यजेदावलदर्शनात् ॥ २०७ ॥

[अथ प्रसादनकर्मणि]

सेक आश्रयोत्तनं पिशडी विडालस्तर्पणं तथा ॥ सु-
टपाकेऽञ्जनञ्चेति कृत्वा नेत्रमुपाचरेत् ॥ २०८ ॥

भा० शीतलवा प्रशस्त है और पीनेमें साठी चावलके साथ दूध हित है ॥ पी-
डा की शान्ति हलकापन रोगके उपद्रवों का नाश ॥ २०५ ॥ मनकी स्वस्थ-
ता होती है । अच्छी तरह फल लियेमें यह लक्षण होते हैं ॥ कसरत मैद्युन
क्रोध शीतलस्नान कठोरचात इनकी ॥ २०६ ॥ एकवार भोजन दिनमें प्र-
यत्न क्षार अम्ल कटु इन रसोंका भोजन ॥ शोक वाद और अजीर्ण इनकी
चल आने तक त्याग देवे ॥ २०७ ॥

[अनन्तर नेत्रकी स्वच्छताके कर्म] सेक आश्रयोत्तन पिशडी विडाल तर्पण
तथा ॥ सुट पाक अञ्जन इनको करके नेत्रका इलाज करे ॥ २०८ ॥

[अथ कल्पोविधिः तत्र सेकविधिः ।]

सेकस्तु सूक्ष्मधाराभिः सर्वस्मिन्नयने हिनः ॥ मी-
लिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेयश्चतुरङ्गुलात् ॥ २०९ ॥
स सत्नेहो भवेत्वापि पिप्पे रक्ते च रोपणः ॥ लेखन-
स्तु कफे कार्य्यस्तस्य मात्राभिधीयते ॥ २१० ॥ य-
द्भिर्वाचं शतैः त्वेहे चतुर्भिश्चैव रोपणं ॥ तैस्त्रि-
भिर्लेखने कार्य्यः सेको नेत्रप्रसादने ॥ २११ ॥

भा० [अनन्तर कल्प विधि ।] उसमें सेक विधि ॥ मनुष्य की आँख बन्द कर
वाकर चार उंगल ऊपर से सेक देना चाहिये । यह सब प्रकार के नेत्र रोग में
हित है ॥ २०६ ॥ स्निह के सहित वातमें हित है और पित्त तथा रक्त में रोपण ॥
कफ में लेखन करना चाहिये उसकी मात्रा कहना है ॥ २१० ॥ स्निहमें छ सौ मात्रा
और रोपण में चारसौ मात्रा तथा नीनसौ मात्रा लेखन में नेत्र प्रसादन सेक क
रना चाहिये ॥ २११ ॥

निमेषौन्मेषां पुंसा मङ्गल्या च्छोटिकाथ वा ॥ गुर्व
क्षरो चारणं वा वाङ्म्रात्रियं स्मृता बुधैः ॥ २१२ ॥ से
कस्तु दिवसो कार्यो रात्रौ चात्यन्ति के गदे ॥ शरराड-
स्य दलैः पिष्टैः पङ्कमाज्यं पयोहितम् ॥ २१३ ॥ सु
खोष्णं नेत्रयो रन्तः सिक्कं वातार्ति नाशनम् ॥

भा० मनुष्यों का निमेष और उन्मेष उंगली की चुटकी ॥ अथवा गुरु अक्षरका
उच्चारण इसको बुद्धिवातों ने वाङ्म्रात्रा कहा है ॥ २१२ ॥ सेक दिनमें करना चाहि
ये और रातमें अत्यन्तिक रोगमें करना चाहिये ॥ अराडी के पत्ते पीसकर उसे
पकाया हुआ बकरी का दूध हित है ॥ २१३ ॥ सील गरम नेत्र के भीतर सीचा हुआ
वानकी पीडा का नाशक है ॥

[अथा श्रियोतन विधिः।]

क्वाथ दौघ्रासव स्निह विन्दुना यत्तु पातनम् ॥ द्यङ्गु
लोन्मीलिते नेत्रे प्रोक्तमाश्रियोतनं हितम् ॥ २१४ ॥
विन्दवोऽष्टौ लेखनेषु रोपणे दश विन्दवः ॥ स्नेहे
ते द्वादश प्रोक्ताः शीतले कोष्ठा रूपिणः ॥ २१५ ॥
उष्णो तु शीत रूपाः स्युः सर्वत्रै वैष निश्चयः ॥ वाते
तिक्कं तथा स्निग्धं पित्ते मधुरं शीतलम् ॥ २१६ ॥ क
फे तिक्कोष्ठा रूपाः क्लृप्ताश्च श्रियोतनं हितम् ॥ आश्रियो

तनानां सर्वेषां मात्रास्या द्वाक् शनोन्मिता ॥ २१७ ॥

ततः परं लोचनांश्चे घञा नामयोगतः ॥ आश्रयो

तनं न कर्तव्यं निशायां केन चित् क्वचित् ॥ २१८ ॥

[तद्यथा] किल्वादि पञ्च मूलेन वृहत्ये राण्ड शिशुभिः

॥ क्वाथ आश्रोतने कोषीणा वाताभिष्यन्द नाशनः ॥

२१६ ॥ [अथ पिराडी विधिः] युक्त भेषज कल्क

स्य पिराडीक बल मात्रया ॥ वस्त्र खण्डेन संबद्धा ने

त्रेऽभिष्यन्द नाशिनी ॥ २२० ॥

भा० अनन्तर आश्रोतन विधि ॥ काढ़ा मधु आसव स्नेह इनको दो अंगत खु
ले नेत्र में जोवन्द २ रुपकाना है उसको औश्रोतन कहा है वोह हिन है ॥

॥ २१४ ॥ लेखन में आठ बून्द रोपण में दशबून्द ॥ स्नेह में बारह बून्द कहे
हैं ॥ पीतल में सील गरम ॥ २१५ ॥ उष्ण में पीत होवे ऐसे सब जगह निश्च
य है । वात में निक तथा क्षिण्य पित्त में मधुर और शीतल ॥ २१६ ॥ रुफ में नि

क्त उष्ण रूक्ष क्रमसे आश्रयोतन हिन है ॥ सब आश्रयोतनोंकी सी मा
त्रा हीनी है ॥ २१७ ॥ उसके अनन्तर नेत्रोंको औषधोंके अयोग से ॥ आश्रयो

तन न करना चाहिये रातमें किसी से कभी ॥ २१८ ॥ [वाह जैसे]

बेल आदि पञ्चमूल और कबेली भंडी सहिजन इनका ॥ काढ़ा आश्रयोतन में
गरम सील वाताभिष्यन्द का नाशक है ॥ २१९ ॥ [अनन्तर पिंडी विधि]

युक्त औषध के कल्क की पिंडी कबल मात्रा से ॥ वस्त्र से इकड़े से बन्धी
जई नेत्रके अभिष्यन्द की नाशक है ॥ २२० ॥

स्निग्धोष्णा पिरिडका वाते पित्तसा पीतला भता ॥

रूक्षोष्णा श्लेष्मणा प्रोक्ता विधिरुक्ता बुधेरयम् ॥

२२१ ॥ [सा यथा] धात्री विरचिनापित्त शिशु प

त्र कृता कफे ॥ [अथ विडालक विधिः] ।

विडालको वहिलेपो नेत्र पद्म विवर्जितः ॥ तस्य

मात्रा परि ज्ञेयां मुखालेप विधानवत् ॥ २२२ ॥ यष्टी
गैरिक सिन्धूत्थ दर्वी तार्क्ष्यैः समांशकैः ॥ जलपि
ष्टैर्वहिलेपः सर्वनेत्रामया यहः ॥ २२३ ॥

[अथ तर्पणविधिः] वाता तप रजोर्हानि वैप्रमन्थुत्तान
शायिनः ॥ अभितो माष चूर्णेन क्लिन्नेन परि पिण्डि
तौ ॥ २२४ ॥ समौ दृढौ च संबोधौ कर्त्तव्यौ नेत्र कौशयोः
॥ पूरयेत् घृत मण्डेन विलीनेन सुखोदकैः ॥ २२५ ॥
सर्पिषा शतधौतेन क्षीरजेन घृतेन वा ॥

भा० स्निग्ध उष्ण पिंडिका वात में और पित्त में वो शीतल कही है ॥ सूखी उष्ण
कफ में कही है ॥ यह विधि बुद्धिवानों ने कही है ॥ २२२ ॥ बोह जैसे ।

आवलों से बनाई हुई ठिकिया पित्त में । सहिजने के पर्तों की कफ में हित है ॥

[अनन्तर विडालक विधि ॥ नेत्र पद्मसे रहित बाहर लेपको विडालक क
हते हैं ॥ उसकी मात्रा मुख आलेप के विधान समान जाननी चाहिये ॥ २२२ ॥
मुलहठी गेरू सैन्धव दारहरवी रसौत इनको सम भाग लेकर ॥ जल से पीसके
बाहर लेप किया हुआ सबनेत्र रोगोंका नाशक है ॥ २२३ ॥

[अनन्तर तर्पण विधिः ।] वात आतप धूल इनसे रहित घरमें चित सोये ऊबेके
॥ नेत्र में चारों तरफ उड़दके गीले चूनको लगावे ॥ २२४ ॥ सम और दृढ़ आँ
खोंके चारों तरफ से घेरकर जैसे कबोरी होनी है ॥ उसके भीतर टिघला घृत वा
मांड वा सील गरम जल इसे ॥ २२५ ॥ अथवा सोवारका धीया घृत या वृषका
घृत इनसे भरे ॥

निमग्नान्यक्षि पद्मारिण यावत् स्युस्तावेदेव हि ॥

॥ २२६ ॥ पूरयेन्मीलिते नेत्रे तत उन्मीलयेच्छनैः ॥

भिषग्भिरेष विख्यात स्तपर्णस्योदितो विधिः ॥ २२७ ॥

यद्रूतञ्च परिष्यन्दि नेत्रं कुटिल माविलसू ॥ शीर्षा

पद्म शिरोत्यात कृच्छ्रोन्मीलनं संयुतम् ॥ २२८ ॥
 तिमिरार्जुन शुक्राद्यै रभिष्यन्दाधि मन्थकैः ॥ शु-
 च्क्राक्षि पाक शोथाभ्यां युतं वात विपर्ययैः ॥ २२९ ॥
 दत्तेन तर्पयेत् सम्यङ् नेत्ररोग विशारदः ॥ तर्पणं
 धारये द्वर्त्म रोगे वातां शतं बुधैः ॥ २३० ॥ स्वस्थे क
 फे सन्धि रोगे चात्रां पञ्च शतानि च ॥ षट् शता
 नि कफे कृष्णा रोगे सप्त शतानि हि ॥ २३१ ॥ दृष्टि
 रोगे शता न्यष्टा अधिमन्थे सहस्रकम् ॥

भा० निमग्न नेत्र यद्यमजब तक होते हैं तब तक ही भरे ॥ २२६ ॥ उसके
 अनन्तर धीरे २ खीले ॥ वैद्यों ने यह तर्पण की विधि प्रसिद्ध कही है ॥ २२७ ॥
 जो रूखा परिष्यन्दि कुटिल मैला ॥ नेत्र पलकें गिरीजई शिरोत्यत कटसे उन्मी
 लन से युक्त ॥ २२८ ॥ तिमिर अर्जुन शुक्र आदिसे युक्त और अभिष्यन्द अधि
 मन्थक दूनसे ॥ तथा शुष्क नेत्र पाक शोथ इनसे युक्त वात विरुद्धों से ॥ २२९ ॥
 दिये डूबे औषध से अच्छी तरह पर नेत्र रोग का जाननेवाला तर्पण करे ॥ व
 त्म रोगमें सौमात्रा तर्पण धारण करे ॥ २३० ॥ स्वस्थ में कफ के सन्धिरोग में पा
 न सौ ॥ और छ सौ तथा कफ के कृष्ण रोग में सान सौ ही ॥ २३१ ॥ दृष्टि रोग में
 आठसौ अधिमन्थ में हजार ॥

सहस्रं चात रोगेषु धार्यमेव हि तर्पणम् ॥ २३२ ॥ पूर्णे
 चापाङ्गु मार्गेण स्नायित्वाक्षि शोधयेत् ॥ स्निग्धेन
 यव पिष्टेन स्नेह धीर्ये रितं ततः ॥ २३३ ॥ यथा स्वन्धू
 म पानेन कफमस्य विरेचयेत् ॥ सकाहं वा त्वहं वा
 पि पञ्चाहं तर्पणञ्चरेत् ॥ २३४ ॥ तर्पणे तृप्ति लि
 ङ्गानि नेत्रस्थितानि लक्षयेत् ॥ सुखं स्वभावबोध
 त्वं वैशद्यं नेत्रपाटवम् ॥ २३५ ॥ निर्हन्ति व्याधिशा

न्तिश्च क्रिया लाघवमेव च ॥

(क) निर्हन्तिः सुखं क्रियालाघवम् । नेत्रस्य क्रियायां
निर्मेघोन्मेषादौ लघुता । गुर्वादिल मतिस्त्रिगुध
मश्रु करण्डूप देहवत् ॥ घर्षतोद युतं नेत्र मति त
र्पित मादिशेत् ॥ २३६ ॥ आस्त्राव शोफ पीडाय
मुपदेह समाकुलम् ॥ रूक्ष मस्त्राव मरुगं नेत्रं
स्था हीन तर्पितम् ॥ २३७ ॥ अनयोर्दोष बाहुल्या
त् प्रयतेत् चिकित्सिते ॥ रूक्ष स्त्रिगुधोपचाराभ्या
मेतयोः स्यात्प्रति क्रिया ॥ २३८ ॥

(अनयोः अति तर्पित हीन तर्पितयोः)

भा० और वातरोग में हजार मात्रा तर्पण रखना ही चाहिये ॥ २३२ ॥ अपाङ्ग-
मार्ग से पूर्ण में स्त्राव कराकर नेत्र शोधन करावे ॥ स्त्रिगुध जवके आटेसे स्नेह
वीर्य में जो कहा है उससे ॥ २३३ ॥ अपने गौर पर धूम पान करके इसके कफको
निकाले ॥ एकदिन वा तीनदिन अथवा पांचदिन तर्पण करे ॥ २३४ ॥ तर्पण
इन नेत्रके दृष्टि लक्षणों को जानलेवे ॥ सुख स्वप्न अवबोधता वैशद्य नेत्र
की पढ़ता ॥ २३५ ॥ सुख क्रिया लाघव रोगकी शान्ति येह लक्षण हैं ॥

(क) सुख । नेत्रकी क्रिया में अर्थात् निर्मेघ उन्मेष आदि में लघुता । भारी
पैला अति स्त्रिगुध और अश्रु रुजली वृद्धके मानिन्द ॥ घर्ष तोद से युक्त
अर्थात् पीडा विशेष इनसे युक्त नेत्र की अति तर्पित कहे ॥ २३६ ॥ आस्त्राव
स्त्रजन पीडा वृद्धकी सी व्याकुल ॥ रूखी पानीका जाना अरुण नेत्र होते हैं
हीन तर्पण से ॥ २३७ ॥ इनकी दोषोंकी अधिकतासे चिकित्सा में यत्न करे
॥ रूक्ष स्त्रिगुध उपचार से इनकी चिकित्सा होनी है ॥ २३८ ॥

(अति तर्पित और हीन तर्पितोंकी)

दुर्दिना ल्यूणा शीतेषु चिन्तायां संभ्रमेषु च ॥ अ-
शान्तो यद्रवे चाक्षि तर्पणं न प्रशस्यते ॥ २३९ ॥

[अथ पुटपाक विधिः] द्वैविल्वे स्निग्ध मांसस्य परद्रव्यं पलं मतम् ॥ द्रवस्य कुडवोन्मानं सर्वमेकत्र पेषयेत् ॥ २४० ॥ तदेकत्र समालोड्य पत्रैः सुपरि वेष्टितम् ॥ पुटपाक विधानेन तत्र पश्चात्तद्रसं बुधैः ॥ २४१ ॥ तर्पणोक्ते न विधिना यथा वदवधारयेत् ॥ दृष्टिमध्ये निषेद्यः स्यान्नित्यमुत्तानशायिनः ॥ २४२ ॥ स्नेहनो लेखनश्चैव रोपणश्चेति स त्रिधा । हितः स्निग्धोऽतिरूक्षस्य स्निग्धस्य स तु लेखनः ॥ ४३

भा० बुद्धिसे अतिशीत में उष्ण में विन्ना में संधम में ॥ उपद्रव के शान्त न होने में तत्र तर्पण प्रशस्त नहीं है ॥ २४० ॥ [अनन्तर पुटपाक विधिः] हरिण आदि का मांस दो पल और औषध पल २ भर ॥ और द्रव पावभर सब को एक जगह पीसे ॥ २४० ॥ इन सबको एक जगह मिलाकर पत्रोंसे अच्छी तरह लपेटके ॥ पुटपाक के विधानसे उसको पकाकर उसके अनन्तर उस रसको ॥ २४१ ॥ तर्पण में कहे ऊँचे विधानसे अच्छी तरह पर धारण करे ॥ नित्य चित्त सुलाकर दृष्टि के बीचमें डाले ॥ २४२ ॥ बौह स्नेहन लेखन रोपण ऐसे तीन प्रकार होता है ॥ अतिरूक्ष को स्निग्ध हित होता है और स्निग्धको लेखन हित है ॥ २४३ ॥

(क) दृष्टेर्वलार्थः इतरः पित्रासृगा ब्रण वानत्तद् ।

(इतरो रोपणः) स्नेह मांस वसा मज्ज मेदः स्यादौषधैः कृतः ॥ स्नेहनः पुटपाकः स्याद्धार्योऽयं वाक्शतं नरः ॥ २४४ ॥ जाङ्गलानां यकृन्मांसैर्लेखनद्रव्यसंयुतैः ॥ हृष्य लोह रजस्ताम्र शङ्ख विद्रुम सिन्धुजैः ॥ २४५ ॥ समुद्र फेन कासीसं स्त्रोत्रोऽञ्ज दधि मस्तुभिः ॥ लेखनो वाक्शतं तस्य परन्धारणा मिष्य-

ते ॥ स्तन्यजाङ्गल मध्वाज्य तिक्त द्रव्य विपाचिन्तम् ॥

भा० दृष्टि के बलके वास्ते और बाकी पित्त रक्त व्रण वात इनके नाशक है ॥ रोपण । तेल मांस वसा मज्जा मेद औषध से प्रकाये हुवे । यह स्निहन पुट पाक है ॥ इस मनुष्य सौ मात्रा तक धारण करे ॥ २४४ ॥ हरिल आदिकों के यकृत मांस लेखन द्रव्य से युक्त ॥ कान्ति लोह का चूरा नाम्बा शंख मृगा सैन्धव ॥ २४५ ॥ समुद्र फेन कसीस सुरमा रंहीका पानी इनसे लेखन सौ मात्रा तक रखे ॥ २४६ ॥ स्त्री का दूध मृगमांस मधु तिक्त द्रव्य से प्रकाया घृत ॥

लेखनात् त्रिगुणो धार्यः पुट पाकस्तु रोपणः ॥

[तिक्तक द्रव्याण्यह] निम्बामृता वृष पटोल निदिग्धिकाभिः स्यात् पञ्च तिक्तक इति प्रथितो गणोऽयम् ॥ २४७ ॥ आचरेत् तर्पणोक्तां तु क्रियां व्यापत्ति दर्शने ॥ व्यापत्ति दर्शने मिथ्या कृत पुटपाक जनित व्याधि दर्शने ॥

तेजांस्यनिल माकाश मादर्शम्भा स्वराणि च ॥

नेक्षेत तर्पिते नेत्रे यश्च वा पुटपाकवान् ॥ २४८ ॥

भा० यह रोपण पुटपाक लेखन से त्रिगुणा धारण करना चाहिये ॥ २४७ ॥ तिक्तक द्रव्यों की कहते हैं ॥ नीम गिलोय वांसा पटोल कटेली आदसे ॥ पंच तिक्तक होता है ॥ इस प्रकार यह गण कहा है ॥ २४७ ॥ रोग दर्शन में तर्पण में कड़ई किया करे ॥ (क) मिथ्या किये हुवे पुटपाक से उत्पन्न रोगों के देखने में । नेत्र वात आकाश आइना और प्रकाशवाली वस्तु इनको ॥ तर्पण किया हुआ और पुटपाक किया हुआ न देखे ॥ २४८ ॥

[अथ्याञ्जन विधिः ।] अथ संपक्व दोषस्य प्राप्तमञ्जनमाचरेत् ॥ अञ्जनं क्रियेत येन तद्द्रव्यं चाञ्जनममृतम् ॥ २४९ ॥ [तद्यथा] रसो वटीस्तथा

चूर्णमिति त्रिविधमञ्जनम् ॥ यथा पूर्वं बलं तेषु
स्नेहमाहर्मनीपिणः ॥ २५१ ॥ तत्र प्रत्येकं विधा
प्रोक्तं लेखनं रोपणं तथा ॥ स्नेहनञ्चेति लिङ्गानि
तेषां विस्तरतः शृणु ॥ २५२ ॥ लेखनं क्षारतीक्ष्णा
म्लरसैरञ्जनमुच्यते ॥ नेत्रवर्त्मशिराजालात्तत्रोत्र
शृङ्गाटकस्थितम् ॥ २५३ ॥ मुखनासादिभिर्दोष
सुदक्षिण्यस्त्रावयेच्च तत्र ॥ कषायतिक्तकंचापि
सस्नेहं रोपणं मतम् ॥ २५४ ॥ स्नेहस्य शैत्यात् व-
र्गयं स्यात् दृष्टेश्च बलवर्द्धनम् ॥ मधुरं स्नेहमण्डं
तदञ्जनं स्यात् प्रसादनम् ॥ २५५ ॥

भा० अनन्तर अञ्जनविधिः । अनन्तर पके हुए रोपबाले को अञ्जन करे ॥
जिसमें अञ्जन किया जाता है उस द्रव्यको अञ्जन कहते हैं ॥ २५० ॥
बोह जैसे] सबसे तथा चूर्ण ऐसे तीन प्रकार अञ्जन होता है ॥ उनमें पहले
१ स्नेह वलयुक्त मुनियों ने कहा है ॥ २५१ ॥ बोह हर एक तीन प्रकार
लेखन रोपण तथा ॥ स्नेह नइस प्रकार उनके लक्षण विस्तार से सुनी ॥ २५२
॥ क्षार तीक्ष्ण अम्ल रसों से लेखन अञ्जन कहते हैं ॥ नेत्र वर्त्म शिराजालका
शृङ्गाटक में स्थित ॥ २५३ ॥ मुख नाक आंख इनसे रोपको उखेड़ कर बोह
वहता है ॥ कषाय तिक्तभी स्नेहके सहित रोपण कहा है ॥ स्नेहको शीत ता
हीनेसे वर्णको हिन होता है और दृष्टि के बलको बढ़ाने वाला है ॥ मधुर स्नेह
से युक्त नो अञ्जन हीना है प्रसादन है ॥ २५५ ॥

दृष्टिदोषप्रसादार्थं स्नेह नार्थञ्च तद्धितम् ॥ रोपण
मात्रा वर्त्तिस्तु लेखनी स्यात् प्रमारात्तः ॥ २५६ ॥ सा
र्द्धं करेण कभिना रोपणी वर्त्तिरिष्यते ॥ क्रियते स्ने
हनी वर्त्तिर्हि हरेणु कमात्रया ॥ २५७ ॥

ते ॥ स्तन्यजाङ्गल मध्वाज्य तिक्त द्रव्य विपाचिंतम् ॥

भा० दृष्टि के बलके वास्ते और दाकी पितरक्त व्रण वात इनके नाशक हैं ॥ रोपण । नेल मांस वसा मज्जा मेद औषध से पकाये जूवे । यह स्निहन पुट पाक है ॥ इस मनुष्य सौ मात्रा तक धारण करे ॥ २४४ ॥ हरिल आदिकों के यकृत मांस लेखन द्रव्य से युक्त ॥ कान्ति लोह का चूरा नाम्बा शंख मृंगा सैन्धव ॥ २४५ ॥ समुद्र फेन कसीस धुरमा दहोका यानी इनसे लेखन सौ मात्रा तक रखे ॥ २४६ ॥ खी का दूध शृगमांस मधु तिक्त द्रव्य से पकाया घृत ॥

लेखनात् त्रिगुरो धार्यः पुट पाकस्तु रोपणः ॥

[तिक्तक द्रव्याणाम्हा] निम्बामृता वृष पटोल निदि-
ग्धिकाभिः स्यात् पञ्च तिक्तक इति प्रथितो गणो
ऽयम् ॥ २४७ ॥ आचरेत् तर्पणोक्तां तु क्रियां व्या-
पत्ति दर्शने ॥ व्यापत्ति दर्शने मिथ्या कृत पुटपाक-
जनित व्याधि दर्शने ॥

तेजांस्यनिल मांकाश मादर्शान्भा स्वराणि च ॥

ने क्षेत तर्पिते नेत्रे यश्च वा पुटपाकवान् ॥ २४८ ॥

भा० यह रोपण पुटपाक लेखन से त्रिगुना धारण करना चाहिये ॥ २४७ ॥ ति-
क्तक द्रव्यों की कहते हैं ॥ नीम गिलोय बांसा पटोल कदेली आदसे ॥ पंच ति-
क्तक होता है ॥ इस प्रकार यह गण कहा है ॥ २४७ ॥ रोग दर्शन में तर्पण में क-
इई क्रिया करें ॥ (क) मिथ्या किये जूवे पुटपाक से उत्पन्न रोगों के
देखने में । तेज वात आकाश आइना और प्रकाशवाली वस्तु इनको ॥ तर्पण
किया जूवा और पुटपाक किया जूवा न देखे ॥ २४८ ॥

[अथ अञ्जन विधिः] अथ संपक्क दोषस्य प्राप्तम-
ञ्जनमाचरेत् ॥ अञ्जनं क्रियते येन तद्द्रव्यं चाञ्ज-
नम् मतम् ॥ २४९ ॥ [नद्यथा] रसो वदीस्तथा

चूर्णमिति त्रिविधमञ्जनम् ॥ यथा पूर्वं बलं तेषु
 स्नेहमाद्गर्भनीषिणाः ॥ २५१ ॥ तत्र प्रत्येकं विधा
 प्रोक्तं लेखनं रोपणं तथा ॥ स्नेहनञ्चेति लिङ्गानि
 तेषां विस्तरतः शृणु ॥ २५२ ॥ लेखनं द्वारतीक्ष्णा
 स्त्ररसैरञ्जनमुच्यते ॥ नेत्रवर्त्मशिराजालश्रोत्र
 शृङ्गाटकस्थितम् ॥ २५३ ॥ मुखनासादिभिर्दोष
 सुतक्लिश्यस्त्रावयेच्च तत् ॥ कषायं तिक्तकं चापि
 सस्नेहं रोपणं मतम् ॥ २५४ ॥ स्नेहस्य शेत्यान् व-
 र्ग्यं स्यात् दृष्टेश्च बलवर्द्धनम् ॥ मधुरं स्नेहमण्डं
 तदञ्जनं स्यात् प्रसादनम् ॥ २५५ ॥

भा० अनन्तर अञ्जनविधिः। अनन्तर पकेज्वे रोपबाले को अञ्जन करे ॥
 जिस अञ्जन किया जाता है उस द्रव्यको अञ्जन कहते हैं ॥ २५० ॥
 बोह जैसे] रसबरी तथा चूर्ण ऐसे तीन प्रकार अञ्जन होता है ॥ उनमें पहले
 १ स्नेह वलयुक्त मुनिषीं ने कहा है ॥ २५१ ॥ बोह हर एक तीन प्रकार
 लेखन रोपण तथा ॥ स्नेह न इस प्रकार उनके लक्षण विस्तार से सुनो ॥ २५२
 ॥ क्षार तीक्ष्ण अम्ल रसों से लेखन अञ्जन कहते हैं ॥ नेत्र वर्त्म शिराजालका
 शृङ्गाटक में स्थित ॥ २५३ ॥ मुख नाक आँव इनसे दोषको उखेड़ कर बोह
 चहाता है ॥ कषाय तिक्तभी स्नेहके सहित रोपण कहा है ॥ स्नेहको शीत ना
 होनेसे ब्रणकी हिन होना है और दृष्टि के बलको बढ़ाने वाला है ॥ मधुर स्नेह
 से युक्त नो अञ्जन होता है प्रसादन है ॥ २५५ ॥

दृष्टिदोषप्रसादार्थं स्नेहवार्थञ्च तद्विनम् ॥ ऐरण्ड-
 मात्रा वर्तिस्तु लेखनी स्यात् प्रमाणात् ॥ २५६ ॥ सा
 र्द्धं करेण कभिता रोपणी वर्तिरिष्यते ॥ क्रियते स्ने-
 हनी वर्तिर्द्विहरेण कमात्प्रया ॥ २५७ ॥

स्य मात्रानु पिष्टा वर्ति मितामता ॥ चूर्णं तु लेखनं
वेद्यै द्विशलार्कं प्रदीयते ॥ २५८ ॥ रोपणं त्रिशला
कं स्याच्चतस्रः स्नेहनाञ्जने ॥

(चतस्रः शलाकाः स्नेहनाञ्जने चूर्णं)

सुरवेयां मुकुलाकारकलायपरिमराडला ॥ अ-
ष्टाङ्गुलाशलाकास्यादशमजाधातुजायवा ॥ ५८ ॥

(कलायपरिमराडला अग्रे कलायवद्वर्तुला।)

ताम्रलोहाशमसंजाताशलाकालेखनेमता ॥ सु-
वर्णा रजतोद्भूता स्नेहने समुदाहृता ॥ २६० ॥

भा० दृष्टिदोषकी सफाई के अर्थ और स्निहन के अर्थ दोहू हित है ॥ प्रमाण
से अंडी के बीज के समान लेखनी बनी होती है ॥ २५६ ॥ और डेढ़ में बड़ी
के बीज समान रोपणी वर्ति रही है ॥ और स्नेहनी वर्ति दो में बड़ी के बीज
के समान जाती है ॥ रसांजन की मात्रा पिष्ट वर्ति के समान होती है ॥ लेखन
चूर्णों के द्वारा दोसलाई दिया जाता है ॥ रोपण तीन सलाई और स्नेहन
अञ्जन में चार सलाई दिया जाता है ॥

जो सुरव में फूल की कली के समान मटर के बराबर गोलाई ॥ आठ उं
गल की सलाई होती है पत्थर की अथवा धानुकी ॥ २५८ ॥ अग्र में मट-
र के समान गोल ॥ ताम्बा लोहा पत्थर इनकी सलाई लेखन में कही है ॥
सोने चान्दी की सलाई स्निहन में कही है ॥ २६० ॥

अङ्गुली चमृदुत्वेन रोपणं संप्रयुज्यते ॥ कृष्णभा-
गावधिं निम्ब्यादपाङ्गं यावदञ्जनम् ॥ २६१ ॥ हे
मन्ते शिशिरे चैव मध्यान्हे ऽञ्जनमिष्यते ॥ पूर्वा-
ह्ने वापराह्णे वा शीर्षे शरदि शेष्यते ॥ २६२ ॥ व-
र्षास्वनभ्रे नात्पूषो वसन्ते नु सदैव हि ॥ अथवा

सर्वदा प्रातः सायं वाञ्छन माचरेत् ॥ २६३ ॥ नाति
शोतोष्ण वाताभ्रवेलायां तत् प्रयुज्यते ॥ आन्तोऽ
थ रुदिते भीते पीते मद्ये नवज्यरे ॥ २६४ ॥ अजीर्णं
वेगघाते च नाञ्जनं संप्रयुज्यते ॥ रागोपदेहो निमि
रं शूलं संरम्भमेव च ॥ २६५ ॥ निद्रा क्षयञ्च कु-
रुते निषिद्धे युक्त मञ्जनम् ॥

भा० अंगुली मुलायम होने से रोपण में दी जाती है ॥ अञ्जन कृपा भाग को
छोड़ कर अपाङ्ग तक लगावे ॥ २६१ ॥ हेमन्त और शिशिर में मध्याह्न में
अञ्जन कहा है ॥ पूर्वाह्न अथवा अपराह्न में ग्रीष्म ऋतु में कहा है ॥ २६२
॥ वर्षा में चादल न होने पर नवद्वत गरमी में और वसन्त में सदा ही अञ्जन
देवे ॥ अथवा सर्वदा संजा सवरे अञ्जन लगावे ॥ २६३ ॥ उसको अति शीत
उष्ण वात अत्र ऐसे समय में न लगावे ॥ आन्त रुदित भीत इतको और नद्य
पीये की नवज्यर वालेको ॥ २६४ ॥ अंजन न करे और अजीर्ण में वेगके अव
रोध में भी अञ्जन नहीं लगाया जाता है ॥ राग उपदेश निमिर शूल संरम्भ ॥
२६५ ॥ और निद्रा नाश वृत्तको निषिद्ध में किया हुआ अञ्जन करता है ॥

[अथ वटीलेखनी यथा]

शङ्खनाभि विभीतस्य मञ्जापथ्या मनःशिलाः ॥ पि
प्पली मरिचं कुष्ठं वचाचेति समांशकम् ॥ २६६ ॥
छागं क्षीरेण संपिष्य वर्ति कुर्याद् यवो न्मिताम् ॥
एराड मात्रां संपिष्य जलैः कुर्याद्यथा ज्ञनम् ॥ २६७
॥ निमिरं मांसं वृद्धिञ्च काचं षटल मर्बुदम् ॥ रात्र्य
न्धं चार्पिकं शुष्यं वर्ति अन्द्रोदया हरेत् ॥ २६८ ॥

[इति चन्द्रोदया वर्ति लेखनी]

भा० अनन्तर लेखनी वटी जैसे । मांस की नाभ वहीडे की गिरा हड़ में नमिन

पीपल मिरिच कूठ वच इनको बराबर लेकर ॥ २६६ ॥ बकरी के दूध से पीस
के जब बराबर बत्ती करे ॥ अरंडी के बराबर जल से पीसकर अंजन करे ॥
॥ २६७ ॥ तिमिर मांस वृद्धि काच पदल अर्बुद ॥ रात्र्यन्ध वरसाती फूली ।
इनको यह चन्द्रोदय वर्ति नाश करती है ॥ २६८ ॥

[इति चन्द्रोदय वर्ति लेखनी ।]

[अथ रोपणी वर्तिः । अशीति स्तिल पुष्याणि षष्टि
पिप्यलि तरडुलाः ॥ जानी पुष्याणि यञ्चाशान्मरि
चानि तु षोडशः ॥ २६९ ॥ सूक्ष्म पिष्टाम्बुना वर्तिः
कृताकुसुम का भिधा ॥ तिमिरा र्जुन शक्राणां नाशि
नी मांस वृद्धि नुत् ॥ एतस्या अञ्जने प्रोक्ता मात्रा सा
ई हरेणुका ॥ (इति कुसुमिका रोपणी वर्ति)

भा० अनन्तर रोपणी वर्ति ॥ अस्ती तिलके फूल साठ पीपल के दाने । चमे
ली के फूल पचास सोलह मिरिच ॥ २६९ ॥ जल से इनको बारीक पीसकर कु
सुमिका नाम बत्ती बनावे ॥ यह तिमिर अर्जुन शक्र इनको नाश करने वा
ली और मांस वृद्धि की नाशक है ॥ २७० ॥ अंजन में इसकी मात्रा डेढ़ मेव
डी के समान रही है ॥ ॥ इति कुसुमिका रोपणी वर्ति ॥

[अथ स्नेहनी वर्तिः] धात्व्यक्ष यथ्या वीजानि एक द्वि
त्रि गुणानि च ॥ पिष्ट्वा वर्ति जलैः कुर्व्या दञ्जनं द्वि
हरेणुकम् ॥ २७१ ॥ नेत्र स्वावं हरत्याशु वान रक्त रु
जन्तथा ॥ [अथ रस क्रिया लेखनी यथा]

तुत्यमाक्षिक सिन्धूत्या सिता शंख मनः शिलाः ॥

गैरिकं सिन्धु फेनञ्च मरिचं चेति चूर्णयेत् ॥ २७२ ॥

संयोज्य मधुना कुर्व्या दञ्जनार्थं रस क्रियाम् ॥

वर्त्म रोगार्मेति मिरङ्गा च शुक्रहरी पराम् ॥ २७३ ॥

[अथ रोपणो रस क्रिया] रसाञ्जनं सर्ज रसो जानी पु
ष्यं मनःशिलाः ॥ समुद्र फेणो लवणं गैरिकं मरि-
चन्तथा ॥ २७४ ॥ एतत्समाशं मधुना पिष्टं प्रक्लिन्न
वर्त्मने ॥ अञ्जनं श्लेद कराडूद्यं पद्मराज्ज्व प्ररोह-
राम् ॥ २७५ ॥

भा० अथ स्नेहनी वर्ति ॥ आंवले बहेडे हड इनके बीज क्रमसे एकटो तीन
गुना ॥ इनको जलसे पीसकर दो मेवड़ी के बीज समान अञ्जन करे ॥ २७१ ॥
येह नेत्र स्वावको शीघ्र नाश करना है ॥ तथा वान रक्त की पीडा को नाश क
रता है ॥ [अनन्तर रसक्रिया लेखनी जैसे । सीला थोथा सोना मा
खी सैन्धव मिश्री शंख मैसिल ॥ गेरू समुद्रफेन मिरच इनकी पिसवावे ॥
॥ २७२ ॥ मधुके साथ मिलाकर अञ्जनके अर्थ रसक्रिया करे ॥ येह वर्त्म
रोग अर्मे निमिर कांच शुक्र इनको नाश करने वाली है ॥ २७३ ॥

[अनन्तर रोपण रस क्रिया ॥ रसवत राल चमेलीके फूल मैसिल ॥ समुद्र
फेन लवण गेरू तथा मरिचके साथ पीसके प्रक्लिन्न वर्त्मने अञ्जन श्लेद
कराडूका नाशक और पलकों का प्ररोहण है ॥ २७५ ॥

[अथ स्नेहनी रसक्रिया] कनकस्य फलं घृष्ट्वा मधु
ना नेत्रभञ्जयेत् ॥ ईषत्कर्पूर सहितं स्मृत नेत्रप्र
सादनम् ॥ २७६ ॥ [अथ चूर्णं तल्लेखनं यथा]
दक्षाराडत्व च्छिलांकाच शङ्ख चन्दन सैन्धवेः ॥
अञ्जनं हरते नित्यं सर्वानक्षि गदान् वलात् ॥ २७७ ॥

(दत्तः कुक्कुटः तथा च निघण्टुः)

हृक वाकुस्तथा दत्तः कालनोऽथ शिखरिडक इति ।

भा० अनन्तर स्नेहनी रस क्रिया ॥ निर्मली के फल को मधुके साथ घिस कर नेत्र में अंजन करे ॥ थोड़े से कपूर के साथ नेत्र प्रसादन कहा है ॥ २७६ ॥

अनन्तर लैरवन चूर्ण जैसे । मुरगे के अंडेके छिलके शंख चन्दन सैन्धव ॥ इनका अञ्जन सब नेत्र के रोगोंको बलात् कारसे नाश करता है ॥ २७७ ॥

मुरगा । उस प्रकार निघंटु में कहा है ॥ कृक वाकु तथा दक्ष कालत्र और शिखंडिक इति ॥ [अथ रोपण चूर्णम् ।]

शिलायां रसकं पिष्ट्वा सव्यगा स्नाव्य वारिणा ॥ गृ-
ह्नी या तज्जलं सर्वन्त्यजे चूर्णं मधोगतम् ॥ २७८ ॥

शुष्कं तच्च जलं सर्वं पर्यटी सन्निभं भवेत् ॥ विचू-
रार्थं भावयेत्सम्यक् त्रिवेलं त्रिफलारसैः ॥ २७९ ॥

कर्पूरस्य रजस्तत्र दशमांशेन निःक्षिपेत् ॥ अञ्जये-
न्नयनन्तेन सर्वदोषप्रशान्तये ॥ २८० ॥ समस्तने-
त्र रोगघ्नं चूर्णं भेदन्न संशयः ॥

भा० अनन्तर रोपण चूर्ण ॥ सिलपर खपरिया को पीस कर अच्छी तरह पा-
नी से धो लकर ॥ उसका सब जल ग्रहरण करे और नीचे के चूर्णको त्याग देवे
॥ २७८ ॥ जब बोह सब जल सूक जावे तब बोह पपड़ोके समान हो जाता है ॥
पीस कर तीन वार त्रिफला के रस से भावना देवे ॥ २७९ ॥ उसमें कपूरका चू-
रण दसवां हिस्सा डाले । उसे सब दोषोंकी शान्ति के अर्थ नेत्रोंको अंजे। २८०
॥ यह चूर्ण सब रोगका नाशक है इसमें कुछ संशय नहीं ॥

अथ स्नेहनं चूर्णम् । अग्नि तप्तं हि सौवीरं निषिञ्चे-
त् त्रिफलारसैः ॥ सप्तवेलं तथा स्तन्यैः स्त्रीणां सि-
क्तं विचूर्णितम् ॥ २८१ ॥ (सौवीरं श्वेत मञ्जनम् ।)

अञ्जयेत्तेन नयने प्रत्यहं चक्षुषो हितम् ॥ सर्वान-
क्षि विकारांस्तु हन्यादेतन्न संशयः ॥ २८२ ॥

भा० अनन्तर स्नेहन चूरी ॥ आगमें तपाया हुआ सुरमा त्रिफला के रसमें बुझा
वे ॥ सानवार तथा स्त्री के वृषसे सींच के बारीक पीसकरा ॥ २०० ॥ उसे नेत्रमें
हर रोज अंजन करे वोह नेत्रके हित है ॥ सब नेत्रके रोगोंकी बाध करता है इ-
समें कोई संशय नहीं ॥ २०१ ॥

[अथ प्रत्यञ्जन विधिः]

गतदोष भपेताश्रु प्रपश्यत् सम्यग्भसि ॥ प्रदा-
ल्यादि यथा दोषं कार्यं प्रत्यञ्जन न्ततः ॥ २०२ ॥
तथा निर्वात दोषेति धावनं सम्प्रयोजयेत् ॥ प्रत्य-
ञ्जने कृते दद्याच्चूर्णं तीक्ष्णं प्रसादनम् ॥ २०३ ॥

[तद्यथा] शुद्ध नागेन्द्र तुल्यन्तु राद्धं सूतं विनिःक्षिपेत् ।
कृष्णाञ्जनं तयोस्तुत्यं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ २०४ ॥
दशमांसेन कर्पूरं तस्मिंश्चूर्णं विनिःक्षिपेत् ॥ एतत्प्र-
त्यञ्जनं नेत्रे गद जिन्नयना मृतम् ॥ २०५ ॥

(कृष्णाञ्जनं श्रोतोऽञ्जनम्) [नथा च मदनपालः]

श्रोतोऽञ्जनन्तु तद्विद्यादञ्जनाभं यदञ्जनम् ॥

भा० अनन्तर प्रत्यञ्जन की विधि ॥ गत दोष और गत अश्रुपानी में अच्छी
तरह देखे ॥ आंखोंकी धीके दोषके अनुसार प्रत्यञ्जन करना चाहिये ॥
तथा निर्वात देशमें नेत्र धीवे ॥ प्रत्यञ्जन करनेके अनन्तर प्रसादन तीक्ष्ण चू-
री देवे ॥ २०३ ॥ (वोह जैसे) शुद्ध शीशेके बराबर शुद्धपात डाले ॥
काला सुरमा वृत्त रोगोंके बराबर इन सबको एक जगह पीसे ॥ २०४ ॥ उन
चूर्णमें दसवां हिस्सा कर्पूर डाले ॥ यह प्रत्यञ्जन नेत्र रोगका जीतनेवाला नेत्र
मृत है ॥ २०५ ॥ काला सुरमा । वैसे मदनपाल ने कहा है ॥ श्रोतौऽञ्जन उस
को जानना चाहिये जो काजलके समान होता है ॥

[नयनामृतं प्रत्यञ्जनम्]

[अथ दृष्टि प्रसादनी शलाका]

त्रिफला भृङ्गः शुराठीनां रसैस्तद्वच्च सर्पिषा ॥ गोमूत्रं मध्वजा क्षीरैः सिको नागः प्रतापितः ॥ २८५ ॥
तच्छलाकां हरत्येव सर्वान् नेत्र भवान् गदान् ॥

[इति भेषजानां विधानानि]

[अथ भेषज भक्षण समयः ॥ भेषज्य मभ्यवहरे त्वभाते प्रायशो बुधः ॥ कषायांस्तु विशेषेण तत्र भेदस्तु दर्शितः ॥ १ ॥ ज्ञेयः पञ्चविधः कालो भेषज्य ग्रहणो नृणाम् ॥ किञ्चित्सूर्योदये जानि तथा दिवस भोजने ॥ २ ॥ सायन्तने भोजने च सुहृद्वापि तथा निशि ॥

भा० अनन्तर दृष्टि प्रसादनी शलाका ॥ त्रिफला भृङ्गरा सींठ इनका रस वैसेही घृत ॥ गोमूत्र मधु बकरी का दूध इनसे सीसे को तपाकर सींचे ॥ २८५ ॥ उसकी सलाह सब नेत्र के रोगों को नाश करती है ॥ ॥ इस प्रकार औषधों के विधान ॥ [॥ अनन्तर औषध भक्षण का समय ॥]
बुद्धिवान् प्रायशः औषध को सवेरे सेवन करे ॥ और कषायोंको विशेषकरके सवेरे सेवन करे । उसमें भेद कहा है ॥ १ ॥ मनुष्योंकी औषध ग्रहणमें पांच प्रकार का काल जानना चाहिये ॥ कुछेक सूर्योदय के हीनेमें तथा दिनके भोजनमें ॥ २ ॥ सायंकालमें और सायंकालके भोजनमें तथा फिरसे रातको ॥ येह पांच समय हैं ॥

तत्र प्रथमकालः] प्रायः पित्तकफी द्रेके विरेक वमनार्थयोः ॥ लेखनार्थे च भेषज्यं प्रभातेऽनन्त माहरेत् ॥ ३ ॥ [अथ द्वितीयकालः । भेषज्यं वि-

गुरोपानि भोजनाग्रे प्रशस्यन्ते ॥ अरुचौ चित्त भोज्यै
 श्च मिश्रं रुचिरमाहरेत् ॥ ४ ॥ समानवाते विगुरो
 मन्दे ऽग्नावति दीपनम् ॥ दद्याद्भोजन मध्ये च भै
 षज्यं कुशलो भिषक् ॥ ५ ॥ व्यानकीपे तु भैषज्यं
 भोजनान्ते समाहरेत् ॥ हिक्का क्षेपक कम्पेषु पूर्वम-
 न्ते च भोजनात् ॥ ६ ॥ [अथ तृतीयकालः]
 उदाने कुपिते वाते स्वरभङ्गादि कारिणि ॥ घ्रासे घ्रा-
 सान्तरे देयं भैषज्यं सान्ध्य भोजने ॥ ७ ॥ प्राणे प्रदु
 ष्टे सान्ध्यस्य भुक्तस्यान्ते प्रदीयते ॥ औषधं प्राय
 शो धीरैः कालोऽयं स्यात् तृतीयकः ॥ ८ ॥

भा० उसमें प्रथम काल । प्रायः पित्तकफके बढ़ने में विस्वन वमनके अ
 र्थ ॥ और लेखनके अर्थ प्रातःकालमें विना भोजन किये औषध सेवन क
 रे ॥ ३ ॥ [दूसरा काल । अपान वातके प्रकोपमें भोजनके पहिले औष
 ध प्रशस्त है ॥ अरुचि में अच्छे स्वाद युक्त भोजनों में मिलाके सेवन करे ॥
 ॥ ४ ॥ समान वातके बिगड़ने में और मन्दाग्निमें अग्निदीपन ॥ औषध भोज
 नके बीचमें कुशल वैध देवे ॥ ५ ॥ व्यान वायुके कोपमें भोजनके अन्तमें
 औषध सेवन करे ॥ हिक्की आक्षेपकम्प इनमें भोजनसे पहिले और अ
 न्तमें औषध देवे ॥ ६ ॥ अनन्तर तीसरा काल ॥ स्वरभंगादि करनेवाले उदान
 वातके कोपमें सायंकालके भोजनमें घ्रास २के बीचमें औषध देना चाहिये
 ॥ ७ ॥ प्राण वातके दुष्ट होनेमें सायंकालके भोजनके अन्तमें प्रायः औषधि
 दिया जाना है यह तीसरा काल है ॥ ८ ॥

[अथ चतुर्थकालः] मुहुर्मुहुश्च तृच्छर्दि हिक्का
 श्वास गरीषु च ॥ सान्ध्रञ्च भैषजं दद्यादिति काल
 श्चतुर्थकः ॥ ९ ॥ [अथ पञ्चम कालः]

ऊर्ध्वजत्रु विकारेषु लेखने वृंहणो तथा ॥ पाचने ष
मने देया मन्त्रं भेषजं निशि ॥ १० ॥

[इति पञ्चमकालः ॥] [निरन्नस्य भेषजस्य गुण-
माह] वीर्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनम् ॥ ह-
न्यात्तदामयम संशयमाशु चैव ॥ तद्बालवृद्ध
युवती मृदुभिश्च पीतम् ॥ ग्लानिं परान्नयति चाशु
बलक्षयञ्च ॥ ११ ॥ [सान्नस्य भेषजस्य गुणमाह]
शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न हिंस्या । दन्नाद्यन्न
च मुहुर्वदन्नान्निरति ॥ सतद्धितं स्थविरबालक
शाङ्गनाभ्यः । प्राग्भोजनाद्यदर्शितं किल तच्च तद्वत्

॥ १२ ॥ भा० अनन्तर चौथा काल । तथा वमन हिचकी खास विष
इनमें अन्नके सहित औषध देवे यह काल चौथा है ॥ १० ॥ अनन्तर पंचम का
ल ॥ गलेकी हड्डी के ऊपर के रोगोंमें और लेखन वृंहण में तथा ॥ पाचन प्रम
न में रक्तको बिना भोजन के औषध देवे ॥ १० ॥ इति पंचमकाल ॥
निरन्न औषध का गुण कहने है ॥ अन्नहीन औषध वीर्याधिक होता है ॥
और उन रोगों को निःसंशय शीघ्र नाश करता है ॥ और वोह बालक वृद्ध युवती
तथा मृदु इनका पीया हुआ ॥ अत्यन्त ग्लानिको करता है और शीघ्र बलका
नाश करता है ॥ ११ ॥ [अन्नके सहित औषधका गुण ॥] अन्न से युक्त औषध
शीघ्र विपाक को प्राप्त होता है और बलको नाश नहीं करता उसको मुखसे पि
र न निकाले ॥ यह वृद्ध बालक दुर्बल स्त्री इनको हित है ॥ जो भोजन के पहिले
सेवन किया गया है वोह उसीके समान है ॥ १२ ॥

(अन्नाद्यन्नवत् भेषजमिति शेषः)

औषध शेषे भुक्तं भोजन शेषे यदौषधं पीतम् ॥ न
करोति गदोपशानम् प्रकोपयत्यन्य रोगांश्च ॥ १३ ॥

(योत्तमिन्युपलक्षणं लीढादिकं च ।)

अनुलोमोऽनिलः स्वास्थ्यं क्षुत्तृष्णा सुमनस्कताः ॥

लघुत्वमिन्द्रियो हार शुद्धिर्जीर्णौषधा कृतिः ॥ १४ ॥

क्लमो दाहोऽङ्गसदनं भ्रममूर्च्छो शिरोरुजः ॥ अर

तिर्वलहानिश्च सावशेषौषधा कृतिः ॥ १५ ॥

[अथ भेषजलक्षणविधिमाह चरकः]

देवान् गुरुंस्तथा विप्रान् पूजयित्वा प्रणम्य च ॥ आ

शिषश्च समादाय श्रद्धया भेषजं भजेत् ॥ १६ ॥

रसायनमिवर्षीणां देवानामस्तुतं यथा ॥ सुधेवो

त्तमनागानां भेषज्यमिदमस्तुते ॥ १७ ॥

भा० अत्रसे युक्त औषध । औषधशेषमें भोजन किया हुआ और जो औषध भोजन के शेषमें पीया गया ॥ रोगोंका शमन नहीं करना और अन्य रोगोंको प्रकोप करता है ॥ १३ ॥ खाया आदिभी । वातका अनुलोम स्वस्थता क्षुधा तृपा चित्तकी प्रसन्नता ॥ हलकापन इन्द्रियोंमें डकार यह जीर्ण औषधका लक्षण है ॥ १४ ॥ क्लम दाह शरीर में पीड़ा भ्रम मूर्च्छा शिरमें पीड़ा ॥ वैचैनी धनकी हानी साव शेष औषधका लक्षण है ॥ १५ ॥

अनन्तर औषधलक्षणविधि कही है चरकने ॥ देव गुरु तथा ब्राह्मण इनका पूजन करके और नमस्कार करके ॥ आशिर्वाद लेकर श्रद्धासे औषधका सेवन करे ॥ १६ ॥ यह आशिर्वाद । इसका अर्थ । ऋषियोंकी रसायनके समान और जैसे देवताओंको अमृत ॥ उत्तम नागोंकी सुधा के समान तुमको यह देवा देवे ॥ १७ ॥

ब्रह्मदत्ता शिव रुद्रेन्द्र भूचन्द्रार्कानिलोनलाः ॥ दे

वाश्च सौपर्धिग्रामा भूमिदेवाश्च यान्तुवः ॥ १८ ॥

औषधं हेम रजतमृदाजनपारस्थितम् ॥ पिवेदाप्त

जनस्याग्रे प्रसन्न वदनेक्षणाः ॥ १६ ॥ विश्रान्तस्तूप
विश्रयाथ पीत्वा पात्र मधोमुखम् ॥ निःक्षिप्याच
स्य सलिलं ताम्बूलाद्युप योजयेत् ॥ २० ॥

इति श्री मिश्र लटकन तनय श्रीमन् मिश्र भाव विरचिते
ने विरचिते भावप्रकाशे पञ्चमं प्रकरणं चिकित्सायां
सप्ताङ्गानि संपूर्णानि ॥ ५ ॥ * ॥

भा० ब्रह्मा दत्त प्रजापति अश्विनीकुमार इन्द्र षष्ठिव चन्द्र सूर्य वात अग्नि ।
देव औषधि के सहित ग्राम देवता और भूमिदेव तुम्हारी रक्षा करे ॥ १८ ॥
इति । औषध को सोने चान्दी अथवा मिट्टी के बरतन में रख के । प्रसन्न मुख
दृष्टि होके इष्ट जनों के आगे पीवे ॥ १६ ॥ विश्रान्त होके बैठ के पीकर
पात्रको ओंघा करके ॥ जलसे आचमन करके पान इलायची आदिको खा
वे ॥ २० ॥ इति श्री मिश्र लटकन पुत्र श्री भावमिश्र विरचिते भाव
प्रकाशमें पांचवां प्रकरणं चिकित्सा में सात अंग संपूर्ण ॥

[अथ चिकित्सार्थे रोगिणः परीक्षा तत्र वाग्भटः ।]

दर्शन स्पर्शन प्रश्ने स्तं परीक्षेत रोगिणाम् ॥ आयुरा
दि दृशः स्पर्शा च्छीतादि प्रश्नतः परम् ॥ १ ॥

(क) आयुरादि आदि शब्दात्साध्यत्वासाध्यत्वादि दृ
शा दर्शनेन अत्र सम्पदादि भ्यश्च भावे क्विप् । स्पर्शन
शीतादि शीतोष्ण मृदु कठिनत्वादि नाडी परीक्षणम् वा ।
प्रश्नतः उदर स्नायव गौरव तृषाऽतृषा बुभुक्षाऽबुभुक्षा
वलावलादि ॥

भा० अनन्तर चिकित्सा के अर्थ रोगी की परीक्षा ॥ उसमें वाग्भटने कहा है ।

दर्शन स्पर्श प्रश्न इनसे रोगीकी परीक्षा करे ॥ दृष्टि से आयु अदिके स्पर्शसे शीतादिक प्रश्नसे और परीक्षा करे ॥१५

(क) आदि शब्द से साध्यता और असाध्यता आदि । दर्शन से । यहाँ पर सं पदादि से भावमें किय हीना है । स्पर्शन शीतादि । शीत उष्ण मृदु कठिन आदि अथवा नाडी परीक्षा ॥ प्रश्नसे पेदका हलकापन भारीपन प्यासका होना न होना । भूखका होना न होना बल अबल आदि ॥

मिथ्या दृष्टा विकारा हि दुराख्याता स्तथैव च ॥ तथा
दुष्परि पृष्टाश्च मोहयेयु श्विकि त्सकान् ॥ २ ॥

(तत्र दर्शनं नेत्र जिह्वा मूत्रा दीनां कर्तव्यम्)

[तत्र नेत्र परीक्षा यथा] नेत्रं स्यात् पवना दूर्क्षं धूम्रव
र्णं तथा रुरागम् ॥ कोणं गतं प्रविष्टं च तथा स्तब्ध
विलोकनम् ॥ ३ ॥ हरिद्रा खण्ड वर्णं वा रक्तं बाह-
रितं तथा ॥ दीपद्वेषि सदा हञ्च नेत्रं स्यात्पित्तको
पतः ॥ ४ ॥ चक्षुर्बलास बाह्य स्यात् स्निग्धं स्यात्स
लिल सुतम् ॥ तथा धवल वर्णञ्च ज्योतिर्हीनं व-
लान्वितम् ॥ ५ ॥

भा० मिथ्या देखेइवे रोग तथा दुराख्यत तथा दुष्परिपृष्ट येह वैधों की मोह करनाहै ॥ २ ॥ उसमें नेत्र दर्शन जिह्वा मूत्र आदियों का करना चाहिये ॥

[उसमें नेत्र परीक्षा जैसे] रक्त धूम्र वर्णं तथा अरुण ॥ कीना निकला ऊँचा और दबाइया तथा स्तब्ध देखना ऐसे नेत्र वान से होते हैं ॥ ३ ॥ हरदी की गाँठ के समान वर्ण अथवा लाल वा हरित ॥ तथा दीवे वा दुष्पन चाह के सहित नेत्र पित्त मकोप से होते हैं ॥ ४ ॥ कफ की अधिकता से नेत्र चिकने पानी भरेइवे ॥ तथा श्वेत वर्णं ज्योतिर्हीनं बल युक्त होते हैं ॥ ५ ॥

नेत्रं द्विदोष बाह्यस्यात्स्या दोषद्वय लक्षणम् ॥

त्रिदोष लिङ्गसङ्घेन तन्मारयति रोगिणाम् ॥ ६ ॥

त्रिदोष दूषितं नेत्रमन्तर्मग्नं भृशं भवेत् ॥ त्रिलिङ्गं

सलिलस्राविप्रान्तिर्नोन्मीलयत्यपि ॥ ७ ॥

[अथ जिह्वा परीक्षा] शाकपत्रप्रभारुक्षास्फुटना

रसनानिलात् ॥ रक्ताप्यावाभवेत्यन्तस्त्रिसाद्रो

धवलाकफात् ॥ ८ ॥ परिदग्धाखरस्पृशाक्षणादो

षत्रयेऽधिके ॥ सैव दोषद्वयाधिक्ये दोषद्वितय

लक्षणम् ॥ ९ ॥

भा० दोषों की अधिकता से नेत्र दोषों के लक्षण होते हैं ॥ त्रिदोष के लक्षण मिलजाने से वोह रोगी को नाश करता है ॥ ६ ॥ त्रिदोष से दूषित नेत्र भीतर अत्यन्त भग्न होता है ॥ नीनों के लक्षणों संयुक्त जलको बहने वाला प्रान्तमें उन्मीलन भी नहीं होता ॥ ७ ॥

[अनन्तर जीभकी परीक्षा ॥ शाकपत्रके समान सूखी फटी जीभ वातसे होती है ॥ लाल भरी पित्तसे होती है ॥ और लिंसी गीली स्रग्भेद कफसे होती है ॥ ८ ॥ फुलसी जड़ खरदरी काली त्रिदोष की अधिकता में होती है ॥ वोही दोषों के अधिक में दोषों के लक्षणवाली होती है ॥ ९ ॥

[अथ सूत्र परीक्षा] वानेन प्राण्डुरं सूत्रं रक्तं नीलञ्चपि

त्ततः ॥ रक्तमेव भवेद्रक्ताद्भवत् फेनिलं कफात् ॥

॥ १० ॥ (अथ शरीरस्य शैत्योष्णत्वादि ज्ञानार्थं स्पर्शनं कार्यम्)

[तत्र नाडी परीक्षा माह]

पुंसो दक्षिणहस्तस्य स्त्रियो वामकरस्य तु ॥ अङ्गु

ष्ठमूलगां नाडीं परीक्षेत् भिषग्वरः ॥ ११ ॥ अङ्गुली

भिस्तिसृभिर्नाडी भवहितः स्पृशेत् ॥ तत्रैष्टया

सुखं दुःखं जानीया कुशलो ऽखिलम् ॥ १२ ॥ सद्यः
 स्नानस्य सुप्तस्य क्षुत्तृष्णा नप शीलिनः ॥ व्याघ्रान्
 श्रान्त देहस्य सम्यक् नाडी न बुध्यते ॥ १३ ॥ वातिः
 धिके भवेत्ताडी प्रव्यक्ता तर्जनी तले ॥ पित्ते व्यक्ता
 मध्यमा यां तृतीया इंगुलिका कफे ॥ १४ ॥ तर्जनी स-
 ध्यमा मध्ये वात पित्ताधिके स्फुटा ॥ अनामिकायां
 तर्जन्यां व्यक्ता वात कफे भवेत् ॥ १५ ॥ मध्यमा ना-
 मिका मध्ये स्फुटा पित्त कफे ऽधिके ॥ अङ्गुलि त्रित-
 ये ऽपि स्यात्प्रव्यक्ता सान्निपाततः ॥ १६ ॥ वाताद्
 क्तू गतिन्धत्ते पित्तादुत्सुत्थ गामिनी ॥

भा० अनन्तर मूत्र परीक्षा ॥ वातसे मूत्र सफेद और पित्तसे लाल नीला ॥
 और रक्तसे लालही होता है तथा कफसे काग से युक्त धौला होता है ॥ १० ॥
 अनन्तर शरीर के शैत्य उष्णत्व ज्ञान के अर्थ स्पर्शन करना चाहिये ॥

[उसें नाडी परीक्षा कहने हैं] पुरुष के दाहने हाथकी और स्त्रियों के
 वामे हाथकी ॥ अंगुष्ठ मूलसे गई हुई नाडीकी वैद्य परीक्षा करे ॥ ११ ॥
 जाना हुआ तीन अंगुलियोंसे नाडीको स्पर्शकरे ॥ कुशल उरुती चेष्टासे संपूर्ण
 सुख दुःख को जाने ॥ १२ ॥ गतकाल स्नानक्रियेकी सोवेहुवेकी क्षुधा तथा
 युक्त की ॥ कसरत से धके हुवेकी इन सबकी नाडी अच्छी तरह नहीं मालूम
 होती ॥ १३ ॥ वातके अधिकमें नाडी तर्जनी के नीचे प्रव्यक्त होती है ॥ पित्ताधि-
 कमें मध्यमा में व्यक्त होती है ॥ और तीसरी अंगुली के नीचे कफमें व्यक्त होती
 है ॥ १४ ॥ तर्जनी मध्यमा के बीचमें वात पित्ताधिकमें स्फुट होती है ॥ अना-
 मिका और तर्जनी में वात कफ में प्रगट होती है ॥ १५ ॥ मध्यमा और अनामि-
 का के मध्यमां पित्त कफ में प्रगट होती है ॥ सन्निपात से तीनों अंगुलीके नीचे
 व्यक्त होती है ॥ १६ ॥ वातसे वक्त्र गतिकी धारणा करती है पित्तसे उठल वे-
 चलती है ॥

कफान्मन्दगतिर्ज्ञेया सन्निपातादति द्रुता ॥ १७ ॥ व
 क्तं सुत्स्वत्य चल्नति धमनी । वातपित्ततः ॥ वहे ह्व
 त्तञ्च मन्दञ्च वात श्लेष्माधिकं त्वतः ॥ १८ ॥ उत्
 स्वत्य मन्दञ्चलति नाडी पित्तकफेऽधिके ॥ कामा
 त्क्रोधा द्वेगवहा क्षीणा चिन्ता भयस्रुता ॥ १९ ॥
 स्थित्वा स्थित्वा च लेह्या सा हन्तिस्थानच्युता तथा ॥
 अतिक्षीणा च शीता च प्राणान् हन्ति न शैशैयः ॥
 २० ॥ ज्वरकोपेन धमनी सोष्णा वेगवन्ती भवेत् ॥

भा० कफसे मन्दगति जाननी चाहिये और सन्निपान से बहुत शीघ्र गति
 चलती है ॥ १७ ॥ पित्तके कोपसे धमनी देही उठलके चलती है ॥ वातकफ
 अधिकसे देही और मन्द चलती है ॥ १८ ॥ पित्तकफके अधिकमें नाड़ी उछ
 लके मन्द चलती है । काम और क्रोधसे वेगसे चलती है चिन्ता और भय
 से युक्त क्षीण होनी है ॥ १९ ॥ जो ठहर २के चलती है वोह स्थानच्युत वोह
 नाश करती है ॥ अति क्षीण और शीत प्राणोंको नाश करती है । इसमें को
 ई संशय नहीं ॥ २० ॥ धमनी ज्वरकोपसे गरम और वेगवाली होती है ॥

मन्दाग्निः क्षीणधातोश्च सैवं मन्दतरामता ॥ २१ ॥
 चपला क्षुधितस्य स्यात् तृप्तस्य भवति स्थिरा ॥ सु
 खिनो स्थिरा ज्ञेया तर्था वलवती मता ॥ २२ ॥

[अथ येन येन रोगाणां ज्ञानं स्यात्त तदाह]

हेतुस्तदनुसंगानि पूर्व रूपञ्च लक्षणम् ॥ तथैवो
 पश्यायः पञ्च रोगविज्ञानहेतवः ॥ २३ ॥

[तत्र हेतोर्लक्षणमाह]

भा० मन्नाग्नि बालेकी और क्षीण धातु बालेकी बोग्नी मन्त्र वृद्धन होती है ॥ २१ ॥
क्षयित की चपल और तप्तकी स्थिर होती है ॥ सुखी की भी स्थिर जाननी चाहि
ये ॥ तथा बलवती होती है ॥ २२ ॥

[अनन्तर जिस रसे रोग का ज्ञान होता है उस रसको कहते हैं] कारण उसके
पञ्चान् सम्प्राप्ति और पूर्वरूप लक्षण । तथा उपशय यह पांच रोगों के विशेष
ज्ञान के हेतु है ॥ २३ ॥ [उसमें हेतु का लक्षण कहते हैं]

यत्तु न स्याद्विना येन तस्य तद्धेतु रुच्यते ॥ शास्त्रे सं
व्यवहाराय तत् पर्यायान् प्रचक्ष्महे ॥ २४ ॥ निदानं
कारणं हेतु निर्मितं च निबन्धनम् ॥ मूल मायतनं
तत्र प्रत्ययोऽपि निगद्यते ॥ २५ ॥

(तत्र हेतु व्याधीनां ज्ञानाय हेतु र्यथा)

(क) वर्षारूक्ष श्रमहिमानप्रानानि मेषुन शोक चिन्ता
भयादयो वातप्रकोप हेतवो वातज्ञान् व्याधीन् बोधय
न्ति । शरत् कटुस्त्रोषण तीक्ष्ण क्रोध तृषाक्षुधाभिघाता
तथादयः पित्त प्रकोप हेतुः पित्तज्ञान् व्याधीन् बोध
यन्ति । चसन्त मधुर स्निग्ध शीतादयः कफ प्रकोपहेत
वः कफज्ञान् व्याधीन् बोधयन्ति ॥

भा० जिसके विना जो नहीं होता वोह उसका हेतु कहते हैं ॥ शास्त्र में व्यवहार
के अर्थ उसके पर्यायों को कहना हूँ ॥ २४ ॥ निदान कारण हेतु निमित्त और
निबन्धन ॥ मूल आयतन और प्रत्यय भी कहते हैं ॥ २५ ॥ उसमें हेतु व्याधि के
ज्ञान के अर्थ हेतु जैसे ॥ -

(क) वर्षा रूक्ष श्रम शीतल भोजन मेषुन शोक चिन्ता भयादिकं वात प्रको
प के हेतु वातके रोगोंको जगाने हैं ॥ शरत् कटु अम्ल उष्ण तीक्ष्ण क्रोध तृषा
क्षुधा अभिघात भात प आदिक पित्त प्रकोप के कारण पित्त के रोगोंको जगाना

है । वसन्त मधुर चिकनाई सिक्तादिक कफ के कोपका कारण कफ के रोगों को जनाना है ॥

[अथ संप्राप्ते र्लक्षणमाह] यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानु विसर्पना ॥ उत्पत्तिर्यामयस्यासौ संप्राप्तिर्जातिरागतिः ॥ २६ ॥ (क) यथा दुष्टेन दोषेण यथा कारणभेदेन दोषेण यथा चानु विसर्पिता । अनेकधा दोषाणां विसर्पिता मूर्द्धाद्यस्तिर्यगादिगतिभेदेन । तथा च विसर्पिता । आमयस्य या उत्पत्तिः । असौ संप्राप्तिः । शास्त्रव्यवहारस्य संप्राप्तेः पर्यायानाह जातिरागतिरिति । संप्राप्तेरौपाधिकभेदानाह ।

भा० [अनन्तर संप्राप्ति का लक्षण कहने हैं] जैसे दुष्ट दोष से जैसे अनेक प्रकार फैलने से जो रोग की उत्पत्ति है, वेह संप्राप्ति जाति आगति है ॥ २६ ॥

(क) जैसे दुष्ट दोष से अर्थात् जैसे कारण भेददोषकरके । अनेक प्रकार दोषों का ऊपर नीचे तिर्यक आदि भेदसे । तथा फो.ली.हूई । रोग की जो उत्पत्ति है । वेह संप्राप्ति है । शास्त्र व्यवहार के अर्थ संप्राप्ति के पर्यायों को कहने हैं ॥ जाति आगति । संप्राप्ति के औपाधिक भेदों को कहने हैं ॥

सङ्ख्या विकल्प प्राधान्य बलकाल विशेषणः ॥

सा भिद्यते यथा तैव वदन्ते ऽष्टौ ज्वरा इति ॥ २७ ॥

(ख) सङ्ख्यादिरूपविरोधास्तेभ्यः सा संप्राप्तिर्भिद्यते भेदवती क्रियत इत्यर्थः । तत्र संख्यां विहरणोति । यथा ज्वरो ऽष्टधा भतीसारः षड्विध इत्यादि विकल्पं विहरणोति । दोषाणां समवेतानां विकल्पो ऽंशांशकल्पना समवेतानां समुदितानां दोषाणां अंशांशकल्पनाहीनम-

ध्याधिक भेदैर्भाग कल्पना विकल्पः । प्राधान्यं वि-
चरणीति । (ख) स्वातन्त्र्य पारतन्त्र्याभ्यां व्या-
धेः प्राधान्यमादिशेत् ॥ व्याधेः स्वातन्त्र्येण प्रा-
धान्यं पारतन्त्रेण ऽ प्राधान्यञ्च वदेदित्यर्थः । य-
था स्वतन्त्रस्य ज्वरस्य प्राधान्यं ज्वराधीनानां स्वा-
सादीनामप्राधान्यम् ॥

भा० संख्या विकल्प प्राधान्य बल काल इनके विशेष से वो भेद को प्राप्त
है जैसे वहाँ पर कहा है आठ ज्वर इस प्रकार ॥ २३ ॥ संख्यादि रूप विरो-
ध उनसे वोह संप्राप्ति भेदको प्राप्त है उसमें संख्या को कहते हैं ॥ जैसे
ज्वर उपाद प्रकार अतीसार छ प्रकार इत्यादि । विकल्प को कहते हैं ।
मिले ज्वे दोषों की अंशों कल्पना । हीन मध्य अधिक भेदसे भाग कल्पना
विकल्प है । (प्राधान्यको कहते हैं)

(ख) स्वतन्त्रता और परतन्त्रता इनसे रोगका प्राधान्य कहें ॥ रोगकी
स्वतन्त्रता से प्रधानता और परतन्त्रता से अप्रधानता कहे । जैसे स्वतंत्र
ज्वरका प्राधान्य और ज्वरके आधीन प्रवास आदियोंको अप्रधानता ही-
नी है ॥

(ग) [बलं विचरणीति] हेत्वादि कार्तृस्व्या वय-
वैर्बलाबल विशेषम् । अत्रापि व्याधिरित्यनुवर्त-
ते हेत्वादेः हेतु पूर्वरूपरूपारणम् । कार्तृस्व्येन
साकल्येन अवयवैः एकदेशेन व्याधिर्बलाबल-
यो विशेषणम् । विशेष बोधः । कालं विचरणीति ।

भा० बलको कहते हैं । कारणादि संपूर्ण अवयवों से बल और अबल वि-
शेषण है । यहाँ भी रोगके येह फिरसे कहा है । हेतु आदिका अर्थात् कार-
ण पूर्व रूपोंका । संपूर्णता करके एक देश से रोगका बलाबल में विशेषण है
विशेष बोध । कालको कहते हैं ।

(घ) नक्तं दिनर्तुं भुक्तांशैर्व्याधि कालो यथा मलम् ॥
 नक्तं मन्त्राव्ययं रात्रिवाचकम् । एतेनैतदुक्तं यस्मिन्
 क्तादिरंशो यस्य दोषस्य प्रकोप उक्तोऽस्ति सोऽंशस्त
 स्य दोषजस्य व्याधेः काल इत्यर्थः । नक्तादिरंशेषु
 वातादे प्रकोपे उक्तो वाग्भटेन ।

ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्यो रधो मध्योर्द्ध संश्रयाः ।

वयोऽहो रात्रि भुक्तानामन्त मध्यादिगाः क्रमादिति

॥ २८ ॥ वात पित्त कफाः । ऋतुषु वातादिको यथा ।

वर्षासु शिशिरे वायुः पित्तं शरदि उष्णाके ॥ वस-

न्ते तु कफः कुप्ये देषा प्रकृति रार्त्तवी ॥ २९ ॥

भा० रात दिन ऋतु और भोजन किया हुआ इनके अंशोंसे दोषके अनुसार
 व्याधि काल है ॥ (घ) नक्तं यहाँ पर अव्यय रात्रि वाचक है । इसे य
 ह कहा है कि जिसमें रात्रि आदि अंश जिस दोषका प्रकोप कहा है वोह अंश
 उस दोषके रोगका काल यह अर्थ है । नक्तादि के अंशमें वातादि प्रको
 प कहा है वाग्भट ने । वात पित्त कफ संपूर्ण शरीर में फैले हवे भी हृदय
 नामके नीचे वायु हृदय नामके बीचमें पित्त और हृदय नामके ऊपर कफ ।
 इस क्रमसे रहते हैं ॥ वय दिन रात और भोजन किये हवे इनके अन्त म-
 ध्य आदि क्रमसे रहते हैं ॥ २८ ॥ वात पित्त कफ । ऋतु में वातादिक जैसे
 । शीत वर्षा में वायु । उष्ण शरद में पित्त । और वसन्त में तो कफ कुपित
 होता है । यह ऋतु की प्रकृति है ॥ २९ ॥

[संप्राप्तिव्याधीनां ज्ञानाय हेतु र्यथा]

(क) सिध्याहार विहार कुपिता वाताद्या माशय गमन
 रस दूषण कोष्ठाग्नि वह्निर्नि स्तरण रूपं न्वरोत्पत्ति प्र-

कारं बोधयति । तथा व्याधीनां सङ्ख्या दोषांश कल्पना प्राधान्य बल कालांश्च बोधयति । तेषु ज्ञा तेषु चिकित्सा विशेषश्च स्यात् ॥

[अथ पूर्वरूपस्य लक्षणमाह]

पूर्वरूपन्तु तद्धेन विद्याद्भाविनमामयम् ॥ सामान्यं च विशिष्टं च द्विविधन्तदुदाहृतम् ॥ ३० ॥

सामान्यं तत्र दोषाणां विशेषैरनीधष्ठितम् ॥ विशिष्टं मीषद्युक्तं स्याद्विशेषैश्च समन्वितम् ॥ ३१ ॥

(क) दोषाणां विशेषाः जृम्भातिपायनेत्रदाहान्निमान्धादयः । तत्र पूर्वरूपं व्याधीनां ज्ञानाय हेतुर्यथा । श्रमादयो भाविनं ज्वरं बोधयन्ति । अथ च अतएव श्रमादयोऽतिशयित जृम्भायुक्ता भाविनं वातज्वरं नेत्रदाहयुक्ताः पित्तज्वरं वह्निमान्द्य युक्ता भाविनं कफज्वरं बोधयन्ति ॥

भा० संप्राप्ति रोगोंके ज्ञानार्थ हेतु जैसे । (क) मिथ्या आहार विहार से कृपित वानादि आमाशय में जाकर रसको विगाड़ के कोष्ठामिनी को बाहर निकाल कर अरकी उत्पत्ति को जमाता है । वैसे रोगों को संख्या दोषकी अंश कल्पना प्राधान्य बल कालों को जनाता है । उनके ज्ञानने में चिकित्सा विशेष होता है । [अनन्तर पूर्व रूपका लक्षण कहते हैं]

पूर्वरूप बोह है जिसे होनेवाला रोग जाना जाता है । सामान्य और विशिष्ट दो प्रकार बोह कहा है ॥ ३० ॥ सामान्य बोह है जो दोष विशेषों अधिष्ठित नहीं है ॥ विशिष्ट बोह है जो थोड़ा व्यक्त और विशेष करके युक्त है ॥

॥ ३१ ॥ (क) दोषोंके विशेष जंभाई की अधिकता नेत्रदाह आग्निमान्द्य

आदिक । उमें रोगोंके पूर्व रूप ज्ञानके अर्थ कारण जैसे । अमादिक होने वाले ज्वरकी जनाने हैं । और इसी वास्ते अम आदिक अधिक जम्माई से युक्त होने वाले ज्वर को और नेत्र दाहादि युक्त पित्तज्वर की जनाने हैं । तथा अग्निमान्द्य कफज्वर की जनाने हैं ॥

[अथ लक्षणस्य लक्षणं माह ।] पूर्व रूपं विशिष्टं य
व्यक्तं तत् लक्षणं स्मृतम् ॥ संस्थानं लिङ्गं चिन्हञ्च
व्यञ्जनं रूपं माहतिः ॥ ३२ ॥

(क) विशिष्टं पूर्व रूपम् । ईषद्यक्तं रूपम् । तदेव सम्य
ग् व्यक्तं लक्षणं स्मृतं तस्य शास्त्रे व्यवहाराय पर्याया
नाह संस्थानं भिन्यादि लक्षणं व्याधेर्ज्ञानाय हेतुर्यथा ।
स्वेदावरोधः सन्नापः सर्वाङ्ग ग्रहणान्तथा ॥ युग
पद् यत्र रोगे तु स ज्वरः परिकीर्तितः ॥ ३३ ॥

युगपदे तल्लक्षणं ज्वरं बोधयति ।

भा० अनन्तर लक्षण का लक्षण कहने हैं । पूर्व रूप विशिष्ट जो व्यक्त ही
ना है उसको लक्षण कहा है । संस्थानं लिङ्गं चिन्ह व्यञ्जन रूपं माहति ये
ह उसके पर्याय हैं ॥ ३२ ॥ (क) पूर्व रूप विशिष्ट । थोड़ा व्यक्त रू
प । वही अच्छी तरह व्यक्त लक्षण कहा है । उसका प्राक्समें व्यवहारके
वास्ते पर्यायों को कहने हैं । संस्थानं भिन्यादि लक्षणं रोग ज्ञानके अर्थ का
रु जैसे । पसीने का अवरोध सन्नाप तथा शरीर में अकड़ाव । ये एक साथ
जिस रोगमें होते हैं वोह ज्वर कहा है ॥ ३३ ॥

(एक साथ येह लक्षण ज्वर की जनाना है)

[अथौषधशामस्य लक्षणं माह]

औषधान्न विहारणा मुपयोगं सुखावहम् ॥ नृ
णा मुपशमं विद्यात् सहि सात्म्य मिति स्मृतः ॥ ३४ ॥

[तत्र वातस्थोपशममाह]

मधुर लवण सस्त्र स्निग्ध नस्योष्ण निद्रा गुरु रवि
कर वस्ति स्वेदसं मर्दनानि । दधि जलदा शोषाम्यङ्ग
सन्तर्पणानि । प्रकृपित पवमानं पान्तमेतानि कु
र्युः ॥ ३५ ॥ [अथ पित्तस्थोपशममाह ।]

तिक्त स्वादुकषाय शीत यवनच्छाया निशाव्यंजन
ज्योत्स्ना भृगूह यन्त्र वारिद जलजं स्त्री गात्र संस्य
र्शनम् । सर्पिः क्षीर विरेकं सेक रुधिरस्त्राव प्रदेहादि
कम् ॥ पानाहार विहार भेषजमिदं पित्तं प्रशान्तिं
नयेत् ॥ ३६ ॥ [अथ कफस्थोपशममाह]

रूक्षादार कषाय तिक्त कटुक व्यायाम निष्टीवनम् ।
धूमान्युष्ण शिरा विरेक वमन स्वेदोपवासादिकम् ॥
स्त्री सेवाध्वनि युद्ध जागर जलक्रीडाङ्गना सेवनम्
पानाहार विहार भेषजमिदं प्लेष्माणमुग्रं हरेत् ॥ ३७

भा० अनन्तर उपशम का लक्षण कहते हैं । औषध अन्नविहारों का स्वस्वा
वह उपयोग है उसको मनुष्यों का उपशम जानि उसे साम्भ्य ऐसा कहा है
॥ ३५ ॥ [उसमें चानका उपशय कहते हैं । मधुर लवण अम्लके सहित स्निग्ध
नास उष्ण निद्रा भारी सूर्य की किरण वस्ति स्वेद संमर्दन । दधि जलदा
संपूर्ण अभ्यंग सन्तर्पण यह प्रकोप को प्राप्तहुवे चानको पामन करने है ॥
॥ ३५ ॥ [अनन्तर पित्तका उपशम कहते हैं । तिक्त मधुर कषाय शीत
चान छाया रत पंखा चान्दनी नहरवाना यंत्र में घं और जलज स्त्रीके शरीर
का सस्पर्श । घृत वृध और गुलाब सेक रक्त स्त्राव प्रदेह आदिक । यह पान
आहार विहार और औषध पित्तको शमन करने है ॥ ३६ ॥

अनन्तर कफ का उपशम कहते हैं ॥ हृक्ष तार कषाय तिक्त कटु कसरत नि
ष्ठीवन धूम उष्ण शिथो विरेचन वमन स्वेद उपवासादिक ॥ मैथुन मार्ग चल
ना रतकोजा गना जलक्रीड़ा स्त्री सेवन ॥ पान आहार विहार येह औषध
उग्र कफको हरना है ॥ ३७ ॥

(क) जलक्रीड़ा कफ क

थं हरति । तदाह । जलक्रीड़ा जनित शैत्ये नावरु
द्वोष्मापङ्कः लिप्ता भितः पाकाग्नि रिवोग्रो भूत्वा कफं
शोषयतीति समाधिः ॥ उपशमो व्याधेर्ज्ञानाय
हेतु र्यत उक्तञ्चरकेण । गूढ लिङ्गं संकीर्णं लक्षणाञ्च
व्याधि सुपशमानु पशमाभ्यां परीक्षे दिति ॥

[नद्या च सुश्रुते] अभ्यङ्गः स्वेदन स्नेहैर्विकारे वाति
कस्तुयः ॥ न शाम्ये तत्र विज्ञेयो रक्तमत्रास्ति दूषि
तम् ॥ ३८ ॥ सर्वेषां मेव रोगारणं निदानं कुपिता म
लाः ॥ नृत्यकोपस्य तु प्रोक्तं विविधा हित सेवनम् ।
॥ ३९ ॥ (क) सर्वेषां रोगारणं निदानं सन्निकृष्टं

कारणम् । कुपिताः स्वहेतुदुष्टा मलाः वात पित्त
कफा एवेत्यन्वयः ॥

भा० जलक्रीड़ा कफको कैसे हरना है सो कहते हैं । जल क्रीड़ा की शैत्यता
से अवरुद्ध उष्मा पङ्कः लिप्ता आस पास पाकाग्नि के समान उग्र होकर
कफ को सुकाना है इस प्रकार की समाधि है । उपशम रोग के ज्ञानके अर्थ
कारण जैसे कि कहा है चरक ने ॥ संकीर्ण लक्षणा रोग उपशम अनुशम
ने परीक्षा करे ॥ [वैसे सुश्रुतने कहा है] अभ्यंग स्वेद स्नेह इनसे रोग
वातित्व न शमन होवे उसमें जानना चाहिये इसमें रक्त दूषित है ॥ ३८ ॥
उन रोगों के कारण कुपित मल हैं ॥ उनके प्रकोप का कारण अनेक प्रकारका

अहिम सेवन है ॥ ३६ ॥ (क) स्व रोगों का निदान सन्नि कृष्ट कारण । अयने कारण से दुष्ट मल वात पित्त कफ है इस प्रकार अन्वय है ॥

[तथा च वाग्भटः] दीषा स्वहि सर्वेषां रोगाणां मेक

कारणमिति । (क) नन्वागन्तुज व्याधिषु व्यभिचा

रः स्यात् । तन्न । तत्राप्युत्पन्नं नन्तरं दोष प्रकोपस्या

वश्यम्भावित्वात् । उत्पन्न द्रव्येषु गुणयोगस्येव ।

[उक्तञ्च चरके] आगन्तु हि यथा पूर्वा जायते । यश्चा

न्निजैर्दोषै रनुबध्यत इति । तत्प्रकोपस्य तु । दोष प्र

कोपस्य तु । निदानम् । विविधानि नाना विधानि ।

यान्यहिनान्य सात्त्व्यान्या हार विहारा दीनि । तेषां

सेवनं यथा वायोः प्रकोपस्य निदानानि ।

नीचारस्तिषुटः सतीनचरणकः प्रयामा कमुद्गाढकी ।

निष्यावश्च मकुष्ट कश्च वरदा मङ्गल्यकः कोद्रवः ।

यद् द्रव्यं कडुकं सतिक्त तुषरं शीतञ्च रूक्षं लघु । स्व

ल्याशो विषमाशनं निरशानं भुक्तेह्यजीर्णः शानम् ॥ ४७ ॥

भा० उस प्रकार वाग्भट ने कहा है । दोष ही स्व रोगों का एक कारण है ॥

(क) शंका । आगन्तुक रोग में व्यभिचार होता है ॥ उत्पन्न द्रव्य में गुण योग

का ही कहा है । चरक में । आगन्तुक पहले होता है । पीछे से निज दोषों

से युक्त होता है । दोष प्रकोप का निदान नाना प्रकार के जी असात्म्य

आहार विहारादिक । उनका सेवन । जैसे वायु के प्रकोप का निदान ।

तिन्वी के चावल खेसारी मटर चना सांवा कंगुनी धृङ्ग अरहर । सेमके बीज

मकुष्ट वररैमसूर कोद्रव ॥ और ओ द्रव्य कटु केश तिक्त कसेला शीतल रूखा

हलका स्वल्प भोजन करने वाले विषम भोजन लघन भजीर्ण में भोजन ।

भुक्त जीर्णांतरं परिश्रम भरो गर्त्तादि कौष्ठां घनम् ॥
 वाङ्मथ्यान्तरणान्तनीः प्रतपनं मार्गोऽति यानम्यदा ।
 दण्डादि ग्रहति स्तथोच्च पतनम् धातु क्षयो जा
 गरः । मार्गस्या वरणां व्यवाय भृशता वा तादि
 वेगाहतिः ॥ ४१ ॥ अत्यर्थं वमनं विरेचन मति
 स्वावोऽधिक श्वा सृजो । रोगान्मांस विहीनता
 ति मदन श्विन्ताच शोको भयम् । वर्षावै शि
 शिरो दिनस्य रजने-भोगो तृतीयो घनाः । प्राग्
 वातस्तु हिनं शरीर मरुतौ दुष्टे रमी हेतवः । ४२ ॥

भा० भोजन किया बद्धन जीर्ण हो जावे परिश्रम भार गर्त्तादिक उ
 ष्णा घन । वाङ्मथ्यांसे तैरना वृद्धसे गिरना पैदल मार्ग बद्धन चलना
 दंड आदिकी चोट । याऊं चेसे गिरना धातुक्षय रक्तका जागना मा
 र्गका आवरणा मैथुनकी अधिकता वातादि वेगसे नष्ट ॥ ४१ ॥
 अत्यन्त वमन विरेचन अतिस्त्राव अधिक रक्त के । रोग मांस विही
 नता अतिकाम चिन्ता शोक भय । वर्षा शिशिर दिन और रक्त
 का तीसरा भाग और मेघ । प्राग्वात हिन शरीर के दुष्ट वात होने
 में येह कारण है ॥ ४२ ॥

(क) नीवारः प्रसाधिकाः । तीनी इति लोके । त्रिषु-
 टः खेसारी इति लोके । सतीनः वर्तुलकलायः नि
 प्यावः । कोलशिम्बी सहश फला । राज्शिम्बि स्तस्या
 बीजमन्नं भवति । चरटि बराटिका । कुसुम्भ बीजम्
 । चररै इति लोके । सङ्गल्यको मसूरः । विषमाश
 नम् । बद्धस्तोक सकाले वा भुक्तं तद्विषमाशनम् ।

(ख) अतियानम् । पादाभ्यामतिचलनम् । तरोः प्रपतनम् । तरोरित्युपलक्षणम् । जागरः रात्रौ । वातादि वेगाहतिः । आदिशब्देन विरामूचांश्च छिद्योद्गार छर्दिभुक्तत्तृषोच्छ्वासनिद्राः संगृह्यन्ते । दिनस्य त्रिधा विभक्तस्य । एवं रजनेश्च । यस्य पुनरुक्तिस्तेन तेन वातस्यातिदुष्टिर्बोद्धव्या ।

भा० (क) दूध घोडा व बहुत वे समय में भोजन किया हुआ विषनाशन है । वातादिवेगों का रोकना आदि शब्द से मल मूत्र आंसु छींक ढकार वमन शुक्र तृषा तथा उच्छ्वास निद्रा लीगर्द है । नीन प्रकार विभक्त दिनका । ऐसे ही रातका । जिसकी पुनरुक्ति उक्तसे वातको अति दुष्टि जाननी चाहिये ।

[अथ पित्तस्य प्रकोपकारणानि यथा]

कटुस्त्रोषणविदाहि तीक्ष्णलवणक्रोधोपवासात्पत्नीसम्भोगतृषाक्षुधाभिहननव्यायाममद्यादिभिः । भुक्ते जीर्यति भोजने च शरदि प्रौष्ये तथा प्रारिणाम् मध्यान्हे च तथा र्दशत्रुसमये पित्तप्रकोपो भवेत् ॥ ४३ ॥ [विदाहि लक्षणम्]

विदाहि द्रव्यमुद्गारमल्लं कुर्व्यात्तथा तृषाम् । हृदि दाहञ्च जनयेत्पाकञ्छति तच्चिरात् ॥ ४४ ॥

[अन्यच्च] माषैस्त्रिलैः कुलन्थैश्च मत्स्यैर्मेघाभिषेरा च । गव्येरादधितक्त्रेण तृणां पित्तं प्रकुप्यति ॥ ४५ ॥

भा० अनन्तर पित्तके प्रकोप कारण जैसे । कटु अम्ल तृषण विदाही तीक्ष्ण लवण क्रोध उपवास आनप । स्त्री सम्भोग तृषा क्षुधा अभिघान क्लमरत मद्य

आदि से । भोजन के पचने पर घमद घ्राण्य में । तथा प्राणियों का मध्यान्ह में
यथा अर्धरात्रि के समय में पित्त प्रकोप होता है ॥ ४३ ॥

[विवाहि लक्षण] विवाही इत्य खट्टी डकार तथा तथा और हृद्य में दाह उत्पन्न
करता है । उसका शेरमें पाक होता है ॥ ४४ ॥ औरभी । माष तिल कुरथी मछ
ली मेंढेका मांस । इन इत्थों से तथा दही मट्टे से मनुष्यों का पित्त कुपित होता
है ॥ ४५ ॥

[अथ श्लेष्म प्रकोप कारणा नि यथा ।]

गुरु षट् सधुगाल्ल स्निग्ध माषै स्तिलैश्च । इव दीध
दिन निद्रा शीत सर्पिः प्रपूरैः । प्रथम दिवस भागे रा-
त्रि भागेऽपि चाद्ये । भवति हि कफ कोपो मुक्त मात्रे
वसन्ते ॥ ४६ ॥ (क) प्रथम दिवस भागे त्रिधा विभ-
क्तस्य दिवसस्य प्रथम भागे । एवं रात्रि आद्य भागे ।
सन्तु सर्वेषां रोगाणां निदानं दोषा एव किमन्यदप्यस्ती-
ति संशये चरक आह ।

निदानार्थं करो रोगो रोगस्था प्युप लक्ष्यते ॥

इति रोगस्य निदानार्थं करः निदानस्य रोगोऽपि उप लक्ष्य-
ते दृश्यते । अत्र दृष्टान्त माह ।

भा० अगन्तव कफ प्रकोप कारणा जैसे । भारी लवण अन्न स्निग्ध तिल उषुह इत-
रे ॥ और इव दही दिनका सोचना शीत घन प्रपूर इनसे प्रथम दिनके भागमें ॥
तथा रात्रिके भी प्रथम भागमें ॥ तथा मुक्त मात्रमें वसन्त में कफ प्रकोप होता
है ॥ ४६ ॥ (क) पू०) सब रोगों का निदान दुष्ट दोष ही है की और भी है ।
इस संशय में चरक ने कहा है ॥ रोग का निदानार्थक रोगभी दिखाई देता है ।
इसमें दृष्टान्त कहा है ॥

तद्यथा ज्वर सन्तापा द्रक्त पित्त मुदीर्यते ॥ रक्त पिना
ज्वरस्ताभ्यां श्वासश्चाप्युप जायते ॥ ४७ ॥ श्लीहा

मिच्छन्ना ज्वरं जठराच्छोफं स च ॥ अर्षो रथौ जा
 हरं दुःखं गुल्मश्चाप्युपजायते ॥ ४८ ॥ प्रतिशयाया
 दथोत्कासः कांसात्संजायते क्षयः ॥

(क) अन्यत्वाद् भ्रूकोशे । रोगस्य रोगश्चेत्त्रिद्वानं त
 या निदानमित्येवोच्यते । तद्विहाय निदानार्थकर इति
 वचनमेतद् बोधयति । रोगस्य रोगो निदानार्थकरः ।
 निदानकार्यं करणे सहायः । निदानन्तु रक्तपित्तादीन्
 कतिचिद्रोगान् प्रतिज्वरादिरेव हेतुरिति सिद्धान्तः ।

भा० बोह जैसे । ज्वर सन्ताप से रक्तपित्त प्रकोप होता है ॥ रक्तपित्त से ज्वर उभ
 से श्वास होता है ॥ ४७ ॥ पित्तही की रुद्धि से उदर रोग और उदर रोग से सूजन
 व बवासीर से नाडर रोग और वायुगोला भी होता है ॥ ४८ ॥ जुकाम से का
 से और खांसी से क्षय होता है ॥

(क) ओषं ने कहा है । भ्रूकोशमें । रोग का रोगकारण होनेतौ जैसे निदान
 सेसाही कहते ॥ उमको छोड़कर निदानार्थकर रक्त प्रकार यह वचन बोध क
 रता है । रोग का रोग निदानार्थकर ॥ अर्थात् निदान कार्य करने में सहाय ।
 निदान तो रक्त पित्तादी कुछ रक्त रोगों के प्रति ज्वरादिक ही कारण वेह सिद्धा
 न्त है ॥

अत एवाग्ने स्यष्टमेव चरकः । कश्चिद्धि रोगो रोगस्य

हेतु भूत्विति । प्रथमस्य रोगस्य ज्वरादेर्यो दुष्टो दोषो हे

तुः स एव पश्चाद्भादिनो रक्तपित्तादे रपि रोगस्य हेतुः ।

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं क्षुपित्ता मलाः ॥

(क) इति नियमात् तद् यदा रक्तपित्तादि रूपद्वय लक्ष
 ण योगेन रोगत्वं विधातः स्यात्ततः सर्वेषामिति वच
 न सामान्यम् । निदानार्थकर इति विशेष वचनात् ।

भा० इसी वीस्ते आगे स्पष्ट ही कहा है चरक ने ॥ कोई रोग रोगका कारण हो के इस प्रकार । प्रथम रोग ज्वरादिक का जो दुष्ट दोष कारण है । दोही पीछे से हो ने वाले रक्तपित्तादिक दोषों का भी हेतु होता है ॥ सब ही रोगोंका निदान कुपित मल है ॥ (क) इस प्रकार के नियम से उसमें जब रक्त पित्त आदिके उपद्रव लक्षण ही योगसे रोगत्व विघात होता है । इसवास्ते सर्वोंका येह वचन सामान्य है । निदानार्थं चर इस प्रकार के विशेष वचन से ।

रोगस्य हेतो रोगस्य वैचित्त्यमाह । कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतु भूत्वा प्रशाम्यति । (ख) यथा ज्वरो रक्त पित्त मुत्याद्य स्वयं प्रशाम्यति ननु यो दोषो द्वेके ण ज्वरो रक्त पित्त मुत्यादित्वांस्तस्मिन् सति सतु ज्वरः कथं शाम्यति । तत्र व्याधि स्वभाव एव कारण मिति न दोषः ।

न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेत्वर्थं कुरुतेऽपि च ॥

(ग) अन्यो हेत्वर्थमपि कुरुते स्वयञ्च न प्रशाम्यति । यथा प्रतिश्यायः कासं करोति स्वयञ्च न प्रशाम्यति । तत्र प्राणो जठर गुल्मो करोति स्वयञ्च न निवर्तत इति ।

[अथ दोषघातु मलानां क्षीणानाञ्च चिकित्साग्रह

सुश्रुतः]

भा० रोगके कारणों में रोगकी द्विचित्रताको कहने हैं । कोई रोग रोगका हेतु हो के शमन हो जाता है ॥ (ख) जैसे ज्वर रक्तपित्तको उत्पन्न करके आप शमन न होता है । [शंका] जो दोष प्रकोपसे ज्वर रक्त पित्तको उत्पन्न करता भया उसके रहने वोह ज्वर कैसे शमन होता है । उसमें रोग स्वभावही कारण है इससे दोष नहीं है । और शमन नहीं होते तथा हेत्वर्थको करेभी है ।

(ग) और हेत्वर्थको करते भी हैं आप शमन नहीं होते । जैसे जुकाम खांसीकी करना है और आप शमन नहीं होता ॥ वैसेही बवासीर जठर वावगोले

को करती है और नहीं हटती ॥

चिकित्सा कहते हैं सुश्रुत ॥

[अनन्तर दोष धातु मल क्षीणों की

अत्यन्त कुत्सिता वैतौ सदा स्थूल कृशौ नरौ ॥ श्रेष्ठो

मध्य शरीर स्तु स्थूलः क्षीणो न पूजितः ॥ ४६ ॥ क

र्षयेद् वृंहये चापि सदा स्थूल कृशौ नरौ ॥ रत्नरा

न्वापि मध्यस्य कुर्वीत कुपालो भिषक् ॥ ५० ॥

[अन्यच्च] क्षपयेद्दे वृंहये चापि दोष धातु मलान् भिष

क् ॥ नरो रोगान्वितो याव द्रोगेण रहितो भवेत् ॥

॥ ५१ ॥ (क) क्षपयेदति प्रवृद्धा न्दोष धातु मलां स्त

त्र क्षीण्य हेतुभिरोष धान्न विहारै र्द्वास यित्वा समी कु

र्यात् । वृंहयेत् । क्षीणान् दोषादौ स्त तद् वृद्धि हेतुभि

रोष धान्न विहारै र्बद्ध यित्वा समी कुर्यात् ।

भा० यह स्थूल और कृश अत्यन्त निन्दित है । इनमें मध्य शरीर श्रेष्ठ है

और स्थूल क्षीण अच्छे नहीं ॥ ४६ ॥ कुपाल वैद्य मोटे को दुबला करे और

कृश को पुष्ट करे और मध्य को रत्नरा करे ॥ ५० ॥ (और भी) वैद्य दोष धा

तु मल इनको घटावे और बढ़ावे । रोगयुक्त मनुष्य जब तक रोग रहित न होवे ।

॥ ५१ ॥ (क) बड़े जुड़े दोष धातु मलों को घटावे उसमें क्षीण करने वाले

औषध अन्न विहार से घटाके सम करे । क्षीण दोषादियों को उनको बढ़ाने वा

ले औषध अन्न विहार से बढ़ाकर सम करे ॥

अस्वस्थो येन विधिना स्वस्थो भवति मानवः ॥ तमे

व कारये द्वैद्यो यतः स्वास्थ्यं सदैप्सितम् ॥ ५२ ॥

[स्वस्थस्य लक्षणं माह] समदोषः समाग्निश्च सम धा

तु मलक्रिया । ॥ प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्य

भिधीयते ॥ ५३ ॥ समक्रियः। शरीरानु रूपकर्मा।
आत्मा शरीरं। तन्त्वान्तरेऽपि।

दिरामृत्त्राखिल दोष धातु समता काङ्क्षान्नपाने रुचि
सुक्तं जीर्यति दुष्टये परिणतिः स्वभावबोधैः सुख
म् ॥ ५४ ॥ गृह्णीते विषयान्यथा स्वमुचिनान् वृ
त्तिं मनोवृत्तितः ॥ स्वस्थस्याभिहितं चतुर्दश विधं -
जन्तोरिदं लक्षणम् ॥ ५५ ॥

भा० स्वस्थ मनुष्य जिस विधिसे स्वस्थ होना है। उसी की वैध करावे जिसे कि
सदा स्वस्थ होवे ॥ ५२ ॥ स्वस्थ का लक्षण कहने हैं। सम दोष सम अग्नि स
म धातु मल क्रिय। और पसन्न आत्मा इन्द्रिय मन सेसा को स्वस्थ ऐसा कह
ते हैं ॥ ५३ ॥ शरीर के अनुसार कर्म करने वाला ॥ आत्मा शरीर तन्त्वान्तरमें भी
। अल मूत्र संपूर्ण दोष धातु समता इच्छा अन्नपानमें रुचि भोजन किया पचना
वे पुष्टिके अर्थ परिणाम। सोने जागने से सुख ॥ ५४ ॥ मनोवृत्तिसे अपने
यथोचित विषयों को ग्रहण करना ॥ स्वस्थ मनुष्य का यह चौदह प्रकारका लक्ष
ण कहा है ॥ ५५ ॥ (क) रुचिः शरीर कान्तिः नन्व

हर्निशर्तु भुक्तवत्सु दोषाणां वृद्धेः कथं समदोषता।
उच्यते। अहोरात्र प्रथम भागादिषु तत्रदोष वृद्धेः स्वस्थ
रुत्तोरु विधिभिरुपशान्तासमदोषतेति नदोषः।
[किन्तु] यत्समत्वं हि दोषाणां भिषग्भिरवधार्यते।

अतस्वास्थ्यं विना वक्तुं प्राक्तमन्येन हेतुना ॥ ५६ ॥

(क) तेन समदोषत्वस्यैव लक्षणमन्योन्त्यापेक्षया

पञ्च स्वस्थानु वृत्तिङ्करोति । ऋतुचर्या ध्याये सेव्यत्वेनो-
क्तम् । तथा मात्रा शीलयेत् तृतीये ऽध्याये रक्तशालिः
पष्टिक यव गोधूम जाङ्गलमांस जीवन्ती शाकादि मो-
दक क्षीरादि । तथा यदेजस्करं रसायनं ब्राजीकरणां
सर्व्वदा शीलनीयत्वे न निर्दिष्टम् ॥

भा० (क) रुचि भर्थात् कान्ति । प्रांका । रात दिन और भोजन किये में दोषों
के वृत्ते से कैसे सम दोषता कहने हैं ॥ दिन रात के प्रथम भागादिक में उन रदो-
षों की वृद्धि को स्वस्थ वृत्तमें कहीं ऊर्द्ध विधि करके शमन होनेसे सम दोषता
कही है ॥ इसी दोष नहीं है ॥ किन्तु । दोषों ने दोषोंकी समता जी मानी है ।
वोह स्वस्थ के बिना और ऐन्द्रसे नहीं कहे सके ॥ ५६ ॥

(क) उस समदोष और स्वस्थ के लक्षण अन्यान्य की अपेक्षा करके स्वस्थ
समदोष स्वस्थ में हित वोह स्वप्रमाण स्थित दोष धानु मल इनकी साभ्या
नुवृत्तिक रत्नां मुख स्वस्थानु वृत्तिको करना है । ऋतु चर्या ध्यायेमें सेव्यत्व
करके कहा है । उस प्रकार मात्रा मेव न करे । नीसरे अध्याय में लालधानु सा-
दी जव गेहू जांगलमांस जीवन्ति शाकादि लहू दूध भादि । तथा जो शोज क
रनेवाला रसायन ब्राजीकरण यह सर्व्वदा शीलनीयत्व करके कहा है ॥

[अथ दोष धानु मलानां वृद्धे निर्दानान्याह ।

तत्तद् वृद्धि कराहार विहाराति निषेवणात् ॥ दोष
धानु मलानां हि वृद्धि रुक्ता भिषगवरैः ॥ ५७ ॥

[अति वृद्धानां तेषां लक्षणा न्याह]

वाने वृद्धे भवेत्काश्यं पारुष्यं चोष्ण कामिता ॥ ज्ञा

टं मलं बलञ्चाल्यं गात्रस्फूर्ति विनिद्रता ॥ ५८ ॥

विरामूत्र नेत्र गात्राणां पीतत्वं क्षीणमिन्द्रियम् ॥

शीनेच्छा तापमृच्छाः स्युः पित्ते वृद्धेः स्यमृत्रता ॥ ५९ ॥

भा० अनन्तर दोष धातु मल इनकी वृद्धि के कारणों को कहते हैं ॥ उन २ के बढ़ने वाले आहार विहार के नङ्गन सेवन से । दोष धातु मल इनकी वृद्धि वैद्यो ने कही है ॥ ५७ ॥ [अति वृद्ध उनके लक्षणों को कहते हैं]

वात वृद्धि में कृषाता कठोरता उष्ण पदार्थ की वृच्छा ॥ गाठमल अल्प बल शरीर में स्फूर्ति निद्राका, थोड़ा आना यह लक्षण हैं ॥ ५८ ॥ मल मूत्र नेत्र शरीर में पीला पन क्षीण इन्द्रिय ॥ शीत की वृच्छा नाप मूर्च्छा और अल्प मूत्रना यह लक्षण पित्त बढ़ने में होते हैं ॥ ५९ ॥

विडादि शौल्यं शीतत्वं गौरवञ्चाति निद्रता ॥ स
न्धि शैथिल्य मुत्क्लेदो मुखसेकः कफेऽधिके ॥
॥ ६० ॥ रसे वृद्धेऽन्न विद्वेषो जायते गात्र गौरवम् ॥ ला
ला प्रसेक मूर्च्छाश्च मूर्च्छा सादो भ्रमः कफः ॥ ६१ ॥
प्रवृद्धं रुधिरं कुप्यी ज्ञात्र मारक्त वर्णाकम् ॥ लोचन
ञ्च तथा रक्तं शिराः पूर्यतेऽपि च ॥ ६२ ॥

[अन्यच्च] रक्तन्तु कुरुते वृद्धं विसर्पं स्त्रीह विद्रधीन् ॥
कुष्ठं वातास्त्रकं गुल्मं शिरा पूर्णं त्वकामैले ॥ ६३ ॥
गात्राणां गौरवं निद्रा मदो दाहश्च जायते ॥ व्यङ्गानि
साद संमोह रक्त त्वङ्नेत्र मूत्रता ॥ ६४ ॥ गुद मेद्वा
स्य पाकार्शः पिडका मशका स्तथा ॥

भा० मलादिकों की शुक्लता शीतता भारीपन अति निद्रता । सन्धि में शिथिलता । मतली मुख में पानी छूटना कफ के अधिक होने में यह लक्षण होते हैं ॥ ६० ॥ रसकी वृद्धि में अन्नका द्वेष और शरीर में भारीपन होता है ॥ और लार बहना वमन मूर्च्छा वीर्य भ्रम कफ यह होते हैं ॥ ६१ ॥ बढ़ा हुआ रुधिर शरीर का लाल वर्ण ॥ तथा लाल नेत्र और मसों की भरना भी है ॥ ६२ ॥

औरभी। वृद्ध रक्त विसर्प पिलही विद्राधि दूजकी करता है ॥ कीट वातरक्त वा
 यगीला शिरापूर्णात्वा कामला ॥ ६३ ॥ शरीर में भारीपन निद्रा मद और दाह
 होता है ॥ व्यङ्गः अग्निमान्द्य मोह रक्तत्वचानेत्र भ्रूता ॥ ६४ ॥ गुदा लिंग मुख
 दूनमें पाक वचासीर कुनसी भस्से ॥

इन्द्र लुप्ताङ्ग मर्दासृग् दरास्तापं कराङ्घ्रिषु ॥ ६५ ॥

प्राग्ग्रे द्रक्त वृद्धान्थान् रक्तस्त्रुति विरेचनेः ॥ मांस वृ

द्धन्तु गराडौष्ठ स्फिगुपस्थोरुचाङ्गषु ॥ ६६ ॥ जङ्घयोः

कुरुते च्छिदि तथा गात्रस्य गौरवम् ॥ उदरे पार्श्वयोर्दृ

द्वि कास श्वासोदय स्तथा ॥ ६७ ॥ दौर्गन्ध्यं स्निग्धता

गात्रे मेदो वृद्धौ भवेदिति ॥ अन्यच्च ॥ प्रवृद्धं कु

रुने मेदः श्वासमल्पेऽपि चेष्टिते ॥ नृद स्वेद गलगराडौ

ष्टं रोगमेहादि जन्म च ॥ ६८ ॥ श्वासं स्फिगु जठर-

प्रीवा स्तनानां लम्बनं तथा ॥ वृद्धान्यस्थीनि कुर्व

न्ति अस्थीन्यन्यानि चास्थिषु ॥ ६९ ॥ आचरन्ति

तथा दन्तान् विकटात्महनं स्तथा ॥ अज्ज्ञा वृद्ध

समस्ताङ्गः नेत्र गौरव माचरेत् ॥ ७० ॥

भा० इन्द्र लुप्त अंगमर्द रक्त प्रवर हाय पावों में जलन ॥ रक्त वृद्धि के रोगों की
 रक्त स्नाव विरेचन इनसे शमन करे ॥ मांस वृद्धि गाल हीट वृत्तड लिंग जांघ
 काङ्ग इनमें ॥ ६६ ॥ और जाघोंमें वृद्धि करता है । तथा शरीर का भारी पन
 पेट पसलीयों में वृद्धि कास श्वास आदिक होते हैं ॥ ६७ ॥ मेद वृद्धि में दुर्ग
 म्भता शरीर में और विकृतापन होता है ॥ ॥ औरभी ॥ बृद्धा इत्या मे
 द थोडेसे काम में श्रम ॥ नृपा पर्माना गलगंड हीट दूनमें रोग और प्रमैत्र
 आदिकी उत्पत्ति ॥ ६८ ॥ श्वास चुनड पेट गरदना उती दनदा वृद्धना ।

इनको करना है ॥ वृद्ध अस्थि हड्डी में और हड्डी को करती है ॥ ६६ ॥
तथा दांत विकट और बड़े होते हैं ॥ बढी मज्जा समस्त शरीर नेत्र
इनमें भारीपन को करती है ॥ ७० ॥

शुक्राश्रमरी शुक्र वृद्धौ शुक्रस्याति प्रवर्तनम्

॥ मल प्रवृद्धा वा टोपो जायते जठरे व्यथा ॥

॥ ७१ ॥ मूत्रे मुहुर्मुहुर्मूत्र माध्मानं वस्ति वेद

ना ॥ स्वेद वृद्धे तु दौर्गन्ध्यं त्वचि कराडुश्च जा

यते ॥ ७२ ॥ आर्तवाति प्रवृत्ति स्या दौर्गन्ध्य

ञ्चार्तवे भवेत् ॥ अङ्गमर्द्दश्च जायते लिङ्ग

स्यादार्तवेऽधिके ॥ ७३ ॥ स्तनयो रति पीनत्वं

क्षीर स्त्रावो मुहुर्मुहुः ॥ तोदश्च तत्र भवति ।

स्तन्याधिक्यस्य लक्षणम् ॥ ७४ ॥ उदरादि

प्रवृद्धिस्तु वृद्धे गर्भेऽभिजायते ॥ स्वेदश्च ग

र्भवत्याः स्यात्प्रसवे व्यसनं महत् ॥ ७५ ॥

भा० शुक्रवृद्धि में शुक्र अश्रमरी गर्भ और शुक्र का वृद्धत निकल
ना होता है ॥ मल बढ़नेमें उदर में गुड़ २ शब्द होता है ॥ ७१ ॥

मूत्र वृद्धि में बार बार मूत्र फेट का फूलना वस्ति की पीड़ा ॥ पसी-
ने बढ़नेमें दुर्गन्धता त्वचामें और रवाज होती है ॥ ७२ ॥ आर्तव

के अधिक होनेमें आर्तवकी वृद्धत प्रवृत्ति और रजमें वृद्धत दु-
र्गन्धता होती है ॥ वदन टूटता भी है यह लक्षण है ॥ ७३ ॥ चर्चि

यों कत-वृद्धत भरजाना वृद्धका स्त्राव बार बार और उसमें खुभन हो-
ती है ॥ यह अधिक दुग्धका लक्षण है ॥ ७४ ॥ गर्भ के बढ़नेमें उद-

र आदि बढ जाते हैं ॥ और पसीना तथा गर्भवति को प्रसवमें वृद्ध-
त लक्षण होता है ॥ ७५ ॥

[अथाति वृद्धानां दोषाणां मलानां ज्ञासनमाह]
 तत्तद्भासकराहार विहार परिवेषैरणात् ॥ दोषधा
 तु मलानां हि ज्ञासो निगदितो नृणाम् ॥ ७६ ॥ पूर्वः
 पूर्वोऽति वृद्धत्वाद्दृष्टं येद्वि परस्परम् ॥ तस्मादति
 प्रवृद्धानां धातूनां ह्रसनं हितम् ॥ ७७ ॥

[अथ दोषधानु मलानां क्षयस्य निदानान्याह]
 असात्त्वान्न सदाक्रोध शोक चिन्ता भयश्रमैः ॥
 अतिव्यवायानशानात्यर्थसंशोधने रपि ॥ ७८ ॥
 वेगानां धारणाच्चापि साहसादभिघाततः ॥ दो
 षाणां मथ धातूनां मलानां च भवेत् क्षयः ॥ ७९ ॥

भा० अनन्तर बड़त बड़े ढुवे दोषमें धनका घटना कहते हैं ॥ उनको घटाने वाले आहार विहार के सेवनसे। दोष धातु मलों का घटना कहा है ॥ ७६ ॥ पहिले २ बड़त बड़ने से उत्तर २के बड़त बड़ने हैं ॥ इसवास्ते बज्र वदे ढुवे धातुओं का घटना हिन है ॥ ७७ ॥ अनन्तर दोषधातु मलोंके क्षयके निदानों को कहते हैं ॥ असात्म्य अन्न सदा क्रोध शोक चिन्ता भय श्रम ॥ अनिमेषुन सवारी संघन बड़त वमन विरेचनादि लेना इनसे ॥ ७८ ॥ चौदह वेगोंके धारणासे भी और साहस अभिघात इनसे ॥ दोष धातु मल इनका क्षय होता है ॥ ७९ ॥

[नेपां क्षीणानां लक्षणा न्याह]

वानक्षयेऽल्पचेष्टत्वं मन्दवाक्त्वं विसंज्ञता ॥ पित्त
 क्षयेऽधिकः लेष्मा बन्धिमान्द्यं प्रभासः ॥ ८० ॥
 सन्धयः शिथिला मूर्च्छा रौप्यन्दाहः कफक्षये ॥
 हृत्पीडा कंठशोथौ त्वक् शून्या तृद् रसक्षये ॥ ८१ ॥

शिराः श्लथ्या हिमाश्लेष्ठा त्वक् पारुष्यं क्षयः स्तृजः ॥

गराडौष्ठ कन्धरास्क न्धवक्षो जठर सन्धिषु ॥ ८२ ॥ उ

पस्थ शोथ पिराडीषु शुष्कता गात्र रूक्षता ॥ तौदोधम

न्यः शिथिला भवेयु मांस संक्षय ॥ ८३ ॥ स्त्रीहाभिदृ

द्धिः सन्धीनां शून्यता तनु रूक्षता ॥ प्रार्थना स्निग्धमां

सस्य लिङ्गं स्यान्मेदसः क्षय ॥ ८४ ॥ अस्थि शूल न्त

नी रोक्ष्यं नखदन्त त्रुठिस्तथा ॥ अस्थि क्षयं लिङ्गमे

तद्वैद्यैः सर्वैरुदाहृतम् ॥ ८५ ॥ शुक्राल्पत्वं पर्वभेद

स्तोदः शून्यत्व मस्थिनि ॥ लिङ्ग न्येतानि जायन्ते

नराणां मज्ज संक्षय ॥ ८६ ॥ शुक्र क्षयं रते शक्तिर्व्य

था शोफसि मुष्कयोः ॥ च्चिरेण शुक्र सेकः स्यात्से

के रक्ताल्प्य शुक्रता ॥ ८७ ॥

भा० उनक्षीणों के लक्षणों को कहते हैं ॥ वातक्षयमें अल्पचेष्टा मन्दवाक्य संज्ञानहोना ॥ पित्त क्षयमें अधिक कफ अग्निमान्द्य कान्तिक्षय ॥ ८० ॥ जोड़ों में ढीलापन मूच्छी रूक्षता दाह होता है ॥ कफ क्षय में हृदयमें पीडा कंठ शोथ त्वचाकी शून्यता तृषा होती है ॥ रस क्षय में ॥ ८१ ॥ ढीली नसें शीतल और खटे की इच्छा त्वचामें कठोरता रक्त क्षयमें ॥ गाल हीठ गरदन कंधा छाती उदर जोड़ इनमें ॥ ८२ ॥ और लिङ्ग चुतड़ पिंडलि इनमें स्त्रुकापन गात्रकी रूक्षता ॥ चुमन धमनीकी शिथिलता होती है मांस क्षयमें ॥ ८३ ॥ पिलहीका बदन सन्धिओं में शून्यता शरीरमें रूखापन ॥ चिकना मांसकी बच्छा यह लक्षण होते हैं मेदक्षयमें ॥ ८४ ॥ अस्थि शूल शरीर में रूक्षता नख दंतका टूटना ॥ अस्थि क्षय में यह लक्षण सब वैद्योंने कहा है ॥ ८५ ॥ मनुष्योंके मज्जा क्षयमें शुक्रकी अल्पता पौरुषमें पीडा चुमन शून्यता अस्थिमें ॥ यह लक्षण होते हैं ॥ ८६ ॥ शुक्र क्षयमें मैथुन में अशक्ति लिङ्ग आंडोंमें पीडा ॥ देरमें शुक्र निकलता है और खलित होनेमें थोड़ा रक्त शुक्र होता है ॥ ८७ ॥

[अथौजः क्षयस्य निदान माह]

ओजः संदीयते कोपा चिन्ता शोक श्रमादिभिः ॥ रू-
क्ष तीक्ष्णोष्ण कटुकैः कर्षणै रपरे रपि ॥ ८८ ॥

[अथ क्षीरौजसो लक्षण माह]

विभेति दुर्बलो ऽभीक्ष्ण चिन्तयेद्यस्थितेन्द्रियः ॥
अभ्युत्था योन्मना रूक्षः क्षामः स्यादोजसः क्षये ॥
॥ ८९ ॥ पुरीषस्य क्षये पार्श्वे हृदये च व्यथा भवेत् ॥
स शब्दस्था निलस्योर्द्ध गमनं कुक्षि संवृतिः ॥ ९० ॥

[उदर सङ्कोचः] सूत्र क्षये ऽल्प सूत्रत्वं वस्तो तोदश्च जा-
यते ॥ स्वेद नाशो त्वचो रौक्ष्यञ्च क्षुषो रपि रूक्षता ॥
॥ ९१ ॥ स्तब्धाश्च रोम कृपाः स्यु लिङ्गं स्वेद क्षये भवेत् ॥
॥ आर्तवस्य स्वकाले चा भावस्तस्याल्पता यथा ॥ ९२ ॥

भा० अनन्तर ओज क्षय निदान कहते हैं । क्रोधसे और श्रम शोक आदिसे । तथा
रूक्ष तीक्ष्ण कटुक के और कर्षणों से भी ओज क्षीण होता है ॥ ८८ ॥
अनन्तर क्षीण ओजका लक्षण कहते हैं ॥ इतराहै दुर्बल सर्वदा चिन्तन करता
है ॥ पीड़ित इन्द्रिय उठनेके वास्तु चंचल चित्त रूक्ष कण ओज क्षयमें होता है ॥
॥ ८९ ॥ [मल क्षयमें पसली और हृदयमें पीड़ा होती है । शब्द के स-
हित वात का कपर होना उदर का संकोच ॥ ९० ॥ सूत्र क्षयमें अल्प सूत्र पेटमें
चुगन होती है ॥ पसलियोंके क्षयमें त्वचामें रूक्षता नेत्रोंमें भी रूक्षता ॥ ९१ ॥ स्तब्ध
रोम कृप येह लक्षण स्वेद क्षयमें होना है ॥ आर्तवके क्षयमें आर्तवके कालमें अ-
भाव अथवा उस्कीरुमी ॥ ९२ ॥

जायते वेदना योनौ लिङ्गं स्यादार्त वक्षये ॥ अभावः
स्वल्पता वास्थान स्वप्नस्य भवनस्तथा ॥ ९३ ॥ स्तब्धो
पथोऽपरा वेतल्लक्षणं सत्य संक्षये ॥ अनुन्नतो भवेत्

कुक्षि गर्भस्या स्पन्दन न्तथा ॥ ६४ ॥ इति गर्भक्षये प्रा
शै लक्षणां समुदाहृतम् ॥

[अथ क्षीरणानां धातुदोष मलानां वर्द्धन माह]

तत्तत् संबर्द्ध नाहार विहारति निषेवणात् ॥ तत्तत्
प्राप्य नरः शीघ्रं तत्तत् क्षयमपोहति ॥ ६५ ॥ ओ
जस्तु वर्द्धते नृणां सुस्निग्धैः स्वादुभिस्तथा ॥ वृष्ये
रन्यै विशेषानु क्षीरमांस रसादिभिः ॥ ६६ ॥

[अन्यच्च] दोषधातु मलक्षीरणा बलक्षीरणाऽपि मानवः।

तत्तत् संबर्द्धनं यत्तदन्नपानं प्रकाङ्क्षति ॥ ६७ ॥ यद्य
दाहारं जातन्तु क्षीरणः प्रार्थयते नरः ॥ तस्य तस्य
सुलाभेन तत्तत् क्षयमपोहति ॥ ६८ ॥

[तत्र केनक्षीरणः किङ्काङ्कतीत्य काङ्काया माह]

भा० योनि में थोड़ा येह लक्षण हीते हैं । दुग्धका नहोना अथवा थोड़ा होना
॥ ६३ ॥ स्नान कुचा यह लक्षण दुग्ध क्षयमें होता है ॥ पटका पेट गर्भका न
होना ॥ ६४ ॥ इस प्रकार बुद्धिचानों ने गर्भक्षय लक्षण कहा है ॥

अनन्तर क्षीरण धातु दोष मल इनका बह ना कहते हैं ॥ उन २ को वर्द्धाने वा
ले आहार विहार इनके वर्द्धन सेवन से ॥ मनुष्य उन २ को पाकर उन २ क्षय
को स्वेता है ॥ ६५ ॥ मनुष्य का ओजस्निग्ध मधुर ॥ वृष्य और विशेष करके
दूध मांस रस आदियों से वर्द्धता है ॥ ६६ ॥ और भी । दोष धातु मल क्षीरण
या बलक्षीरण मनुष्य ॥ उन २ को वर्द्धाने वाले अन्नपान को चाहता है ॥ ६७ ॥
क्षीरण मनुष्य जो २ हार चाहता है । उस २ को मिलन में पीट स्नयन पट होना है ॥
६८ ॥ ३ [उत्तं किस्से क्षीरण क्या चाहता है इस जाकासा में कहते हैं।]

कषाय कटु तिक्तानि रूक्ष शीत लघूनि च ॥ यव मुद्ग
प्रियङ्गुश्च वातक्षीरोऽभि काङ्कति ॥ ६६ ॥

[पित्तक्षीणः किं काङ्कतीत्या काङ्कत्या माह]

तिल माष कुलन्थादि पिष्टान्न विकृति न्तथा ॥ यस्तु

शुक्लास्त तक्राणि काञ्चिकञ्च तथा दधि ॥ १०० ॥

कटुस्त लवणोऽपणानि तीक्ष्णं क्रोधं विदाहि च ॥

समयं देश मुष्णञ्च पित्त क्षीरोऽभि काङ्कति ॥ १०१ ॥

मधुरं स्निग्ध शीतानि लवणान्त गुरूणि च ॥ दधि

क्षीरं दिवा स्वप्नं कफ क्षीरोऽभि काङ्कति ॥ १०२ ॥

रसक्षीरो नरः काङ्कः त्यम्भोऽति शिशिरं मुद्गः ॥

रात्रि निद्रां हिंसं चन्द्रं भीक्षुञ्च मधुरं रसम् ॥ १०३ ॥

इत्तु मांस रसं मन्थं मधु सर्पि गुडोदकम् ॥ द्राक्षा

दाडिम शुक्रानि सस्नेह लवणानि च ॥ १०४ ॥

भा० कषाय कटु तिक्त रूक्ष शीतल हलका ॥ जव मूंग कंगनी इनकी
वात क्षीण चाहता है ॥ ६६ ॥ पित्त क्षीण क्या चाहता है । इत आकांक्षा
में कहते हैं ॥ तिल उदद कुलथी बड़े आदि । दहीका पानी सिरका खटाई
मटा कांजी तथा दही ॥ १०० ॥ कटु लवण अन्न उपण तीक्ष्ण क्रोध विदाही
॥ समय देश उष्ण इनकी पित्त क्षीण चाहता है ॥ १०१ ॥ मधुर स्निग्ध शीत लव
ण अन्न भारी ॥ दूध दही दिनका सोना इनकी कफ क्षीण चाहता है ॥ १०२ ॥
रस क्षीण मनुष्य बदन शीतल जल धारं धार चाहता है ॥ रात्रि निद्रा शीतल
चन्द्र भोजनको मधुर रस ॥ १०३ ॥ ईस मांस रस मन्थ मधु घृत घृत ॥ दास
अनार शुक्र स्नेह लवण सहित ॥ १०४ ॥

रक्त सिद्धानि मांसानि रक्त क्षीरोऽभिकाङ्कति ॥

अन्नानि दधि सिद्धानि षाड्वांश्च बहूनपि ॥ १०५ ॥
 स्थूल कृव्यादमांसानि मांसक्षीणोऽभि काङ्क्षति ॥
 षाड्वा मधुरास्त्रादि रस संयोग पाचिताः गुडव प्र
 भृतयः ॥ मेदः सिद्धानि मांसानि ग्रास्थानूपौदका
 निञ्च सत्काराणि विशेषेण मेदः क्षीणोऽभि का
 ङ्क्षति ॥ १०७ ॥ अस्थि क्षीणस्तथा मांसं मज्जास्थि
 स्नेह संयुतम् ॥ स्वादुस्त्र संयुतं द्रव्यं मज्जा क्षीणो
 ऽभि काङ्क्षति ॥ १०८ ॥ शिखिनः कुक्कुटस्यारुडं हं
 ससारस योस्तथा ॥ ग्रास्थानूपौदकानाञ्च शुक्र
 क्षीणोऽभि काङ्क्षति ॥ १०९ ॥ यवान्नं यवकान्च
 शाकानि विविधानि च ॥ मसूर माष यूषञ्च मल
 क्षीणोऽभि काङ्क्षति ॥ ११० ॥

भा० रक्त सिद्ध मांस रक्त क्षीण चाहता है ॥ दधि सिद्ध अन्न बहूनसे खाडव
 ॥ १०५ ॥ स्थूल कृव्याद मांस मांस क्षीण चाहता है ॥ षाडव मधुर अन्न
 आदि रस के संयोग से पकावे ॥ १०६ ॥ मेद सिद्ध मांस ग्रास्थ आनूप औदक
 ॥ क्षारके सहित विशेष करके मेद क्षीण चाहता है ॥ १०७ ॥ अस्थि क्षीण वे
 से ही मांस मज्जा अस्थिसे युक्त ॥ मधुर अन्न युक्त द्रव्य मज्जा क्षीण चाहता है
 ॥ १०८ ॥ मोर-मुरगे के अण्डे और हंस सारस के भी ॥ ग्रास्थ आनूप औदक
 इनको शुक्र क्षीण चाहता है ॥ १०९ ॥ जव छोटे जव अनेक प्रकार के शाक ॥
 मसूर उड़द इनका जूस इनको मलक्षीण चाहता है ॥ ११० ॥

पेयमिहुरसं क्षीरं सगुडस्वदरोदकम् ॥ मूत्रक्षी
 णोऽभि लपति त्वप्तुसै वारुका णि च ॥ १११ ॥ अस्थि
 क्षीणो हर्तने मद्यं निवान प्राय नास्ने ॥ गुरु प्रावरणं

चैव स्वद क्षीणोऽभि काङ्क्षति ॥ ११२ ॥ कद्वस्त्र लव
 गोष्णानि विदाहीनि गुरूणि च ॥ फल शाका
 नि पानानि स्त्री काङ्क्षत्या त्वि क्षये ॥ ११३ ॥ सुरा
 शाल्यन्न मांसानि गोदीरं शर्करान्तथा ॥ आसव
 दधि हृद्यानि स्नव्यक्षीणोऽभि वाञ्छति ॥ ११४ ॥
 मृगाजा विवहोरोणां गर्भान्वाञ्छति संस्कृतान् ॥
 वसा शूल्य प्रकार दीन् भोक्तुं गर्भ परिक्षये ॥ ११५ ॥

भा० पेय ईसरस गुड़के सहित बदरीरक ॥ और खीर ककड़ी इनको चाह
 ताहै ॥ १११ ॥ अभ्यङ्ग उबटना मद्य निवात में शयन आसन ॥ भारी कपड़ेका
 ओढ़ना स्वदक्षीण चाहताहै ॥ ११२ ॥ क्रुदु अम्ल लवण उष्ण विदाही भारी ॥
 फल शाक पान इनको स्त्री आर्तव क्षय चाहतीहै ॥ ११३ ॥ मदिरा चावल मांस
 गायका दूध शर्करा ॥ आसव दही हृद्य इनको दुग्ध क्षीण वाली चाहतीहै ॥
 ११४ ॥ गर्भ क्षयमें नृग बकरी भेड़ सूवर इन इनायेहु वेगर्भों को चाहतीहै ॥
 और चरबी कबाब आदिक खानेको चाहतीहै ॥ ११५ ॥

[अथ बल लक्षणमाह सुश्रुतमते]

रसादि शुक्र पर्य्यन्तं पुष्ट धातु निमित्तकम् ॥ चेष्टा
 सु पाटवं यत्तु बलं तदभिधीयते ॥ ११६ ॥

[अथ बलस्य क्षय निदानमाह] अभिघाताद्भयात् क्रो
 धा च्चिन्तया च परिश्रमात् ॥ धातूनां सङ्ख्याच्छे
 का इबलं संक्षीयते नृणाम् ॥ ११७ ॥

[अथ बलक्षयस्य लक्षणम्] गौरवं स्तब्धता गात्रे मुख
 स्नानि विवर्णता ॥ तन्द्रा निद्रा वात शोथो बल व्या
 पत्ति लक्षणम् ॥ ११८ ॥

सूची यत्र

ज्ञानवत्यानः शय भवानी पर शास्त्र

गिर धर साहू काके देहली

चत्वार दशैवे कला

| | | | |
|------------------------------|----|---------------------------|----|
| माधव निदान सदी कापा वंदई | ३७ | शाई धर हापा लखनऊ | ३७ |
| माधव निदान सदी काहापा देहली | १७ | निवट भाषा का. नेरठ व आगरा | ३७ |
| बासा मट मूल हापा कल्काहा | ५ | माधव निदान मूल | ३७ |
| चक्र मूल कापा कल्काहा | ३७ | अमर दिनेद | ३७ |
| सुधुत मूल हापा कल्काहा | ५ | अमृत सागर हापा नेरठ आगरा | ३७ |
| रसैद विना मणि रस रत्ना कर हा | ५ | योग दिना मणि ख. नेरठ आगरा | ३७ |
| पा कल्काहा ॥ | | चिकित्सा धातु सर भाषा | ३७ |
| वीर सिंघा वलो कान | ३७ | भौयव चार भाषा | ३७ |
| अमृत सागर हापा वंदई | ३७ | हृदय | ३७ |
| योग दिना मणि भाषा वीर | ३७ | शक्र वली काल कौष | ३७ |
| चिकित्सा हन कल्प वल्ली | ३७ | वाल चिकित्सा | ३७ |
| वैद्यक कल्प हृय | ३७ | वैद्यक सर | ३७ |
| मौलि रान | ३७ | द्वैय रान | ३७ |

इसके जो रीका होके राग रही है
 वागव सदीक
 अमर कोर दोहा चौकई में
 वीर वीर खोशे

जीवन
 चरानी १७ ना वाद १७
 १७ ३ ३ नरये

सुधुत चक्र
 मिला भाषुवेद वाग्नि का